आचार्य श्री पूज्यपाद देव विरचित इष्टोपदेश पर आधारित

अध्यात्म योग

प्रवचनकर्त्ता
मुनि प्रणम्यसागर

आचार्य श्री पूज्यपाद देव विरचित इष्टोपदेश पर आधारित

अध्यात्म योग

प्रवचनकर्त्ता

मुनि प्रणम्यसागर

प्रकाशक

आचार्य अकलंकदेव जैनविद्या शोधालय समिति

उज्जैन (म.प्र.)

- कृति : **अध्यात्म योग**
- आशीर्वाद : **आचार्य श्री 108 विद्यासागरजी महाराज**
- मूल रचयिता : **आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी**
- प्रवचनकर्त्ता : **मुनि श्री प्रणम्यसागरजी महाराज**
- प्रवचन : **अतिशयक्षेत्र बिजोलियाजी 2016**
- पुण्यार्जक : **सकल दिगम्बर जैन महिला मंडल, तपोदय तीर्थ क्षेत्र, बिजोलिया, जिला भीलवाड़ा (राज.)**
- संस्करण : प्रथम, 2018
- आइएसबीएन : 978-81-939298-4-1
- आवृत्ति : 500
- प्रकाशक : आचार्य अकलंकदेव जैनविद्या शोधालय समीति
  109, शिवाजी पार्क देवास रोड़, उज्जैन,
  फोन: 2519071, 2518396
  email: sss.crop@yahoo.com
- प्राप्ति स्थान : आर्हत विद्याप्रकाशन
  गोटेगाँव, नरसिंहपुर (म.प्र.)
  मोबा.: 09425837476

  शैलेन्द्र शाह, उज्जैन
  09425092483, 09406881001
- मुद्रक : आरसी प्रैस, 70ए, रामा रोड़ इंडस्ट्रियल एरिया,
  नई दिल्ली-110015 #9871196002

विषय सूची

	विषय	पृ. सं.
1.	मंगलाचरण	5
2.	स्वरूपोपलब्धि का दृष्टांत	19
3.	व्रतादिकों की कथंचित् सार्थकता	34
4.	आत्मानुराग की युक्तियुक्तता	50
5.	स्वर्ग जाने का फल	62
6.	सांसारिक सुख का स्वरूप	72
7.	वस्तुस्थिति का परिज्ञान न होने में कारण	89
8.	मोही का भ्रम	106
9.	कुटुम्ब रैन बसेरा है	122
10.	शत्रु के प्रति होने वाली भूल	139
11.	अपने में राग व पराये में द्वेष करने का प्रतिफल	152
12.	क्या सुख मोक्ष में ही है, संसार में तनिक नहीं?	158
13.	सांसारिक सम्पत्ति वालों की वास्तविक स्थिति	173
14.	विपत्ति का घर धन मोही क्यों नहीं छोड़ता?	188
15.	लोभ अंधा बना देता है	202
16.	धन संचय करके उसका सदुपयोग करना क्या बुरा है ?	218
17.	सांसारिक विषय कैसे हैं?	224
18.	शरीर कैसा है?	236
19.	उपकारी कौन?	251
20.	ध्यान से तो मन चाहा प्राप्त हो सकता है!	263
21.	ध्येय का स्वरूप	280
22.	आत्मध्यान का उपाय	291
23.	ज्ञानी के सान्निध्य से लाभ	304
24.	अध्यात्मलीन योगी को लाभ	311
25.	ध्यान में कर्त्ता-कर्म का विभाग	327
26.	बन्ध व मोक्ष का हेतु	343
27.	निर्ममत्व के चिन्तवन का उपाय	348
28.	सम्बन्ध का परिणाम	351
29.	मरण एवं रोगादि के भय निरर्थक	364
30.	सभी सांसारिक वस्तुयें वमनतुल्य	375
31.	कर्मबन्ध क्यों?	390
32.	स्वोपकारी बनने की प्रेरणा	400
33.	स्व-पर भेदज्ञानी को लाभ	416
34.	गुरु कौन?	431
35.	धर्माचार्य आत्मज्ञान में उपादान नहीं, अपितु निमित्त हैं	443
36.	तत्त्वाभ्यास का उपाय	456
37.	स्वसंवेदन होने का चिह्न	468
38.	विषयों के प्रति अरुचि होने पर	479
39.	स्वानुभवी की परिणति	490
40.	आत्मानुभवी के और चिह्न	504
41.	ज्ञानी की परिणति	520
42.	विलक्षण दशा	535
43.	यह कैसे संभव है?	549
44.	पर में न प्रवृत्त होने का परिणाम	561
45.	महापुरुषों ने मोक्ष पुरुषार्थ क्यों किया?	575
46.	पर के साथ राग करने का फल	587
47.	आत्मध्यानी योगी को क्या मिलता है?	599
48.	आनन्द का कार्य क्या?	611
49.	मोक्षाभिलाषियों का कर्त्तव्य	624
50.	सारभूत बात	635
51.	शास्त्राध्ययन का साक्षात् और पारम्परिक फल	646
52.	ग्रंथ पाठ (इष्टोपदेश)	653

अध्यात्म योग
क्या एवं क्यों ?

आज के वैज्ञानिक एवं मशीनी युग में हर व्यक्ति एक मशीन की तरह सुबह से शाम निकालता है जिसके कारण से वह शारीरिक रोगों से तो ग्रसित होता ही है साथ ही मानसिक रोगों से भी पीड़ित रहता है। मानसिक रोगों से मुक्ति मिलने पर शारीरिक रोगों से दूर हुआ जा सकता है। मानसिक रोगों से दूर होने की एक मात्र दवा अध्यात्म है। अध्यात्म के नाम पर आज लोग तरह-तरह के योग करते हुए भी देखे जाते हैं और आध्यात्मिक रुचि को बढ़ाने की इच्छा भी रखते हैं। अध्यात्म का संबंध आत्मा से होता है। अधि+आत्मा=अध्यात्म। अर्थात् आत्मा को अधिकृत करके, आत्मा को दृष्टि में रख कर के जो प्रक्रिया शारीरिक योग के साथ अपनायी जाती है उसे अध्यात्म योग कहते हैं। आचार्य पूज्यपाद महाराज एक बहुत महान सैद्धान्तिक, दार्शनिक एवं व्याकरणाचार्य होने के साथ-साथ आध्यात्मिक महापुरुष थे, जिन्होंने अध्यात्म ग्रंथों के रूप में मुख्य रूप से दो ग्रंथ लिखे हैं–इष्टोपदेश एवं समाधितंत्र। दोनों ग्रंथों की विशेषता यह है कि कहीं पर भी जैन शब्द का प्रयोग न करते हुये सामान्य व्यक्ति के लिये अध्यात्म में प्रवेश करने की कला इष्टोपदेश ने सिखाई है तो आत्मा से परमात्मा बनने की कला समाधितंत्र में सिखाई है। इसी इष्टोपदेश ग्रंथ में आचार्य पूज्यपाद महाराज ने एक श्लोक लिखा है–

परीषहाद्य-विज्ञानादास्रवस्य निरोधिनी।
जायते**ध्यात्मयोगे**न, कर्मणामाशु निर्जरा॥24॥

जब व्यक्ति अपने शरीर पर होने वाले परीषहों का भी भान नहीं करता और आत्मा का उपयोग आत्मा में ही निमग्न होता है तब सब प्रकार के बाहरी कर्मों का आना रुककर पहले बँधे हुये कर्मों की निर्जरा होने लगती है इसी का नाम **अध्यात्म योग** है। गृहस्थ श्रावक के लिये अध्यात्म में प्रवेश करने के लिये भी यह इष्टोपदेश ग्रंथ अत्यन्त उपादेय है। जो श्रमण हैं उनके लिये समयसार में प्रवेश करने से पहले इस इष्टोपदेश ग्रंथ से अध्यात्म योगी बनना नितान्त आवश्यक है। इष्टोपदेश के माध्यम से अध्यात्म में सभी भव्य जीवों का प्रवेश हो इसीलिये बिजोलिया अतिशय क्षेत्र पर इस ग्रंथ के माध्यम से उपदेश का क्रम चलता रहा। इन उपदेशों से सभी लोग लाभान्वित हों ऐसी भावना करते हुये आचार्य गुरुदेव श्री विद्यासागर जी महाराज के चरणों में नमोऽस्तु...।

–मुनि प्रणम्यसागर

मंगलाचरण

1

यस्य स्वयं स्वभावाप्तिरभावे कृत्स्नकर्मणः।
तस्मै संज्ञानरूपाय नमोस्तु परमात्मने॥

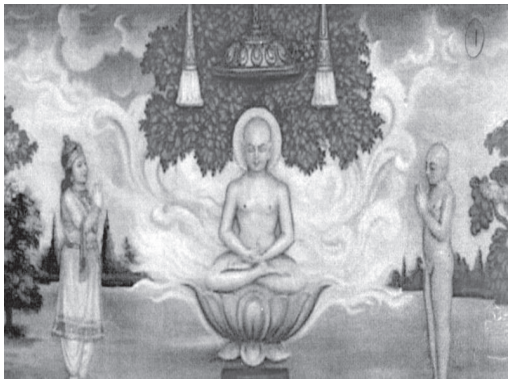

अन्वयार्थ–(यस्य) जिन भगवान के **(कृत्स्नकर्मणः)** समस्त कर्मों का **(अभावे)** अभाव हो जाने पर **(स्वयं)** अपने आप **(स्वभावाप्तिः)** स्वभाव की प्राप्ति हो गयी है **(तस्मै)** उन **(संज्ञानरूपाय)** अनन्तज्ञान स्वरूप **(परमात्मने)** परमात्मा के लिए **(नमः अस्तु)** नमस्कार हो।

- ☛ **स्वभाव की प्राप्ति कैसे?**
- ☛ **देवदर्शन का फल**
- ☛ **न पूजयार्थस्त्वयि.....**

यस्य यानि जिन को, जिन किसी को इस सर्वनाम के द्वारा आचार्य देव का अभिप्राय यह प्रकट होता है कि वह हर उस आत्मा को नमस्कार करते हैं, हर उस आत्मा तक अपनी बात व अपने नमस्कार की ध्वनि को पहुँचा देते हैं जिस आत्मा ने ऐसा कर लिया हो, जो इसमें लिखा है। 'स्वयं स्वभावाप्ति' यानि जिस आत्मा ने स्वयं ही स्वभाव की प्राप्ति कर ली हो। अपने स्वभाव की प्राप्ति कभी पर के द्वारा नहीं होती, स्वयं के द्वारा ही होती है। यह एक-एक शब्द बहुत गहराई तक हमको प्रेरित करता है। 'स्वयं' यानि स्वयं ही 'स्वभावाप्ति' यानि स्वभाव की प्राप्ति की है। इससे कोई मतलब नहीं कि वह आत्मा जैन है, ब्राह्मण है, अजैन है, क्षत्रिय है, उस आत्मा का नाम क्या है? इससे भी कोई मतलब नहीं कि वह महावीर भगवान की आत्मा है, आदिनाथ भगवान की आत्मा है, पारसनाथ भगवान की आत्मा है, जो कोई भी हो 'यस्य' बहुत बड़ा शब्द है चाहे उनको तुम ब्रह्मा कहो, चाहे शिव कहो, चाहे महेश्वर कहो, चाहे विष्णु कहो, चाहे जिन कहो, चाहे हरि-हर कहो सब मान्य है। इतनी व्यापकता इस जैन दर्शन की है कि अगर आप समझोगे तो आपका हृदय भी व्यापक हो जायेगा क्योंकि जब तक हमारी बुद्धि संकीर्ण रहती है तब तक हमारा हृदय भी संकीर्ण बना रहता है। बुद्धि के अन्दर व्यापकता आती है तो वह विचार के माध्यम से आती है, ज्ञान के माध्यम से आती है और वह ज्ञान हमें इन आचार्यों के द्वारा प्राप्त होता है जो कहते हैं कि हम हर किसी आत्मा को नमस्कार करने के लिए तैयार हैं। आप इस ग्रंथ को पढ़ने बैठोगे तो कहोगे कि यह कैसे आचार्य हैं? जो हर किसी को नमस्कार करने के लिए तैयार है। शायद कहना चाहिए कि हम वर्द्धमान महावीर स्वामी को नमस्कार कर रहे हैं, हम पहले तीर्थंकर ऋषभदेव और पारसनाथ को नमस्कार कर रहे हैं लेकिन आचार्य भगवंत कह रहे हैं कि हम सभी को नमस्कार कर रहे हैं तो वो सब कैसे होने चाहिए? इसकी एक शर्त है, तुम उसका नाम कुछ भी दे दो चाहे पारसनाथ, हरि, हर, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर हमें फर्क नहीं पड़ता है, हम तो ब्रह्मा, विष्णु को भी नमस्कार करेंगे लेकिन 'स्वयं स्वभावाप्ति' उन्हें अपने स्वभाव की प्राप्ति हो गई हो। बस इतनी सी शर्त है। आचार्य उस वीतरागता को नमस्कार करते हैं उस आत्मा को नमस्कार करते हैं जिसने स्वभाव की प्राप्ति कर ली हो, और जब स्वभाव की प्राप्ति की है तो इसी शब्द से स्पष्ट हो जाता

आचार्य उस आत्मा को नमस्कार करते हैं जिसने स्वभाव की प्राप्ति कर ली हो।

है कि वह स्वभाव पहले से हमें प्राप्त नहीं है। हमें उसको प्राप्त करना है क्योंकि अगर वो पहले से प्राप्त होगा तो सबको ही प्राप्त होगा। फिर तो हमको भी प्राप्त है, तुमको भी प्राप्त है, फिर हम किसको नमस्कार करेंगे? हमारे अन्दर भी वही है तुम्हारे अन्दर भी वही है, जब हममें और आपमें कुछ difference (अन्तर)होगा, तब ही हम आपको नमस्कार करेंगे। हम किस को नमस्कार करेंगे? तो आचार्य कहते हैं जिसने अपने स्वभाव की प्राप्ति कर ली हो। वह स्वभाव पहले से विद्यमान नहीं होता है, उसे प्राप्त किया जाता है। हमें कोई ऐसा अनावरण नहीं करना है कि जैसे आपने फोटो के सामने कपड़ा डाल रखा हो और उस कपड़े को हटा दिया, उस पर से आवरण हट गया और फोटो सामने आ गया। उसकी प्राप्ति का ढंग कुछ अलग है क्योंकि प्राप्त करने वाली चीज के लिए हमें कुछ मेहनत करनी पड़ती है। जो चीज ढकी हुई है उसको हटाने के लिए हमें कुछ मेहनत नहीं करनी पड़ती, उसके लिए तो हमें केवल रस्सी खिसकानी है या कपड़ा खिसका देना है। लेकिन स्वभाव इस तरह से प्राप्त नहीं होता है। आचार्य कहते हैं कि वह स्वभाव जिसके अन्दर पड़ा हुआ है और उस स्वभाव को जिसने अपने अन्दर ही प्राप्त किया है, उस स्वभाव की प्राप्ति उसने किसी दूसरे तरीके से नहीं की है, स्वयं से की है। स्वभाव की प्राप्ति करने के लिए 'पर' की भी कोई आवश्यकता नहीं है। उसके लिए पर का अवलम्बन लेने की भी कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि जो चीज स्वयं से प्राप्त होगी तो स्वयं में ही किसी कमी के कारण से हमको प्राप्त नहीं हुई, उस कमी को जब हम दूर कर देंगे तो वह स्वयं में से ही उभरेगी, स्वयं से ही प्राप्त होगी। अगर आप कहो कि किसी पत्थर/पाषाण के अन्दर से प्रतिमा को उकेरा जाता है तो वह उकेरने वाला क्या करता है? उसको कहीं बाहर से निकालता है या उसी पाषाण से निकालता है। कभी हम किसी पाषाण से प्रतिमा बनती हुई देखें तो हमें पता पड़ेगा कि उस पाषाण में से प्रतिमा स्वयं से बन रही है या कोई और चीज को लाकर उसमें रखी जाये तब बन रही है। अगर हम उस पाषाण को प्रतिमा में ढलते हुए देखें तो पता चलेगा कि उस पाषाण में से प्रतिमा बनती चली जा रही है, पाषाण स्वयं ही प्रतिमा के रूप में बनता चला जा रहा है। इसके लिए उसमें किसी बाहरी चीज को मिलाने की आवश्यकता नहीं है, जो कुछ है वो सब उसी में है बस उसको उसमें से निकालने की आवश्यकता है। कुछ ऐसा जो उस प्रतिमा को घुमाये हुए है, पाषाण में प्रतिमा छिपी हुई है उस प्रतिमा को आप नहीं देख पाओगे उसे वो कारीगर देख लेगा। जिसे प्रतिमा बनाना आता है या जो प्रतिमा की जानकारी रखता है वह कारीगर उस पाषाण को देखते ही समझ लेता है कि कहाँ पर इसको कैसा अक्ष देना है, इसके लिए कहाँ पर नाक-नक्श बनाना है और वह उस पाषाण को देखकर अपने अन्दर पहले ही प्रतिमा बना लेता है। पहले उसकी प्रतिमा कहाँ बन जाती है? अपने अन्दर बन जाती है। हम कहते हैं कि ऐसी पद्मासन या खड्गासन प्रतिमा बनाना है और वह कह देता है आप निश्चिंत रहें जैसा आप चाह रहे हैं वैसी प्रतिमा बनाकर दे देंगे क्योंकि उसकी छवि हमारे अन्दर उतर गयी है। सबसे पहले प्रतिमा अपने अन्दर बन गई, अभी बाहर वो पाषाण

स्वभाव की प्राप्ति करने के लिए 'पर' की भी कोई आवश्यकता नहीं है।

ज्यों का त्यों पड़ा है। आप देखोगे इस पाषाण में कहीं कुछ नहीं है और वो प्रतिमा बनाने वाला देखेगा तो वह देखता है कि इसमें प्रतिमा बनी हुई है। हमें कुछ नहीं करना है, इस प्रतिमा पर किसी ने कुछ ढँक रखा है, उसे हमें हटाना है। यह ढँकना वैसा नहीं जैसे कपड़े के द्वारा फोटो का ढँकना। वह भी ढँकना है और यह भी ढँकना लेकिन इन दोनों में बहुत अन्तर है, पाषाण के अन्दर जैसे प्रतिमा छिपी हुई है।

आचार्य कहते कि हैं ही ऐसे हमारे अन्दर हमारा परमात्मा छिपा हुआ है, हमारा स्वभाव हमारे अन्दर ऐसे ही ढँका हुआ है। कहने में तो आयेगा ढँका हुआ है, छिपा हुआ है, गुप्त है, हमें वह पकड़ने में नहीं आ रहा है लेकिन हमें उसे पकड़ना है और पकड़ने के लिए थोड़ा सा कलाकार बनना पड़ेगा। उस प्रतिमा को बनाने वाले मूर्तिकार की तरह हमें भी थोड़ी सी कला सीखनी होगी और वो कला क्या है? जब उसके सामने एक दूसरा फोटो लाकर रख दिया जाता है और वह फोटो प्रतिमा में नहीं है, वह फोटो वह प्रतिमा नहीं है, वह प्रतिमा वह फोटो नहीं है फिर भी उस फोटो को देखकर वह मूर्तिकार उस पाषाण के अंदर उस फोटो को समाहित कर लेता है और कह देता है कि बिल्कुल ऐसी की ऐसी प्रतिमा इसके अंदर छिपी हुई है आपको प्रकट करके दे देंगे। 2-4 मास का समय लगेगा। फोटो कहीं और पाषाण कहीं और वह बनाने वाला तीसरा उसके दिमाग में दोनों की संयोजना हो गई है कि यह फोटो इस पाषाण में छिपा हुआ है। ऐसे ही आचार्य यहाँ कह रहे हैं एक फोटो तुम्हारी आत्मा में भी छिपा हुआ है। और वह फोटो क्या है? वह जिन्होंने अपने स्वभाव की प्राप्ति कर ली हो उसको अपना फोटो बनाकर सामने रख लो। जिन्होंने मतलब वह अन्य है वो आप नहीं हैं। जिन्होंने उस स्वभाव की प्राप्ति कर ली हो, उनको अपने सामने रख लो, उनको अपनी दृष्टि का विषय बना लो और उनको विषय बनाने के बाद क्या करना? वह सब हम आगे के विषय में बतायेंगे लेकिन पहले जिस रूप में हमको ढलना है उन्हें अपना विषय बना लो। हमें कैसा बनना है? तो आचार्य कहते हैं हमें ना महावीर भगवान बनना है, ना ऋषभदेव बनना है, ना पारसनाथ बनना है, क्या बनना है? यह सब तो बाहरी नाम है, यह सब तो शरीर से संबंध रखते हैं और इन नामों के पीछे जुड़ा वो आत्म तत्त्व है। वह जो बन गया है, उसकी तरफ अपनी दृष्टि डालो और जिन्होंने भी अपने आप को बनाया है, वैसे ही तुम्हें बनना है लेकिन पहले एक बात समझ लेना है कि हमें किस जैसा बनना है? मंगलाचरण इसलिए किया जाता है कि आपको वह ध्यान आ जाये जो आप होना चाहते हैं। मंगलाचरण कोई खानापूर्ति नहीं है, एक औपचारिकता नहीं है। ऐसे आध्यात्मिक संत, महान आचार्य इसलिए मंगलाचरण करते हैं कि मंगलाचरण के माध्यम से हमारे सामने एक फोटो खिच जाता है और हम उसी को चाहेंगे, उसी के गुणों की प्राप्ति के लिए हम अपने आप को तैयार करेंगे। अगर ऐसे परमात्मा को नमस्कार कर रहे हैं जिसने स्वयं स्वभाव की प्राप्ति कर ली हो तो इसका मतलब है कि हमें भी अपने स्वभाव की प्राप्ति करनी है।

जैसे पाषाण के अन्दर प्रतिमा छिपी हुई है वैसे ही हमारे अन्दर परमात्मा छिपा है

स्वभाव की प्राप्ति कैसे?

उस स्वभाव की प्राप्ति कैसे करनी है तो आचार्य कहते हैं कि 'अभावे कृत्स्नकर्मणः' अभाव तो करना पड़ेगा किसी न किसी का जो द्रव्य उसमें ऐसा कुछ मिला हुआ है जिसके कारण वह प्रतिमा, प्रतिमा के रूप में दिखाई नहीं दे रही है, यह एक पाषाण बनी हुई है, उसमें कुछ अभाव करना है। अभाव मतलब उसमें से कुछ निकालना है, कुछ कमी करना है, जोड़ना नहीं है, अगर जोड़ना भी पड़े तो उसमें कुछ निकालने के लिए जोड़ना। जब कोई मूर्तिकार किसी पाषाण के अन्दर से वह प्रतिमा निकालता है तो वह कहता है कि मुझे छैनी, हथौड़ा दे दो। आप कहोगे इसमें से निकालते जाओ अपने आप प्रतिमा बन जायेगी, अलग से छैनी हथौड़े की क्या जरूरत है? तो वह छैनी हथौड़ा भी उसको निकालने के लिए ही चाहिए, जोड़ने के लिए नहीं चाहिए। वह उस छैनी को उस पाषाण के ऊपर रखेगा, हथौड़ा मारेगा, आपको लगेगा कि इसमें कुछ जुड़ रहा है लेकिन वह जोड़ नहीं रहा है, तोड़ रहा है। आपकी आत्मा के अन्दर भी वह स्वभाव पड़ा हुआ है जो स्वभाव परमात्मा ने प्राप्त कर लिया। लेकिन आपको भी अपने अन्दर किसी छैनी, हथौड़े के माध्यम से कुछ तोड़ना पड़ेगा और वह क्या तोड़ना पड़ेगा? 'कृत्स्नकर्मणः' यहाँ पर आचार्य कहते हैं- कृत्स्न मतलब सभी प्रकार के कर्मणः- कर्मों को। जिन्होंने अपनी आत्मा में अभाव कर लिया है, उन्हें स्वभाव की प्राप्ति अपने आप हो गई है। स्वभाव की प्राप्ति कब होगी? कर्मों के अभाव हो जाने पर। जब तक कर्मों का अभाव नहीं होगा तब तक अपने को स्वभाव की प्राप्ति नहीं होगी। उस स्वभाव की प्राप्ति करने के लिए जो छैनी, हथौड़े की जरूरत है, वह भी आपको बाद में बतायेंगे कौन सी छैनी आत्मा में चलेगी। और कोई दूसरी छैनी, हथौड़ा लेकर मत जाना। महाराज ने कहा है कि कर्मों को काटना है, कर्मों को काटने के छैनी हथौड़े सबके अलग-अलग होते हैं, श्रावकों के छोटे-छोटे मोटे-मोटे छैनी हथौड़े होते हैं और वीतरागी आत्माओं के बड़े-बड़े, पैने-पैने छैनी हथौड़े होते हैं और वो पैने छैनी-हथौड़े हैं मन की एकाग्रता, ध्यान की परिणति। जिसके पास ध्यान का जितना पैनापन होगा वह उतनी जल्दी कर्मों को काट लेगा और जिसके ध्यान के अन्दर जितना विचलन होगा, जितना मोथरापन होगा, उसके कर्मों को काटने में उतनी देर लगेगी। श्रावक के लिए ध्यान ऐसा है, जैसे आप सुन रहे थे, मैं धरती तू आसमान, मिलें तो मिलें कैसे? श्रावक के लिए ध्यान करना ऐसा है जैसे कि वह धरती पर बैठा है और आसमान को छूना चाह रहा है। उसके लिए ध्यान करना बहुत टेढ़ी खीर है और ध्यान करने में सबसे ज्यादा पसीना आता है। ध्यान के अलावा सब करा लो, सब कुछ करने को तैयार है। भगवान की पूजा करा लो, विधान करा लो, बड़े-बड़े एक साथ जाप करा लो, हवन करा लो, सबके लिए तैयार है। जैसे ही ध्यान की बात आती है, अरे महाराज ध्यान तो होता नहीं और ध्यान ही एक ऐसी चीज है जिसके माध्यम से कर्म कटते हैं। ध्यान उस श्रावक के लिए होता नहीं, और ध्यान के बिना कर्म कटते नहीं और जब तक ध्यान नहीं होता तब तक आचार्य कहते हैं कि तू ध्यान की परिणति आने

मन की एकाग्रता, ध्यान की परिणति कर्म काटने के औजार हैं।

तक कुछ तो कर, क्या कर? आचार्य कहते हैं 'प्रात्रुत्थाय देवता गुरु दर्शनम्' सबसे पहले प्रातःकाल उठकर क्या करना? देवता, गुरु का दर्शन करना यानि भगवान जिनेन्द्र देव का दर्शन करना। श्रावक के लिए सबसे पहले यह कहा गया है। मुनिराज के लिए सबसे पहले कहा गया है– स्वाध्याय करना, सामायिक करना, ध्यान करना। श्रावक के लिए कहा गया है कि तुम उठकर सबसे पहले देवता का दर्शन करना। मुनिराज के लिए कहा गया है तुम अपनी आत्मा का ध्यान करना। अपने ही अन्दर उस परमात्मा का ध्यान बैठे-बैठे करना तुम्हें दर्शन के लिए कहीं जाने की जरूरत नहीं है। देव दर्शन करना श्रावक का मूलगुण है, मुनि महाराज का नहीं, फिर भी मुनि महाराज करते हैं। वंदना एक आवश्यक कार्य है, वंदना को मूलगुण में रखा गया है लेकिन वह बाद में, पहले उन्हें प्रातः उठकर सामायिक करना, प्रतिक्रमण करना, स्वाध्याय करना यह सब पहले करना, फिर सब लोग उठ जाये तो देव दर्शन करने वंदना करने, के लिए जाना।

देवदर्शन का फल

श्रावक को सबसे पहले देवदर्शन, गुरुदर्शन की बात कही गई। आचार्यों ने उस दर्शन की कितनी महिमा लिखी है। तुम्हें ध्यान होना नहीं है सो सबसे पहले तुम भगवान का दर्शन करो, पूजा करो। आचार्य कहते हैं जब तुमने अपने घर पर बैठ कर यह विचार बना लिया कि मुझे भगवान के दर्शन करने के लिए जाना है तो तुम्हें एक उपवास का फल मिल जाता है। जो लिखा है वो बता रहा हूँ, तुम्हें मिलता है या नहीं वो भगवान जाने। लेकिन आपने घर बैठे मन बना लिया, ध्यान में आ गया तो एक उपवास का फल मिल जाता है। जब आपने भगवान के दर्शन के लिए थोड़ा सा उद्यम किया आपको दो उपवास का फल मिला। जब आपने थोड़ी सी और तैयारी की तो तीन उपवास का फल मिला। जैसे आपने चलना प्रारम्भ किया, आपको चार उपवास का फल मिला। इतना भगवान के दर्शन का फल, अभी तो आये नहीं पास में, जब आप थोड़ी दूर आ गये रास्ते में आपको पाँच उपवास का फल मिला। जब आपको जिन भवन दिखाई दिया तो छह उपवास का फल मिल गया, जैसे ही आप भगवान या जिनभवन के पास आने लग गये या आ गये तो आपको एक पक्ष यानि 15 दिन के उपवास के फल का जो पुण्य लगता है, वो आपको लगेगा और आपने दहलीज पर पैर रखा तो आपको एक महीने के उपवास का फल मिलेगा। आप भगवान की वेदी के पास गये, उनकी परिक्रमा लगाई आचार्य कहते हैं आपको एक वर्ष के उपवास का फल मिलेगा। जब आपने भगवान के नयनों से दर्शन किये तो आपको 100 वर्षों के उपवास का फल मिल गया और जब आपने भगवान की स्तुति की तो आपको अनन्त-अनन्त पुण्य की प्राप्ति हो गई। ऐसे भगवान के दर्शन का फल श्रावकों के लिए लिखा गया है कि आप जब भगवान जिनदेव का दर्शन करते हैं तो आपको पुण्य फल मिलता है। आप को लग रहा होगा महाराज यह सब शास्त्रों की बातें है, Reality (वास्तविकता) तो कुछ है नहीं अगर इतना पुण्य फल मिलता है तो रोजाना भगवान के दर्शन करते हैं, और पूजन करते हैं खूब-खूब देर तक करते हैं, हमें तो बहुत

पुण्य की प्राप्ति हो रही होगी। अगर हो भी रही होगी तो आपके लिए कोई अतिशयोक्ति की बात नहीं है, आपके काम में आयेगी। लेकिन उस पुण्य की प्राप्ति के लिए जो प्रयास करने को कहा गया है उस प्रयास की जो विधि है वो विधि आपसे शायद ही पूरी हो पाती हो। पहली बात तो यह कि दर्शन करने वाले श्रावक के लिए कहा गया है कि भगवान के दर्शन करने के लिए पैदल जायें।

आपको पुण्य फल की प्राप्ति जल्दी चाहिए तो जितनी जल्दी करोगे पुण्य उतना ही छूटेगा। जो हमें जितने उपवास का फल मिलता है उतना मिलेगा लेकिन जल्दी करने से वो जल्दी नहीं मिलेगा परन्तु आपको जल्दी रहती है। जैसे आप घर से निकलते हो तब बाइक पर बैठकर सीधे आप मन्दिर आ जाते हो, आपको लगता है आप मन्दिर जल्दी आ गये और यहाँ वैसी आधुनिक मशीन तो है नहीं। पहले तो भैया बहुत देर में काम बनता था। कोई भी Product तैयार होता था तो समय लगता था। अब मशीनें ऐसी आ गई हैं, जो काम पहले 1 घंटे में होता था वो अब 10 मिनट में हो जाता है। दूसरे काम सब 10 मिनट में हो सकते है लेकिन भीतर भावों का काम 10 मिनट में नहीं हो सकता, उसके लिए आपको वह विधि अपनानी पड़ेगी जो विधि आचार्यों ने बताई है। अगर आचार्यों ने कहा कि कोई श्रावक, स्वच्छ वस्त्र पहन करके, पैरों में किसी प्रकार के जूते चप्पल नहीं पहन करके, भगवान के दर्शन करने की भावना से निकला हो, रास्ते में दया भाव धारण करके जीवों की रक्षा करते हुए मौन से चले और रास्ते में चलते हुए बिल्कुल मौन रहे तो उस श्रावक को ऐसे उपवास का फल, पुण्य फलों की प्राप्ति होगी जो हम आपको अभी यहाँ बता रहे थे। आप कहोगे महाराज ऐसा करना तो थोड़ा कठिन काम है। इससे क्या मतलब है भगवान का दर्शन करना है हम चाहे गाड़ी पर आयें या कैसे भी आकर करे भगवान का दर्शन तो कर रहे हैं। लेकिन वह जो दर्शन करने में आनंद आता है और दर्शन से पहले जो मन में भावना बनती चली जाती है, वह भावना आपकी गाड़ी पर बैठकर एकदम से 5 मिनट में आने पर नहीं बनती। जब आप इस ढंग से भगवान के दर्शन करने जाते हो, जितनी देर लगेगी उतनी ही आपकी विशुद्धि बढ़ेगी। आप विचार तो करो, अगर एक कि.मी. या आधा कि.मी. का रास्ता आप पैदल चल कर जा रहे हो, चुपचाप चले जा रहे हो, कुछ भी हो जयजिनेन्द्र के अलावा कोई दूसरी बात नहीं कर रहे हो और अन्य श्रावक देख ले कि भी यह मन्दिर जा रहा है तो वह भी अपने आप समझ जायेगा कि यह जैन श्रावक मंदिर जा रहे हैं, चुपचाप जा रहे हैं इससे अभी कोई फालतू बात नहीं करनी है, ना इससे कुछ पूछना है। आपकी भावना में जिनेन्द्र भगवान बिल्कुल तैर रहे हैं और आपके अन्दर एक आकर्षण रहेगा हमें भगवान के दर्शन हों-हों-हों यह भाव ही आपके अन्दर विशुद्धि का भाव पैदा करेगा।

इसलिए जितने भी तीर्थ क्षेत्र, सिद्ध क्षेत्र ऊँचाइयों पर बने होते हैं और उन ऊँचाईयों पर पहुँचते-पहुँचते हम थक जाते हैं। हम मन में यह सोचते हैं कि क्या इतनी ऊँचाई पर बैठने से मोक्ष

भगवान् के दर्शन में आह्लाद भाव ही आपके अन्दर विशुद्धि का भाव पैदा करेगा।

होता है? लेकिन अगर आपको यह ध्यान रहे कि भगवान ने जहाँ से मोक्ष प्राप्त किया है, हम उस स्थान पर पहुँच रहे हैं और जाते हुए बस दर्शन करने की भावना है और पूरा का पूरा पुण्य आप संजोते जा रहे हैं। जिस क्षण आपको दर्शन हो जायेगा उस समय आपके मन में जो विशुद्धि का भाव आयेगा वो आपको हेलिकाप्टर से पहुँचने पर नहीं आयेगा। हर चीज को धीरे-धीरे समझना और धीरे-धीरे प्राप्त करना। मोक्षमार्ग जल्दी का मार्ग नहीं है, हड़बड़ी का मार्ग नहीं है। हड़बड़ी से बाहर कुछ कर सकते हो लेकिन हड़बड़ी में भीतर कुछ होता ही नहीं है। हड़बड़ी का मतलब घबराहट हो रही हो, कुछ करने की जल्दी पड़ी हो और आप बैठ जाओ, आँख बंद करके हड़बड़ी में आपकी आँखें भी बंद नहीं रहेंगी। आपको अंदर भीतर घबराहट होगी, कुछ करने की आकुलता होगी तो आँख बंद करके भी नहीं बैठ पाओगे क्योंकि भीतर शांति चाहिए, परमशांति चाहिए। शांति तभी प्राप्त होगी जब हमें बाहर कोई शांति की मूर्ति दिखाई जाये जैसे मूर्ति हमें अपने अन्दर प्रकट करनी है, बनानी है और उस मूर्ति को बनाने के लिए ही हम बाहर यह प्रयास करते हैं इन गुणों की प्रशंसा, इन गुणों की प्राप्ति करने के लिए हम प्रयास करते हैं कि जैसा बाहर हमें चेहरा दिखाई दे रहा है भगवन् मेरा स्वरूप वैसा ही है और मुझे अपने स्वरूप को ऐसा बनाना है। एक बहुत बड़े मूर्तिकार से भी ज्यादा मेहनत का काम है, जब आप अपनी आत्मा के अंदर भी परमात्मा को प्राप्त कर उसे प्रकट कर सकोगे। स्वभाव की प्राप्ति करना और वह स्वभाव की प्राप्ति खुद को करना, दूसरा नहीं करा सकेगा आपको बगल में बैठा व्यक्ति आपको ध्यान लगा नहीं सकता है, आप से कहेगा कि आप सीधे बैठ जाओ लेकिन आपसे सीधे बैठने के बाद ध्यान नहीं हुआ, ध्यान में जो करना है वो आपको स्वयं करना है। वो आपके मन को मालूम है, आपका मन क्या कर रहा है, आपके मन को क्या करना है, आपका मन आपके द्वारा संचालित होना है सब कुछ स्वयं करना होगा, बाहर तो केवल कहने के लिए होता है, किसी ने किसी के लिए कुछ आलम्बन दे दिया बाकी स्वयं में स्वयं को स्वयं के द्वारा ही प्राप्त करना होता है।

इसलिए जितनी भी आत्माएँ सिद्ध आत्माएँ बनी हैं वो सभी इस process से बनी हैं, उन्होंने स्वयं ही स्वभाव की प्राप्ति की है। किसी के सहारे से स्वभाव की प्राप्ति नहीं होती है। यहाँ तक आचार्य आपको आगे बतायेंगे कि गुरु का सहारा भी बाद में छूट जाता है। वो भी धीरे-धीरे बात आयेगी, आपके सामने इसलिए यह ध्यान रखना जितने भी भगवान या सिद्ध बनते हैं, वह सब स्वयंभू कहलाते हैं। स्वयंभू का मतलब ही होता है, स्वयं भू। भू माने होना स्वयं हो जाओ अपने होने के लिए किसी पर की आवश्यकता नहीं होती। आप जैसे गर्भ में आये थे, गर्भ से निकले, बड़े हुए , बूढ़े हो रहे हो यह परिणमन भी आपका स्वयं चल रहा है आपको इससे ना कुछ हो रहा है, ना कुछ चल रहा है, बाहरी द्रव्य का परिणमन भी स्वयं चल रहा है। इसी तरह से भीतरी द्रव्य का परिणमन भी स्वयं होगा लेकिन जैसा हो रहा है उसको आपको रोकना पड़ेगा अभी जो हो रहा है वो विभाव रूप में हो रहा है। उस वैभाविक परिणमन को रोकना और स्वाभाविक परिणमन की

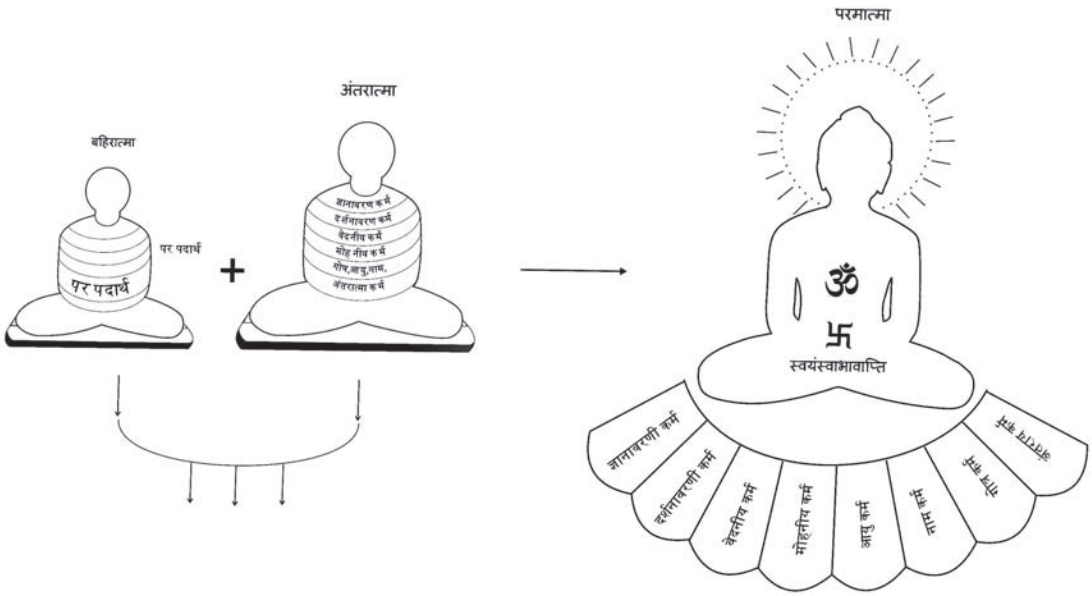

प्राप्ति करना यह आपके पुरुषार्थ से होगा। तब आत्म-द्रव्य का परिणमन स्वभाव की प्राप्ति की ओर उन्मुख होगा और उस परिणमन की प्राप्ति के बाद ही हमें अपने ज्ञान के स्वरूप की प्राप्ति हो जायेगी।

'तस्मै संज्ञानरूपाय' आचार्य क्या कहते हैं कि अब उनके लिए नमस्कार हो जिन्होंने इन कर्मों का अभाव करके स्वभाव में स्वयं की प्राप्ति कर ली है और जो स्वयं ज्ञान स्वरूप हो गये आत्मा में ज्ञान के अलावा और कुछ भी नहीं हैं, ज्ञान स्वरूपी आत्मा जिन्होंने अपने ज्ञान स्वरूप को प्राप्त कर लिया। संज्ञान का मतलब होता है सम्पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति जिनको हो गई हो।

'नमोस्तु परमात्मने' उस परमात्मा के लिए मेरा नमस्कार है। वही परमात्मा बन गया, परमात्मा ऐसी कोई डरावनी चीज नहीं है, जैसा आप समझते हो, या समझ रखा हो परमात्मा कहते ही लोग डर जाते हैं जबकि आचार्य कहते हैं आपकी आत्मा के अंदर वह परमात्मा विद्यमान है जैसे पाषाण के अन्दर मूर्ति विद्यमान है। बस खोदो, उसे निकाल लो, आपने पहले से जमा रखी है उसे हटाते जाओ आपके अन्दर की मूर्ति प्रकट होगी तब आपके अन्दर वह आत्मवृत्ति उत्पन्न होती है। एक बहिरात्मा, एक अंतर्रात्मा, एक परमात्मा यह तीनों प्रकार की आत्मा आपके आत्मा में है जब तक आत्मा पर पदार्थ को अपना मानता है तब तक वह बहिरात्मा है, जब आत्मा यह समझ लेता है कि यह 'पर' पदार्थ मेरा नहीं है, मेरा तत्त्व तो केवल मेरी आत्मा है, तब वह अंतर्रात्मा हो जाता है और वही अंतर्रात्मा की वृत्ति उसे धीरे-धीरे परमात्मा बनाती चली जाती है। समझना केवल इतना है कि मेरी आत्मा अंतर्रात्मा होकर परमात्मा बन सकती है लेकिन पहले उसको बहिर्रात्मा

बहिरात्मा, अंतरात्मा, परमात्मा यह तीनों प्रकार की आत्मा आपके आत्मा में है।

से हटाना होगा। हर आत्मा ने अपने अंदर परमात्मा रूप को इसी तरह प्रकट किया है और बाहर से परमात्म तत्त्व को प्रकट करने का कोई उपाय नहीं है। स्वयं को स्वयं के द्वारा स्वयं में पाना ही अंतर्रात्मा से परमात्मा बनने का उपाय है।

छैनी-हथौड़ा भी चलाना है तो उसमें से जो extra material हटाने के लिए है। आप विचार करो जिन्होंने अपने अंदर से extra material हटा दिया हो और वो extra क्या-क्या है यहाँ तो बहुत सामान्य से कह दिया सभी कर्मों का अभाव कर दिया अब वो कर्म कितने है? आचार्य कहते हैं आठ है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अंतराय। इन सब के सब कर्मों को जिन्होंने हटा दिया हो और इन कर्मों के अभाव होने पर ही उन्हें अपने स्वभाव की प्राप्ति हुई है और उन कर्मों में जो सबसे बड़ा कर्म है और सबसे पहले हटाने लायक है तो आचार्य कहते हैं कि वह मोहनीय कर्म है। मोहनीय कर्म को हटाये बिना आपकी परिणति में यह आयेगा ही नहीं कि भगवान या परमात्मा कैसा होता है? परमात्मा या भगवान का स्वभाव क्या है?

न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे न निन्दया नाथ विवान्तवैरे।
तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः पुनातु चित्तं भगवान् जिनेन्द्रः ॥स्वयंभू स्तोत्र॥

आचार्य समन्तभद्र स्वामी कहते हैं कि हमने यह तो जान लिया कि आप कैसे है? लेकिन यह दुनिया के लोग नहीं जान पा रहे हैं कि आप कैसे है? भगवान कैसे हैं? तो आप इस श्लोक में बताते हो भगवान परमात्मा जिन्हें अपने स्वरूप की प्राप्ति हो गई वे वीतरागी है। वीतराग का मतलब वह आपकी पूजा से प्रसन्न, होने वाले नहीं है। उन्हें आपकी पूजा से कोई प्रयोजन नहीं है, 'न निन्दया' अगर पूजा करने से प्रसन्न नहीं होते तो निन्दा करने से गुस्सा भी नहीं हो सकते हैं तो आचार्य कहते हैं कि उन्हें निन्दा से भी कोई प्रयोजन नहीं रहा क्योंकि 'विवान्तवैरे' उन्होंने वैर को उगल दिया है, वैर उनके अन्दर रहा ही नहीं, भगवान को संसार के किसी भी प्राणी से ना वैर रहा ना राग रहा। भगवान के अन्दर राग-द्वेष का अभाव है। ऐसे भगवान परमात्मा बनने के बाद में हम उस परमात्मा को नमस्कार करते हैं तो किसकी प्राप्ति के लिए करते हैं?

यहाँ पर यह नहीं लिखा कि हे भगवन् हम आपको किसकी प्राप्ति के लिए नमस्कार रहे हैं लेकिन एक भाव इसमें छिपा हुआ है ''तस्मैसंज्ञानरूपाय'' यह चतुर्थी विभक्ति आपने संस्कृत में पढ़ी हो तो यह दोनों अर्थों में आती है, जब किसी के लिए नमस्कार किया जाता है तब भी वह चतुर्थी विभक्ति आती है और जब हम किसी चीज की प्राप्ति के लिए प्रयास करते हैं तो उस में भी यह विभक्ति काम आती है। अर्थात् एक प्रकार से तो देखा जाये तो हे भगवन् हम आपके ज्ञान रूप की प्राप्ति करने के लिए आपको नमस्कार कर रहे हैं। किसकी प्राप्ति के लिए? आपके ही संज्ञानरूप या सम्पूर्ण ज्ञान रूप की प्राप्ति के लिए नमस्कार कर रहे हैं। यह आचार्य यहाँ कह रहे हैं। जैसे हम भगवान के सामने पहुँचते हैं नमस्कार करने के लिए, पूजन करने के लिए बुद्धि में क्या

आता है? पहले यह देखना, बुद्धि की परीक्षा करना, आपकी बुद्धि में सबसे पहले यह भाव आयेगा जो हमें पता है, आपने नहीं बताया फिर भी पता है। आपके अन्दर क्या चलता है, हम भगवान के पास आये, भगवान की पूजन कर रहे हैं तो भगवान हमसे प्रसन्न होंगे, भगवान की दृष्टि हमारे ऊपर पड़ेगी, भगवान हमारे ऊपर प्रसन्न होकर हमारा काम बना देंगे। यह भावना सबसे पहले हमारे अन्दर आ जाती है, हम कहते जरूर हैं।

''हे वीतराग विज्ञान पूर, तुम मोहतिमिर को हरणसूर।'' आप वीतराग है, पर हम नहीं, हम यह भी जान रहे हैं कि भगवान वीतराग है लेकिन हमारे अन्दर जो भाव आता है वो तो मोह का भाव आता है, राग का भाव आता है और उस मोह में उस मिथ्यात्व का भाव भी आ जाता है, अगर आपके अन्दर control नहीं हो तो। आपको सम्यक श्रद्धा की परिणति नहीं आई होगी और आपके अन्दर वो मोह अर्थात् विपरीत श्रद्धा का भाव आ जायेगा कि भगवान की जितनी पूजा करेंगे उतने वे हमसे प्रसन्न होंगे। उधर आचार्य कहते हैं कि भगवान आपकी पूजा से प्रसन्न होने वाले नहीं है वो वीतराग है। आपको उनके स्वरूप पर श्रद्धान कितना है। यह पक्का मान लेना भगवान को हम प्रसन्न नहीं कर सकते। 'न पूज्यार्थस्त्वयि' हे भगवन्! हम आपको पूजा से प्रसन्न नहीं कर सकते। स्वयं आचार्य कहते भी जा रहे हैं और स्तुति भी कर रहे हैं।

हे भगवन्! फिर भी आपकी पूजा करने से, आपके गुणों का स्मरण करने से मेरा चित्त दुरित रूपी पाप रूपी अंजन माने कलंक कालिमा सब धुल जाता है। हमें कहाँ पर focus डालना है। भगवन् को देखने के बाद भी हमारे विचारों का focus हमारे ऊपर ही रहे। यह ना रहे कि हम भगवान को प्रसन्न करने के लिए पूजा करने जा रहे हैं और आज नहीं पहुँचे तो भगवान नाराज हो जायेंगे यह भाव तो कभी स्वप्न में भी नहीं आना चाहिए अगर आपको वीतराग भगवन् पर श्रद्धान हो गया हो तो, भगवान् की पूजा नहीं कर पायेंगे तो हमारा चित्त पवित्र नहीं हो पायेगा। हमें भावना करी कि हमें आपकी पूजा करने से हमारा चित्त पवित्र होता है। आपके पुण्य गुणों की स्मृति से हमारी कर्म कालिमा धुलती है। यह भावना अगर आपके अंदर रहेगी तो और कोई दूसरी इच्छा करने में आयेगी ही नहीं सम्यग्दृष्टि जीव का एक दूसरा बहुत बड़ा अंग होता है। पहला तो निःशकित होता है और दूसरा निःकाक्षित होता है। निःशकित होने का मतलब उसे कोई भी शंका नहीं है कि हमें उसकी पूजा से यह फल मिलेगा या नहीं मिलेगा। उन्हें पक्का मालूम है हमें जो कुछ मिलेगा वह भगवान के द्वारा, भगवान की पूजा से मिलेगा लेकिन भगवान कुछ देते नहीं यह भी वो जानता है। यह निःशकित अंग है। उससे भगवान् प्रसन्न नहीं होगे, रूठेंगे भी नहीं, भगवान कुछ छीनेंगे भी नहीं, भगवान कुछ देंगे भी नहीं यह पक्का कर लेना। पहले जब यह निःशंकितपना आपके अन्दर आ जायेगा तब आपके अंदर निःकांक्षित अंग भी आ जायेगा।

भगवान् के पुण्य गुणों की स्मृति से हमारी कर्म कालिमा धुलती है।

निःकांक्षित अंग का मतलब–जब भगवान को इन चीजों से कोई प्रयोजन ही नहीं है तो फिर भगवान से वो चीजें क्यों चाहें? अगर भगवान ने यह सब रखा होता तो वह हमको देते और आप धन, पैसा, पुत्र–पुत्री, व्यापार, शादी–विवाह यह सब चीजें ही मांगेंगे और इन सब चीजों को भगवान ने छोड़ दिया। लेकिन पूजा करते हुए हमारी दृष्टि में कहीं न कहीं यह भाव आ जाता है।

आप नहीं भी चाहोगे तो आप के अन्दर भाव आ जायेगा। आप अपने मन से पूछ लेना। पूछने की जरूरत ही क्या है, महाराज हमें सब पता है। जैसे भगवान के दर्शन करने कहीं पहुँचते हैं, आपके मन में यह भाव आ जायेगा और यह भाव आते ही समझ लेना हमारे अन्दर एक विपरीत श्रद्धान की परिणति चल रही है। अभी हमें भगवान की वीतरागता का श्रद्धान नहीं है, हम कहेंगे जरूर भगवान वीतराग हैं, सर्वज्ञ हैं लेकिन वो सभी हमारी श्रद्धा में नहीं उतरा। जब श्रद्धा में उतर जायेगा तब हमें भगवान की पूजा में यह प्रयोजन नहीं रहेंगे। जब यह प्रयोजन नहीं रहेंगे कि शनिवार आ गया है तो मुनिसुव्रतनाथ भगवान के पास चलें, यह भी तो एक प्रयोजन है। शनिवार को ही मुनिसुव्रतनाथ में कोई ऊर्जा प्रकट हो जाती है क्या? भगवान की प्रतिमा में शनिवार को कोई स्फूर्ति आ जाती है क्या? शनिवार को भगवान सुव्रतनाथ की पूजा करने से अधिक फल देते हैं क्या? यह सब विचार तुम्हारे दिमाग में भरे पड़े हैं और तुम वही विचार दूसरों को भी दे देते हो।

जब तुम चलोगे तो अपनी बाइक पर दूसरे दोस्त को भी बिठा लेते हो, चल वहाँ चल रहे हैं, मुनिसुव्रतनाथ बाबा के यहाँ। कहीं भी हो वहाँ चलेंगे, तुम उसको भी साथ बिठा लोगे, उसको भी ले चलोगे और उसके अन्दर भी धारणा बिठा दोगे। देख! आज अपन सुव्रतनाथ की पूजा करके आये ना इसलिए तो यह ग्राहक बरसों से पट नहीं रहा था। आज यह पट गया जैसे ही यह भाव आपके अंदर आया आपका मिथ्या श्रद्धान दृढ़ होता चला गया। समीचीन परिणति तो कहीं दूर है। वहीं पर आपको कर्म का बंध भी हो सकता है और मुक्ति भी मिल सकती है। वही भगवान वीतराग होकर के भी आपको श्रद्धान में वीतरागता नहीं लाने दे रहा है। वही भगवान अगर सामने वीतराग है तो आपकी श्रद्धा में भी वीतरागता आ सकती है अगर आप स्वयं परिणमन करायें अपने को तो यहीं से धर्म शुरू होता है।

स्वयं स्वभाव आप्ति, अपने स्वभाव की प्राप्ति के लिए स्वयं पुरुषार्थ करना और स्वयं अपने मन को मरोड़ो, धर्म यही से शुरू होगा। जो अभी तक सोचते आये हो, उसमें धर्म नहीं है और जो अभी तक नहीं सोचा हो और उसमें जो आपको दिक्कत हो रही है उसी की सोच में वही धर्म है। जो अभी तक करते आये हो, जो श्रद्धा बना रखी है, उसमें धर्म नहीं है और जो आपको बनाने में दिक्कत हो रही है और जैसे ही आप ऐसी श्रद्धा बनाओगे आपको लगेगा कि अरे! हमारे सामने तो कुछ है ही नहीं। भगवान वीतराग हैं उनसे तो कुछ माँगना ही नहीं, वो कुछ देते नहीं तो हमारा काम कैसे चलेगा, हमारी दुनियाँ कैसे बसेगी, हमारे सामने जो हमारी इच्छाएँ है, उनकी पूर्ति कैसे होगी। आपके सामने एकदम ऐसा वातावरण तैयार हो जायेगा। लेकिन उसमें भी आपके अन्दर से

एक प्रकाश की किरण फूटेगी, यह सब तो अपने आप चल रहा है, चलेगा, तूने कब सोचा कि मैं गर्भ से निकलूँगा। अपनी सोच से निकला था। तूने कब सोचा था, मैं गर्भ से निकल कर इतना बड़ा हो जाऊँगा, बूढ़ा हो जाऊँगा, क्या तेरे सोचने से तू बूढ़ा होता चला जायेगा। तूने कब सोचा था कि मैं इसी परिवार में आके जन्म लूँगा, इसी बिजोलिया में आकर जन्म लूँगी, तेरी सोच से जन्म लिया तेरी सोच से होता क्या है? ये तो बता तू।

अपनी सोच से बहुत कुछ नहीं होता और जो कुछ भी हमारे सामने चल रहा है वो बिना सोचे समझे चल रहा है। लेकिन जब भी हमें अपनी श्रद्धा की परिणति को संभालनी होगी तो हमें अपनी सोच को भी इस तरह से बाँधना होगा। हमें अब कुछ सोचना नहीं हैं, भगवान वीतराग की आराधना करनी है और वीतराग की आराधना प्रार्थना वीतरागता की प्राप्ति के लिए करना है और उस प्राप्ति में जो व्यवधान बन रहा है 'मोह' तो हे भगवन्! हम आपसे यही प्रार्थना करते हैं, मेरे इस मोह का नाश भी आप ही कर दो। मेरे अन्दर श्रद्धा की समीचीन परिणति भी आप ही पैदा करा दो क्योंकि यह काम भी आपकी ही पूजा से होगा, आप के ही दर्शन से होगा, यह काम कोई और दूसरा कराने वाला नहीं है। यह परिणति आपके अंदर आ जायेगी समझ लेना यह जन्म आपके लिए सफल हो जायेगा। अगर यह परिणति आपको इस चातुर्मास में बन गई तो समझ लेना कि चातुर्मास भी सफल हो जायेगा, और कुछ नहीं है कराने को ना यहाँ पर। आपको ना कोई पैसा देना है और ना यहाँ कोई पैसा मिलने वाला है। धन, वैभव, इन सबसे दूर ज्ञान की सम्पत्ति की प्राप्ति करो, अपने स्वरूप की प्राप्ति करो और जो तुम्हें उस ज्ञान स्वरूप की प्राप्ति करने में आनन्द आयेगा, उससे जो तुम्हारी जन्म-जन्म की प्यास मिटेगी, वह प्यास किसी और पदार्थ से मिटने वाली नहीं है। इसलिए आचार्य कहते हैं–हे परमात्मा भगवन्! आपको नमस्कार तो कर रहा हूँ लेकिन आपका स्वरूप ज्ञान स्वरूप है और मैं उसी ज्ञान स्वरूप की प्राप्ति के लिए ही आपको नमस्कार कर रहा हूँ और कोई मेरी इच्छा नहीं है। जब हम जिनको नमस्कार कर रहे हैं तो हमें भी उनके गुणों की ही प्राप्ति करने की भावना होनी चाहिए। कोई आदमी ज्योतिष विद्या सीखता है कि उसे आगे ज्योतिषी बनना है। कोई आयुर्वेद सीखता है, उसकी इच्छा में होगा उसे दवाई बाँटना है। कोई मंत्र विद्या सीखता है क्योंकि उसे भी मंत्रों का प्रयोग करना अच्छा लगता है। कोई आदमी धनुर्विद्या सीखता है क्योंकि उसे धनुष-बाण चलाने में Interest (रुचि) है। कोई आदमी क्रिकेट खेलना सीखता है क्योंकि बाद में उसे धोनी बनना है, तेंडुलकर बनना है। इसलिए जो जिस प्रकार की इच्छा करता है वह उसी प्रकार की विद्या सीखता है और उसी प्रकार का अभ्यास करता है। आप बताओ आप कौन सा अभ्यास कर रहे हो? आपको भी कुछ सीखना है। आपको यहाँ पर वही वीतरागता की विद्या सिखाई जायेगी, जिसके माध्यम से आपके अन्दर यह ललक पैदा हो जाये कि मैं भी अपनी आत्मा को परमात्मा बना सकता हूँ। पाषाण के परमात्मा तो बहुत बनते देखे हैं अपनी आत्मा को परमात्मा बनाने की प्रक्रिया इस जन्म में शुरू कर दो किसी

न किसी जन्म में पूरी हो जायेगी, शुरू तो कर दो, शुरुआत ही कठिन है। जैसे शुरुआत हो गई वैसे वो काम अधूरा छूटता नहीं है। पहले यह पहचान लेना कठिन है। हमारे ऊपर कर्म रूपी पत्थर पड़े हैं, हमारी आत्मा पर हमारी बुद्धि पर, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय कर्मों के इन पत्थर को हमें हटाना है अपने पुरुषार्थ से तो हमें भगवान के सामने किसी भी प्रकार की कोई आकांक्षा नहीं करना। उन्हीं गुणों की प्राप्ति की भावना करना कि हे भगवन्! जैसे आप अनन्तज्ञान, सुख, दर्शन, वीर्य शक्तियों से सम्पन्न है, ऐसी शक्तियाँ हमारे अन्दर प्रकट होवें। ऐसी ज्ञान की शक्ति है भगवान के पास लेकिन वो शक्ति तुम्हें देंगे नहीं आप कहोगे कैसे भगवान हैं? उनके पास सब कुछ है वह उनको जो प्रकट हुआ है, जो प्राप्त हुआ है, वो अपनी उन शक्तियों को भी नहीं देंगे। वो शक्तियाँ भी खुद को प्राप्त करनी होगी अगर भगवान तुम्हें दे सकते होते तो भगवान कब के सब किसी को वे देकर के उद्धार कर करके निकालते रहते यह लिखने की जरूरत नहीं पड़ती, 'स्वयंस्वभावाप्ति'।

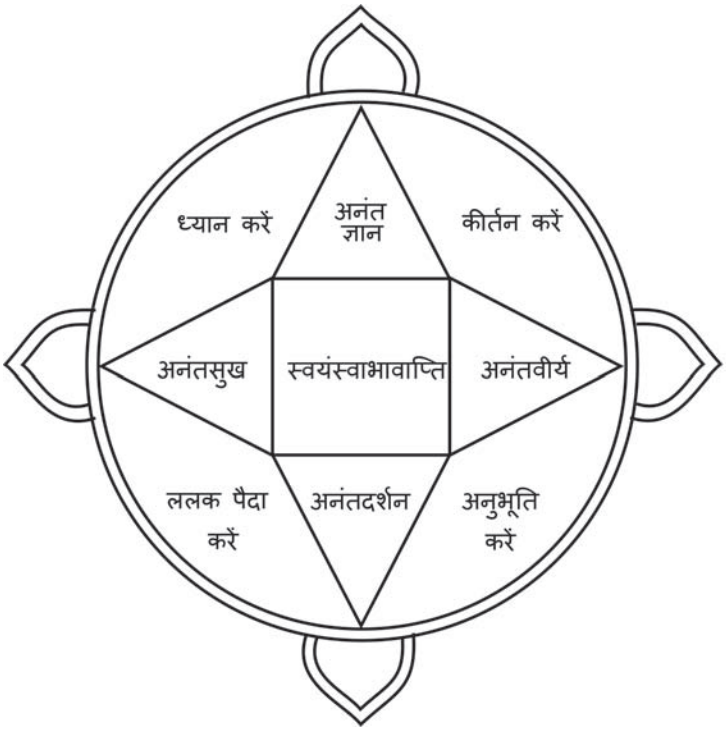

स्वयं ही अपने अन्दर उन शक्तियों को प्रकट करना है, जैसी भगवान ने स्वयं अपने अन्दर शक्तियाँ प्रकट की हैं। स्वयं प्रकट की हुई शक्तियों से ही स्वयं को आनन्द की अनुभूति होगी। दूसरे के द्वारा दिया गया कुछ होता है तो वह आनन्द बहुत देर तक टिकता नहीं है। वह जैसे आता है, वैसे छूट जाता है, इसलिए एक भावना पक्की कर लो कि हमें स्वयं में स्वयं की प्राप्ति करनी है और उस प्राप्ति के लिए ध्यान और कीर्तन करो। ललक पैदा करो, अनुभूति करो।

ज्ञान की प्राप्ति एवं अपने स्वरूप की प्राप्ति को लक्ष्य बनायें।

स्वरूपोपलब्धि का दृष्टांत

2

योग्योपादानयोगेन दृषदः स्वर्णता मता।
द्रव्यादिस्वादिसम्पत्ता वात्मनोऽप्यात्मतामता॥

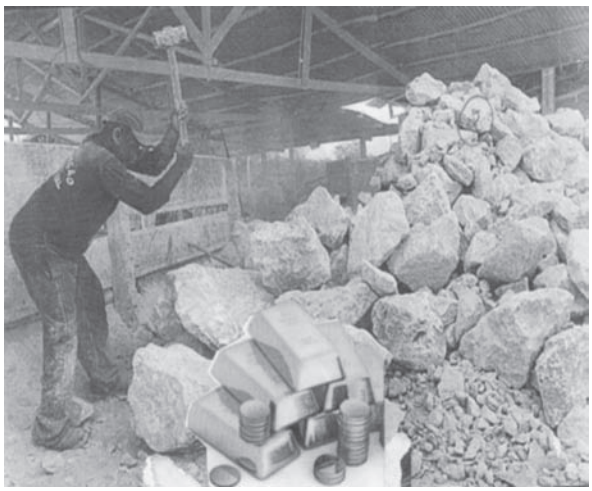

अन्वयार्थ–(योग्योपादानयोगेन) योग्य उपादान के मिलने से **(दृषदः)** जैसे स्वर्णपाषाण की **(स्वर्णता मता)** स्वर्णरूपता मानी गई है, उसी तरह **(द्रव्यादिस्वादिसम्पत्तौ)** सुद्रव्य, सुक्षेत्र, सुकाल आदि कारण रूप सामग्री के मिल जाने पर **(आत्मनः अपि)** संसारी आत्मा की भी **(आत्मता)** शुद्ध आत्म स्वरूप की प्राप्ति होना **(मता)** माना गया है।

- ☞ **भगवत्ता प्रकट करना**
- ☞ **उपादान की योग्यता**
- ☞ **सम्यग्दर्शन प्राप्ति के उपाय**

कल आपको बताया था कि भगवान कैसे होते हैं? और उन भगवान को हम नमस्कार करते हैं तो उसका क्या प्रयोजन होता है? संज्ञान स्वरूप, सम्पूर्ण ज्ञान स्वरूप भगवान को नमस्कार करके उन्हीं के जैसे उस ज्ञान स्वरूप की प्राप्ति के लिए उन्हें नमस्कार किया गया। यह भी कहा गया कि वह भगवान अब सभी कर्मों के अभाव से अपने स्वभाव को प्राप्त कर चुके है। भगवान को अपने स्वभाव की प्राप्ति हुई, वह भगवान स्वयं बने, यह भी आपको बताया था और जब भगवान स्वयं बनते हैं तो एक प्रश्न सामने आता है कि क्या कोई स्वयं भी भगवान बन सकता है? कुछ उदाहरण के माध्यम से जब तक हम किसी बात को नहीं समझते हैं तब तक वह बात हमारे जहन में बहुत भीतर तक नहीं जाती इसलिए आचार्य पूज्यपाद महाराज ने एक उदाहरण के माध्यम से हमको समझाने का प्रयास किया है कि ऐसा भी संभावित है कि कोई भी व्यक्ति भगवान स्वयं ही बन जाता है। एक उदाहरण महाराज यहाँ दे रहे हैं कि जिस तरह से 'दृषद्' कहते हैं एक स्वर्ण पाषाण को, जिसमें स्वर्ण छिपा रहता है और उसमें से स्वर्ण निकालने की एक प्रक्रिया होती है। जो भी extra material होता है, उसको हटाकर उस स्वर्ण को जब बाहर निकाला जाता है, तो उसे कहा जाता है कि अब उसमें स्वर्णपना आ गया है, 'दृषद स्वर्णता मता' जो दृषद माने एक सामान्य स्वर्ण पाषाण है वह भी स्वर्णपने को प्राप्त हो जाता है और वह स्वर्ण जिस तरीके से बन जाता है, उसी प्रकार से हमारी आत्मा भी परमात्मा बन जाती है। आचार्यों ने कहा है– भगवान की वाणी में कहा गया है कि जैसी हमारी आत्मा है वैसी ही भगवान की आत्मा है और अगर उसमें कोई अंतर है तो वह अंतर इतना ही समझना जैसे स्वर्ण और पाषाण में अंतर होता है। इसे हम इस ढंग से समझ नहीं सकते कि जो भगवान है वही मैं हूँ। God is myself & myself is God. अगर यह दोनों चीजें हमारे साथ में हैं तो यह किस तरह से हैं both are same like ore and gold यह दोनों चीजें एक जैसी हैं। जैसा भगवान वैसा मैं, जैसा मैं वैसा भगवान्। लेकिन किस तरह से एक स्वर्ण पाषाण जिसमें कुछ extra material उसके साथ में जुड़ा है और वह स्वर्ण जिसमें कुछ भी extra नहीं है pure है फिर भी अंतर क्यों पड़ जाता है, इसको भी समझने के लिए differentiate between their mode. Mode कहते हैं उनकी पर्यायों को। उनकी पर्यायों में अंतर दिखाई देता है। अगर उस अंतर को कुछ और स्पष्ट करना है तो one is pure-other is impure. स्वर्ण पाषाण में स्वर्ण है। उस स्वर्ण पाषाण को ही हम स्वर्ण भी कह देते हैं कि भाई यह सोना है। जब कभी कोई उस पाषाण को लेकर स्वर्णकार के पास पहुँचता है तो वह यह नहीं कहता कि यह पत्थर है। वह कहेगा यह सोना है और इसमें से तुम्हें सोना निकालना है इसे स्वर्ण के रूप में प्रकट करना है। स्वर्ण ही स्वर्ण रह जाये, सोना ही सोना रह जाये बाकी इसमें कुछ ना बचे क्योंकि उसमें जब वो कह रहा है कि यह सोना ही है फिर उसमें सोना निकालना क्या? जैसे हमने आप से कहा कि आप ही भगवान हो तो फिर भगवान क्या है? जब हमने आप से कह दिया आप स्वयं में ही भगवान हैं, तो

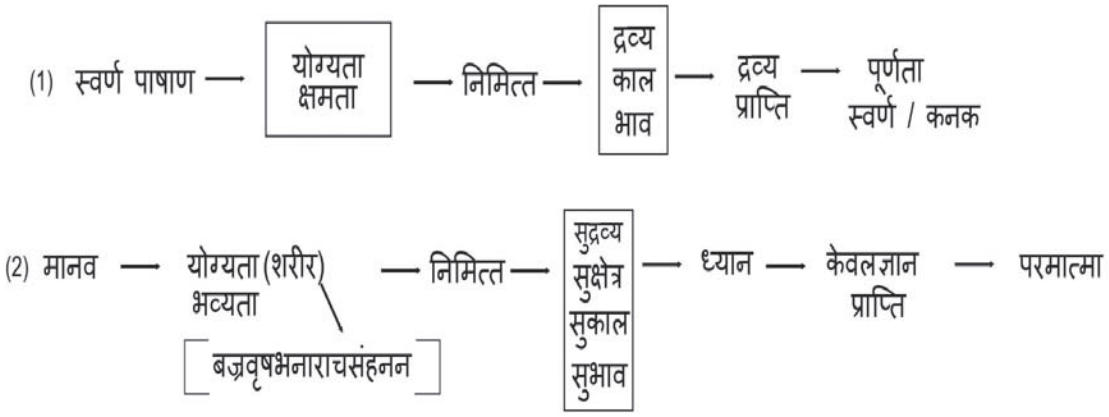

जब आप स्वयं में ही भगवान हैं तो फिर अब भगवत्ता को प्राप्त करना क्या? तो एक चीज ध्यान रखना one is pure & other is impure. एक अभी impure state में है और एक को pure state में पहुँचने पर सोना कहा जाता है। उस पाषाण को भी जो अभी सामने रखा है उसे हम सोना कह सकते हैं लेकिन यह एक व्यवहार है। अभी वस्तुतः वह सोना नहीं है। सोना प्राप्त करने की उसके अंदर शक्ति है, उसमें से स्वर्ण निकल सकता है। निकलेगा तो उसी में से निकलेगा किसी और में से नहीं निकलेगा। इसलिए यहाँ पर आचार्यों ने बहुत अच्छी बात कही कि 'योग्योपादानयोगेन' योग्य उपादान के निमित्त से स्वर्ण पाषाण में जिस तरह से स्वर्णपने की प्राप्ति हो जाती है उसी तरह से द्रव्य आदि उचित निमित्त मिल जाने पर यह आत्मा भी परमात्मापने को प्राप्त हो जाती है। अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कथन है यह 'योग्य उपादान योगेन'। उपादान सब जानते हैं, उपादान का अर्थ होता है कि जिसमें कार्य रूप से परिणत होने की क्षमता रहती है। उस द्रव्य को, पदार्थ को उपादान कहा जाता है और वह उपादान योग्य होना चाहिए। योग्य कब होता है? जब वह उस कार्यरूप में परिणत होने को तैयार हो तब वह योग्य कहलायेगा और उससे पहले अयोग्य कहलायेगा।

भगवत्ता प्रकट करना

मान लो उस स्वर्ण पाषाण में से स्वर्ण निकलने की योग्यता है लेकिन वह किसी खान में दबा हो तो वह अयोग्य है, जब तक उसको कोई खान से नहीं निकाल लेता है और निकालकर के उसको किसी उचित स्वर्णकार के हाथ में नहीं पहुँचा देता है तब तक वह स्वर्ण पाषाण योग्य होते हुए भी अयोग्य कहलाता है। कोई भी जीव या आत्मा जो भव्यता शक्ति को धारण किये हुए है, भव्यपने की शक्ति उसके अंदर है, देखा जाये तो योग्य है लेकिन योग्य होते हुए भी वह तब तक अयोग्य है जब तक कि उसके अंदर उस रूप को परिणमन करने की योग्यता के योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव नहीं आ जाते हैं। इसलिए कहा गया है 'द्रव्यादिस्वादिसम्पत्ता' जो द्रव्य आदि हैं

स्वर्ण पाषाण में से स्वर्ण निकालना यानि स्वयं में भगवत्ता को प्रकट करना।

उनकी हमें प्राप्ति हो जाये, और इनकी हमारे अंदर पूर्णता हो जाये तो हमारा आत्मा परमात्मा बन जायेगा। योग्य उपादान के साथ में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव भी योग्य मिलने चाहिए। आत्मा के अंदर उपादान शक्ति योग्य होते हुए भी जब तक उचित द्रव्य, क्षेत्र आदि उसे नहीं मिलेगा तब तक उसके अंदर आत्मा से परमात्मा बनने की योग्यता प्रकट नहीं होगी। अब उसके लिए उचित द्रव्य क्या है? तो आचार्य कहते हैं कि आपकी आत्मा के अंदर आत्मा से परमात्मा बनने की योग्यता होने पर भी जब तक आपका शरीर (यह द्रव्य है) यह द्रव्य शरीर उचित नहीं मिलेगा तब तक आपके अंदर केवलज्ञान प्राप्त करने की योग्यता नहीं आयेगी और उस द्रव्य को प्राप्त किये बिना आपके अंदर वह ध्यान करने की योग्यता भी नहीं आयेगी जो ध्यान केवलज्ञान का कारण है इसलिए 'वज्रवृषभनाराचसंहनन' यह आवश्यक है। शरीर के उस संहनन के अभाव में आपको उस Quality का ध्यान नहीं हो सकता जो ध्यान आपके अंदर केवलज्ञान की प्राप्ति करा दे। यह द्रव्य है, यह द्रव्य भी आपको चाहिए। अन्तरंग में उपादान की योग्यता होने के साथ-साथ जब इस प्रकार से आपको द्रव्य की प्राप्ति हो जाये तो वह द्रव्य आपको आत्मा से परमात्मा बनाने में सहायक हो जायेगा। क्षेत्र भी योग्य होना चाहिए। मान लो आप इस क्षेत्र पर बैठे है, इस बिजौलिया क्षेत्र की बात नहीं कर रहा हूँ, वह क्षेत्र जहाँ से केवलज्ञानी निरंतर होते रहते हैं और जिस क्षेत्र में केवलज्ञान को भी उत्पन्न करने की योग्यता, क्षमता रहती है ऐसे वह क्षेत्र होते हैं। विदेह आदि क्षेत्र भी इसी प्रकार के क्षेत्र है जिन क्षेत्रों में रहने वाले साधु परमेष्ठी कभी भी केवलज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। उनके अंदर योग्यता होगी अगर उन्हें वज्रवृषभनाराचसंहनन मिला हुआ है, उपादान उनका योग्य है, भव्य है तो वह नियम से केवलज्ञान की प्राप्ति उस क्षेत्र से कर लेते हैं, इसलिए क्षेत्र का भी महत्व है। यह निमित्त है इन निमित्तों के माध्यम से भी परिणामों में योग्यता आ जाती है, परिणामों में विशुद्धि उत्पन्न होती है और उन्हीं से अपने अंदर योग्यता बढ़ती है तो आचार्य कहते हैं अच्छा क्षेत्र भी होना चाहिए सूखा माने अच्छा। अब जब तक वह विदेह क्षेत्र नहीं है, तब तक ऐसा ही विदेह क्षेत्र ठीक है, ऐसे क्षेत्र में पहुँचने के बाद आपके परिणामों में शांति आ जाती है। आपको याद आ जाये कि यहाँ पर भी कभी भगवान का आगमन हुआ था, इस बात को याद करने से आपके अंदर बहुत विशुद्धि बढ़ती है कि यहाँ पर कभी भगवान का आगमन हुआ है या भगवान ने कभी तपस्या की है। यह बड़ी शिलाएँ जो हमको दिखाई दे रही है यहाँ पर भी कभी बड़े योगी लोग बैठे हो और हम इसी स्थान पर थोड़ी देर बैठ जाये तो यह क्षेत्र भी आपके लिए बहुत कुछ सुख शांति का कारण बन जाता है। इसलिए भी लोग अपने घरों को छोड़ क्षेत्रों की तरफ दौड़ते हैं और हर इलाके में कही न कही एक क्षेत्र तो होना ही चाहिए जहाँ पर जैन लोग रहते हैं। हम तो यह कहते हैं कि जहाँ जैनों के बड़े गाँव बसे हों, वहाँ एक न एक क्षेत्र तो कहीं न कहीं होना चाहिए। जहाँ पर उन गाँवों को छोड़कर, क्षेत्रों पर जाकर वह धर्म ध्यान करेंगे। धर्म-ध्यान अपने गाँव में नहीं कर सकेंगे, यह

जब तक उचित द्रव्य, क्षेत्र नहीं मिलेगा तब तक परमात्मा बनने की योग्यता प्रकट नहीं होगी।

क्षेत्र की विशुद्धि का प्रभाव होता है। क्षेत्र पर एकान्त एवं शान्त वातावरण होने से हमारे दिमाग में अपने आप ऊर्जा भर देते हैं वह अन्यत्र स्थानों पर नहीं हो पाता है। इसलिए आचार्यों ने मुनि महाराजों के लिए भी कहा है कि अगर तुम्हें कभी भी क्षेत्र व शहर इन दोनों में से कहीं रहने को मिले तो तुम सबसे पहले क्षेत्र पर रहने की सोचना क्योंकि वहाँ पर रहने से अपने आप विशुद्धि बढ़ती है। यहाँ तक कहा है कि अगर मुनि महाराज हैं, समाधि भी लेना है तो समाधि के लिए भी पहले स्थान देखना। हमें कहा जाता है समाधि कहाँ लेनी है यह भी देखा जाता है, समाधि लेने के लिए क्षेत्र चुना जाता है और उस क्षेत्र में अगर सिद्धक्षेत्र हो तो उस क्षेत्र की सबसे पहले प्राथमिकता है। सबसे पहली Choice सिद्धक्षेत्र की, अगर सिद्ध क्षेत्र न मिले तो अतिशय क्षेत्र ठीक, अगर अतिशय क्षेत्र न मिले तो अपनी पसंद का जहाँ आप रहना पसंद करते हो जैसा भी योग्य हो बस एकान्त होना चाहिए, साधना के अनुकूल होना चाहिए। कहा गया है कि आपको चुनना पड़े तो पहले अपनी साधना के लिए सिद्धक्षेत्र को चुनना इसलिए लोग सम्मेदशिखर, चम्पापुरी, पावापुरी, गिरनार इन क्षेत्रों की ओर सबसे पहले भागते हैं।

क्षेत्रों पर जहाँ से पहले भगवान मोक्ष गये है वहाँ से अनेक-अनेक मुनिराज भी मोक्ष गये हैं। आप जब भी पढ़ते होगे सम्मेदशिखर की जयमाला को तो एक-एक टोंक से करोड़ों-करोड़ों महाराज मोक्ष गये। आपको लगता होगा की यह सब मुनि महाराज यहाँ पर आकर क्यों बैठ जाते हैं, जहाँ से तीर्थंकर निर्वाण को प्राप्त हुए हैं। उनके उस शरीर की वर्गणाएँ वहाँ फैली रहती है और उस स्थान पर पहुँचने के बाद आपके चित्त की शांति व विशुद्धि बढ़ जाती है। इसलिए उस सम्मेदशिखरजी से करोड़ों-करोड़ों मुनिराज एक-एक टोंक से मोक्ष जाते रहे हैं चतुर्थ काल में, इसी कारण से सम्मेदशिखरजी सिद्धक्षेत्र, अतिशय क्षेत्र पवित्र कहलाते हैं। उन क्षेत्रों की विशुद्धि होती है इसलिए आचार्य कहते हैं कि अपने परिणामों को अच्छा रखना है तो अच्छे क्षेत्र की व्यवस्था करना। क्षेत्र पर व्यवस्था तुम्हें बनानी हो तो पहले से ही प्रबंध कर लेना।

उपादान की योग्यता :

कुछ क्षेत्र ऐसे भी होते हैं जहाँ गृहस्थ लोग पहले से अपनी व्यवस्था बना लेते हैं कि हम अपने जीवन का अंतिम समय ऐसे ही क्षेत्रों पर आकर गुजारना चाहेंगे। अतः हमें अपनी पूँजी से वहाँ एक कमरा लेना पड़े तो अपने नाम से बनवा लें ताकि एक कमरा हमें उस क्षेत्र पर रहने के लिए मिल जाये। ऐसे भी विचार इसलिए रखे जाते हैं क्योंकि उससे अपने उपादान में योग्यता बढ़ती है, इसलिए यहाँ कहा गया है 'द्रव्यादिस्वादिसम्पत्ता' द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव जब यह अनुकूल हमारे लिए मिल जाते हैं। सुआदि माने होता है सु जिसके प्रारंभ में लगा हो जैसे सुद्रव्य, सुक्षेत्र, सुकाल। काल भी अच्छा होना चाहिए। अब पंचमकाल चल रहा है तो पंचमकाल में चतुर्थ काल तो आ नहीं सकता लेकिन मुक्ति की प्राप्ति करने के लिए, केवलज्ञान की प्राप्ति करने के लिए चतुर्थकाल ही

चाहिए तभी अपने अंदर वह योग्यता आती है और केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। जब तक चतुर्थकाल नहीं है पंचमकाल चल रहा है तो उस पंचमकाल में भी उचित समय देखा जाता है। इस काल में भी हम अपनी साधना करें। हम अपने उपादान को योग्य बनायें तो उसमें भी चाहे कोई भी मौसम हो। मौसम तो यही रहेंगे सर्दी, गर्मी, बरसात, इन्हीं मौसमों में, इन्हीं ऋतुओं में आपको रह करके अपने अन्दर ऐसे परिणाम संजोना कि हर काल में हमारे अंदर धर्म की भावना बनी रहे और हमारे अंदर धर्म प्राप्त करने की योग्यता बढ़ती रहे। इस काल में भी और काल आ जाते हैं जिसे हम बोलते हैं संधिकाल सुबह का, संधिकाल दोपहर का, संधिकाल शाम का। संधिकाल इन कालों में भी विशेष रूप से आप अपने संकल्पों विकल्पों को छोड़कर बैठेंगे तो इन समयों में भी आपका मन लगेगा। आपके चित्त के परिणाम शान्त हो जायेंगे। यह काल का प्रभाव है आप देखेंगे की सुबह-सुबह उठकर के जब भोर हुई तो 5:30 बजे से 6 बजे का समय रहता है, जब उजाला होने वाला होता है उस समय आप सामायिक करने बैठेंगे, ध्यान करने बैठेंगे तो आपका मन अच्छा लगेगा। वह समय जब निकल जायेगा तो आप दोपहर या शाम को बैठेंगे तो इतना मन नहीं लगेगा। आपका मन अनेक कारणों से दिनभर के संकल्पों-विकल्पों से थका हुआ रहेगा। वही मन सुबह-सुबह आप बैठोगे शान्ति के साथ में तब आपको अच्छा लगेगा कि अरे इतनी जल्दी सुबह पूरी हो गई, ऐसा लगेगा अभी तो हम और बैठते हैं और बैठने की इच्छा आपके अन्दर आ जायेगी। यह भी उस काल का प्रभाव रहता है। इसलिए आचार्य पूज्यपाद महाराज ने जो लिखा है कि अपने उपादान की योग्यता बनाये रखने के लिए द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इनकी संयोजना करो कि किस समय हमारे परिणाम अच्छे होते हैं, किस क्षेत्र में हमारे परिणाम अच्छे बनते हैं, किस द्रव्य के संयोजन से हमारे परिणाम अच्छे होते हैं यह सब संयोजना बनाकर रखो। भावों की योग्यता जब बन जायेगी तो आपके उपादान की योग्यता पूरी हो जायेगी, जब तक यह योग्यता पूरी नहीं होती तब तक अधूरे में भी काम चलाना पड़ेगा। उस योग्यता को गिराना नहीं है, जितनी योग्यता आप ने प्राप्त कर ली वह भी बनी रहे, यह भी बहुत बड़ी बात है और वह योग्यता और भी बढ़ती चली जाये तो और भी अच्छी बात है लेकिन वह योग्यता जितनी मिली है उससे आप गिरे नहीं। उस अपूर्ण योग्यता के साथ आप को जितना हो सके उतना करना है, यह सोचकर नहीं बैठना है कि अभी तो पंचमकाल चल रहा है, अभी इसमें न केवलज्ञान होता है न मोक्ष होता है, न आत्मा का ध्यान होता है, कुछ नहीं होता है, इसलिए खाओ, पियो और मौज करो।

यह सोचकर बैठोगे तो कुछ होने वाला नहीं है। आचार्य कहते हैं इस योग्यता में भी आप बहुत कुछ कर सकते हो। जिस समय जिस जीव को जो निमित्त मिल जाये वह उसी से अपनी योग्यता को बढ़ा सकता है। आप तो बहुत योग्य हैं। ऐसे भी व्यक्ति हैं जिनमें इतनी भी योग्यता न हो कि वह सभा में आकर बैठ सके तो वह भी अपनी योग्यता को बढ़ा सकता है। ऐसे भी लोग

अपने उपादान की योग्यता बनाये रखने के लिए द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव संयोजना करो।

होते हैं जिन्हें धर्म का ज्ञान नहीं होता, जिन्हें पता नहीं होता धर्म क्या होता है? लेकिन फिर भी वह कभी ऐसे निमित्त प्राप्त कर लेते हैं तो उनके अन्दर ऐसी योग्यता आ जाती है कि वह आपसे पहले योग्य बन सकता है। आप कल्पना करो कि एक व्यक्ति कोई आपके सामने ऐसा बैठा हो, जो निम्न जाति का हो, उसके अंदर कोई ज्ञान नहीं हो, उसके अंदर किसी भी प्रकार की कोई शुद्धियाँ नहीं हो और वह व्यक्ति कभी किसी मुनि महाराज के पास आकर उनसे कोई भी संकल्प लेकर अपने अंदर धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न कर ले और चुपचाप यहाँ से चला जाये। वह केवल उस एक संकल्प के माध्यम से अपना जीवन गुजार लें तो वह उस संकल्प के माध्यम से स्वर्ग में चला जायेगा। उस स्वर्ग से आने के बाद ऐसा मनुष्य बन जायेगा कि उसी भव से केवलज्ञान प्राप्त करने की योग्यता उसके अन्दर आ जायेगी और हो सकता है कि आप अटक जायें। आप इन सब निमित्तों के बाद भी इतनी श्रद्धा उत्पन्न नहीं कर पाये जितनी श्रद्धा एक अयोग्य व्यक्ति प्राप्त कर सकता है।

राजा श्रेणिक का नाम आपने सुना है यह उनके पूर्व भव की कहानी है। उनके पूर्व भव की जो घटना है वह इसी अयोग्यता से शुरू होती है। अपने दो भव पहले वह एक भील की पर्याय में था और भील की पर्याय में रहकर वह सब प्रकार की हिंसा करता था, व्यसन करता था और सब प्रकार के पाप करता था। उस पर्याय में उसे जंगल में एक मुनि महाराज मिल गये और वह उनके पास बैठ गया। मुनि महाराज ने उसे देखकर कहा 'तुझे धर्म लाभ हो'। अब वह भील आदमी ठहरा उसे यह ही नहीं पता कि धर्म क्या है? धर्म का लाभ क्या है? कहने लगा महाराज हमें तो यह ही नहीं पता कि धर्म क्या होता है और धर्म से क्या लाभ होता है? हम तो जो कर रहे हैं उसी को धर्म समझते हैं। महाराज ने उससे कहा कि तेरे लिये धर्म यह है कि तू किसी भी प्रकार का माँस- मदिरा खाना-पीना छोड़ दे। इसी से तुझे धर्म की, पुण्य की प्राप्ति होगी और इसी धर्म के माध्यम से तुझे धर्म लाभ होगा उससे तुझे स्वर्ग आदि की प्राप्ति होगी, उससे बाद में तेरे कल्याण का मार्ग बन जायेगा। जब उसने यह सुना महाराज ने कहा है कि माँस खाना छोड़ दो, मदिरा सेवन करना छोड़ दो। वह कहने लगा महाराज इस भील की पर्याय में तो माँस व मदिरा छूट ही नहीं सकता। अब महाराज सोचते हैं भव्य दिख रहा है, कम से कम बैठकर बात कर रहा है। जंगली होकर के भी कुछ योग्यता तो है और इसी योग्यता को परख कर महाराज ने उससे कहा कि कोई बात नहीं तू जीवन भर के लिए माँस व मदिरा नहीं छोड़ सकता तो बता तूने कभी कौवे का माँस खाया क्या? पूछा उससे तो वह बोला उसकी तो कभी भी जरूरत नहीं पड़ी और इसको तो मैंने कभी नहीं खाया है और आप कहो तो कभी नहीं खाऊँगा। महाराज ने कहा तू यही एक संकल्प ले ले कि मैं अपने जीवन में कभी कौवे का माँस नहीं खाऊँगा और उसने सहजता से स्वीकार कर लिया। उसने वह नियम ले लिया। महाराज से कहा- बिल्कुल पक्की बात अगर इतने से हमारा कल्याण हो जाये, हमें धर्म की प्राप्ति हो जाये तो हम तैयार हैं। सबकी योग्यता अलग-अलग होती है आप यह मत

सोचना कि उस भील के लिए जो यह कहा जा रहा है यह तुम्हारे लिए भी हो जाये। तुम्हारी योग्यता अलग है और उस भील की योग्यता अलग है। वह जिस कुल, जिस जाति में पैदा हुआ है वहाँ उसके लिए वह चीज बहुत बड़ी है और तुम जिस कुल में पैदा हुए हो तो वह चीज तुम्हें निम्नता की ओर ले जाती है और उस चीज से आपको मुक्ति मिल गई तो वह कोई बड़ी बात नहीं है।

आप का आचरण वह होना चाहिए कि जो है उससे और अधिक होना और वह भील भी वही कर रहा है। उसने कभी माँस का त्याग नहीं किया था लेकिन मुनि महाराज के कहने पर उसने कौवे का माँस छोड़ दिया। जब योग्यता हो जाती है तो योग्य होने पर कक्षा में बैठा जाता है और जब बैठा जाता है तो उस कक्षा की परीक्षा आपको देनी पड़ती है। जैसे किसी भी क्लास में प्रवेश पाने के लिए एक योग्यता देखी जाती है, इससे पहले की मार्कशीट क्या थी, योग्यता क्या थी। इससे पहले आपकी Qualification क्या थी, तब जाकर नया admission आपको कहीं मिलता है तो उस कक्षा में बैठ गये तो आपकी परीक्षा भी होती है आपको पढ़ाया भी जाता है। इसी तरह जब कोई व्रती व्रत या संकल्प लेता है तो उसके लिए भी परीक्षा की कोई घड़ी आ जाती है, और उस भील के जीवन में भी ऐसा ही एक योग बन गया। वह बीमार पड़ गया और जब उसे देखने के लिए कोई वैद्य आया तो उस वैद्य ने उसके लिए कहा कि यह कौवे का माँस खाने से ठीक होगा। अब वह भील सोचता है कि यह कौन सी बात हो गई, यह कौन सा रोग है जो उसी से ठीक होगा। वह कहता है कि मैं कौवे का माँस नहीं खाऊँगा। अब उसके घर-परिवार के लोग उसे समझाते हैं और यहाँ तक कि उसका बहनोई उसको दूसरे गाँव यह समझाने के लिए आता है कि मेरा साला बीमार पड़ा है और वह इतनी सी जिद पर अड़ा पड़ा है कि मैं कौवे का माँस नहीं खाऊँगा। अगर दवाई के रूप में खा ले तो क्या बिगड़ जायेगा, कम से कम जिन्दगी बच जायेगी। यह काम है हमारे रिश्तेदारों के जब भी आप कोई व्रत या संकल्प लेते हो या थोड़ा सा धर्म करते हो तो सबसे ज्यादा पीड़ा उन्हें होगी जिनसे तुम्हें काम नहीं पड़ता है। उन्हें कभी पता भी पड़ गया कि आप किसी धर्म मार्ग पर जाने वाले हो या किसी महाराज से व्रत लेने वाले हो तो सबसे पहले वही रोकने के लिये सामने आ जायेंगे। इसलिए आचार्य कहते हैं कि परमार्थ से अपने सारे सगे सम्बन्धी दुश्मन हैं। व्यवहार से तो ये सब सगे सम्बन्धी हैं लेकिन परमार्थ से मतलब अगर हम वास्तव में देखें, निश्चय से देखें, आत्म कल्याण की दृष्टि से देखें, तो यह सब हमारे लिए दुश्मन हैं। वह बहनोई उसका उस गाँव से चलता है तो रास्ते में उसे वृक्ष के नीचे खड़ी हुई एक स्त्री मिलती है। वह स्त्री रो रही होती है तो वह बहनोई उससे पूछता है कि आप क्यों रो रही हो? वह स्त्री कहती है कि मैं इस वन की यक्षिणी देवी हूँ और तुम जिस व्यक्ति को माँस खिलाने के लिये जा रहे हो और वह व्यक्ति माँस नहीं खायेगा तो उस पुण्य व धर्म के कारण से मेरा पति हो जायेगा क्योंकि वह यक्ष देव बन जायेगा।

परमार्थ से अपने सारे सगे सम्बन्ध दुश्मन हैं।

यह मैंने अपने ज्ञान से जाना है कि वह मेरा पति बनने वाला है, मेरा देव होगा लेकिन तुम उसको माँस खिलाने जा रहे हो और अगर उसने माँस खा लिया तो वह नियम से तिर्यंच गति को प्राप्त होगा। इसलिए मैं रो रही हूँ कि तुम मेरे होने वाले पति से मेरा विछोह कराने के लिए जा रहे हो। उस यक्षिणी की बात सुनकर बहनोई ने सोचा अब घर से निकल तो गये हैं चलते हैं, देखते हैं क्या होता है? वह अपने साले के पास में पहुँचा। उस भील के पास पहुँचा जिसका नाम था 'खादिरशाह' (भील का नाम)। उस भील के पास पहुँच कर कहता है क्यों भाई क्यों इतनी जिद कर रहे हो, अपना स्वास्थ्य संभालो, बीमार पड़े हो, वैद्य ने कहा है कि माँस खाना है थोड़ा सा उस माँस को खाने से अगर तुम्हारा जीवन बच जाये तो क्या फर्क पड़ता है? लेकिन वह भील कहता है कि मैं मर जाऊँगा पर माँस नहीं खाऊँगा क्योंकि मैंने मुनिमहाराज से नियम लिया है। मैंने अपने जीवन में कोई धर्म किया ही नहीं मुझे मालूम नहीं धर्म क्या होता है? लेकिन महाराज ने कहा यही तेरे लिए धर्म है तो अगर यह धर्म भी छूट गया तो मेरे पास कुछ भी धर्म नहीं रहेगा इसलिए मैं यह माँस नहीं खाऊँगा। जब उसका बहनोई यह देख लेता है कि यह अपनी बात पर दृढ़ है तो वह उसे यह घटना सुनाता है। देखो! बहुत अच्छी बात है, आप ऐसा नहीं कर रहे हो और इसके पुण्य से जो आपको सद्गति मिलेगी, वह हमें पहले से ही मालूम है। जब हम रास्ते से आ रहे थे तो हमें एक यक्षिणी देवी मिली और उस देवी ने मुझसे कहा की इस माँस के त्याग के कारण से वह भील मेरा पति होने वाला है। तुम जाकर के उस देवी के देव बनोगे यह निश्चित हो चुका है, इसलिए तुमने बहुत अच्छा सोचा है। धर्म के फल से सद्गति की प्राप्ति होती है। जब उसने यह सुन लिया तो वह सोचता है कि एक कौवे के माँस का त्याग करने से हम किसी यक्ष के रूप में देव बन सकते हैं यक्ष देव बन सकते हैं तो हमसे पहले मुनि महाराज ने कहा था कि तू माँस का त्याग कर दे किसी प्रकार का माँस न खाना, किसी भी प्रकार की शराब मत पीना और उस समय हमने अपनी अयोग्यता व्यक्त कर दी तो महाराज ने उस समय हमारे लिए एक छोटा सा नियम दिला दिया। उसके मन में विचार आता है मर तो रहा हूँ, मरना तो निश्चित है ही तो मरने से पहले महाराज की बात भी पूरी हो जाये कि अब माँस व मदिरा जीवन में नहीं लेना और उसने अपने मन में ही संकल्प ले लिया। अब मैं कभी भी मांस व मदिरा नहीं खाऊँगा जितना जीवन बचा है उसमें मेरा सबका त्याग। उसने सब प्रकार के मांस व शराब का त्याग कर दिया और जब वह इस संकल्प के साथ मरण को प्राप्त हुआ तो सौधर्म स्वर्ग में जाकर देव बना, वह स्वर्ग के देवों में भवनत्रिक देवों से भी ऊपर का देव बन गया। यह यक्ष-यक्षिणी तो व्यंतर देवों में होते हैं।

चार प्रकार के देवो में जो व्यंतर देव होते हैं उनके भेदों में यक्ष-यक्षिणी होते हैं। वह सौधर्म स्वर्ग में जाकर अच्छा वाला देव बन गया। इधर जब उसका मरण हो गया और उसकी सब क्रिया-करम करके बहनोई उसी रास्ते से जाता है तो वही स्त्री उसे फिर मिल जाती है, यक्षिणी और वह

धर्म के फल से सद्गति की प्राप्ति होती है।

रो रही होती है। अब वह बहनोई पूछता है क्यों तुम्हारा पति वह यक्ष के रूप में बनना था बन गया। वह यक्षिणी कहती है वह यक्ष बनता तो मेरा पति बनता लेकिन तुमने जाकर उसको समझाया और उसकी समझ में आ गया तो उसने अपने लिए और बढ़कर के त्याग कर दिया और वह सौधर्म स्वर्ग में जाकर देव बन गया। इसे कहते हैं त्याग व संकल्प की महिमा और इसे कहते हैं अयोग्य से योग्य बनने की प्रक्रिया।

एक भील अगली पर्याय में सौधर्म स्वर्ग का देव बन गया। जब उसकी 1-2 सागर की आयु पूरी हो गई थी तो वह यहाँ आकर राजा श्रेणिक के रूप में भगवान महावीर स्वामी का शिष्य बनता है। एक भील अगले जन्म में राजा श्रेणिक बन गया व इस पर्याय में वह भगवान महावीर के समक्ष रहा। मुख्य श्रोता के रूप में रहा और वहाँ पर उसको जो सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्ति हुई उसी काल में उसी क्षेत्र से उसी भगवान के समक्ष उसको क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त हो गया।

एक बार सम्यक्त्व की प्राप्ति होना अर्थात् अनंत संसार को तोड़ देना और नियम से उस आत्मा को मोक्ष की प्राप्ति होगी। अयोग्य तो अनादिकाल से रहा लेकिन योग्य बनने के लिए एक निमित्त काम आ गया। वह निमित्त कौन सा, गुरु महाराज, मुनि महाराज का। उसके लिए एक निमित्त इतना बड़ा काम आ गया कि उसकी सारी अयोग्यता छूट गई और वह दूसरे भव में सौधर्म स्वर्ग में देव बन गया और तीसरे भव में राजा श्रेणिक बन गया और श्रेणिक की पर्याय में उसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो गई। शास्त्रों में लिखा है वह क्षायिक सम्यग्दृष्टि बन चुका था। लेकिन उस श्रेणिक की पर्याय में उसे जब तक भगवान महावीर न मिले तब तक उससे पहले उसने अनेक प्रकार के पाप किये क्योंकि वह पुण्य के उदय से राजा बन गया था लेकिन धर्म तो उसको पता ही नहीं था। जब तक उसे भगवान महावीर न मिले तब तक उससे वह पाप हो गया, उस पाप से उसे नरक आयु का बंध हो गया और उस नरक आयु के कारण से वह आज वर्तमान में पहले नरक में रह रहा है और वह सम्यग्दृष्टि जीव है, वहाँ पर भी क्षायिक सम्यग्दृष्टि है। भगवान महावीर स्वामी के समवशरण में इतनी विशुद्धि उसने बढ़ा ली कि तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर लिया। अभी अवसर्पिणी काल चल रहा है जब उत्सर्पिणी काल शुरू होगा जिसमें तीर्थंकर बनना शुरू होंगे। सबसे पहला तीर्थंकर बनने का सौभाग्य भी उस श्रेणिक के जीव को ही मिलेगा। पहले से सब निश्चित है। वह महापद्म नाम के पहले तीर्थंकर बनेंगे। वह योग्यता उसके अन्दर इस ढंग से आ गई कि उसने अपने जीवन को इन 3-4 भवों में ही तीर्थंकर बनने के योग्य बना लिया। इसे कहते हैं 'योग्योपादानयोगेन' ऐसा योग्य उपादान, उपादान अर्थात् अपनी आत्मा की शक्ति ऐसी बन जायें। जितने भी हमें अच्छे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मिल रहे हैं उसे कम मत समझो। एक भील का उदाहरण मैंने इसलिए दिया कि एक भील जंगल में रहकर भी अपने उपादान में इतनी योग्यता ला सकता है। आप तो बहुत बड़े-बड़े काम कर रहे हो और उन बड़े कामों से आपकी श्रद्धा बढ़ती

एक बार सम्यक्त्व की प्राप्ति होने का अर्थ है अनंत संसार को तोड़ देना।

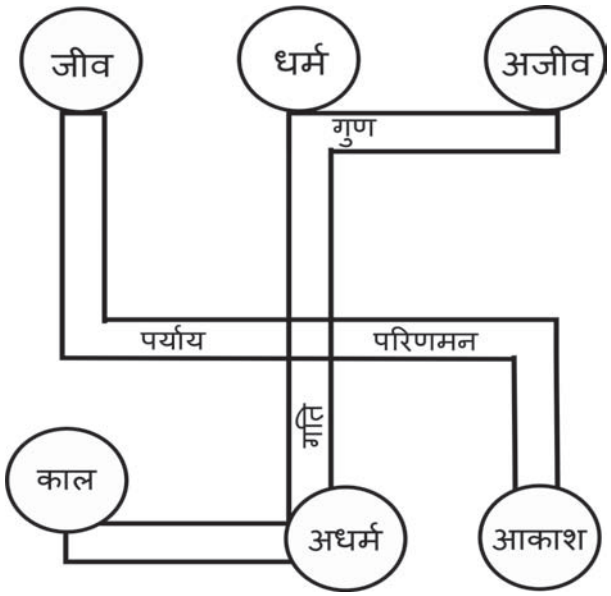

रहनी चाहिए। सम्यग्दर्शन के प्राप्त करने के भाव निरन्तर बने रहने चाहिए। ऐसा नहीं होना चाहिए कि यह तो हमारा कुल धर्म है इसलिए हम ऐसा कर रहे हैं करना है ऐसा नहीं। उस धर्म को करने से हमारे अन्दर धर्म की श्रद्धा बढ़ती रहेगी और श्रद्धा ही वह तत्त्व है जो हमारे अंदर की योग्यता एकदम से बढ़ा देगा और अयोग्य को भी योग्य बना देता है। आपमें श्रद्धा पैदा हो जाये, सब कुछ करने के बाद भी श्रद्धा हो जाये जरूरी नहीं है और इसीलिए यह अयोग्यता बनी रहती है। योग्यता के लिए केवल एक चीज है तो वह है श्रद्धान पैदा हो जाना कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का मार्ग यही है। आत्मा के कल्याण का मार्ग यही है। ऐसी श्रद्धा आपको किसी भी रूप में प्राप्त हो सकती है।

सम्यग्दर्शन प्राप्ति के उपाय :

आचार्यों ने कहा है कि सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के दस तरीके है। दस तरीके से सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति हो सकती है। सबसे पहला तरीका- आज्ञा सम्यक्त्व। आज्ञा सम्यक्त्व का मतलब है कि जो भगवान ने कहा है, जिनवाणी में जो लिखा है भले ही वह हमें समझ नहीं आ रहा है, दिखाई नहीं दे रहा है फिर भी हमने उसे स्वीकार कर लिया है कि भगवन् आपने जो कहा है वह अन्यथा नहीं है। मान लो भगवान ने कहा है कि छः द्रव्य होते हैं, आप छः द्रव्य पर श्रद्धा रख लेना, आप कहोगे कि हम श्रद्धा कैसे कर ले हमें छः द्रव्य दिखाई तो नहीं देते। ना हमें जीव, ना धर्म ना अधर्म, ना काल, ना आकाश द्रव्य दिखाई दे रहा है, सब अदृश्य द्रव्य है, इनके गुण हैं, पर्याय हैं, इनके परिणमन होते हैं। धर्म द्रव्य हमारे लिए गति में सहायक हो रहा है। अधर्म द्रव्य हमारे लिए ठहरने में सहायक हो रहा है कुछ समझ में तो आया नहीं। हमारी इच्छा होती है कि हम चले तो हम चलने लग जाते हैं धर्म द्रव्य कहाँ हमारे लिए सहायक हो रहा है लेकिन अगर जिनवाणी में लिखा है तो धर्म द्रव्य हमारे लिए चलने में सहायक है, अगर हमारा पैर भी हिल रहा है तो उसमें धर्म द्रव्य सहायक बन रहा है। हम यहाँ बैठे है तो अधर्म द्रव्य सहायक है हमारे बैठने में। क्योंकि यह ऐसे द्रव्य है जो हमारे लिए प्रेरित नहीं करते हैं उदासीन द्रव्य के रूप में कहे गये हैं लेकिन इनके बिना

भी जीव पुद्गलों की स्थिति नहीं बनती है। यह श्रद्धा का विषय बन गया है तो आचार्य कहते हैं आपके अंदर सम्यग्दर्शन केवल इतनी सी आज्ञा को स्वीकार करने से आ जायेगा। कुछ नहीं आता है तो केवल भगवान की बात मान लो आज्ञा स्वीकार कर लो।

आचार्य महाराज इसे कहते हैं कि बुदेलखंड में एक शब्द चलता है 'हओ'। जो कुछ कहा महाराज सुन लिया। 'हओ'। हओ कहना सीख लो। आचार्य महाराज भी जब हम शिष्यों को पढ़ाते थे तो कहते थे कुछ समझ में ना आये तो हओ कहना सीख लो। ज्यादा तर्क-वितर्क मत करो जब कभी हम उनसे ज्यादा पूछ लेते थे या बोलने लग जाते थे या गुरु महाराज से प्रश्न करते थे तो कहते थे हाथ जोड़कर हओ कहना सीख लो-जिनवाणी।

इसमें अपनी बुद्धि ज्यादा चलाने से कोई श्रद्धा नहीं बढ़ जायेगी। बुद्धि उतनी चलेगी जितनी हमारे अंदर बुद्धि चलाने की क्षमता होगी। यह तो उससे ऊपर की चीजें हैं, शास्त्रों में जो यह अदृश्य बातें लिखी हैं यह द्रव्य, गुण, पर्याय यह कहाँ हमको दिखते लेकिन जब हम थोड़ा सा अनुमान ज्ञान से सोचेंगे तो हमें सब मिलेगा। श्रद्धा की भावना से देखेंगे तो हमें सब समझ आयेगा। इसलिए हमें कहना पड़ता है जो आपने कहा वो सच है।

Judgement इसी रूप में दिये जाते हैं। जब किसी अदालत में किसी को खड़ा किया जाता है तो वह यही बात करता है इस गीता पर या पुराण पर हाथ रखकर कह रहा हूँ जो बोलूँगा सच बोलूँगा, सच के सिवाय कुछ नहीं बोलूँगा लेकिन उसका सच कहना उस जज के लिए हो रहा है। व्यक्ति जानता है कि इस कटघरे में हमको खड़ा करके जज सच कहलवाना चाह रहे हैं। इस सच को हम कहेंगे तब ही लोग हमारा विश्वास करेंगे। इसलिए वह वहाँ पर कसम खाता है सच बोलने की लेकिन वह वहाँ पर सच बोले जरूरी तो नहीं क्योंकि उसके अंदर अपराध की प्रवृत्ति बैठी है। आचार्य कहते हैं कि यहाँ पर जो भी कहा जा रहा है उसे स्वीकार कर अब तुझे और कुछ मानने की जरूरत नहीं है बस तू इतना सा स्वीकार कर ले।

जो हमारे सामने कहा जा रहा है या सुनने में आ रहा है वह भी सभी समझते हैं कि जो बोलेगा सच बोलेगा। लेकिन जब आपके सामने जिनवाणी कह रही है कि जो कुछ इसमें लिखा है सच है लेकिन आप नहीं मानते हैं तो आपके सम्यग्दर्शन प्रारम्भ होगा ही नहीं। इसे आचार्य ने सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का मार्ग बताया 'आज्ञासम्यग्दर्शन'। आज्ञा से आ जाओ आज्ञा स्वीकार कर लो। जो आज्ञा में आ जाये उसके लिए 'हओ' बोल दो बस। गुरुमहाराज ने कुछ कहा हओ स्वीकार कर लिया, अगर नहीं भी स्वीकार हो रहा है तो उनसे कह दो कि हमारे लिए यह दिक्कत है हम उस चीज को यूँ स्वीकार नहीं कर पायेंगे। लेकिन अगर वे कह दे नहीं तुम्हें स्वीकार करना ही है तो आपको स्वीकार करना ही पड़ेगा चाहे उसके लिए आपको अपनी जान भी क्यों न देनी पड़े लेकिन वह स्वीकार करना है इसी का नाम है 'आज्ञासम्यग्दर्शन'। यह आज्ञा है और इसी से सम्यग्दर्शन

होता है। छहढाला को कभी पढ़ो तो एक नई छहढाला बनी है उसमें जब भावलिंगी मुनि का स्वरूप आता है तो ''गुरु आगम आज्ञा का प्रबन्ध समकित जानो मत बनो अंध''। सम्यग्दर्शन किसे कहते

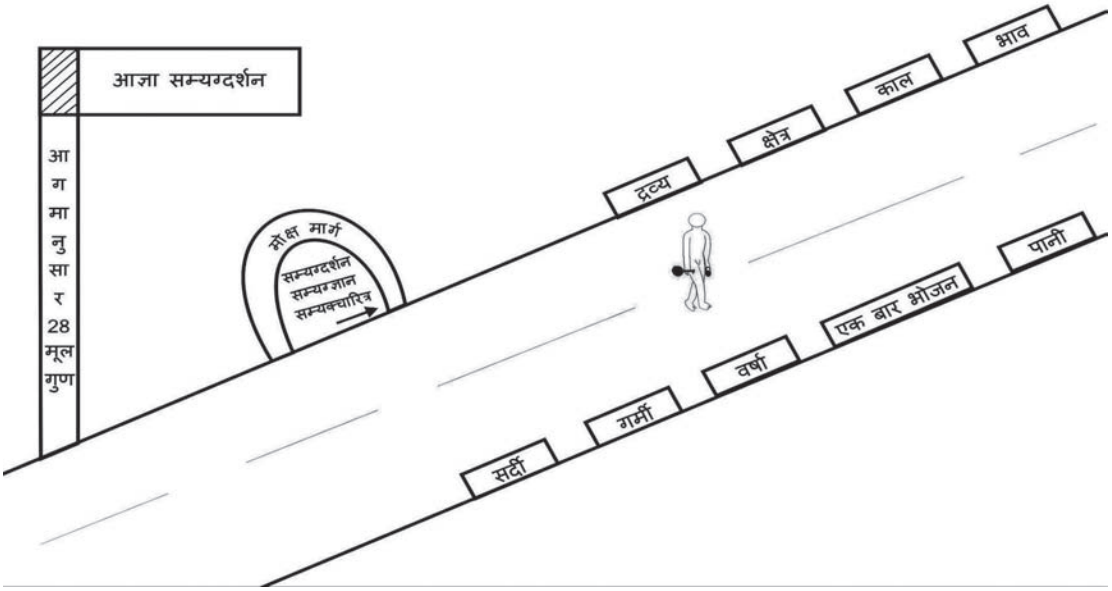

हैं? गुरु की आज्ञा से जो बँधा हुआ है, वह साधु सम्यग्दृष्टि है और जिसके अंदर सम्यग्दर्शन है वह भावलिंगी है। और कोई भावलिंगी पहचान नहीं है साधु की और कोई सम्यग्दर्शन की पहचान नहीं है। सबसे बड़ी चीज है गुरु की आज्ञा में बंधा होना चाहिए और आगम की आज्ञा में बंधा होना चाहिए। आगम में जैसा लिखा है वैसा ही करने वाला होना चाहिए। आगम में बहुत सी चीजें ऐसी हैं। प्रश्न-उत्तर सामने आ जाते हैं ऐसा क्यों ? इससे क्या होगा? कुछ हो या ना हो... तुझे करना तो वही है जो आगम में लिखा है। इतना अगर तेरा मन मान जाये तो इस मार्ग पर चलना। इन कक्षाओं में भर्ती होने के लिए प्रवेश form भरना, किसी गुरुके पास जाना और तेरी इतनी योग्यता ना बने तो दूर-दूर रहना। नमोस्तु कर लेना इसी से तेरा काम हो जायेगा लेकिन तूने ऐसा कर लिया उस क्लास में योग्यता प्राप्त कर ली। साधू बन गया, साधू बनने के बाद जो जिनवाणी में लिखा है वह ही समझ में नहीं आ रहा है तो तेरा सम्यग्दर्शन वहीं पर छूट जायेगा। एक अक्षर की भी अरुचि हो जाने पर सम्यग्दर्शन छूट जाता है। शास्त्र के जिनवाणी के एक अक्षर पर भी अश्रद्धान हो गया, श्रद्धान नहीं रहा तो आचार्य कहते हैं तेरा सम्यग्दर्शन छूट गया इतनी, बड़ी चीज है।

इसलिए जो आगम व गुरु की आज्ञा से बढ़ गया और उसी से अपने जीवन को चला रहा है तो उस जीव के लिए आचार्य कहते हैं यही सम्यग्दर्शन का सबसे बड़ा लक्षण है, आगम अनुसार चलो। आगम में लिखा है 28 मूलगुणों का पालन करना तो करना चाहे गर्मी हो, सर्दी हो, बरसात

गुरु की आज्ञा से जो बँधा हुआ है, वह साधु सम्यग्दृष्टि है।

हो। एक ही समय भोजन और पान तो वही करना है उसमें तर्क लगाने की जरूरत नहीं है कि महाराज पहले तो बड़े-बड़े संहनन वाले जीव होते थे।

चतुर्थ काल में तो बड़े-बड़े संहनन वाले जीव होते थे। आज के 100 बरस पहले भी आचार्य शान्तिसागर जैसे आचार्य हुए तो वह भी बड़े-बड़े संहनन के धारी हो गये। कितने महान उपवास करते रहे, हम तो आजकल के लोभी, भोगी, विलासी लोग हैं। तुम अपने आप को पहचान लो, अपनी परीक्षा कर लो इतनी क्षमता हो तो form भरना और नहीं है तो दूर से नमोस्तु करना लेकिन इस मार्ग पर आने के बाद और कोई ढील, मिलावट होने वाली नहीं है। चाहे वह चतुर्थ काल हो या पंचम काल 28 मूलगूण तो यही रहेंगे, चाहे हीन संहनन वाला हो इन 28 मूलगूणों में कोई कमी आने वाली नहीं है।

तुम इसमें कमी करने का भाव भी मत करना, चाहे सर्दी, गर्मी व बरसात हो हमेशा जो नियम बने है उन्हीं नियम में ढल कर चलना और पंचम काल के अंत तक यही नियम रहेंगे। आज जो संहनन है अगले 10 सालों में और कमी आयेगी लेकिन फिर भी साधू बनेंगे और इन्हीं संहननों के साथ 28 मूलगुणों का पालन करेंगे। आचार्य परमेष्ठी कहते हैं अगर वह आगम की इसी श्रद्धा के साथ करेंगे तो वह सम्यग्दृष्टि नियम से अगली पर्याय में स्वर्ग जाने के बाद अगले भव में फिर मोक्ष की प्राप्ति कर लेंगे। यह कहलाता है 'योग्योपादानयोगेन'। अपने उपादान को योग्य बनाते चलो और इसका योग बिठाओ। योग्य उपादान का योग बिठा लेना का मतलब जानते हो। जैसे हम बोलते हैं कोई संयोग बिठा लेना। जैसे आप अपने बेटे-बेटियों की कुंडली मिलाते हो योग बिठाते हो। योग बनाते हो। ऐसे अपने योग बनाओ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव योग। किन कारणों से हमारा उपादान योग्य बनता है या बनता चला जाये और इसमें भी हम दुनियाँ में कितना कुछ देख लें। ऐसे भी साधू दिख जाये जिनको देखकर आपकी श्रद्धा बिगड़ जाये वह भी देखना अनेक प्रकार के अपवाद देखना, वह भी दिख जाये और अनेक प्रकार के अपवाद देखने सुनने को मिल जाये तो भी अपनी श्रद्धा मत बिगाड़ना क्योंकि वह तुम्हारी योग्यता है, तुम क्या कर रहे हो? वह उनकी योग्यता है वह क्या कर रहे हैं? लेकिन तुम्हारी योग्यता क्या है? तुम अपने उपादान को योग्य बनाने के लिए ध्यान रखना कि इस पंचमकाल में भी हमें ऐसा कुछ दिख रहा है तो चतुर्थ काल में भी ऐसा होता था। लेकिन हमें कभी भी अपनी श्रद्धा को नहीं छोड़ना है और वह श्रद्धा जो समीचीन वीतराग देव, शास्त्र, गुरु के प्रति होनी चाहिए। वह हमारी श्रद्धा बनी रहेगी तो हमारे अंदर योग्यता बनी रहेगी। उस योग्यता से ही उपादान की योग्यता बढ़ती चली जायेगी और वह आत्मा समर्थ बनता चला जायेगा। अपने अंदर ऐसी शक्ति भी आती है कि अनेक प्रकार की बीमारियों, परेशानियों व अनेक प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों में भी लोग णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं करते-करते प्राण छोड़ देते हैं।

हमारी श्रद्धा बनी रहेगी तो हमारे अंदर योग्यता बनी रहेगी।

ऐसे गृहस्थों को भी देखना जो कुछ भी नहीं जानते लेकिन इतनी श्रद्धा रखते हैं कि मरते-मरते भी उनकी णमोकार मंत्र की श्रद्धा छूटती नहीं है। उनके परिणामों में वह चलता रहता है णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं। कुछ उनको इस तरह की भावना सुनने की इच्छा बनी रहती है और इसी प्रकार की इच्छा के परिणाम के साथ उनका मरण होता है तब वे नियम से ऐसे योग्य उपादान को प्राप्त कर लेते हैं। यह मत सोचना कि हमने रात्रि में भोजन करना छोड़ दिया तो बहुत बड़ा काम कर लिया। यह उपादान की कोई बहुत बड़ी योग्यता नहीं है और अगर रात्रि में भोजन कर रहे हो तो योग्यता और गिर गई है क्योंकि यह तो अपने जैन धर्म में जन्म लेने से ही था। यह कोई अलग से नियम देने की बात नहीं है कि रात्रि में भोजन नहीं करना बहुत बड़ा धर्म है। लेकिन आजकल तो यह भी बहुत बड़ी बात है। अगर आप का अभी भी रात्रि में भोजन हो रहा है तो सोचना आप अपने उपादान का क्या कर रहे हो। अयोग्य बना रहे हो। उसके मूल्य को गिरा रहे हो, उसके मूल्य को बढ़ाना है।

जो हमारे कुल के योग्य था उससे और बढ़कर के करना है। तब हमारे उपादान की योग्यता बढ़ेगी। हम जो खायें उस पर विचार करें ? कब खायें उस पर भी विचार करें ? और यह सब विचार आपके अंदर रहेंगे तो आपकी योग्यता बढ़ेगी।

ध्यान रखना एक भील के लिए जो एक संकल्प दिया गया वह आपके लिए किसी काम का नहीं है। अगर तुम चाहो कि महाराज आज से हम माँस व मदिरा का त्याग कर दें, हम भी ऐसे स्वर्ग में जायें, उसके बाद राजा बन जायें। उससे तुम्हें ऐसा कुछ नहीं मिलने वाला है। तुम्हें तो कुछ वह करना पड़ेगा जो तुम्हारी योग्यता में पहले से कुछ नहीं हो रहा हो उससे अच्छे से भी अच्छा करने की योग्यता तुम्हारे अंदर आयेगी तब तुम्हारे कल्याण का मार्ग बनेगा। इसलिए इस सूत्र को याद रखो।

योग्योपादानयोगेन, दृषदः स्वर्णता मता।
द्रव्यादिस्वादिसंपत्ता, वात्मनोऽप्यात्मता मता॥

आत्मा भी परमात्मा इसी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के योग से बन जाता है।

जब उपादान की योग्यता बढ़ेगी तभी कल्याण का मार्ग प्रशस्त होगा।

व्रतादिकों की कथंचित् सार्थकता

3

वरं व्रतैः पदं दैवं, नाव्रतैर्वत नारकम्।
छायातपस्थयोर्भेदः, प्रतिपालयतोर्महान् ॥

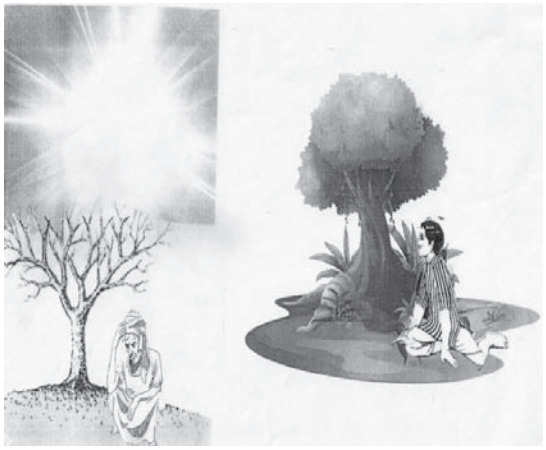

अन्वयार्थ–(व्रतैः) व्रतों के द्वारा **(दैवं पदं)** देवपद पाना **(वरं)** अच्छा है (किन्तु) **(वत)** खेद है! **(अव्रतैः)** अव्रतों के द्वारा **(नारकं)** नरक में उत्पन्न होना **(न)** अच्छा नहीं है क्योंकि **(छायातपस्थयोः)** छाया और धूप में स्थित व्यक्तियों के समान **(प्रतिपालयतोः)** प्रतीक्षारत पुरुषों में **(महान् भेदः)** बड़ा भारी अन्तर है ।

- ☞ **व्रतों से लाभ**
- ☞ **पुण्य और पाप**
- ☞ **हेतु स्वभाव**

पिछले दो श्लोकों में आपको बताया गया था कि भगवान ज्ञान स्वरूप हैं और उस ज्ञान स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति स्वयं अपनी आत्मा में भी हो सकती है। एक उदाहरण दिया था कि जैसे स्वर्ण पाषाण से स्वर्ण की प्राप्ति होती है ऐसे ही आप अपनी आत्मा से परमात्म तत्त्व की उत्पत्ति कर सकते हैं। जब यह बात कही गयी तो एक प्रश्न शायद आचार्य पूज्यपाद महाराज के मन में स्वयं आया होगा कि हमने यहाँ लिखा है स्वभाव की प्राप्ति स्वयं होती है और फिर दूसरी बार हमने श्लोक में लिखा कि जब उपादान योग्य होता है, द्रव्य, क्षेत्र आदि सुयोग्य मिल जाते हैं तो अपने आप यह आत्मा परमात्मा बन जाती है। आचार्य महाराज के मस्तिक में तुरन्त विचार आया होगा कि लोग यह न सोच लें कि जब अपना उपादान योग्य हो जायेगा तो हमें अपने आप परमात्म तत्त्व की प्राप्ति हो जायेगी और जब हमें सुद्रव्य, सुक्षेत्र, सुकाल और सुभाव मिलेंगे तभी परमात्म तत्त्व की उत्पत्ति होगी तो जब होगा तब देखा जायेगा। जिस समय ऐसे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव मिले, उपादान की योग्यता बने तब अपने आप हमें आत्मा से परमात्म तत्त्व की उत्पत्ति होगी। ऐसा कहने का अर्थ समझकर लोग सो ना जायें और उस निश्चिंतता में न ढल जाये कि जब हमारा उपादान योग्य होगा तो हमें अपने आप निमित्त की प्राप्ति हो जायेगी और जब अपने आप वह निमित्त मिल जायेंगे तो हम अपनी आत्मा को परमात्मा के रूप में ढाल लेंगे। जब तक आपको सुद्रव्य, सुक्षेत्र, सुकाल और सुभाव नहीं मिलते तब तक के लिए आपकी एक व्यवस्था यहाँ बनाई जा रही है। आचार्य महाराज के लिए यह चिन्ता हो गयी होगी कि आपके अंदर प्रमाद उत्पन्न न हो जाये या हमारी इस भाषा का आप कहीं दुरुपयोग नहीं कर लें क्योंकि आप तो वैसे ही मोही प्राणी है। आप अपनी बुद्धि से अर्थ का अनर्थ भी बहुत जल्दी लगा सकते हैं और बहुत जल्दी आप अपने हित की बात भी समझ सकते हैं। चाहे उस हित में आपका अहित ही क्यों न छिपा हो। यह सोचकर आचार्य महाराज ने यहाँ पर एक श्लोक लिखा है और वह तीसरे नम्बर का श्लोक है–

वरं व्रतैः पदं दैवं, नाव्रतैर्वत नारकम्।
छायातपस्थयोर्भेदः, प्रतिपालयतोर्महान् ॥

आचार्य कहते हैं जब तक आपको अपने योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की प्राप्ति न हो तब तक व्रतों के साथ जीवन जीना है क्योंकि व्रतों के साथ रहना श्रेष्ठ है। व्रतों के साथ रहने से आपको सुख सुविधाओं का वातावरण मिलता रहेगा और व्रतों के साथ रहने वाले जीव को देव पद की प्राप्ति होती है यह निश्चित है। जिस जीव ने व्रतों का पालन किया है वह जीव नियम से देवत्व को ही प्राप्त होता है, देवगति को ही प्राप्त होता है, इसलिए जब तक आपको चतुर्थकाल नहीं मिल जाये, जब तक आपको विदेह क्षेत्र न मिल जाये, जब तक आपको वज्रवृषभनाराचसंहनन आदि का द्रव्य न मिल जाये तब तक आप अपने लिए सुरक्षित मार्ग बना लें और उस सुरक्षित मार्ग के माध्यम से चलेंगे तो आपकी सुरक्षा बनी रहेगी। इस दुनियाँ में जो चौरासी लाख योनियाँ है उनमें

जब हमारा उपादान योग्य होगा तो हमें अपने आप निमित्त की प्राप्ति हो जायेगी?

भटकेंगे नहीं और एक सही रास्ते पर चलते हुए आपको हमेशा सही मार्ग का ज्ञान भी बना रहेगा। इसलिए आचार्यों ने कहा है कि व्रतों को अंगीकार कर लो क्योंकि व्रतों को अंगीकार करने से दो लाभ हैं। एक तो यह निश्चित हो जायेगा कि आप देव ही बनेंगे। पहला लाभ यह है कि जिसने व्रतों को धारण किया है वह मनुष्य, तिर्यंच, नारकी नहीं बनेगा वह देवगति में ही जन्म लेगा। दूसरी बात अगर आपने उन व्रतों को धारण किया है तो आपको यहाँ पर भी किसी प्रकार का दु:ख नहीं होगा और परलोक में भी आपको किसी प्रकार का कोई दु:ख नहीं होगा। यह बात अलग है कि आप सोचते होंगे कि महाराज व्रतों के धारण करने से तो कष्ट व दु:ख ही भोगना पड़ेगा। अगर वह दु:ख आपको लिए दु:ख के रूप में दिखाई दे रहा है तो आचार्य कहते हैं कि आपको समीचीन मार्ग के ऊपर श्रद्धान नहीं हुआ है। क्योंकि सबसे पहले आपके अन्दर जब सम्यग्दर्शन की बात आयेगी तो सम्यग्दृष्टि जीव को जो श्रद्धान होता है उस श्रद्धान में उसके लिए जीव आदि सात तत्त्वों का श्रद्धान हो जाता है। उन जीवादि सात तत्त्वों के श्रद्धान से यह भी ज्ञात हो जाता है कि आस्रव व बन्ध तत्त्व संसार के कारण और संवर व निर्जरा तत्त्व मोक्ष के कारण हैं। जब आपको यह श्रद्धान हो गया कि संवर व निर्जरा तत्त्व मोक्ष के कारण हैं तो आपको यह भी श्रद्धान में आ जायेगा कि वह संवर होगा कैसे, कर्मों का आत्मा आगमन कैसे रुकेगा और उस संवर तत्त्व की प्राप्ति करने के लिए हमें क्या करना पड़ेगा? हम विषय कषायों राग में उलझे रहेंगे तो क्या हमें संवर की प्राप्ति होगी? इन विषय कषायों को और रागादि परिणति को छोड़ने से ही संवर की प्राप्ति होगी। इसलिए जब आपको संवर तत्त्व का श्रद्धान होगा तब आपको यह भी श्रद्धान में आ जायेगा कि ''आतम के अहित विषय कषाय इनमें मेरी परिणति नहीं।'' यह विषय कषाय आत्मा का अहित करने वाले हैं और इनसे आत्मा का अहित हो रहा है तो हित किससे होगा। जिससे अहित हो रहा है उसी का विपरीत कारण आपको अपनाना पड़ेगा। अहित हो रहा है उसको छोड़ दो सुहित आपके सामने स्वयं उपलब्ध हो जायेगा। पाँच इंद्रियों के विषय और इनके माध्यम से बढ़ने वाली कषाय यह हमारे लिए अहित करने वाली हैं। जब यह अहित के रूप में आपको दिखाई दे जायेगी तो सुहित अपने आप आपको दिखाई दे जायेगा। विषय कषायों को छोड़ो, उसमें कमी करोगे तो अपने आप विरति के परिणाम उत्पन्न होंगे, इसी का नाम है व्रतों को धारण करना।

व्रतों से लाभ :

व्रतों का मतलब है अशुभ से विरति लेना और शुभ में प्रवृत्ति करना। जो हमारे लिए अहितकारी है और जिससे हमें पाप का बन्ध होता है उसको छोड़ना और जिससे हमारे लिए पुण्य मिले, हमारे हित में प्रवृत्ति हो उसको ग्रहण करना यह हमारे लिए व्रत के कारण हैं। अगर आपको जीवादि तत्त्व पर सही श्रद्धान हो गया तब आपको व्रतों को पालन करने में कभी भी कष्ट दिखाई नहीं देगा। सम्यग्दृष्टि जीव की एक भीतरी पहचान बता रहा हूँ आपको। सम्यग्दृष्टि जीव कभी भी

जिस जीव ने व्रतों का पालन किया है वह नियम से देवत्व को ही प्राप्त होता है।

यह नहीं सोचेगा कि व्रत लेने से मुझे कष्ट होगा इसलिए मैं व्रत ना धारण करूँ या कष्ट को नहीं सहन कर पाऊँगा इसीलिए मैं व्रत नहीं ले रहा हूँ। यह सम्यग्दृष्टि जीव कभी सोच ही नहीं सकता क्योंकि उसको मालूम है कि राग परिणति अहितकारक है जो हमें विषय कषायों में ले जा रही है। और इस राग परिणति को छोड़े बिना हम कभी भी अपनी आत्मा का हित नहीं कर सकते हैं और जब भी कभी यह राग परिणति छोड़ने की बात आयेगी तो यहीं से शुरु होगी कि आपको पाप और विषय कषाय की परिणति छोड़ना और सु परिणति को अपनाना पड़ेगा। क्योंकि पाप यही विषय कषाय है और जो हिंसा आदि पाँच पापों में आपकी परिणति हो रही है यह परिणति ही आप के अन्दर विषय कषायों को जन्म देती है। इसके माध्यम से आत्मा के अन्दर पाप का बन्ध होता है और इसी के माध्यम से आत्मा में अनेक प्रकार की तिर्यंच आदि गति के फलों की प्राप्ति होती है।

जब भी कभी आत्मा को अपने हित की बात करनी पड़ती है तो सबसे पहले उसे काम करना पड़ता है कि वह पापों से विरति ले, पापों से विरति लेने का मतलब यह नहीं है कि आप पाप को पुण्य की तरह छोड़ने के लिए तैयार हो जाये। आचार्य कहते हैं कि पहले आपको पापों से विरति लेनी है और पापों से विरति लेकर के जब आप पुण्य में प्रवृत्ति करेंगे तो वह पुण्य भी धर्म का काम करेगा और उस धर्म से भी आपको स्वर्ग आदि की प्राप्ति होगी। जब मोक्ष प्राप्ति के योग्य वातावरण तैयार हो जायेगा तो आप उस पुण्य को भी छोड़कर अपने आत्म ज्ञान में लीन होकर केवलज्ञान की प्राप्ति कर लेंगे। इसलिए पाप और पुण्य इन दोनों पदार्थों के बीच के भेद को समझना भी बहुत आवश्यक है। जब जीवादि सात तत्त्वों में पाप और पुण्य जुड़ जाते हैं तो वह नौ पदार्थ बन जाते हैं। नौ पदार्थों का श्रद्धान भी उसी ढंग से करना जैसे आप छः द्रव्य और सात तत्त्वों का श्रद्धान करते हैं। यह पुण्य और पाप दो पदार्थ उसमें जुड़ गये तो इसका मतलब है कि दोनों चीजें अलग-अलग हैं। पुण्य अलग पदार्थ है और पाप अलग पदार्थ है। जब हम पुण्य और पाप को अलग-अलग रूप में देखेंगे तो हमें पाप से छूटने का और पुण्य में प्रवृत्ति करने का मन बनेगा। जब हम पुण्य और पाप को एक रूप में देखेंगे तो जैसा पाप है वैसा ही पुण्य है। आप चाहे पुण्य में प्रवृत्ति करो या चाहे पाप में प्रवृत्ति करो। आपको अगर पाप और पुण्य एक ही हो गया तो फिर आपकी प्रवृत्ति या तो एक ज्ञान स्वभाव में हो जायेगी या फिर पूरे के पूरे अज्ञान स्वभाव में हो जायेगी। आपको लिए पुण्य और पाप दोनों ही पदार्थों का सही-सही ज्ञान होना चाहिए। जब तक पाप और पुण्य इन दोनों पदार्थों को हम सही-सही नहीं जानेंगे तब तक न तो हम व्यवहार में अच्छे आदमी बन पायेंगे न हम परमार्थ में कुछ कर पायेंगे।

आपको सही राह पर चलने को कहा जाये तो सबसे पहले अपने बेटे और बेटियों को समझाना पड़ेगा कि बेटा बिना वजह किसी जीव की हिंसा मत करना, झूठ मत बोलना, झूठ बोलने

सम्यग्दृष्टि यह नहीं सोचेगा कि व्रत लेने से कष्ट होगा इसलिए मैं व्रत धारण ना करूँ।

से लोगों को दु:ख उत्पन्न होता है और अपने अंदर भी दु:ख की प्राप्ति होती है। किसी भी वस्तु की चोरी मत करना, किसी की रखी हुई वस्तु को भी मत उठाना और पराई वस्तु को अपनी मत मानना यह तुम्हारे लिए बड़ा सुखद परिणाम देने वाला है। कभी भी अपनी विवाहिता के अलावा किसी दूसरे से सम्बन्ध मत बनाना यह तुम्हारे लिए ब्रह्मचर्य का परिणाम है। अपने लिए उतनी ही आवश्यक चीजें रखना जितनी अपने उपयोग में आने वाली हैं। अनावश्यक परिग्रह हमारे लिए पाप का कारण है और उसमें अगर आप ज्यादा लोभ करेंगे तो आपको अनेक प्रकार की परेशानियाँ उठानी पड़ेगी। यही आप अपने बेटे को सिखायेंगे कि बेटा सबसे पहले तू पाप से दूर हो जा और अपने पाप में कमी ला, अपने अन्दर हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह का भाव आता है तो इन सब भावों पर कण्ट्रोल रखना। इनमें कमी लाना और जब तुम्हारे अंदर यह भाव कम आयेंगे तो आप अपने आप देखोगे कि आप का बेटा अपने आप अच्छा बन गया है। भले ही उसके अंदर हिंसा का भाव आता हो लेकिन अगर कभी उसने हिंसा नहीं की है तो आप कहोगे कि मेरा बेटा किसी पर कभी भी हाथ नहीं उठाता है, बहुत अच्छा है। मेरा बेटा बिना वजह बहुत सारी चीजों की माँग नहीं करता है और किसी भी प्रकार की उसकी परिग्रह में लालसा नहीं है जो दे दो वही ले लेता है। जो उसको खेलने लिए दे दो खेल लेता है और जो उसको पहनने के लिए दे दो पहन लेता है, वह बड़ी-बड़ी माँग नहीं रखता है। आप कहोगे कि मेरा जैसा बेटा किसी को मिला ही नहीं होगा। आपने अपने बेटे को अच्छा तब कहा जब उसके अंदर इन पाँच पापों की कमी आयी। यह पाँच प्रकार के जो पाप हैं इनसे जितना जितना अपने आप को बचाओगे उतने ही आप एक अच्छे मनुष्य बनते चले जाओगे। पहले एक अच्छे मनुष्य बन जाओ फिर भगवान बनने की बात करेंगे। आप बहुत जल्दी करने लग जाते हो, एक अच्छे मनुष्य बन नहीं पाते हो उससे पहले ही कहने लग जाते हो–

यस्य स्वयं स्वभावाप्तिरभावे कृत्स्न्कर्मणः।
तस्मै संज्ञानरूपाय नमोस्तु परमात्मने॥इष्टोपदेश1।।

आपको लगता है कि बस मैं भी कर्म से रहित बिल्कुल अपने स्वभाव को उपलब्ध हो गया हूँ और मैं भी भगवान बन गया हूँ और महाराज कल आपने कह दिया था God is myself & myself is god भगवान ही मुझमें हैं और भगवान में मैं हूँ। जैसे ही यह आपके मन में आ जाता है तो आपका दिमाग तो ऊँचा उठ जाता है लेकिन आप वहीं के वहीं रहते हो। जब आपके दिमाग और काम में दूरियाँ ज्यादा बन जायेंगी तो परेशानियाँ खुद-ब-खुद बढ़ने लग जायेंगी। आप खुद अपने दिमाग से परेशान होंगे कि हम सुनकर के तो आते हैं बड़ी अच्छी-अच्छी बातें, जिस समय पर हम यहाँ पर बैठकर के सुनते हैं तो लगता है कि वास्तव में हम ही भगवान बन गये। ऐसा लगता है कि महाराज ने अर्हं का ध्यान कराते-कराते खुद हमें भगवान की अनुभूति करा दी और जैसे ही हम यहाँ से उठकर के बाहर जाते हैं तो हमें लगता है कि हम फिर वही इंसान और शैतान की तरह

दिख रहे हैं। जैसे सामने से एक आदमी आ रहा है उसको पहले की तरह ही देख रहे हैं, कार्य भी उसी तरह के चल रहे हैं।

पुण्य और पाप :

अपने अन्दर कोई परिवर्तन (change) अगर आयेगा तो बहुत जल्दी नहीं आता है और वह change आपके अन्दर आयेगा तो सबसे पहले आपको इसी प्रकार की पद्धति से चलना होगा जो आचार्य कहने वाले हैं कि देखो सबसे पहले आप अगर अपने अन्दर change ला सकते हो तो अपने पाप में थोड़ी सी कमी लाओ, पाप प्रवृत्तियों में कमी लाओ। अपने अन्दर के दया, हिंसा परिणाम को देखो कि हमारे अन्दर कब हिंसा और दया का परिणाम पैदा होता है। कितनी बार हम झूठ बोलने की, दूसरों की पड़ी हुई चीज को चुराने की भी इच्छा कर लेते हैं। यह बात अलग है कि इसलिए नहीं चुरा पाते कि लोग देख लेंगे या पकड़ लेंगे तो क्या होगा। जब आप किसी के घर में गये हो और अकेले हो और वहाँ पर सब कुछ रखा हो सामने मोबाईल व पैसे भी रखे हों तो आपकी नियत न बिगड़े। तब उस समय आप पहचान करना अपने मन की कि हमारे मन में चोरी का भाव आता है या मैं चोरी को पाप मानता हूँ या नहीं। ठीक उसी प्रकार आपके सामने कुशील के उपाय सामने हो और आपकी आँखें नीची हो जायें। आपके मन में विचार न आये तो आप जानना कि हमारे अन्दर इस पाप को पाप समझने की भावना है। जब आपके सामने परिग्रह, परिग्रह के रूप में पड़ा हो और आपको लगे कि नहीं यह नरक का कारण है, यह पाप का कारण है तब आप मन में विचार करना कि वास्तव में परिग्रह से मुझे अनासक्ति है। पाँचो पापों में कमी लाये बिना आप एक अच्छे इंसान नहीं बन सकते हैं। आप आज देखोगे कि जितने भी लोग परेशान मिलेंगे वो बड़े-बड़े तो होंगे लेकिन भीतर से भी बहुत परेशान होंगे। उन्होंने धन तो बहुत कमा लिया लेकिन उनके अंदर इतने बड़े-बड़े डर पड़े रहते हैं कि हमारे घर में कभी भी छापा पड़ सकता है, कभी भी हमारा भेद खुल सकता है, डाका पड़ सकता है, अनेक प्रकार के भय उनके अंदर पड़े रहते हैं और आपको बाहर से लगता है कि यह अमीर आदमी है। उसका दुःख भूल जाते हैं। जब भी आपके अन्दर पाप की प्रवृत्ति आयेगी आपको दुःख देगी और अगर आपके अन्दर पुण्य की प्रवृत्ति होगी तो आपको सुख मिलेगा। पुण्य से अगर आपने धन कमाया है तो वह आपको परेशान नहीं करेगा, पुण्य से जो आया है वह आपके अन्दर भय पैदा नहीं करेगा वह सुरक्षा देगा। चक्रवर्ती को कभी भय पैदा नहीं होता। पूरा का पूरा राज, रजवाड़ा सब खुला पड़ा रहता है लेकिन कभी भी उसकी नव निधियाँ चुराने वाला कोई नहीं है, चौदह रत्न चुराने वाला कोई नहीं है। उसके दास उसके लिए हैं, उसको कोई चुरा नहीं सकता है। उसे कभी ताला चाबी की जरूरत नहीं पड़ती है। पुण्य के उदय से जिसको जो मिलेगा उसे कोई ले भी नहीं जा सकता, उसको कोई चुरा भी नहीं सकता। इसलिए आपके घरों में ताले पड़े रहते हैं क्योंकि आपने पुण्य को जबरदस्ती खींचा है। तिजोरियाँ इसलिए गुप्त रूप में रखी रहती है कि आपने हर चीज को अपने पुण्य से नहीं कमाया अपितु पाप की प्रवृत्ति से उसको बढ़ाया है। अपने लिए सुरक्षा प्रदान की है कहीं कुछ ऐसा हो गया

तो समय पर हमारे लिए कुछ काम में आयेगा। आपने तरह-तरह से धन भी कमाया है लेकिन वह सब चीजें जो आपने अन्याय से की हैं वह आपके अन्दर जरूर भय पैदा करेंगी, डर पैदा करेंगी।

इसलिए आचार्य कहते हैं पहले पाप और पुण्य इन दो पदार्थों को चुन लो। पाप हमेशा नरक व तिर्यञ्च गति का कारण है और पुण्य देव आदि सुगति का कारण है। यदि धर्म की श्रद्धा के साथ वह पुण्य बढ़ता चला जाये तो वह पुण्य मोक्ष का कारण भी बन जाता है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि पुण्य और पाप दोनों पदार्थों को ठीक प्रकार से समझ लो। कहने में आता है कि पाप और पुण्य इन दोनों में अन्तर है भी और नहीं भी। आचार्य ने तो दोनों रूप में कथन किया है और इन दोनों की प्ररूपणायें अलग-अलग रूप में अलग-अलग हो जाती हैं। सिद्धान्त, आचरण एवं सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से देखोगे तो आपको पाप और पुण्य में भेद मिलेगा और जब आप केवल अध्यात्म की दृष्टि से देखोगे तो कहा जायेगा कि पाप और पुण्य दोनों एक है इनमें कोई भेद नहीं है। जब दोनों एक हैं तो आचार्यों ने कहा हेतु, कारण की उपेक्षा से दोनों एक हैं। पाप अशुभ भावों के कारण से उत्पन्न होगा और पुण्य शुभ भावों से उत्पन्न होगा। जब शुभ भावों से हुआ तो पुण्य हो गया और अशुभ भावों से हुआ तो पाप हो गया। कारण दोनों के अलग-अलग हो गये और स्वभाव दोनों का अलग-अलग है। पुण्य का स्वभाव आपके लिए सुख सामग्री उपलब्ध कराना, आपको सुखरूप फल देना, सातावेदनीय, शुभ आयु, शुभनाम सब पुण्य फल है। पाप का स्वभाव आपको दुखी बनाना, आपको कष्ट पहुँचाना, नरक आदि के दुःखों की प्राप्ति कराना है। पाप और पुण्य दोनों के कारण व स्वभाव अलग हैं और दोनों के अनुभव भी अलग हैं। पाप का अनुभव होगा तो आपके अन्दर दुख के परिणाम, क्लेश उत्पन्न होंगे और जब पुण्य का अनुभव होगा तो आप अपने आप को बड़ा प्रसन्न अनुभव करोगे एवं अपने अंदर विशुद्धि महसूस करोगे। यह जो पुण्य और पाप दोनों के अनुभव में अंतर आता है इससे भी दोनों में भेद दिखाई देता है। आचार्य कहते हैं कि इन दोनों के आश्रय में भी भेद है। पुण्य कथंचित शुभ भाव होने के कारण मोक्षमार्ग में आश्रय होता है और पाप तो सर्वथा अशुभ का कारण होने से यह बन्ध मार्ग का ही आश्रय करता है। इसलिए इनमें चार कारणों से भेद पड़ जाते हैं। हेतु, स्वभाव, अनुभव व आश्रय की अपेक्षा से पुण्य और पाप में भेद है और जब यह भेद सामने आ जाता है तो एक दृष्टि ऐसी भी आ जाती है जिसमें अभेद आ जाता है क्योंकि कोई भी वस्तु है वह भेद और अभेद दोनों रूप में है। आप जिस वस्तु में भेद डाल रहे हैं उसी वस्तु को आप अभेद दृष्टि से भी देख सकते हो। एक उदाहरण दिया गया है समयसार आदि ग्रंथों में कि किसी शूद्र के यहाँ पर दो बच्चों का जन्म हुआ और उसने दोनों बच्चों को एक स्थान पर ले जाकर छोड़ दिया। एक बच्चे को तो मदिरा पीने वाला चांडाल उठा करके ले गया। एक बच्चे को ब्राह्मण ले आया और उसने अपने धर्म, संस्कारों से उसका पालन पोषण किया। एक बच्चा आगे चलकर मदिरा पान करना, माँस खाना, हिंसा करना और सब प्रकार के पाप करना सीख गया। एक बच्चा जिसको कि एक ब्राह्मण पालने के लिए ले गया था, उसके

हेतु, स्वभाव, अनुभव व आश्रय की अपेक्षा से पुण्य और पाप में भेद है।

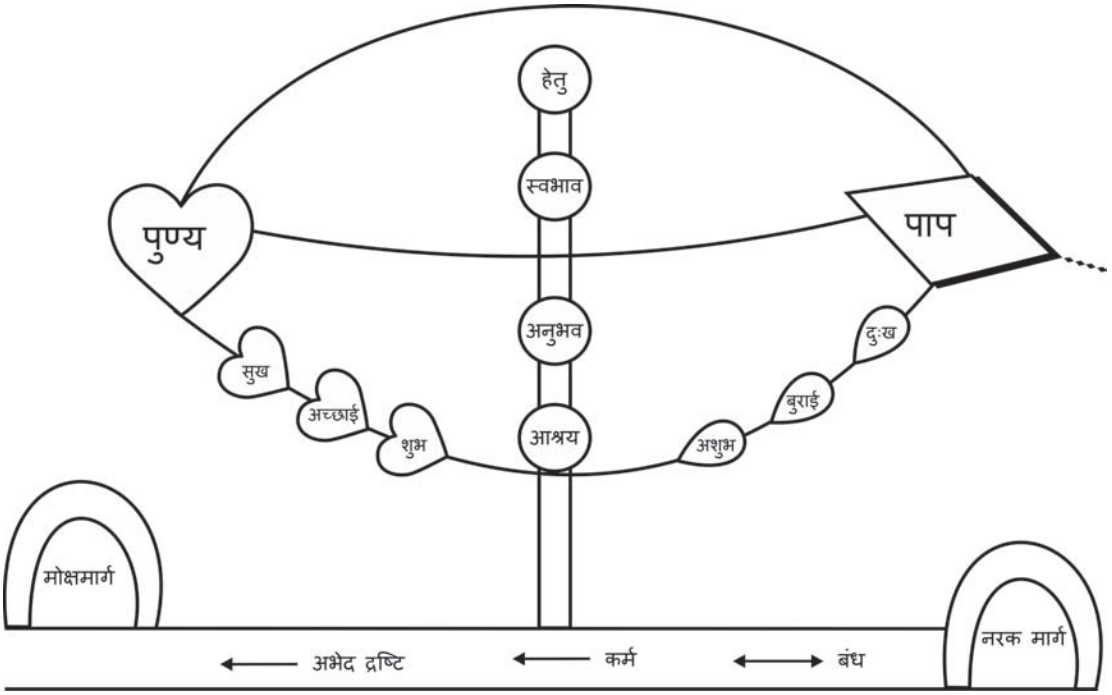

यहाँ पर पहुँचने के बाद में वह न कभी हिंसा करता, न माँस खाता, न मदिरा पान करता और न कभी झूठ बोलता। अब दोनों के संस्कार अलग-अलग हो गये जन्म तो दोनों का शूद्र के पेट से हुआ था। एक शूद्री के ही दोनों बच्चे थे लेकिन संस्कारों के कारण से दोनों अलग-अलग हो गये यद्यपि और दोनों की प्रवृत्तियाँ अलग हो गयीं। यह भेद दृष्टि है जिसको नहीं मालूम कि यह कहाँ उत्पन्न हुए है। तो कहा जायेगा कि यह ब्राह्मण का बेटा है और यह शूद्र का बेटा है। वह शूद्र का बेटा है तो दिखाई भी दे रहा है वह सब प्रकार के पाप कर रहा है, मदिरा पी रहा है आदि और एक ब्राह्मण का बेटा है जो मदिरा नहीं पी रहा है। यह अच्छा है और वह बुरा है। यह हमारे लिए योग्य है और वह अयोग्य। यह अपने आप जो भी देखेगा उसकी दृष्टि में आ जायेगा। आप थोड़ा इसे समझने का प्रयास करना कि वास्तव में देखा जाये तो वह एक शूद्री के ही बेटे हैं लेकिन एक का पालन ब्राह्मण के यहाँ हुआ और संस्कारित हो गया तो वह ब्राह्मण कहलाने लगा। वह मदिरा पान व माँस खाने से दूर हो गया और एक का किसी चांडाल ने पालन पोषण किया था तो वह उससे भी गया बीता हो गया। हम क्या कहेंगे कि इन दोनों में अन्तर है कि नहीं? जब आप व्यवहार की दृष्टि से देखोगे तो आपको इन दोनों में अन्तर कहना ही पड़ेगा।

इन दोनों में अगर कोई अन्तर नहीं रहेगा तो अच्छाई व बुराई के बीच में कोई अन्तर नहीं रह जायेगा। अगर इन दोनों में कोई अन्तर नहीं रहेगा तो सदाचरण व दुराचरण में कोई अन्तर नहीं रह जायेगा। यह दोनों का अन्तर है और यह दोनों का अन्तर ही आपकी दृष्टि में आयेगा और जो

पाप-पुण्य, अच्छाई-बुराई से ऊपर उठकर देखना अभेद दृष्टि है।

कोई भी व्यक्ति उसको देखेगा तो जो ब्राह्मण के यहाँ संस्कारित हुआ है उसको अच्छा कहेगा और जो शूद्र के यहाँ संस्कारित हुआ है उसको बुरा कहेगा। अब कोई ऐसा व्यक्ति हो जो यह भी जानता हो कि दोनों ही शूद्र के पुत्र हैं। क्या फर्क पड़ेगा कि वह ब्राह्मण के यहाँ संस्कारित हुआ है कि वह मदिरा पान नहीं कर रहा है, कि वह माँस नहीं खा रहा है और हिंसा नहीं कर रहा है। दूसरा मदिरा पान कर रहा है उससे क्या फर्क पड़ना है? है तो दोनों शूद्री के पुत्र। यह आप की दृष्टि कब बनेगी जब आप पाप और पुण्य, अच्छाई और बुराई इन दोनों से ऊपर उठे हुए होंगे तब यह आपकी दृष्टि देखने में आयेगी उसको अभेद दृष्टि कहेंगे।

अपने अन्दर दोनों प्रकार के attitude (दृष्टिकोण) रखने पड़ते हैं। जब आँख खोलकर के व्यवहार में प्रवृत्ति करो तो आपको भेद दृष्टि काम में लेनी पड़ेगी। जैसे अगर यहाँ पर कोई शराबी आकर बैठ जाये, अगर यहाँ पर कोई चांडाल आकर के बैठ जाये तो आप उसे यहाँ पर बैठने नहीं देंगे। आप उससे कहोगे कि यह धर्म सभा है यहाँ शुद्धि से आया जाता है, सभ्यता के साथ बैठते हैं। तुम यहाँ पर बोतल लेकर बैठ जाओगे तो क्या होगा? पाप और पुण्य तो दोनों बराबर हैं- क्या फर्क पड़ता है? बोतल में भी पानी है और तुम भी जो बोतल लाये हो उसमें भी पानी है। एक बोतल आप रखे हो जिसमें minneral water है और एक बोतल वो रखे है जिसमें काला पानी है जिसे शराब कहते हैं। दोनों में पानी है। पानी की दृष्टि से व अभेद दृष्टि से दोनों पानी है क्योंकि जब भी आचार्य के द्वारा लिखित ग्रंथ पढ़ोगे तो इन दृष्टियों में भेद करना नहीं आयेगा तो आप उनकी विवक्षा को कभी समझ नहीं पाओगे। लोग समयसार पढ़कर भी इसलिए भटक जाते हैं क्योंकि उन्हें दृष्टियाँ समझ नहीं आती हैं। किस दृष्टि से क्या लिखा है? पानी की दृष्टि से दोनों पानी है चाहे वह मिनरल वॉटर हो चाहे वह शराब का पानी हो। पानी की दृष्टि से दोनों पानी है क्योंकि दोनों में पानी का स्वभाव है। दोनों को लुढ़का दोगे तो ढलान की तरफ ही लुढ़केंगे, दोनों तरल हैं। अगर कोई बच्चा नहीं जानता होगा तो दोनों में से किसी को भी पी जायेगा, उसको कोई फर्क नहीं पड़ेगा। जो जानने वाला होगा वह देखेगा कि यह पानी काला क्यों है ? इसमें दूर से गंध क्यों आ रही है? हमें इसको पीना है कि नहीं पीना है। यह विवेक उसी के अन्दर आयेगा जो वास्तव में संस्कारों को धारण किए हुए होंगे जिसके बीच में भेद दृष्टि होगी तो वह दोनों में (अन्तर) difference करेगा और अगर भेद दृष्टि नहीं है तो कुछ भी पी लो। पानी के स्वभाव की अपेक्षा से दोनों एक है लेकिन दोनों में बड़ा अन्तर है। एक को पीओगे तो यहीं अभी पागल की तरह डोलने लग जाओगे, यहाँ गिर पड़ोगे और एक को पीओगे तो स्फूर्ति आयेगी, अच्छे ढंग से बैठोगे, सुनोगे। दोनों में अन्तर है। ठीक उसी प्रकार आचार्य समयसार आदि ग्रन्थों में पाप और पुण्य की व्याख्या करते हैं तो उनकी दृष्टि में अभेद आयेगा। वे पाप और पुण्य में भेद नहीं करेंगे क्योंकि भेद करने वाले ग्रंथ दूसरे हैं व दृष्टि दूसरी है।

जब आप सिद्धान्त ग्रंथ पढ़ोगे, तत्त्वार्थ सूत्र, सर्वार्थसिद्धि, धवला आदि ग्रंथ पढ़ोगे तो इनमें पाप और पुण्य में भेद मिलेगा। इनमें कहा जायेगा कि यह पाप प्रकृत्तियाँ हैं, यह पुण्य प्रकृतियाँ हैं।

दृष्टियों में भेद से ही सिद्धांत ग्रंथों की विवक्षा समझ सकते हैं।

यह पाप के फल हैं, यह पुण्य के फल हैं। यह पाप के भाव हैं और यह पुण्य के भाव हैं और जब आप समयसार पढ़ने बैठोगे, पुण्य और पाप अधिकार खोलकर बैठोगे तो आचार्य उसमें कहेंगे–

सोवण्णियं पि णिलयं बंधदि कालायसं पि जह पुरिसं।
बंधदि एवं जीवं सुहमसुहं वा कदं कम्मं।।

चाहे स्वर्ण की बेड़ी हो चाहे वह लोहे की बेड़ी हो, दोनों बाँधने का काम करती है। इसलिए चाहे पाप कर्म हो चाहे पुण्य कर्म हो यह दोनों ही आत्मा को बाँधने का काम करते हैं और यह दोनों ही कर्म बन्ध के कारण हैं। पुद्गल की ही परिणति है। पाप कर्म व पुण्य कर्म दोनों ही पुद्गल की परिणति है इसलिए इन दोनों में भेद मत करो और इन दोनों से ऊपर उठकर के अभेद स्वरूप जो अपना ज्ञान आत्मा है उसमें लीन हो जाओ यह अभेद दृष्टि हो गयी। यह दृष्टि गलत नहीं है। गलत हमारी दृष्टि हो जाती है। जब हमारी दृष्टि में पाप और पुण्य का सही-सही विभाजन नहीं होगा तो हम व्यवहार में भी उस अभेद दृष्टि को लगा देंगे और जहाँ व्यवहार में अभेद दृष्टि लग गई, वहाँ गड़बड़ हो गयी। किस दृष्टि से क्या सोचना, किस दृष्टि को कहाँ लगाना और किस कथन को किस रूप में अपने अन्दर समाहित करना है यह ज्ञान जब तक नहीं होता है तब तक हमारे लिए वह समयसार भी अभिशाप सिद्ध हो सकता है और हो रहा है और हो जाता है। जब आप व्यवहार में चल रहे हैं इसका मतलब ही यही है कि आप दूसरों को देख रहे हैं, दूसरों को आप दिखा रहे हो। दूसरों के सामने आपकी जो प्रवृत्तियाँ होगी और दूसरों की प्रवृत्तियाँ को आप देखोगे तो व्यवहार की दृष्टि से ही देखना होगा। व्यवहार का मतलब है आँख खोलकर के देखना और निश्चय का मतलब है आँख बंद करके अपने को देखना। जैसे ही आपने आँख खोली आपकी दृष्टि में दो चीजें ही आनी चाहिए वह पाप और पुण्य है। आँख खुली यानि दृष्टि टूट गई अभेद दृष्टि छूटेगी, आपको भेद दृष्टि से ही सब देखने में आयेगा। यह पाप कर रहा है। यह पुण्य कर रहा है। यह मंदिर जा रहा है,यह मंदिर नहीं जा रहा है, यह होटल में भोजन करता है और वह घर पर भोजन करता है। यह सब कुछ खा रहा है जैसे आलू, बैंगन, प्याज सब खा रहा है और यह केवल शुद्ध चीजें खाता है जैसे लौकी, तोरी आदि यह अन्तर आयेगा, आपकी दृष्टि में आयेगा, यह अन्तर तब आयेगा। जब आपको पाप-पुण्य दोनों के बीच का भेद मालूम होगा और व्यवहार में ही यह दोनों दृष्टियाँ आपको प्रयोग करनी पड़ेंगी और जैसे ही आप आँख बंद करके बैठेंगे अभेद दृष्टि डालो। पाप और पुण्य यह दोनों ही कर्म है और कर्म आत्मा को बाँधने वाले हैं। जब तक कर्म आत्मा से चिपका रहेगा तब तक हमें अपने स्वभाव की प्राप्ति नहीं होगी इसलिए अभेद दृष्टि से तो मैं कहता हूँ कि 'यस्य स्वयं स्वाभावाप्ति'।

इसको सभी कर्मों के नाश से अपने स्वभाव की प्राप्ति हुई है और हमको भी अपने सभी कर्मों के नाश से स्वभाव की प्राप्ति होगी इसलिए हे भगवान! मैं पाप और पुण्य इन दोनों के भाव छोड़कर अपने ज्ञान स्वरूप आत्मा की भावना कर रहा हूँ, यह अभेद दृष्टि हो गयी। यह अभेद दृष्टि

पाप और पुण्य का सही-सही विभाजन नहीं होगा तो व्यवहार में भी भटक जायेंगे।

अपने लिए अपने अन्दर डालने की थी लेकिन इस दृष्टि को डाल रहे हैं दूसरों के ऊपर तो सब उल्टा पुल्टा हो जायेगा। अभेद दृष्टि को अगर आपने व्यवहार में लागू कर दिया और व्यवहार में आप उसको समझाने लगें कि बेटा पाप और पुण्य सब बराबर हैं। चाहे मिनरल वॉटर हो, चाहे ब्लैक वॉटर हो सब बराबर हैं। तब दुराचरण और सदाचरण के बीच का अन्तर ही मिट जायेगा, क्या संसार की प्रक्रिया है, क्या मोक्ष की प्रक्रिया है इसके बीच का अन्तर ही मिट जायेगा और अच्छे- बुरे के बीच का अन्तर ही मिट जायेगा। इन चीजों को समझना इसलिए जरूरी है। जब तक आप इन दोनों दृष्टियों को नहीं समझेंगे तब तक आप पाप और पुण्य पदार्थ को भी समझ नहीं पाओगे। नौ पदार्थों में, पाप और पुण्य को इसलिए अलग-अलग रखा गया है क्योंकि पाप अलग है और पुण्य अलग और उनके स्वभाव अलग हैं। आचार्य अमृतचन्द्र जी महाराज जब समयसार की टीका करते हैं तो लिखते हैं-

हेतु स्वभाव :

कि हेतु, स्वभाव और अनुभव व आश्रय की दृष्टि से इनमें कथंचित भेद है और कथंचित अभेद भी है यह स्याद्वाद दृष्टि है। भेद होगा तो आपको इन दोनों बातों में अलग-अलग स्वभाव दिखाई देगा। पाप का कार्य अलग और पुण्य का कार्य अलग। पाप के कारण मोह भाव अलग और पुण्य के कारण मोह भाव अलग। पाप का अनुभव होगा तो अलग और पुण्य का अनुभव होगा तो अलग। जब हम अभेद दृष्टि से देखते से हैं तो-

'पाप पुण्य फलमांही हरख बिलखो मत भाई।'

अब अपने अंदर अभेद दृष्टि लाना। न पाप के फल में दुखी होना और न पुण्य के फल में हर्षित होना, यह अभेद दृष्टि अपने अंदर लाना। हमारा स्वभाव तो ज्ञान स्वभाव है यह पाप पुण्य तो मेरे स्वभाव नहीं हैं, यह अभेद दृष्टि होगी। दोनों प्रकार की दृष्टि आपके अन्दर रहेंगी तो आपको दोनों चीजें सही-सही समझ में आयेगी और अगर आप इनमें असावधान हो गये तो आपको कभी समझ आयेगा ही नहीं कि स्याद्वाद क्या कहलाता है और भगवान अरहंत देव के द्वारा कही गयी जिनवाणी को जो आचार्यों ने गूँथा है, लिखा है वह किस दृष्टि से लिखा है आपको यह समझ में ही नहीं आयेगा। कई बार लोगों की ऐसी स्थिति हो जाती है जब वह शास्त्र पढ़ते हैं तो मान लो वह अभेद दृष्टि वाले हैं, निश्चय दृष्टि वाले हैं जिन्होंने केवल समयसार पढ़ा है तो उन्हें तत्त्वार्थ सूत्र पढ़ने में बड़ी कठिनाई होती है। तत्त्वार्थ सूत्र की टीका, स्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक या कोई भी सिद्धान्त ग्रंथ पढ़ेंगे जहाँ पर पाप और पुण्य दोनों के फल अलग-अलग हैं इनके भेद अलग-अलग दिखाई देंगे तो उन्हें सब मिथ्या दिखता है कि यह सब गलत है। उन्हें केवल एक अभेद दृष्टि ही अच्छी लगती है और जो इन चीजों को पढ़ने वाले हैं तत्त्वार्थ सूत्र, राजवार्तिक, स्वार्थसिद्धि पढ़ेंगे, पाप और पुण्य के भेद वाले ग्रंथ पढ़ेंगे और जब वह समयसार पढ़ने बैठ जाते हैं तो उन्हें समझ में नहीं आता कि वह अभेद कैसे हो गया? जब तक आप भेद और अभेद दोनों दृष्टियों को नहीं

समझेंगे तब तक आप स्याद्वाद के माध्यम से सात तत्त्व व नौ पदार्थ की व्याख्या को समझ ही नहीं सकते। इसको बोलते हैं चित्त भी अपना और पट्ट भी अपना रुपया अपनी जेब में। जो वह रुपया है दोनों ओर से अपना है। चित्त देखो तो उसमें कोई चित्र दिखाई देगा और पट्ट देखो तो उसमें भी कोई आकृति बनाई हुई दिखाई देगी और रुपया दोनों का नाम है। अगर वह ऊपर से घिस गया है उसमें दिखाई नहीं दे रहा है कि यह एक का है या पाँच का है या पाँच सौ का है तो भी वह रुपया नहीं रहा और पीछे अगर उसमें अशोक का चिह्न बना रहता है वह नहीं रहा है, भारतीय रिजर्व बैंक नहीं लिखा हुआ है वह घिस गया तो वह कुछ काम का नहीं रहा। दोनों तरफ से अगर वह किसी भी रूप में घिस गया तो वह किसी काम का नहीं रहा, आप के लिए दोनों चीजें स्पष्ट होना चाहिए। चित्त में क्या लिखा है और पट्ट में क्या लिखा है। पाप में क्या होता है और पुण्य में क्या होता है? फिर कभी आप उन दोनों की दृष्टि को हटा सकते हो। जब आपको व्यवहार में काम लेना है तब आप देखोगे पाँच सौ का नोट है, यह दस का नोट है और यह पचास का नोट है। यह व्यवहार में जब आप खरीदारी करने जाओगे, किसी से व्यवहार करोगे, किसी से कोई चीज उसके बदले में ले आओगे तो आपको दोनों तरफ देखना पड़ेगा और वह भी दोनों तरफ देखेगा कि कहीं खोटा सिक्का तो नहीं आ गया है। जब आपकी दृष्टि इन दोनों से हट जाये कि यह क्या रुपया है यह तो लोहा है और लोहा समझकर के उसमें आप कोई प्रयोजन ही नहीं रखो, छोड़ दो जैसे लोहे का कोई वायसर पड़ा हुआ है, लोहे का कोई टुकड़ा पड़ा हुआ है वैसे ही वह लोहे का सिक्का पड़ा हुआ है और आप उसको छोड़कर के बैठे हो। कोई भी घर आया जैसे पड़ोसी या घर के बाहर का बच्चा खेलते हुए आया और उसने वह सिक्का उठा लिया है अब आपके दिमाग में अगर अभेद दृष्टि होगी तो वह लोहा है आपको उससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। वह लोहा ले जा रहा है ठीक है हमारे घर पर बहुत रखा है, कम हो जायेगा। यह कहलाती है अभेद दृष्टि।

जब आपके अन्दर अभेद दृष्टि आ जायेगी तब आपको पुण्य फल की भी इच्छा नहीं रहेगी और पाप से भी डर नहीं लगेगा। पाप का फल भी मिल रहा होगा तो आप उसमें घबरायेंगे नहीं। Bussines (व्यापार) नहीं चल रहा, लड़की की शादी नहीं हो रही, हमारा घर वैसा का वैसा ही पड़ा हुआ है जैसा हमारे पुरखे दे गये हैं। अभी तक हम नया नहीं बना पाये यह सब आपकी फल में दृष्टि जा रही है। जिसके लिए पुण्य का फल नहीं मिल रहा है या बहुत मिल रहा है तो उसकी पुण्य फल में दृष्टि जाती है तो वह हमेशा उस पुण्य की ओर देखता रहता है। जब तक आप पाप और पुण्य को देखते रहोगे तब तक आपके अंदर अभेद दृष्टि आने वाली नहीं। ज्ञान तो आ जायेगा लेकिन वास्तव में वह दृष्टि नहीं आयेगी जिस दृष्टि से आपके अंदर की परिणति बदलेगी। इसलिए ध्यान रखना जब भी कभी आप सिद्धान्त ग्रंथ पढ़ें तो आप समझना पाप और पुण्य दोनों अलग-अलग हैं और जब आप समयसार खोलकर के बैठें तो समझ लेना कि उसमें यही लिखा मिलेगा पाप और पुण्य दोनों एक है। यह दृष्टि जब आपके अंदर आ जायेगी तो किसी भी अनुयोग का

अभेद दृष्टि होगी तो लोहा व सोना में कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

शास्त्र पढ़ोगे तो आप भ्रमित नहीं होओगे। आदमी इसलिए ही भ्रमित हो जाता है, एक दृष्टि बना लेता है, एक तरफा बस, एक तरफा सिक्का देखोगे और दूसरी तरफ का सिक्का खराब हो गया। यह सब समझ लो कि पूरा ही सिक्का खराब हो गया है। आप एक को तो घिसे जा रहे हो और एक को सुरक्षित किए हो, मानो आप पूरे सिक्के को खराब कर रहे हो। बिल्कुल यही स्थिति है आचार्य कहते हैं कि अगर आप पाप और पुण्य दोनों को सही ढंग से नहीं समझो, केवल एक अभेद दृष्टि से ही समझते चले जाओगे तो भी आपको लाभ होने वाला नहीं है। अभेद दृष्टि में हमेशा रमते रहोगे तो आप कभी पाप को छोड़ने का भाव ही नहीं करोगे तो आपको यह श्लोक उल्टे लगेंगे।

वरं व्रतैः पदं दैवं नाव्रतैर्वत नारकम्।

व्रतों के साथ में देव पद को प्राप्त कर लेना अच्छा है लेकिन अव्रतों के साथ नरक में जाना अच्छा नहीं है। स्वर्ग और नरक की बात कर रहे हैं यह तो सब चार गतियों में आने वाली चीजें है, नरक में जाना क्या बुरा है और स्वर्ग में जाना क्या अच्छा हो गया? व्रतों से अगर स्वर्ग मिलता है तो ऐसे स्वर्ग तो हमने कई बार भोग लिए हैं उससे क्या मिलेगा? आपको शास्त्र उल्टे लगेंगे आप इनकी इसी तरह व्याख्या करोगे जैसे मैं बोल रहा हूँ क्योंकि यह भी एक व्याख्या है। अगर यह व्याख्या आप के मन में आ गई तो आपको इष्टोपदेश ग्रंथ कभी अच्छा नहीं लगेगा आप कहोगे कि कैसे आचार्य हैं जो स्वर्ग को अच्छा बता रहे हैं नरक को बुरा बता रहे हैं जबकि चारों गतियाँ है और चारों गतियों में खूब रह चुके हैं क्या अच्छा और क्या बुरा। इसलिए व्रतों का पालन करने से क्या मतलब। जब आप को स्वर्ग अच्छा नहीं लगेगा तो ऐसे व्रतों का पालन क्यों करना। और अगर ऐसे व्रतों के पालन भी हो जाते हैं, स्वर्ग में भी पहुँच जाते हैं तो वहाँ पर जाकर फिर वही असंयम ही रहा है। उस तथ्य की बात करते तो समझते कि हाँ यह इष्टोपदेश है जिनको अपने स्वभाव की उत्पत्ति हो जाती है। जो अपने योग्य उपादान से इस तरह के निमित्तों के माध्यम से अपने अंदर केवलज्ञान की पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं। यह तो सब अच्छा चल रहा था एक दम से सब कुछ क्यों बदल गया। यह कुछ बदल नहीं गया है तुम्हें बस अपना दिमाग बदलना पड़ेगा। जिनवाणी के हिसाब से अपने दिमाग को बदलना है न कि अपने दिमाग के हिसाब से जिनवाणी को चलाना है। जिनवाणी में जो लिखा है उसे समझने का प्रयास करो यह किस ढंग से और किसके लिए कहा जा रहा है। आचार्य कहते हैं कि अभी वर्तमान में तुम्हें केवलज्ञान होने वाला नहीं है। तुम्हारे पास वज्रवृषभनाराचसंहनन नहीं है, तुम्हें अरिहंतों के अभी साक्षात दर्शन नहीं हैं, तुम्हें क्षायिक सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता तब तक तुम अपने लिए एक रिजर्वेशन कर लो। एक बहुत अच्छा उदाहरण दिया गया है नीचे–

छायातपस्थयोर्भेदः प्रतिपालयतोर्महान्।

कहीं पर दो तीन मित्र थे और वह एक गाँव में गये अपने अपने अलग–अलग घरों में गये। दो मित्र वापस लौटकर अपनी–अपनी जगहों पर खड़े हो गये और एक मित्र का इंतजार कर रहे

हैं कि वह भी आ जाये तो हम तीनों मिलकर साथ में आगे बढ़ें। वे इंतजार कर रहे हैं, एक तो धूप में खड़ा है और एक खड़ा है छाँव में। जो आने वाला मित्र है उसका इंतजार करना है एक धूप में खड़ा होकर के इंतजार कर रहा है और एक छाँव में खड़ा होकर के इंतजार कर रहा है। खड़े तो दोनों ही है कोई फर्क नहीं है उन दोनों के इंतजार करने में। कोई फर्क नहीं है कि अगर वहाँ पर वृक्ष है या रेस्ट हाऊस बना हुआ है तो अगर समझदार आदमी होगा तो उसमें बैठेगा या वृक्ष के नीचे बैठेगा इंतजार ही तो करना है। आयेगा तो इसी रास्ते से आयेगा। आप किसी बस का इंतजार कर रहे हो तो आप धूप में भी खड़े रहकर इंतजार कर सकते हो और यदि रेस्ट हाउस बना है तो कुर्सी पर बैठकर भी इंतजार कर सकते हो। अगर आपके अंदर विवेक या ज्ञान होगा तो आप उसका उपयोग करेंगे और अगर आप के अन्दर ज्ञान नहीं है तो क्या फर्क पड़ता है चाहे धूप में खड़े-खड़े तपते रहो और खड़े होने का दु:ख उठाते रहो चाहे बैठ जाओ क्या फर्क पड़ता है? दोनों में हमें करना तो इंतजार ही है। आचार्यों की दृष्टि कितनी करुणापूर्ण दृष्टि होती है आपको पहले तो यह बताया कि जब तक आपको सही द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव की सामग्री नहीं मिलेगी तब तक आपके लिए कैवल्य ज्ञान की प्राप्ति नहीं होगी और अगर आपको वह पूर्ण सामग्री मिलने में विलम्ब हो रहा है तो छाया में बैठो] अच्छी A.C. में बैठो। एक घंटे के बाद गाड़ी आनी है, यह निश्चित है कि गाड़ी एक घंटे के बाद आयेगी तो एक घंटे परेशान होने की क्या जरूरत है, आराम से बैठो यह आचार्यों की करुणा पूर्ण दृष्टि है। आपके लिए जब चतुर्थकाल आयेगा तब आयेगा। तब तक क्या करोगे? दो जगह हैं और दोनों में बराबर-बराबर टाइम लिमिट रहती है एक नरक की जगह है और एक स्वर्ग की जगह। आप कभी इनकी आयु का वर्णन देखोगे तो नरक में भी जघन्य आयु दस हजार वर्ष होती है, कम से कम 10000 वर्ष और उत्कृष्ट आयु 33 सागर की होती है। ऐसे ही स्वर्गों में भी जघन्य आयु होती है 10000 वर्ष की और उकृष्ट आयु 33 सागर की। आप मनुष्य गति में तो बहुत दिनों तक रह नहीं पाओगे। आपको कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा अगर आप पुण्य नहीं करोगे तो यह मानकर चलो कि आप पाप कर रहे हो। कोई तीसरी स्थिति में तो आप पहुँचने वाले हो नहीं। पाप कर रहे हो तो उसका फल क्या मिलेगा तिर्यञ्च गति, नरकगति। अगर पाप और पुण्य दोनों का बेलेन्स बना रहा तो हो सकता है आपको पुन: मनुष्य गति मिल जाये। और अगर पुण्य का बेलेन्स बढ़ गया तो आपको देव गति ही मिलेगी। अब देव गति में भी जाकर उस समय को निकाल सकते हैं और नरक गति में जाकर भी उस समय को निकाल सकते हो और वह समय कुछ हजार वर्षों के बाद आने वाला है। मानलो कल आप से कहा था कि राजा श्रेणिक का जीव है। जब तक इस अवसर्पिणी काल का पूरा का पूरा यह पंचम काल पूरा न हो जाये, यह पाँचवाँ काल 21000 वर्ष का है फिर छठवाँ काल आयेगा वह भी 21000 वर्ष का है। इतना काल उसको व्यतीत करना है। 42000 वर्ष तक उसके बाद फिर 6 वाँ काल 21000 वर्ष का फिर पाँचवाँ काल आयेगा 21000 वर्ष का उसके बाद चौथा काल आयेगा। इस भरत क्षेत्र में उस उत्सर्पिणी काल

जब सही द्रव्य, क्षेत्र, काल, और भाव की सामग्री मिलेगी तभी केवलज्ञान की प्राप्ति होगी।

के माध्यम से धर्म तीर्थ की प्रवृत्ति पुनः शुरू होगी तब कोई पहला तीर्थंकर उत्पन्न होगा। इन चौबीस तीर्थंकरों के बाद अब कोई अगला तीर्थंकर उत्पन्न होगा तो उसके लिए 84000 वर्ष का समय शेष है। अब दो स्थितियाँ हैं अगर आपको पुनः इसी भरत क्षेत्र में जन्म लेकर यहाँ से ही मोक्षमार्ग लेना है तो आपको 84000 वर्ष तक कुछ नहीं होने वाला है यहाँ पर। विदेह क्षेत्र में तो हमेशा चलता है मोक्षमार्ग। लेकिन यहाँ पर 84000 वर्ष तक कुछ नहीं मिलने वाला अब यह 84000 वर्ष आप कहाँ गुजारना चाहते हो। आप अपनी ही गति से शूकर भी बन सकते हो लेकिन वहाँ पर 84000 वर्ष नहीं गुजरेंगे वहाँ सब 50, 100 वर्ष में सब निपट जाता है। नरक में ही जाकर इतनी लम्बी-लम्बी आयु गुजरती है या स्वर्ग में जाकर। अब आपको नरक व स्वर्ग में कोई फर्क नहीं दिखाई दे रहा है वह आप जानो लेकिन आचार्य तो आपकी व्यवस्था बना रहे हैं। देखो अगर तुम पाप से बच जाओगे, व्रत ले लोगे तो तुम्हें स्वर्ग में हर जगह से सुखद वातावरण मिलेगा और हर पल तुम्हारा वहाँ पर ऐसे आनन्द के साथ बीतेगा, तुम्हें पता ही नहीं पड़ेगा कि 84000 वर्ष कब बीत गये हैं। उस राजा श्रेणिक की तरह जो अभी नरक में गया है उसको वहाँ पर 84000 वर्ष बिताने पड़ेंगे और वहाँ पर हमेशा हिंसा, मार-काट, झूठ अनेक प्रकार के दुखद वातावरण के साथ ही उसका समय गुजरेगा और गुजर रहा है। आपको बीच का समय गुजारना है उसके लिए आचार्य एक अच्छी व्यवस्था दे रहे हैं क्योंकि जो व्रती हो जाता है वह नियम से देव गति को ही प्राप्त होता है। उस देव गति के बाद में जो मनुष्य गति आपको मिलेगी तो उस गति में आपको पूर्ण सामग्री मिल जायेगी। तब तक आपके लिए सब प्रकार के साधन भी मिलते रहेंगे और देव गति में भी अरिहंत भगवान का समवसरण में दर्शन होगा। नरक गति में कुछ नहीं होगा। यहाँ आपको सम्यग्दर्शन होगा तो आपके काम आयेगा और नहीं होगा तो उस सम्यग्दर्शन की प्राप्ति भी वहाँ जाकर कर लोगे। सुखपूर्वक आप का जीवन बीतेगा इसलिए व्रतों से कभी भी हानि नहीं है। चाहे सम्यग्दृष्टि हो या न हो। यह बात ठीक हैं कि सम्यग्दर्शन होने पर ही व्रत लिए जायेंगे तो ही वह व्रत कहलायेंगे लेकिन अगर सम्यग्दर्शन नहीं भी है तो भी उसका कारण बन गया।

कल आपको बताया गया था कि एक मुनि महाराज से एक भील ने व्रत ले लिया। जब व्रत ले लिया तो सम्यग्दर्शन नहीं हो गया लेकिन अगले ही जन्म में देव बनने के बाद जब वह मनुष्य बना तब सम्यग्दर्शन के लिए सब योग्यता उसके सामने आ गयी। ऐसा ही होता है, इसलिए व्रत लेने से कभी भी हानि नहीं होती है। जो व्रत किसी के साथ में हो, सम्यग्दर्शन के साथ हो तो अति उत्तम और नहीं भी हो तो आपको सम्यग्दर्शन कराने में सहायक बन जायेंगे। व्रत में अगर आपकी श्रद्धा है कि इस प्रकार के व्रतों से ही संवर निर्जरा होगी तो वह व्रत सम्यग्दर्शन में आपके लिए सहायक बन जायेंगे। इसलिए आचार्य कहते हैं व्रत हमेशा सार्थक होते हैं। पाप से दूर हटने का संस्कार अर्जित करना अपने आप में बहुत कठिन है और इसी संस्कार से आपके अंदर सम्यग्दर्शन का प्रादुर्भाव होगा। यही यहाँ पर लिखा है कि व्रतों के साथ में स्वर्ग चले जाओ और वहाँ जाकर

व्रत लेने से कभी भी हानि नहीं होती है।

के भी धर्म करते रहो। जो धर्म यहाँ कर रहे हो वहाँ भी करने को मिलेगा। यहाँ पर भी क्या ज्यादा कर रहे हो। कोई संयम तो तुम्हारे पास है नहीं। बस भगवान के दर्शन करते हो, पूजन करते हो वह वहाँ पर भी करते रहना और नरक में गये तो वहाँ पर वह भी करने को नहीं मिलेगा। बस मारकाट में ही जीवन जायेगा और दुख के साथ ही भोगना पड़ेगा। हम कितने ही सम्यग्दृष्टि हो जायें लेकिन हमें उसी पर्याय का अनुभव होगा जो पर्याय हमारे शरीर के साथ में है अगर शरीर में कष्ट है तो कष्ट ही अनुभव में आयेगा। सम्यग्दर्शन का कोई सुख आपकी अनुभूति में नहीं आयेगा। इसलिए आचार्य कहते हैं जब तक वह समय नहीं आता तब तक के लिए आप अपनी अच्छी व्यवस्था कर लो। व्रतों के साथ जीवन जी करके इस पर्याय का अंत करोगे तो नियम से आपका मोक्षमार्ग बना रहेगा यह आचार्य कह रहे हैं। इनकी वाणी को समझो और अभेद दृष्टि से तो समयसार में कहा है वह इसलिए कहा है कि वहाँ कर्मों का बंध जो हमारे अन्दर हो रहा है चाहे वह पुण्य हो चाहे पाप हो, कर्म तो हमारा स्वभाव है ही नहीं, हम तो पुण्य और पाप इन दोनों कर्मों से रहित हैं। इसलिए अपने अंदर अभेद दृष्टि भी रखो जिसके माध्यम से आप अपने ज्ञान स्वभाव को पहचान पाओगे। यह पुण्य हमारा स्वभाव नहीं है क्योंकि पुण्य में आदमी रमण करने लग जाता है और पुण्य स्वभाव से भी अपने आप को हटाना है। हमारा स्वभाव तो ज्ञान स्वभाव है। यह अभेद दृष्टि से चिंतन में लाना और जब आँख खुले तो भेद दृष्टि से देखना कि पाप ना हो जाये और पुण्य हमको करना है, हिंसा नहीं हो जाये दया हमको धारण करना है। परिग्रह में आसक्ति ना हो जाये अपरिग्रह हमको अपनाना है। ये अनेक प्रकार के पाप भाव छोड़कर हमें पुण्य भाव की समायोजना करनी है।

पाप से दूर हटने का संस्कार ही सम्यग्दर्शन का कारण बनेगा।

आत्मानुराग की युक्तियुक्तता

4

यत्र भावः शिवं दत्ते, द्यौः कियद्दूरवर्तिनी।
यो नयत्याशु गव्यूतिं, क्रोशार्धे किं स सीदति?॥

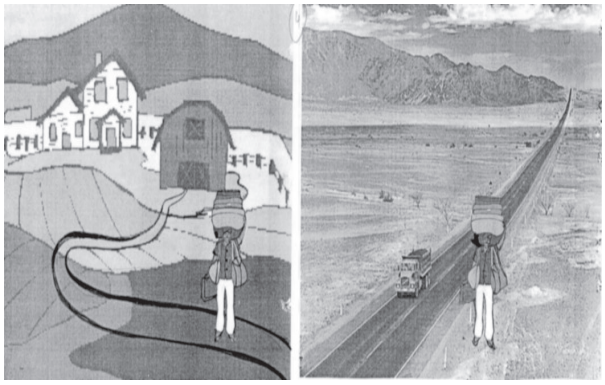

अन्वयार्थ– (**यत्र भावः**) जहाँ भाव (**शिवं दत्ते**) मोक्ष को देता है [वहाँ] (**द्यौः**) स्वर्ग की प्राप्ति (**कियद्दूरवर्तिनी**) कितनी दूर है ? (**यः गव्यूतिं**) जो मनुष्य दो कोश तक (**आशु नयति**) [भार को] शीघ्र ले जाता है। (**सः**) वह (**क्रोशार्धे**) आधा कोश ले जाने में (**किं सीदति**) क्या दुखी हो सकता है ? अर्थात् नहीं।

- ☛ **भावों की उत्कृष्टता**
- ☛ **ध्यान की भावना**
- ☛ **सम्यग्दर्शन का प्रकाश**

आचार्य पूज्यपाद देव का यह इष्टोपदेश ग्रंथ है जिसके माध्यम से यहाँ आपको निरन्तर उनके भावों का दिग्दर्शन कराया जा रहा है और उसी क्रम में यहाँ पर आचार्य देव कह रहे हैं–

यत्र भावः शिवं दत्ते, द्यौः कियद्दूरवर्तिनी।
यो नयत्याशु गव्यूतिं, क्रोशार्धे किं स सीदति?॥

पिछले दिनों बताया था कि जब कोई भी आत्मा परमात्मा बनने का भाव करता है तो वह अपने ही अन्दर आत्मा की भावना करता है और उस आत्म भावना से उसे इतना कुछ उपलब्ध हो जाता है कि उस आत्म भावना के माध्यम से ही वह मोक्ष की प्राप्ति कर सकता है लेकिन अगर वह उस मोक्ष तक न पहुँच पाये तो आचार्य कहते हैं कि वह स्वर्ग तक तो पहुँच ही जाता है।

मोक्ष की प्राप्ति के लिए किया गया प्रयत्न अगर हमें कहीं स्वर्ग में भी ले जाकर कर रोक दे तो आचार्य कहते हैं कि इसमें आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है क्योंकि आपने प्रयास तो आत्म भावना का इसलिए किया था कि हमको मुक्ति की प्राप्ति हो यदि नहीं भी हो पाई तो कोई बात नहीं। अगर आप बीच में स्वर्ग में भी अटक गये तो भी कोई बात नहीं, आपकी वह आत्म भावना हमेशा काम आयेगी।

आपने बहुत उत्कृष्ट भाव किया है और उत्कृष्ट भाव करने वाला व्यक्ति अगर कभी कोई थोड़ा कम फल भी प्राप्त कर लेता है उसके लिए कहा जाता है कि यह स्वाभाविक है। आपने उत्कृष्ट भाव किया उसका उत्कृष्ट फल ही मिलना था लेकिन कुछ कमियाँ आप की ही रही होंगी जिस कारण से आपको उत्कृष्ट फल की प्राप्ति नहीं हुई। जब कोई भी व्यक्ति व्रत और संयम को धारण करता है तो वह इस भावना से करता है कि मेरे कर्मों की निर्जरा हो और मुझे मुक्ति की प्राप्ति हो लेकिन उसे जब मुक्ति की प्राप्ति नहीं हो पाती है तो वह स्वर्ग आदि में ही रुक जाता है। उसका कारण आचार्य देव कहते हैं कि तुम्हारे आत्म ध्यान की कमी नहीं है उसका कारण कुछ और है। वह यह है कि जब तक आपको चरम शरीरत्व की प्राप्ति नहीं होती है तब तक आपको ऐसे द्रव्य की योग्यता प्राप्त नहीं होती है जो आपको इसी भव में मोक्ष प्राप्त कराने का कारण बन जाये। तब तक आपके द्वारा किया गया ध्यान भी आपको मोक्ष नहीं पहुँचा पायेगा। आपको स्वर्ग तक ले जाकर ही रोक देगा। ध्यान, स्वर्ग व मोक्ष दोनों की प्राप्ति का भी कारण है। जिस ध्यान के साथ में हमारे अन्दर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की पूर्ण योग्यता आ गयी तो वह ध्यान मोक्ष की प्राप्ति का कारण हो गया और जिस ध्यान में उस योग्यता की कमी रह गई तो वह ध्यान स्वर्ग की प्राप्ति का कारण रह गया। वर्तमान में आप जो ध्यान करेंगे वह मोक्ष का कारण नहीं बनेगा। साक्षात तो वह स्वर्ग का ही कारण है। जब भी कभी आप धर्म ध्यान की परिणति करेंगे उस धर्म ध्यान की परिणति से भी आपको मोक्ष की प्राप्ति होने वाली नहीं है। अब आप सोचोगे कि धर्म ध्यान से मोक्ष नहीं मिल रहा है तो हमें धर्म ध्यान करने से मिलेगा क्या?

व्रत एवं संयम कर्मों की निर्जरा के लिए एवं मुक्ति प्राप्ति हेतु धारण किये जाते हैं।

भावों की उत्कृष्टता

आचार्य कहते हैं कि वर्तमान में तो आपको इसी में अपने मन को संतोष करना पड़ेगा। आत्मा की भावना करोगे, परमात्मा बनने की भावना करोगे यह सब अच्छी बात है लेकिन आज का जो संस्कार आपके अंदर पड़ रहा है और पड़ेगा यह संस्कार आपको तुरन्त मोक्ष का फल नहीं दे पायेगा। आप चाहे कितने ही प्रकार की तपस्या व स्वाध्याय कर लो, वर्तमान में जो कुछ भी धर्म ध्यान करोगे वह धर्म ध्यान आपको स्वर्ग में ही ले जाकर छोड़ेगा। इसलिए आचार्य कहते हैं भाव तो ऊँचा रखो मिले कुछ भी उसकी चिन्ता मत करो। जिसे कहा जाता है कि अपने कर्म पर और भावों पर विश्वास रखो, अच्छे से अच्छे कर्म करो, अच्छी से अच्छी भावना चुनो और उसके बाद में जो मिल जाये उस पर भी भगवान का दिया हुआ हमारे लिए इतना ही पर्याप्त है ऐसा सोचकर उस पर भी संतोष रखो।

आपने मुक्ति की भावना की और मिला स्वर्ग तो आपको स्वर्ग में भी संतोष करना पड़ेगा क्योंकि इस पर्याय में आपको मुक्ति की प्राप्ति होने वाली नहीं है। जब कभी कोई भी व्यक्ति आगे बढ़ता है तो उसके आगे बढ़ने के तरीकों में अन्तर होता है। किसी-किसी व्यक्ति द्वारा उसी पर्याय में कुछ ऐसा पुरुषार्थ हो जाता है कि वह उसी भव में मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। लेकिन किन्हीं-किन्हीं आत्माओं के लिए ऐसा भी होता है कि एक दो भव तो उन्हें बीच में गुजारने ही पड़ते हैं उसके बाद ही उन्हें मुक्ति की प्राप्ति का सोपान मिलता है। उसके लिए आपके मन में किसी भी प्रकार की कोई मलीनता नहीं होनी चाहिए। क्योंकि सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर, सम्यग्दृष्टि जीव के अन्दर यह विश्वास आ जाता है कि हमें मोक्ष की प्राप्ति तो होगी ही और उस मोक्ष की प्राप्ति में दो-चार भव बीच में लग भी जाये तो सम्यग्दृष्टि जीव को उसकी भी कोई चिन्ता नहीं रहती है। क्योंकि वह देखता है, जानता है कि यह कार्य अब हमारे जितने बस का है उतना तो हम कर सकते हैं। बाकी सब कुछ अपने बस का नहीं है। आत्मा में कर्मों का बन्ध निरन्तर चलता रहता है और उदय होता है उन कार्यों की अनुभाग शक्ति का फल भोगने को मिलता है। हमें पता नहीं रहता है कि कौनसा कर्म हमारे लिए भाव उत्पन्न करता है और वह हमें किस और प्रेरित करता है कुछ कहा नहीं जा सकता। आप के हाथ में केवल इतना ही है कि आप गाड़ी को चालू कर दो उसके बाद अपने आप को सजग रखो।

Stairing को पकड़े रखो। गाड़ी चलना शुरु हो गयी तो आपको यह नहीं सोचना पड़ेगा कि अब हम गाड़ी को कैसे चलाये। कितनी गति से चलाये यह आपके हाथ में नहीं है उस गाड़ी में जितनी क्षमता है उतनी ही क्षमता से गाड़ी आगे बढ़ेगी। गाड़ी में लिखा अवश्य रहेगा कि आप 120 किलो मीटर की गति दे सकते हो। जितनी उसमें गति दे रखी है उस गति पर तो आपकी गाड़ी कभी चल नहीं सकती और उसको चलाने योग्य रास्ता भी है या नहीं यह ध्यान रखना पड़ेगा। जहाँ

भाव तो ऊँचा रखो, मिले कुछ भी उसकी चिन्ता मत करो।

हम उस गाड़ी को चला रहे हैं वहाँ लोगों का आवागमन किस ढंग का है यह सब देखने के बाद में आपको speed देने का मौका मिलेगा और उसे पूरी speed नहीं दे पाओगे। क्योंकि आपको इतना ज्ञान होना चाहिए कि अगर उसमें 120 लिखा है तो 100 पर ही संतुष्ट हो जाना। लिखा जरूर होगा 120 लेकिन आपकी रेस में 100 की speed ही high speed हो जायेगी। इसी तरह से आचार्य कहते हैं जब व्रत लिये जाते हैं आप संयम धारण करते हैं तब आपकी भावना तो यही रहती है कि यह व्रत, संयम मुक्ति की प्राप्ति करने के लिये ही है मुक्ति पंचमकाल में मिलनी नहीं है तो आप स्वर्ग से ही संतुष्ट हो जाना। उस स्वर्ग की प्राप्ति के लिए कोई भावना नहीं करना। भावना तो आप यही करना कि हे भगवान! मेरी आत्मा को चतुर्गति के भ्रमण से मुक्ति मिले। भावना यही करना कि मैं अपनी आत्मा के अन्दर परमात्मा को हमेशा ध्याता रहूँ और भावना यही करना कि जैसे परमात्मा की आत्मा के अंदर ज्योति प्रकाश प्रकट हुआ है वैसा ही हमारे अंदर प्रकट हो। इतना करने के बाद भी आपको क्या फल मिले इसके पीछे आप अपनी दृष्टि मत दौड़ाओ। इसलिए आचार्य कहते हैं कि कर्म करो और फल की इच्छा मत करो। आपने अगर कोई कर्म किया है तो फल तो मिलेगा लेकिन आप किसी भी प्रकार की फल की इच्छा मत करो। आचार्य यहाँ तक भी कह देते हैं कि आप मोक्ष की भी इच्छा मत करो। आपको मोक्ष की भी इच्छा करने की आवश्यकता नहीं है जो करने योग्य कार्य है वह ही करो। करने योग्य कार्य क्या है जो आपको चाहिए वह अपनी दृष्टि में रखो। आपको ऐसी आत्म स्वरूप की प्राप्ति करनी है जिसके बारे में पहले श्लोक में कहा था–

''यस्य स्वयं स्वभावाप्तिरभावे कृत्स्न कर्मण:'' जिनके अंदर सभी प्रकार के कर्मों का नाश हुआ हो, जिन्होंने अपने स्वभाव की प्राप्ति कर ली हो और स्वभाव की प्राप्ति करने पर जिनके अंदर अनन्त दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य प्रकट हुआ हो ऐसी आत्मा को अपने चित में धारण करो, बाहर मत देखो। आचार्य कहते हैं कि

चित्ते कुर्वन् निरवधि-सुखं ज्ञान दृगवीर्य रूपम्।

यदि आप अपने चित में आत्मा के रस, स्वरूप का ध्यान कर रहे हैं, ऐसा स्वरूप जो आत्मा ज्ञान सहित, दर्शन सहित, भक्ति सहित है और सुख सहित है उस आत्मा का ध्यान करते हुए भी आपके चित्त में अपने आप आपकी परिणति ऐसी बन जायेगी कि आपका चित्त भी उसी मय होने लग जायेगा।

प्रादर्भूत स्थिरपदसुख त्वामनुध्यायतो मे।
त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा।। (एकी. 17)

आचार्य कहते हैं कि आप ऐसा ध्यान करो भगवान का, ऐसा परमात्मा में लीन हो जाओ कि

कर्म करो और फल की इच्छा मत करो।

हे भगवान मैं आप में हूँ और मैं आप जैसा हो गया हूँ। इस प्रकार की हमारे अन्दर निर्विकल्प बुद्धि उत्पन्न हो जाये, हमारी मति में, बुद्धि में निर्विकल्पता आ जाये और वह ध्यान करते करते आप के अन्दर यह आभास होने लगे कि हमारे अन्दर जो है वो भगवान के अन्दर है और जो भगवान के अन्दर है वो हमारे अन्दर है। आपको अपनी आत्मा में और भगवान परमात्मा के प्रकाश में कोई अन्तर महसूस न हो और आपमें निर्विकल्पता का भाव आ जाये। मान लो मैं तो अब भगवान बन ही गया ऐसा भी सोच लेंगे तो कोई दिक्कत की बात नहीं। आचार्य कहते हैं कि इन झूठी बातों से तुम्हें क्या मिलेगा?

मिथ्यारूपं तदपि तनुते तृप्ति मभ्येष रूपाम्।

आचार्य कह रहे हैं कि यह आपका भाव मिथ्या रूप है क्योंकि आप भगवान का ध्यान करते-करते भगवान तो नहीं हो गए, एकमेक होने की भावना करते हुए आपके अंदर वैसा प्रकाश तो नहीं आ गया। लेकिन यह मिथ्या रूप होते हुए भी आचार्य कहते हैं कि यह मिथ्या भाव भी बड़ी तृप्ति देता है। Great satisfaction ऐसी तृप्ति, संतोष, आनंद देता है कि ''दोषात्मानोप्य अभिमत फला पारिजाता भवन्ति''

हे भगवान्! हमारी आत्मा तो दोष स्वरूप है और उस दोष स्वरूप आत्मा में भी जिस प्रकार से हम आपका ध्यान करते हैं तो हमें इष्ट फल की प्राप्ति हो जाती है और हमें महसूस हो जाता है कि हम आप जैसे हो गये। यह भले ही गलत हो, हमें तो बड़ी संतुष्टि देने वाला होता है और हमें तो बड़ी तृप्ति देने वाला होता है। आचार्य महाराज सब जानते हैं। सब जानने के बाद वही बताते हैं जो उनके अनुभव में आ रहा है। उसी अनुभव से हम चलेंगे तो हमारे अनुभव में वह ही आयेगा। जब आप भगवान का ध्यान करोगे तब आपको एक क्षण लगेगा बड़ी शान्ति, बड़ा सुख बड़ी संतुष्टि, बड़ी तृप्ति मिल रही है। जहाँ पार्श्वनाथ भगवान के ऊपर बिजौलिया (राज.) उपसर्ग हुआ उन शिलाओं पर कई लोग बैठे थे, हम भी बैठे थे वहीं पर और उस समय भी सबके अन्दर एक ऐसी ही शून्यता, एक ऐसी ही तृप्ति की भावना तात्कालिक उत्पन्न हो गई। जब आप इस रूप में किसी भी प्रकार से अपनी आत्मा का ध्यान करते हैं तो आपको लगता है कि मैं भीतर से बड़ा तृप्त हो गया हूँ। यह जो आपको तृप्ति महसूस होती है इसी तृप्ति को कहते हैं आत्मिक सुख। आकुलता को सुख नहीं कहते हैं। सुख उसे कहते हैं जो आत्मा के अन्दर निराकुल भाव उत्पन्न हो जाता है उस आत्मिक भाव को ही सुख कहा जाता है और आचार्य कहते हैं इसी सुख की प्राप्ति के लिए तुम्हें प्रयत्न करते रहना चाहिए। अब यह सुख तुम्हें कहाँ मिलेगा? वही हवाएँ यहाँ चल रहीं हैं और वही हवाएँ तुम्हारे घर में भी चल रहीं हैं। यहाँ पर जो हवा चल रही है उससे तेज हवा आपके पंखे से चल सकती है। लेकिन वहाँ जो हवा में भी संतुष्टि मिलेगी, सुख मिलेगा वह यहाँ पर इस तेज हवा में भी नहीं मिलेगा। जब भी आप कोई काम तेजी से करोगे आपने आप से दूर हट

जाओगे। एक श्रावक, गृहस्थ और मोही जीव की यह परिणति बन जाती है कि वह हर काम तेजी से करना चाहता है। चलेगा तो तेजी से चलेगा, बोलेगा तो तेजी से बोलेगा, खाएगा तो जल्दी जल्दी खाएगा और सोएगा तो जल्दी सोने की चेष्टा करेगा। कुछ भी करेगा, यहाँ तक कि उसे कहा जाये कि तू ध्यान कर तो वह ध्यान भी जल्दी जल्दी करने की चेष्टा करेगा। आदमी के अन्दर इतनी जल्दी पड़ी है काम करने की जिसे बोलते हैं त्वरा। एक तीव्र गति से हर काम करने की आदत है और उसी तीव्रता को वह हमेशा चाहता है। एक सहज हवा, एक शान्त हवा चल रही होगी उसमें वह संतुष्टि महसूस नहीं करेगा। उसको चाहिए तीव्र गति से हवा आती रहे, और उसके सामने खड़ा हो जाता है आदमी को उससे थोड़ी सी तृप्ति महसूस होती है परन्तु जो भीतर आदत पड़ी है हर काम में जल्दी की और हर काम को जल्दी से पूरा कर देने की इस आदत को रोके बिना आप कभी भी ध्यान करने के योग्य बन ही नहीं सकते हैं।

ध्यान की भावना :

आपको अपनी आत्मा का ध्यान करने का भाव मन में आ जाये तो पहले अपने हाथ पैरों को शांत बिठाने की कोशिश करना। अपने मन, वचन, काय को शांत करने के साथ साथ यह विचार करना है कि कोई भी काम हमें करना नहीं है। जब तक आप कुछ कार्य करने की इच्छा करोगे तब तक आपको ध्यान की प्राप्ति होने वाली नहीं है। जैसे ही आप मन में विचार करोगे कि हमें अब कुछ भी नहीं करना, यहाँ तक कि हमें ध्यान भी नहीं करना। बस बैठे हैं तो सिर्फ बैठे हैं जो महसूस हो रहा है उसको महसूस करना अगर तुम्हें हवा भी महसूस करने में आये तो उस हवा को महसूस करना। प्रकाश तुम्हारे अंदर महसूस करने में आये तो उसको महसूस करना। जो तुम्हारे अनुभव में आये उसे अनुभव करते चले जाना। तुम्हें कुछ भी चेष्टा करने की जरूरत नहीं है और जैसे ही तुम चेष्टा करोगे तो तुम्हारा ध्यान उखड़ जायेगा और तुम्हारा मन कहेगा चलो यहाँ एकान्त में बैठने से टाइम खराब करने में कोई मतलब नहीं है चलो उठो यहाँ से। आदमी की परिणति हमेशा उल्टी चलती रहती है और यहाँ उल्टा मोह का भाव ही उस आदमी को आत्मा से मिलने नहीं देता। जब लगेगा कि हम टाइम का इस्तेमाल कर रहे हैं और जब आप ध्यान करने बैठोगे आप एक घंटा बैठ गये, आधा घंटा आपने निकाल दिया, ठीक है कि आपको पता नहीं पड़ा कि आधा घंटा कहाँ गया। लेकिन एक क्षण आपके मन में आयेगा कि time waste करने में कोई मतलब नहीं है, यह मोह है। इसी मोह बुद्धि के कारण हमारी आत्मा में गति नहीं होती और हमारी आत्मा में ध्यान करने की परिणति नहीं बनती। अब इस मोह को कोई भी नाम दे दो दर्शनमोह भी कहते हैं, चरित्रमोह भी कहते हैं। सिद्धान्त की दृष्टि से अगर दर्शनमोह कहा जायेगा तो वह कहलायेगा मिथ्यात्व का उदय लेकिन अध्यात्म की दृष्टि से दर्शनमोह उसी का नाम है जो आपको आपकी आत्मा की रुचि उत्पन्न नहीं करने दे रहा है। आपको स्वयं अपनी आत्मा से रुचि

ध्यान करने से जो आपको तृप्ति महसूस होती है इसी तृप्ति को कहते हैं आत्मिक सुख।

नहीं हो रही है इसका मतलब है आपके अंदर वह मोहनीय कर्म का अंधकार पड़ा हुआ है। यह मोहनीय कर्म का अंधकार आपके अंदर स्वयं आत्मा में आत्म रुचि उत्पन्न नहीं करने देगा कि मैं आँख बंद करके आत्मा की ओर उन्मुख हो जाऊँ। यह रुचि भी आपके अंदर तब पैदा होगी जब आप दर्शन मोहनीय कर्म या दर्शन मोहनीय अंधकार को तोड़ देंगे। तभी आपके अंदर यह रुचि पैदा होगी। आप से कहा जाये कि आप ध्यान करो तब आप आँख तो बंद कर लोगे लेकिन आत्मा की जो रुचि उत्पन्न होनी चाहिए वह आत्मा की रुचि तो तभी उत्पन्न होगी जब आपने अपने दर्शन मोहनीय कर्म पर प्रहार किया हो। आध्यात्म की भाषा में वो ही दर्शन मोहनीय है जिससे आपको अपनी ही आत्मा में रुचि उत्पन्न ना हो। उस रुचि को उत्पन्न करने के लिए भी आपको ध्यान करना और रुचि उत्पन्न होने के बाद भी ध्यान करना। आत्मा की रुचि उत्पन्न हुए बिना आपका कोई भी मोक्षमार्ग बनने वाला नहीं है, यहीं से शुरूआत होती है ध्यान की। जब आप अपनी स्वयं में स्वयं की रुचि पैदा करेंगे तब आपकी आँखें अपने आप बंद हो जायेगी। जब कभी भी आपको एक बार ऐसी अनुभूति हो गयी कि आज हम बिजोलिया में आये और भगवान पारसनाथ की जहाँ शिलायें पड़ी हैं, उन शिलाओं पर बैठकर एक बार भी थोड़ा सा अनुभव किया है तो अगली बार आपके पैर दौड़ते-दौड़ते आने का मन बना लेंगे। क्योंकि जब आप घर पर जाओगे तो आपको लगेगा कि जो अनुभव हमें वहाँ हुआ था वही अनुभव घर में होता ही नहीं है। आप घर की छत पर भी बैठ जाओगे तो भी नहीं होने वाला। एकदम Delux रूम में बैठे जाओगे तो भी नहीं होने वाली वो चीज जो आपको जहाँ जिस क्षेत्र पर मिलेगी वह उसी क्षेत्र पर मिलेगी। उसी क्षेत्र पर उन चीजों को प्राप्त करने के लिए मुनि महाराज भी चले आते हैं और मुनि महाराज भी कितने गाँवों को, शहरों को छोड़कर इसलिए चले आते हैं और कुछ नहीं चाहिए महाराज को। तुम्हारे हाथ का दिया हुआ भोजन भी ना मिले तो चलेगा। इतनी उन्हें आत्मरुचि उत्पन्न हो जाती है कि आचार्य कहते हैं तुम्हारा मुख्य भोजन क्या है 'तपः सदशनम्' तप ही तुम्हारा समीचीन भोजन है और 'विज्ञानं सलिलम्' विज्ञान ही तुम्हारा जल है। जब इस प्रकार की भावनायें उत्पन्न हो जाती हैं तो तप करना ही भोजन हो जाता है और भेद विज्ञान में आनंद आना ही उनका जल हो जाता है। आत्मा की तृप्ति तो उसी से होती है बाकी शरीर की तृप्ति करने के लिए कुछ करना पड़े यह बात अलग है। लेकिन आत्मा की तृप्ति तो इसी से मिलती है और इसलिए मुनि महाराज को कोई choice मिल जाती है तो वह क्या choice करेंगे? अगर उनके सामने दो विकल्प आ जायें तो सबसे अच्छा विकल्प यह होगा कि जहाँ पर अपने आत्म परिणामों में विशुद्धि बढ़े, जहाँ पर अपनी आत्मा को सहज शान्ति मिले ऐसे स्थानों पर चलना ही मुनिराज पसंद करते हैं। जब मुनिराज जायेंगे तो श्रावक लोग अपने आप आ ही जायेंगे। उनको तो वह सहज शान्ति Plus में मिल जायेगी क्योंकि उनको तो जहाँ आना है वहाँ तो आना ही है और वहीं पर Plus में सहज शान्ति और मिल गई तो

मोह का अंधकार आपके अंदर स्वयं आत्मा में आत्म रुचि उत्पन्न नहीं करने देगा।

और बड़ी बात हो गई। यह शान्ति जो आपको मिलेगी जो सुख आपको मिलेगा यह एक बार आपके interest में आ जाये।

सम्यग्दर्शन का प्रकाश :

Interest हुए बिना कभी भी हमें कोई भी आगे की बढ़ोत्तरी के रूप में वह चीज नहीं मिलती। सबसे पहले हमें interest चाहिए। interest कहाँ से जागृत होता है। एक बार अपने को कोई चीज दिखने को एक बार प्रकाश मिल जाये इसलिए सम्यग्दर्शन प्रकाश मिल जाये। सम्यग्दर्शन रास्ता नहीं है, सम्यग्दर्शन तो केवल प्रकाश है। वह सम्यक्चारित्र के माध्यम से जब आप आगे बढ़ेंगे तो तब रास्ता मिलेगा। आप रास्ते पर चलेंगे लेकिन एक बार रास्ता दिख तो जाये कि वह रास्ता जाता कहाँ है, अभी तक तो हम अंधकार में पड़े रहे हमने कभी रास्ता देखा ही नहीं। सम्यग्दर्शन के माध्यम से हमको रास्ता दिख जाता है कि यह रास्ता है। आत्मा को परमात्मा बनाने का यह रास्ता है। जिस रास्ते पर चलते हुए अपने राग, द्वेष, मोह, मत्सर कम होते चले जायें और जिस रास्ते पर चलते हुए अपनी आत्मा सहज शान्त भाव में परिणत करती चली जाये। समझ लेना वही रास्ता आत्मा को परमात्मा बनाने का है। उस रास्ते के लिए हमें जो कुछ भी करना पड़े हमें सब कुछ मंजूर होगा। उसमें हमें कठिनाई भी दिखाई नहीं देगी क्योंकि आपको एक बार वह रास्ता दिखाई गया है कि यह रास्ता अच्छा है तो उस रास्ते पर चलने में कोई भी कठिनाई हो वह कठिनाई नहीं लगेगी। आपको व्रतों के पालन करने की कठिनाई भी मालूम नहीं लगेगी। जो लोग कहते हैं कि हमें व्रतों को धारण करने में डर लगता है, हमारी सामर्थ्य नहीं है, हमें लगता है कि उन्हें अभी प्रकाश मिला नहीं है क्योंकि रास्ता दिखने के बाद तो आदमी दौड़ेगा। उसके ऊपर जिसको हमने कभी देखा नहीं, आज वह दिख जाये और हमें उसमें रुचि उत्पन्न हो जाये तो फिर हम वहाँ खड़े कैसे रह सकते हैं सम्यग्दर्शन, सम्यग्दर्शन रटकर के हम रह कैसे सकते हैं? जो रह रहे हैं हम समझते हैं कि उनके पास अभी सम्यग्दर्शन है ही नहीं। अगर सम्यग्दर्शन हो जायेगा तो सम्यक्चारित्र को धारण करने में देर नहीं लगती है। वह अपने आप रास्ता खोजने लग जाता है और रास्ते कहीं अलग से नहीं बनते हैं भीतर का रास्ता तो आपके हाथ में है और बाहर का रास्ता तो केवल आपके परिणामों के साथ चलने वाला है। मान लो आप चल रहे हैं, तो कुछ भी देखकर नहीं चलते हैं। आपके सामने जो आ जाता है आप वो देखते हैं, आप कभी भी जमीन पर देखकर नहीं चलते हैं और अगर आपको कभी जमीन पर देखने की जरूरत पड़ जाये तो आप इसलिए नहीं देखते हो कि हमें यहाँ किसी जीव की रक्षा करनी है। आप किसलिए देखते हैं? पता क्या हमारे पैरों में कोई काँटा या काँच चुभ जाये वो भी तब देखोगे जब आप पैदल चलोगे। गाड़ी पर चलोगे तो मस्त होकर चलोगे क्योंकि जो भी चुभेगा वो तो टायर को चुभेगा हमको तो चुभने वाला नहीं तो यह भी आपके

लिए निश्चिंतता हो गयी। जब आप पैदल चलोगे उस समय पर आपके मन में यह भाव आयेगा कि पैरों में काँटा न चुभ जाये, हमारे पैरों में ठोकर न लग जाये, हमारे पैरों में किसी भी प्रकार का कोई व्यवधान उत्पन्न न हो जाये। यह बात आपके अंदर आयेगी तो भी आपके अंदर चलने की सही प्रयोजनता समझ में नहीं आयी क्योंकि चलने का प्रयोजन केवल अपने को बचाना नहीं है दूसरों को भी बचाना होता है। चलने का प्रयोजन केवल इतना ही कि अपने को बचायें ऐसा स्वार्थ भाव मत रखना। हमारे चलने से कभी किसी दूसरों को चोट ना पहुँचे। जब ऐसा भाव आ जायेगा तो आप जब भी अपनी आँख खोलेंगे, बाहर चलेंगे तो आपके अन्दर परिणाम धर्म का परिणाम होगा जिसे हम दया का परिणाम कहते हैं। वह धर्म आपके आगे-आगे चलेगा, वह दया धर्म का परिणाम आपके चलने में आ जायेगा। उस समय पर चलना तो आपका पहले भी हो रहा था, अभी भी चलोगे लेकिन आत्मरुचि उत्पन्न होने से, सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति होने से आपके चलने में अन्तर आ जायेगा। अब आप देखकर चलोगे तो इस भाव से चलोगे कि हमसे जीव दया हो जाये, कोई भी जीव हमारे पैरों से मर न जाये और पहले आप चल रहे थे कि हमारे पैरों में काँटा या काँच या ठोकर न लग लाये बस इतना सा अन्तर आया। चलना तो आपको ही है। यह जो आपके भावों में अन्तर आया यही अन्तर आपके भीतरी चारित्र की समायोजना को करा देता है। चारित्र भाव उत्पन्न होगा तो बाहर भी आपके अंदर की वह चारित्र की परिणति दिखाई देगी और उसी चारित्र की परिणति से आप चलोगे तो आपको अपने आप सब कुछ अच्छा दिखेगा, अच्छा लगेगा और अच्छा मिलेगा। अच्छा हम हमेशा बाहर-बाहर ढूँढ़ते हैं, सब कुछ अच्छा मिल जायें, अच्छा घर मिल जाये, अच्छी बीवी मिल जाये, अच्छे बच्चे हो जायें और वह अच्छे होते हुए भी कहीं न कहीं बुरे हो जाते हैं। चाहते तो हम अच्छा ही बनाना है लेकिन उस अच्छाई में भी कभी-कभी बुराई दिखने लग जाती है। हम यह भूल जाते हैं कि वह बुराई आयी कहाँ से। जब कोई चीज हमें पहले अच्छी लगी थी तब हमने उसे अपने पास में रख लिया उसके बाद भी बुराई आ कहाँ से गई। पहले जिस बच्चे को आप अपनी गोद में लिये रहते हो, अच्छा समझकर अपने गले से चिपकाये रहते हो बाद में फिर उसी बच्चे को चाटा भी मारते हो। जब आपको अच्छाई-2 दिख रही थी वह बच्चा अच्छा ही अच्छा दिख रहा था तो वह बुरा हो कैसे गया? और कभी-कभी वह बुराई बहुत बढ़ जाती है। अगर वह बुराई बढ़ रही है तो आप यह मानकर चलो कि वह आपके अंदर का attitude बदलने के कारण से बढ़ रही है बच्चा तो वही है जो पहले था। वह आपका भाई, पत्नी वही है जो पहले थी लेकिन अब आपके मन में बुराई का भाव आ रहा है, तो यह आपके मन का ही दोष है और इस दोष को जब आप स्वीकार करोगे तो यही आपके अंदर अन्तर्दृष्टि पैदा करेगा। जिसे आचार्य कहते हैं आत्म-चित्त में उत्पन्न हुए दोषों की भ्रान्ति से रहित हो जाना।

चित्त में उत्पन्न हुए आत्म-दोषों की भ्रान्ति से रहित हो जाना ही अंतर्दृष्टि है।

चित्तदोषात्मविभ्रान्तिः परमात्मातिनिर्मलः।

अन्तर आत्मा कैसा होता है कि चित्त में उत्पन्न हुए दोषों को मैं आत्मा की भ्रान्ति नहीं कहता हूँ। क्रोध आया किसको आया तब आप तुरन्त कहोगे कि महाराज मैं बहुत गुस्सा करता हूँ मुझे बहुत क्रोध आता है और अगर मैं कभी गुस्सा कर भी लूँ तो कभी नहीं कहूँगा कि मैंने गुस्सा किया है क्योंकि वह जो चित्त में उत्पन्न जो दोष है वह मेरा नहीं है। वो आत्मा का नहीं है और वह आत्मा में कभी भी हो नहीं सकता अगर वह दोष आत्मा का हो गया तो आत्मा कभी भी दोषों से मुक्त हो नहीं सकता। आप सोचोगे कि महाराज यह तो बहुत अच्छा तरीका है, इसको हम अपनाते हैं। गुस्सा भी करें और यह भी कहें कि यह दोष हमारा नहीं है यह तो चित्त में उत्पन्न हुआ दोष था आत्मा तो इससे सर्वथा पृथक् है।

अगर आप किसी अध्यात्म के सूत्र को, उत्कृष्टता के सूत्र को अपनाओगे तो उससे भी कभी आपको हानि नहीं होगी। आप को लाभ ही होगा, यह उत्कृष्ट भाव है जो आचार्य कह रहे हैं कि उत्कृष्ट भाव करो। जितना उत्कृष्ट कर सकते हो करो। उस उत्कृष्ट भाव से आपको भले ही मोक्ष ना मिले लेकिन आपको उस समय कर्मों से तो मुक्ति ही मिल जायेगी। देख लेना अगर आप को गुस्सा बहुत आता है और गुस्सा करने के बाद यह सोचना कि गुस्सा मेरे चित्त में उत्पन्न हुआ है मेरी आत्मा का स्वभाव नहीं है। अपनी आत्मा को स्वयं सुनाना और अपनी आत्मा में यह भावना लाना, गुस्सा करने के बाद ही यह भाव ले आना कोई बात नहीं आपके गुस्से की Habbit धीरे-धीरे कम हो जायेगी। आप जैसे ही भावना करेंगे यह चित्त में उत्पन्न हुआ दोष मेरी आत्मा का स्वभाव नहीं है यह क्रोध भाव मैंने नहीं किया। तुम अपने अन्दर ही चिल्लाओगे, आपको एक दूसरी चीज दिखाई देगी यह करने वाला कोई और है और जो करने के बाद अफसोस कर रहा है, वह कोई और है, यह दो चीजें हो गई। आपको यह भी महसूस करने में आ रहा है कि मैं गुस्सा करने वाला नहीं हूँ, मैं नहीं कर रहा हूँ फिर भी आप करते चले जा रहे हो मानो आपके भीतर दो लोग बैठे हैं। आपकी आत्मा devided है दो भागों में और वह आत्मा तब तक devided बनी रहेगी जब तक आप अपने अन्दर इस तरह से एकता लाने का प्रयास नहीं करोगे। आप अपनी आत्मा को समझाने का प्रयास नहीं करोगे और जब आप अपनी आत्मा को समझाने लग जाओगे। गुस्सा तो किया, अहंकार तो किया लेकिन यह मैंने नहीं किया, मैं इसको कर ही नहीं सकता यह गुस्सा करना मेरा nature है ही नहीं फिर भी यह हो गया, हो रहा है, क्यों हो रहा है? यह मैं नहीं जानता। अपने से खुद कहो अपने अन्दर खुद इस बात को दोहराओ कि गुस्सा करने वाला कौन और गुस्से पर पछतावा करने वाला कौन तो आपको पता चलेगा कि गुस्सा करने वाला आपका मन है, चित्त है और गुस्से में पछतावा करने वाली आपकी आत्मा है। आत्मा अगर कोई दोष कर लेती है तो उसके बाद पछताती है, मन कभी भी पश्चाताप नहीं करता। मन को अगर आत्मा समझा भी देगा तो बाद में मन फिर वही गलती करेगा मन और आत्मा फिर पछताएगी। वह पछताने वाला जो

गुस्सा मन करता है एवं पश्चात्ताप आत्मा द्वारा होता है।

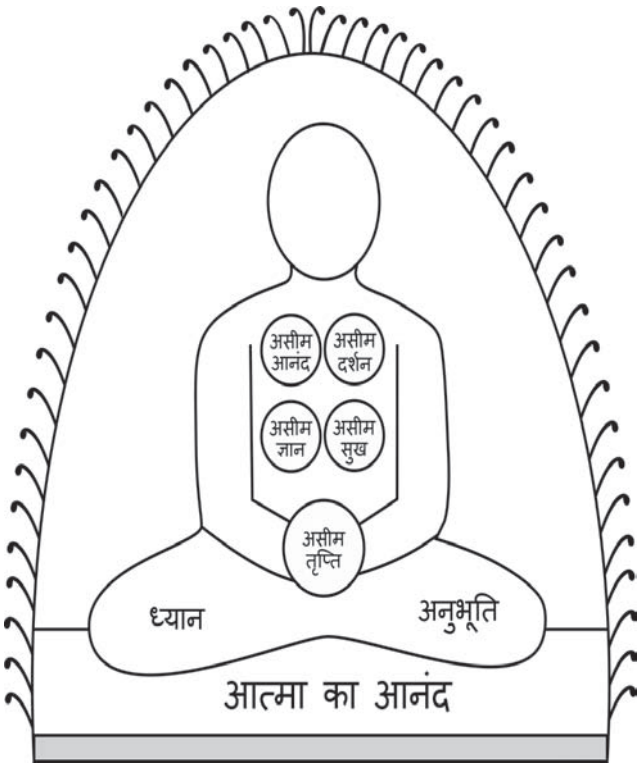

आत्मा है आप केवल उसको देखो, मन को मन के ऊपर छोड़ दो। जैसे ही इन दोनों के बीच में difference बन जायेगा आपके लिए वह गुस्सा आकर के चला जायेगा, वह आपके ऊपर effect नहीं डालेगा। आप करने का प्रयास करो, जिन लोगों को गुस्सा आता हो, जिन लोगों को क्या? महाराज, सभी को आता है, देवता रूप में कोई भी नहीं है। यहाँ पर शान्त बैठे हो तो भी नहीं कह सकते हैं कि इन्हें गुस्सा नहीं आता है। जब करने की जरूरत पड़ती है तो गुस्सा आ ही जाता है लेकिन करने के बाद आपके दिमाग में यह आ जाये कि यह मेरी आत्मा का कृत्य नहीं है यह मन ने कर लिया और मन हमारे वश में नहीं है इसलिए हो गया लेकिन मैं इस मन को वश में करूँगा ताकि आगे भी मन मुझे पछतावे की श्रेणी में ना डाल दें। चित्त में उत्पन्न हुए दोषों में आत्मा की भ्रान्ति मत करो। आत्मा की भ्रान्ति मतलब मैं ही गुस्सा कर रहा हूँ, मैं ही अहंकार, मायाचार कर रहा हूँ, यह आपकी अपनी आत्मा की भ्रान्ति हो गयी। जिसमें आत्मा नहीं है उसमें भी आप आत्मा को लगा रहे हो और आत्मा को अगर लगाना पड़े तो अपनी आत्मा में केवल यह देखो–

''चित्ते कुर्वन् निरवधि सुखं, ज्ञान दृगवीर्य रूपम्''

मैं कैसा हूँ–निरवधि। निरवधि का मतलब होता है असीम। जिसकी कोई सीमा नहीं है ऐसा असीम आनन्द, असीम दर्शन, असीम ज्ञान, असीम सुख हमारे अन्दर है वही हमें परमात्मा के रूप में दिखाई दे रहा है। हम में और उसमें, दोनों में कोई अन्तर नहीं है। जब हम परमात्मा का ध्यान करने लग जायें तो हम उसी रूप हो जायें। उसी रूप होने का मतलब है हम उसी के प्रकाश में अपने उपयोग को डाल दे और जब आपके अन्दर ऐसी परिणति आ जायेगी तो वही परिणति भले ही आपको लगे कि यह झूठी है, वही आपको तृप्ति देने वाली होगी और वही तृप्ति कहलाती है आत्मा का आनन्द। उस आनन्द को लेने का प्रयास करो जो आनन्द आचार्यों ने गुफाओं में रहकर, जंगलों

जब हम परमात्मा का ध्यान करने लग जायें तो हम उसी रूप हो जायें।

में एकान्त साधनाओं को करके उनकी अनुभूति में आया। उस अनुभूति को उन्होंने इन ग्रन्थों के माध्यम से लिखा है। यह इष्टोपदेश ग्रंथ, समाधितन्त्र ग्रन्थ यह ऐसे ग्रन्थ हैं जो अध्यात्म की मुख्यता को लिए हुए हैं और आचार्य महाराज की स्वयं की अनुभूतियाँ हैं। इन अनुभूतियों को उन्होंने लिखने का प्रयास किया जबकि अनुभूतियों को लिखना बड़ा कठिन होता हैं लेकिन उन्होंने अनुभूतियों को लिखा। आज वह अनुभूतियाँ आपको सुनने में भी आ रही है लेकिन आपके अन्दर उस प्रकार की रुचि उत्पन्न होने में नहीं आयी। आप बिजौलिया आये हो, इस क्षेत्र पर आये हो तो भगवान के दर्शन तो करना ही लेकिन बाहर उस शिला पर जाकर जरूर बैठना और वहाँ जाकर केवल पाँच मिनट शान्ति से बैठना। बस यह नहीं सोचना कि हमको क्या करना है और क्या नहीं करना है, बस आप बैठे रहना। आपको बैठे-2 भी अपने आप लगने लगेगा कि हम क्या करने योग्य हैं और क्या करने योग्य नहीं हैं? यह अभ्यास आपके जगह-2 पर चलते रहना चाहिए। आप अनेक तीर्थ क्षेत्रों पर जाते हो, उन तीर्थ क्षेत्रों पर भी ऐसी ही आत्मशान्ति को खोजने के स्थान ढूँढ़ा करो और आत्मशान्ति के लिए ही प्रयास किया करो। क्योंकि आदमी के मन में शान्ति नहीं है तो किसी भी कार्य से उसका कोई प्रयोजन सिद्ध होने वाला नहीं है। इसलिए हमेशा सबसे बड़ी चीज है हमारी आत्मा को शान्ति मिले, जीते जी शान्ति मिल जाये। मरने के बाद तो सभी कहते हैं कि आत्मा शान्त हो गयी है मरने से पहले जीते जी शान्ति मिले। इसलिए आचार्य कहते हैं कि समाधि का मतलब यह नहीं है कि आप लेट जाओ और जब आपके प्राण निकलकर जाने लगे तभी समाधि होगी। समाधि का मतलब है हर समय अपना मन आधि-व्याधियों से मुक्त रहना, मानसिक चिंताओं से रहित होना। अगर आपका मन मानसिक चिंताओं से रहित है तो आप हर समय समाधि में हो। समाधि में ही बैठे हों वहीं आपकी समाधि चल रही है, अगर आपके मन में शान्ति है। तो वही शान्त मन ही समाधि कहलाता है। इसलिए कभी भी यह मत समझना कि समाधि का मतलब एकान्त रूप से लेट जाना या असहाय स्थिति में पड़ जाने का नाम समाधि है। मन को जीते जी शान्त कर लो इसका नाम समाधि है। मरने के बाद तो सब लोग शान्त हो जाते हैं। जीते जी मन में शान्ति आये और फिर जब मन बाहर आये तो उसको लगे कि अब फिर क्रान्ति के वातावरण में जाना पड़ रहा है लेकिन लौटकर शाम तक पुनः इस शान्ति के वातावरण में आना है। अपने अन्दर बार-बार आने की जब रुचि उत्पन्न हो जायेगी तो समझ लेना कि आपने इस मनुष्य जन्म में सबसे बड़ा काम कर लिया है। उसी काम की अनुभूति आप कर लिया करो। उस अनुभूति को करने के लिए आपके मन में बहुत सारे विचार चल रहे हों, उन विचारों से आप मुक्त हो सकते हो तो अपने ही अन्दर एक अन्तर्गूंज पैदा करना।

समाधि का मतलब है हर समय पर अपना मन-मानसिक चिंताओं से रहित होना।

स्वर्ग जाने का फल

5

हृषीकज-मनातङ्कं दीर्घकालोपलालितम्।
नाके नाकौकसां सौख्यं नाके नाकौकसामिव॥

अन्वयार्थ— (**नाके**) स्वर्ग में (**नाकौकसाम्**) देवों का (**हृषीकजं**) इन्द्रियों से उत्पन्न (**अनातङ्कं**) दुख रहित और (**दीर्घकालोपलालितम्**) दीर्घकाल तक सेव्य (**सौख्यं**) सुख (**नाके**) स्वर्ग में (**नाकौकसाम् इव**) देवों के समान ही होता है।

☞ **स्वर्ग का स्वरूप**

कल आप लोगों ने पढ़ा था (चतुर्थ श्लोक) कि जो भाव हमें मोक्ष दे सकता है उस भाव से यदि स्वर्ग की प्राप्ति हो जाये तो कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। एक उदाहरण भी दिया है आचार्य महाराज ने कि जो व्यक्ति एक गव्यूति तक गमन करने की क्षमता रखता है। (एक गव्यूति दो कोश के बराबर होता है) ऐसा व्यक्ति अगर आधे कोश तक चला जायेगा तो उसे कोई खेद खिन्नता नहीं होगी।

जो दो कोश तक किसी भार को ले जा सकता है वह आधे कोश तक तो उस भार को आराम से ले जा सकता है। इसी तरह से जिन भावों से हमें परमात्म तत्त्व की प्राप्ति हो सकती है, अगर बीच में उन्हीं भावों के कारण से हमें स्वर्ग आदि की प्राप्ति हो जाये तो इसमें कोई बहुत बड़ी बात नहीं है और ऐसा होता भी है।

स्वर्ग का स्वरूप :

यहाँ स्वर्ग के स्वरूप का वर्णन किया जा रहा है। हृषीकज.... बोलते हैं इन्द्रियों को। जो पाँच इन्द्रियाँ हैं, उन पाँचों इन्द्रियों से उत्पन्न हुआ सुख जो स्वर्ग में होता है, वह अद्‌भुत होता है। ऐसा सुख तीन काल में भी आपको प्राप्त नहीं हो सकता। मनुष्य पर्याय में वह सुख बहुत थोड़ा मिलता है। देव पर्याय में, स्वर्गों में वह सुख मिलता है। पाँचों इन्द्रियों के जितने भी अच्छे से अच्छे विषय हो सकते हैं, वह सारे के सारे हमेशा स्वर्गों में उपलब्ध रहते हैं।

आप जानते होंगे कि पाँच इन्द्रियों में स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण इन्द्रिय आती है। इन पाँचों इन्द्रियों के विषयों से ही हमारा जीवन चलता है। किसी भी एक विषय में अगर थोड़ी कमी हो जाती है तो हमें ऐसे लगता है कि मरने जैसी नौबत आ रही हो। बिगड़ता कुछ नहीं है लेकिन लगता है। स्पर्शन इन्द्रिय का विषय भी हमें बहुत ज्यादा उपलब्ध रहता है और उसको भी हम जरूरत से ज्यादा चाहते हैं। जब कभी हमें थोड़ी सी गर्मी लगती है तो हवा की जरूरत पड़ती है। हवा में अगर तेजी न हो तो लगता है कि हमें कोई सुख मिल ही नहीं रहा। आप अभी बैठे हो पंखा नहीं चल रहा तो भी आपको गर्मी नहीं लग रही होगी। कोई पसीना नहीं आ रहा होगा। लेकिन जब तक हमें तेजी के साथ, स्पर्शन इन्द्रिय के सुख के लिए हवा नहीं मिलती, तब तक हमें आनन्द नहीं आता। इस स्पर्शन इन्द्रिय का सुख अनेक प्रकार का होता है। अगर आपको स्पर्श का अच्छा अनुभव होगा तो इस स्पर्शन इन्द्रिय के माध्यम से ही होगा, अच्छी हवा का स्पर्श होना चाहिए। जिस mat पर बैठे हैं, वह भी अच्छी मुलायम होनी चाहिए। जिस गद्दे पर लेटे हैं वह डनलप का होना चाहिए। sofaset भी अच्छे foam का होना चाहिए। सब विषय स्वर्गों में जिस मात्रा में मिलते हैं, उस मात्रा में मनुष्यों को, कभी मिल नहीं पाते हैं। फिर भी मनुष्य कोशिश करता है जितना उसका पुण्य होता है उतनी उन सुखों को प्राप्त करने की इच्छा करता है। लोक में भी वह सुख उपलब्ध रहते हैं जितने ज्यादा से ज्यादा हो सकते हैं। अपने लिए अच्छी वस्तुएँ संसार में उपलब्ध कराने

स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण इन्द्रियों के विषयों में ही जीवन समाया है।

के लिए लोग अनेक प्रकार के प्रयास करते रहते हैं। विज्ञान का, technology का और कोई काम नहीं है। यही काम है कि सुख की सामग्री अच्छी से अच्छी मिलती रहे। यह हमारी आदत पड़ी है कि किसी, भी चीज को हम शान्ति से अनुभव में लाना नहीं चाहते हैं और आदत है कि चाहे गर्मी हो या ना हो, अगर पंखा लगा हुआ है तो वह चलना चाहिए। अगर यहाँ भी sofaset डाल दोगे तो लोग जमीन पर नहीं बैठेंगे, वे sofa पर ही बैठेंगे।

अगर सुविधाएँ होंगी तो लोग उसके आदी हो जाते हैं और जितना ज्यादा वह आदी होता चला जाता है, उतना ही ज्यादा वह इन्द्रिय सुख में लिप्त भी होता चला जाता है। फिर उसकी अगर थोड़ी सी भी सुख में कमी आती है तो वह उसे बहुत परेशानी दिखती है। जब यह कूलर-पंखे नहीं होते थे, तब भी तो लोग रहते होंगे। तब मनुष्य नहीं रहते थे क्या? सभी जानवर तो नहीं होते थे, मनुष्य भी होते थे और उस समय भी लोग सुख से रहते थे। लेकिन उन्हें इतनी आकुलता नहीं रहती थी जितनी आकुलता हमें आज हो जाती है। वह आकुलता इस बात को लेकर भी हो जाती है कि अगर पंखा लगा है लेकिन हम नहीं चला रहे तब भी आकुलता रहती है। जब कोई साधन उपलब्ध है तो हम उसका उपयोग क्यों नहीं कर रहे हैं। यह जो मन के अंदर आकुलता आ जाती है, यह इन इन्द्रियों के विषयों के कारण आ जाती है। अगर आपके पास वह साधन न हो तो आपको कोई आकुलता ही ना रहे। आपके मन में विचार आयेगा ही नहीं कि हमें पंखा चलाना है या उसकी गति बढ़ानी है। यह सब विचार इसलिए आते हैं क्योंकि हमने वह सब साधन उपलब्ध करा रखे हैं।

श्री लालबहादुर शास्त्री का नाम आपने सुना होगा, जो भूतपूर्व प्रधानमन्त्री रहे हैं, उनके समय में यह पंखे, कूलर आना शुरू हुए थे। उन्हीं के समय की एक बात है जो एक प्रसंग में हमने पढ़ी थी। जब वो प्रधानमन्त्री बन गये तो उनके घर में cooler लगाने के लिए व्यक्ति आये। सरकार की तरफ से घरों में cooler लगते हैं, तो इसलिए वे आये। प्रधानमन्त्री ने कहा कि भाई आप यह क्या कर रहे हो? तो उन लोगों ने कहा कि अब आप प्रधानमन्त्री हो गये हो, आपके घर में अच्छी सुविधाएँ होनी चाहिए, इससे आपको अच्छी हवा मिलेगी, अब आपको ठंडी हवा में रहना है। तो उन्होंने कहा हमें इन की कोई जरूरत नहीं है और जैसा हम पहले रहते थे, अभी भी वैसा ही रहेंगे। हम प्रधानमन्त्री हो गये हैं तो कोई बात नहीं लेकिन इन सुख-सुविधाओं के अधीन हम नहीं होना चाहते हैं। हम अकारण न तो सरकार का पैसा खर्च करेंगे, न ही यह गंदी आदतें डालेंगे। उनकी बेटी उनके पास खड़ी थी कहने लगी पिताजी आप इतने बड़े आदमी हो गए है, अगर आपको यह सुख-सुविधाएँ मिल रही हैं तो आप मना क्यों कर रहे हैं? शास्त्री जी बेटी से कहते हैं बेटी! जब यह cooler अपने घर में नहीं है तब भी हम सुख से ही रह रहे हैं। और जब यह आ जायेगा तो और नई परेशानियाँ खड़ी हो जायेंगी। कहीं इसके connection खराब हो रहे हैं, कहीं यह जाम

मन के अंदर आकुलता इन्द्रियों के विषयों के कारण से आ जाती है।

हो रहा है, कहीं यह खराब हो रहा है। कहीं इसमें पानी खतम हो रहा है, हम जितना इन सब चीजों से दूर रहेंगे, उतना ही अपने आप में खुश रहेंगे।

इसलिए अपने को ऐसी आदतें डालना ही नहीं। इस प्रकार उन्होंने अपनी बेटी को समझा दिया। ऐसे लोग भी देश में रह चुके हैं, रहते हैं, आप उन्हें ढूँढ़ लेना।

कई लोग ऐसे मिल जायेंगे जो हर चीज का सही सदुपयोग करते हैं। बिजली का भी दुरुपयोग नहीं करना। हमें कोई भी साधन मिले तो उसका सदुपयोग करो। और उस सदुपयोग के माध्यम से ही आप किसी को बता पायेंगे कि वास्तव में किस तरह से हम अपरिग्रही धर्म के साथ जी सकते हैं। उस धर्म के साथ में रहने पर ही आपके अंदर यह भाव रहेगा कि हम बिना वजह किसी भी चीज को व्यर्थ में उपयोग में लाते हैं, तो उससे पाप का बन्ध होता है।

यह बात ठीक है कि हमको इन्द्रिय सुख-साधन बहुत मिलते हैं और इससे भी अधिक सुखों के साधन स्वर्गों में मिलते हैं यह आचार्य बता रहे हैं। आप अगर अभी थोड़ा सा कष्ट सह लोगे तो स्वर्गों में बहुत अच्छे सुख मिलेंगे। आप इन इन्द्रिय सुखों के स्वरूप को समझ लोगे तो आपको पता चलेगा कि इन्द्रियों के सुख भी अच्छे से अच्छे स्वर्ग के अलावा कहीं नहीं मिल सकते। स्वर्ग के अलावा अगर कोई दूसरी पर्याय है, मनुष्यों में, तो वह है भोग भूमि, वहाँ पर यह सुख मिलते हैं। यह कर्म भूमि है और एक होती है भोग भूमि। भोग भूमि में भी इसी प्रकार के सुख रहते हैं। कल्पवृक्षों से वहाँ पर हर प्रकार की सुख सामग्री की उपलब्धि रहती है।

हम देखते हैं कि इन इन्द्रियों के सुखों की Quality स्वर्ग में कुछ अलग ही होती है। आपको तो यहाँ पर मौसम के परिवर्तन के कष्ट भी हो जाते हैं। जबकि स्वर्ग में हमेशा एक जैसा मौसम रहता है। वहाँ न गर्मी होती है, न पसीना आता है, न मच्छर-मक्खी होते हैं। ऐसा उत्तम शरीर उन देवों को मिलता है, जिनको कभी पसीना तक नहीं आता। इसको कहते हैं वैक्रियक शरीर जबकि मनुष्यों का शरीर कहलाता है औदारिक शरीर। वैक्रियक शरीर में कभी किसी प्रकार के रोगों की उत्पत्ति भी नहीं होती। रोग ही नहीं होते वहाँ पर। वात, पित्त, कफ शरीर में होते नहीं। ऐसा सुंदर सुडौल शरीर रहता है कि एक बार जिस शरीर की प्राप्ति हो जाती है, उस शरीर में कभी भी जीवन के अन्त तक एक झुर्री भी नहीं पड़ती। वहाँ आयु बढ़ने पर भी शरीर में कोई कमजोरी नहीं आती। किसी भी शरीर के अंगोपांग में कोई defect नहीं आयेगा। आप विचार करो कि हम इस मनुष्य पर्याय में कितना भी सुख प्राप्त करने की इच्छा करें तो कितना प्राप्त कर पायेंगे?

जब तक आपकी इन्द्रियाँ और आपके अवयव हैं जैसे– liver, kidney, heart यह ढंग से काम कर रहे हैं तब तक तो आपको थोड़ा सा इन्द्रियजन्य सुख भी मिल जायेगा। पर जिस दिन इनमें कोई defect आ गया तो इन सुखों के लिए भी तड़पते रह जाओगे। कितनी पराश्रितता है हमारे लिए और वहाँ पर कोई पराश्रितता नहीं है।

साधनों के सदुपयोग के द्वारा हमें अपरिग्रही धर्म के साथ जीवन जीना चाहिये।

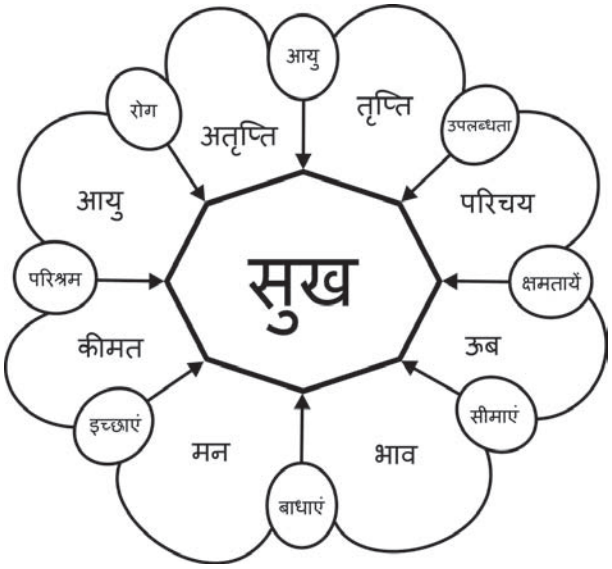

इसलिए आचार्य कहते हैं **'हृषीकजं अनातङ्कं'** अनातन्कम का मतलब है कि कितने भी हम इन्द्रिय सुखों को भोग लें पर वहाँ कोई आतंक पैदा नहीं होगा। आतंक से अभिप्राय है कि आपको भूख भी लगेगी तो वह पीडादायक नहीं होगी। भूख कब लगी और उसकी पूर्ति कब होगी इसमें समय का अन्तर भी नहीं रहता है। यहाँ भोजन करने के बाद भी आपकी आदत रहती है कि मुँह में पान मसाला, इलायची डाल लेना। हर समय आपको रसना इन्द्रिय का स्वाद आते रहना चाहिए।

जितनी-जितनी बार आपके अन्दर इच्छा पैदा होगी उतना-उतना आपके अंदर दुख है। इच्छा उत्पन्न होना दुःख की सूचना देता है। आपके अंदर वह दुख हर समय भरा हुआ है लेकिन आप उसे महसूस नहीं करते हो। उस दुख को दूर करने की सामग्री आपके पास हर समय उपलब्ध रहती है। यह जितनी भी सामग्रियाँ अपने लिये उपलब्ध कराके रखते हैं तो इन सामग्रियों के माध्यम से आपको ऐसा लगता नहीं है कि आपको कोई कष्ट हो रहा है लेकिन आप थोड़ा सा गहराई से देखो तो आपको कष्ट ही कष्ट है। अगर खाने में थोड़ी सी देरी हो जाये तो कैसी परेशानी हो जाती है भीतर से गुस्सा भी आ जाता है। उस भूख की तृप्ति होने के कारण उपलब्ध भी रहे परन्तु उसमें कुछ कमी हो जाये तो भी आपको गुस्सा आ जाता है। पेट भरना अलग बात है और मन भर जाना अलग बात है। आपको कभी यह महसूस ही नहीं होता कि यह भी एक रोग है, यह भी हमें पीड़ा दे रहा है जबकि यह रोग स्वर्ग में न के बराबर है।

आचार्यों ने लिखा है जितने सागर की वहाँ आयु होती है उतने हजार वर्ष के बाद में एक बार भूख की पीड़ा होती है लेकिन जितनी कम भूख और प्यास की इच्छा होती है उतना ही आपके शरीर का सुख रहता है और वह सुख उन देवों को मिलता है। जैसे किसी देव की आयु 22 सागर है तो 22000 वर्ष के बाद उसको भूख लगेगी वैसे ही उसके कंठ से अमृत झर जाता है। इधर इच्छा हुई उधर अमृत भरा है, कहीं बाहर से लाना भी नहीं है इसका नाम सुख है। यहाँ बैठकर उस सुख की कीमत तो समझ लो। जब तुम्हें उस सुख का परिचय हो जायेगा तब तुम्हें लगेगा कि यहाँ का सुख वास्तव में कुछ भी नहीं है।

स्वर्ग में देवों के सुख के सामने पृथ्वी के सुख वास्तव में कुछ भी नहीं हैं।

जिन्दगी भर कितना भी तुम परिश्रम कर लो लेकिन फिर भी आपको एक लिमिट से ही सुख की प्राप्ति के आयाम करने पड़ते हैं। यह परिणतियाँ बताती हैं कि मनुष्य को कोई सुख मिला है तो वह भी बड़ा limited है। तृष्णा तो बहुत है लेकिन उसकी पूर्ति तो अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार ही होती है और उसी क्षमता में उसे प्रसन्न रहना पड़ता है चाहे कितनी ही इच्छाएँ उत्पन्न होती रहें। इन्द्रियों के सुख स्वर्ग में कभी भी बाधा उत्पन्न नहीं करते। इसलिए आचार्य कहते हैं कि अनातङ्कं! वहाँ पर कोई आतंक नहीं है। वहाँ पर कितना भी इन्द्रियों का विषय होगा लेकिन कभी भी उससे देवों को कोई रोग उत्पन्न नहीं होगा और उन सुखों को भोगते हुए उनको कोई ऊब उत्पन्न नहीं होगी। आचार्यों ने लिखा है अगर किसी की 22 सागर की आयु है तो वह 11 महीनों में एक बार श्वास लेगा। अब समझ में आता है कि सुख इसको कहते हैं कि हमारी श्वास कभी भी फूले नहीं। हमें श्वास लेने का अहसास नहीं हो। जब आपके heart में, lungs में problem हो जाती है तो उस समय आपकी श्वास फूलने लग जाती है। जिनको दमा का रोग हो जाता है, आप महसूस नहीं कर सकते हैं कि उनकी दम कितनी घुटती है। जब श्वास लेने में दिक्कत होती है तब आप कितना हाँफते हैं। कम से कम स्वर्ग के सुख को देखने के बाद में इतना तो महसूस होने लगेगा कि हम जिन्हें सुख मान रहे हैं, वे वस्तुतः दुख हैं। हमारा शरीर हमें कितना दुख देता रहता है। जब हम तेज चलते हैं, ऊपर चढ़ते हैं, हाँफते हैं तो हम परेशान हो जाते हैं। हम कुछ अधिक खा लें तो हम परेशान हो जाते हैं। इस शरीर के अन्दर न जाने कितनी खराबी पड़ी है फिर भी हम इस शरीर को पालते-पोसते हैं और हम शरीर से सुख की इच्छा करते हैं।

आचार्य कहते हैं अगर तुमको स्वर्ग का स्वरूप समझ आ जाये और तुम थोड़ी सी धर्म की आराधना करने लगो तो तुम्हें लगेगा कि यह क्या शरीर मिला (10, 50, 100) वर्ष के लिए। इससे अच्छे तो देवों के शरीर होते हैं। भोग भूमि के मनुष्यों के शरीर होते हैं तो आपकी इस शरीर से भी विरक्ति हो सकती है। आपके अन्दर संयम का भाव उत्पन्न हो सकता है। संयम का भाव उत्पन्न होने से आपको कष्ट होने लगेगा और जैसे ही आपको कष्ट होगा तो आप सोचोगे कि इससे मिलना क्या है? इसलिए आचार्य वहाँ कहते हैं कि यह स्वर्ग है, यह मिलेगा तुमको। जब तक आपको यह पता नहीं चलेगा कि इस संयम से आपको फायदा क्या है, तब तक इसके प्रति आदर उत्पन्न नहीं होगा। इसलिए कहते हैं कि अगर संयम धारण करने में अगर थोड़ा कष्ट मिले तो सहन कर लेना, कोई अन्तर नहीं पड़ेगा इससे। तात्कालिक इतने से सुख के लिए अगर तुम उस सुख से वंचित रह जाओगे तो बनिया कैसे कहलाओगे? जितनी जमा पूंजी हमारे पास है, उससे कई गुना अधिक करने की योग्यता अगर किसी के पास है तो उसे बनिया कहते हैं। जो पुण्य हमें आज मिला है, उससे भी अधिक पुण्य हमें मिल सकता है। जो शरीर हमें आज मिला है, उससे भी अच्छा शरीर

संयम एवं व्रतों के द्वारा इंद्रिय सुख के साथ अतीन्द्रिय सुख की भी प्राप्ति होती है।

हमें मिलेगा, हमें चिंता करने की जरूरत नहीं इसको संयम में लगा दो। तब आपको वह संयम भाव भी अच्छा लगने लगेगा। उस संयम से, व्रतों के माध्यम से जब इस प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है तो फिर अतीन्द्रिय सुख आपको मिल सकता है क्योंकि वह अतींद्रिय सुख भी संयम के साथ ही आपको अनुभूति में आयेगा। यह तो इन्द्रिय सुख है। अतीन्द्रिय सुख की प्राप्ति के लिए भी आपको संयमित होना पड़ेगा। पाँचों इन्द्रियों के संयम के बिना कभी भी आपको सुख की प्राप्ति होने वाली नहीं है और ये पाँचों इन्द्रियाँ आपको परेशान करती रहती हैं। इन पाँच इन्द्रियों के सुख के लिए ही आपका पूरा का पूरा जीवन व्यतीत हो जाता है। आपने अच्छे कपड़े पहने हैं तो चक्षु इन्द्रिय के लिए पहने हैं। अपनी ही आँख से अपने को देखकर खुश होते रहना। हमारी चक्षु इन्द्रिय के माध्यम से हमारा शरीर कभी भी अप्रिय देखने में नहीं आना चाहिए। हम हमेशा इसी तरह के सुखों के प्रयास में लगे हैं। चाहे वह किसी इन्द्रिय का सुख हो। इसी प्रकार के सुख हमें चाहिए और हमारा मन इसी प्रकार के सुखों के पीछे लगा रहता है। जैसे पारा होता है वह सभी प्रकार की वस्तुएँ हजम कर लेता है। चाहें उसमें सोना भी डाल दो। सारा गला देता है। उसके बाद भी उतना का उतना ही रहता है। ऐसी ही स्थिति इस मन की होती है कितने ही इन्द्रिय के सुख इसमें डाल दो, यह वैसा का वैसा ही रहेगा। जो आपने कल भोगी थीं आज भी वो ही हैं फिर भी आपको तृप्ति नहीं होगी और उन तृप्तियों के लिए वह इन्द्रियों की सहायता लेता है। इन्हें इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाला सुख कहा जाता है वस्तुतः यह केवल एक मानसिक सुख है इस सुख की प्राप्ति के लिए ही यह संसारी प्राणी उलझा रहता है। घर के अंदर जितनी भी चीजें होंगी सब इन्द्रिय सुख के लिए हैं इसलिए इन कष्टों का स्वरूप समझ लो कि इस शरीर को ज्यादा इन्द्रियों के विषय देने से इसका कभी कोई हित होने वाला नहीं है। जितना ज्यादा इसका लालन पालन करोगे, उतना ही ज्यादा यह बिगड़ जायेगा। इसलिए आचार्य कहते **'दीर्घ कालोपलालितम्'** देवों में इन्द्रियों के सुख दीर्घ काल तक रहते हैं। आपके लिए यह दीर्घ काल तक रहने वाले नहीं हैं। आधी जिन्दगी तो उनको अर्जित करने में ही चली जाती है और 10-20 वर्ष तक वह भोगों को प्राप्त कर पाता है, उसके बाद वह बीमार पड़ जाता है। दीर्घ काल तक शरीर के सुख हमको वहाँ पर उपलब्ध रहते हैं और जितनी सागर की आयु मिली है उतने सागर तक उन सुखों में कोई कमी नहीं रहती है। ऐसे यह इन्द्रियों के सुख कैसे हैं **''नाकेनाकौकसां सौख्यं नाके नाकौ कसामिव''। नाक** माने होता है स्वर्ग। आचार्य कहते हैं कि स्वर्ग में होने वाले सुख की उपमा हम आपको क्या दें? वहाँ के सुख वहीं जैसे हैं जब कोई चीज अनुपमेय हो जाती है तब हम कहते हैं कि उसकी कोई उपमा ही नहीं है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि स्वर्गों में जो देवों को सुख मिलता है वह उनमें उन्हीं जैसा ही है, अन्य किसी जीव को उस सुख की प्राप्ति नहीं होती है फिर भी आचार्य कहते हैं-

कर्मपरवशे सान्ते दुःखैरन्तरितोदये।

इस शरीर को ज्यादा इन्द्रियों के विषय देने से इसका कभी कोई हित होने वाला नहीं है।

इस सुख की भी तुम इच्छा मत करना। तुम्हें अपना मोक्ष मार्ग बनाना है तो स्वर्ग सुख की भी इच्छा मत करना। ध्यान में रखना लेकिन इच्छा मत करना। इसी का नाम संयम है क्योंकि तुम अगर स्वर्ग के सुख की इच्छा करोगे तो तुम्हें स्वर्ग के सुख तो मिल जायेंगे लेकिन उसके आगे मिलने वाला मोक्ष सुख नहीं मिलेगा। इसलिए स्वर्ग के सुखों को जानो। यह जान लो कि हमारे सुख से अधिक दूसरे सुखी जीव भी हैं और वो बने रहते हैं। उन जीवों को इतना सुख मिल रहा है तो हम इतने से सुख के लिए क्यों परेशान है? इसलिए जानो, दुनिया की हर चीज जितनी जानने में आनन्द देगी उतनी प्राप्त करने में भी नहीं देगी। स्वर्ग व नरक दोनों का स्वरूप जानो, पाप व पुण्य दोनों का स्वरूप जानो, हर चीज का स्वरूप जानो। जानने में कोई दिक्कत नहीं है लेकिन इच्छा किसी की मत करना, कर सकोगे? अगर यह सारा का सारा सुख आपके लिए उपलब्ध न हो तो भी आप कोई चिन्ता मत करना, बिना माँगे भी सब कुछ मिल जाता है।

एक बच्चा था वह अपनी माँ के साथ अपने मामा के घर गया। जब वह मामा के यहाँ जा रहा था तो उसकी माँ ने उसे समझाया कि बेटा मामी के यहाँ जा रहे हैं और वहाँ मामी तुमको बहुत सारी चीजें खिलायेंगी परन्तु कुछ भी माँगना मत। जब वो बच्चा वहाँ पर गया तो उसकी मामी ने बहुत सारी टॉफियाँ वहाँ पर रख दीं और अच्छी-अच्छी चीजें वहाँ पर रख दीं और उससे कहा कि तुम्हें जो चाहिए वो ले लो। पर वह लड़का कहता है कि मुझे कुछ नहीं चाहिए। उसके जाने का समय आ गया तब तक भी उसने कुछ नहीं लिया। मामी ने कहा अब तुम जा रहे हो और अब तक तुमने एक भी टॉफी नहीं ली, क्या यह तुम्हें अच्छी नहीं लगती है? उसने कहा अच्छी तो लगती हैं, पर अभी मुझे जरूरत नहीं है, अभी मुझे नहीं लेना है, ऐसा कह कर उसने टाल दिया। जब वह जाने लगा तो मामी ने पूरी की पूरी टॉफी जेब में डाल दी। जब रास्ते में उससे पूछा तूने इतनी टॉफी क्यों ली तो उसने कहा कि मैंने अपने से कुछ भी नहीं ली यह तो सब मामी ने जबरदस्ती मेरी जेब में भर दी। यह छोटी सी घटना हमको बहुत बड़ी सीख दे सकती है अगर आप कोई चीज नहीं माँगते हो तो वह चीज उससे कई गुना बढ़ करके स्वयं मिल जाती है। अब माँ उसको समझाती है कि बेटा इसी तरह से जब भगवान के सामने भी जाना हो तो कुछ माँगना नहीं, सब मिलता है, अपने आप मिलता है। तू तो केवल भगवान की आराधना कर। इसलिए आचार्य समझाते हैं कि व्रत नियम संयम धारण कर। कहाँ स्वर्ग, कहाँ नरक, तू कुछ चिन्ता मत कर। अपने आप तुझे सब कुछ मिलने वाला है, तू इच्छा मत कर। जब सब कुछ अपने आप मिलता है तो उसमें आसक्ति नहीं होती है और एक बार आपके मन में यह भाव आ जाये कि अब जैसा जो मिल जायेगा हमारे लिए उतना ठीक है, इससे ज्यादा हमें गृद्धता करने की जरूरत ही नहीं है तो वह सुख भी आपको मिलेगा और उसके कारण लोभ कषाय का बंध भी नहीं होगा और आसक्ति का परिणाम भी कम रहेगा। इन्द्रिय सुख हमेशा सब जीवों के पास उपलब्ध रहे हैं। छोटे से छोटे कीड़े-मकोड़े भी इन्द्रिय

दुनिया की हर चीज जितनी जानने में आनन्द देगी उतनी प्राप्त करने में भी नहीं देगी।

सुख के लिए ही भागते फिरते हैं। जैसे चींटी एक शक्कर के दाने के लिए कितनी प्रयासरत रहती है, उसके अंदर एक बहुत बड़ी आहार संज्ञा रहती है। उसकी वह आसक्ति कब छूटेगी? वह तब छूटेगी जब वह 3 इन्द्रिय जीव भी आपकी तरह 5 इन्द्रिय बन जाये और उसको कोई सिखाने वाला मिल जाये। कोई ऐसे इष्टोपदेश पढ़ने को मिल जाये और उसके भीतर कोई ज्ञान की किरण जाग जाये तो संभावना है। अभी आपकी किसी इन्द्रिय की आसक्ति छूटी तो वह भविष्य में भी छूटी रह सकती है। एक बार तो इसको बुद्धिपूर्वक ही छोड़ना पड़ता है नहीं तो जैसे अज्ञानता से अनादिकाल से सब जीवों की परिणति होती आई है वैसी ही इस आत्मा की बनी रहती है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि इन में भी आप यह नहीं सोचना कि ये बहुत बड़े-बड़े सुख हैं। यह भी कर्म के पराधीन है **'कर्म परवशेशान्ते'**। मनुष्य के भी जितने सुख हैं, सब कर्म के पराधीन हैं। जब तक अच्छे कर्म का उदय चल रहा है, साता वेदनीय कर्म का उदय चल रहा है, तब तक आपका शरीर बहुत अच्छा है। आपने अपने शरीर को कितना ही अच्छा बनाकर रखा हो लेकिन अगर असाता वेदनीय कर्म का उदय आया तो सब खत्म हो जायेगा। शरीर की स्थिति हमारे कर्मों के आश्रित चल रही है। इसलिए इस पर भी कभी ज्यादा घमंड नहीं करना। ऐसा नहीं सोचना कि यह ऐसा ही बना रहेगा। यह भी धोखा देता है। फिर भी हमको इस पर कभी गुस्सा नहीं आता। इसलिए एक भजन लिखा गया है, उसकी पंक्तियाँ हैं–

''तन अपना जब धोखा देता, क्यों पर को चाहे,
पंछी मर जाता पिंजड़े में उड़ना ना चाहे।
अपने को पहिचान यहाँ और सबसे माँग विदाई,
कोई भी ना करे जिसे वो काम करो भाई।
अरिहंतों की प्रतिमाओं का ध्यान धरो भाई,
कोई भी ना करे जिसे वो काम करो भाई।''

हमारा चेतन रूपी पंछी इस शरीर रूपी पिंजड़े में ही फड़फड़ाता रहता है लेकिन इस शरीर से मुक्त नहीं होना चाहता। वह यह जानता है कि यह तन नश्वर है इसमें कुछ दिनों के लिए रहना है। यह पिंजड़ा भी बदल जाना है, यह पिंजड़ा भी टूट फूट जाये, खराब हो जाये लेकिन पंछी कभी भी इस पिंजड़े को छोड़ने की भावना नहीं करेगा कौन-सा ऐसा समय आये कि मैं ऐसा पुरुषार्थ कर लूँ कि यह पिंजड़ा ही छूट जाये। वह उस पिंजड़े में बैठा रोता रहेगा कि यह पिंजड़ा टूट गया, जल गया लेकिन यह भाव नहीं करेगा कि तू पिंजड़ा नहीं है और जो पिंजड़ा है वो तू नहीं है। पिंजड़े में रह रह कर के तुझे यह लगने लगा कि यही मेरा घर है लेकिन तेरे पास तो पंख है, तू तो उड़ सकता है। तुझे कभी पराश्रित होने का दुख न मिले इसके लिए तू प्रयास कर सकता है। लेकिन

कोई पंछी ऐसा भाव भी कर ले तो यह बहुत बड़े ज्ञान और सुयोग की बात है। उस पंछी की स्थिति आपके लिए एक रूपक के रूप में है जब यह गाने की पंक्ति आती है–''**पिंजड़े के पंछी रे.....**'' तब अपने बारे में नहीं सोचते। अगर शरीर में रोग हो गया तो सहना पड़ेगा, कौन वह रोग दूर करेगा? इतना पराश्रित जीवन है फिर भी वह पंछी पिंजड़े में सब सहन करता रहता है लेकिन यह नहीं सोचता कि इस पिंजड़े से मुक्ति मिल जाये। यह विचार में आने लगेगा कि कौन है जो इस शरीर में रह करके भी इस शरीर से दुखी नहीं है तब आपको अपने आप याद आने लगेंगे।''

णमो अरिहंताणं.....णमो सिद्धाणं।

वे केवल अरिहंत हैं और सिद्ध हैं। अरिहंत के पास तो शरीर है लेकिन वह उससे attached नहीं है लेकिन सिद्ध के पास तो शरीर भी नहीं है बिना शरीर के भी उनका आत्मा रह रहा है। वे अपने ज्ञान स्वभाव में लीन हैं और वे अपने उस स्वभाव में अनंत काल तक मग्न बने रहते हैं। बिना शरीर के भी यह आत्मा रहता है यह ज्ञान भी बहुत कम लोगों को हो पाता है। अरिहन्त और सिद्ध के बारे में भी बहुत से लोगों को confusion रहता है। अरिहंत एक बीच की अवस्था है और जैसे ही उनका शरीर छूट गया वो सिद्ध बन गये। अरिहंत अवस्था उनके केवलज्ञान तक उनके साथ थी। हम उनकी आराधना अरिहंत और सिद्ध भगवान की स्तुति के माध्यम से कर लेते हैं। अरिहंत और सिद्ध भगवान की हम स्तुति क्यों करें क्योंकि उनका ध्यान करने से ही हमारे अंदर एक रुचि उत्पन्न होती है कि पिंजड़े में रह कर के भी हम उस पंछी की तरह रह सकते हैं जिसको उस पिंजड़े से कोई लगाव नहीं है। पिंजड़े में रहकर उसको पिंजड़ागत दुख उत्पन्न नहीं हो रहा है और ऐसे ही पिंजड़े के बिना रहने वाले जीवों को हम मुक्त जीव कहते हैं। जो इस पिंजड़े से मुक्त हो गये वो सिद्ध भगवान हैं। जब भी **णमो सिद्धाणं** बोले तब हमें ऐसे मुक्त जीवों के बारे में स्मरण आना चाहिए, जो शरीर रूपी पिंजरे से बाहर निकले हुए हैं।

पिंजड़े के बिना रहने वाले जीवों को मुक्त जीव कहते हैं जैसे सिद्ध भगवान्।

सांसारिक सुख का स्वरूप

6

वासनामात्रमेवैतत्, सुःखं दुःखं च देहिनाम्।
तथा ह्युद्वेजयन्त्येते, भोगा रोगा इवापदि॥6॥

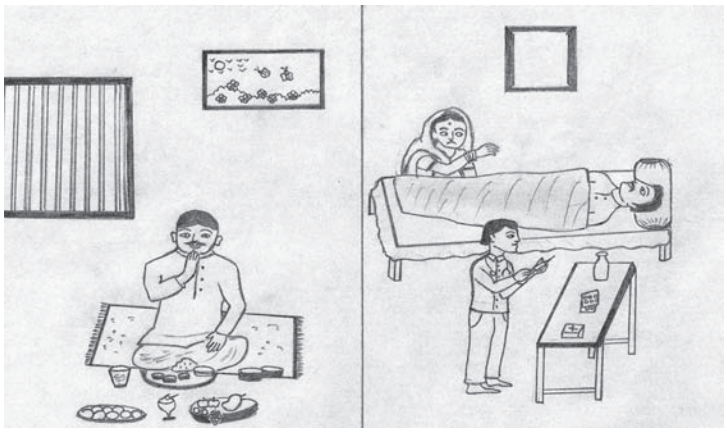

अन्वयार्थ– (**देहिनाम्**) संसारी जीवों के (**एतत् सुखं**) ये इन्द्रिय सुख (**च**) और (**दुःखं**) दुख (**वासनामात्रं एव**) भ्रम मात्र ही हैं (**तथा हि**) इसलिए (**एते भोगाः**) ये इन्द्रियों के भोग (**आपदि**) आपत्ति के समय (**रोगाः इव**) रोगों की तरह (**उद्वेजयन्ति**) व्याकुल करते हैं।

- ☞ **सुख क्या है**
- ☞ **संस्कार**
- ☞ **कषाय की परिणति**

आचार्य पूज्यपाद महाराज द्वारा विरचित इस इष्टोपदेश ग्रंथ में स्वर्ग के स्वरूप का कल वर्णन हुआ था और वहाँ पर जो इन्द्रिय सुख मिलते हैं, उन इन्द्रिय सुखों को यहाँ पर आचार्य क्या कह रहे हैं यह विचार करने की चीज है। "**वासनामात्रमेवैतत्, सुखं दुःखं च देहिनाम्**" जितने भी देहधारी जीव हैं जिन्हें इस शरीर को धारण करके ही अपना संसार चलाना पड़ता है उन सभी देहधारी जीवों को सुख और दुख निरन्तर होता रहता है। उन्हें जो सुख और दुख की अनुभूति होती है वह उनका वास्तविक सुख और दुख नहीं है। जिसे यह संसारी प्राणी सुख और दुख समझता है, उसे ज्ञानी आत्मा केवल एक वासना मात्र समझता है। वासना का अर्थ है कि जिसमें हमारा पहले वास रहा हो, जिसमें हमारा पहले भाव रहा हो, उसी भाव को हम पुनः अपने अन्दर जाग्रत कर लेते हैं। वासना का अर्थ होता है पुराना संस्कार, जो हमारे अन्दर पहले कुछ कार्य कर गया, उस कार्य कर को करने का जो हमारे अन्दर संस्कार पड़ गया वो संस्कार अपने आप हमें पुनः उसी कार्य के लिए प्रेरित करता है। इसी संस्कार को यहाँ पर वासना कहते हैं। इसलिए आचार्य यहाँ कहते हैं कि यह जो सुख और दुख देह धारियों को हो रहा है वह सब एक वासना मात्र है। उनका पूर्वकाल से संस्कार है उस संस्कार के कारण से उन्हें सुख और दुःख की कल्पना हो आती है वस्तुतः वह न सुख है न दुःख है। पिछले सूत्रों में देवों के सुखों की आपको बात बताई थी और यह बताया था कि उससे उत्पन्न होने वाला जो इन्द्रिय सुख है वो सभी बहुत समय तक उनके साथ रहते हैं और उन्हीं सुखों के कारण उनके अन्दर वह सुख है। इस प्रकार का उनके अन्दर संस्कार पड़ जाता है फिर जब वह उन सुखों को छोड़कर आता है तो इस मनुष्य पर्याय में भी वह पुनः उन्हीं सुखों की इच्छा करता है लेकिन वह सुख उनको जितनी मात्रा में मिल पाते हैं, उतने ही मिल पाते हैं। इच्छा तो वह बहुत करता है और फिर किसी न किसी तरह से उन्हीं सामग्रियों को प्राप्त करने की युक्ति ढूँढ़ता है, उपाय करता है। उन्हीं युक्ति और उपायों से वह सुख की प्राप्ति करता है यह भी उसके उस पूर्व जन्म के संस्कार के कारण से होता है। पहले हमने जो सुख के रूप में भोग लिया वही अब हमारे लिए पुनः अनुभूति में आता है। संस्कार के कारण हम इनको पुनः सुख के रूप में समझते हैं इसलिए जब भी कभी मनुष्य सुख की कल्पना करता है, जिनके संस्कार उनके अन्दर पहले ही पड़ चुके हैं और उन संस्कार के माध्यम से ही अनुभूति में आता है कि इससे हमको सुख मिल रहा है, इससे हमको दुख मिल रहा है। एक भाव, अगर उसके अन्दर इच्छा उत्पन्न हुई हैं तो सबसे पहले उस इच्छा से ही लगने लग जाता है कि इस इच्छा की पूर्ति हो जाये। जब आपके मन में कभी सुख की भावना आयेगी तो एक इच्छा पहले आपके सामने आ जायेगी। आप किसी भी रूप में सुख की भावना करोगे तो उसके पहले आप इच्छा करने बैठ जाओगे। मन का सूक्ष्म रूप से निरीक्षण करना। आपको यह बात ज्ञात होगी कि हमारा सारा का सारा सुख अगर निर्भर करता है तो वह हमारी केवल इच्छा पर निर्भर करता है। छोटी इच्छा होगी और जल्दी पूर्ति

वासना का अर्थ होता है पुराना संस्कार जो उसी कार्य के लिए प्रेरित करता है।

हो जायेगी तो आपको लगेगा जल्दी सुख मिल गया वह आपको सुख जैसा लगेगा नहीं। तो आप क्या करते हैं एक बड़ी इच्छा करते हैं, जिस इच्छा की पूर्ति करते-करते दस-बीस साल निकल जायें और उस इच्छा की पूर्ति करने के बाद जब वह वस्तु आपको मिल गई तो आपको लगता है कि हाँ अब हमें सुख की प्राप्ति हो गई। अब अगर उस समय भी आप सुख का निरीक्षण करेंगे, आपको किस बात का सुख मिलेगा तो आपको केवल इतनी सी बात का सुख मिलेगा कि हमारी जो इच्छा थी उस इच्छा की पूर्ति हो गई बस।

सुख क्या है ?

आदमी के लिए सुख इतना ही है और वह सुख उसकी एक मानसिकता है, एक mentality है इसके अलावा कुछ नहीं है। अगर उसने यह सोच लिया कि हमारी इच्छा पूरी नहीं हुई तो उसे वहाँ पर दुख का अनुभव होने लगा। जबकि वह इच्छा उसकी अपनी है और उस इच्छा के माध्यम से उसको सुख मिल रहा है। यह भी उसकी पूर्व वासना के कारण से, पूर्व संस्कार के कारण से हो रहा है। जिस समय उसे सुख मिलता है, विचार किया जाये तो वह उस समय उस इच्छा के अभाव से सुख पा रहा है या कि उस इच्छा के सद्भाव से सुख पा रहा है यह सब आप बारीकी से देखने का प्रयास करना। मान लो आपकी एक इच्छा थी कि हमें एक बहुत बड़ा मकान बनाना है आपने उस मकान को बनाने के लिए दस साल तक अच्छी मेहनत की पैसा कमाया। पैसा कमाने के बाद आपने एक खूबसूरत, एक अच्छा मकान बनाया। अच्छे बड़े-बड़े आर्किटेक्ट बुलाये और जितना उसमें अच्छा लग सकता था आपने लगाया। दस साल में वह मकान बनकर के तैयार हुआ आपको इस बात की खुशी है कि देखो मेरा मकान दस साल में बनकर तैयार हुआ। अगर किसी का मकान एक साल में बनकर तैयार हो जाता तो आप कहोगे ये तो छोटी मोटी बात है, यह तो बहुत छोटा सा मकान है, या इसमें कुछ है ही नहीं और आपको दस साल लग गये हैं। दस साल तक आपकी जो इच्छा चल रही है, उस दस साल का आपको जो इच्छा का सुख मिल रहा है कि यह हमारी इच्छा पूरी हो रही है, यह हमारी इच्छा पूर्ति हो रही है। आपने इतना लम्बा समय इच्छा पूर्ति करने में लगा दिया तो आपको उतने लम्बे समय तक लगता रहेगा कि हाँ हम सुख के करीब पहुँच गये हैं। जब दस साल में आपका मकान बनकर तैयार हो गया और उस मकान में प्रवेश करने का मुहूर्त निकाला। आपने प्रवेश भी कर लिया। अब प्रवेश करने के बाद आपको क्या लगेगा यह आपको सोचना है। आपकी इच्छा जब उस समय पूर्ण हो गई तो आपको सुख की अनुभूति बहुत कम समय के लिए होगी। दस तक आपको उस इच्छा के कारण जब तक इच्छा की पूर्ति नहीं होगी तब तक आपको लगता रहेगा कि सुख मिलेगा, सुख मिलेगा। सुख मिलेगा इस भावना से उसमें सुख की इच्छा बनी रहती है और जब आपने उस घर में प्रवेश पा लिया अब आपको कोई इच्छा नहीं रही और आपको पता भी नहीं पड़ा कि हमको सुख मिला कब?, वो सुख हमारी अनुभूति

सुख आदमी की एक मानसिकता है एक mentality है इसके अलावा कुछ नहीं है।

में आया कब? जैसे ही आपने उस घर में प्रवेश पा लिया, अब आप अपने आप को थोड़ा सा निश्चिंत महसूस कर रहे हो। चलो हमारा एक सपना था पूरा हो गया, एक इच्छा थी पूरी हो गई। सुख वस्तुतः किस चीज का मिला यह आप अभी भी नहीं समझ पाये। सुख इच्छा की पूर्ति से मिला या इच्छा के अभाव से ? आपकी वह इच्छा पूर्ति हो गई यानि इच्छा का अभाव हो गया। आपकी उस इच्छा की पूर्ति हो गई इसलिए आपको सुख मिल गया। आपको थोड़ा सा गहराई से विचार करना है। अगर इच्छा की पूर्ति में सुख है तो आप उसी समय से दुखी हो जायेंगे जिस समय पर आपकी इच्छा पूर्ति हो गई। आपका मकान पूरा हो गया। अब आगे क्या करना है अब एक नया दुख शुरू हो जायेगा। अगर आपकी इच्छा की पूर्ति में सुख है तो आपको इच्छा के अभाव में सुख पैदा होगा तो आपको अनुभूत होगा कि हाँ इच्छा थी अब उस इच्छा का अभाव हो गया। अब इच्छा का अभाव होने से हमारे लिए सुख महसूस हो रहा है तो वह सुख भी आपको दस साल के बाद उस मकान में पहुँचने पर तब महसूस होगा जब आपकी इच्छा का अभाव हुआ हो तो सुख होगा। अगर उस दस साल के बाद भी आपकी इच्छा की पूर्ति नहीं हुई है, अभी आपको मान लो कमी लग रही है, windows हैं doors हैं इन पर अपने को इस तरह की painting करवाना है, इस तरीके का उसमें curtain होने चाहिए। अनेक प्रकार की आपकी इच्छाएँ और भी चल रही है और उनकी भी जब तक पूर्ति नहीं होगी तब तक आपको लगेगा कि इससे हमें सुख मिल जायेगा, सुख मिल जायेगा, सुख मिल जायेगा। उस इच्छा द्वारा प्राप्त सुख आपके लिए संस्कार बन जाता है कि हमें हमारी इच्छा से सुख मिल रहा है।

इसी को कहते हैं आचार्य कि आप वासना में जी रहे हो। वासना एक ही प्रकार की नहीं होती। शारीरिक वासनाएँ भी होती हैं, मानसिक वासनाएँ भी होती हैं। शारीरिक वासनाओं की पूर्ति करके तो आदमी थोड़ी देर के लिए संतुष्ट हो जाता है लेकिन मानसिक वासनाओं की पूर्ति जिंदगी में कभी हो नहीं पाती है। एक इच्छा की पूर्ति होने के बाद हमारे अन्दर अगर दूसरी इच्छा उत्पन्न न हो तो हमें लगेगा कि हम मर गये। अब हम आगे क्या करें? मकान बनवाना था मकान बना लिया अब उसमें रहना है। उसमें रहने का आपको सुख तब मिलेगा जब रहने के लिए उसमें आप के साथ कोई और भी हो। अगर आदमी एक बड़ा सा मकान बनवा ले, यह सोचकर कि बड़े मकान में बहुत सुख मिलता है। उसमें उसने दस कमरे बनवा लिये, दस हॉल बनवा लिये, दस bedroom बनवा लिये। बहुत बड़ा मकान है आलीशान building है, बाहर से बहुत बड़ी दिख रही है। रहने वाला अकेला है अगर वह अकेला आदमी उस मकान में रहने लगे तो दस दिन में पागल हो जायेगा। इतने बड़े मकान में अकेले कैसे रहा जाये? फिर यहाँ से एक डर शुरू होता है और अकेले होने का डर आदमी को हमेशा सताता है। इस अकेले होने की डर की पूर्ति करने के लिए वह फिर एक नाटक करता है और फिर अपने मन में इच्छा बनाता है कि हमें अब किसके

सुख इच्छा की पूर्ति से नहीं बल्कि इच्छा के अभाव से मिलता है।

रहना है। किसी के साथ रहने के लिए भी वह एक बहाना बनाता है कि हमें किसी के साथ इस ढंग से रहना है कि हम प्रेम से रहें और आदमी उस प्रेम को प्राप्त करने के लिए, प्रेम से रहने के लिए फिर अपने मन में एक इच्छा बना लेता है और उस प्रेम की पूर्ति करने के लिए वह फिर एक दौड़ में निकल जाता है कि हमें एक जीवन साथी चाहिए जो हमारे साथ-साथ हमेशा रहे। घर में हम ना भी रहें तो कोई बात नहीं लेकिन घर में वो बना रहे क्योंकि घर खाली नहीं रहना चाहिए। खाली घर यानि भूतों का डेरा। आपने बहुत बड़ा मकान बना लिया और वह खाली पड़ा है तो उसमें एक साल के बाद देखना आपको भूत दिखेंगे, उसमें भूतों का डेरा हो जायेगा क्योंकि व्यंतर जाति के देव ऐसी ही जगह ढूँढ़ते हैं। उन्हें अच्छी जगह मिल जाये और बनी बनाई जगह मिल जाये तो सबसे पहले कब्जा वो उन्हीं पर करते हैं। अगर वहाँ पर कोई रहने वाला नहीं होगा तो वहाँ पर भूत रहने लग जायेंगे, यह बिल्कुल real बात है। अब अगर उसमें भूतों का डेरा बन नहीं पाये इसलिए आपने एक इन्तजाम और कर लिया कि हमारे साथ में कोई रहने वाला तो हो। मान लो आपके भाई थे, दूसरे घर में रहने गये। आपने अपना एक अलग दूसरा घर बनाया। अब उस अलग घर में आपके साथ रहने के लिए कोई तो होना चाहिए तो आपने एक विवाह किया और उस विवाह भी करने के पीछे अपनी इच्छा बना ली कि हमें किसी से प्रेम करना है और वस्तुतः देखा जाये तो वह प्रेम भी यहाँ पर एक वासना मात्र कहा जा सकता है। आप कभी सच्चा प्रेम कर ही नहीं सकते। जिसमें डर छिपा हुआ है वह कभी प्रेम हो ही नहीं सकता और आपके प्रेम की शुरुआत उस डर के माध्यम से ही होती है। आपको अपने अकेले रहने का डर है कि मैं अकेला न रह जाऊँ इसलिए आपको दूसरे जीवन साथी की जरूरत है। इसलिए बीच में वह प्रेम एक आवरण के रूप में आ जाता है, विवाह एक सामाजिक बंधन के रूप में आ जाता है। लेकिन वस्तुतः न आप जानते हैं कि प्रेम किसे कहते हैं, न आप जानते हैं सुख किसे कहते हैं और उस चीज की प्राप्ति करने आप निकल पड़ते हैं। आपके सामने वह प्रेम आगे बढ़ता चला जाता है लेकिन वह एक आवरण के रूप में आपके ऊपर रहता है क्योंकि आप जिसका सहयोग लेंगे उसको भी इसी बात का डर होगा कि मैं भी अकेला न रह जाऊँ। अगर देखा जाये तो आदमी को सबसे ज्यादा कोई डर रहता है जिंदगी में तो इसी बात का रहता है कि मैं अकेला न रह जाऊँ।

सात भय लिखे हैं शास्त्रों में। शास्त्रों में वह तो लिखे ही हैं लेकिन आपको एक नई चीज बता रहा हूँ कि यह भय उन सात भयों में से भी सबसे ज्यादा हावी होने वाला भय है। यह भय आदमी के अन्दर इसलिए उत्पन्न होता है क्योंकि आदमी को कभी अकेले रहने का संस्कार रहा ही नहीं है। कहीं भी रहा हो आत्मा, उसने हमेशा किसी न किसी के साथ अपना जीवन गुजारा है। आप देखोगे, एक चींटी भी कहीं आपको मिल जायेगी तो वह चींटी न जाने कहाँ से ढूँढ़कर कितनी चींटियों को साथ में ले आयेगी। एक चींटी दिख जाये कहीं आपको तो आप समझ लेना

आदमी को सबसे ज्यादा डर जिंदगी में इसी बात का रहता है कि मैं अकेला न रह जाऊँ।

दस, बीस, पचास चींटियाँ बस आने ही वाली हैं। न जाने उसको कहाँ से पता पड़ जाता है कि हमारी और चींटियाँ हमारी साथी कहाँ हैं। चींटा या मकोड़ा भी उसके साथ में दस, बीस, पचास चींटों को अपने आस-पास अपने साथी को रखता है वो भी अकेला नहीं रहता है। कोई भी जीव कभी भी रहा है तो अकेला रहा ही नहीं है हमेशा वह कईयों के साथ में रहा है। अगर उसकी शुरुआत देखी जाये, origin जहाँ से वह जीव निकलता है, इस संसार में आता है या यूँ कहें कि व्यवहार राशि में आता है तो सबसे पहली जो beginning वाली पर्याय है, जहाँ से अपना जीवन शुरू होता है, निगोद पर्याय से। लोग पूछते हैं कि हमारा जीवन कहाँ से चल रहा है?, कब से हमारी आत्मा है?, कहाँ से हमारी आत्मा की शुरुआत हुई? तो आत्मा की शुरुआत का तो कोई beginning point है ही नहीं क्योंकि आत्मा अनादि से है, अनन्त है। जिसका कोई प्रारम्भ बिन्दु नहीं हो, जिसका कोई आदि नहीं हो, आत्मा की शुरुआत भी अनादि है क्योंकि आत्मा को किसी ने बनाया नहीं, इस संसार को किसी ने बनाया नहीं, हमारे अंदर कर्मों को किसी ने बनाया नहीं, हमारे सुख दुख को किसी ने बनाया नहीं, सब अपने आप बने हुए हैं, स्वतः सिद्ध है। स्वतः सिद्ध परिणति में ही जब ऐसी परिणति आ जाती है कि कभी यह जीव निगोद पर्याय से निकल करके दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय आदि पर्यायों में जन्म लेता है तो इस के लिए धीरे-धीरे इन्द्रियों की वृद्धि होती है और उसी के अनुसार उसे फिर सुख की कल्पना भाने लगती जाती है। आचार्य कहते हैं कि आपका जो जीवन का प्रारम्भ था, जब निगोद में थे तब भी आप अनंतों के साथ रहे क्योंकि निगोद का स्वरूप होता है कि एक जीव तो कभी साथ में रहता ही नहीं, एक के साथ अनन्त मिलेंगे, यह निगोद की सबसे बड़ी विशेषता है। एक इन्द्रिय वनस्पतिकायिक जीव, निगोद जीव अनंत जीवों के साथ में जीवन जीते हैं, अनंत के साथ ही मरण को प्राप्त होते हैं, अनंत के साथ ही शरीर को धारण करते हैं, अनंत के साथ ही श्वास लेते हैं और अनंत के साथ ही उनकी आहारादि पर्याप्ति पूर्ण होती हैं। ऐसे ही इन अनन्त जीवों के साथ पहले जीवन चला फिर दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय पर्याय में आये तो वह अनन्त तो छूट गया लेकिन असंख्यात के साथ में जीवन चला। उसमें भी फिर और जैसे-जैसे ऊपर की पर्याय में आये तो संख्यात के साथ जीवन चलने लगा लेकिन अकेला जीवन तो कभी चल ही नहीं सका। अगर किसी अभाव के कारण चल गया हो तो बात अलग है। कभी किसी पागल आदमी को देख लो कहीं गली में अकेला बैठा रहता है, अकेला पड़ा रहता है तो अकेला जीवन उसका चल सकता है लेकिन वह उसकी बुद्धि की विक्षिप्तता के कारण से है। बुद्धि के साथ अगर कोई अकेला जीवन शुरू करे तो वह बड़े साहस की बात है। इसलिए आदमी को डर लगता है तो वह आगे की योजना बनाकर रखता है और वह आदमी आज की नहीं सोचता है बहुत दूर की सोचता है।

आत्मा, संसार, कर्म व सुख-दुख को किसी ने नहीं बनाया, वे स्वतः सिद्ध हैं।

इसलिए आप कहते हो कि महाराज हम आपसे ज्यादा समझदार हैं, हमने बहुत दूर की सोच रखी है। जो दूर की सोचे वह ज्यादा समझदार है, हमने बहुत दूर की सोच रखी है। जिसमें कोई सोचने की बात ही नहीं है, आगे क्या होने वाला है जिसने यह नहीं सोचा या तो बिल्कुल समझदार नहीं होगा या फिर सबसे ज्यादा समझदार होगा। दोनों में से एक बात होगी या तो वो बिल्कुल ना समझ होगा या फिर सबसे ज्यादा समझदार होगा। जो दूर की सोच करके चल रहे हैं तो उन्होंने फिर एक योजना बनाई। भाई देखो! बचपन तो निकल जाता है, जवानी भी निकल जायेगी लेकिन बुढ़ापा कैसे निकलेगा? अकेले आप बचपन गुजार सकते हो, अकेले आप जवानी गुजार सकते हो लेकिन बुढ़ापे में अकेला रहना बहुत दुखदायी हो जाता है इसलिए आदमी जीवन में कोई न कोई ऐसे संबंध बनाकर के रखता है कि उन संबंध के साथ चलते हुए उसे लगने लगे कि बुढ़ापे में हमें कोई डर की बात नहीं रह जाये और बुढ़ापे में हमारे साथ कोई हो कम से कम अपनी पत्नी हो, अपना पति हो। एक से दो तो हो और अगर दो से चार हो जाये तब तो फिर सुरक्षा हो गई, डर और कम हो गया क्योंकि अब हमारे पीछे भी दो हैं और वो दो जब बड़े हो जायेंगे तो वो हमको आगे चल करके सम्भाल लेंगे, हमें सहयोग प्रदान करेंगे। इसलिए हमारे मन में एक भाव आ जाता है कि हमें अब डर नहीं है और हम उस डर को जीतने के लिए ही सब कुछ करते हैं। प्रेम भी करेंगे पत्नी से तो उस डर के कारण से ही कि हम अकेले ना रह जायें। बेटे से भी प्रेम होगा तो उसी डर के कारण से कि यह बेटा हमारा बना रहे, इसलिए आपका बेटे से प्रेम होता है। Natural प्रेम तो आप करना जानते ही नहीं हो। आपके उस प्रेम के पीछे भी एक मोह चलता है, एक स्वार्थ चलता है और उसी स्वार्थ के कारण से आपको लगता है कि हमारा जीवन सुखी रहेगा, सुख मिलेगा। उस सुख की प्राप्ति के लिए ही सारे के सारे संसारी जीव एक जैसा प्रयत्न करते रहते हैं। मकान बनाना, विवाह करना, बच्चे पैदा करना, फिर उनमें इच्छाएँ पैदा करना, यह हो जाये, यह हो जाये और जब हो ही जायेगा तो होने से आपको सुख नहीं मिलेगा। एक इच्छा पूरी होने पर नई इच्छा फिर कर लेगा, तब उसको लगेगा कि अब हमें फिर सुख मिलने वाला है। इसी को आचार्य कहते हैं इन इच्छाओं का सुख हमारा कभी भी छूटा नहीं है।

'वासनामात्रमेवैतत्' यह जो सुख हो या दुख हो यह सब हमारी वासना बन चुका है। इसमें सुख मिलना, इसमें दुख मिलना यह सब भी हमने मानसिकता बना रखी है। अच्छा घर होगा तो सुख मिलेगा, अच्छा घर नहीं होगा तो दुख मिलेगा यह हमने मानसिकता बना ली है। अब जिनके पास अच्छा घर होने की संभावना है वह तो अच्छा घर बना लेंगे लेकिन जिनके पास में अच्छा घर होने की संभावना ही नहीं है या जो सोचते ही नहीं कि हमारा घर अच्छा हो तो क्या उनको कभी सुख नहीं मिलता। कभी आपने ऐसे लोहारों को देखा होगा जो गाँव के बाहर, प्लेटफॉर्म पर, कहीं सड़कों पर अपना घर बनाये रखते हैं और उन घरों में सब कोई रहता है। एक

बुद्धि के साथ अगर कोई अकेला जीवन शुरू करे तो वह बड़े साहस की बात है।

छोटी सी झोपड़ी बनी रहती है उसी में उसकी पत्नी, बच्चे सब कोई रह जाते हैं लेकिन वो कभी भी उससे बड़ा घर बनाने की सोचते नहीं है। जब उनकी सोच में ही वो चीज नहीं है तो उनके लिए कोई दुख भी नहीं है। आपको लग सकता है कि यह लोग कितने दुखी है लेकिन उन्हें कभी भी इस चीज का दुख नहीं होता कि हमारे पास घर नहीं है इसलिए हमें कोई दुख है, यह अपने मन में विचार आया तो दुख उत्पन्न होगा। आपको विवाह होने के बाद में एक दु:ख हो सकता है कि आपकी संतान नहीं हो रही है। अगर आपने यह विचार बना लिया हो कि हमें संतान पैदा करना ही नहीं है तो कोई दुख नहीं है। ज्यादातर आज की पाश्चात्य संस्कृति में जीने वाले लोग अब इसी प्रकार का विचार करते हैं। हमें कोई संतान चाहिए ही नहीं क्योंकि संतान लाने का मतलब ही नया दुख पैदा करना है। इसलिए अब उनके अन्दर इच्छा ही नहीं रहती और जब इच्छा ही नहीं है तो उन्हें उससे उत्पन्न होने वाला कोई दुख होगा ही नहीं। जब संतान हो गई तो फिर एक dividation हो जाता है बेटी हुई कि बेटा हुआ। बेटी हुई तो मानसिकता में पड़ा हुआ है कि बेटा होना अच्छा माना जाता है इसलिए बेटा होना चाहिए। यह संस्कार में पड़ा है, यह भी एक वासना है कि बेटा होगा तो सुख हो गया। जबकि न सुख बेटे में है, न बेटी में है। हो सकता बेटा बड़ा हो करके तुम्हारा गला घोंट दे, बेटा बड़ा हो करके तुम्हें घर से बाहर निकाल दे, घर पर कब्जा कर ले, लेकिन जब तक हमारी वासना में यह संस्कार पड़ा रहता है, हमारे संस्कारों में यह भावना पड़ी रहती है तब तक हमें ऐसा लगता है कि सुख इसी में है जो हम सोच रहे हैं।

संस्कार :

इसलिए जितने भी प्रकार के संसार के सुख और दुख की कल्पनाएँ है यह सब हमारे पूर्व के संस्कार है। कुछ संस्कार हमारे अपने हैं, कुछ संस्कार समाज के द्वारा दिये जाते हैं, कुछ संस्कार हमारे आस-पास के माहौल से आ जाते हैं और हम उन्हीं सब वासनाओं से घिरे रहते है। अगर यह भी देखा जाये कि बेटे में सुख है, बेटी में सुख नहीं है, यह संस्कार कहाँ से आये? यह संस्कार आपका एक सामाजिक संस्कार है। जैसे ही आपके घर में बेटा होगा तो सब लोग बधाई देने आयेंगे। congratulation सब लोग करेंगे, सब celebrate करेंगे और बेटी हो गई तो ठीक-ठीक में वह चलता है कोई बात नहीं। यह अपने अन्दर के संस्कार ही आपको सुख दुख पहुँचा देते हैं। दूसरे की नजर में वह आपके लिए सुख व दुख दोनों हो सकता है और आप हमेशा दूसरों की नजर से ही सुख व दुख से बँधे होते हैं। अपना सुख व दुख तो आपको पता ही नहीं है। अब कोई आदमी जिसे मान लो बेटी में ही सुख हो, वह कहें हमको बेटी ही अच्छी लगती है, हमको तो बेटी ही होनी चाहिए, हमको बेटी मिली है तो हम बेटी से ही सुखी है। ऐसा कहने वाला आदमी जब अपनी मानसिकताएँ समाज से ऊपर उठा लेगा तब ही हो सकता है, नहीं तो यह भी एक वासना है कि बेटा ही होना चाहिए। और यह चीज अपने हाथ की नहीं है। इच्छा अपने हाथ की है लेकिन

इसमें सुख मिलना इसमें दुख मिलना यह सब हमने मानसिकता बना रखी है।

वस्तु जो मिल रही है वो अपने हाथ की नहीं है, उस इच्छा के साथ में तुम्हारे जो कर्म होगे, जिसका जिसके साथ में जैसा सहयोग संबंध होगा। अगर तुमने अपनी उस इच्छा के साथ में जबरदस्ती की तो फिर एक नया पाप करने के लिए तैयार हो जाओगे। अब बेटी गर्भ में आ गई है, आपको बेटी नहीं चाहिए तो आप क्या करोगे, पाप करना पड़ेगा, हिंसा करनी पड़ेगी। अगर आपने यह पाप कर लिया तो इस पाप के माध्यम से हो सकता है कि आगे आपके लिए हमेशा के लिए ऐसी परिणति हो जाये कि आप संतान चाहो तो आपको कोई भी संतान ना मिले। कम से कम अभी बेटी तो मिली और फिर बाद में वह बेटी भी ना मिले। संतान होने की ही क्षमता चली जाये। यह सब परिणतियाँ हमारी इच्छाओं के कारण चलती है और उन्हीं इच्छाओं से आदमी के अन्दर पाप का बन्ध अधिक होता है, पुण्य का बंध बहुत ही कम हो पाता है। बहुत कम ऐसी इच्छाएँ होती है जो पुण्य का बंध कराने वाली होती है। इच्छाएँ सब पाप का बंध कराने वाली होती है। उन्हीं पाप के बंध के कारणों से हमको किंचित सुख, किंचित दुख की अनुभूति होती है। आचार्य कह रहे हैं कि यह सब तुम्हारी वासना मात्र है क्योंकि यह सब जो तुम्हें मिल रहा है वह सब कर्म के ऊपर निर्भर है। आपका कोई अच्छा कर्म उदय में आ रहा है तो आपकी इच्छा पूर्ति होती चली जायेगी और अगर आपने इच्छा कर ली लेकिन आप के पास पुण्य कर्म नहीं है तो आपकी वो इच्छा पूर्ति भी नहीं हो पायेगी। इच्छा करना आपके स्वभाव में हो सकता है, आपके आधार पर आपके आश्रित हो सकता है लेकिन उस इच्छा की पूर्ति हो जाना यह आपके पुण्य व पाप पर निर्भर करेगा। अब उसमें एक और dependency बढ़ गई। इच्छा करना तो हमारे हाथ में था हमने कर ली लेकिन जब तक पुण्य हमारे पास पूरा का पूरा नहीं है तब तक हमारी इच्छा की पूर्ति होने वाली नहीं है। जब तक उस इच्छा की पूर्ति नहीं होगी तब तक हम दुखी बने रहेंगे। यह दुख भी हमारे लिए एक वासना बन गया। वस्तुतः देखा जाये तो यह दुख और सुख एक मानसिकता है इसके अलावा कुछ नहीं है। जहाँ आपने अपनी मानसिकता को जीत लिया वहीं आप अपने आनन्द में आ गये। आत्मा के अन्दर सुख और दुख नहीं है। आत्मा के अन्दर आनन्द होता है और मन के अंदर सुख व दुख की परिणतियाँ होती हैं। जैसे ही आप आत्मा के स्वरूप की ओर उन्मुख हो गये तो आपको अपने स्वरूप का आनन्द आयेगा। उस स्वरूप के माध्यम से ही इस वासना का संस्कार टूटेगा। इस संस्कार को तोड़ने का अगर कोई उपाय है तो वह केवल इतना ही है कि हम अपने स्वरूप को देखें, अपनी चैतन्य आत्मा की ओर दृष्टि लायें। आत्मा की ओर दृष्टि डालने पर हमें अपने आप महसूस होगा कि यह सुख व दुख केवल मानसिकताएँ है और इन मानसिकताओं से जैसे ही आप हटे तो आपको अपने चैतन्य स्वभाव का जो आनन्द आयेगा वही इस सुख व दुख की वासना को मिटाने का बड़ा कारण बनेगा। आना तो आपको अपने स्वभाव की ओर ही है। जब तक यह ऊपर की चीजें चलती रहेगी तब तक आपको अपने स्वभाव की ओर आने की परिणति बन नहीं पायेगी।

आत्मा के अन्दर आनन्द होता है और मन के अंदर सुख व दुख की परिणतियाँ होती हैं।

इसलिए आदमी के अन्दर एक कारागृह बन जाता है, एक स्वयं का जंजाल बन जाता है, और वह जंजाल कुछ नहीं होता सिर्फ अपनी इच्छाओं का जाल होता है।

''यह करना फिर, फिर यह करना
फिर-फिर करनी कारे,
एक बार करनी कर ऐसी
छूटे गति गलियारे,
अरिहंत भजन कर प्यारे,
अरिहंत भजन कर प्यारे।''

क्या कहा गया है यह करना फिर, फिर यह करना, यह करने पन का भाव तो आदमी के अन्दर से छूटता ही नहीं और जब तक यह करने की इच्छा भीतर से नहीं छूटती तब तक कहाँ आत्मा और कहाँ आत्मा की शान्ति यह सब अपने पास में होते हुए भी वहाँ तक हम पहुँच नहीं पाते। उस दृष्टि के अभाव में हमें वह चीज मिल नहीं पाती जो चीज हमसे अनादिकाल से छूटी है और यही वह चीज है जो अनादिकाल से छूटी है हमसे बाकी सब हमने पाया है। आप इस जन्म में मेहनत करके, सब पसीना निकालने के बाद में जो सुख प्राप्त करोगे उस सुख से कई गुना सुख आप देवगति में प्राप्त कर चुके हो, कल्पवृक्षों के माध्यम से भोगभूमि में प्राप्त कर चुके हो। सब कुछ हो चुका है बाहर का कोई ऐसा सुख नहीं है जो इस आत्मा ने भोगा ना हो लेकिन जो सुख इससे छूटा हुआ है वह सुख मानसिक सुख नहीं है, वह सुख है आत्मिक सुख। जब तक हमें अपनी आत्मा के चैतन्य स्वभाव की ओर दृष्टि नहीं जायेगी तब तक हमारी इच्छाएँ कुछ न कुछ करने की बनी रहेगी और उन इच्छाओं में पाप की इच्छा ही सबसे ज्यादा होती है। आरम्भ परिग्रह की इच्छाएँ सबसे ज्यादा होती है। जब यह इच्छाएँ बढ़ती चली जाती है तो हम बड़ी से बड़ी चीजें प्राप्त करने के बाद फिर दुख से ग्रस्त होते चले जाते हैं। इसलिए कई बार कहा जाता है कि पुण्य की भी इच्छा मत करो, पाप की इच्छा से तो बुरा फल मिलता ही है। लेकिन अगर आपकी दृष्टि केवल पुण्य पर रहेगी, पुण्य की इच्छा पर रहेगी तो वह पुण्य की इच्छा भी आपके लिए और आकुलता पैदा कर सकती है और करती है। अगर वह दृष्टि पुण्य और पाप से हटकर केवल अपनी आत्मा में रहेगी, अपने स्वरूप में रहेगी तो अपनी आत्मा में रहेगी। अपने स्वरूप में रहेगी तो पुण्य तो मिलेगा लेकिन उस पुण्य से आपको हानि नहीं होगी और जब केवल पुण्य पर दृष्टि रखते हुए हम कोई धर्म कार्य कर लेते हैं तो उससे जो पुण्य मिलता है वह पुण्य हमें फिर इस प्रकार की वासना में पहुँचा देता है। सुख और दुख के इसी प्रकार के संसार में हमें पुनः उलझा देता है और हम यह भूल जाते हैं कि हमारी जिंदगी में जो कारागृह ''फिर-फिर करनी कारे'' मतलब यह जो फिर-फिर करने कि इच्छा है यही हमारे लिए कारे, कारे मतलब कारागृह। ''एक बार कर करनी ऐसी,

आत्मिक सुख की प्राप्ति हेतु आत्मा के चैतन्य स्वभाव को जानना व समझना होगा।

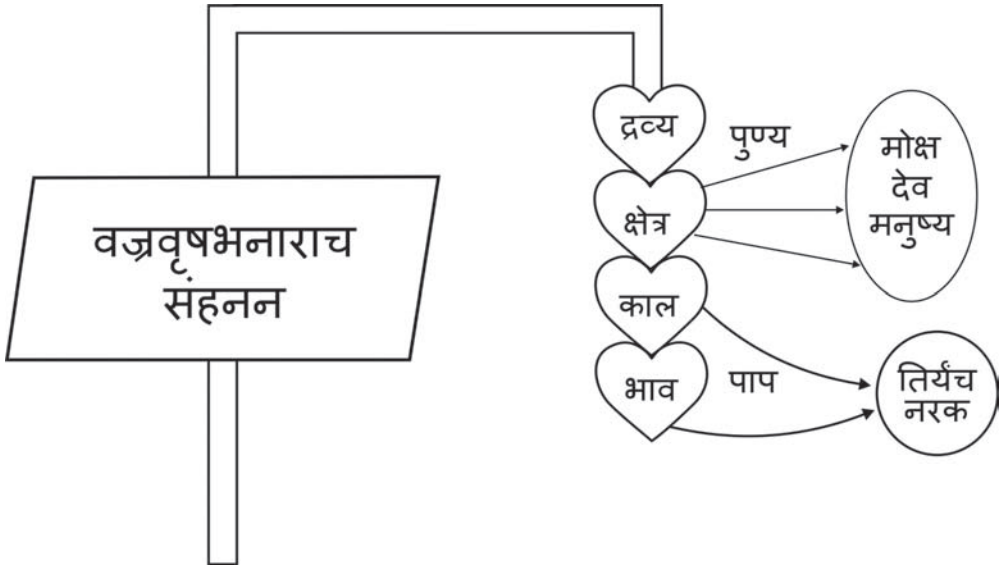

छूटे गति गलियारे।'' वह करनी क्या है? वह करनी है अपने स्वरूप की ओर दृष्टि डालना। जब तक वह दृष्टि नहीं तब तक वह करनी तो होगी लेकिन उस करनी से उसे सब कुछ मिलने के बाद भी सुख नहीं मिलेगा। चक्रवर्ती भी बन जाता है यह मनुष्य और चक्रवर्ती बनने के बाद जो उसकी इच्छा होती है वो सब उसको मिल जाता है।

पिछले सूत्रों में आपको बताया था कि द्रव्य, क्षेत्र, काल यह सब हमको अनुकूल मिल जायें तो हमारे उपादान की योग्यता में वह कार्य बन सकता है जो कार्य कभी ना बना हो लेकिन उसमें भी आचार्य कहते हैं द्रव्य, क्षेत्र, काल सब कुछ मिलने के बाद भी उपादान में योग्यता आ जाये कोई जरूरी नहीं है। आपको अच्छा शरीर मिल गया, वज्रवृषभनाराचसंहनन मिल गया, चतुर्थ काल मिल गया लेकिन फिर भी आप अपनी आत्मा के लिए पुरुषार्थ करो यह जरूरी नहीं। वज्रवृषभनाराचसंहनन को प्राप्त करने के बाद भी कई आत्माएँ नरक में चली जाती हैं क्योंकि जिस शरीर के साथ में स्वर्ग व मोक्ष जाने की योग्यता है उसी शरीर के साथ में नरक व तिर्यंच गति में जाने की क्षमता भी है। शरीर का बल तो आपको केवल उपयोग में लाना है और वह उपयोग आप किस तरह से कर रहे हो यह आपके मन के विचार के ऊपर निर्भर करेगा। इसलिए शरीर मिल जाने से किसी को मोक्ष नहीं मिल जाता। वज्रवृषभनाराचसंहनन शरीर से मोक्ष होता है लेकिन सब वज्रवृषभनाराचसंहनन वाले मोक्ष चले जाते हो यह जरूरी नहीं है, स्वर्ग भी जाते हैं नरक भी जाते हैं, तिर्यंच भी बनते है, मनुष्य भी बनते है, सब कुछ होता है क्योंकि शरीर तो केवल सहायक है। उस शरीर के साथ में आपने जैसा पाप पुण्य का भाव किया है वह पाप पुण्य का भाव ही ऊपर-नीचे ले जाने वाला है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि अगर आपको बहुत ऊपर की चीज मिलेगी

द्रव्य, क्षेत्र, काल मिलने के बाद भी उपादान में योग्यता आ जाये कोई जरूरी नहीं है।

तो भी उसी वज्रवृषभनाराचसंहनन शरीर के साथ मिलेगी और बहुत नीचे की चीज मिलेगी तो भी उसी के साथ में। सबसे नीचे सातवाँ नरक और सातवें नरक में वह ही जा सकता है जिसके पास वज्रवृषभनाराचसंहनन हो और सबसे ऊपर सर्वार्थसिद्धि का स्वर्ग वहाँ पर भी वही जा सकता है जिसके पास में यह वज्रवृषभनाराचसंहनन हो। उसके भी ऊपर मोक्ष की परिणति उसको ही प्राप्त होगी जिसके पास वज्रवृषभनाराचसंहनन हो। इस पंचमकाल में न तो आप top level को छू सकते हो और न आपके लिए सातवाँ नरक है, न आपके लिए सर्वार्थसिद्धि है, मोक्ष तो है ही नहीं। इसलिए आप एक चिन्ता तो छोड़ ही देना कि अपने सातवें नरक में तो जाना ही नहीं है। कितना ही आप पाप कर लोगे तो भी आपकी गति सातवें नरक में होने वाली नहीं है, छठवें नरक में भी नहीं होगी। वह आपके संहनन के अनुसार होगी और उस संहनन के अनुसार आप तीसरे, चौथे नरक तक ही अपना सम्पादन कर सकते हो, ऐसे पाप कर्म का सम्पादन जिससे कि तीसरे चौथे नरक तक आदमी जा सकता है। कहते हैं कि मनुष्य सातवें नरक तक जा सकता है। अब देखो मनुष्यों और तिर्यंचों में कितना अन्तर है। अगर मनुष्य के लिए वज्रवृषभनाराचसंहनन मिल गया तो भी वह सातवें नरक में जा सकता है। अन्यथा उसकी गति ऊपर के ही नरकों तक रह जायेगी और उस पर्याय में वो कितना ही पाप करेंगे, क्रूर से क्रूर दिखाई देंगे। मान लो शेर है उसके पास भी यह संहनन हो सकता है यह जो वज्रवृषभनाराचसंहनन है। यह तिर्यंचों को भी मिलते है और उनको यह संहनन मिल गया तो वह कितना ही क्रूर होगा, कितनी भी हिंसा करेगा, कितने भी हिरण, गायों को मारेगा कुछ भी करेगा तो भी आचार्य कहते हैं कि उसकी गति पाँचवें नरक से ज्यादा होने वाली नहीं है। सर्प है, अजगर है ये कितनी भी बड़ी से बड़ी हिंसाएँ करने वाले हो तो भी यह चौथे, पांचवें नरक से आगे जाने वाले नहीं होते हैं लेकिन मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी होता है और कुछ तिर्यंच होते है जो मरण करके उस सातवें नरक तक पहुँचते हैं। इस प्रकार के क्रूर दिखाई देने वाले तिर्यंच भी सातवें नरक तक नहीं पहुँचते हैं।

कषाय की परिणति :

इसलिए जो कषाय की परिणति है वह उस पर्याय का स्वभाव होने के कारण से इतना बड़ा फल नहीं देती है जितना कि मनुष्य के अन्दर। उस पर्याय का वह स्वभाव नहीं है और अगर वह क्रूरता करेगा, वह अगर गुस्सा करेगा, वह अगर अपने अन्दर आरम्भ परिग्रह रखेगा तो वह उसको सातवें नरक ले जाने वाला हो जायेगा। सिंह कभी सातवें नरक नहीं पहुँचा लेकिन नर सिंह सातवें नरक जा सकता है। इस काल में जाये न जाये लेकिन जा सकता है। इसलिए यह ध्यान रखना कि हमारे अन्दर के कषाय परिणाम ही हमें पुण्य और पाप के रूप में फल देने वाले होते हैं। उन पुण्य व पाप में संलग्न होकर लगता है कि यह सुख है यह दुख है। वह सुख और दुख मिलने के बाद भी आपको उस सुख की परिणति हमेशा बनी रहे कोई जरूरी नहीं है। वह मिला हुआ इन्द्रिय सुख

हमारे अन्दर के कषाय परिणाम ही हमें पुण्य और पाप के रूप में फल देने वाले होते हैं।

भी आपको दुख में ले जा सकता है। स्वर्गों में भी ऐसे देव होते है जो खूब सुख प्राप्त कर लेते हैं और जब उनकी आयु पूर्ण होने को होती है तो वह रोने लग जाते हैं, डर जाते हैं, अब क्या होगा अब यह इन्द्रिय सुख कहाँ मिलेंगे और इसी डर के कारण उनके अन्दर संक्लेश उत्पन्न हो जाते हैं। इन्द्रिय सुखों को प्राप्त करने में संक्लेश ही उत्पन्न होता है और जब तक उस इन्द्रिय सुख की पूर्ति न हो जाये तब तक आपके मन में संक्लेश चलता है कि इस इच्छा की पूर्ति होनी चाहिए। जब तक वह संक्लेश चलेगा तब तक आपको पाप का बंध भी parallel में चल रहा है। इसलिए कई बार लोगों की अपनी इच्छाओं की पूर्ति होते समय तक पीछे बहुत कुछ छूट जाता है। आपने अपना एक घर बना लिया, मकान बना लिया, अपनी कोई भी इच्छा की पूर्ति करते-करते आगे पहुँचे लेकिन उस के साथ में जो पाप का बन्ध होता गया और उदय में आता गया उसके कारण बहुत सारा नुकसान भी होता चला गया। परिवार के कई लोग बिछुड़ गये, कई लोग मर गये, कई लोगों को नुकसान हो गया। बहुत कुछ पीछे छूटता चला जाता है तब जाकर किसी को एक सुख मिलता है जिसकी उसने इच्छा की है। इसलिए इन्द्रों को भी स्वर्गों में, देवों को भी जिस समय सुख छूटता है उस समय पर उन्हें भी पीड़ा होती है और उस पीड़ा के कारण से वह एकेन्द्रिय पर्याय का बंध कर लेते हैं। देव बन करके पंचेन्द्रिय होने के बाद में एक इन्द्रिय में जाकर वह देव एकेन्द्रिय स्थावर के रूप में जन्म ले लेता है। वनस्पतिकायिक के रूप में जन्म ले लेता है, पृथ्वीकायिक के रूप में उनका जन्म हो जायेगा, जलकायिक के रूप में उनका जन्म हो सकता है। तीन काय में उनका जन्म हो सकता है, अग्निकायिक, वायुकायिक के रूप में उनका जन्म नहीं होगा क्योंकि अग्नि और वायुकायिक में जन्म लेने वाले बहुत ज्यादा संक्लेश परिणाम वाले होते हैं। इतना संक्लेश उन इन्द्रों, देवों के पास में नहीं होता लेकिन इतना तो हो जाता है कि वह पंचेन्द्रिय से एकेन्द्रिय की आयु का बंध कर लेता है।

''कुतवाली दिन चार वही फिर, खुरपा अरु जाली।''

चार दिन की कोतवाली का क्या मतलब है? कुतवाली का यही मतलब है कि चार दिन के लिए तो हम कोतवाल बन गये यानि बड़े रक्षक बन गये, बड़े आदमी बन गये लेकिन चार दिन के बाद फिर वही खुरपा और जाली। ऐसे प्रयास करो कि जिनके कारण से हमारी परिणति अच्छी-अच्छी बनती रहे और इस पुण्य व पाप से उत्पन्न होने वाले सुख दुख में केवल इतना मान के रहो कि यह केवल एक वासना है हमारे मन का एक संस्कार है और वह मन का संस्कार इस मोह के कारण से उत्पन्न होता है। इसी को आचार्य कहते हैं कि यह एक भ्रम है जो चीज वास्तव में नहीं है वो फिर भ्रम में रह गई। आपके ऊपर कोई एक आवरण आ गया और आपको बाहर कुछ दिखाई नहीं दे रहा है यानि आपके ऊपर वह आवरण आने से वह सही चीज दिखाई नहीं दे रही है तो उसने भ्रम पैदा कर दिया। इसी तरह से ये सुख-दुख जो हमारी कल्पना में आते हैं यह सब हमारे

लिए भ्रम हैं, इनको मोह कहा जाता है और मोह को ही भ्रम कहते हैं। जिसमें सुख नहीं है उसमें सुख का आभास करा देना यह मोह का काम है और यह भ्रम का संस्कार हमारे अन्दर बढ़ता चला जाता है। जब भी कभी आपको लगे कि आज अपने को दुख हो रहा है, सुख हो रहा है तो यह तो आपको कभी लगेगा ही नहीं सुख तो छूट जायेगा। इच्छा पूर्ति हुई, आपका मकान में प्रवेश हो गया। आप कभी कहने नहीं जाओगे किसी से कि हमको दुख हो रहा है और आपको कभी महसूस नहीं होगा कि आपको सुख हो रहा है लेकिन दुख आपको महसूस होगा। इसलिए इस संसारी प्राणी को देखा जाये तो यह सुख तो कभी महसूस करता ही नहीं है। जितनी आकुलता के साथ में इसे दुख अनुभव में आता है उतनी आकुलता के साथ कभी सुख अनुभव में आता ही नहीं है। यदि तुम्हें सुख की सामग्री मिल जाये तो तुम दिन भर चिल्लाते हुए ही रह नहीं सकते कि हमें सुख मिल रहा है, सुख मिल रहा है। लेकिन अगर दुख की सामग्री मिलेगी तो दिन भर चिल्ला सकते हो कि हाँ मुझे दुख मिल रहा है, दुख मिल रहा है। अगर दाँत में दर्द हो जाये तो दिनभर-रातभर आपको दुख मिलेगा, पैर में कहीं कुछ फोड़ा-फुंसी हो जाये तो दिनभर आपको दुख मिलेगा। लेकिन जब तक कुछ नहीं है तो आपको कभी महसूस नहीं होगा कि देखो मेरे दाँत अभी बिल्कुल ठीक है, देखो मेरे शरीर में कही फोड़ा-फुंसी नहीं है मुझे सुख हो रहा है, मुझे सुख हो रहा है कभी आप चिल्लाते हो, नहीं। सुख की प्राप्ति की हमारे अन्दर कोई भी ऐसी भावना है ही नहीं कि जिससे हमने कभी महसूस किया हो कि यह सुख है। बस हमारी मानसिकता है कि यह रहना चाहिए तो सुख है और इसमें कोई कमी आ गयी तो दुख हो गया बस दुख के लिए तो आदमी चिल्लाता है सुख के लिए कभी नहीं चिल्लाता। इसलिए कभी आपको जीवन में सुख मिलता ही नहीं है। देखा जाये तो जब तक मिला नहीं तब तक उस इच्छा के कारण से मिलेगा, मिलेगा, मिलेगा और जब मिल गया तो आपको अनुभूति होती ही नहीं कि वो कब मिल गया। अब घर कब बन गया वो तो बनते-बनते बन गया, आपने जिस दिन नये घर में प्रवेश लिया उससे पहले आप उस घर में कई बार जा चुके थे, आ चुके थे। आपको वो point तो पता ही नहीं है जिस point पर पहुँचने के बाद में हमें लगे कि हाँ आज हमें महसूस हुआ कि मुझे सुख मिल गया और जब आप उस घर में रहने लग जाओगे दो चार दिन के बाद में वह बिल्कुल ordinary लगने लगेगी, वो बिल्कुल आपके लिए common हो जायेगा क्योंकि वह अब तो अपना ही है। जो चीज अपने हाथ में आ गयी बस उससे फिर वह सुख की वासना चली गई यह सुख की वासना इसी प्रकार की है इसलिए दुख की वासना कहीं ज्यादा अच्छी है। कम से कम उसमें हमें महसूस तो होता है कि यह दुख है। सुख की वासना में तो हमें कभी सुख महसूस ही नहीं होता है और इन दोनों ही प्रकार की वासनाओं में आदमी उलझा रहता है और इन दोनों प्रकार की वासनाओं को छोड़ने का एक ही साधन है कि तुम इन

दुख के लिए तो आदमी चिल्लाता है सुख के लिए कभी नहीं चिल्लाता।

पुण्य और पाप कर्म से उत्पन्न हुई, मानसिक सुख व दुख से ऊपर उठ करके अपनी आत्मा की ओर दृष्टि डालो बस। और यह नहीं होगा तो - ''तथा ह्युद्वेजयन्त्येते, भोगा रोगा इवापदि''।

क्या होता है, भोगों की प्राप्ति होती चली गई, सुख की प्राप्ति हो गई लेकिन वह भी आपदि यानि आपत्ति के काल में वह भी रोगों की तरह दुख देंगे। जैसे रोग हमें दुख देते हैं, ऐसे भोग भी हमको दुख देते हैं, जब हमारे ऊपर कोई आपत्ति आ जाती है तो उस समय पर वह भोग ही हमारे लिए सबसे ज्यादा परेशानी का कारण बनते हैं क्योंकि अब वो छूट रहे हैं। आपत्ति को हम चाहते नहीं थे हमें उनके साथ में रहना पड़ा था। मान लो स्वर्ग में यह आपत्ति आ गई छः महीने बचे हैं, माला मुरझाने लगी यह आपत्ति का समय है। समझ में आया आपत्ति काल लग गया छः महीने बचे हैं। अब उनको वही सुख-दुख देंगे जिस परिसर में वो रह रहे थे, जिन देवियों के साथ रह रहे थे, जिन स्थानों पर वो आनन्द ले रहे थे अब उनको किसी भी स्थान पर किसी के साथ में कोई आनन्द नहीं आयेगा 'भोगा रोगा इवापदि'। अब रोग के समान जैसे हमारे शरीर में रोग हो जाता है तो हमेशा उसी ओर हमारी दृष्टि रहती है। ऐसे ही उनके साथ में यह छूट रहे हैं, यह नष्ट हो रहे हैं अब यह सुख हमें ज्यादा मिलने वाले नहीं हैं। इसी प्रकार की उनके अन्दर एक आकुलता पड़ी रहेगी और वह भोग भी आपत्ति काल में रोग के समान हो जाते हैं। चक्रवर्ती के लिए सब कुछ मिलता है और मिलने के बाद में भी उनके अन्दर उन भोगों की आकुलता के कारण से इस प्रकार की परिणति भी बन जाती है कि उन्हीं भोगों के बीच में रहकर वह यह बात भी भूल जाता है कि यह सब हमारे पहले के पुण्य कर्म का फल है। लेकिन उनकी भोगों में आसक्ति पड़ जाती है तो आचार्य कहते हैं कि वह जीवन के अंत तक उन भोगों को छोड़ नहीं पाता। आपत्तियों को महसूस कर लेगा और उस आपत्ति में अपने लिए दूर-दूर तक भी चला जायेगा। एक सुभौम चक्रवर्ती हुआ है। आपत्ति उसके सामने आई और आपत्ति में वह अपने घर को छोड़कर समुद्र तक चला गया। उसे एक देव लेकर गया जो पहले उसका रसोइया था, जिसने उसके लिए भोजन बनाया था खीर बना करके दी थी, उसने खीर उठाकर करके उसके मुँह पर डाल दी थी क्योंकि वह गरम थी। उसने जल्दी-जल्दी से खाली, उसे गुस्सा आ गया उसने उठकर के थाल उसी के ऊपर पटक दिया। वह रसोइया मर गया और मर करके देव बन गया और उससे बदला लेने के लिए उसके सामने एक आम लेकर के आया और उससे कहता है कि चलो तुम्हें एक आम का वृक्ष दिखाते हैं जिस आम में इतनी मधुरता, इतनी मधुरता है कि वह तुम्हारे अलावा और किसी को नहीं मिलेगा। तुम्हीं वह पुण्यात्मा जीव हो जो उसका भाजन बन सकते हो इसलिए वह उसको समुद्र तक ले जाता है और वहाँ ले जाकर उससे कहता है कि अब आपको यहाँ बचाने वाला कोई नहीं है। आप इस णमोकार मंत्र पर पैर रख दो तो हम आपको बचा सकते हैं नहीं तो आपको बचाने वाला कोई नहीं है क्योंकि वहाँ

वह रह गया अकेला और वह देवता उसको समुद्र में डुबाना चाह रहा था और उसने उस समय वह कृत्य किया और मरकर वह नरक में चला गया। चक्रवर्ती भी मरकर इन्हीं भोगों की आसक्ति के कारण नरक चले जाते हैं और यह भोग ही उनके लिए आपत्ति बन जाते हैं। जितने भी बड़े-बड़े राजा होंगे वो सारे के सारे राजा अकाल में मरेंगे। कोई भी राजा अपनी पूरी आयु से नहीं मरा होगा। आप इतिहास उठाकर देख लेना। जितने भी राजा हुए होंगे बाबर, हुमायु, शाहजाँह, औरंगजेब न जाने कितने, जितने भी होंगे क्योंकि यह सब अपने आस-पास एक ऐसा जाल बुन लेते है यह राजा तो बन जाते हैं लेकिन अपने दुश्मन इतने बना लेते है कि उन दुश्मनों से बचना मुश्किल हो जाता है। हिटलर भी दुनियाँ का सबसे बड़ा नेता बन गया लेकिन वह भी दूसरों से ही मरा, हर बड़ा नेता दूसरों से ही मरता है क्योंकि वे अपने दुश्मन चारों तरफ बना लेते हैं और इसलिए कहते हैं-

''राज समाज महा अघ कारण, वैर बढ़ावन हारा''

यह राज समाज भी महा पाप का कारण है और इस आपत्ति में आदमी पड़ता चला जाता है और उस आपत्ति में वह कब फँस गया उसे पता नहीं रहता। आस-पास के लोग ही जो Commando होते हैं, Guard होते हैं वो ही निपटा देते हैं उसको और वह चौबीसों घंटों उसके साथ रहेंगे। उसे पता नहीं है कि उनके दूसरों के साथ कब, कैसे सम्बन्ध बन गये और वो ही उसको निपटाने के काम आ जाते हैं। सब ऐसे ही मरते हैं। जितनी बड़ी-बड़ी आप शान शौकत की इच्छा करोगे, उतनी ही बड़ी आपके सामने कोई आपत्ति खड़ी हो जायेगी और जितने आप सहज, सरल, शान्त रहोगे उतने ही आप अपने आपमें रहोगे, आपके सामने कोई आपत्ति नहीं होगी, जो होगा उसका सुख आपको पूरा मिलेगा। इसलिए आचार्यों ने कहा है कि आपत्ति में भोग भी रोग के समान दुख देने वाले हो जाते हैं। अभी आपत्ति नहीं आ रही है कब तक नहीं आयेगी जब तक भोगों की सम्पदा एकत्रित नहीं होगी और जिस दिन एकत्रित हो गई उस दिन से आपत्ति ही आपत्ति है। उसमें जब आदमी पड़ जाता है तो फिर उससे निकल पाना उसके लिए मुश्किल हो जाता है। अपनी मौत मरना भी आदमी के लिए कठिन हो जाता है। यह सब राजाओं की, महाराजाओं की ऐसी ही स्थितियाँ रही हैं। राजा श्रेणिक को उसके बेटे ने कैद किया और इसके गम में वो पहले ही मर गया। सब राजाओं की यही स्थितियाँ होती हैं और हर आदमी राजा बनने की दौड़ में रहता है। किसी से भी पूछ लो क्या बनना है, बस बड़ा आदमी बनना है। अब उसे नहीं मालूम बड़े आदमी का मतलब क्या होता है? बड़ा आदमी तो वो ही होता है तो अपने पीछे कम से कम पचास-सौ आदमियों का स्टाफ रखे हो, उन पर हुकूमत चलाये तो बड़ा आदमी। हर कोई बस नेता, प्रधानमंत्री सब बनना चाहते हैं लेकिन उसे यह नहीं मालूम कि वहाँ पहुँचने के बाद में आपत्तियों के अलावा और कुछ नहीं है। वहाँ पर वही आदमी सुरक्षित रह पायेगा जो यह ध्यान

आपत्ति में भोग भी रोग के समान दुख देने वाले हो जाते हैं।

रखें कि कौन है हमारा दुश्मन? पता पड़ जाये कि यह हमारा दुश्मन है उसको shoot करो बस। तब तो तुम्हारी जिन्दगी है और अगर वह पनप गया तो तुम गये काम से। आदमी के अन्दर जब तक डर बने रहते हैं तब तक उन राज सम्पदाओं को प्राप्त करने के बाद भी उनसे उनको कोई सुख नहीं मिलता लेकिन फिर भी सुख इतना रहता है कि I am a minister, prime minister. I am a doctor. यह सब उसके लिए बस मानसिकता के सुख रहते हैं और इन मानसिकताओं के अलावा उसके पास कोई सुख नहीं है अगर आप अपनी इन वासनाओं से ऊपर उठ सकोगे तो अपने आत्मिक सुख की और दृष्टि डाल सकोगे।

आदमी के अन्दर जब तक डर बने रहते हैं
तब तक उन राज सम्पदाओं को प्राप्त करने के बाद भी
उनसे उनको कोई सुख नहीं मिलता

वस्तुस्थिति का परिज्ञान न होने में कारण

7

मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते नहि।
मत्तः पुमान्पदार्थानां, यथा मदनकोद्रवैः॥

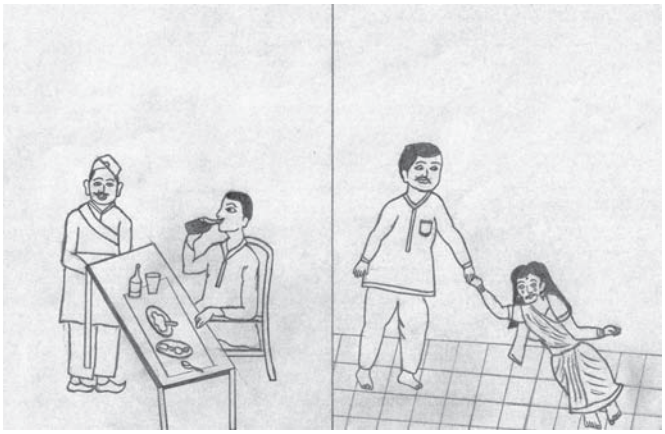

अन्वयार्थ–(मोहेन) मोह से **(संवृतं ज्ञानं)** ढका हुआ ज्ञान **(स्वभावं)** आत्म स्वभाव को **(न हि लभते)** नहीं जान पाता **(यथा)** जैसे **(मदनकोद्रवैः)** नशीले कोदों के खा लेने से **(मत्तः पुमान्)** मूर्च्छित/बेखबर मनुष्य **(पदार्थानां)** पदार्थों को ठीक तरह नहीं जान पाता।

- ☛ **सुख-दुख कल्पना है**
- ☛ **मोह**

इन्द्रियों के द्वारा मिलने वाला सुख और दुख यह आत्मा के लिए केवल भ्रम मात्र होता है क्योंकि जो चीज हमारे लिए कभी सुख रूप होती है, वही चीज हमारे लिए कभी दुख रूप भी हो जाती है। यदि इन्द्रिय के विषय में सदैव सुख मिलता हो तो उससे कभी भी दुख की प्राप्ति नहीं होनी चाहिए। जब उसी विषय से दुख की प्राप्ति होती हुई देखी जाती है तो अपने आप एक समझदार व्यक्ति समझ लेता कि वस्तुतः यह सुख के कारण इन्द्रियों के विषय नहीं है। जिस कार्य में हमारी रुचि होती है, जिसमें हमारी मानसिकता जुड़ी हुई रहती है हमें उसी कार्य में सुख प्रतीत होने लग जाता है। बाहरी वातावरण चाहे कैसा भी हो लेकिन सुख और दुख की प्रतीति हमें केवल अपनी मानसिकता से ही होती है। अगर हमने उस वस्तु में कल्पना कर ली है कि यह हमें सुख देगी तो हमें सुख मिलेगा और उसी में अगर हमारी कल्पना हो गयी कि यह दुख देने वाली है तो वही वस्तु हमारे लिए दुख देने वाली हो जाती है। हर व्यक्ति धूप से डरता है, ग्रीष्म से डरता है, यहाँ तक कि पशु पक्षी भी डरते हैं लेकिन एक पक्षी होता है जिसे चकवा कहते हैं, वह चकवा पक्षी दिन भर चकवी के साथ में रहता है धूप में भी रह जायेगा तब भी उसे कभी दुख नहीं होगा। हर व्यक्ति को धूप से दुख हो सकता है लेकिन उस चकवे को धूप से दुःख नहीं होता क्योंकि उसे धूप में दिखाई देता है। और जब तक सूर्य का प्रकाश है तब तक वह चकवा उस चकवी के साथ रहता है। जैसे ही शाम होती है सूर्य का प्रकाश चला जाता है और चकवे को वियोग का दुख होने लग जाता है। अब उसका चकवी से वियोग हो गया। वियोग क्यों हो गया कि वह रात्रि में दिखाई नहीं देती इसलिए रात्रि में उसको दुख होने लग जाता है। अब विचार करने कि बात यह है कि हर व्यक्ति को धूप में दुख होता है और चन्द्रमा की शीतल छाया में सुख मिलता है और शांति मिलती है लेकिन उस चकवे को ग्रीष्म की धूप में भी सुख मिलता है और रात्रि की शीतल चन्द्रमा की छाया में चाँदनी में भी उसे दुख मिलता है। बाहरी वस्तु कोई भी दुख और सुख का कारण बनती है वो केवल हमारी अपनी मानसिकता के कारण ही बनती है। आपको जिस चीज में सुख प्रतिभाषित हो रहा है वह चीज हो सकता है अभी आपके लिए सुख दे रही है बाद में वही चीज दुख देने वाली हो जायेगी। जिस चीज में आपको सुख मिल रहा है हो सकता है दूसरे व्यक्ति को उसी चीज से दुख की प्राप्ति हो रही है। कोई भी बाहरी वस्तु सुख और दुख देने का नियामक कारण नहीं बनती।

इसलिए आचार्य कहते हैं कि यह सब हमारे पूर्व जन्मों का संस्कार के एक भ्रम है इसी को कहते है वासना। अपनी मानसिकताओं के कारण से ही हमें सुख और दुख की प्राप्ति होती है। अगर हम किसी भी स्थिति में अपनी मानसिकता को अच्छी बनाकर के रखे तो कैसी भी परिस्थिति जो भले ही बाहर से दुख रूप में दिखाई दे रही हो लेकिन हम उसमें सुख को प्राप्त

कार्य के प्रति रुचि एवं मानसिक जुड़ाव से हमें सुख प्राप्त होता प्रतीत होता है।

कर सकते हैं। बाहर की कोई भी परिस्थिति आपको दुख दे रही हो लेकिन आप अगर चाहो तो आपका मन उस परिस्थिति में भी सुखी हो सकता है। शर्त केवल इतनी है आप उससे अपनेपन का भाव छोड़ दो और उसमें जो हमारी ममत्व बुद्धि जुड़ी हुई है,ऐसी जो कल्पना कर रखी वो कल्पना छोड़े बिना कभी भी सुख मिलने वाला नहीं है। जब किसी के पुत्र का वियोग हो जाता है, एक्सीडेंट हो जाता है, तो वह व्यक्ति अनेक तरह से दुखी हो सकता है। व्यक्ति इतने दुखी हो जाते हैं कि जीवनभर के लिए मूर्छा में चले जाते हैं इतना भी उनके अन्दर दुख हो जाता है कि वह हमेशा के लिए धर्म करना भी छोड़ देते हैं। अगर वह व्यक्ति अपने आप को थोड़ा सा समझ लें, इन सूत्रों को याद रखें, इष्टोपदेश आपकी जीवन के काम में आने वाली चीज है। ऐसा नहीं है कि यह आध्यात्मिक लोगों के लिए है, इसमें संसार की हर एक परिस्थिति का दिग्दर्शन कराया गया है। जब हम चीज के स्वरूप को सही ढंग से जान लेते हैं तो हमारा ज्ञान ही हमको फिर सुख देने लग जाता है।

सुख-दुख कल्पना है :

अगर संसार में सुख और दुख की कोई चीज है तो आचार्य कह रहे हैं वह केवल मेरा ज्ञान है। उस ज्ञान में जो हमने कल्पना कर रखी है कि मेरा बेटा चला गया, वह उस चीज से अपने ममत्व भाव को नहीं छोड़ेगा तब तक उसे सुख मिलने वाला नहीं है। जो गया वो तो आने वाला है नहीं और उसके पीछे अब हमारे पदार्थ भी नहीं है वो अपना बेटा भी नहीं है लेकिन दुख किस बात का है, दुख तो अपने अन्दर की चीज है। हमारा उससे केवल ममत्व जुड़ा हुआ है और वह ममत्व हमने जोड़ रखा है। उसने नहीं जोड़ा जो गया है, उसने जोड़ा होता तो वो जा ही नहीं सकता था लेकिन वो छोड़ के चला गया, उसका ममत्व हमारे अन्दर है और वह केवल ममत्व भाव ही दुःख है और कोई अन्य दुखी करने वाली चीज नहीं है। उसी के घर में और भी बहुत सारे लोग हैं, उसके भाई भी हैं, उसके पिता भी हैं, पत्नी भी है। अहो उसकी पत्नी को इतना दुख ना हो, उसके भाई को इतना दुख ना हो, उसकी माँ को हो जाये, उसके पिता को हो जाये तो कोई भी उस दुख को अनुभव कर सकता है। कोई भी उस दुख से दुखी हो सकता है और उस दुख से दुखी होने का अगर कोई कारण है तो बस केवल उसका अपना ममता भाव है। जितना-जितना ममत्व बढ़ाते हो, उतना ही आपको दुःख की प्रतीति होगी और अगर वह सोच ले कि संसार में कोई किसी का नहीं होता सब ऐसे ही आना जाना चलता रहता है। इस तरह से अपने को निरन्तर दुखी बनाये रखने से अपने परिणाम खराब करने से कुछ हासिल होने वाला नहीं है।

जो चला गया वो लौट करके कभी आता नहीं है आपने जैसे ही इस परिणाम को संभाला उस समय आपके लिए वह दुख गायब हो गया।

स्वरूप को सही ढंग से जान लेने पर हमारा ज्ञान ही हमको सुख देने लग जाता है।

जितनी भी दुख और सुख की परिणतियाँ हैं हमारे मन के ऊपर डिपेन्ड है और कुछ नहीं है। इसलिए आचार्यों ने कहा है, एक बहुत अच्छा सूत्र है –

''वासना मात्र मेवयत तत् सुखदुःखं चदेयनम्''

जिस चीज से तुम्हें सुख लग रहा है वह दुख का कारण बन सकती है और जिस चीज से तुम्हें दुख लग रहा है वह चीज तुम्हारे सुख का कारण बन सकती है। मुनि महाराज केशलोंच करते है आपको देख कर दुख हो सकता है, आपको देख करके कष्ट हो सकता है। सामने वाले के अन्दर ऐसा भाव आ जाता है अरे यह कैसी पीड़ा सह रहे हैं, यह कैसे कर रहे हैं, इनको कितना कष्ट हो रहा होगा और उस कष्ट से वो दुखी हो सकता है। उसको उससे सुख भाषित हो रहा है उसको कौन सा सुख मिल रहा है। उसको यह सुख मिल रहा है कि हम अपने इस शरीर से ममत्व छोड़ने का कार्य कर रहे है। उसको सुख मिलने की बहुत सारी मानसिकताएँ हैं। महावीर स्वामी ने कहा है कि आपको केशलोंच करना है। भगवान महावीर स्वामी की वाणी को हम मान रहे है। हमें किस बात का सुख मिल रहा है। हम महावीर स्वामी के तीर्थ में जी रहे हैं और उनके कहे अनुसार चल रहे हैं। इसी बात का भी बहुत बड़ा सुख मिलता है। इस प्रकार से जब हम अपने मूल गुणों का पालन करते है तो इससे आत्मा में असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा और होती है भाव प्रकट होता है इन सब बातों के कारण से मुनि महाराज को केशलोंच में भी, तपस्या करने में भी, उपवास करने में भी सुख मिलता है और देखने वालों को दुख लगेगा।

इसलिए आचार्यों ने यह भी कहा कि दूसरों के दुख और सुख से अपने को कोई लेना देना नहीं है। कोई दूसरा कहने लगे इतना दुख प्राप्त करने की क्या जरूरत है। दूसरों के सुख और दुख के अभिप्राय से अपने को कोई लेना देना नहीं। आपको किस अभिप्राय से सुख मिल रहा है यह आप देखो और आप अगर धर्म के अभिप्राय से सुख की प्राप्ति कर रहे हो तो आपके लिए बाहर की कोई भी चीजें कष्टदायी दिखते हुए भी वो कष्टदायी नहीं होगी। कोई भी चर्चा मुनि महाराज की, कोई भी उनका मूलगुण उनके लिए कभी कष्टदायी नहीं लगता। सामने वाले को देखने में कष्ट लग सकता है लेकिन उनके अन्दर कोई कष्ट नहीं होता और वह अपने मूल गुणों का पालन अच्छे ढंग से कर लेते है क्योंकि उन्हें विश्वास है कि इसी से आत्मा में कर्म की निर्जरा होती है। जो कुछ भी साधन है उससे सब कर्म की निर्जरा करना, कर्मों का जो आस्रव हो रहा है उनका संवर करना। शरीर से ममत्व भाव को हटाये बिना कभी भी आपके अन्दर आत्म ज्ञान की उपलब्धि हो नहीं सकती। इसलिए कोई भी चीज कभी आपको सुख देने वाली दिख रही हो तो इसमें यह देख लेना कि कितना ममता भाव इसके साथ में जुड़ा हुआ है। वस्तुतः उसकी रियलिटी में चले जाओगे तो वह आपको न सुख देने वाली होगी और न आपको दुख देने वाली होगी। वह तो वस्तु है केवल आपकी कल्पना से सुख और दुख उसमें भाषित हो रहा है। मानलो आपको कोई

जितनी भी दुख और सुख की परिणतियाँ हैं वो सिर्फ हमारे मन के ऊपर निर्भर है।

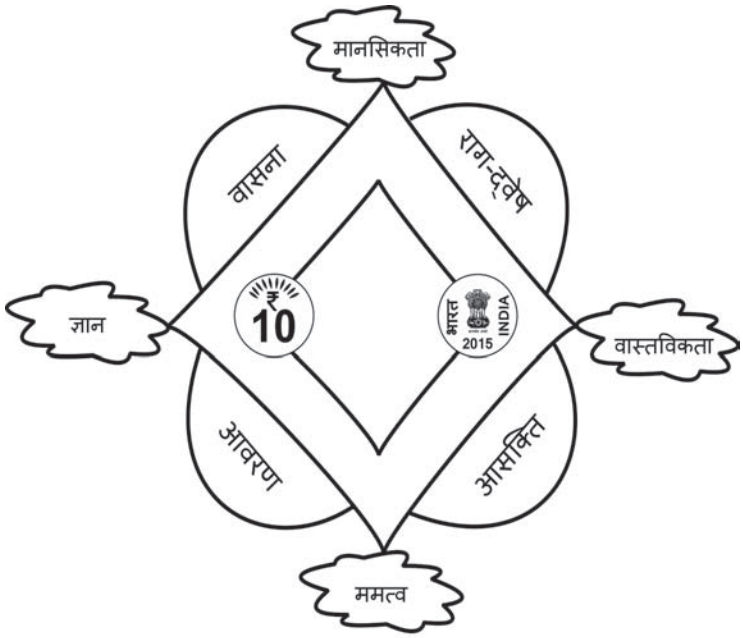

"सुख दुःख मात्र एक कल्पना है।"

व्यंजन अच्छा लगता हो कोई मिष्ठान अच्छा लगता हो। उसके खाने से पहले एक बार विचार करना सोचना कि इसमें ऐसा क्या है, जो हे आत्मा तुझे अच्छा लग रहा है। फिर example आपके लिए प्रिय वस्तु क्या हो सकती है। कोई भी चीज मानलो मिष्ठान कुछ भी है वो मिष्ठान अगर आपको खाते समय पर इतना सा विचार कर लो कि इसमें ऐसा क्या है। जो तेरे लिए अच्छा लग रहा है। उसमें कुछ नहीं है जो है वो तुम्हारे अन्दर है। वो तो नोर्मल चीज है। उसी एक चीज को देख कर सामने वाला उसको छुए भी ना, चाहे वो कितना ही अच्छा मिष्ठान हो अगर उसे मालूम है इससे हमारी डाईबिटीज बढ़ जायेगी तो वह नहीं खायेगा। उसके लिए वो जहर है। तुम्हारे लिए वो चीज अमृत बन रही है। चीज में कोई अमृत नहीं है उसका नाम ही तुम्हारा ममत्व परिणाम का भाव से ही है। जिस आटे से आप रोटी बनाते हो, पुड़ी बना लेते हो उसी से सब कुछ बन जाता है। अच्छी से अच्छी चीज में रसगुल्ला में भी तो आटा ही मिला हुआ है। यह बात अलग है कि उसमें आटा खोवा के साथ मिल गया है और उसमें आटा ही अलग-अलग है। आप किसी भी चीज की वास्तविकता में जाओ तो आप के अन्दर स्वयं आपका ममत्व परिणाम आपके कन्ट्रोल में आ जायेगा। यह सुख और दुख वासना मात्र है। इस सुख और दुख से हमें कुछ भी लाभ नहीं होता है। संसारी प्राणी इसी सुख दुख की कल्पना में डूबा रहता है। क्यों अपने अन्दर यह नहीं समझ पाता कि यह सब भ्रम है? क्यों अपने आप को उन वस्तुओं से नहीं छुड़ा पाता जिसकी आसक्ति में वो परेशान रहता है? कौन सा कारण है कि हमारा ज्ञान हमको नहीं समझा पाता कि इन चीजों में भ्रम है। तो आचार्य यहाँ उसका एक कारण बता रहे है।

''मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते न हि''

ज्ञान तो है लेकिन वह ढक गया है। ज्ञान अपना काम नहीं कर पा रहा है। वह ज्ञान अनेक प्रकार की विचित्रताओं में उलझ जाता है। अगर ज्ञान अपने स्वभाव में हो, अपने अखण्ड स्वभाव

वस्तु की वास्तविकता में चलो वह आपको न सुख देगी और न दुख देने वाली होगी।

में हो तो वो किसी भी विचित्रता में ना उलझे लेकिन जब ज्ञान के ऊपर मोह का आवरण आ जाता है तो वह अनेक विचित्रताओं में उलझ जाता है। आपने कभी कोई मणि देखी है, कोई चमकीला पदार्थ देखा हो अगर वह गन्दा हो तो आप देखोगे कि उसमें तरह-तरह की चमक दिखाई देगी। अगर वह बिलकुल शुद्ध हो जाये तो उसमें केवल एक ही तरह की चमक दिखाई देगी। इसी तरह से आचार्य कहते हैं कि जब ज्ञान पर मोह का आवरण रहता है, तरह-तरह का मोह ज्ञान के ऊपर पड़ा रहता है तो अनेक प्रकार की उसमें से प्रतिभाष, तरह तरह के विचित्र रूप में देखता है इसलिए आचार्य कहते हैं कि मोह ने ज्ञान को ढक रखा है। ज्ञान तो है लेकिन मोह ने उसको ढक दिया है आकाश की तरह ज्ञान निर्मल है। उसी आकाश में जब बादल छा जाते हैं तो हमें आकाश दिखाई नहीं देता बल्कि बादल दिखाई देते हैं। हम कहेंगे कि आकाश कैसा काला-काला दिखाई दे रहा है। नीला-नीला दिखाई दे रहा है। आकाश न काला है न आकाश नीला है। उस आकाश के ऊपर बादल आ गये है। उन बादलों के कारण वह आकाश अब हमें दिखाई नहीं देता। अगर उसके पीछे सूर्य भी हो तो वह सूर्य भी हमें दिखाई नहीं देगा। उसके भी हमें अनेक-अनेक रंग दिखाई देंगे उन बादलों के कारण कहीं सफेदी है, कहीं उजाला है, कहीं पीला है, कहीं लाल है। हमें अनेक-अनेक प्रकार की परिणतियाँ दिखाई दे जायेंगी लेकिन ज्ञान तो वास्तव में आकाश की तरह निर्मल है। अगर मोह का आवरण भी आया तो ज्ञान का कुछ बिगड़ा नहीं। यह मोह का आवरण आकाश की तरह है। जैसे ही बादल हटें आपको अपने ज्ञान की सही सही प्रतीति होने लगेगी इन बादलों के कारण से हमें समझ में नहीं आता कि हमारा स्वभाव इतना निर्मल होते हुए भी यह चित्र-विचित्र क्यों हो रहा है। इस मोह को हटाये बिना, बादलों को हटाये बिना वह आकाश की निर्मलता भीतर होते हुए भी हमारे पकड़ में नहीं आ पाती। इसी को आचार्य कहते हैं कि अपना ज्ञान मोह से, राग से बहुत दूषित हो गया है। अब उस ज्ञान को ज्ञान के स्वभाव में लाना है तो उस मोह को, राग को, द्वेष को ही हटाना पड़ेगा। जितना आपके अन्दर ज्ञान अभी उत्पन्न हुआ है उतना ही राग द्वेष और मोह हटेगा। कोई दूसरा ज्ञान आकर मोह राग द्वेष को नहीं हटाने वाला। आप कहो कि बाहर से हवा चल जाये और बादल सब हट जाये और आकाश हमें निर्मल दिखाई दें जाये। ऐसा बाहर तो हो सकता है पर भीतर नहीं हो पायेगा। (उदाहरण एक दोष होता है) भीतर ऐसी कोई हवा चल जाये तो हवा भी केवल अपने ही ज्ञान की होगी। अपना ही ज्ञान स्वयं अपने ही हाथों से अपने अन्दर हवा करें तो हो सकता है कि उसके ऊपर से यह मोह के बादल थोड़े से हटे। जब यह मोह के बादल हटेंगे तो **''स्वभावं लभते न हि''** जो स्वभाव अभी तक प्राप्त नहीं हुआ वह हमें प्राप्त होने लग जायेगा। जो हमारा ज्ञान स्वभाव है, आकाश की तरह निर्मल है। वह स्वभाव की प्राप्ति केवल इन मोह के बादलों के हटने से होने लग जायेगी। ज्ञान अपने ऊपर और ज्ञान के माध्यम से आवरण डालता चला जाता है। जब तक यह नहीं समझ पाये कि इन आवरणों को हटाना है। इन

मोह ने ज्ञान को ढक रखा है। जो हमारा ज्ञान स्वभाव है, आकाश की तरह निर्मल है।

मोह के बादलों को हटाना है, तब तक उसके बादल और गहरे होते चले जायेंगे। जितना-जितना वह अपने ज्ञान स्वभाव को नहीं समझेगा तब तक उसके बादल और ज्यादा गहरा करके उसके ज्ञान स्वभाव को ढाँकते रहेंगे। आप देखते हो जैसे ही बादल थोड़े दिखाई देते हैं तो दोनों प्रकार की कन्डीशन बन सकती है। या तो वो बादल गहरा जाये या इतने गहरे हो जाये कि बिल्कुल काला-काला सा छा जाये, दिन में भी। और या फिर हटते जाये तो एकदम से सूर्य प्रकट हो जाये, सफाई हो जाये, बिल्कुल सफाई हो जाये खुला आकाश निर्मल अपने को दिखाई देने लग जाये, दोनों प्रकार की कन्डीशन बनती है। इसी तरह से अपनी आत्मा के अन्दर भी अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं होगा और इन मोह राग द्वेष की परिणति के अनुसार आपकी परिणति चलती रहेगी तो बादल बढ़ते रहेंगे।

राग से राग बढ़ता जायेगा। मोह से मोह बढ़ता जायेगा। द्वेष से द्वेष बढ़ता जायेगा। हर चीज गहराती चली जायेगी। जितनी ज्यादा गहराती जायेगी उतनी ही ज्यादा आप अपने स्वभाव से दूर होते जायेंगे। यह एक बहुत बड़ी प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को हम समझ लें अगर अपने ऊपर से यह मोह, राग, द्वेष के बादल हटेंगे तो केवल अपने ही ज्ञान के प्रयोग से हटेंगे और कोई दूसरा उसको हटाने वाला नहीं है। आप कहोगे महाराज जब हटाने वाले नहीं हैं तो उपदेश भी कुछ काम के नहीं है। वास्तव में देखा जाये तो उपदेश भी कुछ काम के नहीं हैं के लेकिन वह उपदेश उन्हीं के काम के होंगे जिन्होंने हटाने का मन बना लिया अगर हटाने का मन नहीं बनाया तो वास्तव में उपदेश किसी काम का नहीं है। हम तो छोटे-मोटे मुनि महाराज हैं बड़े-बड़े तीर्थंकर भी उपदेश दे देते है तब भी उनके उपदेश से अपने बादल नहीं हटते क्योंकि उपदेश सुनने मात्र से बादल नहीं हटते। बादल हटाने का अपने अन्दर एक भाव बन सकता है। वह केवल बनेगा तो उपदेश सुनने से बन सकता है। जिस समय जिस निमित्त से बन जाये वो ही आपके लिए काल लब्धि है, वो ही आपकी भवितव्यता है, वो ही आपकी योग्यता है।

बड़े-बड़े तीर्थंकर हो गये उनके सामने अनेक-अनेक जीव रहे। हम और आप भी रहे होंगे लेकिन हमने भी नहीं सुनी आपने भी नहीं सुनी। हो सकता है क्योंकि जब तक वह काल लब्धि नहीं आती जब तक हमारे परिणामों में यह नहीं आता कि यह बादल हमको हटाना है। तब तक उपदेश हमारे लिए कार्यकारी हो नहीं सकता। अच्छा लग सकता है। हाँ महाराज आप बहुत अच्छा बोलते हो। भगवान की वाणी बहुत अच्छी है। दो-दो घण्टे तक सुनते रहो बहुत अच्छा लगता है। लेकिन वह कार्य करने का जब तक मन नहीं बनता तब तक वह उपदेश भी कार्यकारी हो नहीं पाता। इसलिए हर निमित्त की जरूरत तो है। लेकिन उससे कार्य जब तक नहीं बनता तब तक वह निमित्त भी कुछ निमित्त के रूप में नहीं काम कर पाता। इसलिए आचार्य कहते हैं कोई भी निमित्त हो उन निमित्तों के माध्यम से आप यह जानते रहो कि कौन सा निमित्त हमारे लिए कौन सा कार्य

कर सकता है। कम से कम बादल हटाने का भाव बाद में बने या ना बने लेकिन इतने समय के लिए तो थोड़ा सा तो बनता ही है। जब कहा जाता है तब तो थोड़ा सा मन में विचार आता ही है। हो सकता है वही थोड़ा सा विचार आपके लिए थोड़ी सी कहीं सन्धि पैदा कर दें और उसी सन्धि से फिर आपकी वह सन्धि बढ़ती चली जाये। सन्धि जानते हो, जब कोई दो चीजें मिली हुई होती है तो उसको तोड़ने के लिए सन्धि देखनी पड़ती है। आचार्यों ने इस आत्मा के अन्दर लगे हुए इन कर्मों को तोड़ने के लिए भी एक सन्धि बतायी है। उस सन्धि के माध्यम से ही वह कर्म और आत्मा दोनों के स्वभाव को अलग-अलग जानकर पृथक किया जाता है। आचार्य कहते हैं पहले इन दोनों के स्वभाव को अलग-अलग जान लो। जो भी चीजें हैं हर चीज के स्वभाव को जान लो। आत्मा है तो आत्मा के स्वभाव को पहचान लो, कर्म हैं तो कर्म के स्वभाव को जान लो, शरीर है तो शरीर के स्वभाव को जान लो बाहर की कोई वस्तुएँ हैं तो उनके स्वभाव को जान लो। हर चीज के स्वभाव को पहले पहचान लो। आपने उस चीज को वास्तविक रूप में पहचाना और जैसे ही आप उस चीज को वास्तविक रूप में पहचान लोगे तो आपको समझ में आ जायेगा कि यह अपनी चीज है, यह पराई चीज है। जब तक हमने अपनी आत्मा के स्वभाव को नहीं पहचाना, हमने यह नहीं जाना कि वास्तव में आत्मा कैसी है? आत्मा का गुण धर्म क्या है, आत्मा का लक्षण क्या? उस आत्मा के लक्षण की ओर जब तक हमने दृष्टि नहीं डाली तब तक हम कभी भी कर्म और शरीर को अपने से भिन्न पहचानने में ला ही नहीं सकते हैं। लक्षण पहले पहचान लो, लक्षण भेद से ही कार्य में भेद गठित होगा। अरे आत्मा का स्वभाव क्या है। आत्मा का लक्षण तो ज्ञाता दृष्टा है। जानना, देखना है यह सुना तो है हमने बचपन से बालबोध में पाठशाला में पढ़ते आ रहे हैं। लेकिन वह बोध उत्पन्न नहीं होता है। जो बोध इस स्वभाव के माध्यम से हमें भिन्नता का ज्ञान करा दे, पढ़ा दिया जाता है लेकिन बोध उत्पन्न नहीं होता है। बोध अलग चीज है और ज्ञान अलग चीज है। हमने रट लिया है आत्मा ज्ञाता दृष्टा स्वभाव वाला है यह हो गया आपके ज्ञान में बोध नहीं हुआ। बोध जब प्राप्त हो जाता है तो वह आत्मा ज्ञाता दृष्टा स्वभाव में पृथक भाषित होगी। आपको लगेगा कि यह मैं अपने अमूर्त स्वभाव में हूँ। अपने निश्चल आत्म स्वभाव में हूँ। यह आपके अन्दर का बोध कहलायेगा। उस बोध से आपको अपने शरीर की पृथकता अपने आप स्पष्ट मालूम पड़ेगी, ज्ञान से मालूम नहीं पड़ेगी। अभी तक जो हमने पढ़ा है वो सब क्या किया है? ज्ञान लिया है। उस ज्ञान ने हमारे ऊपर ज्यादा असर नहीं डाला। वह ज्ञान भी हमको बाँधता रहा। आत्मा के लिये ज्ञान स्वभाव है लेकिन वह ज्ञान भी आत्मा को बाँधता रहा है क्योंकि वह बाहर का ज्ञान ओढ़ता रहता है और जब तक आप बाहर की वस्तु ओढ़ते रहोगे आप बँधते रहोगे। आकाश के ऊपर किसी और चीज की जरूरत है ही नहीं। यदि उसके ऊपर कोई भी आवरण डाला जायेगा तो वह उस आकाश को छिपाने का काम करेगा, आवरण का काम करेगा, ज्ञान भी हमारे ऊपर

कभी-कभी उसी तरह आवरण का काम करता है। कुछ लोग बहुत सारी जानकारियाँ इकट्ठी कर लेते हैं, बहुत ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं पर वह ज्ञान आत्म ज्ञान नहीं हो पाता। बाहर से Internet के माध्यम से बहुत ज्ञान लिया, बहुत सी जानकारियाँ लीं पर वह ज्ञान आत्मज्ञान को प्रकट करने वाला नहीं है, वह ज्ञान आपको आपके स्वभाव तक पहुँचाने वाला नहीं है। आत्म स्वभाव तक पहुँचाने वाला ज्ञान तो दूसरा ही है, वह कहलाता है बोध। यह शब्द आज बाल-बोध के रूप में देखा जाता है। बच्चों की किताब होती है बाल-बोध। आपको यदि वह किताब दे दी जाये तो आप कहेंगे यह तो बच्चों की है हम तो बड़े हो गये। ध्यान रखना जब तक आत्मबोध को प्राप्त नहीं हो जाते तब तक आप भी बाल हैं। जब बोध की प्राप्ति हो जायेगी तो वह बाल का भाव छूट जायेगा। बाल का मतलब बचपन का भाव, अज्ञानता का भाव। बोध वहीं से प्रारंभ होता है कक्षा 1 से, बाल बोध भाग-1 से। जब तक आपको बोध न हो जाये तब तक आप बाल ही रहेंगे। ज्ञाता-दृष्टा आत्मा का स्वभाव है। ज्ञान दर्शन आत्मा का गुण है। ज्ञानोपयोग, दर्शनोपयोग आत्मा का अपना उपयोग है। इसके अलावा कर्म के उदय से आने वाले उपयोगों की परिणति अलग है। जो आपको बचपन से पढ़ने मिला है उसे और ध्यान से दोहराना है। बचपन में लिया हुआ ज्ञान ही काम आयेगा परंतु उस ज्ञान को पाकर छोड़ दिया और राग-द्वेष की परिणति में पड़ गये तो वह ज्ञान ढक गया। इसलिए आचार्य महाराज कहते हैं कि मोह के कारण से हमारा ज्ञान स्वभाव ढका हुआ है। राग के कारण से हमारा ज्ञान हमारे लिये ही प्रतिकूलता का काम करता है अनुकूल नहीं हो पा रहा। आचार्य महाराज ने लिखा है-

''ज्ञान ही सुख का कूल है, ज्ञान ही दुख का मूल।
राग रहित अनुकूल है, राग सहित प्रतिकूल॥
चुन-चुन इसमें उचित को, मत चुन अनुचित भूल।
सब शास्त्रों का सार है, समता बिन सब धूल॥''

ज्ञान ही सुख का मूल है। The real cause of happiness is knowledge. किताबों वाली knowledge नहीं, जो आपने आत्मा से ली वह knowledge. जिसे कहा जाता है consciousness. चेतना। अगर वह चैतन्य स्वभाव आपके अंदर आ जायेगा तो आपकी मूर्च्छा टूट जायेगी और जो ज्ञान हमारे लिये प्रतिकूल काम कर रहा था वही ज्ञान हमारे लिये अनुकूल काम करने लगेगा। उस ज्ञान में ही आपको सुख का मूल प्रकट होने लगेगा।

एक राजा था वह अपनी रानी में आसक्त रहता था। इतना ज्यादा आसक्त था कि उसे यह भी पता नहीं था कि हमारे राज्य में कहाँ क्या हो रहा है। उस राज्य पर दूसरे राजा भी आकर के आक्रमण कर सकते हैं। अपनी फौज को लेकर के आ सकते है और हमको किसी भी रूप में बन्दी बना सकते है। उसे कुछ ज्ञान नहीं है। वह केवल सुख की प्राप्ति के लिए अपनी रंगशाला में गया

बोध जब प्राप्त हो जाता है तो वह आत्मा ज्ञाता दृष्टा स्वभाव में भाषित होगी।

और वहीं पर अपना समय व्यतीत कर रहा है। उसके पास में एक ऐसा दिव्य अस्त्र था कि जिस अस्त्र को कोई भी मनुष्य पराजित नहीं कर सकता था। राजा शत्रुघ्न जो राम के भाई थे, वह राजा था और जिस राजा की मैं बात बता रहा हूँ वह मधु राजा था। उसके पास में देवों के द्वारा दिया गया एक दिव्य अस्त्र था। लेकिन वह उसको भी भूलकर अपनी रंगशाला में रहता था। उसी समय शत्रुघ्न का आना हुआ और शत्रुघ्न को मथुरा जीतना था। उसने पूछा कहाँ है राजा मधु ? तो उसे पता पड़ा वो अपनी रंगशाला में है तो उसने सोचा यह सबसे अच्छा मौका है और उसने मथुरा पर आक्रमण कर दिया। सारी की सारी मथुरा पर कब्जा कर लिया। जब राजा मधु को पता पड़ा तो उसके हाथ में दिव्य अस्त्र नहीं था। वह अस्त्र भी उस शत्रुघ्न के कब्जे में चला गया। सामान्य अस्त्र से वह युद्ध करने लगा और युद्ध करते-करते वो हार गया। उसे लगा कि अब हमारी मृत्यु होने वाली है। अब हमारे सामने कोई दूसरा उपाय नहीं है। वह युद्ध के स्थान में खड़ा है। सामने शत्रुघ्न खड़ा है। राजा मधु उस समय हाथी पर बैठा है। युद्ध कर रहे हैं दोनों। उसकी समझ में आया कि यह युद्ध जीतने के योग्य नहीं रहा। अब हम अपने दिव्य अस्त्र को लेने नहीं पहुँच सकते हैं जहाँ हमारा दिव्य अस्त्र रखा है। मृत्यु निश्चित है उसकी समझ में आ गया। जैसे ही उसकी समझ में आया कि अब हम क्या करें? मृत्यु निश्चित है पूरी की पूरी सेना पराजित हो गयी है और हमारा शरीर भी छलनी छलनी हो रहा है, अब क्या करना चाहिए? उस समय पर उसको देखो, जैसे ही उसने यह महसूस किया कि हमारे लिए मृत्यु बिल्कुल सामने है, यूँ ही मर जाना कोई मतलब का नहीं है। उसके अन्दर वह आत्म ज्ञान की एक लहर पैदा हुई। अगर हम शत्रु से पराजित भी हो गये तो कोई बात नहीं लेकिन मुख्य शत्रु तो हमारा मोह है। जिस मोह के कारण हमारा दिव्य अस्त्र भी हमारे पास में नहीं रह पाया और हम उसको भी उठाने तक नहीं पहुँच पाये। इस मोह के कारण इस आसक्ति के कारण से, हम ऐसे फँसे कि आज हमारी मृत्यु हमारे सामने खड़ी है। जैसे ही उसे इतना आभास हुआ उसका मोह उसी समय पर गलने लगा। आपकी आत्मा का ज्ञान उस मोह रूपी शत्रु से ज्यादा बलवान है। यह ध्यान रखना मोह ज्यादा बलवान नहीं है। बलवान आपका ज्ञान है। मोह तब तक बलवान बना रहता है जब तक कि आपको अपने बल का पता चलता नहीं है। हमेशा यह ध्यान रखना कोई भी दूसरा शत्रु अगर आपके ऊपर आक्रमण कर रहा है आपको दबा रहा है। तो तभी तक दबा कर रख सकता है जब तक आपको अपने बल का ज्ञान नहीं है। अगर आपने यह मान लिया है कि इस से तो में जीत ही नहीं सकता तो आप कभी जीत ही नहीं सकोगे, आप हार गये। आप उसी समय मर गये। अगर आपने यह मान लिया कि मोह बलवान है, इससे मैं कभी जीत नहीं सकता तो आप कभी भी मोह से जीत नहीं पाओगे। जैसे ही आपने समझ लिया कि मोह क्या है? यह तो अपने ऊपर छाये हुए बादल की तरह है। इसको हम अपने ही ज्ञान की हवा से दूर कर देंगे। यह तो अभी तितर-बितर हो जायेगा। आपके अन्दर इतनी सी हवा आयी आपका

मोह तब तक बलवान बना रहता है जब तक कि आपको अपने बल का पता नहीं है।

ज्ञान आपके स्वभाव के माध्यम से आपके उन बादलों को हटाते हुए मोह को तुरन्त पराजित कर देगा। केवल आपको समझने की जरूरत है कि मोह हमारा स्वभाव नहीं है। उस राजा मधु को उस युद्ध स्थल पर हाथी पर बैठे बैठे यह ध्यान में आ गया।

''मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते न हि''

हाथी पर बैठे-बैठे ही सब कुछ वस्त्र आदि छोड़ दिये। मेरा किसी से मोह भाव नहीं, यह राज्य मेरा नहीं, मैं बुद्धि पूर्वक इस राज्य का त्याग करता हूँ। मरते-मरते भी हो जाये तो बड़ी बात समझना यह नहीं समझना कि अब तो मर ही रहा था। हार ही रहा था इसलिए कर दिया। तुम्हारा मोह यही बोलेगा लेकिन मरते-मरते भी अगर करने में आ जाये तो बहुत बड़ा साहस समझना। आप और उसने उस समय मरते-मरते भी यह भाव कर लिया कि इस मोह के कारण ही मुझे आज यह दुखदायक पराजय की स्थिति देखनी पड़ रही है। ऐसे इस मोह को मैं धिक्कारता हूँ। इस मोह को त्यागने के लिए मैं अपनी कमर कसता हूँ। उसने वहीं पर जितने भी मोह के, ममता के परिणाम थे उन सबका त्याग करके और उसी हाथी पर बैठे-बैठे ही उसने केशलोंच करना प्रारम्भ कर दिया। उसी हाथी पर बैठे-बैठे वह मुनि महाराज बन गया और नीचे उतरकर जैसे ही बैठा तो अब राजा शत्रुघ्न सामने था। अब वो उस पर वार नहीं कर सकता, अब वो उसको मार नहीं सकता। वो राजा जो उसके लिए शत्रु था वही राजा अब उसके चरणों में गिर गया। अरे मधु तुमने यह क्या कर लिया। जो कार्य मुझे करना था, मैं अन्धा बना था उस मोह के कारण वह काम तुमने हमसे पहले कर लिया। तुम हमारे लिए पूज्य हो गये और वह उनके चरणों में गिर पड़ा। अब कहने लगा कि यह सारा राज्य तुम्हारा, यह सारी सम्पदाएँ तुम्हारी, हमें माफ कर दो, हमें क्षमा कर दो। अब क्या क्षमा माँगना, क्या माफ करना जब त्याग कर ही दिया। अब तो वह अपनाने की बात है ही नहीं और वह राजा शत्रुघ्न उस समय पर जीत कर भी हार गया। एक जीत ऐसी भी होती है जो हार जाने पर भी जीत होती है। आप संसार में जितना जिससे लड़ोगे उतना ही ज्यादा तुम हारते चले जाओगे। अगर तुम्हें संसार को जीतना है तो तुम उससे हारना शुरू कर दो। तुम उससे जीतते चलें जाओगे। बहुत उल्टी बात बता रहा हूँ लेकिन अगर करोगे तो सीधी लगेगी। बहुत गहरी बात बता रहा हूँ। आदमी इसलिये नहीं जीत पाता किसी को, क्योंकि वो हमेशा अकड़ता है और अपने आप को किसी के सामने हार स्वीकार नहीं करता। आप किसी को भी जीतना चाहो तो आप उसके सामने पहले हार जाओ आप देखोगे आपने उसको जीत लिया। आप स्वीकार कर लो जीत तेरी पराजय मेरी। जैसे ही उसके सामने आपने हाथ जोड़े और आपने कहा कि आप जीत गये। आप श्रेष्ठ है बस समझलो आपने उस आदमी को जीत लिया। उस आदमी के दिल में यह बात आ गयी कि यह मेरे सामने अब मेरा शत्रु नहीं रहा। यह प्रतिद्वन्दी नहीं रहा। इसने मेरे से हार स्वीकार कर ली। इसका मतलब है अब मुझे इसका कोई डर नहीं और वह आदमी तुरन्त गले लगा लेगा और

कहेगा नहीं भाई तुम नहीं हारे मैं भी नहीं हारा, तुम भी जीते और मैं भी जीता, कितनी छोटी सी बात सुनने में आती है लेकिन कहने में पसीना बह आयेगा। अगर आप इतना सा प्रयास करके देख लो और उस प्रयास के माध्यम से सामने वाले का मन न पसीजे तो आपके लिए भी उससे कोई हानि होने वाली नहीं है। ऐसा हो ही नहीं सकता है कि सामने वाले का मन ना पसीजे क्योंकि कोई भी इतना पत्थर दिल नहीं होता है। आपके अन्दर का परिणाम ही उसको मजबूत करता है कि वो आपसे द्वेष बाँधे। आप कहोगे मेरा उससे कोई द्वेष नहीं लेकिन आपका यही द्वेष है कि आप उसके सामने अपने आप को समर्पित नहीं कर सकते हो। आप कहोगे हम समर्पित क्यों करे हम क्या छोटे हैं? हम क्या कमजोर हैं, हमारे पास क्या कुछ नहीं है? बस यही तो हेकड़ी आपके लिए उसको मजबूर कर रही है, आपसे उसका बैर बनाये रखने के लिए और जैसे ही आपके अन्दर केवल यह भाव आ जाये आप जीते हम हारे, दोनों की जीत हो जायेगी कोई नहीं हारेगा। ऐसी जीत हो जायेगी कि सब को याद रहेगी। इस जीत के लिए और कुछ नहीं करना पड़ता है, बस ऐसे ही समर्पित होना पड़ता है। हम दुनियाँ के सामने समर्पित हो जाते है लेकिन अपनों के सामने समर्पित नहीं हो पाते। महाराज के सामने समर्पित हो जायेंगे, भगवान के सामने समर्पित हो जायेंगे लेकिन एक आदमी के सामने समर्पित नहीं हो पाते। एक आदमी दूसरे आदमी से नहीं कह पाता है कि मैं तेरे सामने हार गया अब बता तुझे क्या करना है। कितना ही बड़ा प्रतिद्वन्दी हो वह तुम्हारे पैर छू लेगा तुम्हारे हाथ पकड़ के तुम्हें गले से लगा लेगा। यह नहीं हो पाता है। भगवान के सामने हम बिल्कुल समर्पित हो सकते है। साष्टांग नमस्कार कर लेंगे, भगवान के सामने हम पूजा प्रार्थना कर लेंगे लेकिन जिससे हमारा द्वेष चल रहा है, जिससे हमारे परिणाम बिगड़ रहे है, जो हमारे अनुकूल नहीं है, अगर हम उसका शतांश भी उस के सामने कर दें तो हमारी परिणति ऐसी बन सकती है कि जो आपको भगवान की पूजा से कभी सुख नहीं मिला हो वह सुख आपको उस समय एक आदमी के आदमी बनने से मिलता है लेकिन पहले खुद आदमी बनो। आदमी, आदमी तभी बनेगा जब वो पहले अपने अन्दर थोड़ा सी कोमलता लाये। कठोरता आदमी को ना आदमी बनने देगी न उसे कभी इन्सान से परमात्मा बनने देगी। आपको अपने अन्दर कोमलता का ही वातावरण तैयार करना पड़ेगा। उसी से आपके अन्दर का वह मोह भाव टूटेगा। हमें किसी से कोई शत्रुता नहीं है, हमारा जगत में कोई भी नहीं है। ऐसा भाव आया और मोह के बादल छटेंगे। अपने आप वह सब कुछ सामने घटित होने लगेगा और वह राजा मधु अब वह मुनि महाराज बन गया। राजा शत्रुघ्न सामने खड़े हैं और उसके सामने खड़े होकर उसी समय उन्होंने भी अपना धनुष छोड़ दिया और चरणों में नमस्कार करने के लिए एकदम प्रेरित हो गये। साष्टांग नमस्कार करने लगे हे भगवान्, हे मुनि महाराज आपने बहुत योग्य कार्य किया। आपने इस मिटती हुई काया को अन्त समय में छोड़ कर आपने अजर अमर तत्त्व की उपलब्धि कर ली और वह उनके चरणों में नमोऽस्तु करते

हुए उनका गुणगान करने बैठ गये। अगर वह राजा मधु लड़ता रहता तो क्या होता, यह लोक भी बिगड़ता और परलोक भी। यहाँ पर भी वह उसके बाणों से छिन्न-भिन्न होकर जाता और अगले जन्म में जहाँ जाता वहाँ भी संक्लेश से जाता तो अगले जन्म में उसे देव पर्याय तो मिलने वाली है नहीं क्योंकि राजा मधु की जो गति होती वह बड़ी दुगर्ति होती क्योंकि वह आरंभ परिग्रह में आमूल चूल डूबे रहते थे। जब तक वह उस आरंभ परिग्रह को अंत समय तक नहीं छोड़ते तब तक उनके लिए सद्गति की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए हमेशा ध्यान रखो कि मरते-मरते भी हमारा यह मोह छुट जाये तो समझ लेना कि इस जीवन में हमने बहुत बड़ा पुरुषार्थ कर लिया। आपने समझ रखा है कि हम कुछ नहीं कर सकते, हम कमजोर है, हमारा ज्ञान इतना बलवान नहीं है, मोह हमारा बहुत बलवान है और उस मोह को हम जीत नहीं सकते है।

एक बार एक शेर को एक बात सुनने में आ गई। खेतों में कुछ लोग काम कर रहे होते हैं और वहीं पर पास के जंगल में वह शेर भी छुपा हुआ बैठा था। उन खेत में काम करने वाले लोगों में जो बड़ा आदमी था, पिता स्वरूप था, उसने अपने और घर के लोगों से कहा कि खेत का काम जल्दी से निपटा लो और रात होने वाली है और अन्धेरे में हमें बहुत डर लगता है। अन्धेरे से ज्यादा डरावनी कोई चीज नहीं है। यह बात एक पिता अपने बेटों से और वहाँ खड़े लोगों से कह रहा था और इस बात को शेर ने सुन लिया। अब शेर सोचता है कि मुझ से भी ज्यादा डरावना कोई दुनियाँ में है, मुझसे भी ज्यादा बलवान इस दुनियाँ में है जो इनको डरा सकें? होगा तभी तो यह कह रहा है, यह मुझसे नहीं डर रहा है यह अन्धेरे से डर रहा है और यह कह रहा है कि अन्धेरे में मुझे बहुत डर लगता है जल्दी चलो और उसी समय जल्दी करते-करते भी अन्धेरा हो गया। अन्धेरे में जहाँ वो शेर खड़ा था, वह पिता अपने लोगों के साथ चला जा रहा था। रास्ते में वो शेर मिल गया और शेर के अन्दर यह डर बैठ गया था कि मुझसे भी ज्यादा बलवान, ज्यादा डरावना अन्धेरा है। इस डर के कारण उस शेर को भी यह ध्यान नहीं रहा है कि मेरे सामने कौन आया? वह आदमी जो शेर के सामने से गुजरा उसने उसको अन्धेरे में यह कोई कुत्ता है ऐसा समझ के उसका कान पकड़ा, उसके गले में जंजीर बाँधी और अपने घर लेकर के आ गया। शेर सोचता रह गया कि यह अन्धेरा बहुत डराने वाला है, बहुत बलवान है और उसने उसी सोच के कारण अपनी गर्दन हिलाई नहीं और वह आदमी उसको बाँध कर ले आया। घर में लाकर के उसको बाँध करके घर के कोने में रख दिया। अब शेर सोचता है कि यह क्या हो गया मैं तो जंगल का राजा था, स्वतंत्र रहने वाला था, इसके चंगुल में फँस कैसे गया। रात भर तो वह डरता रहा और जब सुबह हुई तो वह सोचता है कि मेरे गले में जंजीर..? यह तो संभव हो नहीं सकता और उसी समय जंजीर अपनी ही ताकत से खींची और वह उससे छूटा और छूटकर पुनः जंगल में पहुँच गया। उसे पता पड़ गया कि अँधेरा तो डरावना है लेकिन अँधेरे से डरने वाली चीज और कुछ है वह हमारे मन का डर

है। वह तो सुबह होते ही उस जंजीर को तोड़ कर निकल गया लेकिन आप अनादिकाल से उस जंजीर में पड़े हुए है आपके अन्दर भी वो ही शेर जैसी ताकत है लेकिन आप भी यही सोचते हो कि हमें कोई डराने वाला नहीं है।

मोह एक अन्धकार के समान है। ज्ञान प्रकाश है और उस अन्धकार की इतनी ताकत नहीं है कि वह हमारे ऊपर हावी होता रहे। लेकिन वह ताकत तभी तक है जब तक कि आपको अपने स्वरूप का भान नहीं हो रहा है। जैसे ही आपको अपने स्वरूप का भान होगा अन्दर का वह डर निकल जायेगा। आपको अपने आप लगने लगेगा कि मैं बिना वजह अभी मोह से डरता आया था मोह तो बहुत छोटी सी चीज है। इसको तो हम कभी भी छोड़ सकते हैं, कभी भी हम इसको पराजित कर सकते हैं। लेकिन यह ज्ञान भी तब उत्पन्न होगा जब आप उसकी पराजय होने के बाद अपनी विजय देखोगे और वह जब पराजित होगा तब ही आपको अपने ज्ञान स्वभाव की प्राप्ति होगी। इसलिए आचार्य कहते हैं कि जब तक मोह पराजित नहीं होता तब तक हमें दुनियाँ के इष्ट अनिष्ट विषयों में सुख और दुख की कल्पना पड़ी रहती है। वह भ्रम हमारे अन्दर पड़ा रहता है। उस विभ्रम को और जानना चाहते हैं तो आचार्य एक उदाहरण दे रहे हैं।

''मत्तः पुमान् पदार्थानाम् यथा मदनकोद्रवै''

जैसे कोई भी आदमी मदन को उत्पन्न करने वाले चावल (एक प्रकार का धान्य) जिसको खाने से नशा चढ़ जाता है, खा लेता है। जब नशा चढ़ जाता है तो वो क्या करता है?

जो बाहरी पदार्थ हैं उन बाहरी पदार्थों में ही वह और ज्यादा मद मस्त हो जाता है। उसी को उठायेगा, उसी को फेंकेगा। उसी को फिर अपने पास में रखेगा। कभी आपने पिए हुए आदमी की हालत देखी ? जैसे पिया हुआ आदमी जो वस्तु अपने पास में नहीं उसको उठाने के लिए दौड़ेगा रख लेगा। थोड़े दिन उसके साथ खेलेगा। उसी को उठाकर फेंक देगा। उसी को तोड़ देगा। उसे किसी पदार्थ की वास्तविकता का ज्ञान नहीं होता, वह जैसे पागलपन में आ जाता है। वह हर बात-बात में इष्ट अनिष्ट की कल्पना अपने अन्दर करता रहता है। ऐसे ही यह संसारी प्राणी मोह के कारण कभी किसी चीज को पकड़ता है और उसकी भी चेष्टा किसी पागल आदमी जैसी हो जाती है। जितना मोह का नशा चढ़ता है उतना ही भीतर से पागलपन आयेगा। दुनिया में आप जितने पागल बनेंगे उतना ही दुनिया के लोग आपको अच्छा कहेंगे, दुनिया के लोग आपको सिर पर उठायेंगे, दुनियाँ के लोग आपकी प्रशंसा करेंगे। आप अगर कभी उनके सामने आगे बैठे जाओगे जिनके ऊपर मोह का नशा नहीं है तो वे कहेंगे यह अपना जीवन कैसा बर्बाद कर रहा है। आपके अन्दर जब मोह का नशा चढ़ता है तो आप धन की ओर दौड़ने लगते हैं, परिग्रहों को इकट्ठा करने की दौड़ लगाते हैं और आपको देखकर जिनके अन्दर ऐसा ही नशा चढ़ा है तो वे भी कहेंगे। हाँ देखो कितना बड़ा आदमी है। अच्छा आदमी है। वे आपके गले माला डालेंगे। बहुत बड़े आदमी

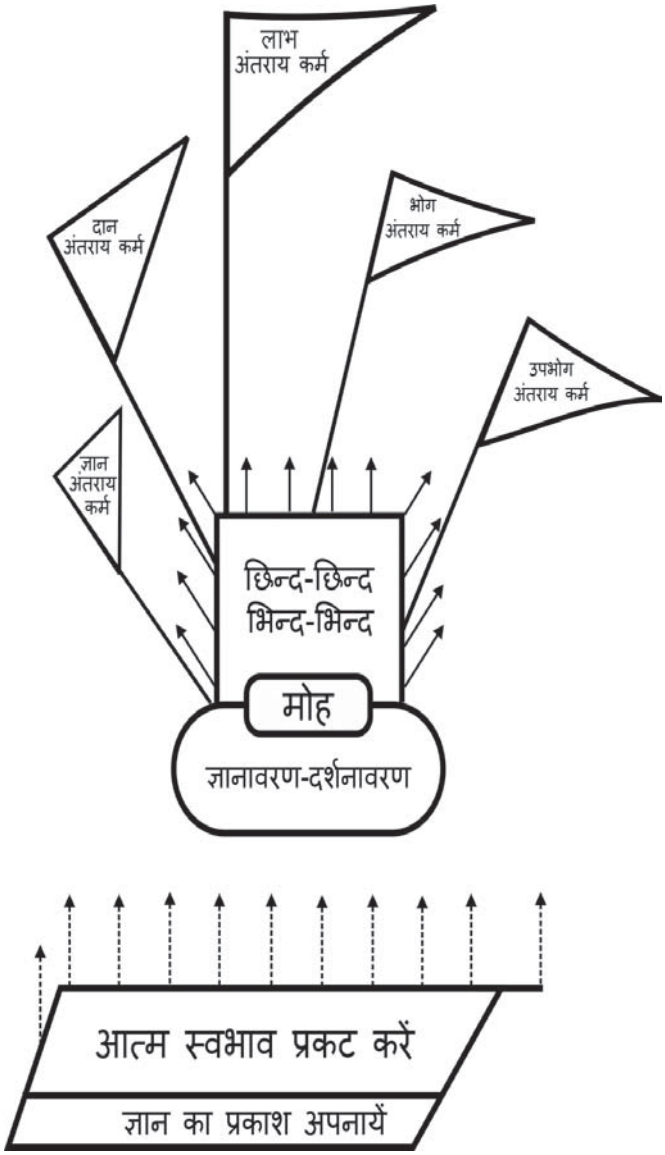

हैं, बहुत बड़े सेठ हैं। मोह के कारण आपका नशा और बढ़ता चला जायेगा। लेकिन अगर आप उस मोह के स्वरूप को समझेंगे तो आपकी समझ में आयेगा कि यह दुनिया हमारी उन्हीं कृतियों की प्रशंसा करती है जो हमारे लिए हानिकारक है। मोह हमारा सबसे बड़ा शत्रु है लेकिन वही हमें हमारा मित्र लगता है। उस मोह से हम अपने आप को छुड़ाना चाहते नहीं हैं। इसलिए आचार्य कहते हैं जब तक आप मोह में कमी नहीं लाओगे आपको अपने स्वभाव की प्राप्ति नहीं होगी। ज्ञान कुछ भी बिगड़ा हुआ नहीं। बस उस ज्ञान में मोह की कमी करना। अंधकार जैसे-जैसे कम होगा प्रकाश अपने आप प्रकट होता चला जायेगा। ज्ञान के अन्दर इतनी शक्ति है कि वह उस मोह को पराजित कर सकता है। लेकिन आपका ज्ञान शेर की तरह अंधेरे में दुबका हुआ बैठा है। शेर की तो सुबह हो गयी, उजाला हो गया उसने समझ लिया कि, यह तो मेरे साथ गलत हो गया, जंजीर मेरे गले में कैसे पड़ गयी, लेकिन आपको अभी यह आभास नहीं हो पा रहा है कि मेरे गले में कितनी जंजीरें पड़ी हैं और हमें कितने लोग कहाँ-कहाँ खींचते रहते हैं। यह आपको जिस दिन आभास हो जायेगा आपके अन्दर का शेर जाग्रत हो सकता है। अभी कोई सम्भावना दिखाई नहीं दे रही है लेकिन हो सकता है क्योंकि हर कोई आशा करता है तो हम भी आशा पर ही टिके हैं। इसी आशा में कि आपके अन्दर भी यह ज्ञान स्वभाव प्रकट हो। अपने स्वरूप का जब तक हमें ज्ञान

मोह हमारा सबसे बड़ा शत्रु है लेकिन वही हमें हमारा मित्र लगता है।

नहीं होगा तब तक अपने से भिन्न किसी चीज को नहीं जानेंगे। इसी को आचार्य कुन्द-कुन्द देव समयसार जैसे महान ग्रंथ में कहते हैं–

अपने अन्दर उस संधि स्थान पर छेद करो-भेद करो। यह छिन्दि-छिन्दि, भिन्दि-भिन्दि, भगवान के ऊपर तो करते रहते हो ठीक है यह थोड़ा अपने भीतर करो। यह जिन भगवान के ऊपर इतनी ज्यादा प्रभावकारी नहीं है जितनी अपने अन्दर करने से प्रभावकारी है।

अपनी आत्मा में, आचार्य कहते हैं ''पण्णाये छिद्धप्पो पण्णाये भिद्धप्पो, पण्णाय गिद्दप्पो'' यह आचार्य कुन्दकुन्द देव समयसार के बन्ध अधिकार में लिखते हैं कि प्रज्ञा से अपने आप छेदन करो, अपने अन्दर ऐसी प्रज्ञा पैदा करो, जिस प्रज्ञा से आपकी आत्मा और आपके कर्म दोनों आपको भिन्न-भिन्न प्रकट हों और उस छेदन से उसके टुकड़े-टुकड़े कर दो। आत्मा और कर्म को अलग-अलग कर दो। बिल्कुल पृथक-पृथक कर दो। जब दोनों को पृथक-पृथक कर दो तो प्रज्ञा से ही उसको ग्रहण कर लो। जो अपना आत्म तत्त्व है। उसको ग्रहण कर लो प्रज्ञा से ही छेदन करो , प्रज्ञा से ही भेदन करो , प्रज्ञा से उसको ग्रहण करो। कर्म आत्मा के अन्दर अलग लगें हैं, चिपके हैं, बँधे हैं तो वे टूटेंगे आपकी प्रज्ञा से। इसलिए–

''पण्णाए छेत्तव्वो भेत्तव्वो घेत्तव्वो'' छिन्दि-छिन्दि, भिन्दि-भिन्दि, प्रज्ञा से छेदन करो, भेदन करो वो प्रज्ञा ही कहलाती है। भेद विज्ञान प्रज्ञा ही कहलाती है। हे 'आत्मज्ञान जिससे यह कर्म छिन्दि-छिन्दि हो जाते हैं; भिन्दि भिन्दि हो जाते हैं; वो इन छिन्दि-छिन्दि, भिन्दि-भिन्दि कर्मों के माध्यम से फिर हम अपने आत्म स्वभाव को गिण्ड-गिण्ड भी होता है। गिण्ड में ग्रहण कर लेना। जो भी बाहर की क्रियाएँ होती हैं, वह सब हमें हमारी आत्मा में पहुँचाने के लिए होती है। बाहर की अगर वह शान्तिधारा भी है तो इसलिए है कि हमारे अन्दर शान्तिधारा गिर जाये। केवल बाहर ही ना रह जाये। वो व्यवहार अगर निश्चय के लिए नहीं होगा तो उस व्यवहार से भी कोई लाभ नहीं होगा। वह व्यवहार में की गई शान्तिधारा यह बताती है कि ऐसे ही शान्ति का झरना भगवन् हमारे अन्दर झरता रहे, निरन्तर शीतलता बनी रहे। वह शत्रु बाहर कोई भी नहीं है। सबसे बड़ा शत्रु तो हमारा मोह शत्रु है। इसलिए जब आप कहते हो परशत्रु भयम् छिन्दि-छिन्दि भिन्दि-भिन्दि तो आपकी दृष्टि कहाँ जाती है? अपने शत्रु पर अब वो शत्रु आपका आपके गाँव में भी रह सकता है, आपके गाँव के बाहर भी हो सकता है। वह शत्रु भी मान लो अगर शान्तिधारा कर रहा हो तो क्या होगा। आप कह रहे हो पर शत्रु भयम् छिन्दि-छिन्दि, भिन्दि-भिन्दि भगवान पड़ गये धर्म संकट में और आपने भी डाल दिया उसको धर्म संकट में। भगवान वीतरागी और उस वीतरागी भगवान को अपने बीच में धर्म संकट में डाल दिया अब काम किसका होगा। जिसका काम हो गया वह समझेगा हमारी भगवान ने सुन ली। यह और मोह का अंधकार छा गया। ये अज्ञान की

परिणतियाँ कई बार हमारे अन्दर आती जाती हैं और बढ़ती जाती हैं। जो कोई भी बाहरी क्रिया हो उसको भीतर लगाओ। अगर पर शत्रु भिन्नम् भी कहने में आये तो बाहर दृष्टि नहीं जाये। शत्रु हमारा मोह है, वही हमारा प्रभाव है, वही हमारा हमसे भिन्न स्वभाव वाला है। वह मोह ही हमारा शत्रु है। ऐसा भाव करके अपने अन्दर भाव करो कि हे भगवान्! यह छिन्दि-छिन्दि, भिन्दि-भिन्दि हो जायें। तब तो शान्तिधारा ठीक है। और अगर वो भाव नहीं रहा तो आप किसी दूसरे को छिन्दि-छिन्दि भिन्दि-भिन्दि करोगे तो दूसरा आपको कहेगा। तो हमें कभी भी ऐसे किसी द्वंद्वों में नहीं पड़ना। दृष्टि अगर भीतर रहेगी तो निर्द्वन्द्व रहेगी और बाहर रहेगी तो द्वन्द्व हो जायेगी। इसलिए आचार्य कहते हैं समझो कि शत्रु क्या है? विघ्न क्या है? आचार्य कहते हैं जो हमारे अन्दर अन्तराय कर्म है– ज्ञान अन्तराय, दान अन्तराय, लाभ अन्तराय, भोग अन्तराय, उपभोग अन्तराय यह सब बड़े विघ्न हैं। यह हमारी आत्मा के अंदर विघ्न उत्पन्न करने वाले हैं।

मोह रूपी शत्रु सबसे बड़ा शत्रु है। अगर कोई हमारी आत्मा के ऊपर आवरण उत्पन्न करने वाला है तो वह ज्ञानावरण और दर्शनावरण आवरण है जो हमारी आत्मा के अन्दर हमें आत्म स्वभाव को प्रकट नहीं होने देते। इनको शत्रु समझ करके इनको घातने का, इनको छिन्दि-छिन्दि और भिन्दि-भिन्दि करने का पुरुषार्थ जगाओ। यह समझना कि अपने अन्दर का पुरुषार्थ जब तक इस रूप में नहीं जगेगा तब तक आचार्य उदाहरण दे रहे हैं-

मदिरा पान भी हमारे अन्दर पड़ी हुई है उसको तो समझ लेते हैं। वह मदिरा पीये हुए है लेकिन अपने को समझ में आये कि मोह की मदिरा हम भी पीये हैं। उस मोह की मदिरा के कारण से ही हमें अनेक इष्ट-अनिष्ट की कल्पनाएँ होती रहती हैं इस प्रकार के अध्यात्म ज्ञान से ही, इस प्रकार की प्रज्ञा उत्पन्न होने ही यह मोह रूपी शत्रु पराजित होगा। मोह रूपी शत्रु के पराजित होने पर ही ज्ञान स्वभाव प्रकट होगा। राजा मधु ने इस युद्ध स्थल में ही अपनी बात बना ली और उसने अपना वह काम कर लिया जो जीवन भर नहीं कर पायां ऐसे राजाओं के उदाहरण भी आप ध्यान में रखो कि जब कभी लगे कि यह पर्याय छूटने वाली है तो उससे पहले हमें ऐसा पुरुषार्थ करके जाना है तो आपका वह पुरुषार्थ सफल माना जायेगा नहीं तो छोटे मोटे काम से बहुत उपलब्धि होने वाली नहीं है। भीतरी उपलब्धि तो हमें मोह को जीतने से ही होगी।

आत्म-तत्त्व की उपलब्धि मोह को जीतने से ही होगी।

मोही का भ्रम

8

वपुर्गृहं धनं दाराः पुत्रा मित्राणि शत्रवः।
सर्वथान्य स्वभावानि मूढः स्वानि प्रपद्यते॥

अन्वयार्थ– (**वपुः गृहं**) शरीर, घर (**धनं दाराः**) धन, स्त्रियाँ (**पुत्राः मित्राणि**) पुत्र, मित्र और (**शत्रवः**) शत्रु (**सर्वथा**) सब तरह से (**अन्य-स्वभावानि**) अन्य स्वभाव वाले हैं परन्तु (**मूढः**) मोही प्राणी इन्हें (**स्वानि प्रपद्यते**) अपना समझता है।

- ☞ **मूढ़ता**
- ☞ **स्व स्वभाव एवं पर स्वभाव**
- ☞ **तात्कालिक एवं त्रैकालिक**

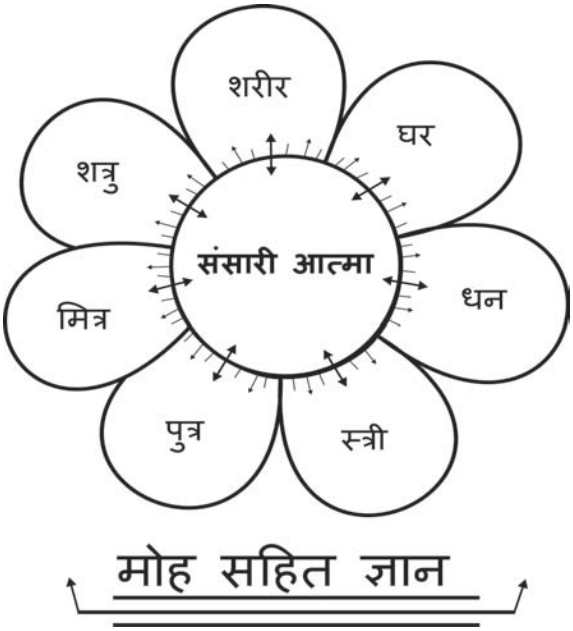

मोह सहित ज्ञान

हमारा ज्ञान मोह के कारण आवृत है, ढका हुआ है और उसी के कारण हमें विभाव में ही स्वभाव की कल्पना होती है।

अपने स्वरूप को भूलकर जो अपना नहीं है उसको अपना मानने की परिणति पैदा होती है, और इस परिणति का मुख्य कारण है 'मोहसहित ज्ञान'। केवल ज्ञान नहीं किन्तु मोह सहित ज्ञान ही इस प्रकार की परिणति पैदा करता है।

'वपुः गृहं धनं दाराः, पुत्रा मित्राणि शत्रवः॥'

यह सब चीजें हैं–

वपुः का मतलब है – शरीर
गृहं का मतलब है – घर
धनं का मतलब है – धन
दारा का मतलब है– स्त्री
पुत्रा का मतलब है – पुत्र
मित्राणि का मतलब है – मित्र
शत्रवः का मतलब है – शत्रु

यह सभी चीजें सभी संसारी आत्माओं के साथ जुड़ी रहती हैं। इन चीजों में सबसे पहले उसका शरीर आ जाता है। क्योंकि जीवात्मा का सबसे निकटतम संबंध अगर होता है तो उसका अपने शरीर से होता है। उस शरीर के प्रति भी उसकी मान्यता और गृह आदि के प्रति भी उसकी मान्यता मोह के कारण से विपरीतता की ओर चली जाती है। इसी विपरीत मान्यता को वह जब तक अपने साथ में रखता है तब तक उसे मूढ़ात्मा कहा जाता है।

मूढ़ताः

अध्यात्म की दृष्टि से आचार्यों ने यह जो मूढ़ शब्द दिया है वो इसलिए दिया है कि जिस तरह से कोई भी व्यक्ति जब किसी चीज पर मुग्ध हो जाता है तो उसके सिवाय उसे कुछ और दिखता

विभाव में स्वभाव की कल्पना मूढ़ात्मा द्वारा होती है।

नहीं है। इसी तरह से संसारी प्राणी जब मोह से आसक्त हो जाता है तो उस मोह के कारण से जिस वस्तु से वह चिपकता है, जिस वस्तु को वह अपना मानता है, उसमें वह मूढ़ता को प्राप्त हो जाता है। यह मूढ़ता शब्द ही बाद में जाकर मुग्धता के रूप में परिवर्तित हो गया है।

अध्यात्म की दृष्टि से अगर हम अपने स्वभाव में नहीं है तो हमको मूढ़ कहा जाता है मुग्ध कहा जाता है। मोही कहा जाता है। अज्ञानी भी कह सकते हैं और ये सभी शब्द आचार्य प्रयोग में इसलिए लाते हैं कि कभी-कभी थोड़ा सा कठोर शब्दों का सम्बोधन करने से भी आपको शायद झटका लग जाये क्योंकि झटका लगाना एक मुख्य कार्य है। जब तक अन्दर से विचारों में झटका नहीं लगता तब तक हमें यह समझ नहीं पड़ता कि हम गलत रास्ते पर चल रहे हैं। इसलिए आचार्य भी कभी-कभी कहते हैं कि देखो इस संसारी प्राणी की दशाएँ कैसी हैं? यह शरीर को अपना मानता है और शरीर कभी भी इसका अपना होता नहीं। शरीर में अपनेपन की मान्यता मानकर ही यह मान लेता है कि मैं मनुष्य हूँ। यह मान्यता इसकी यहीं पर नहीं रह जाती, आत्मा जहाँ कहीं भी जिस गति में जायेगी, वहाँ जैसा उसे शरीर मिलेगा उसे वह अपना मान लेगी। पशु बनेगी तो पशु के शरीर को अपना मान लेगी। यही मैं हूँ। यही मेरा स्वरूप है। नरक में जायेगा तो नरक में अपने आपको नारकी मान लेगा। देव बनेगा तो देव में अपने स्वरूप को मान लेगा। जिस शरीर को प्राप्त करता है यह उसी शरीर को अपना मान लेता है और इस शरीर को अपना मान लेने से इसका ज्ञान मोह से आवृत होने के कारण यह अपने ज्ञान को विपरीत परिणमन करा लेता है।

इसलिए आचार्य यहाँ कहते हैं कि इन शरीर आदि में जो आपकी मान्यता है उस मान्यता में थोड़ा सा परिवर्तन लायें।

एक बात जो मुख्य रूप से कही है- ''**सर्वथान्यस्वभावानि मूढः स्वानि प्रपद्यते॥**''

पहले यह मान लो कि ये सब सर्वथा अपने से अन्य स्वभाव वाले हैं। यह शरीर, यह घर, यह धन, यह स्त्री, यह पुत्र, यह मित्र आदि सब। इनका स्वभाव अपना स्वभाव नहीं है, इनका स्वभाव अपने से भिन्न है।

अगर आप किसी भी प्रकार से अपने ज्ञान की परिणति को बदल देंगे तो आपको कुछ भी नुकसान नहीं होगा। आपके लिए शरीर, शरीर रहेगा और आप शरीर में रहेंगे। आपका शरीर आपसे छूट नहीं जायेगा। अगर आप इस शरीर में मान रखी मान्यता बदल दें कि इसका स्वभाव अलग है और हमारा स्वभाव अलग है। इसका स्वभाव कभी भी आत्मा का स्वभाव नहीं हो सकता। इसका जो स्वभाव है वो आत्मा के स्वभाव से विपरीत है। जब दो के स्वभाव में विपरीतता आ जाती है तो अपने आप कुछ दूरियाँ बनने लग जाती हैं। जैसे ही हमारी दृष्टि में श्रद्धा की परिणति बनेगी कि हमारे शरीर का स्वभाव हमसे अन्य है, हमसे भिन्न है तो हमारा स्वभाव कुछ और होगा जब इन दोनों का स्वभाव अलग-अलग हो गया तो यह आपके ज्ञान में बैठ जायेगा। यह आपके ज्ञान

मुग्धता, मोही, अज्ञानी आदि मूढ़ता के पर्यायवाची हैं।

में जब आ जायेगा तो जैसे आप भिन्न स्वभाव वालों से अपनी दूरियाँ बनाकर के रखते हैं, ऐसे ही अपने आप आपकी शरीर से और आत्मा से दूरियाँ बन जायेंगी। लेकिन आपको डर लगता है कि कहीं कुछ हो न जाये, कहीं हमें इस शरीर से वैराग्य ना हो जाये, कहीं हमारा घर हमसे छूट ना जाये, कहीं हमारे स्त्री पुत्र आदि हमसे छूट ना जायें।

आचार्य कहते हैं कि आपके अन्दर का यह डर आपको तब तक डराता रहेगा जब तक कि आप सही प्रकार से तत्त्व का श्रद्धान नहीं करेंगे क्योंकि डर तो मिथ्या मान्यता के कारण से आता है। अगर आपको कभी किसी चीज को देखकर के डर लगेगा तो तभी लगेगा जब आपने उसके बारे में कुछ गलत सोच लिया। यथार्थ अगर आपको पता पड़ जाये तो डर की कोई बात ही नहीं है। आपके अन्दर एक बार डर बैठ जाता है तो वह डर इतना बैठ गया है कि अब उससे अपने आपको छुड़ाना नहीं चाहते हो। डर में ही आपको आनन्द आता रहता है। जब भी कभी आपको डर लगेगा यथार्थ से डर नहीं लगेगा, अयथार्थ से डर लगेगा। साँप अगर वास्तविक हो तो आपको इतना डर नहीं लगेगा, जितना आपको साँप की छाया से डर लगेगा। अगर कहीं आपको यह पता पड़ जाये कि यह साँप की छाया है या यहाँ अंधेरे में साँप है उस अंधेरे की कल्पना से और साँप की कल्पना से आपके अन्दर जितना डर आ जायेगा शायद यथार्थ में नहीं आये। जो मिथ्या होता है उसका अपने अन्दर डर समाता है। वस्तुस्थिति में अगर कुछ घटित हो जाये तो उसका आपको इतना डर नहीं रहेगा और जो जब तक घटित नहीं हो रहा है तब तक आप डर सकते हो। किसी भी बात से डर सकते हो।

पिछले साल (2015) हम मन्दसौर में चातुर्मास कर रहे थे। एक लड़की आयी कहने लगी महाराज हमें एक चीज का बहुत डर लगता है। मेरी माँ को सफेद दाग हो गये हैं। मुझे इस बात का डर लगता है कि कहीं यह दाग मुझे भी ना हो जाये। इस डर से बचने का अगर कोई उपाय है तो केवल एक ही उपाय है कि तू वस्तु के यथार्थ स्वरूप को समझ ले और वस्तु का यथार्थ स्वरूप यह कहता है कि अगर तेरे पाप कर्म का उदय होगा तो तुझे भी ऐसे दाग होंगे, अगर नहीं होगा तो कभी नहीं होंगे, अब तुझे डरने की कोई जरूरत नहीं है। अगर तुझे अपने पाप और पुण्य पर विश्वास हो जाये कि अगर तेरे कर्म का उदय आयेगा तो ही तुझे कुछ होगा अन्यथा नहीं। जैसे ही इस यथार्थ स्वरूप पर आपका श्रद्धान बन जायेगा, आप बिल्कुल डर से मुक्त हो जाओगे। डर के कारण भी यथार्थ स्वरूप पर श्रद्धान बन नहीं पाता और इस यथार्थ स्वरूप पर श्रद्धान नहीं बनने के कारण से भी डर पैदा होता रहता है।

अब अगर कोई विचार हमने किया, उससे हम डर रहे हैं तो यह केवल अपनी कमजोरी है। यह केवल अपनी ही मान्यता के कारण से होता है। वस्तुतः वह चीज हमको डराती नहीं। और हम किसी भी चीज से डर सकते हैं अगर कहीं अभी बरसात हो गयी, हम घर तक जाने में, भीग गये, बीमार पड़ गये तो क्या होगा, यह भी एक डर है।

डर हमारी अपनी मानसिक कमजोरी है जो मिथ्या मान्यता के कारण आती है।

आपने अगर यह डर बैठा लिया तो यह आपकी अपनी मानसिक कमजोरी हो गयी। इस डर के पीछे किसी का हाथ नहीं है। आप बिना वजह अपने विचारों से डर बैठा लेते हैं और अगर यथार्थ में आ जायें कि जैसा होगा वैसा देखा जायेगा। जिस समय पर जैसा होना होगा देखा जायेगा। इसमें डरने की क्या जरूरत है? अगर इतना सा अपने मन के अन्दर विचार आ जाये तो वह डर तुरन्त चला जाता है। इसी विचार की कमी के कारण से डर हमेशा पैदा होता रहता है और न जाने कितने प्रकार के डर हम अपने मन में पाले रहते हैं। अपने ही शरीर से हमें डर लगता है जब हम अपने शरीर के यथार्थ स्वरूप को जानने की कोशिश करते हैं। आचार्य कहते हैं आप केवल दोनों के स्वभाव को समझो। आत्मा का स्वभाव क्या, शरीर का स्वभाव क्या और जैसे ही हमें यह समझ में आयेगा कि इन दोनों के स्वभाव तो भिन्न-भिन्न हैं तो आपकी परिणति में अपने आप मोह की कमी आने लग जायेगी। क्योंकि मोह ही एक ऐसा पदार्थ है जो हमें दो विपरीत चीजों से जोड़े हुए हैं।

आत्मा का स्वभाव चैतन्य रूप है, ज्ञान रूप है और शरीर का स्वभाव अज्ञान रूप है, अचेतन रूप है। मोह इन दोनों को जोड़े हुए हैं और मोह के कारण ही हम कभी भी, किसी भी गति में यह समझ नहीं पाते कि मेरा स्वभाव अपने शरीर से भिन्न है। जब अपना ही शरीर भिन्न नहीं दिखाई देगा तो फिर आपको आगे आने वाली कोई भी चीज भिन्न दिखाई नहीं देगी। जब शरीर ही अपना हो गया तो–

गृहं - घर भी अपना
दारा - स्त्री भी अपनी
पुत्र - बेटे भी अपने
मित्र - वो भी अपने, और
शत्रु- वो भी अपना

ये सब चीजें एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। शरीर बना तो शरीर के लिए एक घर चाहिए। घर है तो घर तभी कहलायेगा जब उसमें कोई स्त्री हो। स्त्री के बिना कोई घर तो घर ही नहीं होता। वह ही उस घर की लक्ष्मी है। वह ही स्वामिनी होती है तो घर है तो स्त्री है, स्त्री है तो पुत्र भी होंगे। मित्र होंगे तो अपने आस-पास शत्रु भी होंगे यह सब एक दूसरे से connected (जुड़े) हैं। इन सबमें हमारी जो मान्यता बन गयी है कि ये सब अपने हैं। अपने ही स्वभाव रूप हैं। इस मान्यता को छोड़ने के लिए यहाँ आचार्य कहते हैं कि जब तक आप इस मान्यता को नहीं छोड़ेंगे तब तक आपको सम्यग्ज्ञान होने वाला नहीं है और सम्यग्ज्ञान के बिना आपको कभी सुख मिलने वाला नहीं है।

मोह हमेशा दुख देने का कारण रहा है, हमेशा मोह के कारण से ही आत्मा दुखी रही है और आत्मा को दुख मिलेगा तो मोह के कारण से मिलेगा। कम ज्ञान से कभी आत्मा को दुख नहीं मिला

मोह दुख देता है, सम्यग्ज्ञान के बिना आपको सुख मिलने वाला नहीं है।

और जैसे ही आप ज्ञान की आराधना शुरू करेंगे तो ज्ञान से आपको सुख मिलेगा। लेकिन आदत ऐसी पड़ चुकी है कि मोह छोड़ने का भाव करना तो दूर की बात है मोह के बारे में सही समझने में भी हमें डर लगने लगा है और डर लगता है।

इसलिए यहाँ आचार्य कहते हैं एक बात अपने अन्दर बैठा लो कि मोह के कारण हमने इन सबको अपने स्वभाव रूप मान लिया है। लेकिन इनका स्वभाव अपने से भिन्न है यह ज्ञान तो कर लो। ज्ञान करने से कोई कमी होने वाली नहीं है। भले ही मोह में बैठे रहना। छुड़ा नहीं रहे आपका मोह लेकिन अपने अन्दर ज्ञान की परिणति ऐसी पैदा कर लो कि उस ज्ञान की परिणति में हमें दोनों चीजें भिन्न-भिन्न दिखाई देने लग जाये।

स्व-स्वभाव एवं पर-स्वभाव :

शरीर का स्वभाव आत्मा से भिन्न, स्त्री का स्वभाव, पुत्र का स्वभाव, मित्र का स्वभाव और शत्रु का स्वभाव अपने से भिन्न। जैसे ही यह भिन्न स्वभाव आया, उस भिन्न स्वभाव की मान्यता में ही अपने अन्दर एक मान्यता आने लग जाती है कि हम दो में से किसको मानें?

एक तो अपना स्वभाव है और एक पर का। पर स्वभाव आपको मानना है तो किसे माने और अपना मानना है तो किसे मानें और दोनों को माने तो दोनों को मानने से हमारे अन्दर क्या घटित होगा? आचार्य कहते हैं कि आप दोनों दृष्टि से देखें। आपने गलती क्या कर रखी है कि जिस दृष्टि से आप अपने को देखते हो, उसी दृष्टि से आप पर को भी देखते हैं। लेकिन अगर आप पर को, पर की दृष्टि से देखें और स्वयं को स्वयं की दृष्टि से देखें तो कहीं कोई विडम्बना की बात रहे ही नहीं। कहीं कोई दु:ख की बात रहे ही नहीं। जो पर है वो पर रहेगा। जो अपने से भिन्न है वो भिन्न रहेगा। अब उस भिन्नता का ज्ञान कराने के लिए आचार्यों ने कहा है कि दो प्रकार के नय होते हैं। एक व्यवहार नय और दूसरा निश्चय नय। नयों के ज्ञान से ज्ञान सम्यक् हो जाता है और दुख मिट जाता है। निश्चय नय हमेशा अपने ऊपर लागू होता है और व्यवहार नय हमेशा पर सापेक्ष होता है। दूसरे की सापेक्षता से घटित होता है। जैसे ही आप अपने स्वभाव की बात करेंगे तो निश्चय से आत्मा अपना ज्ञान स्वभावी है, चैतन्य स्वभावी है, आनन्द स्वभावी है। पर की बात करेंगे तो पर का स्वभाव पर की अपेक्षा से होगा वह स्व की अपेक्षा से नहीं आयेगा। आचार्य कहते हैं आपको पर का स्वभाव भी जानना है तो वह व्यवहार नय से जानो कि यह व्यवहार नय से मेरा है। बीच में आपका ज्ञान आ जाये और हर चीज में आप ज्ञान के साथ काम करने लग जाये तो अपने आप दु:ख सुख में बदल जाये। हमको अभी व्यवहार नय का भी सही ज्ञान नहीं है। निश्चय नय का ज्ञान तो है ही नहीं। व्यवहार नय का भी नहीं है।

अगर हम नयों के ज्ञान के माध्यम से अपनी हर आस-पास की चीज की मान्यता में बदल दे तो हमारा बहुत सारा अज्ञान छूट जाये। अज्ञान तभी तक है जब तक हम नयों के माध्यम से किसी

नयों के ज्ञान से ज्ञान सम्यक् होता है एवं दुख सुख में बदल जाता है।

चीज को नहीं जानते। जैसे ही हम नयों के माध्यम से सही-सही जानने लग जाते हैं तो आचार्य कहते हैं कि अपना ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो जाता है जो चीज पर है उसको व्यवहार नय से मानो और जो चीज स्व है उसको निश्चय नय से मानो।

व्यवहार नय से शरीर मेरा है, घर मेरा है, स्त्री मेरी है, पुत्र, मित्र, शत्रु ये सब मेरे है। दो चीजों के बीच में अगर थोड़ा सा भी अन्तर करने वाली कोई चीज आ जायेगी तो अपने आप जो बीच का लगाव है, मोह है वह कम हो जायेगा। ज्ञान से अपने अन्दर इतनी सी परिणति और पैदा कर लो जैसे कि किसी पानी में गंदलापन होता है हम उसके अन्दर फिटकरी डाल देते हैं तो गंदलापन बैठ जाता है। ऐसे ही नयों के ज्ञान के माध्यम से अपना attitude जब बदलता है उसके बदलने से हमारे अन्दर मोह में कमी आने लग जाती है और ज्ञान, सम्यग्ज्ञान हो जाता है।

आचार्य कहते हैं कि आप मानो यह मेरा है कोई बात नहीं लेकिन कम से कम इतना तो समझ लो कि यह व्यवहार से मेरा है। निश्चय से मेरा नहीं है। जो मेरा है वह मेरा ही रहेगा लेकिन ज्ञान में, मान्यता में बदलो कि यह सब कुछ व्यवहार से मेरा है, निश्चय से तो मेरा कुछ भी नहीं है।

निश्चय से तो मेरी आत्मा ही मेरी है। केवल इतना बोलो कि यह शरीर व्यवहार से मेरा और निश्चय से तो आत्मा ही मेरी है। इतना अपने मन के अन्दर विचार लाओ और उसी विचार के अनुसार अपनी श्रद्धा बना लो, अपनी आस्था बना लो जैसे ही आपके अन्दर इस विचार के अनुरूप आस्था ढलेगी, आपके अन्दर का दुख अपने आप चला जायेगा। मोह अपने आप कम होगा और ज्ञान मोह के बादलों को छोड़कर ऊपर उभरकर अपने स्वभाव में आ जायेगा। इसे कहते हैं 'सम्यग्ज्ञान का प्रभाव'।

इसमें कोई मेहनत नहीं लग रही है। केवल मन के अन्दर एक श्रद्धा की परिणति बनाना है। जो कुछ मेरी आत्मा से भिन्न है वह पर है और वह व्यवहार नय से मेरा है।

वास्तविक रूप से तो मेरी आत्मा ही मेरी है। इतनी सी मान्यता आदमी अगर बना ले तो यहीं बैठे-बैठे उसको सम्यग्दर्शन हो जाये और यहीं बैठे-बैठे वह मूढ़ात्मा से ज्ञानी आत्मा बन जाये। केवल इतना सा परिवर्तन और उस परिवर्तन के माध्यम से विचारों में अपने आप परिवर्तन आ जाता है। हम अपने अन्दर एक अहम् को ओढ़े रहते हैं। इस अहम् के कारण से यह मेरा है, यह मेरा है उसके कारण से हम कभी भी यह नहीं सोच पाते कि यह मेरा अगर नहीं भी होगा तो भी मेरा काम चल जायेगा। उस अहम् के कारण से हम यह सोच लेते हैं कि अगर यह मेरा नहीं होगा तो न मेरा काम चलेगा और न इसका काम चलेगा।

तात्कालिक एवं त्रैकालिक :

एक आदमी इसी प्रकार के अहम् के साथ एक साधु महाराज के पास पहुँच गया, साधु महाराज उसको इसी प्रकार के प्रवचन सुना रहे थे। बेटा तेरा कुछ भी नहीं है, और तुमने जो अपनी

वास्तविक रूप से मेरी आत्मा ही मेरी है। व्यक्ति ये मान ले तो यहीं उसको सम्यग्दर्शन हो जाये।

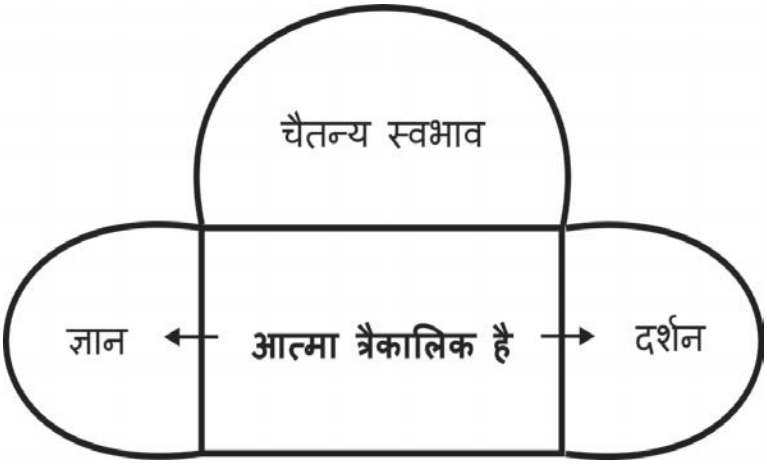

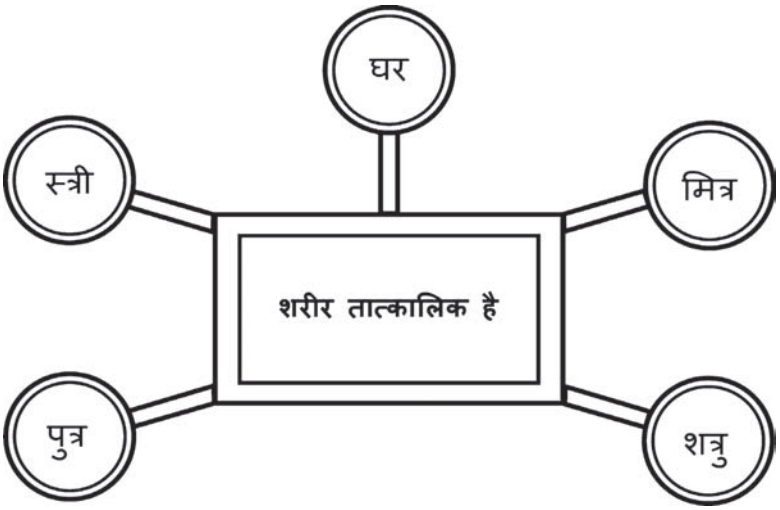

मान्यता बना रखी है कि मैं घर चला रहा हूँ, मेरे कारण से ही मेरे बेटे खुश है मेरी पुत्री खुश है, मेरी स्त्री जो है वह मेरे बिना जी नहीं सकती, मर जायेगी। यह सब तेरा मिथ्या ज्ञान है वह एक दम से सभा में खड़ा हो गया और बोला महाराज आप जो कह रहे हो वह बिल्कुल गलत कह रहे हो। मैं घर में जब दिनभर कमाकर लाता हूँ तब जाकर घर का गुजारा चलता है। तभी घर के लोग खुश रह पाते हैं। अगर मैं ना होऊँ तो घर का गुजारा ही ना चले। घर ही मिट जाये। मेरी पत्नी रो-रोकर मर जाये, मेरे बच्चे किसी काम के ना रहें। साधु ने कहा देख तेरी यह मान्यता ठीक नहीं है और तुझे भी अगर समझ में नहीं आ रहा हो तो एक काम कर तेरे से कुछ नहीं छीनूँगा। तुझे तेरी बुद्धि ठिकाने पर लाने के लिए एक राह बता रहा हूँ, एक सुझाव दे रहा हूँ, तू उसे मान ले तो कहने लगा बताओ महाराज क्या करना है?

महाराज ने उसको बुलाया और कहा कि देख अब तू एक काम कर, आज अपने घर मत जाना। केवल 15 दिन के लिए तू अपने घर का विकल्प छोड़ दे। इस बात की गारन्टी मेरी कि न तेरी पत्नी मरेगी और न तेरे बच्चे मरेंगे। लेकिन तू केवल 15 दिन के लिए मेरे पास रह जा। मैं तुझे एक जंगल में ले चलता हूँ वहाँ कोई भी तुझे देखेगा नहीं, मुझे भी नहीं देखेगा, तेरा भेष बदल देता हूँ।

आत्मा त्रैकालिक है एवं शरीर तात्कालिक है।

उसने मान लिया कोई बात नहीं, मेरा बिगड़ना क्या है? न मेरा घर कहीं जा रहा है न पुत्र, न स्त्री। और वह 15 दिन रह गया। उधर सुबह से शाम तक वह घर नहीं पहुँचा तो बाहर ढूँढ़ना शुरू हुआ। कहीं नहीं मिला। लोगों ने कह दिया वह जंगल में लकड़ी बीनने जाता था, कहीं शेर ने खा लिया होगा। वो तो गया काम से, मर गया। अब जब गाँव के लोगो को पता चला कि इसको किसी पशु ने खा लिया। होता यह है कि अगर एक आदमी कुछ बोल दे और दूसरा भी उसी प्रकार से बोल दे तो समझ लो वो चीज सही हो गयी। एक ने कह दिया कि शेर खा गया। अब उसको यह नहीं मालूम कि खा गया या नहीं। लेकिन उसने बोल दिया तो दूसरे ने भी बोल दिया, हाँ शेर खा गया तो सबने कह दिया शेर खा गया जैसे वास्तव में शेर खा गया हो। अब सबकी धारणा बन गयी कि उसको शेर खा गया। सब सोच रहे हैं कि अब इसके घर का गुजारा कैसे होगा?

हम जानते हैं कि जैसे ही मरण हो जाता है, शरीर छूट जाता है, आत्मा के लिए यह शरीर त्रैकालिक नहीं है। तात्कालिक है। त्रैकालिक का अर्थ है जो तीनों कालों में हमारे साथ रहे। पहले भी था, अभी भी है, आगे भी रहेगा। इसको बोलते हैं त्रैकालिक व्यवस्था, त्रैकालिक सम्बन्ध। तात्कालिक का अर्थ है इस समय जो हमारे साथ है वो तात्कालिक है और जो हमेशा हमारे साथ में रहे वो त्रैकालिक है। आचार्य कहते हैं तुम्हारे साथ में त्रैकालिक क्या और तुम्हारे साथ तात्कालिक क्या? इसका ही विचार कर लो। त्रैकालिक तो आत्मा का अपना ज्ञान दर्शन आदि जो गुण हैं वे ही उसके साथ में रहते हैं और रहेंगे। यह त्रैकालिक स्वभाव की चीज है। आत्मा का चैतन्य स्वभाव त्रैकालिक है, उससे भिन्न जो कुछ भी है वो सब तात्कालिक है। तात्कालिक का मतलब इस पर्याय में, इस समय हमें प्राप्त हो गया लेकिन यह पहले हमारे साथ नहीं था और आगे भी हमारे साथ नहीं रहेगा।

इसी को आचार्य कहते हैं कि यह अगर हमारे दिमाग में आये तो यही हमारे लिए सबसे बड़ा मोह छोड़ने का कारण बन जाये। इस मोह को समझो। इसलिए आचार्य बार-बार कहते हैं, समयसार आदि ग्रन्थों में समझाते हैं।

आचार्य अमृतचन्द जी महाराज 'समयसार' ग्रंथ में 'कलश' लिखते हुए कहते हैं–

''त्यजतु जगदिदानीं मोहमाजन्मलीढं
रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत्
इह कथमपि नात्मानात्मना साकमेकः
किल कलयति काले क्वापि तादात्म्यवृत्तिम्''।स.सा. कलश 22।।

हे जगत! हे संसार के प्राणी! इस मोह को छोड़ दो, जो रस ज्ञान का रस है और ज्ञान के रसिकों ने अपने आनन्द में पिया है, उस ज्ञान रस को पियो। अब मोह रस को पीते-पीते तो बहुत समय हो गया। अनादिकाल से पीते आ रहे हो। यह केवल दुख का ही कारण रहा है। एक मोह रस है और एक ज्ञान रस है।

तादात्म्य अर्थात् जो हमेशा साथ में रहें, जैसे अग्नि एवं उष्णता, दर्शन एवं ज्ञान गुण।

यह आत्मा किसी भी काल में जो अपना आत्मा नहीं है उनके साथ में कभी तादात्म्यवृत्ति को प्राप्त नहीं हुआ है तादात्म्यसम्बन्ध को प्राप्त नहीं हुआ है।

तादात्म्यसम्बन्ध का मतलब होता है कि जिसका सम्बन्ध हमेशा अपने साथ में रहे।

तादात्म्य का मतलब होता है वह उसी मय है। उससे भिन्न नहीं जैसे अग्नि का ऊष्णता के साथ तादात्म्य सम्बन्ध होता है। अग्नि को उष्णता से हम कभी अलग नहीं कर सकते। ऐसे ही कुछ सम्बन्ध ऐसे होते हैं जिन्हें तादात्म्य संबंध कहते हैं। हमने उन तादात्म्य सम्बन्धों को जाना ही नहीं कि किन-किन पदार्थों का, किन-किन पदार्थों के साथ में तादात्म्य सम्बन्ध है।

आत्मा का अपने ज्ञान के साथ तादात्म्य सम्बन्ध है। आत्मा का अपने चैतन्य स्वभाव के साथ तादात्म्य सम्बन्ध है। आत्मा का अपने दर्शन गुण के साथ तादात्म्य सम्बन्ध है। आत्मा का अपने सुख आदि अनन्त गुणों के साथ तादात्म्य सम्बन्ध है। शरीर का जिन गुणों के साथ तादात्म्य सम्बन्ध है वो पत्नी है, बच्चे हैं, घर है।

सबने सोचा चलो इसकी कुछ सहायता करते हैं। जो भी पड़ौसी थे, जिनके घर में जो कुछ भी ज्यादा-ज्यादा रहता था किसी ने उसके लिए आटा लाकर दे दिया, किसी ने दाल, किसी ने तेल, किसी ने लकडियाँ दे दी। किसी ने कपड़े किसी ने आभूषण दे दिए। इस प्रकार घर में पहले जितना था, उससे चार गुना हो गया।

अब वो इतना हो गया कि घर के सब बच्चे, पत्नी आराम से, अच्छे ढंग से रहने लगे। रोजाना तो रोटी खाते थे अब पूरी खाने लगे। पहले फटे पुराने कपड़े पहनते थे। अब तो नये-नये कपड़े पहनने लगे। सब आभूषण हो गये। सब घर में मस्त रहने लगे।

इधर वह 15 दिन के बाद में महाराज से कहता है, महाराज अब घर जाना चाहता हूँ। अब सोचता हूँ घर तो जा रहा हूँ लेकिन घर जाकर के अब कहूँगा क्या? महाराज उससे कहते हैं देख तू घर तो जा रहा है लेकिन एक बात याद रखना एकदम से घर में मत घुस जाना।

यदि एकदम से तू घर में घुस जायेगा तो तेरे लिए आफत हो जायेगी। तुम पहले एक काम करना दूर से पहले घर के रीति-रिवाजों को देखना और घर के लोगों को देखना कि उनका रहन-सहन कैसा हो गया है। खिड़की से झाँकना किसी और का भेष बनाकर के जाना। direct घर में जैसे पहले मालिक था, मत घुस जाना। थोड़ा धीरे से जाना।

वह चला गया महाराज की बात सुनकर के। घर पहुँचा और दूर से देखने लगा। सोच रहा था मेरे बेटे रो रहे होंगे, बेटे तो सब खुश हैं। यह तो सब अच्छे खासे पहने-ओढ़े बैठे हैं और सब पहले से अच्छे मजे में है। घर में अच्छे-अच्छे मिष्ठान बनने की खुशबू आ रही है। अब उसकी घर में घुसने की हिम्मत नहीं पड़ी। जैसे-तैसे वह अपना मन बनाकर के हिम्मत करके घर में घुसा तो जैसे ही घर में घुसा, घर के लोगो ने देखा अरे! यह क्या हो गया अब तो वह भूत हो गया। उसी

की पत्नी ने, उसी के बेटों ने उसे डंडा मारकर भगा दिया और वह भूत की तरह भाग गया। लौटकर के फिर महाराज के पास आया, महाराज कहते हैं तू सोच ले तेरे पास अभी भी दोनों विकल्प है। तू जो यह मान रहा था कि मेरे बिना घर नहीं चलने वाला, मेरे बिना मेरी पत्नी मर जायेगी, मेरे बिना बेटों का लालन पालन नहीं होगा, यह अपनी मान्यता छोड़ दे। इस मान्यता को छोड़कर अगर तू घर में जाना चाहता है तो चला जा मैं तेरे लिए सहयोग कर दूँगा। अगर तुझे संसार का वास्तविक स्वरूप समझ में आ गया तो तू मेरे पास ही रह जा मैं तेरी सब व्यवस्था कर दूँगा।

अब उसका क्या हुआ यह तो वो जाने लेकिन अगर उसकी जगह तुम होते तो क्या करते यह सोचो? महाराज के पास रह जाते कि वापस घर जाते? आपका मन कहता कि महाराज वापिस घर में ही हमें पहुँचा दो और घर में ही हमें पुत्रों और स्त्री को विश्वास दिला दो कि मैं मरा नहीं हूँ, जिन्दा हूँ। मैं कुछ कारणवश आपकी बात मानकर के रुक गया था। लेकिन वास्तव में मेरी हार तो यही है। अगर यह फिर हो गया तो इसका मतलब है कि हमने निश्चय से कुछ भी जाना नहीं।

व्यवहार को अगर हम व्यवहार के रूप से जानने लग जायें तो भी हमारे लिए अनेक प्रकार के दुख छूट जाते हैं और जब हम व्यवहार को निश्चय से मान लेते हैं तो हमें दुख मिलने लग जाते हैं। इसलिए आचार्य कहते हैं कि कम से कम जो अपने से भिन्न है उसको अपने से भिन्न तो मानो। भिन्न को भी हम अभिन्न मान दुखी होने लगते हैं। लेकिन अगर आप अज्ञान को अपने ही ज्ञान में सम्भालोगे तो आप उस दुख से अपने ऊपर काबू पा सकोगे।

यह ज्ञान की महिमा है जो हमें हर दुख से बचा सकती है और ये सब दुख हमारे सामने आ जाते हैं। देखो व्यवहार में अगर किसी का वियोग हो गया, तब जिसका वियोग हुआ उसको रोना भी जरूरी होता है। यह व्यवहार है। व्यवहार में अगर आप नहीं रोओगे और अगर यह सोच कर बैठ गये कि निश्चय से तो मेरा कुछ था ही नहीं जो चला गया, कुछ नहीं गया, जो मेरा था वह मेरे पास है। अगर वास्तव में आपको निश्चय से श्रद्धान हो गया और आपकी वास्तव में निश्चय से परिणति ढल गयी तब तो कोई बात नहीं लेकिन अगर आपने निश्चय का बहाना किया और आपको दुख भी हो रहा हो और लोग यह सोचकर कि यह देखो दुखी हो रहे हैं, इनके आँसू आ रहे हैं और यह आँसू आपको नहीं आना चाहिए क्योंकि लोगों ने तो यह समझा कि यह बहुत ज्ञानी थे, इन्हें सब ज्ञान था, ऐसा सोचकर के मानों आपने अपने आपको रोक लिया तो वह भी आपके लिए दुख का कारण बन जायेगा।

अगर आपको सहज में रोना आ रहा है तो रो लो। अगर कोई आपके लिए दुख का कारण बना है और आपको उसके वियोग का दुख हो रहा है तब वह भी कर लो। अगर आपने उस समय वह वियोग का दुख किसी और के कहने के कारण से नहीं किया तो भी वह आपके लिए परेशानी का कारण बन सकता है। ऐसा भी होता है जो लोग कभी-कभी रो नहीं पाते, उस समय पर रो

नहीं पाते और अपने रोने को दबा लेते हैं, वो बाद में धीरे-धीरे कई रोगों से पीड़ित हो जाते हैं। एक hysteria (हिस्टीरिया) रोग होता है उसमें आदमी धीरे-धीरे छटपटाने लग जाता है, पागलों जैसे अपने हाथ-पाँव अपनी छाती पर मारने लग जाता है। उसके पीछे देखा जाये तो यही कारण होता है कि कोई सगा सम्बन्धी था, उसके वियोग से बहुत दुख हुआ लेकिन वह दुख आप किसी के सामने व्यक्त नहीं कर पाये। लोग आपको यह समझते रहे कि आप बड़े bold हैं और आपने उस दुख को होते हुए भी व्यक्त नहीं किया। यह भी एक रोग का कारण बन जाता है। मनोवैज्ञानिक इस चीज को समझते हैं। जब फिजिशियन सर्जन से यह चीजें ठीक नहीं होती है तब उसको मनोवैज्ञानिक के पास ले जाया जाता है। उन्हें psychologist कहते हैं। और आज ऐसी बीमारियाँ बहुत होती है। हिस्टीरिया की बीमारी pschological होती है। इसमें जिसने पहले अपने दुख को दबा लिया तो उसके लिए वह दुख बाद में फूट-फूटकर के निकलता है। जब मनोवैज्ञानिक यह जान लेते हैं कि इसको इस कारण से दुख हुआ है तो वह पूछता है तुझे कब से यह बीमारी हो गयी। वह कहता है कि मेरे पुत्र/पिता के चले जाने के बाद हो गयी। मनोवैज्ञानिक कहता है कि पहले तू अच्छे ढंग से रो ले, खूब चिल्ला ले, हाथ पटक-पटक कर के अपनी छाती पर मार-मार के रो ले। अच्छे ढंग से विलाप कर ले और जब तेरे आँसू निकल जायेंगे, तेरा दुख अपने आप हल्का हो जायेगा। तू अपनी स्थिति में आ जायेगा।

इसलिए जो व्यवहार में करने योग्य है उसको तो करना ही, निश्चय के कारण से अगर वास्तविकता में आपको कोई दुख न हो तब तो ठीक है लेकिन कभी-कभी शोक भाव निश्चय से आत्मा के साथ ही रहेंगे कहीं नहीं जायेंगे। लेकिन जो आत्मा के साथ में तादात्म्य सम्बन्ध नहीं रखते उसे कहते हैं 'संयोग सम्बन्ध'।

सम्बन्ध दो प्रकार के होते हैं-तादात्म्य सम्बन्ध व संयोग सम्बन्ध। तादात्म्य सम्बन्ध का मतलब उस रूप ही वह पदार्थ है। आत्मा का ज्ञान के साथ, सुख के साथ, चेतना के साथ, तादात्म्य सम्बन्ध है। और आत्मा का शरीर के साथ संयोग सम्बन्ध है जो संयोग सम्बन्ध होगा वो तात्कालिक होगा। कुछ समय के लिए होगा। जो तादात्म्य सम्बन्ध होगा वह त्रैकालिक होगा वो हमेशा के लिए होगा। अग्नि का ऊष्णता के साथ में तात्कालिक सम्बन्ध नहीं है त्रैकालिक सम्बन्ध है, किसी भी काल में हो अग्नि जब भी होगी तो ऊष्णता के साथ ही होगी।

इसी तरह से आत्मा के अन्दर ज्ञान है, सुख है तो इन सब गुणों के साथ उसका त्रैकालिक सम्बन्ध है। इसलिए वह सम्बन्ध कहलाता है तादात्म्य सम्बन्ध और बाकी के सब सम्बन्ध संयोग सम्बन्ध है। शरीर मिला यह संयोग है। इस गाँव में जन्म हुआ यह भी संयोग है। हमें अपने परिवार का संयोग मिला यह भी संयोग है। फिर हमने जिससे विवाह किया वो भी संयोग है। उस संयोग से जो पुत्र आदि उत्पन्न हुए वह भी संयोग है। सब संयोग से सम्बन्ध उत्पन्न हुए हैं।

तात्कालिक संबंधों की चिंता में त्रैकालिक संबंधों को सबने भुला दिया।

जिससे हमारा त्रैकालिक सम्बन्ध रहा है, उसका तो हमें ध्यान ही नहीं है। जिससे तात्कालिक सम्बन्ध बन जाते हैं उसका हमें ध्यान रहता है। उसी की चिन्ता में हम पड़े रहते हैं। उसी के कारण हमारे अन्दर यह परिणति उत्पन्न होती है कि यह छूट ना जाये, मिट ना जाये जबकि वह है तात्कालिक, उसका स्वभाव है। जो तत्काल में उत्पन्न हुआ है वह किसी भी काल में छूट सकता है। तुमसे भी छूट सकता है और तुम्हारे द्वारा भी छूट सकता है। उस सम्बन्ध को जब हम त्रैकालिक मान लेते हैं तो आचार्य कहते हैं कि यह आपने व्यवहार को निश्चय के रूप में मान लिया। यह आपकी मिथ्या मान्यता हो गयी। आपने अपने विश्वास को स्वभाव मान लिया जो अपना स्वभाव नहीं था। आपने उसको अपना स्वभाव कैसे मान लिया? बस इतना सा आपको ज्ञान पैदा करना है कि जो तादात्म्य सम्बन्ध को रखे हुए हैं बस वह मेरा है, वह निश्चय से मेरा है। जो तात्कालिक सम्बन्ध वाला है वह व्यवहार से मेरा है।

यह शरीर व्यवहार से मेरा है, निश्चय से मेरा नहीं है। यह पुत्र व्यवहार से मेरा, निश्चय से मेरा नहीं है। यह घर, मित्र, शत्रु सब व्यवहार से मेरे है, निश्चय से मेरे नहीं है। छोड़ना कुछ नहीं है सोचना है बस। जब हम उन सम्बन्धों में उलझ जायेंगे तो फिर कुछ नहीं सोचेंगे और इसी के कारण हमें दुख मिलने लग जाता है। जब किसी का वियोग होता है और उस वियोग से हमें दुख मिलता है। जिसका, जिससे, जितना ज्यादा मोह होगा उतना ही उसको गहरा शॉक लगेगा धक्का लगेगा। अगर ज्ञान होगा तो इतना धक्का नहीं लगेगा। किसी का भी वियोग हो गया तात्कालिक रोना सबको आ जाता है, उसमें कोई अज्ञान मत समझना कि महाराज ने समझाया था कि वह व्यवहार से मेरा था अब चला गया। फिर भी आपको कोई समझाने आ जाये तो कोई बात नहीं। लेकिन आपके दिमाग में अगर पहले से बैठा है कि हाँ यह वास्तव में व्यवहार से मेरा था, संयोग सम्बन्ध के कारण से मेरा था तो आपको दुख इतना नहीं होगा कि आप उस दुख के कारण से मूर्छा में चले जाओ। दुख तो होगा पर कुछ दिन बाद सब बराबर होने लगेगा। फिर जब कभी याद आयेगी तब आप निश्चय का भूत ओढ़ लेते हैं। निश्चय का भी एक ऐसा भूत आ जाता है कि लोग क्या कहेंगे अगर हम रोएंगे तो। इस डर से नहीं रो पाये तो वह नहीं रोना भी आपके लिए बहुत बड़ी बीमारी का एक कारण बन सकता है। इसलिए अपने ऊपर किसी भी भूत को हावी मत होने दो। यह भी बड़े-बड़े भूत हैं, लोग क्या कहेंगे। इतना ज्ञान होकर के ऐसे रो रहे हो। आचार्य कहते हैं कि आपके लिए सहजता होनी चाहिए। अगर आपको दुख हुआ है तो दुख में रो लेना। दो दिन तक दुख रहे तो दो दिन तक रो लेना लेकिन अगर आपको दिखने लग जाये कि हमें रोना नहीं आ रहा है और यह लोग जबरदस्ती हमें रुला रहे हैं तो नहीं रोना। कभी-कभी जबरदस्ती भी रोना पड़ता है। किसी के घर में कोई कुछ हो जाता है तो दो-चार दिन तो घर में माहौल रहता है रोने धोने का।

दुख पाप के बंध का कारण है और पाप से मुक्ति का भी, सहजता से उसे अपनाना चाहिये।

अब कोई रिश्तेदार है 10 दिन बाद आ रहा है, 15 दिन बाद आ रहा है। अब गाँवों में क्या चलता है कि जब-जब कोई बैठने आये तो उसके सामने रोना पड़ता है अब हो सकता है इस चीज में कमी आ गयी हो। गाँव में तो अभी भी पहले जैसी प्रथाएँ चलती हैं और कोई रिश्तेदार कितने दिन बाद भी आ रहा हो तो भी उसके सामने बनावटी रोना पड़ता है। बस यह गलत हो गया। अब जबरदस्ती क्यों रोना। जब रोना आ रहा था रो लिया ठीक है अब अगर बनावटी रोना आये तो आचार्य उमास्वामी कहते हैं– ''**दुःखशोक तापाक्रन्दन वध परिदेवनान्यात्मपरोभयस्थानान्यसद्वेद्यस्य**'' कि अगर आपके कारण से कोई जबरदस्ती दुखी हो रहा है और उसको दुख उत्पन्न हो रहा है, उसको शोक उत्पन्न हो रहा है तो आपके लिए भी असाता वेदनीय कर्म का बंध होगा और उसके लिए भी असातावेदनीय का बंध होगा। हमें भी और पर को भी। दोनों को असाता वेदनीय का बंध तब होता है जब हमारी वजह से कोई दुखी हो रहा हो।

अब आपको इतना ज्ञान होना चाहिए कि हम अगर 15 दिन बाद किसी के यहाँ जा रहे हैं तो अपनी रस्म निभाने के लिए तो जायें पर उसको सताने के लिए नहीं जायें। उससे कह दे कि भैया अब यह बातें छोड़ो, हम समय पर आ नहीं पाये इसलिए आना पड़ा लेकिन आप अब ऐसा रोना धोना मत करो। इसलिए आप अपने मन में यह जान लें कि किससे हमारे पाप का बंध कम होता है। दुख पाप के बंध का भी कारण है और दुख पाप से मुक्ति का भी कारण है। उस समय आपने रो लिया तो आप पाप से मुक्त हो गये, उस दुख से मुक्त हो गये जो आगे आने वाला है और अगर बाद में आप रो रहे हो तो आप पुनः असाता वेदनीय कर्म का बंध करोगे। इसलिए जब जैसा घटित हो उसको उस समय पर सहज भाव से कर लेना, यह तो अपना सहज ज्ञान होता है और उस ज्ञान में व्यवहार और निश्चय का ज्ञान भी रखना। यह व्यवहार से मेरा था चला गया लेकिन यह निश्चय से जो मेरा है वह कहीं भी नहीं जा सकता है।

''**इह कथमपि आत्मा, अनात्मना साकमेकम्**''

यह आत्मा, जो अनात्मा है, जो अपनी आत्मा नहीं है, जो अपना स्वरूप नहीं है उसके साथ तो कभी भी एकमेकपने को प्राप्त हो ही नहीं सकता। आपको लगेगा जरूर कि हम पर के साथ में एकमेक हो रहे हैं लेकिन पर के साथ में स्व कभी भी एकमेक होता ही नहीं है। इस स्वरूप को समझने के बाद ही हमारे अन्दर सम्यक् ज्ञान परिणति उत्पन्न होती है। इसलिए यह जो नीचे वाली लाइन है इसको ध्यान रखना। 'सर्वथान्यस्वभावानि' पूरी लाइन याद भी ना रहे तो केवल एक पद याद रखना। आठ समूह का ही पद है ये। '**सर्वथान्यस्वभावानि**' यह सर्वथा अन्य स्वभाव वाले हैं यह कभी भी हमारे स्वभाव रूप में नहीं हो सकते, इनका स्वभाव तो अपने से भिन्न ही रहा है और भिन्न ही रहेगा। भिन्न स्वभाव वालों से अपना ज्यादा लेन-देन वैसे भी नहीं रहता। किसी का

nature आपसे थोड़ा अलग होता है तो आप कहते हैं? अरे भाई अपने से इसकी बनती नहीं है, पटती नहीं है। सबके साथ match खाता है तुम्हारे साथ ही नहीं खाता क्योंकि तुम्हारा nature और उसका nature मिल नहीं रहा है और जब nature नहीं मिलता है तो साथ में भी रह जाते हैं तो nature मिल नहीं पाते हैं। ऐसे ही जब अपना nature अपने ही शरीर, स्त्री आदि से ना मिले तो कोई बात नहीं, साथ में भी रह जाये लेकिन मिलेंगे नहीं और यह जो श्रद्धान आपका बन जायेगा तो इसी श्रद्धान से आपको पता पड़ेगा कि स्व और पर का भेद विज्ञान इसी को कहते हैं। जो अन्य स्वभाव वाला है वह आपके लिए अन्य स्वभाव वाला ही प्रतिभाषित हो, उसे अपने आत्मस्वभाव वाला प्रतिभाषित मत करो। जिससे हमारी matching मिल जाती है हम उसी को अपना मित्र मान लेते हैं और जिससे हमारी matching नहीं मिली उसको हमने शत्रु मान लिया यह भी एक मान्यता है। जैसे कल बताया था कि सुख दुख केवल एक मानसिक परिणति है और इसके अलावा कुछ नहीं है। इसी तरह से किसी को शत्रु, किसी को मित्र मानना यह भी केवल हमारी मानसिकता है। न तो वास्तव में वह हमारा शत्रु बन सकता है और यदि बना भी तो वह शत्रु आपके लिए फिर कभी भी मित्र बन सकता है। अगर वह सर्वथा शत्रु है तो यह आपकी मान्यता गलत है सर्वथा वह हमारा मित्र है मान्यता यह भी गलत है क्योंकि मित्र का स्वभाव भी परिवर्तित हो सकता है और शत्रु का भी। इसलिए जो अपने से भिन्न है वह अपने साथ में कभी भी त्रैकालिक रूप में नहीं रह सकता है वो तात्कालिक है।

जब तक अपने विचार उससे मिल रहे हैं तब तक मित्र है और जिस दिन अपने विचार नहीं मिलेंगे तो वो शत्रु हो जायेगा। देखा जाये तो शत्रु कभी अलग से बनते नहीं हैं, मित्र ही शत्रु के रूप में convert होते हैं। कभी भी शत्रु अलग से नहीं आकर कहेगा मैं तुम्हारा शत्रु हूँ और तुम हमारे शत्रु। जैसे–जन्मजात यह मेरा भाई है, यह मेरी बहिन है। जन्मजात शत्रु तो हमारे बहुत पापकर्म के उदय से मिलते हैं लेकिन ज्यादातर जितने भी शत्रु होते हैं सब converted होते हैं। जिन्हें हमने पहले कभी अपने मित्र के रूप में देखा वो ही फिर बाद में शत्रु बन जाते हैं। कुछ समय तक तो हमारी matching मिली जैसा हम सोच रहे हैं वैसा वह सोच रहे हैं जैसा हमने किया वैसा उसने किया और जिस दिन दोनों में से किसी एक ने कहा कि नहीं ऐसा मैं नहीं कर सकता उसी दिन वह मित्र शत्रु के रूप में बदल जाता है। बस यह कल्पनाएँ कि यह मेरा शत्रु हैं या यह मेरा मित्र है। यह भी मत मानो क्योंकि यह भी आपकी मूर्खता होगी।

'मूढः स्वानि प्रपद्यते'

मूढ़ व्यक्ति ही इन्हें अपना मानता है। अपना मानने का मतलब अपना शत्रु, अपना मित्र और मूढ़ व्यक्ति ही इनको अपना मानकर के इसमें सुखी दुखी होता है। इसलिए आचार्य कहते हैं जैसे

ही तुम्हारी यह मान्यता आ जायेगी कि यह सब व्यवहार से शत्रु, मित्र हैं निश्चय से तो अपनी आत्मा अपनी मित्र है और जब तक हम अपनी आत्मा के हित के बारे में नहीं सोच रहे हैं तो अपना आत्मा ही अपने लिए शत्रु है। यह निश्चय से और व्यवहार से जो कुछ भी हमने मान्यताएँ की हैं यह सब व्यवहार से हैं। इसलिए दोनों नयों के इस अभिप्राय के माध्यम से जब से अपने ज्ञान में भेद डालो, छेनी डालो उस छेनी से इन दोनों चीजों को अलग-2 विभाजित करके रखो और उसी के अनुसार अपनी श्रद्धा की परिणति बनाओ तो आपको कभी भी कोई दुख नहीं होगा। व्यवहार के संबंध छूटेंगे तो भी कोई फर्क नहीं पड़ेगा, आ जायेंगे तो भी कोई फर्क नहीं और तात्कालिक सुख दुख हो जाये तो उससे कोई ज्यादा फर्क पड़ने वाला नही है लेकिन त्रैकालिक जो मान्यता है वो तो अपने अन्दर बिलकुल चुस्त-दुरुस्त होनी चाहिए।

'सर्वथान्यस्वभावानि' यह ध्यान में रखना। जितनी भी चीजें अपने से भिन्न स्वभाव वाली हैं और अगर हमने इनको अपना ही मान लिया, सर्वथा अपना मान लिया तो यह हमारी मूर्खता हो गई। व्यवहार नय से हमने अगर अपना माना तो हम सम्यग्ज्ञानी हो गये। यह सर्वथा शब्द इसी के साथ लगाना कि–

'मूढः सर्वथास्वानि प्रपद्यते'

मूढ़ जो होगा उनको सर्वथा (हमेशा) त्रैकालिक रूप से निश्चय से अपना मानता है लेकिन जो ज्ञानी होगा वो तात्कालिक मान लेगा। हाँ यह तो कामचलाऊ लोग हैं। व्यवहार जब तक अपना चल रहा है तब तक यह अपने सगे संबंधी हैं और जब यह व्यवहार छूट जायेगा तो कोई अपना सगा संबंधी नहीं, अपना तो आत्मा ही अकेला ही यहाँ से जायेगा।

बस इतना सा आपके अन्दर ज्ञान की परिणति आये तो यह इष्टोपदेश आगे और-2 इष्ट लगेगा, मिष्ट लगेगा।

इष्टोपदेश मिष्ट उपदेश है बड़ा मीठा लगता है उनके लिए जिन्हें अपनी आत्मा का हित चाहिए। अगर आपको यह मिष्ट लग रहा है तो इसका मतलब है कि आप सब अपनी आत्मा के हित के अभिलाषी हैं, हित की सेवा करने वाले हैं।

आत्मा का हित चाहने वालों के लिये इष्टोपदेश इष्ट व मिष्ट है।

कुटुम्ब रैन बसेरा है

9

दिग्देशेभ्यः खगा एत्य, संवसन्ति नगे नगे।
स्वस्वकार्यवशाद्यान्ति, देशे दिक्षु प्रगे प्रगे॥

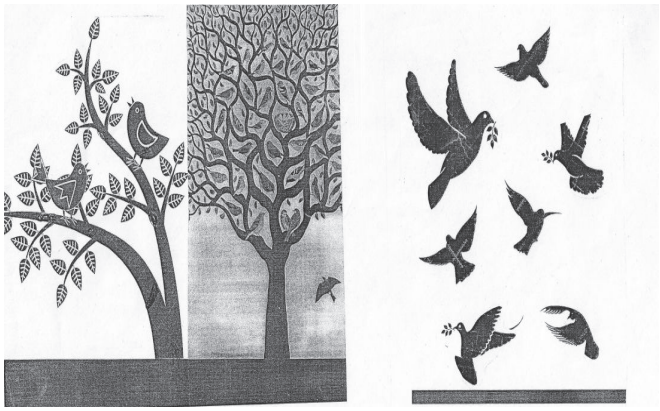

अन्वयार्थ—(नगे नगे) वृक्ष-वृक्ष पर **(दिग्देशेभ्यः)** दिशाओं और देशों से **(एत्य)** आकर **(खगाः)** पक्षी [संध्या के समय] **(संवसन्ति)** ठहर जाते हैं तथा **(प्रगे प्रगे)** प्रातः **(स्वस्वकार्यवशात्)** अपने-अपने कार्य के वश से **(देशे दिक्षु)** भिन्न-भिन्न देश, दिशाओं में **(यान्ति)** चले जाते हैं।

- ☞ **जीवों की गति**
- ☞ **संसारी चक्र**
- ☞ **बचपन एवं सहजता**

शरीर आदि को लेकर अन्य जितने भी संबंध वाले पदार्थ होते हैं वे सभी अपने से भिन्न स्वभाव वाले होते हैं। फिर मन से यह प्रश्न आया कि जब उनका स्वभाव अपने से भिन्न है तो यह अपने से मिल क्यों जाते हैं। यह अपने पास बार-बार आ क्यों जाते हैं और इनका अपने से जुड़ाव क्यों हो जाता है? इसके लिए आचार्य यहाँ एक उदाहरण के माध्यम से आपके मन में वह बात पहुँचाना चाहते हैं कि यह जो हमारे संयोग हैं, संबंध हैं, यह कैसे हैं? इन संबंधों को हमने कहाँ-कहाँ से और कैसे-कैसे प्राप्त किया।

'दिग्देशेभ्यः खगा एत्य' खग माने पक्षी होते हैं चिड़िया, कबूतर आदि ये अलग-अलग दिशाओं से उड़-उड़कर आते हैं, अनेक-अनेक स्थानों से उड़-उड़कर आते हैं और किसी एक स्थान पर आकर कुछ समय के लिये ठहर जाते हैं, रुक जाते हैं, खासतौर से जब शाम होने लगती है तो बहुत से पक्षी आकर एक स्थान पर अपना डेरा डाल लेते हैं और एक स्थान पर बैठ कर वह कुछ समय के लिए मिल जाते हैं। उसी तरह से आचार्य कह रहे हैं कि हमारे जितने भी संयोग होते हैं यह सब भी अलग-अलग देशों से, अलग-अलग दिशाओं से आये हुए लोग हैं यह कोई एक दिशा या एक स्थान से आये हुए लोग नहीं हैं उनके दिशा का और उनके देश का आपको ज्ञान नहीं है। बस इतना ही कहा जा सकता है कि दस दिशाएँ होती हैं उन दसों दिशाओं में से कोई भी जीव किसी भी दिशा से आ सकता है।

आप सोचोगे कि हमने चार दिशा ही सुनी है जिसे आप पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण कहते हैं उन चार दिशाओं के बीच में यह विदिशाएँ भी होती हैं आग्नेय, ईशान, नैऋत्य, वायव्य। चार दिशाएँ और चार विदिशाएँ मिलकर आठ हो जाती हैं। एक दिशा नीचे की होती है और एक दिशा ऊपर की होती है यह सब मिलकर दस हो जाती है। इन दस दिशाओं में से कोई भी जीव कहीं से भी आ सकता है, जीव के आने का कोई भी कारण नहीं है और वह जीव किसी भी कारण से अपने उस गन्तव्य तक पहुँच जाता है जहाँ उसको पहुँचना है। जिस तरह आने की दिशाएँ दस हैं उसी प्रकार जाने की भी दिशाएँ दस हैं लेकिन आचार्य कहते हैं जब भी कोई जीव गमन करता है, एक पर्याय को छोड़कर दूसरी पर्याय में जाता है तो उसका कभी भी विदिशा से गमन नहीं होता उसका दिशा से ही गमन होता है। जैसे आपने कभी कोई कपड़ा देखा हो उसमें ताने बाने होते हैं उसमें एक आड़ी लाइन होती है और एक खड़ी लाइन होती है इसी तरह से भगवान के, सर्वज्ञ देव के ज्ञान में से जो 343 राजू प्रमाण यह पूरा का पूरा लोक है, उस लोक को उन्होंने लोक देखा तो उन्हें उसकी सूक्ष्मता का भी ज्ञान हुआ और इस सूक्ष्मता को ज्ञान से तो यहाँ पर भी ऐसी सूक्ष्म लाइनें बनी हुई हैं पूरे लोक के अन्दर इन लाइनों को श्रेणी कहा जाता है और वो सारी की सारी लाइनें कोई आड़ी तिरछी नहीं है वो या तो सीधी हैं या वो लम्बी हैं। इस तरह से पूरी श्रेणी के रूप में पूरे लोक में रास्ते बने हुए हैं जीवों के आवागमन करने के।

दस दिशाओं से आये जीवों के साथ व्यक्ति के संयोग बन सकते हैं।

जब कोई जीव एक पर्याय को छोड़कर दूसरी पर्याय को ग्रहण करने के लिये जाता है तो इस बीच में उसे इन्हीं लाइनों से होकर चलना पड़ता है यद्वा-तद्वा नहीं जा सकता। यदि जीव को इस कॉर्नर से उस कॉर्नर में उत्पन्न होना है तो वह जीव विदिशा में नहीं जायेगा। नैऋत्य से वायव्य में नहीं जायेगा उसको पहले इसी दिशा में आना पड़ेगा पूर्व में आयेगा उत्तर में जायेगा इस तरह से उसे हमेशा इन लाइनों में चलना पड़ेगा इसे कहते हैं '**अनुश्रेणिगतिः**'।

जीवों की गति :

यह सूत्र आपने तत्त्वार्थ सूत्र में सुना होगा, दूसरे अध्याय में मिलेगा। जीवों की गति श्रेणी के अनुसार होती है, जो मार्ग बने हुए हैं उसी के अनुसार होती है। वहीं जीव जायेगा अन्य किसी मार्ग से उसका गुजरना नहीं होगा। जैसे कि आप लोग ट्रेफिक रोड़ पर चलते हैं तो जो रोड़ बनी होती है उसी पर चलते हैं। आप लोग उसका उल्लंघन कर सकते हैं। पगडण्डियाँ कहीं और बनी हो सकती है लेकिन इस लोक में स्वभाव से इस प्रकार की आड़ी व तिरछी श्रेणियाँ बनी हुई हैं और सभी जीव इसी श्रेणी के अनुसार गमन करते हैं। उनका जो गमन होता है वह जिस तरह से पूर्व में आयु का बन्ध हो गया हो, गति का बन्ध हो गया हो, जाति का बन्ध हो गया हो, गौत्र का बन्ध हो गया हो उसी के अनुसार वह कर्म उन्हें उस स्थान पर पहुँचा देता है, वह जीव अपने आप उस स्थान पर कर्मों के माध्यम से पहुँच जायेगा। उसके लिये किसी वाहन की जरूरत नहीं है। किसी बाहरी ईश्वर की भी जरूरत नहीं है कि ईश्वर किसी जीव को यहाँ से उठाकर वहाँ रख देता है। जीव अपने ही कर्मों के उदय से अपनी ही गति बनाता है और वह जीवात्मा अपने परिणामों के अनुसार, अपने ही कर्मों को बाँधकर उनके ही फल को प्राप्त करने के लिये एक दिशा से दूसरी दिशा में चला जाता है, एक देश से दूसरे देश की और चला जाता है। उसकी प्रवृत्ति जब इस तरह से जन्म के रूप में होती है तो उसको बहुत सारे संयोग मिल जाते हैं और उन संयोगों के बीच में रहकर उस जीवात्मा को उन लोगों से राग और द्वेष भी उत्पन्न हो जाते हैं। जब इस तरह से राग और द्वेष की प्रवृत्ति चलती रहती है तो अपने आप उसका वह संसार बढ़ता रहता है। उसका एक गति को छोड़ करके अन्य गति में जन्म स्वतः होता रहता है एक ऐसी प्रक्रिया है। अगर हम देखें तो ऐसा लगे कि संसार का हर एक जीव अपने आप में पूर्ण स्वतंत्र है। कोई भी जीव जो यहाँ उत्पन्न हुआ है या यहाँ पर उसका जन्म हुआ है उसकी अपनी स्वतंत्रता से ही हुआ है। जन्म होने के बाद हम उसे भले ही परतंत्र बना ले, तू मेरा बेटा है मेरा ही रहेगा, वह किसी ओर का बेटा नहीं हो सकता। वह बेटा भी यह जान लेगा कि मेरी माँ कौन है, मेरा पिता कौन है, वह किसी और को अपनी माँ नहीं कहेगा। वह पिता भी उसी को अपना बेटा कहेगा किसी और को नहीं। जीव की प्रवृत्ति स्वत्रंत थी लेकिन जैसे ही संबंध को प्राप्त हुआ उसकी प्रवृत्ति में परतंत्रता आ गयी और वह जीव जब परतंत्र होने लग जाता है तो उसके लिए दुख भी होने लग जाता है। उस जीव का जहाँ

जीवों की गति उनके कर्म बंधन के द्वारा प्राप्त श्रेणी के अनुसार अलग-2 पर्यायों में होती है।

पर जन्म हुआ है उसको उस जन्म स्थान का भी ज्ञान नहीं है लेकिन वह वहाँ जाकर जन्म लेता है और जब वह जीव गर्भ में जन्म लेता है तो उस समय भी वह बिल्कुल निश्चिंत होता है। उसको कुछ मालूम नहीं होता है मैं कहाँ आया हूँ? यहाँ तक कि वह 9 माह तक माँ के गर्भ में रहता है तब भी वह निर्विकल्प होता है उसे कोई चिन्ता नहीं होगी। 9 माह का बालक बहुत बड़ा होता है उसे सब ज्ञान होता है लेकिन उसे मैं किस दिशा में हूँ, किस देश में हूँ, उसके अन्दर इसकी कोई परिकल्पना नहीं होती है। जब उसका जन्म होता है तो जन्म होने के बाद उसे धीरे-धीरे जैसे उसकी चेतना में और जागृति आती है, आसपास के वातावरण से वैसा ही ग्रहण कर लेता है जैसा उस वातावरण में चल रहा है। आप देखोगे एक बच्चा भारत में जन्म लेता है वो अपने आप यहाँ के लोगों के साथ रहेगा, बैठेगा, उठेगा, बोलेगा तो वह हिन्दी बोलेगा और उसकी चाल ढाल action सब कुछ यहाँ के लोगों जैसा हो जायेगा। जब कोई बेटा यहाँ का भी हो लेकिन अगर वह Newyork अमेरिका में जन्म ले तो वह अपने आप वहाँ के वातावरण के अनुसार english बोलना सीख जायेगा, वैसे ही action सीख जायेगा उसके वहीं का चलन-ढलन हो जायेगा। जब वह जन्म ले लेता है तब वह बाहर का वातावरण ग्रहण करता है। जन्म से पहले वह बहुत निर्विकल्प होता है, निश्चिंत होता है। जैसे-जैसे वह बड़ा होता है वैसे-वैसे उसको समझाया जायेगा। तू मेरा बेटा है, माँ उसे सबसे पहले समझाएगी तू मुझको मम्मी बोल, पापा उसे समझाएगा तू मुझे पापा बोल और वह धीरे-धीरे उन संबंधों को बोलता चला जायेगा, जुड़ता चला जायेगा तो वह उन संबंधों में इतना ज्यादा लिप्त हो जायेगा कि उसके बिना उसका क्या अस्तित्व है ज्ञान ही नहीं होगा। जो अस्तित्व की पहचान गर्भ में होती है वो उसको जन्म लेने के बाद नहीं आ पाती और वह धीरे-धीरे अपने स्वभाव से दूर होता चला जाता है अपने अस्तित्व से टूटता चला जाता है। उसे बाहरी दुनियाँ की हर चीज पकड़ में आने लग जाती है और वह सब कुछ बाहर का पकड़ता है लेकिन जो अपने अस्तित्व में है उसको वह भूलता चला जाता है। मैं कहाँ से आया था, मेरा जन्म कहाँ से हुआ, मेरा अस्तित्व जन्म से पहले क्या था? जन्म के समय पर मेरा अस्तित्व कहाँ था? यह सब बातें वह बिल्कुल नकार देता है, बिल्कुल Ignore कर देता है, भूल जाता है बाकी उसे कभी भी अपने अस्तित्व का कोई ख्याल आया ही नहीं और धीरे-धीरे जिन संयोगों में वह जीव उत्पन्न हुआ उन्हीं संयोगों में इतना हिल-मिल जाता है कि वह बड़ा भी हो जायेगा, बूढ़ा भी हो जायेगा तो बूढ़ा होने के बाद भी उसे यह याद नहीं आयेगा कि बस अब मेरा यह जन्म पूरा होने वाला है और इस जन्म की समाप्ति के बाद फिर मेरा एक जन्म होगा। मुझे फिर किसी के गर्भ में उत्पन्न होना पड़ेगा और यह ख्याल में भी नहीं लेगा, मरेगा, बूढ़ा होगा, उसकी पीड़ा में तो दुखी होगा लेकिन आगे क्या होने वाला है उसकी उसको जानकारी नहीं रहेगी और यह एक वर्तुल कि तरह चलता रहता है। मरण,

जीव स्वतंत्र है परंतु संबंधों के कारण उसकी प्रवृत्ति में परतंत्रता आती है।

फिर जन्म, फिर जन्म-मरण यह एक चक्र की तरह चलता रहता है। इसलिए इस जन्म और मरण की प्रक्रिया को एक चक्र के रूप में उपमा दी है, चाप की उपमा दी है। घूम-घूम करके आपको उन्हीं जगहों पर पुनः जन्म और पुनः मरण करना पड़ता है क्योंकि चाक्य परिधिः। इसी तरह इस लोक का आकार है और इस लोक में भी स्थान 343 घन राजू प्रमाण वह लोक है जो चार गतियों में विभाजित हैं और वह भी एक चक्र की तरह हमारे लिये बन जाता है। उसमें ऐसा कोई भी स्थान नहीं रहता जहाँ पर इस जीवात्मा ने जन्म ना लिया हो और मरण न किया हो। यह एक वर्तुल बन गया और जब कोई चीज वर्तुल प्रकार बन जाती है तो उस वर्तुल में हम घूमते-घूमते बड़े अभ्यस्त हो जाते हैं। अगर कोई चीज सीधी जाने वाली हो लम्बी रेखा में तो आगे गयी, पीछे की छूट गयी जैसे कभी आपने आकाश में रॉकेट की लाइन देखी हो रॉकेट चलता चला जाता है पीछे धुँआ सफेद छोड़ता चला जाता है और वह पीछे की लाइन मिटती जाती है। अगर कोई चीज सीधी जाती हो तो वह पीछे छूटती जाये हम आगे बढ़ते चले जाये। लेकिन कोई भी चीज यहाँ पर सीधी नहीं है। यहाँ हर चीज का एक चक्र चलता है। जन्म मरण का चक्र चलता है और उस जन्म मरण के चक्र को चलाने वाला जो काल है उस काल का भी एक चक्र चलता रहता है। एक अवसर्पिणी काल वर्तमान में चल रहा है और यह समाप्त होगा और फिर उत्सर्पिणी काल आयेगा वो समाप्त होगा, पुनः अवसर्पिणी काल आयेगा वो समाप्त होगा पुनः उत्सर्पिणी काल आयेगा, वो समाप्त होगा और यह चक्र यहाँ पर भी चलता रहेगा।

यह चक्र केवल भरत क्षेत्र में चलता है और ऐसा ही एक ऐरावत क्षेत्र है वहाँ चलता है। बीच के जो क्षेत्र हैं उनमें भी चक्र चलता है लेकिन वो दूसरी तरह का चलता है। वहाँ पर हमेशा एक जैसा चक्र चलता है उनमें काल का परिवर्तन नहीं होता है जैसे यहाँ पर वो चक्र छः भागों में विभाजित हो गया। पहले काल से लेकर छठवें काल तक, पहले काल के चक्र के आगे की व्यवस्था अलग है, दूसरा काल जब आयेगा उसकी व्यवस्था अलग है? तीसरे काल की व्यवस्था अलग है, चतुर्थ काल की व्यवस्था अलग है, पंचम काल की व्यवस्था अलग है और छठवें काल की अलग है। इन छः कालों की व्यवस्थाएँ हैं, उनमें तीन काल भोग भूमि के काल हैं और तीन कर्मभूमि के काल हैं चौथा, पाँचवा और छठवाँ। इन व्यवस्थाओं के अनुसार यह काल चक्र चलता है लेकिन विदेह आदि क्षेत्र हैं उनमें यह छः काल नहीं चलते उनमें केवल एक ही काल चलता है, चतुर्थ काल। विदेह क्षेत्र में चतुर्थ काल की उत्कृष्ट स्थिति सदैव रहती है। एक कोटि पूर्व वर्ष की आयु व 500 धनुष का शरीर। लेकिन मलेच्छ खण्डों में व विजयार्घ पर्वतों में चतुर्थ के आरम्भ से अन्त तक का परिवर्तन होता रहता है। चक्कर तो वहाँ पर भी हैं। चक्कर से मुक्त नहीं है वो, उसमें चतुर्थ काल के प्रारम्भ में जैसा वातावरण है वैसा अन्त तक चलेगा और अन्त से फिर शुरू हो जायेगा लेकिन चतुर्थ काल के बीच में ही घूमता रहेगा।

जन्म-मरण के चक्र के साथ काल का चक्र भी चलता है।

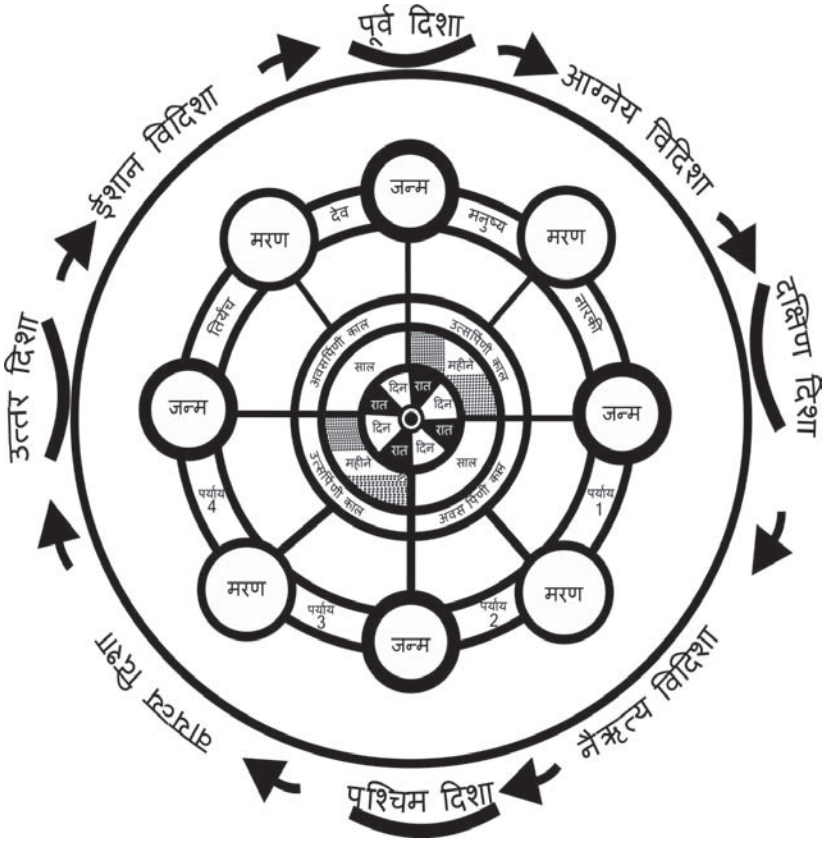

संसारी चक्र :

घूमने की स्थिति में जब हम अनादिकाल से पड़े हुए हैं तब हम उस चीज में दौड़ने के अभ्यस्त हो जाते हैं। जब आप किसी ग्राउण्ड का चक्कर लगाओगे, किसी ग्राउण्ड में बार-बार घूमोगे, बार-बार चक्कर लगाओगे तो आपके अपने आप गति बनेगी, आप अभ्यस्त होते चले जाओगे और आपका अपने आप दौड़ने का मन करेगा तो उस दौड़ में अभ्यास के कारण से कभी थकोगे भी नहीं। जिनको घूमने की आदत पड़ जाती है उनके लिए मानो एक ग्राउण्ड का चक्कर लगाने की आदत पड़ गयी तो एक ग्राउण्ड का चक्कर वो कभी भी लगा लेगा। उस घूमने की स्थिति से हटना यह बहुत बड़े खतरे का काम होता है, उस चक्र में से निकलना यह अपने आप में बहुत बड़ा साहस का काम होता है। यह साहस जो कर लेता है वस्तुतः वही आदमी धार्मिक कहलाता है। उसी को आचार्यों ने सम्यग्दृष्टि कहा है, उसी को आचार्यों ने निकट संसारी कहा है क्योंकि चक्र में हमारे आगे भी बहुत है और पीछे भी बहुत है और हम बीच में हैं। जब भी कोई आदमी होगा उस चक्र के बीच में ही मिलेगा, आप यह देखना क्योंकि उसमें न कोई शुरुआत है और न ही अन्त। चक्र में हर कोई बीच में होता है और इसलिए हम हमेशा सुरक्षा महसूस करते हैं। जब हम सबके बीच में रहते हैं तो जैसे ही हम कुछ अलग करने की सोचेंगे, चक्र से हटने की सोचेंगे तो हमें लगेगा किसके सहारे रहेंगे। कहने में तो आ जाता है ''गुरुदेव की कृपा से मेरा काम हो रहा है'' लेकिन जो काम गुरुदेव बनाना चाह रहे हैं वो बन रहा है या जो काम आप बनाना चाह रहे हो, वह बन रहा है। जो काम हम चाह रहे हैं वो बनता जाये, जैसा मैं चाह रहा हूँ वो होता जाये

संसार चक्र से हटने की सोचने वाला साहसी निकट संसारी व धार्मिक होता है।

तो गुरुदेव भी अच्छे हैं क्योंकि उनकी कृपा से वो सब काम चल रहा है। जहाँ पर यह लगे कि मेरी इच्छा से काम नहीं हो रहा है आप कहोगे या तो गुरुदेव का आशीर्वाद नहीं मिल रहा है या फिर गुरुदेव हमारे लिये सच्चे नहीं हैं, सही नहीं हैं। यह सब जो कुछ भी चल रहा है आपकी अपनी धारणाओं से चल रहा है और जब तक आप अपनी धारणाओं से चलाते रहोगे तब तक आपका यह चक्र चलेगा आप उस चक्र से मुक्त नहीं होंगे। उस चक्र से निकलने के लिए ही आपको यह ज्ञान दिया जा रहा कि आप थोड़ा सा कुछ साहस करेंगे तो इस चक्र से निकलेंगे लेकिन आप हैं कि बार-बार उन चक्र में ही पड़ने का आशीर्वाद माँगेंगे जो हमारा चक्र चल रहा है बस वो अच्छा चलता रहे। हमारी पत्नी, हमारे बच्चे, हमारा परिवार, हमारे भाई-बहन, शत्रु-मित्र यह जो हमने अपने आप में आसपास ताना बुन रखा है बस यह ढंग से चलता रहे। कोई हमारा शत्रु न हो सब हमारे मित्र हों, सब हमारे हितैषी हों, सब हमको चाहने वाले हों, हम सबको चाहने वाले हों, इसमें ही आपको बहुत अच्छा लगेगा। यह आपकी आदत में पड़ा हुआ है उस राउण्ड में, उस चक्र में घूमते-घूमते आपको लगेगा कि आप कभी अकेले हैं हीं नहीं, कोई जीव कहीं अकेला है ही नहीं, उसके आगे भी बहुत है और उसके पीछे भी बहुत है। जब तक आपने जिस स्थान में जन्म लिया है, जहाँ पर जन्म लिया है, उस स्थान से अपना संबंध, उस घर से, उस परिवार से अपना संबंध जोड़े रहेंगे तब तक आपके आगे भी बहुत सारा वंश है और आपके पीछे भी बहुत सारा वंश है, आगे पीछे बहुत सी समाज है, सब कुछ है, आपकी सुरक्षा पूर्ण रूप से है इसलिए आपको उसी परिणति में चलने में आनन्द आयेगा और कहोगे महाराज इसी परिणति में चलें ऐसा आशीर्वाद दो कि मेरा जीवन सुख पूर्वक बीते। मेरे जो काम बन रहे हैं वो बनते चले जायें, कोई भी काम कभी बिगड़े नहीं, घर में कभी कोई आपत्ति आये नहीं, कभी किसी के साथ कोई घटना-दुर्घटना घटे नहीं और सबका जीवन बड़े चैन के साथ सुकून के साथ बीतता चला जाये बस ऐसा ही आशीर्वाद दो महाराज। आप माँगोगे तो उसी चक्र में ही घूमने का आशीर्वाद माँगोगे। बस इतना ही चाहोगे कि उस चक्र में हम सुरक्षित ढंग से घूमते रहें किसी भीड़ में दब ना जाये, मर ना जाये, अकाल में कुछ हो ना जाये, बस हमारा समय से सब काम होता चला जाये और इसी मानसिकता के कारण से कोई भी आदमी उस चक्र से निकलना नहीं चाहता। चक्र का यही काम है, हर चीज यहाँ गोल-गोल है, जम्बूद्वीप भी गोल है, भरत क्षेत्र भी गोल है सब कुछ यहाँ पर चक्र के रूप में है। अगर आप उसी-उसी जगह पर बार-बार आते जायें तो चक्र अपने आप बन जायेगा। आप भले ही वहाँ तक चले जाओ लेकिन आप वहाँ से लौटकर अलग-अलग रास्तों से आओगे तो एक चक्र का रूप धारण कर लेगा।

आचार्य यही कह रहे हैं कि कोई भी जीव कहीं पर उत्पन्न होता है तो वह उसी एक ही रास्ते से नहीं आता है और हमेशा एक ही रास्ते पर नहीं चला जाता है। अलग-अलग देशों से आयेगा,

जहाँ पर कोई भी जीव रहता है जैनदर्शन में उस जगह को प्रदेश कहते हैं।

अलग-अलग दिशाओं से आयेगा और फिर अलग-अलग देशों में जायेगा, अलग-अलग दिशाओं में जायेगा। अलग-अलग दिशाओं में जाने के कारण से उसका एक चक्र बन जायेगा। हर एक दिशा में अनन्त-अनन्त बार जा चुका, हर एक देश में अनन्त-अनन्त बार जा चुका, देश का मतलब भारत और रूस आदि देश नहीं समझना। देश का मतलब होता है स्थान, प्रदेश माने जिसे हम आकाश का point कहते हैं उसको प्रदेश कहा जाता है। जैन दर्शन में क्षेत्र को जिससे नापा जाता है वह एक point single point जहाँ पर कोई भी जीव जन्म ले रहा हो, रह रहा है उसका नाम है प्रदेश। आप प्रदेश कहते हो किसी राज्य को और यहाँ प्रदेश कहा जाता है सूक्ष्म से सूक्ष्म point को। इतना आपका दिमाग जब विस्तार से सुकड़ करके point के रूप में रह जायेगा तो आपको लगेगा कि हमारी उत्पत्ति का हर एक स्थान अपने आप एक वर्तुलाकार के रूप में हो चुका है और हम एक चक्र के बीच में घूम रहे हैं। जब किसी चक्र में बहुत बार घूम लेते हैं तो फिर हमें भी उस चक्र को घुमाना पड़ता है। कई बार अपने आपमें घूमता रहता है। अब हमें घूमने की जरूरत नहीं है हम इतने अभ्यस्त हो गये हैं कि अपनी आत्मा में अब मोह उत्पन्न करने की जरूरत नहीं रहती है। मोह तो अपने आप उत्पन्न होता है क्योंकि वह पहले से ही एक वर्तुल बन जाता है। जन्म वहीं होगा जहाँ आपका किसी से सम्बंध सदा रहा हो, मोह रहा हो और उसके कारण से वह मोह पुनः एक नये रूप में आ जाता है बस केवल ऊपर का चेहरा बदलता है अर्थात् पर्याय बदलती है। उदाहरण दिया जा रहा है कि जैसे किसी रंग मंच पर आप किसी को देखते हो वह ऊपर का चेहरा बदल करके आ जाता है, आदमी वही रहता है कभी वही व्यक्ति खेल करेगा तो बहू बन जायेगा, वही व्यक्ति सास बन जायेगा, वही व्यक्ति पिता बन जायेगा। अलग-अलग आवाज भी कर लेगा लेकिन आदमी वही रहेगा। ऐसे ही एक ही आत्मा, एक ही जीव, एक ही प्राणी अनेक-अनेक पर्यायों को प्राप्त कर लेता है, अनेक अनेक रूप में आ जाता है और अगर उसके भी सारे के सारे रूप देखने में कभी आ जाये तो आपके लिए आत्म ज्ञान उत्पन्न हो जाये। आप जब पुराण ग्रन्थ पढ़ेंगे, चतुर्थ काल में अक्सर जाति स्मरण से आत्मज्ञान उत्पन्न होता है और वो अभी भी हो सकता है जाति माने अपनी जाति नहीं, जाति माने होता है जन्म, पूर्व जन्म का स्मरण हो आना। पूर्व जन्म का स्मरण हो जाता है तो अपने आप ही एक आत्मबोध, आत्मज्ञान उत्पन्न हो जाता है। आप उस पूर्व जन्म के स्मरण तक अपने आप को पहुँचाना नहीं चाहते हैं वहाँ तक पहुँच भी नहीं पाते हैं, बहुत कम लोगों के साथ में यह निमित्त मिलता है।

आचार्यों ने सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए भी यह निमित्त बताया है कि जाति स्मरण से आपको सम्यग्दर्शन हो सकता है। सम्यग्दर्शन होने का मतलब ही है कि हममें यह श्रद्धान हो जाये कि इस संसार में हमारी यह परिणति अनादिकाल से चल रही है और मैं एक जीव मात्र होकर के

पूर्व जन्म का स्मरण हो जाना जाति स्मरण कहलाता है।

भी इस संसार की अनेक-अनेक पर्यायों को प्राप्त करता हूँ, दुखी होता हूँ और पुनः उन्हीं पर्यायों में फिर से सुखी हो लेता हूँ, यह बोध जिस दिन उत्पन्न हो जायेगा इसी का नाम है जातिस्मरण। सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का यह भी एक कारण है। किन्हीं-किन्हीं लोगों को हो जाता है लेकिन आत्मबोध जैसा होना चाहिए वैसा फिर भी नहीं हो पाता। जाति स्मरण को सम्यग्दर्शन का कारण तो कहा है लेकिन जिस किसी को भी अपने जन्म का स्मरण हुआ है उसको सम्यग्दर्शन हो जाये यह भी नियम नहीं है। जब जाति स्मरण को सम्यग्दर्शन का कारण कहा है तो जाति स्मरण किसी को भी हो जाता है, विदेशों में अनेक ऐसे आपको उदाहरण मिल जायेंगे, अपने देश में भी मिल जायेंगे जिन्हें अपने पूर्व जन्म का कुछ आभास हो जाता है स्मरण हो जाता है लेकिन सम्यग्दर्शन नहीं होता। उस एक जाति स्मरण के निमित्त से भी सम्यग्दर्शन हो सकता है लेकिन वह तभी होगा जब उस जाति स्मरण होने के बाद में हमारे मन में संसार से डर लग जाये, भय लगने लग जाये कि मैं इस संसार में अनादिकाल से हूँ। इस जाति स्मरण उत्पन्न होने के बाद में अगर हमने कोई ऐसी देशनालब्धि प्राप्त कर ली। कोई हमें तत्त्व ज्ञान देने वाला हो तो वह जाति स्मरण भी उस सम्यग्दर्शन का कारण बन सकता है। अन्यथा वो जाति-स्मरण भी सम्यग्दर्शन का कारण नहीं है। जैसे जिन बिम्ब दर्शन को सम्यग्दर्शन का कारण कहा है। जिन बिम्ब दर्शन तो हर रोज हर कोई करता है फिर भी सम्यग्दर्शन नहीं है उसी तरह से यह जाति स्मरण भी सम्यग्दर्शन का कारण तो है लेकिन जिस समय पर जाति स्मरण हो उसी समय पर हमारे कर्मों की अनुभाग शक्तियाँ मन्द पड़ जायें, हमारे अन्दर वह देशना देने वाली लब्धि उत्पन्न हो जाये, हमको उसी समय कोई सम्यग्ज्ञान को उत्पन्न कराने वाला निमित्त मिल जाये तो हो सकता है कि यह जाति स्मरण भी सम्यग्दर्शन का कारण बन जाये। पहले मैं भी यही सोचता था कि यह सम्यग्दर्शन का कारण हो कैसे सकता है? मुझे याद है कि मैं जिस शहर में रहता था वहाँ पर एक बच्चे ने जन्म लिया और जन्म लेने के पाँच साल तक भी उसकी वही पुरानी स्मृति रही थी अपने पिछले जन्म की कि वह कहाँ पर मरण को प्राप्त हुआ और कहाँ से जन्म लिया। उस बच्चे के बारे, में उस बच्चे से पूछा तो बताता था कि मैं कानपुर का रहने वाला था और वहाँ मेरा एक एक्सीडेण्ट में मरण हुआ। मर कर मैं यहाँ इस जगह पर आकर के उत्पन्न हुआ और उसका जब टाइम मैच किया गया उसकी आयु मैच की गयी तो बराबर उसका टाइम ठीक निकला। उसको स्मृति थी कि मैं कानपुर में एक एक्सीडेण्ट में मरा हूँ लेकिन वो जाति स्मरण सम्यग्दर्शन का कारण नहीं बना बस इतनी ही स्मृति होकर रह गयी। उस स्मृति के साथ में अगर यह तत्त्वज्ञान हो जाता, कोई उसको आदेश देने वाला हो जाता, कोई उसके लिए जीवादि पदार्थों का ज्ञान कराने वाला हो जाता या संसार में मोक्ष की व्यवस्था बताने वाला कोई ज्ञान मिल जाता तो उस देशनालब्धि के माध्यम से उसके अन्दर सम्यग्दर्शन की सम्भावना उत्पन्न हो जाती। इसलिए जितने भी कारण होते यह सारे कारण के रूप में पड़े रहते हैं। लेकिन हमारे अन्दर कार्य

सम्यग्दर्शन का एक कारण जाति स्मरण भी हो सकता है।

तो तभी घटित होगा जब हम उसको और गहराई से लेंगे और गहराई से सोचेंगे, और गहराई से कोई सोचना नहीं चाहता, ऊपर-ऊपर से सब सोचेंगे। यहाँ सब लोग आते हैं, जाते हैं, संयोग होते हैं लेकिन इनके पीछे क्या चल रहा है जब तक हम गहराई से विचार नहीं करेंगे तब तक हमारे अन्दर वह सम्यग्दर्शन की परिणति उत्पन्न नहीं होगी।

इसलिए आचार्य कह रहे हैं कि यहाँ पर जो एक उदाहरण दिया जा रहा है वह उदाहरण उन पक्षियों का दे रहे हैं। पक्षी विश्राम करते हैं, किस दिशा से आये कोई बात नहीं सब आपस में हिले-मिले बैठे और उसके बाद में सुबह हो गयी, सब अपनी-अपनी दिशाओं में अपने-अपने गन्तव्य की ओर चले गये, उड़ गये। उसी तरह से आचार्य कह रहे हैं कि यह जितने भी संयोग हमको मिल रहे हैं यह सब संयोग, न जाने किन-किन दिशाओं से लोग आये हैं, यहाँ पर आकर के बैठे हैं और वह किन-किन दिशाओं में चले जायेंगे कोई पता नहीं। आप तो देखते ही रहते हो आपके घर में अगर कोई बेटी उत्पन्न हुई है आप उसका विवाह करते हो क्या पता उसका विवाह कौनसी दिशा में हो जाये। यहाँ आदमी राजस्थान का और उधर आसाम में, बैंगलोर में अपनी बेटियों को पहुँचा देता है। किस दिशा से आये किस दिशा में गये कुछ नहीं बस अपना कार्य बनना चाहिये। इसलिए आचार्य महाराज ने यह पंक्ति यहाँ पर बहुत अच्छी लिखी है-'**स्वस्वकार्य वशाद्यान्ति**' यह जितने भी जीव हैं अपने-अपने कार्यवश चले जाते हैं हमारा काम जहाँ बनेगा हम वहाँ चले जायेंगे। सुनते हैं राजस्थान में मारवाड़ी लोग होते हैं और मारवाड़ियों के लिए कहा जाता है-''जहाँ ना पहुँचे बैलगाड़ी वहाँ पहुँचे मारवाड़ी'' मतलब मारवाड़ी लोग व्यापार के निमित्त से, पैसा कमाने के निमित्त से दुनियाँ के हर कोने-कोने में पहुँच जाते हैं, जहाँ बैलगाड़ी भी ना पहुँचे वहाँ वो मारवाड़ी पहुँच जाते हैं। वे वहाँ पहुँचकर जैसा भी उनका जीवन चलता है चलाते रहते हैं, धर्म भी करते रहते हैं। इसलिए आप देखोगे दुनियाँ के हर कोने में मारवाड़ी लोग मिल जायेंगे आसाम, बैंगलोर कहीं भी चले जाओ यहाँ तक कि विदेशों में सिंगापुर तक चले जाओगे वहाँ भी आपको सब जगह मिलेंगे। व्यापार के निमित्त से गये, अपने-अपने कार्य के कारण से, यह तो अभी एक ही जन्म में एक स्थान से दूसरे स्थान पर गये हैं। लेकिन जब एक जन्म से दूसरे जन्म को प्राप्त होते हैं तो भी अपने-अपने राग और द्वेष के परिणाम के कारण से एक जन्म से दूसरे जन्म को प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए जब हम यह समझ ले कि हम एक चक्र में घूम रहे हैं तो हम अपने आपको जब चक्र से अलग करना चाहेंगे तब हमें एक center point देखना पड़ेगा। हम हमेशा परिधि पर दौड़ते रहे हैं लेकिन हमें केन्द्र की ओर देखना है और जहाँ हमारा अस्तित्व है वहीं हमारा केन्द्र है। गर्भ से बच्चे ने जन्म लिया और बुढ़ापे तक दौड़ता रहा, वह परिधि रही है बुढ़ापे के बाद में मरण कर पुनः उसी गर्भ में आया। बुढ़ापे तक पहुँचते-पहुँचते उसकी स्थिति ऐसी बन जाये जैसी गर्भ में किसी बालक की स्थिति होती है या यूँ कहें कि गर्भ से जन्म लेने के बाद भी जब तक बच्चा तीन साल तक का

रहता है तब तक भी वह बच्चा रहता है और तीन साल के बाद में उस बच्चे के अन्दर संसार समाहित होने लग जाता है। मरने के समय पर आदमी की बुढ़ापे की उम्र में भी अगर बचपन जैसी स्थिति बन जाये बिल्कुल सहज हो जाये, सरल हो जाये, बच्चे की तरह नाजुक-नादान हो जाये तो वह भी अपने इस चक्र को रोक सकता है। अगर वह बुढ़ापे में भी वैसा ही एक्साइटेड रहेगा जैसा जवानी में था तो वह आगे के जन्म को फिर प्राप्त करेगा और जन्म में उसी स्थिति से गुजरेगा जिस स्थिति से इस जन्म में।

बचपन एवं सहजता :

एक स्थिति हमें अपने अस्तित्व तक लाने के लिये है और उस स्थिति में आना ही कहलाता है अपने आप में अस्तित्व की ओर आना। आप अपनी आत्मा की ओर भी आ जायेंगे अगर आप थोड़ा सा यह ख्याल कर लें कि हम पहले कैसे थे? आप जब ख्याल करने बैठेंगे तो आपको जो ख्याल आयेगा वो भी इतना ही आयेगा जब से आपके लिये कोई न कोई स्मृति अच्छे ढंग से अपने आप को आघात पहुँचाने वाली होगी। आप अपने पूर्व के जीवन को देखेंगे तो आपको बचपन की बातें तो याद होगी लेकिन आपको वो सब बातें तीन साल के बाद की याद होगी। आपको जो कुछ भी याद होगा, वो घटना याद होगी जिसने आपकी स्मृति पर आघात किया हो। जिसने आपकी स्मृति पर चोट पहुँचाई हो वो चोट आपको याद रहेगी तो आपको लगता है कि यह हमारी स्मृति में वो चीज रही है और अगर आपको वह चोट नहीं पहुँची तो बचपन की भी कोई याद नहीं रहेगी। जिनके बचपन में कोई विशेष घटना नहीं घटती उनको अपनी बचपन की कोई घटना याद नहीं रहती। सब अपना-अपना बचपन याद करो और उस बचपन में तुम्हारी गति कहाँ तक रही है देखो। क्या तुम्हें याद है कि जब तुम तीन साल के थे तब उस समय पर तुम्हें तुम्हारे माता-पिता कैसे पढ़ाते थे।

कुछ याद आता हो तो याद करो, उसको याद करना जरूरी है यह ध्यान की प्रक्रिया है। मैं आपको बताने जा रहा हूँ कि जब आप इस तरह से अपना बचपन याद करोगे तो आप बहुत सरल हो जाओगे, आप अपने पास में आओगे, अपने से जुड़ोगे, आपको अपने अस्तित्व के निकट आने का एक विचार मिलेगा। आपको तो कभी विचार नहीं मिलता आपको तो उड़ने-उड़ने वाले विचार मिल रहे हैं। अब हमें यह बनना है, यह होना है, वो होना है और उस उड़ान में आप दौड़ते चले जा रहे हो, आप अपने अस्तित्व से बहुत दूर हो रहे हो। अपने पास तक आने के लिये आपको अपनी पिछली स्मृति याद में लानी है और वह पिछली स्मृति में आपको क्या याद आ रहा है, आप वह घटना बचपन की याद करो। जब से आपको लग रहा हो कि यहाँ से हमारा जीवन शुरू हुआ, बचपन की सबसे छोटी से छोटी घटना याद करो और वह याद आपको जितनी ज्यादा आयेगी उतने ज्यादा अपने आप तक पहुँचेंगे, अस्तित्व का आपको भान होने लग जायेगा। आप महसूस करोगे

बचपन याद करके आप स्वयं से जुड़ोगे, स्वयं के पास आओगे, सरल बन जाओगे।

कि आपको तीन वर्ष के बाद जब कोई पढ़ने लिखने के लिये मजबूर करता है, जब हमसे हमारे माता-पिता ने कहा बेटा यह याद कर यह याद कर, तो हमें वो याद हो जायेगा। हमसे कहा गया था यह याद कर, यह याद कर और हम याद करते थे वो चीज याद आयेगी, उससे पहले हम क्या करते थे आपको याद नहीं आयेगा। हम कैसे सरकते थे, जमीन पर हम कैसे घूमते थे, हम कहाँ पर क्या कर लेते थे कुछ याद नहीं आयेगा, वो याद आयेगा जो आपकी स्मृति पर आघात किया गया। माता-पिता ने जबरदस्ती हमें पढ़ाया अगर हमारे लिये वह स्मृति पर आघात नहीं होता तो हमें वो स्मृति भी याद नहीं रहती और वही चीज हमें याद रहती है कैसे हमें जबरदस्ती स्कूल भेजा जाता था, हम स्कूल जाना नहीं चाहते थे लेकिन फिर भी पहुँचाया जाता था, पहुँचा करके वहाँ बिठा करके आ जाते थे। फिर जब स्कूल का टाइम पूरा होता था तो लेने के लिए आ जाते थे। मन नहीं होता था फिर भी स्कूल जाते थे, वो हमारे ऊपर एक जबरदस्ती होती थी। जो हमारे साथ में जबरदस्ती घटना घटित होगी वो हमें याद रहेगा, हमारी स्मृति में बस उतना ही याद रहेगा और उससे पहले हम कैसे खेलते थे, कैसे हम सरकते-सरकते बड़े हुए, कैसे-कैसे हम भीतर पीड़ाएँ रखते थे, हम रोते भी थे तो कैसे मना लिया जाता था वो कुछ याद नहीं होगा। वो सब सहज होता था और वो सहज जीवन धीरे-धीरे छूटता गया। उसी सहजता को प्राप्त करने के लिए आपको पुनः अपने अन्दर वह बचपन का विचार करना है।

जिस दिन आपके अन्दर बड़े होने के बाद भी बचपन की बात शुरू हो जायेगी, बचपन जैसा आपके अन्दर विचार आना शुरू हो जायेगा, आप भीतर से बहुत अच्छे बनने लग जाओगे, भीतर से आपके अन्दर एक परिवर्तन आने लग जायेगा। आप चाहते हो भीतर से परिवर्तन या ऊपर से परिवर्तन। सब ऊपरी परिवर्तन चाहते हैं भीतर से परिवर्तन आप याद करो, जोर डालो अपने दिमाग पर क्योंकि दिमाग हमेशा स्मृति के साथ जीता है तो उस दिमाग से कहो चल तू स्मृति और कर। कौनसी स्मृति तुझे इससे पहले की याद है? चलो अभी याद ना आये आप कहीं पर भी घर में जाकर, अपने किसी ऑफिस में जाकर, किसी भी स्थान पर जाकर एकान्त में बैठ जाना और इस स्मृति को याद करना। सबसे पहले कौनसी घटना याद आये तुम्हें, कुछ याद आये उसको नोट कर लेना कि यहाँ से हमारा यह जीवन शुरू हुआ था, जिसकी हमको याद है। जब तुम बच्चे थे तो अपनी याद बताओगे नहीं, हम अपनी बताते हैं जब घर के लोग पढ़ाते थे तो वो चीज याद आती है बस पढ़ने वाली, रटाया जाता था एक, दो, तीन, छोटा अ, बड़ा आ और घर में रटाते थे घर के लोग। फिर उस बच्चे को गोदी में लेकर के बाहर गली में निकलकर के जाते थे तो उस गली में भी कुछ ऐसे लोग रहते थे जो बच्चों को खिलाते हैं। एक डॉक्टर था उस डॉक्टर की एक छोटी सी डिस्पेन्सरी थी और उसकी दुकान पर पहुँच जाते थे और वो कहता था बेटा सुनना अ माने अनार, ए फॉर एप्पल तो वो डॉक्टर अपने आप कई चॉकलेट देता था, यह चीजें आपको याद रह जायेगी,

सहज जीवन याद नहीं रहता, परेशानी दुख या आघात हमेशा याद रहते हैं।

इससे पहले क्या हुआ यह आपको याद करने में नहीं आयेगा क्योंकि जो सहज था उसको हम भूल जाते हैं। जहाँ से हमारी स्मृति पर आघात हुआ वो चीज हमको याद रह गयी। आपके जीवन में भी देखना कि आप तीन साल के बाद में या 6 साल के बाद में जो जीवन हो रहा होगा उसमें भी आपको वह चीज याद रहेगी जिसने आपके ऊपर चोट की हो।

सहज होगा तो कुछ याद नहीं रहेगा। जिस समय आप किसी परेशानी में पड़ गये हो, जिस समय आपके सामने कोई दुख आ गया हो वो घटना आपको याद रहेगी बाकी कुछ याद नहीं रहेगा। रोजाना आप खाते हो, पीते हो कुछ ध्यान नहीं रहेगा। कितनी बार अच्छे कपड़े पहनते हो, कितनी बार अच्छा खाते हो, पीते हो कुछ भी याद नहीं रहेगा वो सब हम भूलते जाते हैं क्योंकि वो सब सहज होता है। जो सहज होता है वो हमेशा हमारे दिमाग में रहता ही नहीं और हम धीरे-धीरे असहज बनते चले जाते हैं और असहज को ही हम याद रखते हैं। इसलिए जब अपनी भीतर से सहजता उत्पन्न करनी हो तो अपने अन्दर की उस सहज घटना को याद करो जो हमारे अन्दर सहजता के साथ चलती थी और हम जब भीतर से सहज हो जायेंगे तो फिर हमारा स्वभाव भीतर से अपने आप निर्मल हो जायेगा, पवित्र हो जायेगा। अपने स्वभाव में परिवर्तन लाने के लिए आपको अपने भीतर इसी ढंग से झाँकना पड़ेगा अपने अतीत में और अपने अतीत में भी वहाँ तक जाना पड़ेगा जहाँ से हमारा अस्तित्व शुरू हुआ है। अभी तो हमने आपको तीन साल तक ले जाकर के छोड़ दिया, कभी आप अपने अन्दर यह विचार करना कि मैं गर्भ में नौ महीने तक रहा हूँ कैसे रहा हूँ मैं? बड़े होकर के यह विचार लाना भी आपको डर का कारण बन सकता है लेकिन आप लाओगे तो आपकी स्मृति में अपने आप वह परिणति बनेगी कि वह स्मृति बिल्कुल सहज होकर के आपके भीतर से एक सहजता उत्पन्न करेगी। मैं जब गर्भ में भी नौ महीने तक बिना चिल्लाये रह सकता हूँ तो आज मैं बिना वजह किसी के ऊपर क्यों इतना चिल्लाता रहता हूँ।

जब गर्भ का वातावरण देख लोगे तो पसीना छूट जायेगा, डर लगने लग जायेगा। बिल्कुल शांत पड़े रहे, गर्भ में तो कोई रोता ही नहीं, गर्भ में तो कोई चिल्लाता ही नहीं। जो कुछ भी रोना धोना चिल्लाना हमको दिख रहा है सब गर्भ से बाहर निकलकर। अब हमें दूसरों को परतंत्र बनाना, दूसरों को मोहित करना, दूसरों को अपने वश में करना, दूसरों के ऊपर अपना स्वामित्व दिखाना यह सब क्रियाऐं अब चल रही हैं। पहले हमारे अन्दर क्या था कुछ नहीं था, हमें यह भी नहीं मालूम था कि मैं किसका पुत्र हूँ, मैं कहाँ हूँ, क्या हूँ और आज हमें सब कुछ मालूम रहता है। हमारे सामने कोई विपरीत परिस्थिति आ जाती है तो हम इतने ज्यादा उत्तेजित हो जाते हैं कि हम अपने स्वभाव से कोसों दूर चले जाते हैं हमें पता ही नहीं रहता। आपके अन्दर दिमाग में आयेगा तो आप अपने परिणामों को शांत महसूस करेंगे, आप के भीतर से एक सहजता उत्पन्न होने लगेगी। इसलिए इस वर्तुल में भी आप बड़े होकर जिस पॉइन्ट पर पहुँच गये हो उस पॉइन्ट से अपने पीछे वाले पॉइन्ट

असहजता को याद कर करके हम असहज एवं अपवित्र बनते जाते हैं।

को याद करो तो आपकी गति अस्तित्व की ओर आने लगेगी। जब आप धीमे हो जाओगे परिधि पर इससे आप केन्द्र पर नहीं आ गये, रहे तो परिधि पर। लेकिन परिधि पर भी गति धीमे हुए बिना केन्द्र पर खिसका नहीं जा सकता यह इसका सिद्धान्त है। अगर परिधि पर गति तेज रही तो आप परिधि पर ही दौड़ते रहोगे, केन्द्र पर नहीं आ पाओगे। पहले परिधि की गति कम करने के लिये यह विचार करना पड़ता है। जाति स्मरण इसलिए सम्यग्दर्शन का कारण बनता है कि उससे गति कम होगी और जब गति कम होगी तब हम अपने केन्द्र की ओर आयेंगे। यह मेरा अस्तित्व है मेरा आत्मा ऐसा आकाश की तरह अमूर्त है लेकिन वह कर्म के कारण से इस शरीर में बँधा हुआ है। इस अस्तित्व का भान आयेगा तो आप स्वयं अपनी ओर यात्रा करोगे। आपकी यात्रा जो बहिर्मुखी हो रही है वह अपने आप रुक जायेगी और आप परतंत्रता से अपने आपको छुड़ा लोगे। यह वातावरण जो हमारे सामने बना है इस वातावरण से ऊपर उठाने वाला यह जिनवाणी का ज्ञान है।

आचार्य महाराज किसी गुफा में एकान्त स्थान पर बैठकर जब इस संसार की दशा का वर्णन अपने अन्दर लाते होंगे और इस संसार के बारे में सोचते होंगे तो किसी पेड़ के ऊपर उन्हें रात में पक्षी इकट्ठे दिखाई दिये और सुबह उड़ते दिखाई दिये तो उन्हें संसार की दशा का रूपान्तरण करने के लिये यह उदाहरण मिल गया। उन्होंने इस उदाहरण को श्लोक में पिरो दिया। इसलिए एक कहावत बन गयी–'**दुनियाँ रैनबसेरा**' यह यहीं से बनी कहावत। इसकी मूल संस्कृत का भाव है कि पक्षी दिशाओं–दिशाओं से, देश–देश से आकर के अपने एक स्थान पर किन्हीं वृक्ष–वृक्षों पर रुक जाते हैं और सुबह होने पर '**प्रगे प्रगे**' माने प्रातःकाल होने पर सब अपने–अपने देश में, अपनी–अपनी दिशाओं में चले जाते हैं, अपने–अपने कार्य के वशीभूत होकर के। इसी तरह से इस संसारी प्राणी का जीवन चलता है। बहुत से लोग आकर के मिल जाते हैं और सब अपने–अपने कर्म करके अपने–अपने कार्य के वशीभूत होकर छोड़ कर चले लाते हैं। यह श्लोक वह श्लोक है जब बचपन की बात चल रही है तो बता देता हूँ जिसने मेरी स्मृति पर बहुत बड़ा आघात किया था। जब कभी जिनवाणी पढ़ने का भाव हुआ और मन्दिर में वह जिनवाणी निकाली। वह जिनवाणी एक शास्त्र था जो आज भी याद है '**समाधि तंत्र**' नाम का एक ग्रन्थ है और उस पर '**पंडित शीतल प्रसाद जी**' की एक टीका है। उस ग्रन्थ के अन्दर इसी '**इष्टोपदेश**' का यही सन्दर्भ दिया गया था, इसी श्लोक का। आप भी आज कहीं मिल जाये तो पढ़ लेना, देख लेना, ग्रन्थ तो था '**समाधितंत्र**' लेकिन जैसे संकेत करते हैं, उपदेश का विवेचन करते हैं तो उसमें यह सन्दर्भ दिया था। यह श्लोक न जाने क्यों इतना अच्छा लगा कि बाद में भी मैं इसको गुन–गुनाता रहा, याद करता रहा कि कितना अच्छा भाव है। दुनियाँ में लोग केवल उन पक्षियों की तरह बस आकर के मिलते हैं, उनका जीवन एक रात का रहता है और अपना जीवन दस–बीस साल का, तीस साल का, चालीस साल का ज्यादा से ज्यादा अस्सी–नब्बे साल का, यह भी एक रात की तरह है और सब अपनी–अपनी

आत्मा आकाश की तरह अमूर्त है परन्तु कर्म के कारण शरीर से बँधा है।

दिशाओं में चले जाते हैं। वहाँ जाकर के फिर उनके नये-नये माता-पिता, नये-नये भाई बहन सब बन जाते हैं और यहाँ पर आये तो वो नये-नये भाई बहन, नये-नये माता-पिता बन गये। संसार में कुछ भी एक जैसा नहीं है, अपने आप से जब यह स्मृति आ गयी तो लगता है कि कहीं न कहीं आचार्यों की अनुभूतियाँ भी जीवों की आत्माओं में कुछ न कुछ घटित करने का कारण बन जाती है। आचार्यों की उन अनुभूतियों की Potency रहती है जो हमारे अन्दर श्लोकों के माध्यम से उतरती है और इस अनुभूति में जब आप डूबोगे तो आपको अपने आप लगने लगेगा मोह को छुड़ाने के लिये क्या किया जाये, यह उदाहरण पर्याप्त है। जब सबको अपनी-अपनी दिशाओं में जाना है तो फिर किससे किसको मोह करना है।

इसका सारांश यही है कि जब सबको अपनी अपनी दिशा में जाना है और यह ही नहीं मालूम था कि कौन किस दिशा से आया है तो हम बीच में थोड़े से लाइफ टाइम के लिये इस उफान में क्यों बहुत ज्यादा मोह करके अपनी परिणति को बिगाड़े और दूसरे की परिणति भी बिगाड़े। यह दृष्टान्त आपकी दृष्टि में रहेगा तो आपके अन्दर अपने आप मोह की कमी होने लगेगी। मोह को कम करने के लिये विचार होगा जो भी संयोग मिले हैं ठीक हैं, एक संयोग मिलता है रैन बसेरा की तरह बसेरा हो गया है, हमारा भी घर बन गया है। पक्षियों के घोंसले होते हैं तो हमारे भी बड़े-बड़े घोंसले हो गये हैं। अपने घर-घर कहलाते हैं उनके घर घोंसले कहलाते हैं लेकिन यह है तो सब एक रैन बसेरा की तरह। अपनी-अपनी दिशाओं में सबका गमन होने वाला है और इस बीच में हम अगर कोई अनुबंध इतना गहरा बाँध भी ले तो वो अनुबंध उस जीव से बहुत देर तक बाँधे रहने वाला नहीं है। लेकिन हमारी आत्मा में वो बहुत देर तक न रह पायेगा। तुम कहते हो **''देना हो तो दीजिए जन्म-जन्म का साथ''** तुमको तो मोह बढ़ाते जाना है और तुम्हें तो जन्म-जन्म तक यहीं रहना है। ध्यान रखो कि हम क्या कह रहे हैं, हमें पता हो जो जिस जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त होने का प्रयास कर रहे हैं, हम उनके साथ हो लें न कि उनसे अपने जन्म के चक्कर में फँस जायें। हमें तो अभी और जन्म लेना है उनको अपने जन्म के चक्कर में क्यों फँसाना? हम यह ही अनुबंध कर बैठते हैं ''देना हो तो दीजिए जन्म जन्म का साथ'' आप भावना भी करो तो सोच समझ कर अच्छी करो और यही सोचकर करो कि हम इनके साथ में रहे तो हमारा निस्तार हो जायेगा। तुम उन्हें अपने साथ में बुला रहे हो जो जन्म-मरण के चक्कर से छूट गये हैं। मुक्त होने की अब भावना भाने लगे हैं न तुम्हारा निस्तार होगा और न उनका। इसलिए हम कभी-कभी न जाने कितने-कितने, क्या-क्या बोल जाते हैं हमें पता नहीं रहता है। हर चीज को ज्ञान के साथ में बोलो, ज्ञान के साथ में उसका प्रभाव देखो, ज्ञान के साथ में उसकी प्रवृत्ति करो तब आपको समझ में आयेगा कि एक छोटी सी बात भी कितनी बड़ी घटना के रूप में हमारे अन्दर कोई उपलब्धि करवा सकती है। 'दुनियाँ रैन बसेरा है' सुनते तो कई बार हो लेकिन उसको अनुभूति में लाओगे

दुनियाँ एक रैन बसेरा है, अपनी-अपनी दिशाओं में सबका गमन होने वाला है।

तो अपने आप मोह कम होने लगेगा। क्योंकि मोह तभी बढ़ता है जब हम उन संयोगों में त्रैकालिक की कल्पना कर लेते हैं, शाश्वत की कल्पना करने लगते हैं। यह हमारे साथ हमेशा रहने वाला है और यह केवल किसी आयु तक या किसी भी क्षण में छूट सकता है तो आपके अन्दर का मोह भाव भी अपने आप कम हो जायेगा।

इसलिए आचार्य महाराज ने यहाँ उदाहरण दिया है कि ध्यान रखो जितने भी संयोग संबंध हैं, यह सब हमारे उन पक्षियों के रैन बसेरे की तरह हैं। उनकी रैन तो 12 घण्टे की हो जाती है लेकिन आपकी रैन 12 साल की हो सकती है, सौ साल की हो सकती है। बस इतना ही फर्क है तो वह भी एक रात्रि की तरह मिलना, जाना, आना और इस तरह के वर्तुल में इस सर्कल में हम हमेशा से पड़े रहे हैं। उस सर्कल में भी आप अपनी गति कम करना चाहो तो आज वही ध्यान करना जो हमें हमारे बचपन तक ले जाये, हमें हमारे पीछे जहाँ से हमारा जीवन शुरू हुआ है उस स्थान तक ले जाये और हमें हमारे अस्तित्व से जोड़ पाये। ऐसी आप अगर थोड़ी सी प्रक्रिया इस जन्म में अपनाओगे तो बहुत बड़ा परिवर्तन आपके भीतर से आ सकता है, बाहरी परिवर्तन कोई महत्व नहीं रखते वो तो हो जाते हैं। यहाँ आप शांत बैठे हो और कोई शांत नहीं हो तो आप यहाँ नहीं लड़ोगे, इसका मतलब है आपको लड़ाई नहीं आती ऐसा नहीं है लेकिन वो भीतर चलता है और एक सभ्यता के तहत् आप कुछ काम नहीं करते हो, वो बात अलग है, लेकिन भीतर जो सभ्यता पड़ी हुई है वो तब छूटेगी जब हमारा भीतर से परिवर्तन होगा और वह भीतरी परिवर्तन ज्ञान के बिना, ध्यान के बिना कभी भी संभव नहीं है। इस जन्म में यह ज्ञान और यह ध्यान ही हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण चीज है। इनको हम

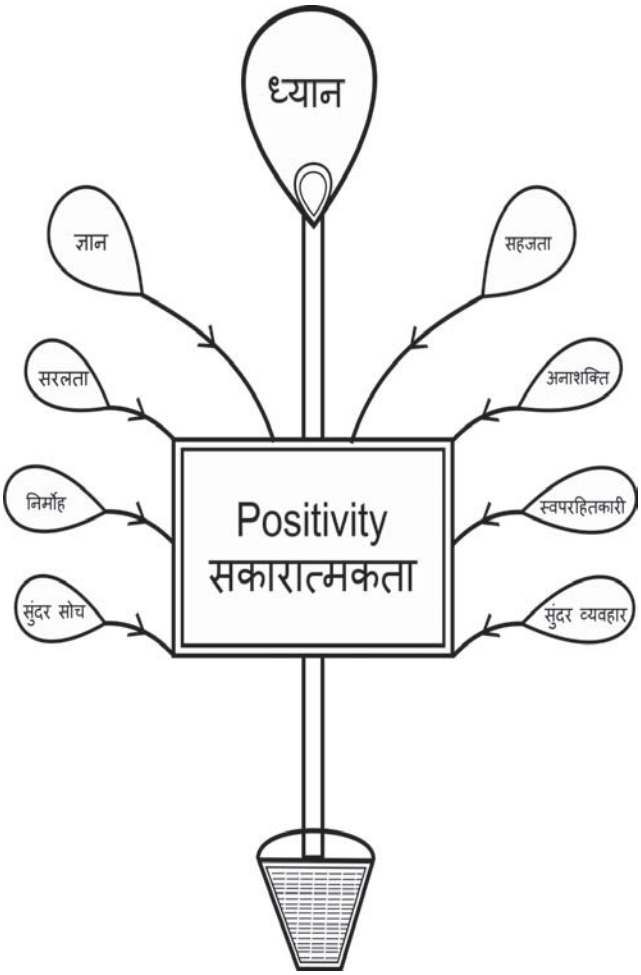

भीतरी परिवर्तन ज्ञान और ध्यान के बिना संभव नहीं है।

अपने जीवन में एप्लाई करें तो हमारा जीवन बहुत कुछ अच्छा बन सकता है और जब जीवन भीतर से अच्छा बनने लग जायेगा तो अपने आप आपके बाहरी वातावरण अच्छे होने लग जायेंगे। लोग आपसे कहेंगे आप इतने अच्छे कैसे हो गये, लोग आपके पास आने की इच्छा करेंगे और किसी को जब आपसे परेशानी नहीं होगी तो कोई भी आपके अहित के बारे में कभी नहीं सोचेगा और कोई भी आपके बारे में बुरा नहीं सोचेगा कि इस व्यक्ति के साथ ऐसा हो जाये, वैसा हो जाये। यह भी हमारे साथ तब होता है जब हम भीतर से अच्छे नहीं होते हैं और बाहर से अच्छापन दिखाते हैं। कभी तो छल किसी को देखने में आ जाता है वो आदमी फिर आपके अहित की भावना करने लग जाता है कि इसका तो ऐसा ही होना चाहिए था, अगर कभी आपके साथ बुरा हो गया तो वो कहेगा इसका ऐसा ही होना चाहिए था। वो इसलिए हुआ क्योंकि भीतर और बाहर एक जैसा होना सिखाता है। भीतर से भी अच्छा परिवर्तन लाओ और बाहर से भी अच्छा व्यवहार करो तो आपके जीवन में हर व्यक्ति जो मिलेगा वो आपकी हित की कामना करेगा, आपको अच्छा मानेगा, अच्छी दुआयें देगा, आपके बारे में अच्छा सोचेगा, आपको भी हमेशा अच्छा महसूस होगा। इसी को कहते हैं positive एनर्जी अपने अन्दर आना। यह तभी आयेगी जब आप भीतर से positive हो गये, बाहर से अपने आप positive एनर्जी के बहुत सारे source आपके सामने मिल जायेंगे और हर कोई आपको positive दिखाई देगा। जब आप भीतर से negative हो जाते हो तो सब कुछ आपको negative दिखाई देगा सामने वाला आपके प्रति positive होगा तो भी आपको negative दिखाई देगा क्योंकि आपके अन्दर negativity चल रही है। इसलिए जब भी कभी आपके अन्दर कोई परिवर्तन आना है तो वो आपकी ही positivity से आयेगा और उसके लिए ही अपने आप को मोड़ना पड़ता है, मरोड़ना पड़ता है उस मन को कि तू क्यों negative thinking कर रहा है। जब कोई हमारे साथ अच्छा भी कर रहा हो तो भी हम उसके लिए अच्छा न सोच पाये तो इसका मतलब है आपके अन्दर बहुत बड़ी negativity चल रही है और यही negativity हमारे लिए अहित का कारण बन जाती है। इसलिए यह जो भी भाव हैं यह सब भाव आज की भाषा में इस तरह से रूपान्ततरित किये जाते हैं कि आप अपने अन्दर दूसरों के प्रति positive thinking रखें। मतलब यह है कि आप दूसरों के प्रति न ज्यादा मोह रखे न ज्यादा आसक्ति रखें। दूसरे के प्रति उतना ही विचार करें जितना आपके करने योग्य है तो आपकी thinking positive बनी रहेगी इस प्रकार की thinking के लिए यह सूत्र है।

शत्रु के प्रति होने वाली भूल

10

विराधकः कथं हन्त्रे जनाय परिकुप्यति।
त्र्यङ्गुलं पातयन् पद्भ्यां स्वयं दण्डेन पात्यते ॥

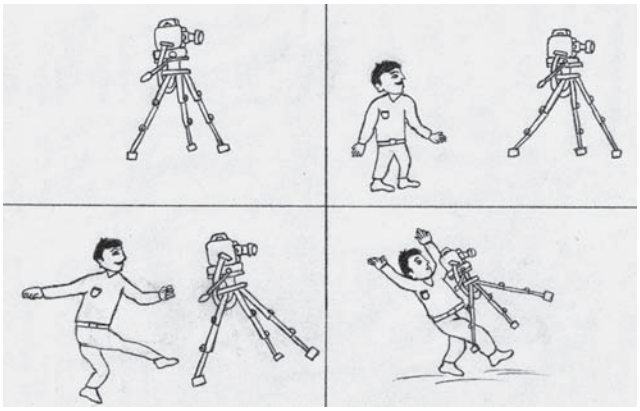

अन्वयार्थ—(विराधकः) अपकार करने वाला मनुष्य **(हन्त्रे जनाय)** मारने वाले मनुष्य के लिए **(कथं परिकुप्यति)** क्यों क्रोध करता है **(त्र्यङ्गुलं)** तीन अँगुली वाले उपकरण को **(पद्भ्यां)** पैरों के द्वारा **(पातयन्)** गिराता हुआ मनुष्य **(स्वयं दण्डेन)** स्वयं लकड़ी के बेंट (डंडे) द्वारा **(पात्यते)** गिराया (झुकाया) जाता है।

- ☞ **विराधना**
- ☞ **आराधना**

आचार्य पूज्यपाद द्वारा विरचित यह इष्टोपदेश ग्रन्थ है जिसके माध्यम से हम संसार की दशा और संसारी जीवों की दशा बहुत अच्छे तरीके से समझ रहे हैं। मोह के कारण यह जीव जब अपने शरीर आदि पर –पदार्थों को अपना मानता है तो उसकी इस मान्यता में एक मूढ़ता समाहित हो जाती है और इस मान्यता के कारण वह सु:खी और दु:खी निरन्तर होता रहता है। सु:ख उसके लिए थोड़ा मिलता है और दु:ख अधिक मिलता है। जैसे पक्षी एक स्थान पर शाम को आकर बैठते हैं और सुबह चले जाते हैं, वे पक्षी तो किसी से कषाय नहीं करते हैं। अगर इस दृष्टांत पर थोड़ा बारीकी से विचार किया जाये तो वह दृष्टांत केवल समझने के लिए है कि आप उन पक्षियों की तरह ही अपने संयोगो को प्राप्त करते हैं लेकिन उन पक्षियों की विशेषताओं को थोड़ा और समझा जाये तो हम उन पक्षियों से भी बहुत निम्न स्तर के सिद्व होंगे। पक्षी तो मिल जाते हैं बैठ जाते हैं, सुबह चले जाते हैं, कोई ज्यादा राग–द्वेष नहीं करते हैं, कोई ज्यादा कषाय नहीं करते हैं, साथ–साथ में भी रहकर वो अपने अपने में ही रह जाते हैं। अगर आप उन पक्षियों को ध्यान से देखेंगे तो वे सब अपना अपना दाना चुगते हैं, किसी दूसरे के दाने पर मुँह नहीं मारते, जो वो अपना लेकर के आये है वो अपना ही दाना चुगेंगे, अपने ही दाने से वो अपना समय निकाल लेंगे और वह न ही किसी और को देखेंगे, न किसी की तरफ प्रयोजन करेंगे। बस इतना ही प्रयोजन रहता है उनका कि एक साथ चलते हैं, झुण्ड से आयेंगे और झुण्ड से ही उड़ जायेंगे। अपने अपने कार्यो को करते हुए आपस में भी किसी प्रकार का कषाय भाव नहीं रखते हैं। अगर ऐसी परिणति इस जीव की हो जायें तो यह दृष्टांत इस जीव के लिए थोड़ा और अच्छा लागू हो जाये। मिलो, बैठो, आपस में बातचीत करो कोई बात नहीं लेकिन राग–द्वेष की परिणति उत्पन्न न हो, कषाय की परिणति उत्पन्न न हो क्योंकि अगर आप कषाय करोगे तो वह कषाय आपके लिए कभी न कभी लौटकर आयेगी। आप जिससे कषाय करोगे वह व्यक्ति उस समय आपकी कषाय को सहन तो कर लेगा लेकिन वह आपकी कषाय को अपने अन्दर ले जायेगा और फिर वह हमेशा यह चाहेगा कि हम इसकी कषाय को कब वापस लौटा दे। मान लो आपने किसी पर क्रोध किया, वह उसके अन्दर चला गया लेकिन वह भी यह ध्यान रखेगा कि इस क्रोध को कैसे लौटाएँ। और जब वह क्रोध पुनः आपके लिए लौटाने आयेगा तो उस समय आपको बड़ा कष्ट होगा। आपको अपनी कषाय उसे देते हुए कष्ट नहीं होगा। इन कषायों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जब कोई कषाय किसी के ऊपर कर रहा है इसका मतलब है वह अपनी कषाय दूसरों को देना चाहता है, दूसरों को दे रहा है। जब वह कषाय दूसरों को दे रहा है तो उस समय वह सोचता है कि मैं बहुत अच्छा कर रहा हूँ लेकिन होता इसके विपरीत है वह दूसरा उसकी कषाय को ले जायेगा और उसकी उस कषाय को कुछ दिनों तक अपने पास रखे रहेगा और उसको कई गुना होकर लौटाने की तैयारी कर रहा होगा। आज

पक्षियों में आपस में किसी प्रकार का कषाय भाव नहीं होता है।

आपने थोड़ा किसी से गुस्सा किया अगर आपका गुस्सा उसके अन्दर पहुँच गया तो समझ लेना कि वह अब कई गुना होकर आपके पास आने वाला है, गुस्सा करने से पहले इतना सोच लेना। हम उस समय पर यह सोचते हैं कि हमने उस पर गुस्सा कर लिया मतलब हमने उसको अपने under में कर लिया और हमने अपने गुस्से से इसको दबा लिया जबकि कोई नहीं दबता आपके गुस्से से। आपके गुस्से से आपका छोटा बेटा भी नहीं दबेगा बड़े की बात तो छोड़ो। अगर आप अपने छोटे से बच्चे पर भी गुस्सा करोगे तो वह भी अपने अन्दर गुस्सा करने के लिए तैयारी करता है कि कब हम गुस्से को बाहर निकाले। अगर मान लो आपने अपने छोटे से बच्चे पर गुस्सा कर दिया, उसको डाँट दिया तो जब उसका समय आयेगा तो वह अपना गुस्सा आप पर निकालेगा। जब सुबह आपने उस पर गुस्सा किया, डाँट दिया तो अब उसका गुस्सा उस समय नहीं निकल पायेगा क्योंकि उस समय उसका गुस्सा निकालने का कोई काम नहीं होगा। गुस्सा निकालने का उसका जब समय आयेगा, तब वो गुस्सा निकालेगा और वह गुस्सा कब निकालेगा ? अभी तो आप उससे कह रहे हो, उसको डाँट रहे हो, और उसको डाटकर अभी, उसकी कोई कीमत समझ में नहीं आ रही है अभी आपको, अपनी कीमत समझ में आ रही है कि मुझे देर हो रही है जल्दी करो। जल्दी तैयार हो, जल्दी उठो क्योंकि मुझे देर हो रही है। अपनी देरी के लिए हम उस पर गुस्सा कर रहे हैं, अपना प्रयोजन पूरा करने के लिए हम उसे डाँट रहे हैं। जब उसका भोजन करने का समय आयेगा तब फिर आप उससे कहोगे कि बेटा भोजन कर। अब आपका प्रयोजन नहीं है उसका प्रयोजन है। जब आप उससे कहोगे बेटा भोजन कर, तब वो सोचेगा अब हमसे कहा जा रहा है भोजन करने के लिए तो हमारे पास chance है कि हम करें या ना करें। करूँगा तब तो इनको कोई दु:ख होगा ही नहीं और नहीं करूँगा तो इनको दु:ख होगा। यह वह सोच भी ना पाये लेकिन उसके मनोविज्ञान में यह चल रहा है। उस समय जब वो मना कर रहा है कि नहीं, मैं भोजन नहीं करूँगा तो माँ समझ लेगी कि यह गुस्से में है। सुबह इसको डाँटा था और अभी तक यह गुस्से में है। चार घण्टे, पाँच घण्टे होने के बाद भी उसका गुस्सा शान्त नहीं हुआ हैं। स्कूल में होकर आ जाये, स्कूल के बाद भी लौटकर दोपहर में 2 बजे आये तो भी उसका गुस्सा नहीं उतरा। सब पढ़ के भी आ गया हो, सब मित्रों के बीच भी होकर आ गया हो लेकिन जैसे ही वह आयेगा तो उसे सुबह की बात याद आयेगी कि मुझे बिना वजह डाँटा गया, मेरी बिना वजह पिटाई की गई और उसी वजह से वह आपके लिए दोपहर 2 बजे तक भी गुस्सा करके बैठेगा, भोजन करने के लिए कहोगे तो नहीं करेगा और वह उस समय सोचेगा कि मुझे भोजन नहीं करना है। अब देखो गुस्सा क्या-क्या करवाता है। उसके मन में क्या विचार चल रहा है कि मुझे भोजन नहीं करना हैं। लेकिन भोजन नहीं करने के पीछे प्रयोजन है कि हमें इनको दुख देना है। अगर वास्तव में देखा जाये, मनोवैज्ञानिक शब्दों में कहने वाला प्रयोजन होगा तो यही प्रयोजन है कि इन्होंने मुझे दुख दिया है अब मैं भी इन्हें दुख दूँगा। वह

दूसरों पर की गई कषायें कई गुना होकर वापस आती है।

आपको डाँट तो नहीं सकता, आपने उसको डाँटा था। वह आपकी पिटाई तो नहीं कर सकता, आपने उसकी पिटाई की थी क्योंकि वो छोटा था। लेकिन आपने उसको दुख दिया तो वह दुख का बदला दुख देकर ही निकालेगा, उसके अन्दर जो दुख बैठा है वह उसको प्रेरित करेगा कि अब तुम भी इसको दुखी करो। तुमने उसको दुख दिया तो अब वह भी आपके लिए तैयार है कि वह आपको दुखी करेगा और जिस समय आपने उसको दुखी किया उस समय आपने नहीं सोचा कि यह भी हमें दुख दे सकता है।

विराधना :

आचार्य जी यहाँ कहते हैं कि इन सम्बन्धों के बीच में हम कुछ विराधना कर लेते हैं। विराधना का मतलब है कि ऐसे कुछ काम कर लेना कि वो अपने लिए तो अच्छे और दूसरे को नुकसान पहुँचाने वाला होगा लेकिन वह अपने को भी नुकसान पहुँचायेगा। हम सोचते हैं कि इससे अपने को फायदा हो रहा है और दूसरों को नुकसान हो रहा है तो हम उस समय विराधक बन जाते हैं। 'विराधक' विराधना करने वाला। जो दूसरों के लिए अपकार कर रहा है, दूसरों के लिए पीड़ा दे रहा है, दूसरों को दुःख दे रहा है या दूसरों की हिंसा कर रहा है वह कहलाता है विराधक। ऐसे विराधना करने वाले जीव ऊपर कोई उसकी विराधना करने लग जाता है या उसको दुःख देने लग जाता है तो आचार्य जी कहते हैं कि अब तुम क्यों काँप रहे हो। किसके लिए? उसी के लिए जिसके लिए तुमने पहले विराधना की थी। **'विराधकः कथं हन्त्रे, जनायः परिकुप्यते'** जिसको आपने पहले पीड़ित किया, जिसको आपने पहले दुःख दिया, वही जब आपके लिए दुःख देगा तो आप उस पर क्रोध नहीं करो। अगर क्रोध कर रहे हो तो आचार्य श्री यहाँ बड़ा आश्चर्य व्यक्त कर रहे हैं कि अब वो व्यक्ति उस पर क्रोध क्यों कर रहा है और उसका यह क्रोध करना कैसे सम्भव है? यह तभी सम्भव है जब उसको मालूम ना हो कि हमने किसी को पीड़ा दी है और जब पीड़ा दी तब उसको मालूम था या नहीं। जब पीड़ा मिलने लगी तब मालूम पड़ने लगा कि मेरे को पीड़ा हो रही है। इससे उसके ऊपर क्रोध उत्पन्न हो जाता है और जब यह क्रोध उत्पन्न हो जाता है तो उस समय उसे पता नहीं रहता कि इस क्रोध की शुरुआत कहाँ से हुई है? इस क्रोध का कारण क्या रहा? जब ध्यान में आ जाये तो क्रोध नहीं होगा। अगर माँ को ध्यान आ जाये कि इस बेटे को हमने सुबह डाँटा था, इसको पीटा था और इसी कारण से वो भोजन नहीं कर रहा है। यहाँ तक कि हमने जो टिफिन इसके बैग में रखा था वो भी ऐसे के ऐसे आ गया, आज हम टिफिन खायेंगे ही नहीं। अब गुस्सा उतारना है तो उसी चीज पर उतारा जायेगा जिससे दूसरों को दुःख मिल सके। तो अपने school में गया, वहाँ school में किसी पर भी गुस्सा नहीं करेगा। teacher सामने होंगे तो उनके ऊपर भी गुस्सा नहीं होगा। लेकिन जैसे ही घर आयेगा आपकी शक्ल देखेगा तो उसके गुस्से का

दूसरे को पीड़ा या दुख देने वाला विराधक कहलाता है।

सम्बन्ध आपसे है तो गुस्सा भी पर ही उतरेगा। यह ध्यान रखना कि आप हो सकता है वह गुस्सा उस दिन आप पर नहीं उतार पाया तो बाद में उतार सकता है।

एक बच्चे की कोमलता के अन्दर इतना परिणाम होता है कि उस कोमल बच्चे के अन्दर यह पीड़ा बैठ जाती है और इस पीड़ा को जब वह सहन नहीं कर पाता है तो वह उपाय ढूँढ़ता है और उन उपायों से आपको दुःख दे सके, आपको पीड़ा पहुँचा सके वह उसके लिए तैयारी करता रहता है। जब वह भोजन नहीं करेगा तो अब माँ को दुःख होगा। भोजन क्यों नहीं कर रहा बेटा। अब वो कुछ बोलेगा नहीं। बिलकुल चुप है बार बार पूछोगे तो भी नहीं बोलेगा और उस समय वो अपना गुस्सा दिखाने के लिए कोई काम नहीं करेगा। उस समय न टी. वी. देख रहा है और न खेल रहा है। अगर वह टी. वी. देखेगा या खेलेगा तो माँ समझ जायेगी कि वह बुहत खुश है और उसे यह दिखाना हैं कि मैं नाखुश हूँ। क्यों नाखुश, तुम इस चीज को समझ लो। उस समय पर वह बिल्कुल मुँह बनाकर बैठेगा, उससे बार-बार पूछा जायेगा और वह नहीं बोलेगा तभी उसको अच्छा लगेगा कि वह नहीं बोल रहा है। बच्चे के अन्दर कितना ज्ञान है। आप समझते हो बच्चा है, हमने मार दिया तो बहुत अच्छा काम कर दिया और आपने उसके लिए इतनी पीड़ा दे दी कि अब वो आपको सिखा रहा है कि आपने जो सुबह गलती की थी उसकी यह सीख है कि आप उसका पश्चाताप करो। अब वह उस समय पर बैठा रहेगा, लेट जायेगा और ज्यादा भावुक होगा तो रोने लग जायेगा, आँसू आयेंगे। माँ देखेगी कि बेटा रो रहा है तब माँ को दुख होगा। जब वह देख लेगा कि अब माँ परेशान हो गई है। अब इसको दुख हो गया है तब उसके मनाते-मनाते कि हाँ अब ठीक है तब वो खाने बैठ जायेगा। ऐसा इसीलिए होता है क्योंकि उसके अन्दर जो दुख था उसने आपके ऊपर निकाल दिया तो उसका दुख चला गया। उसकी पीड़ा चली गयी तो वह अब हल्का हो गया तो वह भोजन कर लेगा। जब तक उसके अन्दर बदला निकालने का भाव हैं तब तक वह व्यक्ति विराधक बना रहेगा। आपको लगेगा कि वह हमें परेशान कर रहा है। अब कोई नासमझ माँ होगी तो उस समय चिल्लाने लगेगी, शाम को जब उसका पिता घर आयेगा तो उनसे कहेगी कि बेटा भोजन नहीं कर रहा है। समय पर इसे भोजन करने के लिए कहती हूँ, मानता नहीं है रोता रहता है, रूठ जाता है। अगर उसने यह सब अपने पति से कह दिया और वह बात बेटे ने सुन ली तो घर में कलह उत्पन्न हो जायेगी। कलह का कोई भी कारण है और हमें स्वयं उसके लिए पश्चाताप नहीं हो रहा है तो आपकी सबसे बड़ी नासमझी कहलाएगी और हम यह समझते हैं कई बार कि हमने सुबह उस पर गुस्सा किया इसलिए यह अभी गुस्सा हो रहा है। अब अगर इसने गुस्सा कर लिया तो गुस्सा करना भी इसका हक है तो आप इसके गुस्से को किसी से नहीं कहोंगे। फिर अपने पति से कहने का क्या मतलब? अब उसके पिता से भी कहने का कोई मतलब नहीं है अगर कह भी दिया और उसने सुन भी लिया तो उसके गुस्से को आपने फिर बढ़ा दिया वो पूरा हो नहीं पाया

स्वयं की गलती का पश्चाताप नहीं करना बहुत बड़ी नासमझी है।

और शाम को फिर नया गुस्सा तैयार हो गया। वो अपनी भावनाएँ व्यक्त नहीं कर पा रहा है अपना गुस्सा नहीं कह पा रहा है और उसके गुस्से को आप समझ नहीं पा रहे हो तो आपकी यह सबसे बड़ी नासमझी है। अगर आपको यह समझ में आ जायेगा तो आप कभी भी उसके गुस्से को बढ़ावा नहीं दोगे, उस बेटे के लिए कोई ऐसे डाँट-डपट करके उसको और आरोपित नहीं करोगे कि यह जिद्दी है या यह मक्कार है, यह पढ़ता नहीं है, न जाने कितनी तरह की गालियाँ आती है और वह सब सुनता रहता है।

आप यह ध्यान रखना कि बच्चे बहुत कोमल होते हैं और जितनी ज्यादा वो तुम्हारी डाँट सुनेंगे, आप यह समझ लेना कि आप जो कह रहे हो वह उस समय पर हो रहा है। आपने कहा कि वह जिद्दी है और आपकी सबसे बड़ी गलती यह है कि आप उसके सामने ही कहोगे कि वह जिद्दी है, उसके पिता से कहोगे तो उसके सामने कहोगे, उसके मित्र से कहोगे तो उसके सामने कहोगे यहाँ तक कि उसे किसी महाराज जी के पास ले जाओगे तो भी उसके सामने ही कहोगे और जब भी कोई माता-पिता हमारे सामने आकर के इस तरह से बोलते हैं तो मुझे बड़ा डर लगता है। यह डर लगता है कि यह बच्चे के ऊपर कितना बड़ा अत्याचार कर रहे हैं और उस समय मैं उन माता-पिता को रोक देता हूँ कि देखो तुम गलत बोल रहे हो। उसका चेहरा देखकर यह लगता है कि यह कितना मासूम है, कितना भोला है। उसकी माँ पीछे बैठी है और कहती है कि महाराज जी यह पढ़ता ही नहीं है, जिद्दी है और उस समय आप जो कहोगे सब सुनेगा और सुनने के बाद में आपके ऊपर गुस्सा निकालेगा क्योंकि आप उसको गुस्सा दिला रहे हो, उसका गुस्सा बढ़ा रहे हो। वह अपना गुस्सा महाराज जी के सामने तो कह नहीं पायेगा तो फिर आपको घर जाकर कहेगा। नहीं पढ़ना है और कहो जाकर महाराज जी से। यह जो जिद्द उसके अन्दर आयी है वो हमने पैदा की है, यह ढीटपना जो आप कहे हो वो ढीट आपने उसे बनाया है। वह अपने अन्दर इतना ज्ञान रखता है और उस ज्ञान के साथ उसका मन इतना कोमल है कि उस कोमल मन पर किसी भी तरह का आघात पहुँचता है तो वो इस आघात से इतना पीड़ित हो जाता है तो वह कई दिन तक इस जिद्द में आ जाता है, जिसे आप कहने लग जाते हो कि जिद्दी है। आप अगर कह रहे हो बच्चा जिद्दी है तो आपको यह जानना चाहिये इसको जिद्दी भी हमने बनाया है। चाहे हमने उसकी जिद्द को समझकर के उसे जिद्दी बनाया हो या उसे ताने दे देकर जिद्दी बनाया है। आप इतने नासमझ जीवन भर बने रहते हैं कि कभी यह नहीं सोचते हैं कि हमने इसे जिद्दी बनाया है तो हम क्यों कहे जिद्दी है। इतना patience आपके अन्दर होना चाहिये कि हम बच्चे की बुराई किसी दूसरे के सामने ना करें। यहाँ तक कि अपने पति के सामने भी ना करें अगर इतना आपके अन्दर ज्ञान होगा तो वो बच्चा आपसे कभी आहत नहीं होगा और आपको कभी भी आहत नहीं करेगा। जहाँ आपने बच्चों को कभी आहत किया तो वो भी आपको आघात पहुँचाने लग जायेगा और वह आघात पहुँचाएगा

माँ-बाप का गलत attitude बच्चों को जिद्दी बनाता है।

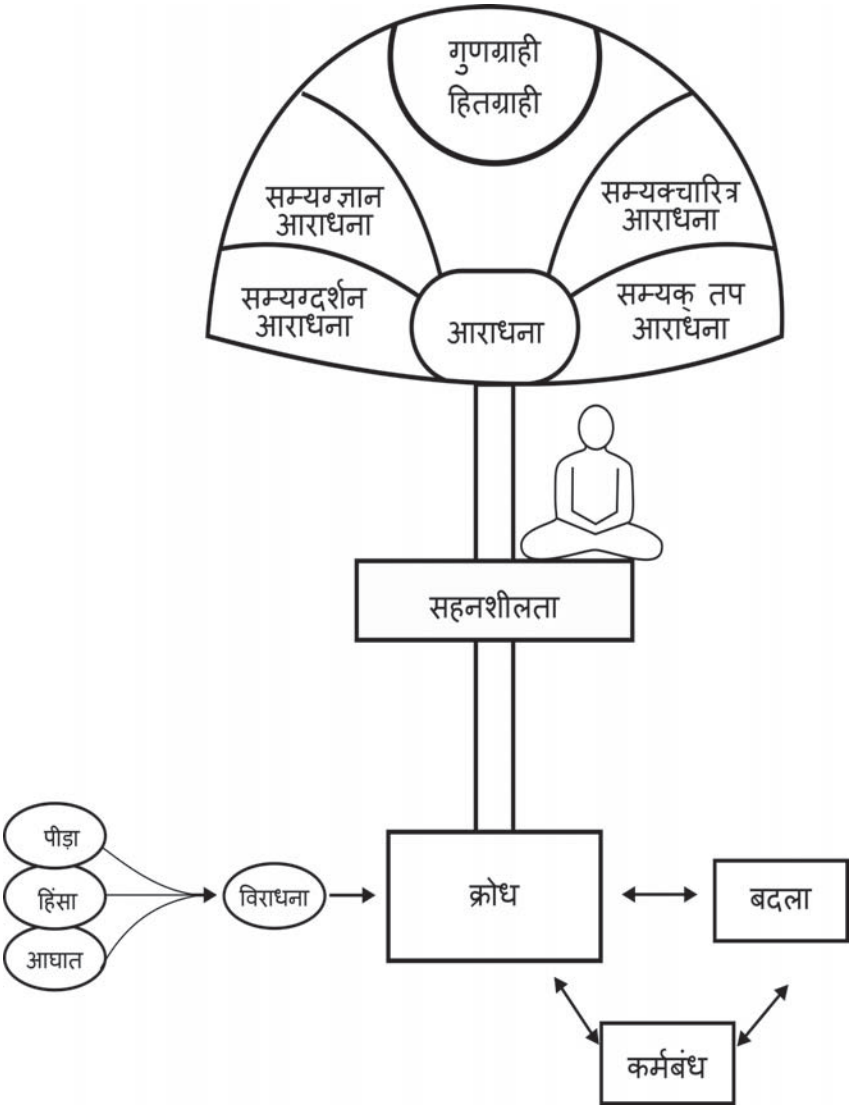

तो आपको बहुत पीड़ा होगी क्योंकि आपको तो ज्ञात है ही नहीं। मैं इससे जो कहती हूँ वह करता नहीं, जो खाना बनाती वह खाता नहीं और बीच में काम बिगाड़ देता है। यह सब जो परेशानियाँ होती हैं इन सब के पीछे अपना ही गलत attitude होता है और अपना एक गलत अभिप्राय होता है जिससे हम यह समझ नहीं पाते कि हमने उसे कब जिद्दी बना दिया।

यह सूत्र है आचार्य पूज्यपाद महाराज जी का कि आप हमेशा विराधना करते रहते हो और विराधना भी उनकी जो आपके आस पास होंगे उनकी करोगे उन्हीं को आप पीड़ा पहुँचाओगे, उन्हीं की आप हिंसा करोगे और जब वह आपके ऊपर हिंसा करने लगता है तो फिर आपको कष्ट क्यों होता है, यह यहाँ पर प्रश्न किया गया है। 'कथं ' मतलब क्यों 'हन्त्रे जनाय परिकुप्यति' अब जो हनन करने वाला आपको मारने के लिए आ गया तो आप अब उस पर क्यों क्रोध कर रहे हो? अब उस पर आप क्यों क्रोधित हो रहे हो ? आपको उस समय समझ नहीं आ रही है तो इसका मतलब है कि आप अपने अन्दर उस क्रोध की परम्परा को और बढ़ा रहे हैं। एक तो बात वह थी जहाँ हमें अपनी गलती समझ में आयी और दूसरे ने उसको react कर दी, उसका

बदला ले लिया तो हमें वहीं पर समझ लेना चाहिये की अब यह अपना काम पूरा हो गया, मतलब हमने जो गलती कि थी उसका बदला हमें मिल गया। प्रश्न हल हो गया। समस्या समाप्त हो गयी। अगर यह उस समय पर ध्यान नहीं आयेगा तो एक नई गलती होगी और वह उस समय पर ध्यान आता नहीं। कोई भी व्यक्ति आपको पीड़ा देने आ रहा है, कोई भी व्यक्ति जो आप पर गुस्सा कर रहा है, कोई भी व्यक्ति जो आपके हृदय पर चोट कर रहा है, आपके मन को आघात पहुँचा रहा है, आप उस समय एक क्षण के लिए यह परिणति लाए, यह विचार में लाए कि मैंने पहले इसको आघात पहुँचाया है, मैंने पहले इस पर गुस्सा किया है, मैंने पहले इसको दुख दिया है यह उसका बदला है। जैसे ही आपको यह समझ में आ जायेगा कि यह बदला है उस बदले को बदले की तरह सहन कर लो। फिर से कोई नई बात मत करो कि उसका बदला लेने के लिए आपको कई वर्षों तक पीड़ा भुगतने का इंतजार करना पड़े, यह यहाँ पर बताया जा रहा है। आचार्य जी कहते हैं कि हर व्यक्ति के अन्दर अपना-अपना स्वभाव रहता है और उस स्वभाव से अपनी-अपनी तरह React (प्रक्रिया) करता है। आपने विराधना की और आप विराधक बन गये। जब आपने विराधना कर दी तो आप उस समय पर आराधक नहीं रहे क्योंकि विराधना करने वाला आराधक नहीं होता है और आराधना करने वाला विराधक नहीं होता है। दोनों विपरीत चीजें एक साथ नहीं रह सकती। आराधना क्या होती है ? आराधना मतलब सम्यग्दर्शन, ज्ञान, और चारित्र इन गुणों की आराधना करने वाला आराधक कहलाता है या अपना हित चाहने वाला आराधक कहलायेगा। आप अपने गुणों की आराधना कर सकते हो, आप अपनी आत्मा के आराधक बन सकते हो। आप जब गुणों के आराधक बन जाओगे तो आपके अन्दर गुणों की विराधना नहीं होगी। गुण क्या है? गुस्सा करना, पीड़ा देना यह गुण नहीं हैं ये दोष हैं। दोष किया तो विराधक हो गये।

आराधना :

आचार्यों ने शास्त्रों में चार प्रकार कि आराधनाएँ लिखी हैं, एक सम्यग्दर्शन की आराधना कहलाती है, एक सम्यग्ज्ञान की आराधना कहलाती है, एक सम्यक्चारित्र की आराधना होती है और एक सम्यक् तप की आराधना कहलाती है। हर एक भव्यात्मा को अपनी योग्यता के अनुसार इन आराधनाओं को करना चाहिए। सम्यग्दर्शन की आराधना और सम्यग्ज्ञान की आराधना तो गृहस्थ भी कर सकता है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान,चारित्र और तप इन चारों की आराधना तो कोई श्रमण, महाव्रती मुनिराज ही कर सकते हैं। उनके पास चारित्र भी होता है और तप भी, तो वह चारों प्रकार की आराधना करते हैं। गृहस्थ तो केवल सम्यग्दर्शन और ज्ञान की आराधना कर पायेगा। सम्यग्दर्शन की आराधना करने के लिए आचार्य ने लिखा है **''उज्जवणं मुज्जवणं णिव्वहणं साहव्वणं च णिज्छरणं, दंसणणाण् चरित्तम, तवाण मराहणा: भणिया''**। उज्जवणं मुज्जवणं क्या है? **उद्योतन** करना। उद्योतन का मतलब प्रकाशित करना। अपने अन्दर के सम्यग्दर्शन के भाव

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र एवं तप की आराधना महाव्रती मुनिराज ही कर सकते हैं।

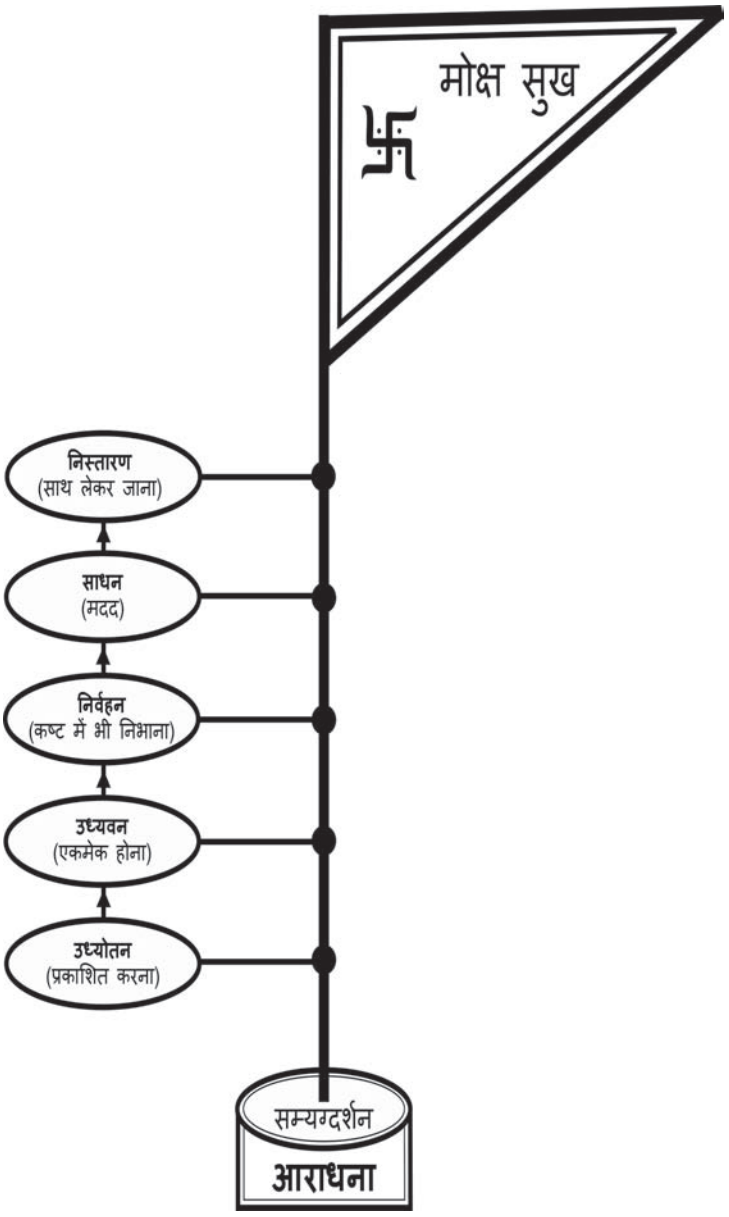

को प्रकाशित करते हुए उसको उद्योत बनाकर रहना। उसका प्रकाश बनाकर के रखना। उसका प्रकाश बनाए रखने के लिए अपने अन्दर जो गुणों को उत्पन्न करने का भाव है जैसे सम्यग्दर्शन है तो उसके लिए निःशंकित होना, निकांक्षित होना। इन गुणों की आराधना करने का मन हमेशा बनाकर के रखना और इन गुणों के माध्यम से सम्यग्दर्शन को भी बनाए रखना, बढ़ाने की भावना रखना यह कहलाता है उद्योतन। मान लो आपके अन्दर सम्यग्दर्शन नहीं भी है लेकिन आप जानते हो कि हमें सम्यग्दर्शन की प्राप्ति करना है। हमें उसके लिए भाव करना है तो उस सम्यग्दर्शन के भाव के लिए भी आप उद्योतन इस रूप में कर सकते हो। फिर होता है **उद्यवन**। उद्यवन का मतलब होता है जो हमारे अन्दर है उससे एकमेक होना। अपने उपयोग को बार बार उसमें लगाना। मेरे अन्दर जो सम्यग्दर्शन की परणति, निःशंकित आदि भावों का भाव, अनेक प्रकार के गुणों की **परणति** जो हो रही है उस **परणति** में अपने उपयोग को लगाना। सम्यग्दर्शन की **परणति** में, सम्यग्ज्ञान की **परणति** में। इसका नाम कहलाता है उद्यवन। होता है 'णिव्वहणं' **निर्वहन**। अगर आपके ऊपर कभी कोई कष्ट आ जाये, कोई प्रतिकूलता आ

उद्योतन, उद्यवन, निर्वहन, साधन और निस्तारण धर्म आराधना की सीढ़ियाँ हैं।

जाये तो इसका फिर निर्वाह करना, उन गुणों को छोड़ नहीं देना। मान लो आपके लिए और कुछ नहीं है आप केवल जिन भगवान के भक्त हैं, जैन हैं, जिन धर्म को धारण करने वाले हैं तो आप उसकी भी भावना करके आप उद्योतन, उद्यवन, और निर्वहन सभी कर सकते हैं, कैसे? अगर हम जैन है तो हमें जैन होने के लिए क्या करना है? हमें रोजाना भगवान के दर्शन करना, पूजन करना रात्रि भोजन नहीं करना, अभक्ष्य भक्षण नहीं करना, यह मन में विचार अपने अन्दर आयेगा तो यह कहलाएगा उद्योतन। फिर उद्यवन में यह होगा कि आपके मन की **परणति** आपके अन्दर स्वयं आपके उपयोग में लग रही है और अपने आप में ही कह रहे हो कि हाँ देखो आज मैंने यह नहीं किया। आज मुझे लग रहा है कि आज मैंने बहुत अच्छे तरीके से जैन बनकर जैनधर्म का पालन किया। एक गृहस्थ श्रावक भी जब यह अंतरंग में सोचेगा तो उसकी भी यह जैनधर्म की आराधना कहलाएगी। फिर जब कभी आपके ऊपर कष्ट आ जाये, प्रतिकूलता आये तो अपने जैनत्व को नहीं छोड़ना यह कहलाएगा निर्वहन। अभी सम्यग्दर्शन तक आप नहीं पहुँच पा रहे हैं तो आप कम से कम जैन धर्म के आचरण का तो निर्वाह करो। परेशानी आ जाये तो किसी भी परेशानी में न तो भगवान की आराधना छोड़कर के कुदेवों की आराधना करना, कोई भी रात्री भोजन या अभक्ष्य भोजन नहीं करना। यह उस समय पर निर्वाह करना जिस समय पर आपके अन्दर प्रतिकूलता का वातावरण चल रहा हो तो यह कहलाएगा निर्वहन। यह भी आपकी एक आराधना कहलाएगी कि जैनत्व की आराधना करना और निर्वहन के बाद में साधन होते हैं।

साधन मतलब जिन साधनों से हमारा धर्म चलता रहे, उन साधनों को बनाए रखना। हमारे धर्म में कमी न आये, उन साधनों को हमेशा तैयार रखना। आपको रात्रि में भोजन करना न पड़ जाये पहले से तैयार रहो कि हमें कहा जाना है और वहाँ हमारे लिए क्या व्यवस्था है, यह आपका साधन हो गया। मंदिर जाना है, पूजन करना है, उसके लिए हमें क्या साधन चाहिए उन साधनों को आप तैयार रखो। यह आपका साधन हो गया। ऐसा करते करते जब आपका जीवन व्यतीत होगा तो आपका धर्म परलोक में भी आपके साथ जायेगा, आपकी आत्मा के साथ जायेगा तो वह कहलाएगा '**निस्तारण** हो गया' मतलब आप उस धर्म को दूसरे भव में भी लेकर के चले जायेंगे। इस तरह हम चलेंगे तो यह कहलाएगी धर्म की आराधना। जब हम इस प्रकार से चलेंगे जैसे केवल घर गृहस्थी के कार्यों में लगे रहना, गुस्सा करना, दूसरों को पीड़ा देना और अपने गुणों की तरफ, अपने धर्म की तरफ कोई ध्यान नहीं देना तो वह कहलाएगी विराधना। तो आप यह ध्यान में रखें कि हमें विराधक बनना है कि आराधक। अगर विराधक हो तो यह भी ध्यान रखना कि हमें उस विराधना से उत्पन्न हुए कष्ट को पुनः भोगने के लिए तैयार रहना हैं और आराधना चलती रहेगी तो कोई कष्ट नहीं आयेगा। इसलिए आराधना में सुख है और विराधना में दुख है। विराधना करने वाला हमेशा दुख की प्राप्ति करेगा और उसके अन्दर किसी भी प्रकार का स्वभाव पड़ा रहेगा तो

वह उस स्वभाव के कारण उसका बदला कभी ना कभी ले लेगा। धर्म की आराधना करने के लिए जब लोग तैयार हो जाते हैं तो भी उनके विपरीत चलने वाले लोग अपने स्वभाव को नहीं छोड़ते हैं तो वे आराधक की विराधना करने लग जाते हैं।

मान लो एक मुनिराज हैं दीक्षा लेकर तप करने के लिए बैठ गये लेकिन उन्होंने अपने घर पर किसी को बताया नहीं कि उन्होंने दीक्षा ले ली है। घर के लोग नाराज हो गये, उसका बदला लेने के लिए अब उन्हें यह दिखाई नहीं देगा कि यह मुनिराज हैं। क्रोध में हमें सत्य स्वरूप दिखाई नहीं देता है, वास्तविक व्यक्ति दिखाई नहीं देता है और जिस समय क्रोध आता है उस समय हमें केवल वह अपना शत्रु ही दिखाई देता है। चाहे वो अपने कितना ही निकट का व्यक्ति हो पर हम उसे भीतर से देखेंगे तो शत्रु की नजर से ही देखेंगे, चाहे वो पास में ही रहने वाला हो, चाहे वो अपना ही बेटा हो, भाई हो। लेकिन क्रोध के साथ आपका व्यवहार होगा तो आप समझ के चलना कि आप उसे अपना शत्रु मान रहे हो। एक उदाहरण है–एक राजकुमार मुनि हुए थे भगवान नेमिनाथ के समय में। सुनते हैं कि उनका विवाह होने वाला था। अब राजकुमार, भगवान नेमिनाथ के समवसरण में गए और वहाँ जाकर भगवान का दिव्य उपदेश सुना। तीर्थंकर भगवान के समवसरण में पहुँचा कोई भव्य जीव हो तो उसके अन्दर तो उसी समय भावना बन जाती है। इतने बड़े तीर्थंकर केवलज्ञानी को देखकर बाद में क्या सोचना रह जाता है? दिव्य उपदेश सुनने के बाद भी हम कोई मूढ़ता करे तो हम से बड़ा मूर्ख कौन होगा? ऐसा सोचकर वह बीच में ही जंगल के रास्ते की ओर मुड़ गया और वहाँ पर उसने एक मुनिराज से दीक्षा ले ली। और वे वहीं जाकर जंगल में तपस्या करने बैठ गये। किसी की कोई विराधना नहीं करनी, अब आत्मा की आराधना करना है। सब उस रैन बसेरे की तरह है जो पक्षियों की तरह आ जाते हैं, मिल जाते हैं, चले जाते हैं और हम राग-द्वेष करके अपना संसार बढ़ा लेते हैं। ऐसा सोचकर वे गजकुमार मुनि रास्ता बदल कर बैठ गये। अब पता पड़ा उस लड़की के पिता को, जिस लड़की से गजकुमार का विवाह तय हुआ था। अब उस लडकी का पिता कहता है यह इसने क्या किया? पहले ऐसा होता था कि जिसका एक बार विवाह तय हो गया तो समझ लो कि उसका विवाह हो ही गया। इतनी पवित्र भावनाएँ होती थीं पहले। अब उसने उसको अपना पति मान लिया तो समझ लो कि अगर वह पति न भी हो पाया तो वह स्त्री कहेगी मैं अब किसी और से विवाह नहीं करूँगी क्योंकि मैंने अपना पति स्वीकार कर लिया है और जब ऐसी स्थिति बन रही हो तो अब मेरी बेटी जिन्दगी भर कुँवारी कैसे रहेगी। जो पति होने वाला था वो तो दीक्षा लेकर के बैठ गया और मेरी बेटी को बिना कारण विधवा कर दिया। उसके पिता के अन्दर इतना क्रोध आ गया तो वह गया गुस्से में और जहाँ पर वो मुनिराज के रूप में राजकुमार बैठे थे, वहीं जाकर उसको गालियाँ सुनाना शुरू कर दिया, अपशब्द बोलना शुरू कर दिया और जब उन्हें गालियों से कोई फर्क ना पड़ा तो उस पिता के अन्दर एक और क्रोध

क्रोध के कारण निकटस्थ व्यक्ति भी प्रबल शत्रु जान पड़ता है।

का भाव उत्पन्न हो गया और उसके अन्दर पीड़ा यहाँ तक बढ़ गयी कि देखो इसने मुझे दुःख दिया है तो मैं भी इसे दुःख दूँगा। यह रिश्ते-नाते ऐसे ही होते हैं सब। '**स्व स्व कार्य वशाद्यान्ति, देशे दिक्षु प्रगे प्रगे**'। जब अपना कार्य किसी से सध रहा हो तब तक वो अपना जँवाई, अपना राजा, अपना भाई, अपना कुँवर सा, अपना मित्र सब कुछ है और जिस दिन अपना काम सधना बन्द हो गया, वो अपने काम में नहीं आ रहा है उसी दिन से बिल्कुल व्यर्थ हो गया, बिल्कुल बेकार हो गया। यह लगने लगा कि यह अपना बिगाड़ कर रहा है तो वह आपका उसी समय पर शत्रु बन जायेगा।

इसलिये आचार्य कहते हैं '**स्व स्व कार्य वशात्**' यह सब जितने भी आपको मित्र मिले हैं, भाई-बन्धु मिले हैं सब अपने-अपने काम से लगे हैं। जब तक जिसका अपना-अपना काम सध रहा है तब तक सब अपने-अपने काम को साध रहे हैं और आपको वैसा मान रहे हैं। एक होने वाले जँवाई के ऊपर भी इतना गुस्सा एक पिता का और वह इस गुस्से में भूल गया कि यह भी कोमल सा राजकुमार है। कहते हैं कि उसकी आयु उस समय मात्र 16 वर्ष की थी और वह उस 16 वर्ष की कोमल आयु में बैठकर के वहाँ तपस्या करने लगा, वहाँ अन्तर ध्यान में लीन हो गया कि मुझे भी अब केवलज्ञान की प्राप्ति करनी है। भगवान ने कहा है सब आर्त-रौद्र ध्यान छोड़कर धर्म और शुक्लध्यान की परिणति अगर एक अन्तर्मुहूर्त के लिए उत्पन्न हो जाये तो केवल ज्ञान की प्राप्ति हो जाये। सुन लिया और विश्वास कर लिया और वो बैठ गये ध्यान करने के लिए। ऐसे आत्म ध्यान में लीन हुए कि उनके होने वाले ससुर ने उनके सिर के ऊपर एक सिगड़ी बना दी और मिट्टी के चारों और एक लेप किया और फिर उसमें आग लगा दी। आग लगा दी तो वह आग में सिर भी जलने लगा लेकिन वो राजकुमार मुनि के लिए कोई भी विचलन नहीं हुआ और वो समझते रहे। ''**वपुर्गृहम् धनं दारा, पुत्रा मित्राणि शत्रवः सर्वथान्यस्वभावानि**'' यह सब अन्य स्वभाव वाले हैं। मेरा स्वभाव तो कभी इस अग्नि में जलने वाला नहीं है। शरीर है वो आत्मा नहीं और वो जल रहा है तो आत्मा उसके कष्ट को सहन करके निर्जरा ही कर रहा है कर्मों की। यह जो दुःख हमें दे रहा है और अगर हम इसके ऊपर क्रोध करेंगे गुस्सा करेंगे तो हमारे लिए तो संसार बढ़ जायेगा इसलिए जो आज हमको देखने में मिल रहा है या हमारे ऊपर हो रहा है इसमें किसी भी प्रकार का कोप करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि यह भी हमारे ही द्वारा किया हुआ कृत्य है। यह भी हमारे द्वारा किया हुआ भाव है जो आज लौटकर के हमारे लिए आ रहा है और कोई भी कृत्य जो हमारे सामने हो रहा है वो कभी भी हमारे भाव के अलावा हो नहीं सकता। अगर हमने कभी किसी का अहित न किया तो कोई हमारा अहित नहीं करेगा। हो सकता है आपने उस जन्म में उसका कोई अहित नहीं किया लेकिन पिछले जन्म का भी आपके अन्दर कोई भाव पड़ा होगा तो आप उसका अहित करने पहुँच जाओगे। यह बात जो समझने लग जायेगा तो वो साधू बनने लग जायेगा। इसलिए कोई साधू किसी के लिए अहित करने वाला भी हो तो वह उसके बारे में यह नहीं सोचते

हैं कि यह हमारा अहित कर रहा है। वस्तुतः हमने कभी इसका अहित किया होगा तो आज यह उसका कर्ज उतार रहा है यह सोचकर सब कुछ सहन कर लिया। राजकुमार मुनि के ऊपर सिगड़ी जला दी। उनका शरीर जल गया और जलने के बाद भी वह विचलित नहीं हुए अपने ध्यान से। कुछ ग्रन्थकारों ने लिखा है कि वो सर्वार्थ सिद्धि में चले गये और उनका सर्वार्थसिद्धि में जाना बताता है कि उनके अन्दर शुक्ल ध्यान की परिणति आ गयी और शुक्लध्यान की परिणति से उनको सर्वार्थसिद्धि जैसा उत्कृष्ट विमान, जहाँ से एक भव के बाद में नियम से मोक्ष कि प्राप्ति होती है ऐसी उनकी परिणति बन गई। **''विराधकः कथं हन्त्रे जनायः परिकुप्यते''** इन दृष्टांतों से यह समझना चाहिये कि जब भी कोई अपने ऊपर क्रोध करे तो आप उसके ऊपर गुस्सा नहीं करना। अब यह समझ लेना कि यह हमारा पहले का किया हुआ गुस्सा है जो आज हमारे सामने आ रहा है। अब इसको निकल जाने दो। अगर तुमने उसे निकलने से पहले फिर रोक दिया तो वह पुनः उतना ही गुस्सा आपके लिए तैयार हो जायेगा। और जब तक वह गुस्सा पूरा नहीं निकलेगा जब तक आपको शान्ति नहीं आयेगी।

आचार्य महाराज कहते हैं कि गुस्से को एक बार पूरी तरह निकलने दो। केवल एक बार यह मानसिकता बन जाये कि अब हमें इस गुस्से को सहन करना है बस एक बार का कष्ट है और जब एक बार का क्रोध निकल जायेगा तो भवों-भवों के कष्ट छूट जायेंगे। हम उस एक चीज को बचाए रखते हैं। वो पूरा निकल नहीं पाता और हम उसे रोक देते हैं। फिर वो बढ़ जाता है और बढ़ता ही जाता है। फिर आप कहोगे कि हमने तो इस जन्म में कुछ किया ही नहीं फिर यह क्या हो रहा है ? आचार्य महाराज कहते हैं कि पिछले जन्म का भी है कुछ तुम्हारे साथ में। ऐसा मत समझो कि जो कुछ मिल रहा है वह सब इस जन्म का ही है। कुछ पिछले जन्म का भी है। तुम उसको उस ज्ञान से निकाल दो। एक उदाहरण दिया है-**''त्र्यङ्गुलं पातयन् पद्भ्यां स्वयं दण्डेन पात्यते''**। खलिहार में किसान धान साफ करते समय त्र्यंगुल का प्रयोग करता है। यदि त्र्यंगुल नामक यंत्र को कोई स्वयं पैरों से जमीन पर गिराता है तो स्वयं बिना किसी की प्रेरणा के, डण्डे के द्वारा वह गिरा दिया जाता है। यदि कोई व्यक्ति क्रोध करता हुआ अपने पास आये और हम भी उस पर क्रोध करें तो यह समझना चाहिए कि मेरे क्रोध करने से उसे हानि हो या न हो लेकिन हम क्रोध करके स्वयं कर्मों का बन्ध कर लेंगे। इसी तरह से जब कोई विरोध करके अपने ऊपर विराधन करने के लिए आ जाता है,अपने को पीड़ा देने आ जाता है तो उस समय पर यह समझना चाहिये कि यह अपना ही किया हुआ है। अपने ही पैरों के द्वारा अपना ही मारा हुआ है अब यह विराधना करने के लिए आया है तो हमें इसके ऊपर क्रोध नहीं करना, कोप नहीं करना, यह यहाँ पर आपको एक शिक्षा दी गई है इसी का नाम है 'इष्टोपदेश'।

एक बार क्रोध को सहन कर लेने पर भवों-भवों के कष्ट छूट जायेंगे।

अपने में राग व पराये में द्वेष करने का प्रतिफल

11

रागद्वेषद्वयीदीर्घ नैत्राकर्षण कर्मणा
अज्ञानात्सुचिरंजीवः संसाराब्धौभ्रमत्यसौ ॥

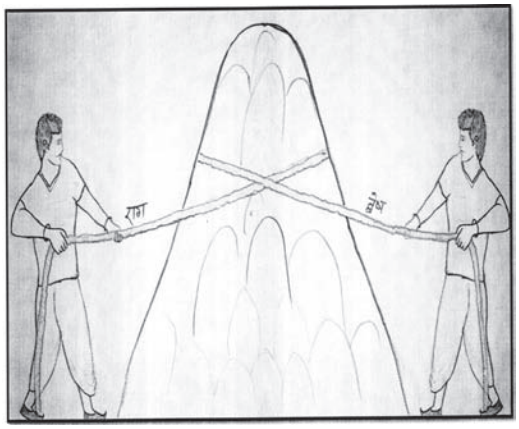

अन्वयार्थ— (**असौ**) यह (**जीवः**) संसारी प्राणी (**संसाराब्धौ**) इस संसार-समुद्र में (**अज्ञानात्सुचिरं**) अज्ञान के कारण अनादिकाल से (**रागद्वेषद्वयी-दीर्घ-नेत्राकर्षण-कर्मणा**) राग-द्वेष रूपी दो लम्बी डोरियों के खींचने रूप कार्य से अर्थात् घुमायी जाती हुई मथानी की तरह (**भ्रमति**) घूम रहा है।

☞ राग-द्वेष प्रवृत्ति

आचार्य एक बहुत अच्छी बात बताते हैं कि इस संसारी प्राणी का इस संसार में जो भ्रमण हो रहा है उसका अगर कुछ मूल कारण है तो वह है राग और द्वेष रूप में परिणमन करना **'राग-द्वेष द्वयी दीर्घ नेत्राकर्षण कर्मणा'**। यह जीव राग रूप और द्वेष रूप परिणमन करता है और यह परिणमन भी उसका इसलिए होता है क्योंकि वह संसार में स्थित है। संसार में स्थित होने के कारण से उसको राग और द्वेष होना अवश्यम्भावी है क्योंकि उसके बिना उसका संसार बनता ही नही और संसार बनने का प्रक्रम यहीं से शुरू होता है। **'आचार्य कुन्दकुन्द देव'** ने **'पंचास्तिकाय'** आदि ग्रंथों में एक बहुत अच्छी कार्य की व्यवस्था बताते हुए इस संसार के परिणमन का वर्णन किया है **'जीवो संसारत्थो'**। जो जीव संसार में स्थित है उसके अन्दर **'रागादि होदि परिणामो'**। रागादि परिणाम उत्पन्न होगा। जब वह रागादि परिणाम उत्पन्न करेगा तो आचार्य कहते हैं **'परिणमादो कम्मं'**। परिणाम से कर्म उत्पन्न होगा **''कम्मादो होदि गदि''** और उस कर्म के कारण से फिर एक गति से दूसरी गति होती है **''गदि गदस्स जीवो इंदियाणि तस्स जायंते''**। जो जीव गति को प्राप्त हो गया है तो उसे इन्द्रियाँ प्राप्त होंगी। **''ते हितो दो विषयेषु रागो तदो दोषो:''**। और उन इन्द्रियों के मिलने पर उसे फिर विषयों में राग और द्वेष उत्पन्न होगा और जब ये राग और द्वेष उत्पन्न होगा तो पुनः उसके लिए वही संसार बनना शुरू हो जायेगा। जिस राग और द्वेष को यहाँ आचार्य पूज्यपाद देव शुरू से कह रहे है उस राग और द्वेष की शुरुआत भी आचार्य कुन्दकुन्द देव पंचास्तिकाय ग्रंथ में बताते है कि यह कैसे होती है? उसकी शुरुआत का सबसे पहला कारण है कि यह जीव संसारी है और संसार में इसके अन्दर राग और द्वेष हमेशा इसके साथ में रहे है। कहीं से आये नहीं, जब से जीव है तभी से राग और द्वेष की परिणति है और उस राग और द्वेष की परिणति में परिणमन कर जाना इस जीव के लिए सहज ही हो जाता है तो वह कर्मो को बाँध लेता है। राग और द्वेष का परिणाम जीव करेगा तो उसी समय कर्म का बंध भी होगा। कर्म का बंध होगा तो उसे गति की प्राप्ति होगी, गति मिलेगी तो उसे इन्द्रियाँ मिलेंगी, इन्द्रियाँ मिलेंगीं तो उसे इन्द्रिय के विषय मिलेंगे और इन्द्रिय के विषय मिलेंगे तो उसमें वह इष्ट अनिष्ट की कल्पना करेगा और इष्ट अनिष्ट की कल्पना करेगा तो राग और द्वेष उसके अन्दर उत्पन्न होंगे और फिर वही राग और द्वेष उसके लिए पुनः कर्म बन्ध के कारण होंगे और इस तरह से यह संसार का परिणमन निरन्तर चलता रहता है। बहुत बड़ा चक्कर है और यह चक्कर इतनी तेज गति से चल रहा है कि इस चक्र के चक्कर में हर जीव पड़ा हुआ है और इस चक्र को कोई भी रोकना नहीं चाहता है, इस चक्र को हर जीव और गति देता रहता है। रोकना नहीं चाहता है, वो गति आपको आपके परिणाम से ही मिलेगी। आचार्य कहते है राग और द्वेष रूपी यह दो बड़ी-2 रस्सियाँ हैं और इन रस्सियों से हम संसार रूपी समुद्र को मंथते रहते हैं और उसके मंथन से हमें कुछ नही मिलता

जीवों का संसार में भ्रमण रागादि परिणामों के कारण कर्म बंध करने से होता है।

केवल कर्म का बंध होता है और उस कर्म के बंध से हमारे लिए संसार में सुख और दुख का परिणाम उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त इस जीव को और कोई चीज की प्राप्ति नहीं होती है वह राग और द्वेष की दोनों प्रकार की परिणतियाँ इस जीव के अन्दर एक गति पैदा करती हैं इसके लिए भीतर से force पैदा करती है और उस राग और द्वेष की परिणति जितनी भीतर ज्यादा होगी उतना ही बाहर का संसार ज्यादा बनेगा, उतना ही फँसेगा और उतना ही वह दीर्घकाल के लिए संसार बनता चला जायेगा।

राग-द्वेष प्रवृत्ति :

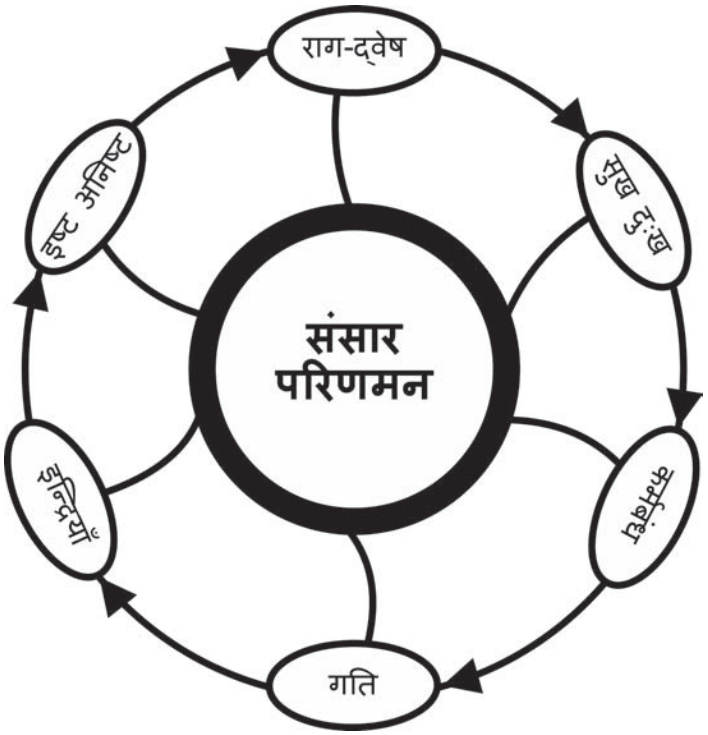

इस राग और द्वेष का नाम ही आचार्यों ने प्रवृति कहा है और यह राग और द्वेष की परिणति जब-जब आत्मा में उत्पन्न होती है तब-तब इसके लिए दीर्घ-कालीन संसार का बंध होता है। आपका परिणाम आज उत्पन्न हो रहा है और उस परिणाम में जितना ज्यादा तीव्र राग होगा आप समझ लो कि आपकी आत्मा उतने ही लम्बे समय तक के लिए बँध गई। परिणाम आपने यहाँ किया आज, अभी और इस क्षण में किया और कर्म का जो बंध हो गया वो आपको भवों-भवों के लिए हो गया। जितना तीव्र राग होगा जितना तीव्र द्वेष का परिणाम होगा उतना ही तीव्र कर्म का बंध होगा। उसका उतने ही लंबे समय तक आपको फल मिलेगा गये अनादि का संसार केवल इसी आत्मा के परिणाम के कारण चल रहा है और उस परिणाम की शुरुआत सिर्फ यहीं से होती है कि आत्मा के अन्दर राग और द्वेष की परिणति जो तीव्रता के साथ चल रही है उसमें कमी नहीं आ पाती और उसमें कमी न होने के कारण वह बढ़ती ही रहती है। आदमी से कहा जाये कि राग मत करना, द्वेष मत करना तो उसे लगेगा कि करें तो करें क्या हम? अगर आदमी यह सोचकर बैठ जाये कि मेरा किसी भी पदार्थ से राग नहीं है, द्वेष नहीं है तो आदमी बैठ ही नहीं सकेगा। आचार्य कहते हैं इस राग और द्वेष को

राग-द्वेष रूपी रस्सियों द्वारा संसार समुद्र को मथकर कर्म बंध की प्राप्ति होती है।

कम करो यहाँ तक कि अगर तुम बिल्कुल न करने की स्थिति में आ जाओ तो तुम्हारे लिए यह संसार अपने आप छूटता चला जायेगा और तुम्हारी आत्मा को मुक्ति मिलती चली जायेगी।

''मा मुज्जह मा दुस्सह मा रज्जह दिट्ठ दिट्ठ अट्ठेसु थिर विच्छय जय चितं विचिंतं जाणम् सिद्धिय।''

अगर तुझे ध्यान की सिद्धी करनी है तो किसी से राग मत कर, द्वेष मत कर और तुझे राग और द्वेष उत्पन्न हो रहे हैं तो यह तेरे इष्ट और अनिष्ट की जो तूने कल्पना कर रखी है इससे हो रहे हैं। पहले आचार्य महाराज ने इसी ग्रंथ में एक सूत्र दिया था **'मोहेन संवृत ज्ञानं'**। वहाँ मोह का वर्णन किया था तो मोह से ज्ञान ढका और ज्ञान जब ढक गया तो वह ज्ञान फिर अज्ञान बन गया क्योंकि मोह के कारण से ज्ञान ही अज्ञान हो गया और वह अज्ञान राग और द्वेष के अलावा कुछ नही करेगा। इसलिए इस सूत्र में वो कह रहे हैं कि राग और द्वेष संसार के कारण हैं और पहले कहा था मोह के कारण से यह आत्मा पर पदार्थों को शरीर, दारा, पुत्र आदि को अपना मान लेता है। उस मोह से ही ये राग और द्वेष उत्पन्न होते हैं क्योंकि मोह से ज्ञान अज्ञान बन जाता है और अज्ञान होने के कारण राग द्वेष की परिणति बनती है। इसलिए यहाँ पर इसी सूत्र में आचार्य देव कहते हैं **''अज्ञानात्सुचिरं जीवः संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ''** यह जीव अज्ञान से इस संसार में चिरकाल तक भ्रमण करता है वो अज्ञान कुछ और नही है, राग और द्वेष रूप परिणमन उत्पन्न करने का नाम ही अज्ञान है। ये राग और द्वेष उसी मोह रूपी ज्ञान के माध्यम से उत्पन्न हुआ। मोह ने हमें मोहित कर दिया। जब मन मोहित हो गया तो वह राग या द्वेष करेगा और जब ये राग और द्वेष किसी भी परिणति में पड़ जायेगा उसी समय पर यह अज्ञान के कारण से उन कर्मों को अपने अन्दर बाँधता चला जायेगा इसी से संसार बँधता हुआ चला जाता है इसलिए आचार्य कहते हैं। मा मुज्झह - मोह मत करो। मा रुस्सह - रोष मत करो। मा दुस्सह - द्वेष मत करो। किसी भी पदार्थ में द्वेष मत करो, रोष मत करो, मोह मत करो और ये कहना मानता ही नहीं है। कहीं भी बैठ जाये करना तो हो ही जाता है। अगर खाली भी बैठ जायेगा तो बैठा-2 उसी उधेड़पन में लगा रहेगा। खाली बैठ गया तो आत्मा मुक्त हो जायेगा कर्मों से। उसी आत्मा को कर्मों से मुक्त करने के लिए आचार्य कहते हैं पहले थोड़ा सा बैठ जा और बैठकर के अकर्म की स्थिति में आ जा यानि तू कोई कर्म मत कर, तू कुछ भी मोह, राग और द्वेष की क्रिया मत कर और तू जब इस तरह से बैठ जायेगा तो तू ध्यान में उतरने लग जायेगा। ध्यान इसीलिए नहीं हो पाता है कि जैसे ही हम बैठते है हमारे मन में राग, द्वेष और मोह शुरू हो जाता है। वह उछालें भरता है क्योंकि हमने अपने अन्दर उस राग और द्वेष को बना के रखा है। एकदम से हम बैठ गये तो भी आपका मन बहुत देर तक उस राग, द्वेष और मोह में लग जायेगा जैसे ही आप शांत बैठोगे आपको राग की परिणति का भाव आने लग जायेगा। मोह की परिणति होगी तो उसका भाव आने लग जाएगा। द्वेष में तो उसका भाव आने लग जायेगा।

मन मोहित होकर राग-द्वेष के द्वारा कर्मबंधन करता हुआ संसार भ्रमण में उलझ जाता है।

आप विचार करोगे कि यह मन इन तीन कार्यों के अतिरिक्त और कुछ करता ही नहीं है। बाहर से तो शांत बैठा दिखाई देगा लेकिन भीतर से जिसके प्रति राग है उसके बारे में सोचेगा, जिसके प्रति द्वेष हो रहा है उसके क्रिया कलापों के बारे में विचार करेगा, जिसके प्रति मोह हो रहा है उसकी ओर उसका ध्यान बार-बार जायेगा। उसका मन इन तीन के अतिरिक्त और कहीं टिकता नही है यहाँ भी बैठेगा तो उसे याद आयेगा मेरा घर कहाँ है, मेरी दुकान कहाँ है, किससे कितना लेना व देना है और बैठा है ध्यान में, इसको कहते है राग की परिणति। अगर किसी से गुस्सा करके आया होगा और क्षेत्र पर आकर के बैठ गया होगा चलो आज महाराज के पास जा रहा हूँ मेरा मूड़ ठीक नही है। यहाँ तो आ जायेगा लेकिन यहाँ पर भी बैठकर उसके मन में विचार वहीं का आयेगा कि उससे गुस्सा करके मैंने उससे क्या कहा, उसने मुझसे क्या कहा, यहाँ बैठकर शांति से योजना बनाएगा। यह संसारी जीव इन शांत स्थानों पर आकर भी राग और द्वेष को बढ़ाने की ही योजना बनाता है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि जो कुछ भी तेरा संसार है वह संसार कहीं बाहर नहीं है, वह संसार तेरे ही परिणाम में पड़ा है, तेरे ही राग और द्वेष, मोह के परिणाम में हैं। जैसे ही तुमने परिणमन किया वहीं पर तुझे कर्म का बंध हो गया। इस संसारी प्राणी को कभी भी जब राग उत्पन्न हो जाता है तो वह उस राग के कारण से हर परवस्तु को अपने पास में पकड़ता चला जाता है, अपने पास में उसको रखना चाहता है और हर परवस्तु पर अपना अधिकार जमा करके उससे अपने राग की पुष्टि करना चाहता है, यह इस राग का सबसे बड़ा एक दुष्परिणाम है। राग उत्पन्न हो जाये, आत्मा में उत्पन्न हो जाये और आत्मा में ही छूट जाये, बाहर कुछ ना हो तो भी बहुत कुछ आत्मा में बच सकता है लेकिन उस राग का परिणाम बाहर जरूर दिखाई देगा। आपको जिस किसी भी पदार्थ से राग होगा उसको आप पकड़ोगे, उसके ऊपर अपना स्वामित्व होगा और स्वामित्व जहाँ पर आया वहीं पर आपका राग और बढ़ने लग जायेगा। आपने कोई भी चीज देखी और देखकर अगर आपके अन्दर राग उत्पन्न हो गया तो आप चाहोगे कि यह चीज हमारे घर तक पहुँच जाये। अगर वह आपके हाथ की होगी तो आप उसे तुरन्त अपने हाथ में ले लोगे। अगर आपके बस की नही होगी तो आप उसे लेने की सोचोगे। वह चीज हमें चाहिए, अपने घर पर चाहिए, इसका मालिक मैं ही हूँ। बस यह राग का सबसे बडा दुष्परिणाम है। कोई भी अच्छी चीज, मानलो आप चले जा रहे थे रास्ते में एक फूल दिखा उसको देखकर के आपके मन में भाव आया कि कितना अच्छा फूल है ऐसा फूल तो मैने देखा ही नहीं। यहाँ तक तो ठीक था लेकिन अब परिणाम क्या हुआ कि इसको मैं अपने हाथ में लूँ और जैसे ही तुमने अपने हाथ में लेने का प्रयास किया तुम्हें उसके अस्तित्व से पूछना पड़ेगा। उसको तुम्हें तोड़ना पड़ेगा और तोड़ोगे तो उसको पीड़ा होगी लेकिन तुम्हें उसकी पीड़ा का ख्याल नहीं होगा। तुम उसको तोड़कर भी अपने हाथ में रखना चाहोगे, अपनी जेब में रखना चाहोगे लेकिन आपको यह याद नहीं रहेगा कि अगर यह फूल यहाँ

हर चीज में अपना स्वामित्व दिखाना राग का सबसे बड़ा दुष्परिणाम है।

लगा रहेगा। तो वह बहुत देर तक जिन्दा रहेगा आपके हाथ में आ गया तो बहुत जल्दी मर जायेगा। यहाँ लगा रहेगा तो कई लोगों को खुशबु देगा और आगे कहीं जाने वाले के लिए आनन्द का कारण बनेगा और अगर आपने उसे अपने हाथ में पकड़ लिया तो बहुत जल्दी मर जायेगा। अन्य लोगों के लिए खुशबू देने का कारण नहीं बन सकेगा।

क्या सुख मोक्ष में ही है, संसार में तनिक नहीं?

12

विपद्भवपदावर्ते पदिकेवातिबाह्यते ॥
यावत्तावद् भवन्त्यन्याः प्रचुराः विपदः पुरः ॥

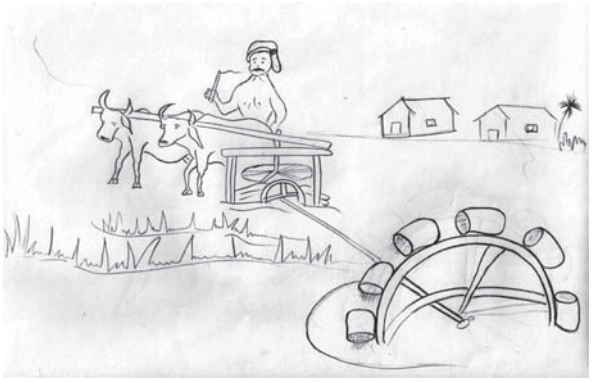

अन्वयार्थ— (**भव-पदावर्ते**) संसाररूपी पैर से चलने वाले घटीयंत्र में (**पदिका इव**) रहट के डण्डे के समान (**यावत्**) जब तक (**विपद्**) एक विपत्ति (**अतिवाह्यते**) समाप्त की जाती है (**तावत्**) तब तक (**अन्याः प्रचुराः**) दूसरी बहुत सी (**विपदः**) विपत्तियाँ (**पुरः भवन्ति**) सामने आ खड़ी हो जाती हैं।

- **विपत्तियाँ**
- **विपत्ति का मूल कारण**
- **विपत्तियों को जो जीते वो जैन है**
- **विपत्तियों को जीतने का उपाय-सम्यग्ज्ञान**

आचार्य महाराज कह रहे हैं कि राग और द्वेष यह संसार के कारण हैं। इन राग और द्वेष के कारण से ही व अज्ञान के कारण, संसार में जीव भ्रमण करता है। उनके सामने कोई शिष्य बैठा हो, किसी को वह उपदेश भी दे रहे हों यह भी सम्भव है और जिज्ञासु शिष्य ने शायद पूछा हो कि महाराज जरूरी नहीं है कि मोक्ष में ही सुख होता है। संसार में भी कुछ सुख है और संसार में अगर सुख की कल्पना हो जाये तो इसमें बुराई की क्या बात है? संसार में रहकर भी सुख तो मिल ही जाता है और उसी सुख के लिए अगर आप थोड़ा सा प्रेरित करें तो हम लोगों को ज्यादा अच्छा लगेगा। क्योंकि मोक्ष तो देखा नहीं है और मोक्ष में जाने के लिए कोई ऐसी अभी घटना हमारे सामने घटी नहीं जिससे कि हमारे अन्दर बहुत अच्छी कोई तीव्र जिज्ञासा उत्पन्न हो जाये कि हमें मोक्ष सुख की प्राप्ति हो। ऐसे किसी शिष्य ने शायद उन आचार्य महाराज के सामने प्रश्न किया और इसीलिए आचार्य महाराज ने यहाँ पर इस संसार में सुख कैसा है और इस संसार में सुख कितना सा है, इस बात का यहाँ थोड़ा सा जिक्र किया है। आचार्य कहते हैं कि संसार में सुख की बात तो तुम छोड़ दो यहाँ पर अगर कुछ है तो वह दुख ही है और सुख इसलिए नहीं है क्योंकि सुख जो मिल रहा है, जो तुम्हें सुख प्रतिभासित हो रहा है, वह तुम्हारे लिए एक थोड़े समय की अनुकूलता है। तुम्हारे शरीर की अनुकूलता, तुम्हारे स्वास्थ्य की अनुकूलता, तुम्हारे विचारों की अनुकूलता, यह सब कुछ थोड़े समय के लिए हैं। जो दूरदर्शी जीव होता है जिसके अन्दर आगे का ज्ञान रखने का भाव होता है तो वह हमेशा थोड़ी आगे की सोचकर चलता है। आप भी थोड़ी सी आगे की सोचना प्रारम्भ कर दो कि यह जो थोड़ा सा सुख हमें प्रतिभासित होता है यह सुख भी वस्तुतः दुख ही है। इसमें हमें जो थोड़ा सा चैन या आराम सा मिल रहा है इसको आप सुख ना मानें क्योंकि यह सुख जो आपको अभी मिल रहा है अगर आप इस सुख को इसी तरह से भोगते रहें तो यह आगामी समय में तुम्हारे लिए बहुत बड़े दुख का कारण बनने वाला है। आगामी समय में तुम्हारे लिए दुख की उत्पत्ति कराने वाला है इसलिए थोड़े से समय के सुख में फूलो मत और कुछ ऐसा प्रयास करो कि यह सुख जो हमें समझ में आ रहा है उस सुख में कभी भी हमें दुख का अनुभव ना हो। अगर तुम यह जानना चाहते हो कि दुख कैसा इस संसारी जीवों को मिलता है तो यहाँ पर आचार्य महाराज ने उस शिष्य को समझाते हुए कहा है–

''विपद् भवपदावर्ते, पदिकेवातिबाह्यते''

विपत्तियाँ :

इस संसारी प्राणी को पग-पग पर विपत्तियाँ मिलती हैं। समय-समय पर इसके सामने अनेक प्रकार की विपत्तियाँ आती रहती हैं और वह विपत्तियाँ ऐसे ही आती रहती हैं। जैसे कि एक अरहट यंत्र होता है जो निरन्तर कुएँ के पास चलता रहता है। उस अरहट यंत्र में नीचे का बर्तन खाली होता है और वो ऊपर जाता है। पिछले वाला फिर उसके स्थान पर आ जाता है। इसी तरह से आचार्य

दूरदर्शी जीव अपने ज्ञान को बढ़ाते हुए आगे की सोचकर चलता है।

कहते हैं कि यह हमारे सामने आने वाली विपत्तियाँ हैं। इस घटयंत्र में लगे हुए अरहट के डंडे के समान एक विपत्ति समाप्त होती है तो अनेक विपत्तियाँ आगे आ जाती हैं। अगर आपने कभी अरहट का यंत्र ना देखा हो तो साइकिल का पैडल समझ लेना, एक पैडल नीचे जाता है तो दूसरा पैडल ऊपर आ जाता है। इसी तरह से आचार्य कहते हैं कि एक विपत्ति से जब तक हम छुटकारा पाते हैं तब तक दूसरी विपत्ति हमारे सामने मुँह बनाकर के खड़ी हो जाती है और आदमी इन विपत्तियों से अपना निपटारा करने में अपना जीवन निकाल देता है। इन विपत्तियों को वह दूर करने का प्रयास करता रहता है और उस प्रयास में ही इसका पूरा का पूरा जीवन बीत जाता है लेकिन वो विपत्तियाँ कभी भी समाप्त नहीं हो पाती। विपत्तियों से कभी भी रहित नहीं हो पाता। किसी भी स्थिति में देखो तो हर समय कोई न कोई विपत्ति आपके सामने दिखाई देगी। आपके सामने कभी भी निश्चिंतता का वातावरण बन नहीं पायेगा। निश्चिंतता जब तक ना हो तब तक समझना विपत्ति हमारे सामने खड़ी है। अगर आपको अपनी विपत्ति भासित न हो तो आप आँख बंद करके बैठना और जो सबसे पहले विचार आ जाये, समझ लेना वो ही हमारी विपत्ति है। आँख खोलकर कभी-कभी आपको अपनी विपत्ति भले ही ना समझ में आये लेकिन आप कभी आँख बंद करके बैठे तब जो विचार एकदम आपके सामने आ जाये समझ लेना वो ही हमारे लिये विपत्ति है। वो विपत्ति वस्तुतः क्या है? वह विपत्ति किस कारण से है? तो उसका सम्बन्ध ऊपर वाले सूत्र से जुड़ा हुआ है 'जहाँ राग है, जहाँ द्वेष है वहीं पर विपत्ति है' इस राग और द्वेष का विपत्ति के साथ में एक सम्बन्ध है और इसी को कहते हैं अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध। राग, द्वेष मन में होगा तो विपत्ति होगी और राग, द्वेष मन में नहीं होगा तो विपत्ति नहीं होगी। कुछ विपत्तियाँ बाहर की होती है और कुछ विपत्तियाँ भीतर बनी रहती है। आपने जब कभी वैराग्य भावना पढ़ी होगी तो उसमें भी एक भावना आप पढ़ते हो शुरुआत में ही-

''मानुष जन्म अनेक विपतिमय कहीं ना सुख देखा''

यह बारह भावना में आ जाता है कि यह मनुष्य जन्म अनेक विपत्तियों को लिये हुए है। वह विपत्तियाँ कभी भी आकर के टपक जाती हैं। आप यहाँ बैठे हो और आपके पास मोबाइल में आ गया कि घर में पत्नी को पेट में दर्द होने लगा अथवा बेटा स्कूल जाने की तैयारी कर रहा था कि सीढ़ी से फिसल गया। कोई भी विपत्ति आपके सामने आ सकती है तभी आपको तुरन्त यहाँ से जाना पड़ सकता है। कई लोगों के लिए विपत्तियाँ किसी अच्छे काम को करने के लिए जा रहे हो तो भी आ जाती है, अच्छे स्थान पर बैठे हैं तो भी आ जाती है और उन विपत्तियों को आने का कोई भी पूर्वाभास उनको नहीं होता। विपत्तियों की एकदम से खबर मिलती है, आदमी हैरान हो जाता है और वह विपत्तियाँ हर किसी के सामने हमेशा आती रहती हैं। हर कोई इस चीज को अनुभव करता है। ऐसे भी लोग होते हैं जो दर्शन करने के लिए आते हैं यहाँ पर और दर्शन करने से पहले

संसारी प्राणी को पग-पग पर विपत्तियाँ मिलने से निश्चिंतता नहीं हो पाती।

रास्ते में ही उन्हें कुछ सूचना मिल जाती है तो रास्ते से लौट जाना पड़ता है। इन विपत्तियों को हम हमेशा अपने अंदर बनाये हुए हैं और उनको बनाये रखने का कुछ कारण है तो वह यही है राग और द्वेष। विपत्तियों से राग और द्वेष का कारण कार्य सम्बन्ध है जिसको कहते हैं व्याप्ति सम्बन्ध। किसका किसके साथ में सम्बन्ध है। अगर राग और द्वेष होगा तो नियम से हमारे लिए किसी ना किसी रूप में विपत्ति सामने आ जायेगी और जब आपने राग और द्वेष का परिणाम हटा दिया तो कोई भी विपत्ति आपको विपत्ति जैसी लगेगी नहीं। मनुष्य जन्म में अनेक विपत्तियाँ आती हैं और उन विपत्तियों का मूल कारण जो रहता है वह यह राग और द्वेष का परिणाम ही रहता है। जो कुछ भी हमारे सामने दिखाई देता है वह हमारे राग और द्वेष का फल ही होता है। आपके लिए घर है और उस घर में आपकी पत्नी है। वो पत्नी आपके लिए संपत्ति के रूप में भी हो सकती है और विपत्ति के रूप में भी हो सकती है। कभी-कभी ऐसा होता है कि शुरूआत में संपत्ति जैसी लगती है और बाद में यह विपत्ति जैसी लगने लग जाती है। अगर यह भी आपको अनुभव में आ जाये तो आप समझ सकते हो विपत्ति क्या कहलाती है? लेकिन कई बार ऐसा होता है। adjustment आदमी को करना पड़ता है और उस विपत्ति में भी उसे खुश रहना पड़ता है। वो विपत्ति एक तरफा हो ऐसा जरूरी नहीं है। कहीं ना कहीं जो भी जीव है उन सबके लिए भी वो विपत्ति होती है। जिसका जिससे राग है, उसका उससे विपत्ति का भाव उत्पन्न हो सकता है। कवियों ने लिख दिया–

''किस ही घर कलिहारी नारी, कै वैरी सम भाई।
किस ही के दुख बाहर दिखें, किस ही उर दुचिताई॥''

सुख से तू सो तो लेता है लेकिन यह ध्यान रख जैसे ही तेरी नींद खुलेगी तो तू दुख में अपने आप को पड़ा हुआ देखेगा। उस सुख की प्राप्ति के लिए जो तेरे अन्दर एक नींद भी आ रही है थोड़ी सी वो भी तेरे लिए धीरे-धीरे चली जाने वाली है और वो नींद भी धीरे-धीरे कम होती चली जायेगी। जैसे-जैसे तेरी वृद्धावस्था आयेगी नींद भी कम हो जायेगी। तेरे सामने अगर वृद्धावस्था के दुख आ गये तो वो दुख भी सामने रहेंगे और सोना चाहेगा तो सो भी नहीं पायेगा क्योंकि बुढ़ापे में नींद कम आती है। अभी आपको नींद जितनी आ रही है, आगे उससे कम नींद आयेगी और बुढ़ापे में रातें बड़ी लम्बी-लम्बी लगती है। शरीर में रोग हो जाते हैं तो उन रोगों के साथ ही समय गुजारना पड़ता है। उन रोगों के साथ उसके लिए जितनी बुरी स्थिति बनती है वह स्थिति अगर आप कभी देख लो तो भी आपको समझ में आ सकता है कि संसार में सुख कितना सा है। बचपन में सुख अज्ञानता का रहता है, खेलने-कूदने का रहता है। थोड़ा सा बच्चा बड़ा होता है तो उसका सुख जाने लग जाता है। वह शिक्षा की बातों में इतना उलझने लग जाता है कि उसे पता ही नहीं रहता कि जिंदगी क्या है? थोड़ी सी उसकी समझदारी और बढ़ती है तो फिर वह समझ लेता है कि सुख किसी से मिलने जुलने से मिलेगा तो वह किसी से जुड़ जाता है और फिर सुख की प्राप्ति करने

विपत्तियों का मूल कारण राग और द्वेष का परिणाम ही रहता है।

के लिए किसी के साथ रहने लग जाता है। लेकिन उसमें भी कई बार परेशान हो जाता है, धोखा खाता है, सब कुछ होता है फिर भी मन करता है कि सुख तो कहीं ना कहीं संसार में होना ही चाहिए। खोजता है और जिंदगी भर उस लाईन को नहीं खोज पाता जिस लाईन पर सुख मिल रहा होता है। **जिस लाईन पर चल रहा है। उस लाईन पर सुख है नहीं और जिस लाईन पर सुख मिलना है उस लाइन की तरफ देखता नहीं।** जिस रास्ते पर आप चल रहे हो वहाँ सुख ना के बराबर है और वह सुख है तो थोड़े समय का है लेकिन दुख लम्बे समय का है क्योंकि आपके सामने जो है वो सब विपत्तियाँ हैं।

जो पिछली चार लाइन में कवि ने लिखा है–हो सकता है आपके घर में कलिहारी नारी ना हो क्योंकि पुराने जमाने की बातें ऐसी लगती है शायद आजकल इतना कलह घर में नहीं करते होंगे। पहले के समय में ऐसा होता था कि जो थोड़ा ज्ञानी पण्डित या फिर थोड़े धर्म शास्त्र की बात जानने वाला होता था तो उसकी पत्नी कलह करने वाली होती थी। शायद यह इसलिए होता होगा कि उसकी परीक्षा लेने के लिए ही उसकी पत्नी कलिहारी होती थी और अक्सर ऐसा ही होता है। जब तक वह घर में रहेगा तब तक कलह करेगी और जब वो चला जाएगा तो उसके ही गुण गायेगी। इन कलहों के बीच में वो सोचने लग जाता है कि हमने कौनसी आफत मोल ले ली। एक बार अगर आपने सम्बन्ध बिगाड़े तो आप यह मत सोचना कि आप दूसरी जगह सफल हो जाओगे। जो सम्बन्ध बनाये हैं उन्हीं में खुश रहने का रास्ता ढूँढ़ो, उसी में अपने जीवन को गुजारने का कोई रास्ता निकालो और मन में यह भाव लाओ कि यह विपत्तियाँ हमेशा मिला करती हैं। कोई भी मनुष्य अपनी इस मनुष्य पर्याय में पूर्ण रूप से सुखी नहीं है। चलो आप यह सोच लो कि नारी कलिहारी नहीं मिली तो कोई बात नहीं है लेकिन भाई से भी वैर हो जाता है। चलो भाई भी अच्छा मिल गया। आपका पुण्य हो सकता है, यह भी हो सकता है अपकी पत्नी अच्छी हो, कलह करने वाली नहीं हो और मेरे कहने से यह मत मान लेना कि पत्नी कलह करने वाली होती है, नहीं तो और झगड़े हो जायेंगे। आपका भाई अच्छा हो लेकिन एक और जो आगे की लाईन है वो बड़ी गौर करने लायक है–

''किसी के दुख बाहर दीखें, किस ही उर दुचिताई।''

कुछ दुख तो ऐसे होते हैं जो बाहर देखने में आते हैं। जैसे-पत्नी, भाई, व्यापार से परेशानी यह तो बाहर के दुख है लेकिन कभी-कभी ऐसा भी देखने को मिलेगा कि बाहर कोई दुख नहीं है लेकिन भीतर फिर भी मन अच्छा नहीं है, मन में क्लेश बना हुआ है, मन में तड़फन सी है, शांति नहीं है, अभाव सा है, विकलता सी है कि मन कभी खुश नहीं रह पाता। जिनके घर, पत्नी, बच्चे सब अच्छे हों। सब कुछ अच्छे होने के बाद भी आदमी के मन के अन्दर एक विकलता बनी रहती है और उसके कारण से वह कहीं ना कहीं परेशान रहता है और उस परेशानी का कारण वह स्वयं

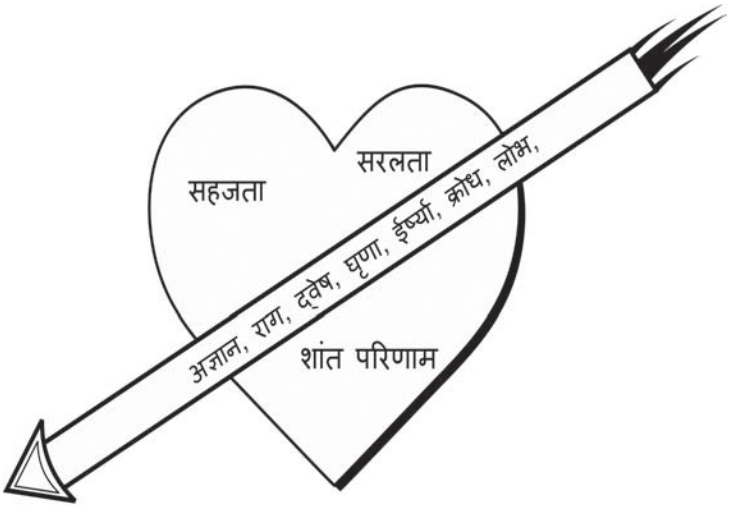

अंतरंग पुरुषार्थ

नहीं जान पाता तो आचार्य कहते हैं कि तेरी परेशानी का कारण और कुछ नहीं है। तुझे यह मालूम नहीं है कि इन परेशानियों का समाधान कहाँ है? यह परेशानी किस कारण से तेरे अन्दर आ रहीं हैं। जब कभी भी ऐसी परेशानी उत्पन्न होती है तो राग और द्वेष उसके मूल कारण होते हैं अगर तुम अपने परिणाम में किसी के प्रति द्वेष भाव मत लाओ और किसी के प्रति राग भाव मत लाओ तो तुम्हारे परिणाम में उस समय कोई चिंता नहीं रहेगी, कोई क्लेश नहीं रहेगा और तुम्हारे परिणाम उस समय बिल्कुल शांत और सहज होंगे। उन परिणामों को प्राप्त करने के लिए ही हमें पुरुषार्थ करना चाहिए। इसे **अन्तरंग पुरुषार्थ** कहते हैं। इस अन्तरंग पुरुषार्थ को अगर हम करने लग जायें तो बाहर की किसी भी प्रकार की परेशानी हमें परेशानी नहीं लगेगी। जब कभी तुम्हारे शरीर में रोग हो गया तो तुम उस रोग से दुखी भी हो सकते हो और उस रोग से कुछ शिक्षा भी ले सकते हो। ज्ञानियों, तपस्वियों को शरीर से विरक्ति उत्पन्न होती है वो उस शरीर के स्वभाव को समझने लग जाते हैं और उससे इतना परेशान नहीं होते हैं। लेकिन जब किसी व्यक्ति को जिसे ज्ञान नहीं है, मोही, रागी जीव है, जब उसका शरीर कष्ट में होता है तो उससे परेशानी होने लग जाती है और इतनी तक होती है कि वह हमेशा दुखी बना रहे। मन में कभी विकलता होती है तो उससे परेशान भी हो सकते हो और समाधान भी निकाल सकते हो।

विपत्ति केवल हमारे पास नहीं है। अभी आप एक बहिन को सुन रहे थे। उसकी दृष्टि धीरे-धीरे कम होती गई और अभी देखा जाए तो दृष्टि बिल्कुल ना के बराबर है लेकिन फिर भी मन में एक भाव है कि हमें इस पर्याय को सार्थक कर लेना है। दृष्टियाँ कई लोगों की खराब होती हैं लेकिन भीतर की दृष्टि जग जाये यह बहुत कम लोगों के साथ होता है। मैंने तो उदयपुर में ही देखा था कि एक आश्रम में ऐसे ही कई लोग, बच्चे थे लेकिन उनके मन में ऐसी परिणति नहीं आ सकती कि हम यह समझ लें यह संसार का स्वरूप कैसा है? आपके घरों में भी होते हैं ऐसे बच्चे लेकिन ज्ञान हर किसी के मन में नहीं आ पाता। आत्मज्ञान अगर यह हमारे अन्दर आने लग जाए तो बाहर

राग-द्वेष रहित सहज और शांत परिणामों को प्राप्त करना अंतरंग पुरुषार्थ है।

की कोई भी विकलता का हमें दुख नहीं होगा। उससे भी हमें सुख मिल सकता है। आप जब भी कभी परेशान होते हो दूसरों को देखने से ही होते हो, देखना पड़ता है क्योंकि हमारे पास में आँखें हैं और आँखें होते हुए भी हम आँखें बन्द करके देख पायें यह हमारे लिए संभव नहीं होता। अगर आप कल्पना करो कि हमारी आँखें न हो और हम इस तरह दुनियाँ को देखें तो हमारा बहुत सारा राग-द्वेष कम हो जाये। सबसे बड़ी चीजें जो हमारे अन्दर आती हैं वह राग और द्वेष की परिणति को उत्पन्न करने से आती है। इन्द्रियाँ जब विषय वासना के लिए दौड़ती है तो हमारे लिए उसी से राग और द्वेष की उत्पत्ति होती है। इसका मतलब यह है कि जिनको भी इन्द्रियाँ मिली है वह भी जब अपनी इन्द्रियों का सदुपयोग करने लग जाते हैं तब उन्हें समझ में आने लग जाता है कि इन्द्रियाँ राग और द्वेष का कारण बन जाती हैं। इसलिए आप देखोगे संत पुरुषों को कि वह देखते हुए भी नहीं देखते हैं और सुनते हुए भी नहीं सुनते हैं। ऐसी वृत्ति अपनानी पड़ती है तभी सुख मिलेगा। अगर आपके पास आँख है और उस राग की चीज को देखकर आप आँख बंद कर लोगे तो आपको राग नहीं होगा और आँखों से देखोगे तो आपको उस चीज से राग होने लग जाएगा। अगर आपके शरीर में कोई विकलता है तो आप उसको लाभ की दृष्टि से भी देख सकते हो। अगर आपके अन्दर ज्ञान है कि यह तो शरीर का स्वभाव है, नहीं तो कौन इस शरीर को पाकर के इतनी तपस्या करता है, अपना उपयोग ज्ञान में लगाता है। कौन इस शरीर को पाकर अगर शरीर में कोई हानि भी हो जाये तो भी वह शास्त्र पढ़े, जिनवाणी पढ़े? हमने ऐसे बहुत से बच्चे देखे हैं जिनके शरीर में ऐसी बहुत सी विकलताएँ हैं कि वो ढंग से बैठ नहीं पाते लेकिन उनकी बुद्धि अच्छी चलती है। देख अच्छा रहे हैं, बोल अच्छा रहे हैं लेकिन अपने पाँव से चल नहीं पा रहे हैं। इतनी सी कमी है लेकिन फिर भी जिनवाणी पढ़ने का मन हो यह जरूरी नहीं है और नहीं होता है। अपने शरीर की ऐसी स्थिति देखने के बाद भी जिनवाणी पढ़ने का मन नहीं होता, ऐसी स्थिति देखने बाद भी उस शरीर से वैराग्य नहीं होता। उस शरीर की दशा को देखकर संसार की दशा का ज्ञान नहीं होता है। यह सब परिणतियाँ जो भीतर से आती हैं इनके लिए भी आचार्य कहते हैं अगर आपके अन्दर कोई अच्छी भवितव्यता उत्पन्न हो रही है तो ही आप का मन इस जिनवाणी को पढ़ने में, सुनने में लगेगा, नहीं तो बहुत सारे लोग ऐसे होते हैं जो चल, फिर नहीं पाते फिर भी उनका जिनवाणी पढ़ने में मन नहीं लगता। अगर जिनवाणी पढ़ने में मन लगने लग जाये तो समझ लेना हमारे संसार का अंत अब निकट है। यह संसार के अंत की निकटता की सबसे बड़ी पहचान है कि जिनवाणी सुनने में हमें आनन्द आने लग जाये। जो बातें हमने अनन्त काल में कभी नहीं सुनी वो हमें इस जिनवाणी से सुनने समझने में आ सकती हैं।

विपत्तियाँ किसके नहीं होतीं? अगर आप अपने मन को समझायें, एक इन्द्रिय जीवों से लेकर पंचेन्द्रिय जीवों की तरफ एक दृष्टि डालें तो आप को पता पड़ेगा कि कौन सा जीव विपत्तियों से

जिनवाणी पढ़ने व सुनने में मन लगने का अर्थ है संसार का अंत निकट होना।

अपने आप को बचा सकता है। एक इन्द्रिय जीव अपने आपको कैसे विपत्ति से बचायेगा? उस जीव के अन्दर तो निरन्तर पराश्रिता ही रहती है। पानी, हवा, वनस्पति, अग्नि इन सब में भी जीव भरे हैं। चलो! आपके ज्ञान में नहीं आते कोई बात नहीं लेकिन आप दो, चार इन्द्रिय जीवों को देखें, मक्खी, मच्छर यह सब जीव हैं और यह सब भी कहीं ना कहीं, किन्हीं ना किन्हीं घटनाओं में मरते रहते हैं, उनका अन्त होता रहता है। किसी से दब जाते हैं, कुचल जाते हैं, न जाने कितनी विपत्तियाँ उनके अन्दर आती हैं और वो अपना पूरा जीवन भी जी नहीं पाते। विपत्तियों से रहित संसार में कौन है? अगर आप इस मनुष्य जीवन में देख रहे हो तो आपको दूसरों की विपत्तियाँ को देखकर के भी सीख मिल सकती है। विपत्तियाँ सब जगह दिखाई दे रही हैं। यह विपत्तियाँ हमारे ऊपर भी आ सकती हैं। अगर आप अपने मन को घबड़ाने से बचा लें तो आपके लिए वह विपत्ति भी संपत्ति बन सकती है। मन को ही आपको यह समझाना पड़ेगा कि कोई भी विपत्ति हो वो विपत्ति केवल हमारे ऊपर नहीं है दुनियाँ में हमसे भी ज्यादा गये बीते बहुत है जो हमारी विपत्तियों से भी ज्यादा विपत्तियों में पड़े हैं। ऐसे भी लोग हैं जिनके पास में उनका अपना घर भी नहीं है, झोपड़ पट्टियों में अपना पूरा जीवन गुजार देते हैं, प्लेटफार्म पर अपना जीवन गुजार देते हैं, आपके पास तो अच्छा खासा घर है लेकिन आपके लिए यह विपत्ति लग रही है कि इस घर को हटाकर हमें इससे भी अच्छा नया घर बनाना है। अब यह विपत्ति आपके ऊपर थी नहीं आप उस विपत्ति को जबरदस्ती मोल ले रहे हो और अगर आपका इस घर से काम चल रहा है तो आपके मन में यह विचार आ जाना चाहिए कि हमारे लिए यह घर है, अच्छा है, अब हम इसे छोड़कर कोई दूसरा बनायें, उसके लिए और नई योजनाएँ तैयार करें, इतना समय हम जिसमें खराब करेंगे उतने समय में अगर हम कुछ ऐसा कर लें कि जो हमारे साथ हमेशा रहने वाला हो। वह घर आप कितना भी अच्छा बना लें कहीं पर भी बना लें लेकिन वह घर आपकी उपलब्धि नहीं होगी। वह भी आपसे छूट जाऐगा और आप उसको छोड़कर जायेंगे। आप जितना समय इन चीजों को बनाने में लगाएँगे अगर उतने से एक दसवाँ हिस्सा समय भी आप इस बात को सोचने में लगा दें कि इन सबको करने के बाद भी क्या होगा? बस इतना सा अपने मन में एक प्रश्न पैदा कर लें।

विपत्ति का मूल कारण :

मान लो हमें यह लग रहा है कि हमारी विपत्ति है– घर में बच्चा नहीं है या दुकान अच्छी नहीं चल रही है। बच्चा होने के बाद में क्या आप विपत्ति से रहित हो जाओगे अथवा आपकी दुकान चल गई तो फिर क्या करोगे बताओ? आपके लिए वह समाधान तब तक नहीं मिलेगा जब तक कि आपको यह नहीं मालूम कि यह विपत्तियाँ हैं भी या नहीं। अगर आप ज्ञान से देखने लग जायें कि वस्तुतः हम जिसे विपत्ति मान रहे हैं वो विपत्ति जैसी कोई चीज है ही नहीं। वो केवल हमारी मानसिकता है कि हम मान रहे हैं कि यह विपत्ति है और वो तब तक मान रहे हैं जब तक कि वह

चीज हमारे साथ घटित नहीं हो रही है। हमारे साथ नहीं घटित हो रही है और सामने वाले के साथ घटित हो गई तो विपत्ति हो गई आपके लिए। हम फेल हो गए और सामने वाला पास हो गया तो अपने लिए विपत्ति हो गई। अगर उस विपत्ति में भी अपने आपको संभालोगे तो वह विपत्ति चली जाएगी और अपने आपको परेशान करोगे तो वह विपत्ति और बढ़ती चली जाएगी क्योंकि यह विपत्ति का स्वभाव है। जितने ज्यादा आप दूसरी परिस्थितियों से परेशान होंगे उतनी ही ज्यादा आपके सामने वह परिस्थितियाँ बिगड़ती चली जाएँगी। जितना ज्यादा आप अपने मन को शांत रखेंगे उस विपत्ति को देखने का प्रयास करेंगे वो विपत्ति आपके सामने से हवा की तरह गुजरती चली जायेगी और आप उसमें सुरक्षित रह जायेंगे। आपके सामने फिर संपत्ति आने लग जाएगी क्योंकि **संपत्ति और विपत्ति का मूल कारण है मन के अंदर साता और असाता कर्म का उदय।** आत्मा के अंदर साता और असाता कर्म का फल मिलना। जिस समय पर असाता वेदनीय का उदय चल रहा है आपके सामने विपत्ति आ रही है। उस समय पर आप अगर अपने अन्दर साता का बन्ध करने लग जायेंगे, शांत परिणामों से अपने अंदर शुभ भाव करने लग जायेंगे तो वह असाता आपके सामने से चला जाएगा। थोड़ा सा मन को समझाना सीखें और इस ढंग से समझाना सीखें कि कोई भी विपत्ति हमेशा एक जैसी न किसी के ऊपर रही है और न रहेगी। कहते हैं कि अच्छे दिन सबके आते हैं। हम तो जब घर पर थे तब एक कहावत सुना करते थे कि **''घूरे के भी दिन बदल जाते हैं''** घूरा मतलब जहाँ पर कचरा बगैहरा फैंका जाता है। यह जरूरी नहीं है कि वहाँ पर हमेशा कूड़ा-कचरा ही पड़ा रहे। आप उन घूरों से गये बीते नहीं हो। आपका जन्म भी अगर जैन कुल में हुआ है तो आपको इतना भाव रखना है कि यह बहुत पुण्य के उदय से ही जन्म मिला है और अगर इस जन्म के अनुसार थोड़ा सा चलोगे, अपने कुल के अनुसार चलोगे, अपने भाव अच्छे बनाकर रखोगे, देव, शास्त्र, गुरु के प्रति भक्ति बनाकर रखोगे तो आपके वह दुख भी धीरे-धीरे जो कुछ भी आपको दुख जैसे लग रहे हैं वो सब अपने आप चले जाएँगे। घूरे के दिन भी बदल जाते हैं आपके भी बदल जायेंगे अगर आप विश्वास रखोगे तो? अगर आपके मन में अभी परेशानी आ गई और आप उस परेशानी में ही पड़ते चले गए तो वह दिन बदलने वाले होंगे तो भी नहीं बदल पायेंगे क्योंकि कभी-कभी अपने पुरुषार्थ से ज्यादा गडबड़ी हो जाती है। **जब हम थोड़ा सा अपने मन को शांत करके अपने मन के अन्दर समाधान प्राप्त करते हैं तब हमें समस्या का सही समाधान मिलता है** तभी हम विपत्ति से उभर पाते हैं, इसलिए ही आचार्यों ने कहा है **''विपत्ति के समय धैर्य धारण करो।''** जो विपत्ति के समय धैर्य धारण करता है वही शांति का सही ढंग से अनुभव कर सकता है। आपके पास में जो कुछ है उसका आपको सुख नहीं है। जब तक आपको अपनी निजता का ज्ञान नहीं होगा, आपके अन्दर self existence का भाव नहीं होगा, तब आप उस विपत्ति से कभी भी अपने आप को बचा नहीं पाओगे। बाहर देखोगे, किसी दूसरे व्यक्ति को देखोगे तो आपके सामने

विपत्ति आ जाएगी। अपनी आँखों से दूसरों को देखने पर आँखे ही आपके अन्दर विपत्ति पैदा कर देंगी। यह तो बहुत अच्छा मकान है इसका, यह तो बहुत अच्छी कार है इसके पास में। विपत्तियाँ इन आँखों से शुरू हुई इन आँखों को बंद कर लो उस समय। आपके अन्दर इतना भेदज्ञान होना चाहिए कि देखो! यह विचार जो आ रहा है वह हमें परेशान करने वाला हो सकता है। जैसे ही वो परेशान करने वाला विचार आये आप अपनी आँखे बंद कर लो। अगर कार ही देखनी पड़े तो अपने घर के सामने खड़ी हुई कार मत देखो चौराहे पर आ जाओ और चौराहे पर आकर के देखो बहुत सारी कारें निकलती हुई मिलेंगी। आप चौराहे पर खड़े होकर सौ कार भी देख लोगे अपने सामने से तो भी आपको राग-द्वेष नहीं होगा। घर के सामने जो कार खड़ी रहेगी वो आपकी आँख में हमेशा खटकेगी। यह तब ज्यादा खटकती है जब हम एक व्यक्ति को सामने देखते हैं और बहुतों को देख लें तो कभी नहीं खटकती है। आप वह कार देख कर सोचोगे कि हमारे घर के सामने तो हमारी कार खड़ी होनी चाहिए, ऐसी कार हमारे पास भी हो तो आपको उससे परेशानी, दुख उत्पन्न होगा। आपके अन्दर थोड़ा सा अभ्यास होना चाहिए कि यह इन्द्रियाँ हमें दुख पैदा कराती है, इन इन्द्रियों से ही विपत्ति है। हम जानते हैं फिर भी हम विपत्ति को जबरदस्ती अपने अंदर ले लेते हैं। आँखों से देखने पर आपके अंदर विचार उत्पन्न होगा और विचार होगा तो हमें दुख होगा। अब आप विचार करो कि आँखें ना होना ही अच्छा है। लेकिन आप विचार करोगे तब पता पड़ेगा कि वास्तव में अपनी इन्द्रियाँ ही अपने को परेशान करती हैं। बाहर की कार कभी भी हमारे भीतर समा नहीं सकती और हम उस कार में बैठ जायें तो हमें बाहर की कार दिखाई नहीं देती है। वह सुख हमें जैसा मिलना चाहिए वैसा कभी मिल ही नहीं पाता है क्योंकि हम जिस ढंग से सोचते हैं उस ढंग से हमारी इच्छा की पूर्ति हमारा मन करता ही नहीं है। वह कार पाने का सुख इतना है कि वह खड़ी है और उस कार पाने का सुख तब होगा जब अपने से उस कार के बारे में सामने से कोई आकर के पूछ लें। मैंने एक बार पढ़ा था, जापान में वहाँ पर कारों की चलाने की सीमा रहती है, टाइम लिमिट रहती है। जो कार आपने जिस कम्पनी की खरीदी है तो वो बता देगा कि तीन साल, चार साल के बाद में यह कार बेकार है। भले ही वो अच्छी हो तो भी वो कार बेकार हो जाती है। वह कार उस रोड़ पर चल ही नहीं सकती है। वहाँ पर ऐसे कारों के इतने बड़े-बड़े ढेर लगे हैं एक के एक ऊपर कार जैसे कबाड़खाने में नहीं मिलेंगे, ऐसे ढेर कारों के लगे रहते हैं ऐसे ढेर की फोटो आई थी अखबार में। मतलब कि जितना उपयोग में नहीं ले रहा है उतना दुरुपयोग कर रहा है। आदमी के अन्दर केवल एक ही परिणति रहती है कि हमारे पास जो हो वो इसके पास में न हो तो उसके मन को थोड़ा सा सुख मिलता है। यह केवल मन की परिणतियाँ हैं और कुछ नहीं है। विपत्तियाँ आपको सामने दिखती हैं पर वो विपत्तियाँ नहीं हैं।

इंद्रियाँ ही दुख पैदा कराती हैं और इंद्रियों से ही विपत्ति आती है।

विपत्तियों को जो जीते वह जैन है :

आप इतना सोच लो जिसका जैन कुल में जन्म हुआ हो उसको इतना जरूर उसके पुण्य से मिलेगा कि वह सुबह, शाम दोनों टाइम का भर पेट भोजन करे तो भी उसके लिए कोई कमी आने वाली नहीं है। ऐसा कोई जैन हो नहीं सकता है जिसकी भीख माँगने की नौबत आ जाये। अगर वह कुछ भी ना करे केवल मंदिर में जाकर ढोक देता रहे, उसके पास कुछ भी ना हो केवल एक मुट्ठी चावल चढ़ाता रहे उससे ही उसको इतना पुण्य मिलता रहेगा कि कभी उसको भीख माँगने की नौबत नहीं आएगी। अगर आप इतना भी ना कर सको तो केवल आपके मन में इतना सा आ जाये कि मैं जैन हूँ, भले ही देव दर्शन ना हो, चावल नहीं चढ़ा सको, केवल अपने में यह भाव आ जाये कि मैं कोई गलत काम नहीं करूँगा, व्यसन, मदिरा, माँस से दूर रहूँगा। अगर इतना भी भाव आ जाये तो भी कभी ऐसी परिस्थिति नहीं आयेगी कि आपको किसी के सामने हाथ फैलाना पड़े क्योंकि वह भाव एक पुण्य भाव होता है। आपके पास में यह सब कुछ तो है। खाने-पीने की, पहनने की, घर की, किसी की कमी नहीं है सब के पास इतना तो होगा ही लेकिन फिर भी कोई विपत्ति सामने दिखती है तो इस बात की दिखती है कि थोड़ा सा यह और हो जाये और वो थोड़ा-थोड़ा करते-करते पूरा होता नहीं है।

सिकन्दर था विश्व विजय करने के लिए निकला और दुनियाँ को जीतने के लिए निकला और उसने दुनियाँ पर साम्राज्य करने के लिए बड़े-बड़े देश जीत लिये। भारत आया और आते-आते उनको एक संत मिल गया। कहते कि संत केलोनस उनका नाम था। उन्होंने पूछा तुम कहाँ जा रहे हो। सिकन्दर कहता है कि मैं विश्व विजय करने जा रहा हूँ। संत ने कहा कि तेरा यह सपना कभी पूरा नहीं होगा। सिकन्दर ने कहा कि अगर सपना पूरा नहीं भी हो तो भी हमें करना तो है। उसके मन में उस संत को देखकर यह भाव आ गया कि वास्तव में जो हमें प्रसन्नता इस संत के अंदर दिखाई दे रही है वो प्रसन्नता तो हमारे अंदर आधा विश्व को जीतने के बाद भी नहीं है। वह पूछने लगा उस संत से कि आपके पास ऐसा क्या है जिससे आप जीवन जी रहे हो और हमें आपके पास में कुछ दिखाई नहीं दे रहा है। तब उस संत केलोनस ने सिकन्दर को बताया कि हमारा पास में जो है वो हमसे कभी छूटने वाला नहीं है और तू जिसको प्राप्त करने के लिए अपना जीवन बर्बाद कर रहा है वह तुझे कभी मिलने वाला नहीं है। तू जिस सपने को संजो रहा है, जिस योजना को बना रहा है वो योजना तेरी कभी पूरी होनी नहीं है और पूरी हो भी जाएगी तो तुझे कभी सन्तुष्टि मिलेगी नहीं और ऐसा ही हुआ। उसके मन में विचार आया कि मैं अभी तो जहाँ मुझे युद्ध करने के लिए जाना है, अभी तो आगे की योजना बनाकर के जा रहा हूँ, अभी तो जा रहा हूँ लेकिन आपके पास मैं दुबारा आऊँगा जरूर और पूछूँगा कि आपके पास में ऐसी क्या चीज है जिससे आप इतना

संत केलोनस की फकीरी में भी प्रसन्नता देखकर विश्व विजेता सिकंदर हैरान था।

खुश रहते हो, आपके चेहरे पर इतनी प्रसन्नता रहती है। यह मैं बाद में आकर के सीखूँगा। वह संत उससे कह रहा था कि अभी सीख ले बाद में क्या होगा पता नहीं लेकिन नहीं माना और चला गया। भारत जा रहा था तो भारत से पराजित होकर आया और वो वहाँ से लौट रहा था तो वापस घर तक भी नहीं पहुँच पाया और रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गयी। योजनाएँ, सपने यूँ ही अधूरे रह जाते हैं। बड़े-बड़े सम्राट पूरा नहीं कर पाए। आपके लिए कौनसा ऐसा दुख है जो कभी आप यह महसूस करो कि हमारे लिए दुख है। दुख उनके लिए होता है जिनके पास में ज्ञान नहीं होता है और जिनको इस प्रकार के ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है तो उन्हें कभी दुख की प्राप्ति होती नहीं है। यह इष्टोपदेश आपके कानों की सन्तुष्टि के लिए नहीं है। यह आपके अंदर इस दुख की अवधारणा को आमूलचूल से मिटाने के लिए है कि आप अपने अंदर यह सोच लें कि वस्तुतः दुख की उत्पत्ति कहाँ से होती है हमारे ही राग-द्वेष परिणाम से। द्वेष की परिणति होती है घृणा, ईर्ष्या यह सब हमारे अन्दर दुख देते हैं। यह द्वेष के भाव जैसे ही आपके अंदर उत्पन्न हो आप इतना नियंत्रण कर लें कि इस भाव को जीत लें। इस भाव से हम आहत न हों समझ लो आप वास्तव में भीतर से जैन बन गये क्योंकि अपने भावों को जीते वह जैन है। '**जयति इति जैनः**' जीतोगे अपने आप को भीतर से तो आपको बाहर से भी लगेगा हम जीतते चले जा रहे हैं, विजेता बनते चले जाओगे और बाहर से आप कितनी ही कुछ समृद्धि अपने पास में रख लो लेकिन भीतर से मन हारा है तो आपको कभी लगेगा ही नहीं कि हम जीत गये। अपने मन को जीतने के लिए ही सब कुछ यह जैन धर्म सिखाता है।

विपत्तियों को जीतने का उपाय सम्यग्ज्ञान :

विपत्तियों को जीतने का यह साधन है ज्ञान। आप अपना मन उन चीजों में लगाओ जिन चीजों से आपको वास्तविक ज्ञान मिलता है। आपके पास में विपत्ति भी हो तो भी आप अपने अंदर एक रुचि पैदा करो कि मैं अपना समय अब अपनी पहचान के लिए निकालूँगा। अपनी अनुभूति से निकालूँगा और ऐसी ज्ञान की परिणति के लिए निकालूँगा कि वह ज्ञान जो हमें कभी परेशान ना करें, आप ऐसा मन बनाओगे तो आपका मन बनेगा। शास्त्रों को पढ़ने का, जिनवाणी को पढ़ने का और जिनवाणी में जब आप एक बार उलझने लग जाओगे तो बाहर की उलझनें आपको उलझनें दिखाई नहीं देगी क्योंकि जो कुछ भी उलझनें होती हैं वो हमारे दिमाग की होती हैं। दिमाग को अगर आपने जिनवाणी के ज्ञान में उलझा दिया तो हम सर्वज्ञ भगवान में उलझ गये। उसमें उलझने का मतलब यह है कि हम अब उनकी सच्ची भक्ति कर रहे हैं। पूरा का पूरा जीवन जब हमारा इस प्रकार के विचारों में लगने लग जाए और हमारे विचारों में उनकी ही बातें हमेशा बनी रहें, उन्हीं पूर्वाचार्यों के द्वारा कही गई जिनवाणी हमारे दिमाग में चलती रहती है तो समझ लो कि हमने अपना जीवन

भीतर से राग-द्वेष, घृणा-ईर्ष्या भावों को जीतने वाला बाहर से भी विजेता बन जाता है।

विपत्ति से उभार लिया। सामने की जो विपत्तियाँ हैं छोटी-मोटी यह तो हमें वैसे भी मिलने वाली थीं लेकिन इन विपत्तियों में भी अगर हमने अपने अन्दर यह जिनवाणी की संपत्ति प्राप्त कर ली तो समझ लो कि हमने बहुत बड़ी उपलब्धि कर ली। विपत्तियों से मुक्त होने का यही साधन है और उस साधन में आप अपना मन लगायें। किसी भी व्यक्ति को जब मैं देखता हूँ तो वह सब कुछ करेगा वाट्सअप के मैसेज पढ़ने में, इन्टरनेट चलाने में अपना समय खराब करेगा लेकिन थोड़े समय के लिए जिनवाणी पढ़ने का विचार नहीं करेगा। यह बहुत बड़ी कमी है। स्त्रियों में तो फिर भी जिनवाणी पढ़ने का भाव आ जाता है लेकिन पुरुषों में नहीं। जैसी अपनी इच्छा हो वह जिनवाणी पढ़ो। अगर हमें अपने अनुसार कोई बात समझ में आ जाए तो समझ लो हमारे लिए जिनवाणी पढ़ना सार्थक हो गया। आपको सब कुछ मिल जायेगा। ऐसे-ऐसे तत्त्व ज्ञान की चीजें, अदृश्य चीजें होती है वह भी भगवान के द्वारा देखी गई हैं, लिखी गई है उनको हम देखें, पढ़ें, सोचें, विचार करें और उसी के बारे में अगर हम चिन्तन करेंगे तो हमारे मन को भी फुरसत ही नहीं मिलेगी, दुखी होने की। मन उनका दुखी होता है जिन्हें बाहर की सब सुख सामग्री मिल जाती है और फिर वो सोचते हैं अब हम करें क्या? तो यह ही उनके लिए सबसे बड़ा दुख हो जाता है।

जिनका मन इस जिनवाणी को पढ़ने में लग जाता है तो उनको लगता है कि हमारा जीवन बहुत छोटा है और अगर आपका जिनवाणी में मन नहीं लगे तो आपको लगेगा कि यह जीवन बहुत बड़ा है। अगर आपको ऐसा लगता हो कि महाराज क्या करते हैं? दिनभन उनका टाइमपास कैसे होता होगा? उनकी रातें, सर्दी, गर्मी किस प्रकार से कटते होंगे? अगर आपको इन बातों की भी मन में चिन्ता होगी तो आप कम से कम धर्म की सोच रहे हो। कम से कम आपने देव, शास्त्र गुरु का चिंतन करने का मन तो बनाया। अगर आपने घर, परिवार की चिन्ता छोड़कर अपना मन गुरु की चिन्ता करने में लगाया तो यह भी एक धर्म है। जब भीतर से कोई ज्ञान उत्पन्न हो जाता है तो अपने आप यह लगने लग जाता है कि इस पर्याय में जो करने योग्य है वो पहले कर लो बाकी के काम तो बाद में होते रहेंगे। यह भाव जब आपके अन्दर आ जायेगा तो आप सबसे पहले आत्महित के कार्य करेंगे। आप सोचते होंगे कि महाराज दिन भर यही करते रहते हैं तो उससे वे बोर नहीं होते हैं। जब हमें भीतर की कोई सुध आ जाती है तो फिर यह लगता है कि समय बहुत जल्दी-जल्दी गुजर रहा है। अपने मन में ऐसा विचार बना रहे हो कि हमें आत्मा का ज्ञान उतरता हुआ सा दिखाई दे कि हमें अब इस पर्याय में अपनी आत्मा का ज्ञान हुआ है। यह हमें किसी भी अन्य पर्याय में नहीं हो सकता। जैन कुल के अलावा अगर आपका कहीं अन्य जन्म हुआ है तो आपको आत्मा शब्द तो सुनने में मिल जाएगा लेकिन उस आत्मा की वास्तविक जो गुणवत्ता है, उस आत्मा के अन्दर कर्म बंध की, मुक्ति के जो उपाय है और विपत्तियों से दूर होने के उपाय है, समझने को नहीं मिलेंगे। यह इसी पर्याय में जैन धर्म में ही मिलेंगे।

विपत्तियों से मुक्त होने का एक मात्र साधन जिनवाणी की संपत्ति (तत्त्व-ज्ञान) है।

न उलझो न उलझाओ :

आचार्य कह रहे हैं विपत्तियाँ आती रहेंगी। आप साइकिल चला रहे हो पैडल ऊपर नीचे आते रहेंगे लेकिन अपनी गति में कमी नहीं होनी चाहिए। उस पैडल में ध्यान तब तक रहता है जब तक नया-नया सीखता है। वह देखता है एक पैडल नीचे गया, एक पैडल ऊपर आया और वह जब सीख जाता है तब उसका ध्यान पैडल पर नहीं रहता। उसका ध्यान रहता है रेस पर, ब्रेक पर। उसका यही ध्यान रहता है कि किस जगह पर रेस ज्यादा करनी है, मोड़ आने वाला है, कहाँ पर ब्रेक लगाना है। उसका पैडल से ध्यान ही छूट जाता है। उन विपत्तियों पर ध्यान मत दो। इतने ऊपर उठ जाओ कि विपत्तियाँ आपको ऐसी लगें कि बस आईं और गईं। यह तो आती जाती रहती हैं। इसकी तरफ ध्यान ही न हो, ध्यान हो तो अपने ज्ञान की ओर रेस लगाना। आप ऐसा ज्ञान प्राप्त करना जिसकी हमने अभी तक प्राप्ति नहीं की है। वही ज्ञान जब हमारे रुचि में आने लग जाता है तो यह विपत्तियाँ हमें महसूस ही नहीं होगी। जहाँ राग होता है वहाँ विपत्ति होती है और जहाँ पर राग का भाव नहीं होगा, वहाँ पर विपत्ति नहीं होगी। कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो सोचते हैं कि क्या है यह ? विपत्तियाँ तो आती जाती रहती हैं। वह उनसे ज्यादा परेशान नहीं होते हैं और कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जिन्हें लगता है कि यह हमारे साथ ही क्यों होता है? यह विपत्तियाँ हमारे पास ही क्यों आती हैं? मतलब आप उलझ रहे हो। आप उलझो नहीं। आप इस उलझन से ऊपर उठोगे तभी तुम्हें यह सुख मिलेगा। इसीलिए आचार्य कह रहे हैं कि इन विपत्तियों का स्वरूप इतना ही है कि एक विपत्ति को तुम पीछे करोगे तो सामने कई विपत्तियाँ आ जायेंगी। आपको लगता है कि लड़की का विवाह हो जाए क्योंकि जिसके घर में लड़की बड़ी है तो उसको लगता है कि इसकी जल्दी से जल्दी शादी हो जाए और हम बिल्कुल निश्चिंत हो जाए। पिता को लगता है कि यह लड़की पराए घर की थी और अपने घर में पहुँच गई। हमने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया। लड़की जब तक घर में रहे तब तक उसको बड़ी चिंता रहती है। मान लो आपने उसका विवाह दूसरे घर में कर दिया, आपने थोड़े समय के लिए सोच लिया कि विपत्ति हो गई पूरी। लेकिन अब आपको पता नहीं है कि कितनी नई विपत्तियाँ अब शुरू होने वाली हैं। बहुत कम ऐसा होता है कि अपने पुण्य के योग से वह लड़की अच्छे घर में पहुँच जाये और कोई शिकायत ना करे वापस अपने घर पर आज के समय में। वहाँ पहुँचने के बाद पता चलता है कि इस घर में न जाने कितने तरह के कलह, परेशानियाँ हैं और जब कभी वो आपको बताए फोन पर तो फिर आपको लगता है कि अब हम क्या करें। इस विपत्ति से कैसे उभरें और उस बेटी को भी मालूम होता है कि विपत्तियाँ कभी भी पूरी नहीं होती हैं। जिस घर में गई वहाँ पर सब प्रकार का सुख है, जैसे धन है, अच्छा परिवार है, अच्छी जाति है लेकिन फिर भी घर में सास, ननद उन सबसे अपनी बन जाये, सबको निभा सके, कितनी बड़ी बात है।

इन सब से अपना adjustment हो जाये और वह अपने लिये अच्छा सोचें। हम भी उनके लिए अच्छा सोचें। यह बहुत बड़ी बात है और इतना होने के बाद भी उसके लिए एक और विपत्ति सामने खड़ी रहती है कि संतान हो जाए। कई बार ऐसा होता है कि संतान नहीं होती है तब उन सब लोगों के नाक नक्शे बदल जाते हैं। देखने, बोलने के ढंग बदल जाते हैं। विपत्तियों की कमी कहाँ है? एक विपत्ति को हमने सोचा कि यह पूरी हो जाए तो उसके सामने हजार विपत्तियाँ साथ में चल रही हैं लेकिन हम उन सबको मोल लेने के लिए तैयार रहते हैं लेकिन कभी यह समझने का प्रयास नहीं करते हैं कि विपत्ति की शुरुआत कहाँ से हो रही है। अगर हम सोच लें कि इस विपत्ति की शुरुआत कहाँ से हो रही है तो हम उसको भी सही ज्ञान दे सकते हैं और उसको भी सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। लेकिन कोई भी पिता अपनी बेटी को सही ज्ञान देने का भाव करता ही नहीं है, विपत्ति में डाल देगा, जिंदगी भर रोएगा। उसको रुलाएगा, पछताएगा। जहाँ पर कोई विपत्ति है ही नहीं उसको वहाँ पर विपत्तियाँ दिखती हैं। कभी भी आपके दिमाग में ख्याल आया कि धर्म के मार्ग पर कोई विपत्ति नहीं होती है लेकिन आपके मन में यह ख्याल कभी नहीं आएगा कि हम अपनी बेटी को प्रेरित करें धर्म के मार्ग पर चलने के लिए। उस विपत्ति से अलग हटने के लिए जिसके सामने अनेक विपत्तियाँ आने वाली हैं। विपत्तियों में एक संतान की विपत्ति और संतान हो भी गई तो बेटे, बेटी की विपत्ति। घर के लोगों की इतनी परेशानियाँ हैं कि आपकी एक विपत्ति के पीछे हजार विपत्तियाँ सामने खड़ी रहती हैं। इसलिए आचार्य कहते हैं–

''यावत् तावत् भवन्त्यन्याः प्रचुरा विपदा पुरः''

एक विपत्ति पूरी नहीं हो पाती सामने प्रचुर विपत्तियाँ खड़ी हो जाती हैं। इन सबके समाधान भी आपके सामने है। आप इस तरह से ही अपने अन्दर इस ज्ञान को उत्पन्न करके अपनी विपत्तियों से मुक्ति पा सकते हैं।

धर्म के मार्ग पर कोई विपत्ति नहीं होती, सबके समाधान मिलते हैं।

सांसारिक सम्पत्ति वालों की वास्तविक स्थिति

13

दूरर्ज्येनासुरक्ष्येण नश्वरेण धनादिना।
स्वस्थंमन्यो जनः कोऽपि ज्वरवानिवसर्पिषा॥

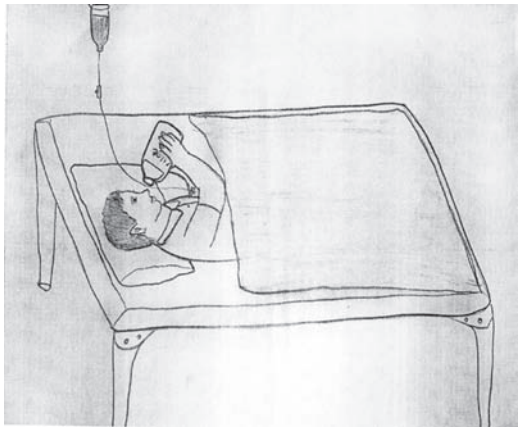

अन्वयार्थ—(दुरर्ज्येन) बड़ी कठिनाइयों से कमाये जाने वाले तथा **(असुरक्ष्येण)** सुरक्षित न रहने वाले **(नश्वरेण)** विनश्वर **(धनादिना)** धन, पुत्रादिकों के द्वारा **(स्वस्थंमन्यः)** अपने आपको स्वस्थ (सुखी) मानने वाला **(कः अपि जनः)** कोई भी मनुष्य **(सर्पिषा)** घी को खाकर **(ज्वरवान् इव)** ज्वर से पीड़ित मनुष्य की तरह मूर्ख होता है।

- **धन का स्वभाव**
- **हृदय की कठोरता का कारण धन है**
- **कृपण राजा का उदाहरण**

हम इस संसार में भ्रमण करते हुए कभी-कभी मनुष्य गति को प्राप्त करके जिस गोरख धंधे में फँस जाते हैं उसका यहाँ थोड़ा सा स्वभाव बताया जा रहा है, स्वरूप बताया जा रहा है।

धन का स्वभाव :

मनुष्य के लिए इस पंचेन्द्रिय पर्याय में एक चीज की ही आवश्यकता पड़ती है जिसे कहते हैं धन। अन्य बहुत से जीव होते हैं उन्हें कभी धन की आवश्कयता नहीं पड़ती, यह मोर हैं, कबूतर हैं, पशु-पक्षी हैं इन्हें कभी भी धन की आवश्यकता नहीं पड़ती। लेकिन मनुष्य का धन के बिना काम चलता नहीं। यह धन उसके अन्दर इतना मोह उत्पन्न करता है कि उस धन की प्राप्ति से ही समझता है कि मैं बड़ा हो गया और धन नहीं है तो समझ लेता है मैं कुछ भी नहीं हूँ। जिसके पास बहुत धन है तो वो समझता है कि मुझसे बढ़कर कोई नहीं और जिसके पास थोड़ा सा धन कम होता है तो उसका temperature थोड़ा सा हमेशा down मिलेगा। इस धन के कारण इस मनुष्य के अन्दर इतना व्यामोह उत्पन्न हो जाता है कि वह कभी यह सोच नहीं पाता कि इस धन की जरूरत भी हमें पड़ती है तो क्यों पड़ती है? धन से हमारा उपयोग कितना है और हमें इस धन का कितना उपयोग करना है? कोई भी चीज हो अगर हम उसका स्वभाव समझ लेते हैं तो स्वभाव समझ में आने से हमें बड़ी सहूलियत हो जाती है। हमारे अन्दर एक ज्ञान उत्पन्न हो जाता है और उस ज्ञान से फिर हमें यह समझ में आने लग जाता है कि इसका स्वभाव तो ऐसा ही है। आपने किसी से मित्रता की और अगर उसका स्वभाव आपको नहीं मालूम, बाद में आपको उसका स्वभाव समझ में नहीं आया तो आपको दुख होता है कि हमने कैसे व्यक्ति से मित्रता कर ली। इस तरह से जब आपकी धन से मित्रता हो जाती है तो थोड़ा सा आपको धन का स्वभाव भी समझ में आना चाहिए। अगर आपने धन का स्वभाव नहीं समझा और मित्र आपको परेशान करता रहा और आप यह समझते रहे यह हमारा मित्र है इससे हमें सुख मिल रहा है तो आप जिंदगी भर भूल में रहे। उस भूल को दूर करने के लिए आचार्य यहाँ पर कहते हैं कि धन कैसा होता है 'दुरर्ज्येना' बड़ी कठिनाई से अर्जित किया जाता है it is earn hardly बड़ी कठिनाई से इसको प्राप्त किया जाता है। सहज में किसी को धन मिलता है तो समझो कि वह तो पूर्व जन्म का बहुत पुण्यात्मा है। जिसके लिए उसके माता-पिता धन छोड़ गये हैं और वह उसका उपयोग कर रहा है। यह समझ लो कि अगर वह उसका उपयोग कर रहा है और उसे कुछ नहीं करना पड़ रहा है तो पूर्व जन्म में कोई पुण्य करके आया होगा अन्यथा अगर माता पिता भी धन छोड़ जाते हैं तो भी आप उसका उपयोग नहीं कर पाते हैं। आप देखोगे कि हमारे पुरखे तो बहुत धनवान थे, उनकी हवेलियाँ बनी हैं, उनके पुराने घर बने होते हैं। सब कुछ होगा लेकिन एक-दो पीढ़ी के बाद में आप देखोगे उनके यहाँ पर अब ऐसी चीजें नहीं हैं जैसी पहले हुआ करती थी। हर गाँव में, हर शहर में पुराने लोग इस बात को बताने वाले मिलेंगे

संसार में मनुष्य के अलावा किसी भी जीव को धन की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

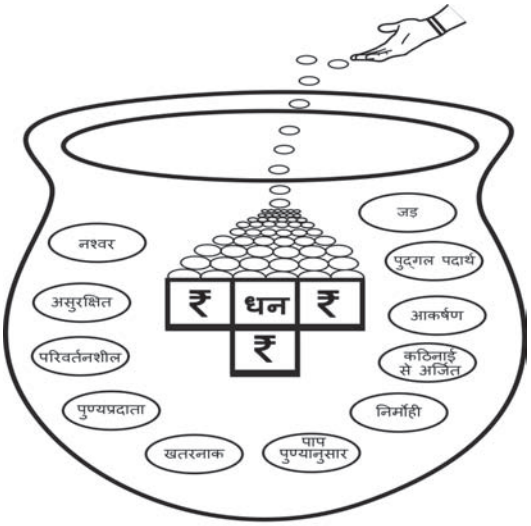

धन का स्वभाव

यह जो आज इसका बेटा देख रहे हो इसके पिताजी किसी जमाने में बहुत बड़े गाँव के राजा कहलाते थे, बहुत बड़े धनपति कहलाते थे, बहुत बड़े यहाँ के मुखिया कहलाते थे और आज इनकी यह हालत है कि एक दुकान भी सही ढंग से नहीं चल रही है। यह जो प्रवृत्ति हमें देखने को मिलती है इसके पीछे भी आचार्य कहते हैं कि अगर तुमने कहीं से धन प्राप्त कर भी लिया और तुम्हारा स्वयं का कोई पुण्य नहीं है तो तुम उस धन को उपभोग में ले नहीं पाओगे उसको भोग नहीं पाओगे। कोई दूसरा तुम्हें धन देकर चला जाये तब वह धन तुम्हारे पास तभी रह पायेगा जबकि तुम्हारे पास उस धन को रखे रहने का पुण्य हो। उस पुण्य कर्म को हम देख नहीं पाते हैं और उस पुण्य के बिना जब हम केवल धन के ऊपर आकर्षित हो जाते हैं तो हम मरने मारने के लिए भी तैयार हो जाते हैं।

हृदय की कठोरता का कारण धन है :

आचार्य कहते हैं कि धन बड़ी कठिनाई से अर्जित किया जाता है और अगर आपने धन कठिनाई से अर्जित किया है तो इसका मतलब है कि आपके पास पुण्य की कमी थी। आपने बड़ी मेहनत से जो कुछ भी थोड़ा बहुत पुण्य था सबको दाँव पर लगा करके थोड़ा धन अर्जित किया है। एक धन वह होता है जो बड़ी सहजता से उपलब्ध हो जाता है और एक धन वह होता है जो बड़ी कठिनाई से उपलब्ध होता है। एक बात याद रखना कि जो चीज कठिनाई से प्राप्त होती है उससे हमारा हृदय भी कठोर हो जाता है। कठिनाई से प्राप्त हुई चीज के कारण हमारा हृदय बड़ा कठोर बन जाता है। अधिकतर धनवान लोगों का हृदय कठोर मिलेगा, कोमल नहीं मिलेगा। कठोरता आ जाती है क्योंकि धन हमने कठिनाई से प्राप्त किया। धन की प्राप्ति के लिये ही हमने अपना सारा का सारा जीवन लगा दिया तो हमारे अन्दर कहीं पर भी प्रेम भाव रहा ही नहीं। समय जितना था वो उस धन को अर्जित करने में लगा दिया जो धन जड़ था। जिसमें कोई चेतना नहीं है उसको जड़ कहा जाता है। पुद्गल पदार्थ कहा जाता है। उसमें हमने अपना समय लगा दिया और उसको अर्जित करने में हमारी बुद्धि लगी वो भी जड़ हो गयी। जब बुद्धि जड़ हो जाती है तो फिर आदमी भीतर से कठोर भी हो जाता है और कठोर होने के साथ-साथ वह कृपण भी हो जाता है। वह इतना कंजूस हो जाता है कि उसके लिए धन को फिर खर्च करना बड़ा कठिन हो जाता है। जिसने धन कठिनाई

पुण्य के कारण धन सहजता से अथवा कठिनाई से उपलब्ध होता है।

से अर्जित किया है वो बड़ी कठिनाई से ही खर्च करेगा क्योंकि उसे लग रहा है कि बड़ी मुश्किल से आया है। कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जिन्हें धन बड़ी सरलता से मिल जाता है और वे बड़ी सरलता से बाँटते हैं क्योंकि उन्हें धन सरलता से मिला। अर्जित करने से नहीं मिला, बड़ी सरलता से मिला, पूर्व जन्म का ऐसा पुण्य था। दुकान खोली और जिस दिन से खोली उस दिन से ही बड़े अच्छे ढंग से चल रही है। जितना सोचा नहीं था उससे कई गुना ज्यादा उसे मिलने लगा। यह जो मिलता है वह पुण्य के कारण मिलता है तो उसे देने में भी ज्यादा कठिनाई नहीं होती है। पुण्य के उदय से जो आपको मिलेगा ज्यादा कुछ आपको परिश्रम नहीं करना पड़ेगा, थोड़ा सा किया और बहुत मिल गया तो आपके मन में दान के भी भाव आयेंगे, देने के भी भाव आयेंगे, दूसरों की सहायता करने के भी भाव आयेंगे। अगर अन्दर यह सब भाव नहीं रहेंगे तो उसके साथ-साथ एक भाव जिसे हम प्रेमभाव कहते हैं उसकी भी बड़ी कमी हो जाती है। जो कंजूस आदमी होते हैं उनके अन्दर ऐसा क्या होता है कि वह कुछ भी देना नहीं चाहते जबकि उनके पास सब कुछ है। एक कहावत चलती है **''चमड़ी जाये पर दमड़ी ना जाये''** चमड़ी उघड़ जाये कोई बात नहीं लेकिन हाथ से दमड़ी नहीं छूटनी चाहिए। दाम का एक सिक्का नहीं जाना चाहिये। यह जो परिणति बनती है इस परिणति के पीछे आचार्य कहते हैं जो हमने बड़ी कठिनता से अर्जित किया है उसके कारण से हमारा हृदय भी कठोर बन जाता है फिर हृदय में कोमलता प्रवेश नहीं कर पाती है। भीतर से हम सूख जाते हैं। जिस तरह से आप धन कमाओगे उसी तरह से आपके अन्दर परिणाम भी उत्पन्न होंगे। जैसा काम करो, जैसा धन कमाओ वैसा ही हमारा मन बनता चला जाता है। हमारे मन के ऊपर ऐसा प्रभाव पड़ जाता है कि फिर हम सब कुछ छोड़ सकते हैं लेकिन धन नहीं छोड़ सकते हैं।

कृपण राजा का उदाहरण :

एक राजा ऐसा ही धनवान था लेकिन कृपण था। इतना कृपण था कि कभी भी उससे कोई कुछ माँगे तो कुछ देता नहीं था। कोई भी माँगने आये, सहायता के लिए कुछ लेने आये तो उसके लिये बहाना बना देगा और उसके पास से कुछ भी पैसा निकलवाना बहुत बड़ी कठिनाई की बात होती थी। एक बार उस गांव में एक नृत्य दिखाने वाले नट और नटनी आये। वे जब नाचते हैं और लोगों को मोहित करके उनका मनोरंजन करके उससे पैसा प्राप्त कर लेते। अब जब वे गाँव में आये तो उस गाँव का राजा कृपण था। उस राजा को पता लगा कि यह नट-नटनी यहाँ आये है तो उसने कहा यहाँ कोई नाच नहीं सकता क्योंकि उसे मालूम था कि यहाँ कुछ खेल होगा तो कुछ देना पड़ेगा। वहाँ का जो मंत्री था वो थोड़ा प्रभावित हुआ उन नट और नटनी से। उसने कहा देखो भैया! यहाँ का राजा तो बड़ा कंजूस है। यहाँ आपको कुछ मिलने वाला तो है नहीं। अब आपको अपना नाच दिखाना है तो आप दिखा दो। हो सकता है कुछ विशेष बात हो जाये। राजा पिघल जाये। राजा के मन में कुछ भाव आ जाये तो बात अलग है अन्यथा यहाँ का राजा तो बिल्कुल पत्थर दिल है।

जिस तरह से धन कमाया जाता है वैसे ही परिणाम उत्पन्न होते हैं।

उसके अन्दर इतनी कृपणता भरी हुई है कि वह एक दाना भी नहीं निकालेगा एक पैसा भी नहीं निकालेगा। हम आपको यह भी बता दें जब तक वो नहीं निकालेगा, तब तक दूसरे लोग भी नहीं निकालेंगे क्योंकि सब लोग उसी को ही देखते हैं। जैसी उस राजा की स्थिति है वैसी ही स्थिति समाज की होती है। समाज में भी जब कुछ कार्य होता है तो पहले मुखिया को आगे करते हैं और मुखिया तैयार है तो सब तैयार हैं। यदि मुखिया तैयार नहीं है तो कोई तैयार नहीं है। अब उस नट और नटनी ने सोचा कि क्या करें? अब हम इस गाँव में तो आये हैं। चलो कोई बात नहीं। बहुत से गाँवों से बहुत कुछ मिला है, एक गाँव में न भी मिलेगा तो कोई बात नहीं। हम अपना नाच तो दिखा ही देते हैं। उसके मन में भाव आ गया कि राजा कुछ नहीं देता है कोई बात नहीं अपने पास में जो है वो तो हम देना चाहते हैं।

कोमल हृदय की सबसे बड़ी पहचान यह होती है वह जो अपने पास में रखता है वो देना चाहता है और जो जितना देने का भाव करेगा उतना ही दूसरों के प्रति प्रेमभाव रखेगा। दूसरों से प्रेम भी प्राप्त करेगा। देने का भाव आना मतलब कोमलता का भाव आना और देने का भाव नहीं आना मतलब कठोरता का भाव आना। **जब तक हृदय में कठोरता है तब तक कुछ भी हृदय में प्रवेश नहीं करेगा धर्म भी प्रवेश नहीं करेगा, धर्म की बातें भी नहीं पहुँचेगी।** हृदय में कोमलता होनी चाहिए और वह कोमलता जितनी ज्यादा होगी उतना ही ज्यादा धर्म अपने अन्दर प्रविष्ट हो जाता है। लोग पूछते रहते हैं महाराज क्या बात है? हम सुनते तो बहुत हैं लेकिन हृदय में कोई परिवर्तन नहीं आता। थोड़ी हृदय में softness की कमी है hardness ज्यादा हो गयी। हृदय को soft बनाने के लिये आपको क्या करना है अपना कुछ भी यहाँ पर नहीं है जो भी अपने को मिला है बस उससे दूसरों का कुछ काम बन जाये। आप दूसरों को देते रहें जितना ज्यादा आप देने का भाव करेंगे, जितना ज्यादा आप अपने पास में जो है उससे दूसरों का काम बनाओगे, दूसरों की सहायता करोगे तो उतना ही ज्यादा आपके अन्दर कोमलता का परिणाम उत्पन्न होगा। वही softness तुम्हारे अन्दर धर्म भाव उत्पन्न करवाती चली जायेगी। अब विचार करो कि ऐसे ऐसे लोग होते हैं जो लाखों लाखों रुपये दान कर देते हैं और दान करने के बाद में एक उसकी रसीद तक नहीं लेते हैं। कभी दूर से ही फोन लगाकर उनने कह दिया हमारी तरफ से इतना दान। आदमी वहाँ है ही नहीं। क्या आप कभी ऐसा कर सकोगे, जिस समय आप कुछ दोगे उस समय आपको कुछ मिलना चाहिए। आपके अन्दर एक बड़ी अपेक्षा रहेगी, अगर कुछ दिया है तो कम से कम हमारे लिये कोई सम्मान तो दे। कोई हमारे लिए माला तो पहनाये, आपके अन्दर यह भाव भी आ रहा है तो वह भी एक कोमलता की कमी है। जितना ज्यादा आपके अन्दर कोमलता का भाव होगा उतना ही आप बिल्कुल निस्पृह रहोगे। आप कहोगे कोई बात नहीं कहीं भी लग जाये। द्रव्य अगर दान में सही जगह पर लग रहा है वो लग जाना चाहिए। जैसे आज कल क्या होता है? हर चीज, हर माल net

कोमल हृदय में धर्म प्रवेश करता है कठोर हृदय में नहीं।

से चला आता है। आपको केवल clik करने की जरूरत है तो माल जहाँ कहीं पर होगा वहाँ से उठकर के तुम्हारे घर में आ जायेगा। तुम्हारे उस खाते में जो पैसा पड़ा हुआ होगा वो उसमें से कट हो जायेगा और तुम्हें कुछ नहीं करना पड़ेगा। अपने आप तुम्हारे घर में सारी की सारी सामग्री आ जायेगी। ऐसे ही अगर आप दान भी करने लगो तो बहुत बड़ी बात हो जायेगी। अगर आपके अन्दर दान की भावना भी होगी तो सोचोगे कौन से स्थान पर दें। जहाँ लोग अपने को जानने वाले हों, अपना नाम पहचानते हों। मान लो आपके नाम का पत्थर लगा और वो पत्थर आपके नाम का U.P. में लग गया, M.P. में लग गया तो कौन पहचानने वाला होगा? आपके मन में यह भाव आयेगा कि वो पत्थर भी लगे तो ऐसी जगह लगे जहाँ पर हमारे परिचित लोग पहुँचते हों, जहाँ पर लोग हमें जानते हों और कभी ना कभी हमारे बेटे, बेटियाँ परिवार के लोग वहाँ जायें तो उन्हें कम से कम दिख तो जाये कि यहाँ पर हमारे पिताजी के नाम का एक पत्थर लगा है, यह शहरी मानसिकताएँ हैं। जो मानसिकताओं को समझ लेता है तो उसे समझ में आने लग जाता है कि हम क्या कर रहे हैं? धर्म हमें हमारे अन्दर के ही भावों को बताता है। यूँ कहें कि आप की सब पोल खोल के रख देता है। जो आप समझ नहीं पाते हमारे अन्दर क्या चल रहा है वो आपको आपके सामने यह धर्म शास्त्र बता देते हैं। आपके गुरु बता देते हैं कि आप क्या कर रहे हैं? और उस समय पर आपकी परिणति में दान तो होगा लेकिन वह एक निस्पृह दान नहीं होगा, निरीहिता वाला दान नहीं होगा क्योंकि उस निरीहिता के साथ में आपका कोई भी परिणाम वापस कुछ return मिले ऐसा नहीं होना चाहिये। आपको तो मालूम होना चाहिए कि अगर हमने दान किया है तो हमारे लिए पुण्य का बंध तो अपने आप हो ही गया है। जो हमें पुण्य मिलेगा उससे बढ़कर के दुनियाँ में कोई चीज नहीं है और यह बात जब हमें पता नहीं रहती है तो हमें छोटे-छोटे सम्मानों की अपेक्षा रह जाती है। इसी कारण हम अपने अन्दर उस धन को दान तो दे देते हैं लेकिन हम अपना हृदय कोमल नहीं कर पाते हैं। हृदय में कोमलता आये बिना धर्म शुरू नहीं होता है। दान से धर्म शुरू होता है लेकिन उस धर्म से भी हृदय थोड़ा सा कोमल हो जाये। कोमल हृदय में बात बड़ी जल्दी घुस जाती है। अपने हृदय में कोमलता आनी चाहिए।

राजा के हृदय में कृपणता इतनी ज्यादा बढ़ी हुई थी कि उसने नृत्य देखना शुरू किया उसे पता पड़ गया कि यह फ्री में नृत्य दिखाएंगे। राजा बड़ा खुश हुआ और वो बैठ गया कुर्सी डालकर के और देखता रहा, देखता रहा। नृत्य शुरू हुआ शाम के समय से। अब वह नट नृत्य दिखाता रहा और सुबह होने को हुई। सभा भरी थी। सभा में बहुत सारे लोग बैठे थे, राजा भी बैठा है, मंत्री भी बैठा है। उस राजा का लड़का भी बैठा है लड़की भी बैठी है। वहाँ आसपास कई गृहस्थ साधु भी आकर के बैठे हैं। सभा में सब बैठे हैं और सब देख रहे हैं नृत्य को। सबके मन में आ रहा है इसके लिये कुछ न्यौछावर करना चाहिए, कुछ देना चाहिए लेकिन सब राजा की शक्ल देख रहे हैं। जब तक

धर्म हमारे अंदर के भाव बताता है कि दान निस्पृह है अथवा नहीं।

अध्यक्ष नहीं आये तब तक प्रजा पीछे से काम कैसे करें तो वह सब उसकी शक्ल देख रहे हैं। इधर राजा के मन में कोई भी भाव नहीं आ रहा है कुछ भी देने का। इधर वह नट और नटनी थे तो वो नटनी नाच रही थी और वो नट उसको नचा रहा था। वो देखता रहा किसी ने एक सिक्का भी नहीं दिया। सुबह होने वाली है और नटनी थकने लगी। जब वो थकने लगी तो उसने उस नट से कहा अब यह खेल बन्द करो। अब तो हम थकने लगे हैं, अब चलो यहाँ से। उस नट ने कहा–अब देखो बात ऐसी है–

''बहुत गई थोड़ी रही, थोड़ी भी अब जात।
थोड़ा सा धीरज धरो, फल मिलने की बात॥''

यह बात उस नट ने बोली तो नटनी ने सुन लिया। नटनी के मन में भी आ गया चलो कोई बात नहीं अपना स्वामी कह रहा है तो थोड़ी देर और इसके लिए नृत्य कर लेते हैं। साधु पुरुष उस समय बैठे थे तो उनको एक दम से मन में विचार आया कि यार इसने बात तो बड़ी अच्छी बोली और वो बात सबने सुन ली। वो बात नट ने बोली थी नटनी के लिए लेकिन उस बात को सबने सुन लिया। जैसे ही सुना उस साधु ने उसके मन में विचार आया कि इसने करोड़ों की बात बोल दी। बात का ही महत्व होता है और किसी चीज का नहीं। अगर अपनी बात किसी से कही गयी है और आप उस बात से पीछे फिर मुकर गये तो आपका कोई महत्व नहीं रहा। आदमी को अपनी बात की साख रखनी चाहिये। बात ही ऐसी चीज होती है जिसके माध्यम से सबके दिल बदल सकते हैं। बात ही से सबके हृदय में परिवर्तन हो सकता है और बात ही ऐसी होती है आप जो चाहो वो कर सकते हो। आपको करने का एक भाव होना चाहिए और बात करने का एक भाव होना चाहिए, बात करना आना चाहिए। जिन लोगों के लिए ऐसे सही से बात करना आता है तो कैसे भी सम्बंधों को अच्छा बना सकते हैं और जिनको अच्छे ढंग से बात करना नहीं आता है तो बने बनाये सम्बंधों को भी बिगाड़ सकते हैं। बस केवल बात की बात है। बात बन रही हो और तीसरा आदमी कुछ भी कह जाये समझ लो बात बिल्कुल बिगड़ गयी। एक ऐसी चीज जो हमारे पास में है बस उससे ही हमारे सम्बंध बनते हैं। इस बात से ही उन अनेक सभासदों के मन में ऐसा भाव आ गया वास्तव में इस नट ने करोड़ों की एक बात बोल दी। राजा फिर भी कुछ पैसा नहीं दे रहा है कुछ नहीं निकाल रहा है लेकिन उस साधु के पास में, जो गृहस्थ साधु था, वो भी बस अपने लिये घूमता रहता था पैसा रखे रहता था। उसके मन में बड़ा विचलन हो रहा था और वह भी अपने मन से परेशान था, उसके लिए बात मिल गयी और वो बात क्या मिल गयी? ''बहुत गयी थोड़ी रही, थोड़ी अब जात'' साधु सोचने लगा मैं तो बूढ़ा हो गया हूँ और अब बुढ़ापे में मैं विचलित हो रहा था इस नट ने बहुत बड़ी बात कह दी अब मैं अपने साधुपन को नहीं छोड़ूँगा और विचलित नहीं होऊँगा। उसके पास में जो धन था वो सारा का सारा धन उसने उठाकर के उस नट को दे दिया।

आदमी की कही गई बात से ही संबंध बनते-बिगड़ते हैं।

जैसे ही उस साधु ने वो धन दिया इधर वह राजा का लड़का बैठा था उसके भी भावों में परिवर्तन आ गया और उसने भी अपने हाथ की अँगूठी निकालकर के उस नट को दे दी। इधर वह राजा की लड़की बैठी थी उसके भी भाव में परिवर्तन आया उसने अपने गले का हार उतार करके उस नट को दे दिया। फिर तो सब देने लग गये। अब राजा बैठा–बैठा सोचता है यह क्या होने लगा हमारे सामने। हमने तो एक रुपया नहीं दिया और सब देने लगे उसको गुस्सा आया। उसने मंत्री जी को बुलाया। मंत्री से कहा कि यह सब राज्य विरुद्ध काम क्यों हो रहा है? तो मंत्री ने कहा कि मैं क्या कर सकता हूँ राजन! इस साधु ने पहले देना शुरू किया और उसके कारण से सबने देना शुरू कर दिया। अब आप ही उस साधु को बुलाकर पूछ लो उसने क्यों दिया? साधु को बुलाया गया। उसने कहा मैं इस बुढ़ापे में अपना साधुपन छोड़ने वाला था लेकिन आज मुझे इसकी बात बड़ी अच्छी लगी कि ''बहुत गयी थोड़ी बची थोड़ी भी अब जात'' अब मरने वाला तो हूँ, बुढ़ापे से गुजर रहा हूँ पूरा जीवन साधुपने में बिताया। क्यों इस साधुपने को छोड़ दूँ तो मेरे अन्दर यह भाव आ गया तो बाकी जो मेरे पास था वो सब छोड़ने का मन बना लिया। अब मैं अपने साधुपन को नहीं छोड़ूँगा इसलिए मैंने उसके लिए सारा धन दे दिया। फिर उसके लड़के से उसने पूछा–तुम्हें क्या हो गया जो तुमने अंगूठी निकालकर के दे दी। वो लड़का कहता है पिताजी मैं आपकी इस कृपणता से इतना परेशान हो गया था कि मैं कुछ ही दिनों से सोच रहा था कि आपका कत्ल कर दूँ, आपको अपने रास्ते से हटा दूँ। ''बहुत गयी थोड़ी बची थोड़ी सी भी अब जात, थोड़ा सा धीरज धरो फल मिलने की बात'' हमने सोचा कि क्यूँ अपने ऊपर पाप का बोझ लादो और इसके कहने से हमारे मन का भाव हट गया। इसलिए मुझे लगा कि इसकी बात बहुत बड़ी है इसलिए अँगूठी निकालकर के मैंने दे दी। इसलिए वही बड़ी चीज होती है जिससे हमारे भाव में परिवर्तन आ जाये। उन वचनों का जिससे हमारे हृदय के अन्दर कोई कोमलता आ जाये उस परिणाम का कोई मूल्य नहीं है। उसके मूल्य को अगर हमने नहीं पहचाना तो फिर हमारा हृदय कभी कोमल बनने वाला नहीं है। इस मूल्य को पहचाने बिना ही हमारे लिए धन की आवश्यकता है। उसने अपनी बेटी से भी पूछा बेटी! तुम्हें क्या हो गया जो तुमने अपना हार उतार कर उसको तुरंत दे दिया। वो बेटी कहती है पिताजी! मेरा मंत्री के लड़के के साथ में संबंध होने वाला था और आप उस संबंध को होने नहीं दे रहे थे इसलिए मेरे मन में आ रहा था कि मैं आप को छोड़कर के यहाँ से चली जाऊँ और अपने होने वाले पति के साथ में रहूँ। लेकिन मेरा मन भी आज नट की बात से बदल गया कि ''बहुत गयी थोड़ी बची थोड़ी सी भी अब जात'' मैं थोड़े दिन और रह लूँगी। इसलिए मेरे मन में भाव आया कि मैं अपने इस हार को तो इसे दे दूँ लेकिन अपने पिता के साथ में कोई दुर्व्यवहार न करूँ। ऐसा भाव में जब परिवर्तन आया तो मुझे लगा इस घर की कोई कीमत नहीं है। जैसे ही उन तीनों की बातें उस राजा ने सुनी तो राजा को लगा कि देखो धन की क्या गति होती है और धन की क्या स्थिति होती है?

जिन वचनों से हृदय में कोमलता आ जाये वे अमूल्य है।

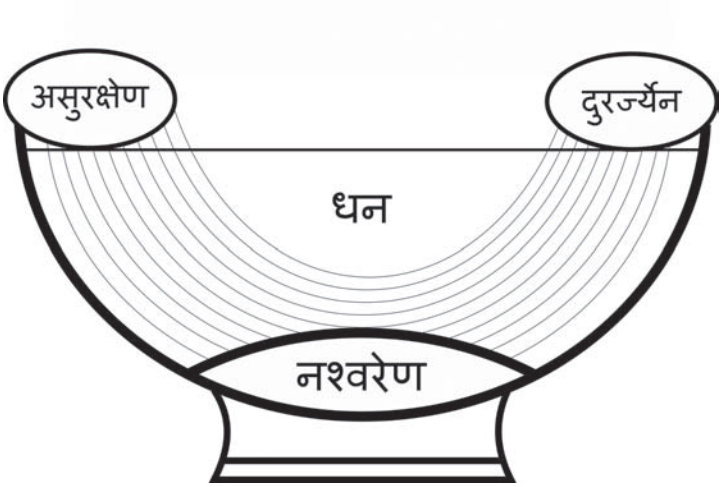

जितना-जितना आप धन अर्जित करते चले जाओगे उतना उतना आप अन्दर से कठोर होते चले जाओगे। जब आपके अन्दर कठोरता आ जायेगी तो आपके अन्दर प्रेमभाव किसी के प्रति रहेगा ही नहीं, ना अपने घरवालों के प्रति, ना अपनी समाज के प्रति ना किसी दूसरे लोगों के प्रति और जब प्रेम नहीं रहेगा तब आप भीतर से बिल्कुल मरे हुए होंगे, बिल्कुल सूखे हुए होंगे। आपके अन्दर कोई भी धर्म की बात प्रवेश कर ही नहीं सकती। इसलिए आचार्य कहते हैं यह धन बहुत बुरी चीज है और इसका अर्जन ही इतना कठिनता से होता है कि जब तक आदमी धन को प्राप्त करता है तब तक उसका हृदय बड़ा कठोर हो चुका होता है। 'दुरर्ज्येन' अर्थात् कठिनता से प्राप्त होता है और कठिनता से प्राप्त होने के बाद में 'असुरक्ष्येण' उसकी सुरक्षा करना और कठिन हो जाता है। आपको कई घटनाऐं मालूम होंगी। बड़े-बड़े करोड़पति लोगों के घर में चोर घुस जाते हैं, डाकू घुस जाते हैं। उनका दो दिन बाद पता पड़ता है कि यहाँ कुछ बदबू आ रही है। कारण मालूम किया गया तो पता पड़ा कि कोई उनका कत्ल करके चले गये। कोई कारण नहीं, जिन्हें धन की जरूरत है वो देखते हैं इनके पास धन ज्यादा है तो वो किसी न किसी उपाय से उसको प्राप्त कर लेते हैं। यह धन जब मृत्यु का कारण बन जाता है तो समझना कि इस धन से हमें क्या मिलने वाला है? अगर यह धन होता भी है तो इसकी सुरक्षा करना बड़ा कठिन है। न जाने कितने प्रकार के टैक्स लगते हैं, कितनी प्रकार की चोरी के भाव करने पड़ते हैं तब जाकर के हम धन की सुरक्षा कर पाते हैं और उस धन को हम बैंक में भी सुरक्षित नहीं रख सकते हैं क्योंकि बैंक वाले भी पूछते हैं कि इतना धन आया कहाँ से? छापा मार देते हैं। इतना कठिन है कि उसके कारण वह स्वयं भी असुरक्षित हो जाता है। एक तो पहले मुश्किल से कमाया, इकटठा किया अब उसकी सुरक्षा नहीं हो रही है। सुरक्षा के साथ-साथ उसका तीसरा गुणधर्म और है 'नश्वरेण' कितनी भी सुरक्षा करोगे तो भी वो नष्ट हो जायेगा। यह धन के तीन गुणधर्म हैं। बड़ी कठिनाई से अर्जित होता है इसकी सुरक्षा करना बड़ा कठिन है और तीसरा उसके बाद यह नष्ट हो जाता है। पता नहीं पड़ता कब पासा पलट गया और कब बैंक बैलेन्स समाप्त हो गया। कब वो धीरे-धीरे खाली होकर के बिल्कुल खोखला कर देता है। आता है तब भी पता नहीं पड़ता और

धन के पीछे इतना नहीं पड़ें कि कभी धर्म ना कर पायें।

जाता है तब भी पता नहीं पड़ता। इसी धन को हर आदमी लक्ष्मी मानकर के पूजता है। इसी धन को हर आदमी देवता मानकर के पूजता है। कहीं पर पूजा करे या ना करे लेकिन सबसे पहले अपनी दुकान पर जायेगा, गुल्लक है वहाँ अगरबत्ती लगाएगा। लेकिन सबसे पहले दुकान में घुसेगा तो पहले पैर छुएगा, ताला खोलेगा तो पैर छुएगा। हर आदमी खूब मन्नतें माँगता है कि बस आज ग्राहक आते रहें। आज दुकान चलती रहे, यहाँ पूजा करके गया है, आराधना करके गया है उसके बावजूद भी वहाँ पर जाकर के उसे अगरबत्ती लगाने की जरूरत पड़ जाती है। अगर सच्चा धार्मिक होगा तो उसके मन में विचार आना चाहिए कि जब हम इतने बड़े जिनेन्द्र भगवान की आराधना करके जा रहे हैं, उनका हम अभिषेक और स्तुति करके जा रहे हैं तो अब हमें और कोई खोखलेपन की बातें करना ही नहीं और कोई मिथ्या बातों में हमें पड़ना ही नहीं। जो कुछ भी हमारे साथ होगा और हमने जो यहाँ से पाया है बस उसी के साथ हमारा जीवन चलेगा उसी पुण्य से अब हमें सब कुछ मिलेगा। अब हमें वहाँ कुछ करने की जरूरत नहीं है लेकिन कोई भी व्यक्ति मान नहीं सकता क्योंकि हर पड़ौसी ऐसे ही करता है। आपकी दुकान पर मान लो ग्राहक नहीं आये और दूसरों की दुकान पर आता रहे तो दिमाग में यही चलेगा कि आज पैर नहीं छुये दुकान के तो ग्राहक नहीं आया। न जाने कितनी मिथ्या बातें, मिथ्या बुद्धि हमारी प्रेरित करती रहती है इनको करने के लिये।

वहाँ पर कुछ भी नहीं है जो पैर छू रहे हैं, उन कागजों के, उन लोहों के सिक्कों के, उनकी हम आरती उतारते हैं, उनके हम पैर छू लेते हैं और इधर आकर के कहेंगे हम तो केवल जिनेन्द्र भगवान के भक्त हैं देव, शास्त्र, गुरु के अलावा हम किसी को मानते नहीं है। उनकी मानने लग जायें तो अपने आप अपने अन्दर इतना बल आ सकता है कि हम अनेक मिथ्यात्व मान्यताओं को अपने आप छोड़ दें। हो सकता है आपको यह स्वरूप समझ में आ जाये कि आखिर धन का स्वभाव क्या है? इस स्वरूप के समझने से ही आपके अन्दर एक सम्यग्ज्ञान उत्पन्न हो जाये कि धन के पीछे इतना नहीं पड़ना चाहिये कि हम अपने जीवन में कभी धर्म न कर पायें और धर्म करें तो उसको हम कहीं ना कहीं जाकर के कलंकित न कर दें। ऐसा भी हमें धन का लोभ नहीं होना चाहिए। धन तो अपने आप आता है। आप केवल पूजा करो, पुण्य कमाओ और अपना पुरुषार्थ करो। जितना ज्यादा आप गलत बातों से बचोगे उतना ही ज्यादा आपके पास धन आयेगा। जितना ज्यादा आप मिथ्या मान्याताओं में विश्वास रखेंगे आपका मनोबल कम होगा। जो आदमी mind से, confidence से strong होता है वो हमेशा इन चीजों में कभी नहीं पड़ता। आप देखोगे जो बड़े-बड़े लोग होते हैं बड़ी-बड़ी कम्पनियों के मालिक हैं, विदेशों में उनकी बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ चल रही है वो कभी ऐसा काम नहीं करते। सब अपने आप चलता है, अपनी मेहनत से, अपने दिमाग से, अपने पुण्य से जो चल रहा है उसमें उसे कुछ करने की जरूरत नहीं है। यहाँ आदमी को देखोगे तो पैर छूता ही रहेगा छूता ही रहेगा। कोई अपने counter पर बैठा है, मान लो दस मिनट तक कोई ग्राहक नहीं

धनी होकर अनेक परिणतियों में उलझने के बाद भी व्यक्ति स्वयं को स्वस्थ मानता है।

आया तो सोचेगा अब क्या करूँ? फिर से फोटो की आरती करूँ? यह जो मन में भाव आता है यह बताता है कि हमारे मन में धन की इतनी इच्छा है कि हम धर्म भी धन की इच्छा से कर रहे हैं इसलिए धर्म भी हो नहीं पाता। धर्म करने के लिए भी थोड़ा सा मन कोमल होना चाहिये। इतना कठोर नहीं होना चाहिये कि हम धन को भी धर्म में मिक्स कर दें और धर्म को भी धन में मिक्स कर दें। जिस समय धर्म करने बैठें तो उस समय सिर्फ धर्म करना, धर्म के समय पर धन की इच्छा मत करना। धन आपसे कहीं चला नहीं जायेगा, मिलेगा तो मिलेगा और नहीं मिलेगा तो कुछ भी करोगे तो नहीं मिलेगा। इसलिए यह ध्यान रखना कि हम जो यह कर रहे हैं इसके करने के पीछे हमारे अन्दर जो भाव है उससे मिथ्या भाव में कमी आ रही है। लेकिन होता तो यह है कि आदमी जैसे-जैसे इस प्रकार की परिणितियों में उलझता चला जाता है अपने आप को **स्वस्थंमन्योजनःकोऽपि** बड़ा स्वस्थ मानता है। धन मिलता जाएगा धन की सुरक्षा के उपाय करता चला जायेगा, अनेक प्रकार के लॉकर बनायेगा, बड़े-बड़े ताले लायेगा, सब करेगा उसके बाद फिर सोचेगा अब मैं बिल्कुल स्वस्थ हूँ। इससे अपने आप को स्वस्थ मान रहा है जबकि यह सब बैचेनी की चीजें हैं। जितना ज्यादा आपके पास में धन होगा उतने ही चोरों की, लुटेरों की और बड़े-बड़े officers की, sales tex officers की उतनी ज्यादा दृष्टि आपके ऊपर पड़ेगी और उतनी ही ज्यादा आपको परेशानी होगी।

आपने एक नाम सुना हो ओमप्रकाश जी सूरत वाले, उन्होंने आचार्य महाराज का चातुर्मास करवाया था महुआ के अन्दर। एक इतना बड़ा सेठ था कि पूरा का पूरा चातुर्मास एक सेठ ने करवाया। केवल उस सेठ का ही अपना पैतृक घर था इसके अलावा कोई जैन घर नहीं थे। आचार्य महाराज को जाना तो कहीं और था लेकिन समय कम था तो उन्होंने वहीं चातुर्मास करने का मन बनाया। उस सेठ ने कहा महाराज आप बिल्कुल चिंता मत करो यहीं पर आप चातुर्मास करो। यहीं पर सब कुछ हो जायेगा, जितने भी श्रावक आयेंगे सब की व्यवस्था की जिम्मेदारी हमारी। उस सेठ ने ऐसी व्यवस्था की कि लोग पूछते थे कि यहाँ कितने जैन घर हैं लेकिन वहाँ एक भी जैन घर नहीं था। उस एक आदमी ने चातुर्मास के अन्दर बाहर के कितने भी लोग आये, हर चीज वहाँ पर वो उपलब्ध करवाता था और उसके लिए उसने पूरी की पूरी व्यवस्था उस चातुर्मास में की, कुछ भी कमी नहीं आयी। लोग आश्चर्य करते थे कि महाराज इतना बड़ा सेठ जिसने आपके चातुर्मास की पूरी व्यवस्था कर दी। उस सेठ के साथ में एक घटना पहले घटी थी वो मैं आपको बताना चाहता हूँ। कभी उसकी दुकान पर एक ग्राहक आया करता था कपड़े का काम था। सेठ ने ग्राहक की कुछ इन्सल्ट कर दी होगी उस ग्राहक से उसकी तू-तू मैं-मैं हो गयी और उस ग्राहक को बहुत बुरा लगा। बाद में सेल्सटेक्स officer बन गया। जब वो officer बन गया तो उस समय उसने उससे बदला लिया। बिना वजह tax लगाना, बिना वजह फँसाना ऐसा करके उसने उसको परेशान

हर संसारी प्राणी के अंदर धन को इकट्ठा करने का ज्वर चढ़ा हुआ है।

किया। मतलब कि आपके पक्ष में यदि पैसा है तो आपके लिए परेशानी के भी कई कारण बन सकते हैं। उस पैसे का उपभोग अगर दान में करते हो, त्याग में करते हो तो लोग आपका नाम जान जाते हैं कि हाँ! यह कितना बड़ा सेठ है। आज भी उस सेठ को सब जानते हैं उनका शायद दो साल पहले देहान्त हो गया। लेकिन लोग जो महुआ में गये और देखा वे उस सेठ से परिचित हैं। यहाँ से भी कोई गया हो तो उसका नाम जानते होंगे ओमप्रकाश। आदमी तो मर गया, चला गया लेकिन नाम आज भी है, क्यों रह जाता है? पैसा होने से नहीं, एक देने की काबिलियत ऐसी ही चीज होती है। वह जब भाव आ जाता है तो वह भाव ही बताता है कि आपके अन्दर दूसरों से प्रेम है, आप दूसरों की कद्र करते हैं। आपके अन्दर भी दूसरों को सम्मान देने की एक भावना है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि इस धन से अपने आप को स्वस्थ मत मानो। जितना ज्यादा रखोगे उतने ज्यादा आप रुग्ण होते चले जाओगे। रोगी बनोगे इसका त्याग करो। इससे दान का आनन्द लो। इसका जितना ज्यादा आप दूसरों के लिए उपयोग करोगे उतना ज्यादा आपके अन्दर स्वस्थता आयेगी। बहुत अच्छा उदाहरण दिया गया है। आठ अक्षरों में वह उदाहरण आ गया है–

'ज्वरवानिव सर्पिषा'

क्या कहते हैं जैसे किसी को बुखार आ रहा है और बुखार में लग रहा है बड़ा कमजोर होता जा रहा हूँ, उसे पता है कमजोरी किससे दूर होती है। सर्पिष माने होता है घी। घी खाने से बल आता है अब वो बुखार में अगर घी खायेगा उसकी हालत क्या होगी? और अच्छी होगी या बुरी होगी? आचार्य कहते हैं हर संसारी प्राणी के अन्दर धन को इकट्ठा करने का एक ज्वर बैठा हुआ है। ज्वर बुखार बैठा है, बहुत बड़ा टेम्प्रेचर बैठा हुआ है और जितना ज्यादा वो टेम्प्रेचर बढ़ता है उतना ज्यादा वो यह समझता है कि मैं स्वस्थ हो रहा हूँ। उस धन के सेवन करने का मतलब है कि घी को पीना। उस धन के सेवन के माध्यम से वह यह समझ रहा है कि मैं स्वस्थ होता चला जा रहा हूँ लेकिन उसका बुखार और बढ़ता चला जा रहा है और यह उसको पता नहीं रहता। बुखार जितना बढ़ेगा उतना ही आपको आकुलता होगी और जितनी ज्यादा आकुलता होगी उतना ही आपका चैन और नींद उड़ जायेगी। न चैन आयेगा और ना नींद आयेगी। जब आपका चैन उड़ने लगे, नींद उड़ने लगे, नींद नहीं आये तो समझ लेना कि हमारा बुखार कुछ ज्यादा ही बढ़ गया है। उस बुखार को आपको कम करना है तो आपको अपने भावों में परिवर्तन लाना पड़ेगा, इस धन के स्वरूप को समझना पड़ेगा नहीं तो वह बुखार बढ़ता ही चला जायेगा। प्रत्येक आदमी आज बुखार बढ़ाने की होड़ में ही लगा है। उसी के लिये, वह धन का सेवन करने के लिये अनेक उपाय करता है। वो सब उपाय कैसे होते हैं? उसके लिए घी की तरह काम करते हैं। उन उपायों के माध्यम से उसे कभी भी स्वस्थता आती नहीं है लेकिन मान लेता है कि मुझे स्वस्थता मिल रही है। **स्वस्थंमन्यः** माने स्वस्थ मान लेने वाला एक शब्द आता है पंडितंमन्यः पंडित अपने आपको मान लेने वाला। पंडित

है नहीं लेकिन अपने आप को मान लिया तो उसको कहते हैं 'पंडितंमन्यः'। ऐसे ही जो स्वस्थ नहीं है, वह स्वस्थ मान लेता है तो उसको कहते हैं स्वस्थंमन्यः। उसने अपने आपको स्वस्थ मान लिया लेकिन वह स्वस्थ नहीं है। स्वस्थता आयेगी धन के प्रति आसक्ति कम करने से, धर्म के प्रति आसक्ति बढ़ाने से। धन से आसक्ति बढ़ेगी तो धर्म के प्रति आसक्ति कम होगी। आपका हृदय कठोर होगा तो उस कठोर हृदय में धर्म का प्रवेश नहीं होगा। फिर बात वही आ जाती है कि बात आपकी बनते बनते भी बिगड़ जाती है क्योंकि कोई ना कोई कठोर हृदय वाला बीच में आ जाता है।

धर्म तो कहता है धर्म सबके लिये है और धर्म कहता है जो हमको धारण करे वो ही हमारा है। आपने धर्म धारण किया है तो वो धर्म आपका हो गया। धर्म सबके साथ में रहने की भावना करता है लेकिन रखने वाला भेद डाल देता है। नहीं, हमने जो रखा है वो हमारा धर्म अलग है और तुमने जो रखा है वो तुम्हारा धर्म अलग है। धर्म अलग-अलग नहीं होता है, धर्मात्मा भी अलग-अलग नहीं होते हैं। अगर धर्मात्मा अलग-अलग होते तो वहाँ क्षेत्र से चलकर के यहाँ पर अपने मन से हम नहीं आ जाते। धर्मात्मा भी एक ही होते हैं और अगर हम धर्म धर्मात्मा में धर्म आयतन में भेद डाल देते हैं तो हमारे हृदय में भी भेद पड़ने लग जाते हैं। जब तक हमारे हृदय में भेद नहीं होंगे तो धर्म व धर्मायतनों में भेद आये कहाँ से। हमें तो कोई भेद दिखाई ही नहीं देता जैसे पारसनाथ भगवान के हमें यहाँ दर्शन होते हैं वैसे ही पारसनाथ के क्षेत्र पर दर्शन होते हैं। वैसे ही पारसनाथ के दर्शन करने सम्मेंद शिखर जाते हैं तो वहाँ पर भी चौपड़ा कुंड है, वहाँ पर दर्शन होते हैं यही तो भगवान है जो एक ही भगवान को हम अलग-अलग रूपों में अगर विभाजित कर देंगे तो हमारे अन्दर भी धर्म टूट जायेंगे।

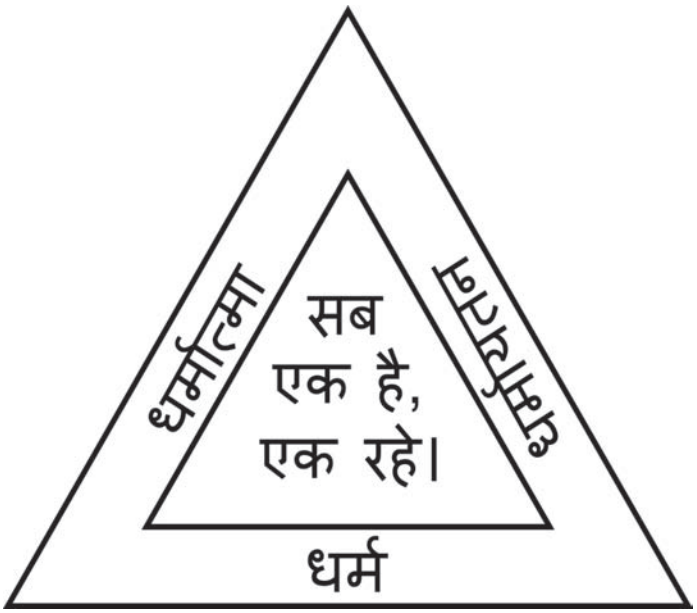

धर्म हमेशा एक होता है और धर्म एक होने की ही भावना रखता है। धार्मिक भी वही होते हैं जो एक होने की भावना रखे। जब एक धर्म में सबने जन्म लिया है तो हम भीतर से धार्मिक

होंगे तो भीतर से एक भी होंगे। धर्म हमेशा इसी प्रकार की भावना रखता है। अगर आपके अन्दर धर्म उतरेगा तो हमेशा ऐसे ही एकमेक होने की भावना होगी। एक साथ रहने की भावना होगी। हिल-मिल कर के ही अपना जीवन आगे लाने की भावना होगी। ऐसी भावना ही अपने अन्दर बनाके रखोगे तो समझना कि हम धर्म कर रहे हैं। आपके भावों में यह आता है कि हम तो अपना धर्म कर रहे हैं, तुम्हारा धर्म तुम जानो तो उस बेचारे के लिए क्या हो रहा है कोई भी एक के लिए दूसरा बेचारा है। दूसरे के लिए वो वाला बेचारा। आपके मन में किसी के प्रति अगर ऐसी भावना आयी तो इसका मतलब है आप उसकी उपेक्षा कर रहे हैं। जब हमने किसी से कहा हमारा काम तो हम कर रहे हैं तुम्हारी तुम जानो। इसका मतलब क्या है कि आपने उसकी उपेक्षा कर दी। मतलब, था वो वह आपके ही परिवार का लेकिन आपने उसकी उपेक्षा करके उसको बिल्कुल नेगलेक्ट कर दिया, महत्वहीन कर दिया। जहाँ पर यह बात आ गयी बस वहीं पर उसके मन में आपके प्रति फिर प्रेमभाव नहीं रहेगा। आपके प्रति उसके अन्दर द्वेष भाव आ जाएगा। जहाँ द्वेष भाव आया तो धर्म तो सब छूट गया फिर उदक चन्दन तन्दुल करने से कुछ नहीं होगा। 'इहविधि ठाड़ो होय के प्रथम पड़े जो पाठ' कुछ नहीं होगा क्योंकि भीतर की कोमलता कहीं दूर चली गयी। विद्वेष का भाव प्रबल हो गया। भगवान के सामने क्या करने से कुछ होगा? भगवान के मन्दिर तो इसलिए होते हैं कि यहाँ पर आकर हम प्रेम भाव ही देखें कि भगवान तो वो ही है, वहीं पारसनाथ हैं जिन पारसनाथ का सम्मेदशिखर से मोक्ष हुआ। जिन पारसनाथ को तपोदय क्षेत्र से केवलज्ञान प्राप्त हुआ सब जगह वही पारसनाथ हैं। अब उसमें क्या अन्तर करना, उस अन्तर को अगर करने वाला कोई होता है तो वह हमारा मन होता है इसलिए अपने मन को थोड़ा सा मुलायम बना लो। soft drink, soft food जैसे आपको अच्छे लगते हैं वैसे यह soft soft बातें आपको अच्छी लग जाये तो आपके हृदय में धर्म अपने आप प्रवेश करता चला जाये क्योंकि धर्म softness से ही आता है hardness से धर्म नहीं होता। हर चीज ही आपको soft soft ही तो अच्छी लगती है कोई भी पकवान हो तो वो भी soft soft होना चाहिये तो ऐसे ही soft soft बातों को जब धर्म के माध्यम से अपने अन्दर ग्रहण कर लें तो हमारा मन भी तो soft होना चाहिये, मन को हम कठोर क्यों बना लेते हैं। जब मन में इस प्रकार परिणति आ जाती है फिर समझ लेना हमारा बुखार बढ़ता चला जा रहा है। 'ज्वरवानिव सर्पिषा' इस मनुष्य पर्याय में बुखार कम करो, उतार लो, इसको अगर बढ़ाओगे तो फिर न जाने कितने जन्म में समझ में आयेगा कि यह बुखार है क्योंकि फिर बुखार ही अपना स्वभाव बन जायेगा। जिसको जन्म से ही बुखार आता हो ऐसे भी लोग होते हैं जिन्हें हड्डियों में बुखार फँस जाता है, हड्डी का बुखार होता है। जिसको बचपन से ही, जन्म से ही बुखार रहा हो तो उसे पता नहीं पड़ता है कि स्वास्थ्य कहते किसे हैं? बुखार से रहित होने पर कैसा फील होगा उसे पता नहीं। जब आपके लिये जन्म से ही बुखार है तो आपको यह कभी अनुभव में ही

नहीं आयेगा कि बुखार उतरने के बाद में कैसा महसूस होता है। अब वो तो तब ही महसूस हो जायेगा जब बुखार उतरेगा और आप यह जान रहे हो, नहीं हमें बुखार है ही नहीं हमारा तो बिल्कुल उतरा हुआ, चढ़ा तो उसके ऊपर है, हर कोई व्यक्ति से पूछो दूसरे को बुखार में कहेगा। अपने को बिल्कुल स्वस्थ कहेगा। हमें कोई बुखार नहीं बुखार तो उनको है। उन से पूछो तो वो कहेंगे इन्हें बुखार है, इनसे पूछो तो इन्हें बुखार है और कोई यह मानने को तैयार नहीं कि बुखार हमको भी चढ़ा हुआ है। हम अपना बुखार थोड़ा सा कम करेंगे तो अपने आप समझ में आयेगा कि बुखार के बिना जो स्वस्थ अनुभव में आता है वो कैसा होता है। उस समय हमारे मन में कैसा फील होता है वही वस्तुतः हमारा धर्म होता है जो स्वभाव होता है। धन का ज्वर, अभिमान का ज्वर, मान का ज्वर, प्रतिष्ठा का ज्वर और अपने अन्दर अनेक प्रकार की कषायों का ज्वर यह इस तरह से बढ़ जाता है तो हमें अपने स्वास्थ्य की पहचान नहीं हो पाती है। स्वास्थ्य की पहचान करने के लिये इनसे अपने आप को बचाना होता है। होते-होते आपको अपने स्वास्थ्य को पहचानना है और उस स्वास्थ्य का मतलब होता है स्व में स्थित होना। जो जानता हो उसके लिये यही स्वास्थ्य है। स्व में स्थित हो। बार-बार आप पर में स्थित हो जाते हैं। धन भी पर है और उस पर में स्थित होकर ही हमारा जीवन चला जाता है, हमें पता ही नहीं पड़ता कि हमारा स्व क्या है और स्वास्थ्य क्या है?

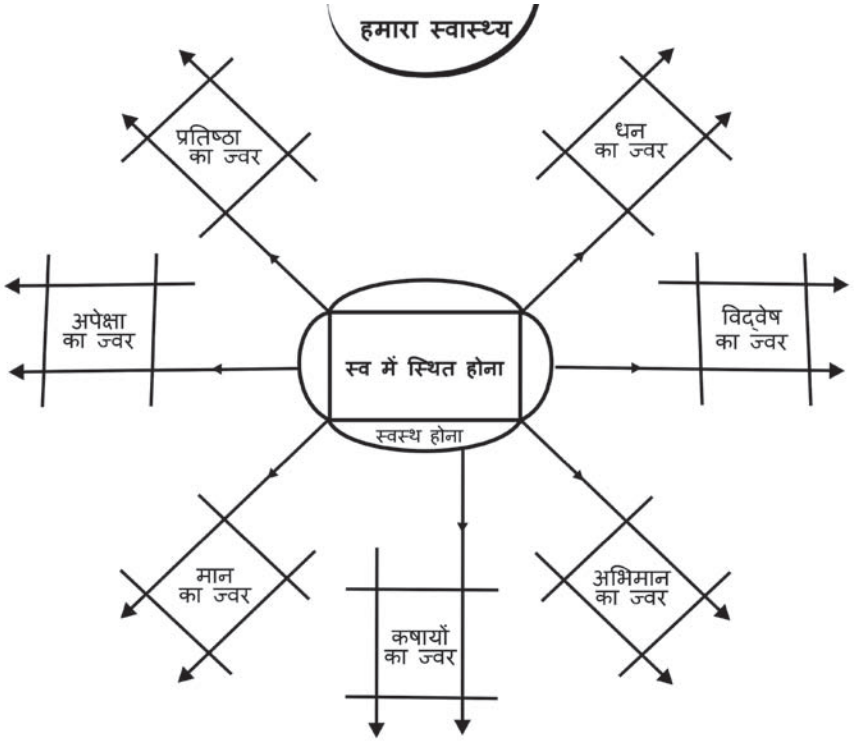

कुछ ऐसा कार्य कर लें जिससे हमारी परिणति में सुधार हो जाये।

विपत्ति का घर धन मोही क्यों नहीं छोड़ता

14

विपत्तिमात्मनोमूढः परेषामिव नेक्षते।
दह्यमान-मृगाकीर्ण-वनान्तरतरुस्थवत् ॥14॥

अन्वयार्थ—(दह्यमान-मृगाकीर्ण-वनान्तर-तरुस्थवत्) अग्नि से जलते हुए मृग आदि जीवों से भरे वन के मध्य वृक्ष पर बैठे हुए मनुष्य के समान **(मूढः)** मूर्ख प्राणी **(परेषां)** दूसरे की **(विपत्तिम् इव)** विपत्ति के समान **(आत्मनः)** अपनी विपत्ति को **(न ईक्षते)** नहीं देखता है।

- **रोग के कारण**
- **अनित्यता**
- **वचन**
- **अनशन और अनेशण**

यहाँ आचार्य देव कहते हैं जिस तरह से हम धन आदि अर्जित करते हैं और उस धन आदि की सुरक्षा के कारण अनेक प्रकार के भय देखते हैं। उस धन आदि को चोरों से, लुटेरों आदि से उसका नश्वरपना भी देखते हैं, यह सब देखकर भी संसारी प्राणी यह क्यों नहीं सोचता है कि जैसे यह धन आदि इनके लिए अनेक प्रकार की परेशानियाँ उत्पन्न कर रहे हैं, ऐसे हमारे लिये भी यह कर सकते हैं। इन धन आदि के अर्जन में, उसके रक्षण में और अंततः उसके नष्ट हो जाने में जो संसारी जीव अपना सर्वस्व लुटाते हैं, अपना समय परिश्रम सब कुछ व्यर्थ करते हैं उसके बावजूद भी उन्हें उससे अधिक कुछ नहीं मिलता है और उसके कारण जो परेशानियाँ सामने आती है वो परेशानियाँ सबको देखने में आ जाती हैं। उन परेशानियों से बचने के लिए भी हम दूसरों को देख सकते हैं। किसी भी प्रकार की परेशानियाँ हों, विपत्तियाँ हों, वो सब विपत्तियाँ जो हमें दूसरों के ऊपर दिखाई देती हैं वो कभी अपने ऊपर भी आ सकती हैं और आती ही हैं। इसलिए यहाँ पर कहते हैं **''विपत्तिमात्मनो मूढः परेषामिव नेक्षते''** कि मोही व्यक्ति दूसरों के ऊपर आयी हुई विपत्तियों को देखता है लेकिन यह नहीं सोचता है कि यह विपत्ति हमारे ऊपर भी आ सकती है। किसी के घर में धन की चोरी हुई, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को खबर देगा। आपने सुना कल फलाने व्यक्ति के घर में धन की चोरी हो गयी, चोर ले गये, इतना निकाल ले गये, इतना लूट ले गये। यह सब बतायेगा यह कोई नहीं कहेगा जैसे यह धन की चोरी हो गयी वैसे ही अपने घर में भी हो सकती है। यह कोई किसी को नहीं बतायेगा। इसको तो केवल आचार्य महाराज और गुरु महाराज ही आपको बतायेंगे बाकी आप लोग जो बातें आपस में नहीं कर सकते वो ही बातें शास्त्रों के माध्यम से गुरुओं के माध्यम से आपको बतायी जायेगी। इसलिए यहाँ पर आचार्य देव कहते हैं कि इस तरह कोई विचार नहीं करता। किसी के लिये धन का संकट आया, धन को लोग ले गये, कभी कभी ऐसा भी देखा जाता है कि जो व्यक्ति कोई गहना पहने हुए हैं, जो जेवर पहने हुए हैं उनके हाथ तक काट देते हैं, पैर काट देते हैं। कई बार ऐसी भी घटना भी हो जाती है और फिर भी हमें उन आभूषणों से डर नहीं लगता। कभी सुन भी लेंगे हम तो भी हमें यह नहीं लगता कि कभी यह हमारे साथ भी हो गया तो। वह सब देखने के बाद भी मन में तो रहता है कि हमें भी पहनना चाहिये और पहनना ही पर्याप्त नहीं होता थोड़ा दिखाने का भाव भी आ जाता है। पहनना तो घर के अन्दर भी हो सकता है लेकिन घर के अन्दर दिखाना नहीं हो पाता है घर में कोई देखने वाले हैं नहीं और जो देखने वाले हैं वो तो जानते ही है कि इनके पास यह है लेकिन उस चीज को पहनकर हम बाहर निकलते हैं। अनेक बाजारों में जाते हैं, स्थानों पर जाते हैं और उसको लोग जब देखते हैं तब हमें लगता है कहीं पहनना सार्थक हुआ है। उसे दिखाते हुए कभी यह विचार नहीं आता है हम जो दिखा रहें हैं यह दिखाना भी हमारे लिए हानि का कारण भी हो सकता है। किसी चोरों, लुटेरों की नजर पड़ गयी तो वह कभी ना कभी उसको प्राप्त करने की सोच सकता है और अपने तरीके से अपना काम कर

मोही व्यक्ति दूसरों पर आई विपत्ति को देखकर भी स्वयं के लिये नहीं सोचता है।

सकता है। ऐसा जब तक विचार नहीं आता तब तक हम विपत्तियों से नहीं बच पाते हैं। विपत्तियों से बचने के लिए आपको और कुछ नहीं सोचना।

रोग के कारण :

आचार्य देव यहाँ कह रहे हैं कि जो आपके आस पास घटित हो रहा है उसको देखो, उसको ही जानो। आपको यदि रोग हो गया तो आप विचार करो कि यह रोग क्यों हो गया? और उस रोग के कारण हम भी तो नहीं अपना रहे हैं।

आप एक क्षण विचार कर सकते हो लेकिन आदमी यह विचार नहीं करता। आदमी सुन तो लेगा फलाने को कैंसर हो गया, फलाने को ट्यूमर हो गया, फलाने को पेट में दर्द हो रहा है उनका यह ऑपरेशन हो गया लेकिन किस कारण से हो गया और वो कारण भी आपको ज्ञात है फिर भी अपने प्रति उपेक्षा किये जाओ तो आपकी अज्ञानता कहलायेगी। इसी को यहाँ मोह और मूढ़ता कहते हैं। होता यह है हर व्यक्ति अपने अन्दर यह सोचता है कि यह हमारे साथ नहीं होगा। यह केवल उन्हीं के साथ हो रहा है। बीमार हो गया वो हुआ। कोई भी आफत आ गयी उसके ऊपर आयी। आग लग गई उसके घर में लग गयी। घाटा हो गया उसकी दुकान में हो गया। उस भाई के यहाँ accident हो गया। कभी भी आदमी यह विचार नहीं करता कि same can be happen with me. यह जैसा का तैसा हमारे साथ हो सकता है और यह विचार करने से वो डरता है। शायद इसी डर को दूर करने के लिए कि हमारे अन्दर यह डर उत्पन्न न हो जाये, आप देखना कि जब भी कैसी कोई घटना मोहल्ले, पड़ोस में घटित होती है तो बहुत सारे लोग इकट्ठे हो जाते हैं और आप उस घटना के बारे में कुछ सोच ही नहीं पायेंगे, यह भी एक मानसिकता है। यह भी एक सामाजिक व्यवहार है। जब किसी भी घटना के विषय में बहुत सारे लोग इकट्ठे हो गये, चर्चा करने लगे तो हर कोई व्यक्ति एक दूसरे को बतायेगा एक दूसरे से चर्चा करेगा, एक दूसरे से कहेगा। अगर एक व्यक्ति वहाँ पर बैठा हो तो वो सोच सकता है कि ऐसा हमारे साथ भी हो सकता है। जैसे ही कोई घटना होती है तो बहुत सारे लोग इकट्ठे हो जाते हैं और उसको अनेक-अनेक बातों में उलझा देते हैं। यह उस कारण से हो गया, ऐसी अफवाहें भी हो जाती है कि आप सही बात को न समझ पाए, न ही सोच पाए। यह जमघट जो लगता है समाज के लोगों का यह इसलिए लगता है कि आपको कहीं सही बात का पता नहीं पड़ जाये। आप उस घटना के बारे में थोड़ी देर भी चिन्तित हो जायेंगें तो वह चीज आपके अन्दर असर कर सकती है इसीलिये आपके अन्दर थोड़ी देर भी चिन्ता उत्पन्न नहीं होने देते। जो आपके आस पड़ोस के, आपके समाज के लोग एक दूसरे के साथ इसी प्रकार से वार्ता करते हैं। इसीलिये भी हमारे मन में यह विचार नहीं आ पाता कि जो हमारे आस पास हो रहा है वो हमारे साथ भी हो सकता है। कितने लोग इस बात को जानते हैं कि अगर कभी कैंसर होता है मुँह में, गले में तो उस कैंसर का कारण हमारा कोई ना कोई ऐसा सेवनीय पदार्थ है जिसके

अपने आस-पास होने वाली घटनाओं को देखो, जानो और समझने का प्रयास करो।

माध्यम से चाहे वह बीड़ी हो, तम्बाखू हो, सिगरेट, पान मसाला हो कुछ भी हो और कितने ही लोग यह जानते हुए भी इसका सेवन करते हैं। आश्चर्य तो तब होता है जब वह लोग भी उस चीज से बच नहीं पाते हैं। मरीज का इलाज कर रहे हैं देख रहे हैं कि यह कैंसर से मर रहा हैऔर उस कैंसर का इलाज करते हैं फिर भी खुद खाना नहीं छोड़ेंगे। स्मोकिंग की बात आ जायेगी तो वो भी कर लेंगे, अपनी डॉक्टरी का भी उपयोग कर लेंगे, इतना धुँआ गया होगा तो दूसरा उसका एन्टी टोक्सिक ले लूँ ठीक हो जाएगा लेकिन वह चीज कहीं ना कहीं असर करती है और यह चीज जब तक उनके दिमाग में नहीं आती तब तक उनको भी मूढ़ और मोही कहा जाता है

भीण्डर में चर्तुमास था। एक medical की दुकान पर काम करने वाला आदमी और वह वहाँ के अध्यक्ष का लड़का, दो लड़के थे, एक ज्यादा आता था और एक कम आता था। जो कम आता था वो तम्बाखू खाता था। जब मन्दसौर चार्तुमास चल रहा था कि खबर आयी कि उसको मुँह में cancer हो गया। बहुत से लोगों ने वहाँ त्याग किया लेकिन उसका नम्बर नहीं आ पाया। अब number कब आये जब आदमी सामने हो तब तो number आये। जब वो बचता ही जा रहा है तो अब इस से बचने का यह फायदा मिल जाता है। जब भी कभी आपको कोई गुरु बताते हैं, साधु समझाते हैं तो आपको लगता है कि हमसे कुछ छुड़ा रहे हैं। यह नहीं सोचते के यह हमारे लिये बहुत बड़ा हित कर रहे हैं। यह हमारे ऊपर बहुत बड़ा उपकार करने जा रहे हैं। उनको छुड़ाकर के तुमसे क्या मिल जायेगा? ऐसा तो है नहीं कि तुम्हारी छोड़ी हुई चीज का सेवन करने लग जाते हो अगर वो ऐसी कोई भी चीज आदत में पड़ी है और उसको छोड़ने की प्रेरणा दी जा रही है तो आपके विचार में भी यह पहले आना चाहिए कि इससे हमारा भला होने वाला है। इससे हमारा ही हित होगा लेकिन विचार में क्या आता है? इसमें इनका कोई भला होने वाला होगा। जो उल्टी विचारधारा चलती है उसी को कहते हैं wrong thinking, negative thinking। इसी के कारण से हम कभी भी यह समझ नहीं पाते कि हमारे आस पास क्या हो रहा है और वो हमारे साथ भी हो सकता है। जब तक यह विचार नहीं आता तब तक हमारे अन्दर मोह है।

गुरु हमें ज्ञान को देकर बताते हैं कि देखो **''दह्यमान मृगाकीर्ण वनान्तर-तरूस्थवत्''** एक जंगल है और जंगल में बहुत सारे वृक्ष है और उस जंगल में बहुत सारे पशु पक्षी भी हैं उस जंगल में एक व्यक्ति बैठा है और वो कहाँ बैठा है, वृक्ष के ऊपर बैठा है, देखता है जंगल में आग लगी है। आग के कारण बहुत सारे पशु पक्षी इधर उधर भाग रहे हैं, इस जंगल से दूर जाना चाह रहे हैं, पशु पक्षी इस जंगल में मरते ही चले जा रहे हैं यह भी देख रहा है। लेकिन उसी जंगल में एक वृक्ष के ऊपर खुद बैठा है और बैठा बैठा दूसरों को देख रहा है और सोच रहा है। यह नहीं मालूम कि यह आग अपने पास आ रही है और आ सकती है और आनी वाली है। आप कहोगे वो तो कोई मूर्ख होगा और हम बड़ी जल्दी उसे मूर्ख कह भी देंगे। उस मूर्ख की मूर्खता भी हमको समझ में आ

उल्टी विचारधारा के कारण आप स्वयं का हित ना देखते हो, ना समझते हो।

जायेगी। आपको बताया जाये कि कभी कालीदास ऐसी जगह पर बैठे थे, पेड़ पर बैठकर जिस शाखा पर बैठे थे उसी शाखा को वो काट रहे थे तो हम बड़ी जल्दी कहेंगे कि इस से बढ़कर मूर्ख कौन होगा और बाद में पता पड़ा कि वह ही सबसे बड़ा विद्वान् निकला। उसने तो अपनी मूर्खता छोड़ दी, विद्वान बन गया। ऐसी स्थिति अपनी चलती रहती है अगर हमें आने वाले डरों से, आने वाले इस संसार के भयों से भय उत्पन नहीं होता है तो हमारे अन्दर कभी भी मोह की कमी नहीं आ सकती है। हम हमेशा देखते रहते हैं, जानते रहते हैं लेकिन फिर भी विचार तो रहता है कि यह उसके साथ हो रहा है हमारे साथ नहीं होगा। क्यों नहीं होगा ? हर कोई व्यक्ति बिल्कुल पक्का करके बैठा रहता है। अभी तो हमारी उम्र ही क्या है? कुछ भी होगा यह तो बुढ़ापे में होता है, इनके साथ हुआ और वो किसी के साथ होता है, अपने साथ ऐसा नहीं होगा। आपके अन्दर कभी भी कोई वैराग्य की घटना घटित नहीं हो पाती है। कई लोग पूछते हैं महाराज क्या हो गया जो आपको वैराग्य हो गया, कौनसी घटना घटी जो वैराग्य हो गया? वैराग्य तो आपको भी घटित हो जायेगा लेकिन आपके साथ भी जो घटना घट रही है उनको आप गौर से नहीं देखतें हो, उसके बारे में विचार नहीं करते हैं और इसीलिए नहीं करते कि हमारे अन्दर वैराग्य हो न जाये। हर व्यक्ति को सबसे ज्यादा डर लगता है तो इसी बात से लगता है हमारा घर परिवार छूट ना जाये, हमें वैराग्य हो न जाये। आप जानोगे राग दुःख का कारण है, राग हमारा स्वभाव नहीं है।

आचार्य कुन्दकुन्द देव और सभी आचार्यों ने समयसार आदि ग्रन्थों में लिखा है कि उस राग के कारण ही संसार में रह रहा है। इस इष्टोपदेश में आप पढ चुके हो–''**रागद्वेषद्वयी दीर्घ-नेत्राकर्षण कर्मणा**'' यह सब राग और द्वेष संसार के कारण हैं लेकिन फिर भी जो वैराग्य का कारण है उससे तो हमें डर लगता ही रहता है। राग से डर नहीं लगता, डर किससे लगेगा ? वैराग्य के कारणों से लगेगा, राग के कारण में तो आनन्द आयेगा। होना उल्टा चाहिये था अगर हमें अपनी आत्मा का कल्याण करना है। मोक्ष मार्ग पर लगना है तो जो राग के कारण है उनसे डर लगेगा और जो वैराग्य का कारण है उनको अपनाये। होता उल्टा है राग के कारणों से हमें आनन्द आता है, उसमें हम बिल्कुल निडर होकर के प्रवृत्ति करते हैं। वैराग्य के कारण में डरते है कि हमें स्वप्न में भी वैराग्य हो ना जाये। अगर कभी किसी को स्वप्न भी आ जाये तो वो डर जाता है। किसी स्वप्न में भी किसी के लिये ऐसा दिख जाये तो आज हम किसी साधु के पास बैठे थे, पिच्छी हमारे सामने रखी थी, हम पिच्छी कमण्डल लिये बैठे थे या हमने किसी साधु से निवेदन कर दिया, उनने हमको दीक्षा दे दी तो सुबह देखो उसकी कैसी हालत होगी। घबराते हुए महाराज के पास आयेगा। महाराज यह बताओ कि यह स्वप्न सच हो जायेगा या गलत हो जायेगा। कहीं सच न हो जाये यह भी डर रहता है और स्वप्न में सब कुछ करने की इच्छा होती है लेकिन वैराग्य का भाव आपको स्वप्न में भी बहुत मुश्किल से आयेगा। आप स्वप्न में पूजा कर सकते हैं, भगवान की स्तुति कर सकते हो

लेकिन स्वप्न में वैराग्य शायद ही किसी को दिखाई देता है। अगर किसी को स्वप्न में वैराग्य दिखने लगेगा तो उसके लिये वैराग्यता वास्तविकता में भी घटित हो सकती है। वे ही सब कारण रहते हैं जो हमारे अन्दर राग-द्वेषों की वृद्धि करते हैं। आप से कहा जाये आज शाम को किसी के यहाँ भोजन है और आपके लिये एक सामूहिक निमंत्रण दे दिया जाये तो आपको दुबारा बुलाने कि जरूरत नहीं है। याद कराने की भी जरूरत नहीं पड़ेगी आपको याद रहेगा कि आज वहाँ भोजन करने जाना है। remind कराने की जरूरत नहीं पड़ती है। अगर शाम को किसी party में जाना है तो इसके लिये आपको पुनः बताने कि जरूरत नहीं पड़ेगी लेकिन यदि कोई धर्म के बारे में कोई सूचना देना है। यहाँ शाम को यदि कोई कार्य होना है, कोई पाठ होना है, कुछ कक्षा विशेष होना है, कोई भी विशेष होना है, तो एक बार बताने से काम नहीं चलता। एक बार बता दिया वो तो भूल गये उसको फिर remind करवाना पड़ता है। अगर कोई time से आगे पीछे आपको बुलाना पड़ जाये तो आपके लिये विशेष रूप से कहना पड़ेगा। यह चीजें आप सुनकर भी अनसुनी कर दोगे और वो चीजें जिनसे हमारा राग बढ़ता है वो अगर थोड़ी सी भी सुनने में आ जाये कि तो आप बिल्कुल तैयार रहोगे, दूसरों से भी कह दोगे। यह अपने अन्दर एक परिणति बनी रहती है। इसी परिणति के कारण से हमारे अन्दर वैराग्य घटित नहीं हो पाता है। इसीलिए आचार्य कहते हैं कि हर व्यक्ति संसार में ऐसे बैठा है जैसे कोई जलते हुए जंगल में किसी वृक्ष के ऊपर कोई व्यक्ति बैठा हो और वह दूसरों को देख रहा है लेकिन अपने को नहीं देख रहा है। आप अगर गौर से देखेंगे आपको दुनियाँ की हर चीज यहाँ पर नष्ट होती नजर आयेगी। नश्वर रूप में समझ में आयेगी लेकिन आप यदि राग की दृष्टि से देखेंगे तो हर चीज स्थिर समझ में आयेगी और आकर्षक समझ में आयेगी। दृष्टि दोनों आपके पास में है। आप राग की दृष्टि से देखेंगे तो हर चीज आपको बहुत आकर्षक लगेगी और अगर उसी समय आप थोड़ी वैराग्य कि दृष्टि रख ले, उसकी अनित्यता की ओर दृष्टि रख लें तो आपको हर चीज मिटती हुई नजर आयेगी। यहाँ तक कि आपको अपना शरीर, अपने आस पास की चीजें यह कभी भी मिटती हुई दिखाई नहीं देगी। उम्र घट रही होगी तो भी आपको यह नहीं लगेगा कि मैं कम हो रहा हूँ आपको लगेगा कि मैं ज्यादा हो रहा हूँ। पहले तो मैं कम जानता था, मुझको सब लोग जानते थे अब मैं बड़ा हो गया हूँ। माने मैं बहुत progress करता चला जा रहा हूँ और यह कभी भी विचार नहीं आयेगा हमारी उम्र घटती चली जा रही है। उल्टी विचारधारा आती है। इन सबके पीछे इसी मोह का परिणाम शामिल रहता है। इसीलिए आचार्य कहते हैं जब आप अपने आस पास की आपत्तियों को नहीं देखोगे तो आपके लिये कभी भी उन आपत्तियों से बचना नहीं हो पायेगा। आपत्तियाँ बड़ी सामान्य होती हैं जो सामान्य रूप में ही आपके लिये वैराग्य दिला सकती है। जब आप पूछते हो आपको वैराग्य कैसे हुआ? आप बस वो ही भजन पढ लेना ''जिंदगी जिन्दा कहाँ है'' और उसमें जो लिखा मिलेगा बिल्कुल सामान्य

राग की दृष्टि से चीजें आकर्षक एवं वैराग्य की दृष्टि से नश्वर नजर आती है।

चीजें लिखी मिलेगी, आपके आसपास सब चीजें आपके लिए वैराग्य का कारण बन सकती हैं। लेकिन वो बन नहीं पाती।

दु:खी कोई प्रीति करके
दु:खी कोई प्रीति बिन
दु:खी कोई पुत्र से तो
दु:खी कोई पुत्र बिन
पुत्र इच्छा में बड़ी
पुत्री की सन्तति से दु:खी
देखकर मुझको लगा कि
जिन्दगी जिन्दा कहाँ है।

अनित्यता :

देखते तो आप भी हैं और देखते हम भी हैं लेकिन देखने-देखने में फर्क होता है। वह फर्क ही बहुत बड़ा फर्क पैदा कर देता है। इसीलिये जब भी कभी आपको आस पास की चीजें देखनी पड़े तो उनमें कभी थोड़ा अनित्यता का ख्याल लाना। नित्यता का ख्याल मत लाना। अनित्यता का ख्याल लाना। आपके लिये शरीर मिला है और इस शरीर से भी आपका राग बढ़ता रहेगा, घटेगा नहीं। राग घटाने के कारणों से आप डरेंगे। अगर आप से कहा जाये तो आपको भय लगेगा, डर लगेगा। आपसे कहा जाये आज आपको extra खाना है तो आपको कोई भय नहीं लगेगा क्योंकि उस खाने से हमारा राग जुड़ा हुआ है। त्याग में हमें डर लगता है। त्याग से ही हमारा हित होने वाला है और राग से हमारा अहित होने वाला है। यह डर हमारे उस मोह के कारण अपने अन्दर पड़े रहते हैं और उन डरों के कारण से हम अपने आपको उभार नहीं पाते हैं। उस डर में ही एक दूसरे को हम देख भी लेते हैं तो भी हम यह सोचते रहते हैं कि यह भी ऐसा ही है और हम भी ऐसे ही हैं इसीलिए भी हमारा डर बहुत कुछ कम हो जाता है। दूसरों के लिये हम विपत्ति तो पैदा कर सकते हैं लेकिन दूसरों की विपत्ति को देखकर हम सोच नहीं सकते। जंगल की बात चल रही है उसी जंगल में एक आदमी दौड़ता हुआ गया क्योंकि उसके पीछे शेर पड़ा था। दौड़ते दौड़ते वह एक वृक्ष के ऊपर जाकर बैठा और वहाँ वृक्ष पर जाकर बैठा तो उसको पता पड़ा कि उस वृक्ष पर पहले से एक भालू बैठा है। वहाँ पर शेर दौड़ता हुआ आया और वह शेर भी वहीं आकर के खड़ा हो गया। उसने देखा कि यह आदमी पेड़ पर चढ़ गया। यह घटना जब हम पढ़ते थे शायद 11th या 10th की किताब में supplementary एक english book आती थी उसमें शायद पढ़ी थी। आपकी भी किताबों में कहीं आती होगी और उस घटना को आज भी जब ध्यान में लाते हैं तो लगता है कि देखो! आदमी अपने लिये कितनी चालाकियाँ करता है और अपनी चालाकी के लिये दूसरों का अहित भी करना

आस-पास की चीजों को देखकर अनित्यता का ख्याल लाने से राग घटता है।

चाहता है। लेकिन अपने आप का बचाव हो जाये, अपने लिये दूसरों का अहित हमें करना पड़े उस से उसको डर नहीं लगता। शेर नीचे बैठा इस ताक में है कि यहाँ से यह आदमी उतरेगा तो हम इसका शिकार करेंगे। वो देख रहा है यह आदमी जल्दी से पेड़ पर चढ़ गया और उसी पेड़ पर भालू भी बैठा है। अब वो यह सोचता है इन दोनों में से कोई भी एक मिल जाये तो हमारा काम हो जायेगा। देखो! पशु पक्षियों की घटना भी एक बहुत बड़ा संदेश देती है। उसके दिमाग में एक चीज आती है अपनी बिरादरी का है कौन ? यह भालू तो अपनी बिरादरी का है अपनी बात मान जायेगा। वो पहले उससे कहता है कि देख! तू अगर इस आदमी को नीचे गिरा दे तो तेरी भी जिन्दगी बच जायेगी और मैं यहाँ से चुपचाप चला जाऊँगा। भालू कहता है देखो! मैं किसी का बिना वजह अहित नहीं कर सकता। उसको मैं अगर इस ढंग से गिरा दूँगा तो उसका मेरे ऊपर से विश्वास उठ जायेगा क्योंकि हम दोनों की आपस में बात हो गयी है कि नीचे शेर खड़ा है और अपने को किसी को भी नीचे नहीं उतरना है और जाग्रत रहना है। अगर सोना भी पड़े तो थोड़ी देर तुम सो लेना और थोड़ी देर हम सो लेंगे। जब हम सो जायें तो तुम जागते रहना और जब तुम सो जाओ तो हम जागते रहेंगे। उस शेर ने अपनी पशुओं कि भाषा में उस भालू से बात की तब भालू ने कहा कि अभी वो आदमी सो रहा है और वो इसलिये सो गया क्योंकि मैं जाग रहा हूँ, मैं उसके साथ विश्वासघात नहीं कर सकता हूँ, मैं उसको नीचे नहीं गिरा सकता हूँ। जब शेर ने देखा कि यह अपनी बिरादरी का अपने काम नहीं आ रहा है तो वह चुपचाप बैठ गया। थोड़ी देर बाद जागने का नम्बर मनुष्य का आया और भालू के सोने का नम्बर आया तो उसने आखें बन्द कर लीं और सो गया, मनुष्य उस समय जाग गया। शेर के मन में आया अब यह मनुष्य जाग गया है तो मनुष्य से अपनी बात कहनी चाहिये। वो उस मनुष्य से कहता है देख तू कब तक यहाँ बैठा रहेगा, तुझे तो आखिर उतरना पड़ेगा ही, मैं तब तक नहीं जाऊँगा जब तक कि तू यहाँ से उतरेगा नहीं। अब तेरे बचने का एक ही तरीका है तू अगर भालू को नीचे गिरा दे तो मैं इसका शिकार करके चला जाऊँगा और तेरी जान बच जायेगी। मनुष्य के मन में विचार आ गया अगर मेरी जान बचती है तो बच जाये दूसरे कि जान जाती है तो चली जाये। ठीक है मैं तेरी बात मान लेता हूँ और उसने मन बना लिया उसको गिराने का। जैसे ही उसके ऊपर हाथ लगाया वो जाग गया क्योंकि पशु की आदत होती है थोड़ी सी आहट में जग जाते हैं। जैसे ही जगा तो उसने आदमी की तरफ देखा वह डर गया। कुछ नहीं, कुछ नहीं। मैं तो ऐसे ही देख रहा था कि आप सो रहे थे या जाग रहे थे। जैसे ही उसके मन में यह विचार आया कि कहीं इसने मेरी भावना पहचान तो नहीं ली। उसने सोचा मैं अब बच नहीं सकता हूँ, यहाँ ऊपर भी मेरी खैर नहीं है। वह विपत्ति में पड़ गया। जब उसने देखा कि यह भालू उसके हाथ मात्र लगाने से जग गया है तो वह उसकी भावना को समझ गया है तब उसने उसको नीचे पटक दिया। जब तक आदमी एक दूसरे के साथ में विश्वास करेगा तो उसका जीवन सुरक्षित रहेगा और

चालाक मनुष्य स्वयं के हित के लिये दूसरों का अहित करने से भी नहीं चूकता।

जैसे ही एक दूसरे के साथ विश्वासघात करने लगेगा उसका जीवन असुरक्षित हो जायेगा। उस घटना से इतनी बड़ी सीख मिलती है कि अपना हित करने के लिये हमें कभी दूसरे का अहित नहीं करना चाहिये। आपको ऐसे लोग भी जमाने में बहुत सारे दिख जायेंगे जो अपना हित करने के लिये दूसरों का अहित करते रहते हैं। ऐसे लोग बहुत कम मिलेंगे जो अपना हित करने के लिये दूसरे का हित करने के लिये सोचे, अपना भी हित करे व दूसरों का भी हित करें। ज्यादातर लोग अगर बात भी बोलते हैं, वचन भी बोलते हैं तो आप देखना वचनों में भी कोई हितपना दिखाई नहीं देगा।

आचार्यों ने कहा है वचन भी चार प्रकार के होते हैं एक वचन वह होता है जो प्रिय होते हैं व हितकारी होते हैं व एक वचन वह होते हैं जो अप्रिय होते हैं लेकिन अहितकारी होते हैं। तीसरी quality के वचन वह होते हैं जो अप्रिय होते हैं लेकिन हितकारी होते हैं और चौथी quality के वचन जो प्रिय होते हैं व अहितकारी होते हैं। आपके लिये कौनसी quality के वचन सबसे अच्छे लगेंगे बताओ। आप कहेंगे जो प्रिय भी हो और हितकारी भी हो। लेकिन आप देखोगे जितने भी लोग आपके आस पास रहते हैं वो आपसे प्रिय तो बोलेंगे लेकिन वो हितकारी नहीं बोल पायेंगे। प्रिय के साथ में वहाँ पर अहित जुड़ा होगा और वो अहित आपको पता नहीं होगा। अप्रिय अहित को तो आप बड़े जल्दी समझ लोगे यह अहित भी है व अप्रिय भी है। लेकिन जो प्रिय होकर के अहितकारी हो वो हमारे समझ में आ नहीं पाता और प्रिय होकर के हितकारी होना या अप्रिय होकर के हितकारी होना यह दोंनो प्रकार के वचन आपको कभी मिलेंगे तो वो केवल गुरु के वचन होंगे। आपको प्रिय व हितकारी वचन मिलेंगे, कभी अप्रिय भी हो जायेगा लेकिन अहितकारी नहीं होगे। गुरु के वचन शिष्यों के लिये अप्रिय कभी-कभी लग सकते हैं लेकिन उसके लिए हितकारी है। अप्रियपने के साथ में हितकारीपना अगर जुड़ा हो तो उसमें हमें बाधा नहीं है लेकिन प्रिय के साथ में अहितपना जुड़ा हो तो सबसे ज्यादा बाधक वचन होते हैं।

आप देखोगे ज्यादातर चीजें हमारे सामने जब आती है उनमें अहित जुड़ा हुआ रहता है। जैसे मान लो कोई भी चीजें है advertise के रूप में आपके सामने आयी है वहाँ पर भी वचन बोले जाते है। उस advertise में ऐसे वचन बोले जायेंगे जो आपको प्रिय हो देखने में आपको अच्छे लगे, सुनने में अच्छे लगे लेकिन उसके पीछे उनमें अहित छिपा हुआ। होगा उस प्रिय वचन में जहाँ अहित छिपा हुआ है वो हम नहीं देख पाये तो हमारा अहित होना निश्चित है। कुछ चीजें ऐसी होती है जो अप्रिय होगी लेकिन उसमें हमारा हित छिपा रहता है। जब माँ कोई भी चीज अपने बच्चे को देती है तो वह उसके लिए हितकारी होती है लेकिन कभी कभी उसे अप्रिय भी बोलना पड़ता है। अप्रिय बोलकर भी वह उसका हित करना चाहेगी। जो चीज तुम्हें बाह्य बाजार में मिलेगी। advertise में दिखाई देगी। एक दुकानदार तुम्हें जिन चीजों को देगा वो हमेशा तुमसे प्रिय वचन बोलेगा लेकिन अपना माल निकलने की कोशिश करेगा। हर दुकानदार प्रिय बोलने वाला होता है तभी उसकी

दुकान चलेगी। जो माल उसके पास में रखा है वह प्रिय बोलकर ही निकाल पायेगा, अप्रिय बोलकर नहीं निकाल पायेगा। कितना भी पुरानी कम्पनी का माल हो, रिटायर्ड भी हो गया हो out dated हो गया हो तो भी वह निकाल लेगा। आपसे प्रिय बोलकर भले ही उसे यह मालुम हो कि इससे उसको अहित होने वाला है उसे कोई चिन्ता नहीं डॉक्टरों की। मेडीकल की दुकान पर out dated चीजें भी आपको मिल जायेगी और आप उसको समझ नहीं पाओगे और वो आपको दे देंगे और आप उनको ले लेंगे। जितना भी आपका आपसी व्यवहार चलता है यह आपसी माध्यम से चलता रहता हैं। प्रिय और अहितकारीवचन आपके आस-पास के लोगो के माध्यम से मिल जायेंगे लेकिन प्रिय और हितकारी वचन मिलेंगे तो वो आपको साधु सन्तों से ही मिलेंगे। उसमें फिर आप ऐसा करते हो, जितना अपने लिए अच्छा लगा उतना आपने निकाल लिया और जो अपने काम का नहीं था उसको सुनकर अलग कर दिया। प्रिय होगा तो वह प्रिय आपके लिये यहाँ तक अच्छा लग जायेगा लेकिन हितकारी होगा तो आपको यहाँ के बाद भी आपके पास रहना चाहिये था, आपको अच्छा लगना चाहिये था। आप यहाँ से उठकर के हितकारी वचन को छोड़ देंगे, केवल प्रिय बात को याद रखेंगे। आप इस तरह से अपने अन्दर हमेशा विभाजन करते रहते हैं इस कारण से हित अपना अपने से टूटता चला जाता है और वह हित हमारे अन्दर समाहित हो नहीं पाता है। इसीलिये आचार्य कहते हैं इस संसार रूपी जंगल में हर कोई जल रहा है हर किसी के ऊपर आपत्तियाँ आने वाली है लेकिन वह अपनी आपत्ति को इस रूप में नहीं देखता कि हमारे ऊपर इस तरीके से आपत्ति आयी है तो हम किसी दूसरों को भी बता सके कि तुम्हारे ऊपर भी आपत्ति आ सकती है तुम इससे बचना, ऐसा कोई नहीं कहेगा। हमेशा संसार में दूसरे की स्थिति को देखकर के आपको मौन संदेश लेना पड़ेगा। इसीलिये जितने भी ज्ञानी पुरुष होते हैं जब उनके अन्दर कोई वैराग्य का कारण बनता है तो उस समय उनके अन्दर बहुत बड़ा मौन छा जाता है, एक सन्नाटा छा जाता है। जब कोई घटना घट गयी हो, आस-पास लोग भी आ रहे हैं लेकिन आप उसी घर के हो तो एक आपके अन्दर शून्यता आ जायेगी, एक सन्नाटा सा छाया रहेगा। अब हम किससे क्या बोलें और किससे क्या कहें? लेकिन वहीं पर यदि ज्ञानी व्यक्ति होगा तो वो सन्नाटे को बहुत देर तक अपने अन्दर महसूस करता रहेगा। उसके अन्दर यह भाव रहेगा कि जैसा वहाँ पर उपस्थित था वैसा ही हमारे अन्दर अभी भी उपस्थित है और वह उस कारण से कुछ कहेगा नहीं लेकिन उसके अन्दर कुछ न कुछ चलता रहेगा। जितने भी वैराग्य को प्राप्त करने वाले जीव होते हैं सब जीवों की परिणति धीरे-धीरे ऐसी होने लग जाती है कि वे संसार की हर स्थिति को देखकर स्वयं समझने लग जाते हैं। स्वयं से अनुभव लेने लग जाते हैं और कुछ समय के लिये मौन साध लेते हैं। जैसे कि आपके घर में कोई गमी हो जाती है तो उस समय पर सन्नाटा हो जाता है ना, ऐसा ही सन्नाटा उसके अन्दर छा जाता है, जैसे अभी सन्नाटा छाया हुआ है। चारों तरफ वातावरण में केवल आवाज आ रही है तो किसकी

advertise में मित एवं प्रिय वचन होते हैं लेकिन पीछे अहित छुपा होता है।

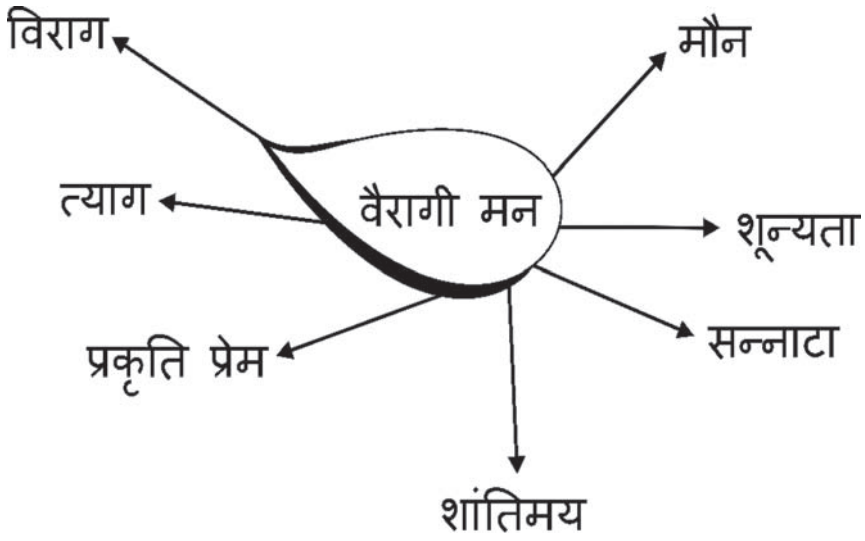

आ रही है पानी की आ रही है ऐसे ही सन्नाटे में बैठे रहने का भाव, ऐसे ही सन्नाटे में बिल्कुल शांत होने का भाव अगर आपके अन्दर आने लगे तो आप समझना इस तरह की शांति की अभिलाषा उत्पन्न हो गयी है क्योंकि वैराग्य भी शांति की प्राप्ति के लिये ही लिया जाता है। राग से हमेशा ऐसे वातावरण को पसन्द करते हैं जिस वातावरण में कोई भी आस-पास न हो बस प्रकृति का ही वातावरण हो, पानी बरस रहा है गरम-गरम पकौडी खायेंगे, मिष्ठान खायेंगे और यहाँ पर योगी लोग क्या सोचेगें अगर यह प्रकृति का वातावरण ऐसा शान्त है तो वो सोचेंगे चलो आज कुछ खाना ही नहीं और कुछ खाना भी पड़े तो कभी इस तरह की भावना उनके अन्दर नहीं आयेगी।

अनशन और अनेषण :

उनके अन्दर भोजन करते हुए भी त्याग की दृष्टि रहेगी और आपके अन्दर भोजन करते हुए और और करने की दृष्टि रहेगी। एक शब्द आता है **अनशन** और एक शब्द होता है **अनेषण।** दो शब्द हैं, अर्थ दोनों का लगभग एक जैसा है लेकिन भावों में अन्तर आ जाता है। अनशन का मतलब होता है अन्न का त्याग। अनशन माने ''न अशन इति अनशन'' माने भोजन का त्याग, भोजन नहीं करना और एक होता है अनेषण इसका मतलब होता है इच्छा नहीं होना। दो चीजें होती हैं इन दोनों में भोजन का त्याग होता है लेकिन अनशन में त्याग की इतनी मुख्यता नहीं होती है जितनी इच्छा के त्याग में होती है। एक भोजन वह है जो राग भाव के साथ किया जा रहा है और एक वो है जो बिना इच्छा के किया जा रहा है। अनशन करेगा तो आपको दिखाई देगा, इसने आज भोजन नहीं किया अनशन तप किया है। अनेषण होगा तो वो आपको दिखाई नहीं देगा। अनेषण में दोनों चीजें हो सकती है भोजन का त्याग करके भी इच्छा का त्याग कर सकता है, भोजन करके

वैराग्य प्राप्त करने वाला व्यक्ति सन्नाटे में बैठकर शांति की अभिलाषा रखता है।

भी इच्छा का त्याग कर सकता है। कभी आपने ऐसा भोजन किया आज हम बिना इच्छा के, बिना राग के भोजन करेगें। बिना राग के भोजन कैसे होगा? आपके सामने कोई भी चीज आये तो आप लेना, यह नहीं सोचना कि यह अच्छी है इसको हमें और लेना है। अगर उसमें कभी नमक कम दिख जाये, मीठा कम दिख जाये तो विकल्प नहीं करना। जैसा है वैसा हम ले लेंगे उसको उस रूप में ही। अन्दर से इच्छा यह रखेगें कि इसको हमें लेना पड़ रहा है और हमारे अन्दर इसको लेने कि कोई इच्छा नहीं है इसका नाम कहलाता है अनेषण। यह भी एक तप होता है जैसे अनशन तप होता है वैसे अनेषण भी तप होता है। अनशन में भोजन का त्याग होता है और अनेषण में उसके प्रति इच्छा का त्याग हो जाता है इसीलिये इच्छा होने के बाद भोजन करना अलग बात है और इच्छा नहीं होने के बाद भोजन लेना अलग बात है। आपको यह अभ्यास कभी नहीं करने को मिला होगा। घर में तो यह सम्भव ही नहीं है क्योंकि रोजाना आप जिस थाली को लगाकर बैठते हो उसमें आपकी पसंद की चीजें सबको मालूम है और आपको इच्छा नहीं भी होगी तो घर के लोग आपको जबरदस्ती परोस देंगे और आप यह अनेषण तप तो कर ही नहीं पाओगे। अनशन कर सकते हो अगर आपने बता दिया हो कि कल हमारा व्रत है तो आप अनशन कर सकते हो लेकिन बिना बताये हुए आप अगर कभी अनेषण करने का भाव करो तो आपको ज्यादा आनन्द आयेगा।

भीतर की इच्छा के अभाव से जो आनन्द आपको उस समय आयेगा जब आप भोजन तो करो लेकिन आप के अन्दर भोजन करने की इच्छा न हो 'इच्छा निरोधो तपः'। महाराज जी! यह सब गृहस्थों के काम थोड़े ही है यह सब तो त्यागियों के लिये, साधुओं के लिये है। लेकिन गृहस्थों के भी षट्आवश्यक कार्य में यह तप भी लिखा हुआ है–पूजा, उपासना, संयम, स्वाध्याय, संयम,तप व दान। तप भी गृहस्थों के आवश्यक में आता है इसीलिये गृहस्थ भी समय-समय पर तिथियों के अनुसार कोई न कोई व्रत तप आदि करता रहता है। एक सद्गृहस्थ हमेशा विचार करता रहता है अष्टमी, चतुदर्शी आ रही है तो हमें इस दिन कुछ न कुछ करना है भले ही वह एकाशन कर लेगा। रोजाना अनेक प्रकार के रसों का सेवन करता था उन रसों में कमी ले आयेगा। वह सोच लेगा आज मैं दुग्ध रस का सेवन नहीं करूँगा, आज मैं लवण रस का सेवन नहीं करूँगा, आज मैं मिष्ठ रस का सेवन नहीं करूँगा। यह भी आपके लिये इन तप में शामिल होता है और इसमें आपके शरीर की कोई हानि होने वाली नहीं है। आपको डर लगता है हमारा शरीर कहीं कमजोर ना हो जाये। एक रस का, दो रस का, तीन रस का अगर त्याग करके तप का पालन कर लिया उस तप के माध्यम से जो कर्म की निर्जरा होगी तो आपको कभी भी भोजन के माध्यम से होने वाली नहीं है। इसीलिये कई बार ऐसे व्रतों को भी ले लेना चाहिये जिनसे कि हमें बाद में अपने आप ध्यान रहे कि अष्टमी आने वाली है, चतुर्दशी आने वाली है। छोटे-छोटे से व्रत भी आप कर सकते हो, भक्तामर स्तोत्र है आप रोजाना पाठ करते हो उसके 48 काव्य हैं, आप अड़तालीस व्रत ले सकते

अनशन अर्थात अन्न का त्याग एवं अनेषण अर्थात इच्छा का त्याग।

हो कभी भी आप उन व्रतों को कर सकते हो। जिस दिन आपको व्रत करना हो उस दिन आप भक्तामर स्तोत्र की पूजा सभी काव्यों के अर्घ्य चढ़ाकर पूजा कर सकते हो। आपके लिये कम से कम इतना तो भाव रहेगा कि हमने अड़तालीस व्रत किये हैं और अड़तालीस बार कम से कम हमें कुछ न कुछ अपने अन्दर संयम लेने का भाव आयेगा। कल्याणमंदिर स्त्रोत पार्श्वनाथ भगवान का स्तोत्र है, चवालीस काव्य हैं। किसी भी तिथि में कभी भी जब आपको अनुकूलता हो, आठ दिन में एक बार कभी भी एक बार कम से कम एकाशन ही कर लो। कम से कम आपके अड़तालीस या चवालीस एकाशन तो हो जायेंगे और ज्यादा करने की इच्छा हो तो वर्धमान स्तोत्र के 64 काव्यों के कर लो। आपके लिए पाठ भी होगा, पूजा भी हो जायेगी, जाप भी हो जायेगी, उस दिन आपका संयम भी पल जायेगा। आपको कम से कम उस स्तोत्र के माध्यम से भगवान के प्रति गहरी श्रद्धा और उत्पन्न हो जायेगी। क्योंकि आपको ध्यान रहेगा हम पार्श्वनाथ भगवान का व्रत कर रहे हैं, हम महावीर भगवान का व्रत कर रहे हैं, हम आदिनाथ भगवान का व्रत कर रहे हैं तो आपके अन्दर भक्ति का भाव बढ़ जायेगा। खा पीकर के भक्ति करना अलग है। लाभ तो वो ही भक्ति ज्यादा देगी जिसमें थोड़ा सा त्याग भी शामिल हो, तप भी शामिल हो। ऐसा जब आप करने लग जायेंगे तो आपकी आदत अपने आप पड़ने लग जायेगी। फिर आपके लिये यह जो तप बताये जा रहे हैं वो भी आसानी से हो जायेंगे। जब आपके लिये ऐसा कोई समय आये तो आप उस समय अपनी इच्छाओं का त्याग भी आसानी से करें। आपका हित होना चाहिए और हो नहीं पाता उसी कारण हम कभी भी यह समझ नहीं पाते कि जो आपत्तियाँ दूसरों पर आ रही हैं वो आपत्तियों हमारे ऊपर भी आ सकती हैं। अगर आप कभी इस तरह से तप नहीं कर सकते हो, इस तरह अपनी इन्द्रियों का संयम नहीं करते हो या इस तरह से अपनी इच्छाओं को नियंत्रित नहीं करते हैं तो बुढ़ापे में बहुत बड़ी परेशानियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। राग छूटता नहीं है बुढ़ापे में बढ़ता चला जाता है और उसके कारण से आप देखोगे बीमारी बढ़ती चली जायेगी और वो बीमारी बढ़ेगी तो अनेक प्रकार के रोगों की पीड़ाएँ भी बढ़ती चली जायेंगी। आप आस-पड़ोस में वृद्ध जनों को देख लो जो अपनी अस्सी वर्ष की उम्र में भी चाट-पकोड़े खाना छोड़ पाते हैं क्या? नहीं छोड़ पाये। जिंदगी में कभी ऐसा कुछ किया नहीं अब बुढ़ापे में छूटता नहीं, इच्छा बराबर रहती है और खा लेते हैं तो चार दिन तक बीमार पड़े रहते हैं। यह आपत्तियाँ भी आपको महसूस करनी चाहिये और इनसे बचने के लिये आपको उपाय करना चाहिये। अगर पहले से हर चीज आपके घर में pre plan करते हो, हर चीज पहले से योजना बनाते हो ऐसे ही अपना बुढापा अच्छे से गुजरे, अपनी मृत्यु अच्छे से हो इसके लिये भी आपको pre plan करना पड़ेगा। यह pre plan करके चलोगे तभी आपके लिये आगे बुढ़ापा अच्छे ढंग से गुजरेगा शांति के साथ, धर्म के साथ।

सद्गृहस्थ संयम पालन हेतु सदैव तत्पर रहता है।

जिस पेड़ पर बैठे हो वो जलेगा तब उतरोगे नीचे, कब उतरोगे जब चारों ओर से आग घेर लेगी? वो बैठा बैठा सोच रहा है– यह जल रहा है, वो जल रहा है, यह पशु मर रहा है, अपन बिल्कुल सुरक्षित बैठे हैं ऐसे ही आप लोग सुरक्षित बैठे हैं आपको थोड़ा सा लगना चाहिये कि हमारे चारों ओर भी आग जल रही हैं और हम भी उसमें कदाचित् असुरक्षित है। हमारे लिये भी कभी बुढापा आये तो इस प्रकार से अनेक रोग उत्पन्न न हो, जवानी भी अच्छे से निकल जाये। थोड़ा सा संयम बना के रखोगे तो आपके लिए सुरक्षा बनी रहेगी और यह सोचते रहोगे कि जब आयेगा तब देखेंगे फिर क्या होगा? आग लगने के बाद उस आग में जलना ही पड़ेगा। बचने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इस तरह से आपको यह समझना है कि यह केवल उपलक्षण मात्र है कि जैसे कोई व्यक्ति जंगल में बैठा है वो तो एक उदाहरण है। उस उदाहरण से हमें कितनी चीजें जो हमारे आसपास है उन सबको हम समझ सकते हैं कि जो भी आपत्तियाँ विपत्तियाँ किसी दूसरे के ऊपर दिखाई दे रही है वो सब हमारे ऊपर भी घटित हो सकती है, उनसे बचने का हम कोई उपाय ढूँढ़ ले। हर विपत्ति से बचने का उपाय है आप ढूँढ़ने का प्रयास करोगे तो वो विपत्ति से आपको बचने का उपाय। भी मिल जायेगा। वह उपाय आपको धीरे–धीरे इसी ग्रन्थ में मिलते चले जायेंगे। लेकिन आपको उपाय जानकर भी जब तक उपयोग में नहीं लाओगे तब तक उनसे आपको कोई लाभ मिलने वाला नहीं है।

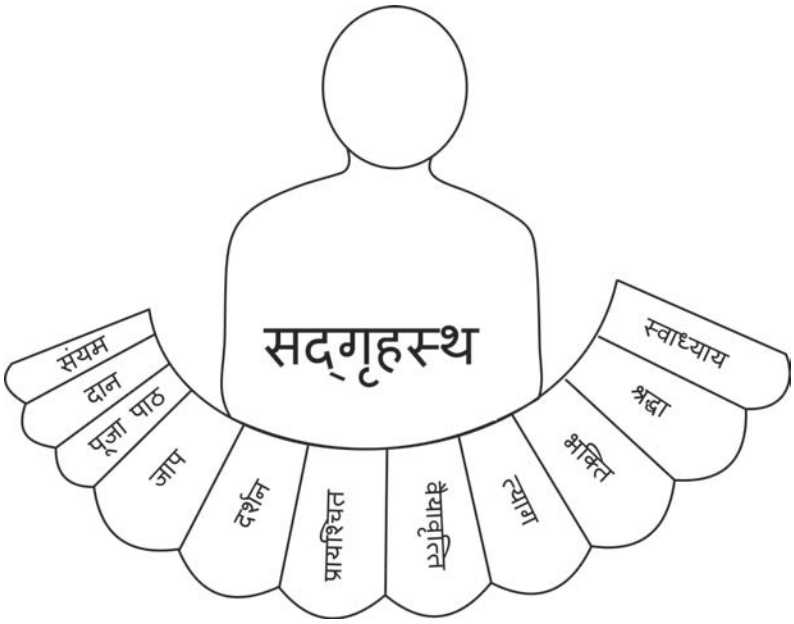

आधुनिक जीवन में सभी चीजों के साथ बुढ़ापा और मृत्यु को भी plan **करें।**

लोभ अंधा बना देता है

15

आयुर्वृद्धिक्षयोत्कर्षहेतुं कालस्य निर्गमम्
वाञ्छतां धनिनामिष्टं जीवितात्सुतरां धनम्॥

अन्वयार्थ—(कालस्य निर्गमम्) समय का व्यतीत होना **(आयुर्वृद्धि-क्षयोत्कर्ष-हेतुं)** आयु क्षय और धनवृद्धि का कारण है **(वाञ्छतां धनिनां)** धन चाहने वाले धनवान् पुरुषों को **(जीवितात्)** अपने जीवन से भी **(सुतराम्)** अधिक तरह **(धनं इष्टम्)** धन इष्ट होता है।

- **चार प्राण**
- **श्वाँसोच्छ्वास**
- **जीवन का अर्थ**
- **जीव और जीवन**

जीवों की जो मानसिक परिणतियाँ हैं उनका उल्लेख करते हुए आचार्य कह रहे हैं कि काल तो बीत ही रहा है, समय हर समय पर गुजर रहा है और उस काल के गुजरने के साथ-साथ इसकी आयु का क्षय भी होता है, हर समय आयु कम होती है और आयु कम होने के साथ-साथ इसके अन्दर कुछ वृद्धियों का उत्कर्ष होने लग जाता है धन आदि का उत्कर्ष होने लग जाता है तो इस अच्छा जो लगता है वो अपनी आयु नहीं लगती, अपना जीवन नहीं लगता, धन आदि अच्छे लगने लग जाते हैं। यहाँ पर आचार्य देव कहते हैं कि इस संसारी प्राणी की स्थिति तो देखो कि इसे अपने जीवन से ज्यादा धन अच्छा लग रहा है। यह इस बात का विचार नहीं करता कि मेरी आयु का क्षय हो रहा है, मेरी आयु समाप्त होती चली जा रही है, थोड़ा हमें इस बात का दु:ख हो क्योंकि जीवन तो आयु के साथ ही चलता है और जब तक आयु है तब तक जीवन है। आयु कर्म के कारण से ही हर प्राणी का जीवन चल रहा है। अब जो मूल तत्त्व है जिससे जीवन चल रहा है उसका व्यय हो रहा है तो उससे उसको कोई दुख नहीं है। किंचित् मात्र भी उसके अन्दर कोई म्लानता नहीं आती। उसके दिमाग में शुरू से ही यह फीड हो जाता है और अपने आप वह जैसे-जैसे बड़ा होता चला जाता है उसका जीवन संचालित होता जाता है। सोचता चला जाता है कि हमें अब धन कमाने के लिए ही आगे बढ़ना है और धन कमाना ही मतलब है कि अपने जीवन का उत्कर्ष। जीवन की वृद्धि हो रही है, जीवन का मुख्य उद्देश्य क्या था? जीवन कहाँ से शुरू हुआ था यह तो हमने उसको बताया ही नहीं। उसको सीधा-सीधा यह बता दिया कि तेरे लिए जीवन आगे बढ़-चढ़कर होगा तो वह धन के माध्यम से होगा। यहाँ आचार्य कहते हैं कि इन लोगों की यह दशा तो देखो कि उस नश्वर धन के पीछे अविनश्वर जीवन की कीमत नहीं समझ पाते। पिछले 13वें नं. के सूत्र में उस धन के लिए विशेषण दिया था एक 'नश्वर धन' और उस नश्वर के कारण से अविनश्वर को नहीं समझ पाते क्योंकि जीवन अपना अविनश्वर है। जीवन अपने मूल चेतन तत्त्व से शुरू होता है और उसी चेतन तत्त्व का जब विकास होता है तो संसार दशा में यह विकास होते-होते यह इन पाँच इन्द्रियों की 4 प्राणों को जब यह धारण कर लेता है तो यह उसका विकास कहलाता है।

आपने पढ़ा होगा **''तिक्काले चदुपाणा बल-माउ-आणपाणो य: ।'' रवहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दूचेदणा जस्स**। जीवन बताने के लिए ही यह सूत्र आया है। कि मनुष्य का जीवन हो या किसी भी संसारी प्राणी का जीवन हो। उसका जीवन तीनों कालों में (वर्तमान, भूत, भविष्य) इन चार प्राणों से चलता है इन्द्रिय बल, आयु व श्वाँसोच्छ्वास। इन चार प्राणों की वह थोड़ी-थोड़ी वृद्धि कर लेता है तो वह एक इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय हो गया तो उसके प्राण बढ़ गये। मतलब उसका जीवन बढ़ गया, जीवन अपने आपमें उत्कर्ष को प्राप्त हो गया। एक इन्द्रिय से वह पंच इन्द्रिय बना। पहले उसके पास मूल रूप में तो इन्द्रिय प्राण हैं परन्तु जैसे-जैसे इन्द्रियाँ बढ़ती

आयु कम होने का दु:ख नहीं होता, धन बढ़ने की खुशी में इंसान खोया रहता है।

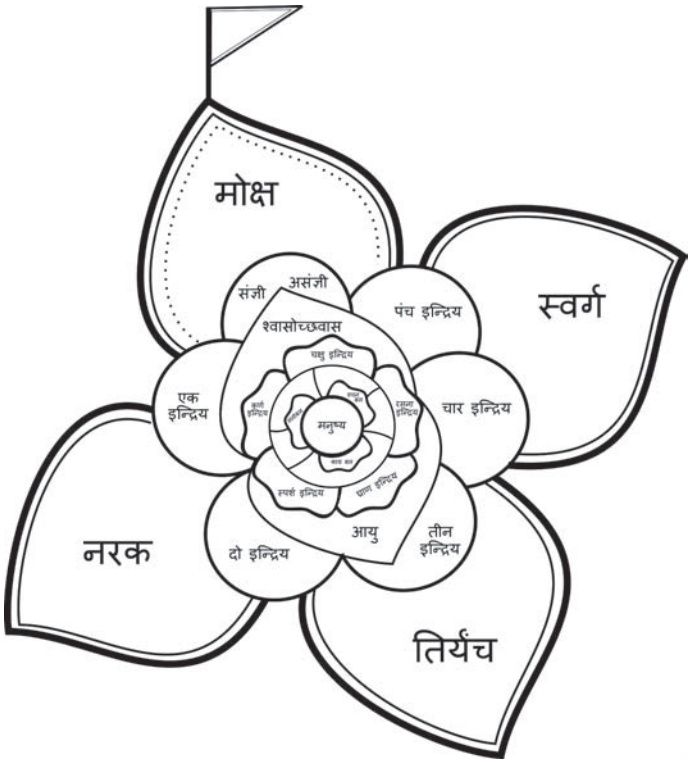

हैं उन प्राणों की संख्या भी बढ़ने लग जाती है। जब वह जीव पाँच इन्द्रिय हो गया तो उसके पास में इन्द्रिय प्राण अब पाँच-पाँच हो गये। इन्द्रियाँ उसके प्राण बन गये, उसका जीवन बन गये। तीन पाँच प्रकार के बल उसका जीवन बन गये क्योंकि उसके बिना वह जी नहीं सकता है, किसी भी बल में कमी आ गयी समझ लो उसकी प्राण शक्ति में कमी आ गयी। इन्द्रियाँ, बल, आयु और श्वाँसोच्छ्वास जिसकी जितनी ज्यादा आयु है उसका उतना ही बड़ा जीवन है और जिसकी श्वाँसोच्छ्वास भी जिसकी जितनी गहरी है, लम्बी है उसका उतना ही बड़ा जीवन है।

इस सूत्र को कभी आपने इस ढंग से नहीं सुना होगा जिस ढंग से मैं आपको बताने जा रहा हूँ क्योंकि आपने इतना ही सुना है कि इन्द्रियाँ पाँच होती है तीन बल, आयु मिल गयी, और श्वाँसोच्छ्वास। लेकिन यह जीवन वृद्धि को प्राप्त हुआ है इन्हीं बलों की, इन्हीं प्राणों की, इन्हीं आयु और इन्द्रियों की श्वाँसोच्छ्वास इन सबकी वृद्धि से ही यह जीवन बढ़ा हुआ है। इसलिए आप इस दुनियाँ के अन्दर, अनन्त-अनन्त जीव हैं, उन सब जीवों में आप बड़े जीव कहलाते हो। एक इन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन, चार इन्द्रिय से भी बड़े हो, पाँच इन्द्रिय में भी पशु में बड़े और नारकियों से भी बड़े हो और देवों से भी बड़े हो, सबसे बड़े हो। लेकिन आपको कभी ऐसा महसूस ही नहीं

इंद्रिय, बल, आयु और श्वासोछ्वास इन चार प्राणों से जीवन चलता है।

होता कि इन्द्रियों के माध्यम से मैं बड़ा हुआ हूँ। कभी आपने यह महसूस ना किया होगा और ना कराया होगा कि आपके ज्ञान में यह बात आ ही नहीं सकती कि यह पाँच इन्द्रियाँ हैं तो पाँच इन्द्रियाँ भी हमारे लिए बहुत बड़ा जीवन दे रही हैं। इसी से हमको सब कुछ समझ में आ रहा है। इसी से हमारे अन्दर सब प्रकार का ज्ञान उतर रहा है और इन पाँच इन्द्रियों के साथ में मनोबल, वचनबल, कायबल यह तीन बड़े-बड़े बल हैं आपके पास। इनसे आपको लगता है कि मेरी आयु कम हो रही है किन्तु वह धन की वृद्धि को देखकर के ही खुश हो लेता है कि हमारे पास में पहले हजार रूपये थे अब लाख हो गये। लाख से अब करोड़ हो गये और वह उसी धन की वृद्धि को देखता हुआ संतुष्ट भी हो जाता है। कोई बात नहीं, हमारे पास किसी भी चीज की कोई कमी नहीं हो रही है, हर चीज की हमारे पास में वृद्धि हो रही है। जैसे-जैसे समय गुजरता है हर चीज उसके आसपास बढ़ती हुई दिखाई देती है। मकान भी छोटे से बड़ा हो जाता है, बच्चे भी छोटे से बड़े हो जाते हैं। समाज के सम्बंध भी बड़े-बड़े होने लग जाते हैं सभी चीजें उसको आस पास बढ़ती हुई दिखाई देती है और उसके मन में यह नहीं आ पाता कि जो मूल हमारा जीवन है वह घट रहा है उस जीवन की महत्ता नहीं समझने के कारण से ही धन की महत्ता बढ़ी हुई दिखाई देती है। अगर आदमी अपने जीवन की महत्ता समझने लगे तो उसे धन की महत्ता इतनी ज्यादा समझ में ना आये। धन जड़ होते हुए भी उसके ऊपर प्रभाव डाल रहा है और जीवन अपनी चेतना से सम्बंध रखते हुए भी उसके ऊपर प्रभाव नहीं डाल रहा है। जीवन का सम्बंध जीव से है और जीव का मतलब आत्मा, उसका अपना चेतन तत्त्व। उस जीवन से उसका सम्बंध मूल रूप से जुड़ा हुआ है उसको उसका ख्याल नहीं है लेकिन बाहरी धन, पदार्थ आदि को लेकर के उसके मन में ऐसी संतुष्टि नहीं होती। बहुत गहरा भाव है यहाँ पर कहाँ हिन्दी करने वाले इस श्लोक की अच्छी हिन्दी नहीं कर पाते। इसमें भी जो, हिन्दी लिखी है वो भी कुछ समझ नहीं आती। आचार्य कह रहे हैं कि आयु का क्षय और वृद्धि के उत्कर्ष का हेतु इसको क्रम-क्रम से लगाना है। '**आयुर्वृद्धिः क्षयोत्कर्षः**' आयु की वृद्धि नहीं हो रही है। आयु का सम्बंध है क्षय के साथ और वृद्धि का सम्बंध है उत्कर्ष के साथ। जो चीजें हमारी बढ़ जाती हैं उसे हम अपना उत्कर्ष समझ लेते हैं। हम बहुत ऊँचे उठ रहे हैं और यह दोनों चीजें हो रही है काल के गुजरने के साथ में। इसलिए जिसे धन की बाधा हो रही है तो उसे अपने जीवन से ज्यादा धन अच्छा लगता है धन इष्ट होता है यह इसका अर्थ है मूल से इसका अर्थ यह निकलता है।

इसलिए आचार्य कह रहे हैं कि तुम अपने जीवन का महत्व समझो। आज हर व्यक्ति धन के महत्व को ही समझाता है अपने बेटों को, अपनी बेटियों को। जीवन का महत्व कोई नहीं समझाता है। जैसे ही बच्चा बड़ा होता है हम उसको समझाने लगते हैं कि बेटा बड़े होकर के तुझे बड़ा आदमी बनना है। वृद्धि का उत्कर्ष उसके सामने आ जाता है। बढ़कर के तुम उत्कर्ष को प्राप्त करना है,

जीवन का महत्व समझिए, अपने चेतन तत्त्व आत्मा को जानिए।

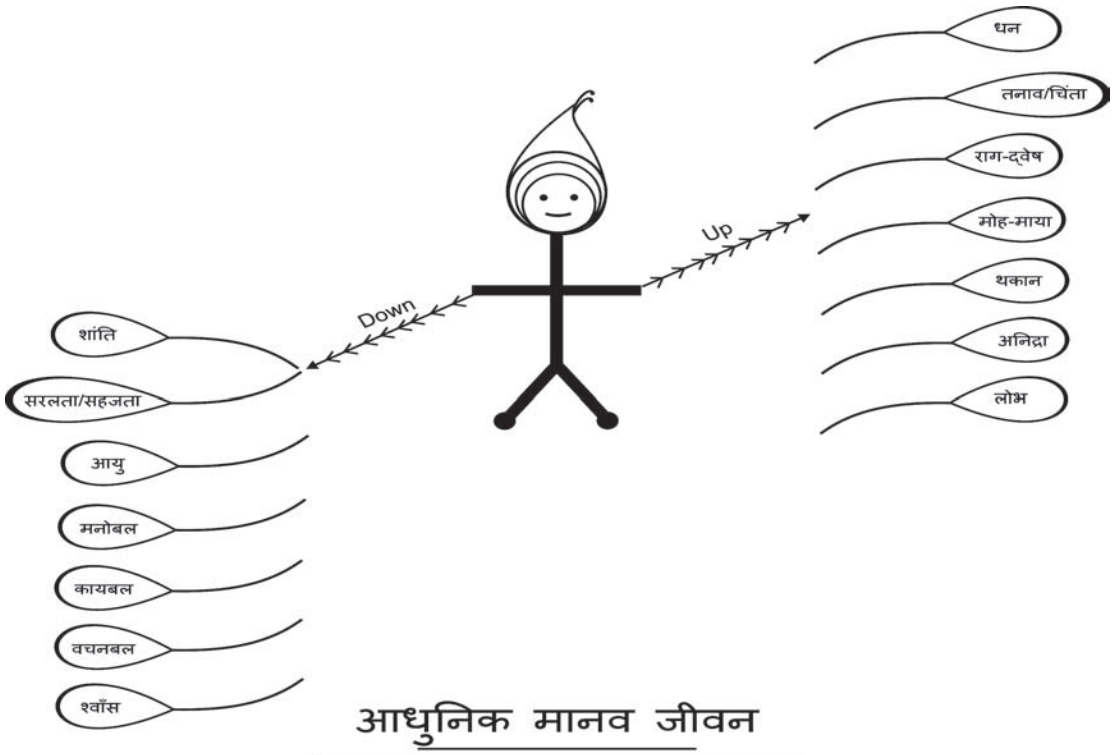

आधुनिक मानव जीवन

बहुत ही एक्सीलेंट आदमी बनना है बड़ा आदमी बनना है। उसके दिमाग में फीड हो जाता है कि बड़ा आदमी कैसे बना जायेगा? जिसके पास में पैसा होता है वह बड़ा आदमी होता है, जिसके पास में अच्छे बड़े-बड़े मकान होते हैं वह बड़ा आदमी होता है। जिसके पास में बड़ी-बड़ी कारें होती हैं, जो जितना ज्यादा खर्च करे वह बड़ा आदमी होता है। यह उसके दिमाग में शुरू से ही फीड हो जाता है कि बड़ा आदमी बनने का मतलब ही है कि हमें अधिक कमाना और हमारे माता पिता भी यही चाहते हैं कि बेटा बड़ा आदमी बनना है, बहुत धन कमाना है।

अब उसको जो कुछ भी सिखाया जायेगा, धन कमाने के उपाय सिखाये जायेंगे। अब उससे कहा जायेगा कि बेटा! तू पढ़ तो उसके दिमाग में फीड किया जायेगा क्योंकि पढ़ने से ही बड़े आदमी बनते हैं। फिर वो सोचता है पढ़ना है तो क्या पढ़ना? उसको सीखाया जाता है बड़ी-बड़ी पढ़ाई पढ़ना, अच्छी आई.आई.टी करना, सी.ए.करना, एम.बी.बी.एस करना तब बड़े आदमी बन पाओगे। जब भी कोई पढ़ने-लिखने वाला बेटा या बेटी सामने आता है तो उसको मैं देखता हूँ तो ऐसा लगता कि इसे पता ही नहीं जीवन क्या है? उसके लिए आशीर्वाद चाहिए होता है कि मैं सी.ए. में पास हो जाऊँ, मेरी जॉब लग जाए, मेरा आई.आई.टी में सिलेक्शन हो जाए। कोई यह चाहता ही नहीं कि मेरा जीवन अच्छा बन जाये या मुझे जीवन की पहचान हो जाए। अब पहले आपको

समझ पैदा करानी होगी कि जीवन है क्या? जब यह समझ आपके अन्दर आ जाये, आपके बेटे-बेटियों में आ जाये तो उनके चेहरे कभी भी मुर्झाये हुये नहीं दिखेंगे। उनके चेहरे मुर्झाये हुए टेंशन में दिखते हैं और वो इतनी बड़ी परेशानी बन गयी कि उन्हें ना सांसों का ख्याल है और ना अपनी इन्द्रियों का ख्याल है, ना अपने मन, वचन, काय बल का ख्याल है और उसी टेंशन के कारण से उनका मनोबल गिर रहा है। मन, बल प्राण में कमी आ रही है। अगर मन, बल प्राण में कमी आ रही है तो आपका जीवन आप स्वयं के लिए उसका ह्रास कर रहे हैं। एक तो आयु से ह्रास हो रहा था वो तो अलग है लेकिन अगर आपने अपने मनोबल में कमी लायी तो यह आपने अपने चिंता के कारण से उसका ह्रास करना शुरू कर दिया। आपके जीवन में अगर यह चिन्ता बढ़ गयी कि आपका मनोबल कम हो गया तो आपके जीवन में जो मन की एनर्जी है वो पूरी की पूरी काम नहीं करेगी और जीवन डाउनवर्ड होता चला जायेगा। आपके जीवन की वह ऊर्जा फिर किसी काम में नहीं लगेगी और वह जीवन धीरे-धीरे मनोबल के साथ में वचनबल में भी कमी लायेगा। काय बल व इन्द्रियों में भी कमी लायेगा। यह सभी बल हमारा जीवन हैं और अगर यह समझ में आये कि हमें अपने जीवन को पूरे बल के साथ में जीना है, कोई भी चीज जो बाहर की है वो हमारे जीवन को बढ़ाने के लिये होनी चाहिए, न कि हमारा जीवन उन चीजों को बढ़ाने के लिये हो। बाहर की चीजों में हमें हमारा जीवन बढ़ना चाहिए। हमारा मनोबल बढ़ना चाहिए। हमारा वचन-बल बढ़ना चाहिए। हमारा काय बल बढ़ना चाहिए। हमारी इन्द्रियाँ और स्वस्थ होनी चाहिए। हमारी आयु बिल्कुल बैलेंसड होनी चाहिए। हमारी श्वाँसें बिल्कुल अच्छी होनी चाहिए। लेकिन हम अपने जीवन को खपाते हैं इसमें धन कमाने के लिए, जॉब करने के लिए, सुबह से शाम तक उस जॉब में थके रहने के लिये, अनेक प्रकार से हम अपने जीवन को उन चीजों को प्राप्त करने में खपाते हैं जो चीजें नश्वर हैं और उनको प्राप्त करने के बाद में भी कुछ मिलने वाला नहीं है। अन्ततः उसे पड़ा ही रह जाना है और उसको जब तक यह समझ में आयेगा कि इस जीवन में हमने जो कमाया वो हमारे कुछ भी काम में आने वाला नहीं है। आपकी थकान से, आपके शरीर में चिन्ता से अगर आपके फेफड़े खराब हो गये अब दुनियाँ की कौनसी चीज है, कौनसा पैसा है जो आपके फेफड़ों को सुधार दे। अगर आपके एक बार फेंफड़े खराब हो गये, श्वाँस लेने की क्षमता गड़बड़ा गयी, आप पूरी श्वाँस ले नहीं पाते उससे पहले श्वाँस बाहर फिकती है। यह अनेक प्रकार के श्वाँस रोग होते हैं श्वाँस, श्वाँस, दमा इत्यादि और यह अगर हो गये तो जितना भी रुपया जमा है कभी भी आपको जीवन नहीं दे पायेगा क्योंकि आपने अपने जीवन की हानि करके कमाया है कभी भी अपने जीवन की हानि करके बाहरी चीजें नहीं कमानी चाहिए।

श्वासोच्छ्वास :

इसलिए आचार्य कहते हैं कि अपने जीवन को समझो, कहाँ से शुरू हो रहा है? जीवन का मतलब हम जिन प्राणों के साथ में है वो हमारा जीवन है। दुनियाँ की जो चीजें हैं वो इस जीवन

अपने जीवन की हानि करके बाहरी वस्तुयें नहीं कमानी चाहिये।

को सम्भालने में काम आनी चाहिए। इसमें किसी भी इन्द्रिय में कमी आती है, किसी भी बल में कमी आती है, आयु में कमी आती है, श्वाँसोच्छ्वास में कमी आती है तो समझना जीवन घटने लगा। श्वाँसोच्छ्वास का भी बड़ा महत्व है। अगर आप ढंग से श्वाँस लेना नहीं जानते तो आप पूरी जिन्दगी, पूरी उम्र जी नहीं सकते हो। जितना ज्यादा आप अपनी श्वाँस पर ध्यान देंगे आप अगर गहरी लम्बी श्वाँस लेना जानते हैं तो आपका जीवन पूरा चलेगा नहीं तो आपकी श्वाँस के कारण से आपकी आयु पर फर्क पड़ेगा और आपकी आयु भी कम हो जायेगी। जिन लोगों की श्वाँस अधिक चलती है जल्दी हाँफ जाते हैं, आप देखना कि उनके लिए पूरा जीवन नहीं मिल पाता है। श्वाँस हाँफने लगी, श्वाँस जल्दी चलने लगी। मतलब आपके फेफड़े अब ढंग से काम नहीं कर रहे हैं। आपका जीवन घट रहा है। जीवन जो श्वाँस से जुड़ा हुआ है, वही श्वाँस आयु से जुड़ी हुई है और आयु इस मन, वचन व काय बल से जुड़ी हुई है और यह बल सब इन्द्रियों से जुड़े हुए हैं। सब एक दूसरे से inter connected हैं। इन सबका आपस में सम्बंध इतना गहरा है कि एक भी प्राण अगर damage होता है तो दूसरे प्राण के ऊपर उसका फर्क पड़ने लग जाता है। इसलिए श्वाँसोच्छ्वास पर ध्यान देना और वो ध्यान आपको ध्यान के माध्यम से ही आयेगा। जिस समय पर आप ध्यान करेगें तब भी आपका ध्यान श्वाँसोच्छ्वास पर जायेगा। आप खा रहे हैं, पी रहे हैं, सो रहे हैं, बैठे हैं इन्द्रियों का उपयोग कर रहे हैं तब तक आपका श्वाँसोच्छ्वास पर ध्यान जायेगा ही नहीं। कभी आपको लगता है कि इस श्वाँस से मेरा जीवन चल रहा है उसकी और थोड़ा ध्यान दें। इसलिए जब भी कभी आपको ध्यान के लिये कहा जाता है तो आपसे कहा जाता है गहरी, लम्बी श्वाँस लें। अपनी श्वाँस पर ध्यान दें। वो श्वाँस से आपका जीवन चल रहा है और जिससे जीवन चल रहा है उसकी तरफ हमारा बिल्कुल ध्यान नहीं क्योंकि वो तो अपने आप चल रहा है। जैसे मशीन चलना शुरू हो जाती है जब तक उसमें power मिल रही है तब तक तो मशीन चलती रहेगी। आपकी मशीन की power आयु कर्म। जब तक वो चल रहा है तब तक आपकी energy चल रही है तब तक आपकी श्वाँसें चल रही हैं तब तक आपको कुछ करने की जरूरत नहीं है। लेकिन फिर भी अपनी मशीन पर ध्यान देने के लिये यह हमें अपनी चीज पर ध्यान देना चाहिए। सबसे पहले इसलिए कहा जाता है श्वाँसोच्छ्वास पर ध्यान दो। जीवन तो अपना वह है जो अपने साथ में है और जो तीनों काल अपने साथ में रहता है। **तिक्काले चदुपाणा** यह चार प्राणों पर ध्यान दोगे तो आपको जीवन की कीमत समझ में आयेगी। इसकी कीमत आपको समझनी चाहिए और अपने बच्चों को भी समझाना चाहिए। अगर आप अपने बच्चों को जीवन में शुरू से समझाओगे कि बेटा जीवन यह है। जीवन इसका नाम है जो तेरे पास है। यह पाँच इन्द्रियाँ, तीन बल, आयु और श्वाँसोच्छ्वास इनको चुस्त-दुरूस्त रखना, इनमें कभी कमी नहीं आने देना और इनमें अगर

कमी आये तो ऐसे कोई भी कारण अपनाना नहीं जिनसे कि इनमें कमी आ जाये। अगर बच्चे को शुरुआत से इतना समझा दिया जाये तो उनके लिए जीवन अपने आप में महत्वपूर्ण बन जाये। वह धन आदि की चिंता में अपने जीवन को नष्ट नहीं करेगा।

जीवन का अर्थ :

हम जिन प्राणों के साथ में हैं वह हमारा जीवन है। दुनियाँ की जो चीजें हैं वे इस जीवन को सँभालने में काम आनी चाहिये तो आपका जीवन बढ़ता चला जायेगा। हर चीज हमारे जीवन में अच्छे ढंग से काम में आनी चाहिए। यहाँ तक की हवा भी हो तो हमारे काम में आये, मौसम भी हमारे काम में आये। कोई भी कहीं भी पानी गिर रहा हो तो वह भी हमारे काम में आये और जब आपके काम में आता है तो आपका जीवन बढ़ेगा। इसलिए आप हमेशा हर मौसम में अपने ढंग बदल लेते हो जीने के, खाने-पीने के, पहनने, ओढ़ने के, रहने-सहने के सब ढंग बदल लेते हो क्योंकि आपको अपने जीवन का बचाव करना है।

बरसात का मौसम आता है, शीतकाल आती है, ग्रीष्मकाल आता है और हर समय पर आप जानते हो कि आपकी इच्छाएँ भी अलग-अलग होने लगती है। खाने पीने की चीजें भी अलग-अलग होने लग जाती है और आपके मन में स्वयं आने लग जाता है कि इस मौसम में हमें यह खाना है। गर्मी का मौसम होगा तो आपको अपने आप ठण्डी-ठण्डी चीजें अच्छी लगेगी। आपका मन भीतर से कहेगा कि इन्द्रियाँ भीतर से माँगेंगी, भूख भीतर से कहेंगी कि हमें ठण्डी चीजें चाहिए। जैसे ही शीतकाल आयेगा तो आपको चटपटी चीजें चाहिए। आपकी इन्द्रियाँ माँगती हैं और आप उन्हें वैसा देते हो तो यह उनका जीवन भी वैसा ही चलता है।

अगर आप उसमें भी असावधानी कर दो तो आपका जीवन वहाँ बिगड़ सकता है। आयुर्वेद में कहा जाता है कि अगर आपको अपनी इन्द्रियाँ अच्छी रखना है तो आप यह भी ध्यान रखना कि किस मौसम में क्या खाना और किस मौसम में क्या नहीं खाना?

ऐसा नहीं समझना कि हर मौसम में हर चीज उपलब्ध है तो हर मौसम में हर चीज खा लो। बे-मौसम की चीज खाओगे तो बे-मौसम चले जाओंगे। हर मौसम की अपनी-अपनी अलग-अलग चीजें है और कुछ चीजें ऐसी भी है जो आपने अगर उस मौसम में ले ली जो उस मौसम में नहीं लेनी चाहिए तो अपको नुकसान भी हो सकता है। सावन का महीना चल रहा है, भाद्रपद का महीना आने वाला है इन महीनों में भी कुछ कहा गया है, कुछ कहावत थी पहले कि **सावन-नींबू, भाद्रपद-मही, कवार-करेला, कार्तिक-दही** इन महीनों में इन चीजों को नहीं खाना है इन सबसे बचना है।

सावन में नीबू नहीं खाना। इस नीबू से आप यह भी समझ लेना की खट्टी चीजें नहीं खाना। और भादों में मही-जो छाछ होती है, नहीं लेना। क्वार में करेला नहीं और कार्तिक में दही नहीं

बरसात में शरीर में वायु और पित्त बहुत जल्दी बढ़ती है।

खाना। अगहन जीरा, पौष में धनियाँ, चैत्र में गुड़, वैशाख तेल, ऐसी अनेक-अनेक चीजें आपके लिए पहले से जीवन को जानने वाले, आयुर्विज्ञान को जानने वाले लोगों ने बताया कि अगर आप इन चीजों का सेवन इन-इन महीनों में करोगे तो आपके नुकसान हो सकता है। यह भी आपके ज्ञान में रहे कि आयुर्वेद कहता है कि जैसे यह बरसात का मौसम है, इस बरसात के मौसम में भी कभी बरसात अधिक होती है कभी बरसात कम हो जाती है, धूप निकल आती है

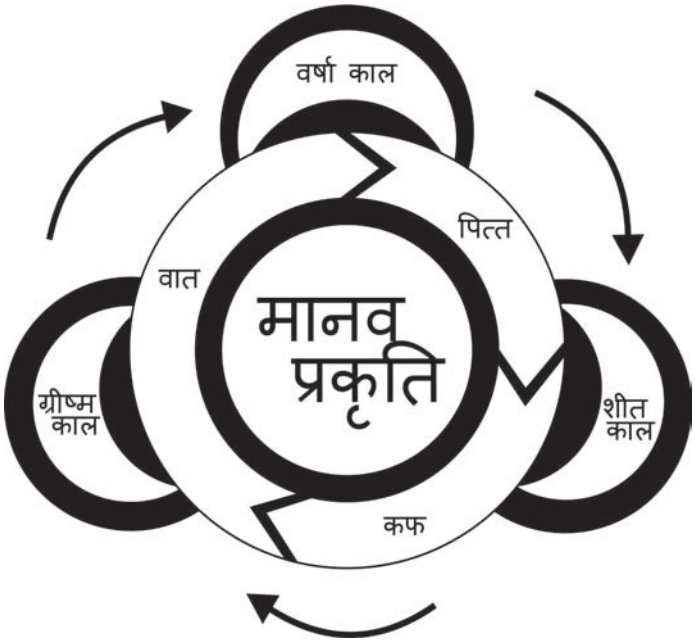

आयुर्वेद कहता है कि इसमें आपके शरीर में दो चीजें बहुत जल्दी बढ़ती हैं- एक वात और एक पित्त। बरसात होगी तो आपकी वात बढ़ेगी। वात का मतलब वायु के जो कारक रोग होते हैं वो बढ़ते हैं। आपको इस बरसात के मौसम में उस वात को control करना और वात को control करने के लिए ऐसी चीजें नहीं खाना चाहिए जिससे वात बढ़ती हो। आपकी पाचन क्षमता बरसात के दिनों में अपने आप कम हो जाती है। गर्मी के दिनों में कम रहती है और वह बरसात होती है तो और कम हो जाती है। जब पाचन क्षमता कम हो जाती है तो शरीर में वो चीजें जो पचने लायक नहीं हैं उनको आप खाओगे तो पहले वात बनाएगी।

जितनी भी गरिष्ठ दालें होती हैं जैसे उड़द की दाल, जितनी भी गरिष्ठ चीजें होती हैं वो सब आपके लिए वात बनाने के कारण बनेंगी। इस मौसम में आपकी पाचन क्षमता अपने आप कम हो जाती है, वातावरण में आर्द्रता बढ़ जाती है और उस कारण से अग्नि मन्द हो जाती है लेकिन आपको ज्ञान नहीं होगा तो आप जैसा खाते आ रहे हो वैसे ही खाते रहोगे तो बीमार पड़ जाओगे। इसलिए आप देखना सबसे ज्यादा अगर डॉक्टरों का सीजन चलता है तो बरसात में चलता है। सबसे ज्यादा डॉक्टरों की कमाई इस बरसात के दिनों में होती है क्योंकि आदमी कुछ जानता है नहीं और अपने खाने-पीने में किसी प्रकार कोई control रखता नहीं और उसको जब रोग हो जाते हैं तो वह doctor की तरफ भागता है।

आयुर्वेद के अनुसार सही खान-पान के द्वारा हम निरोगी रह सकते हैं।

इन दिनों में शरीर के अन्दर जल-तत्त्व अधिक रहता है आर्द्रता बढ़ जाती है वातावरण की आर्द्रता के कारण आपकी पाचन क्षमता पर असर पड़ता है। इसलिए खट्टी चीजें खाने से आपको जल्दी जुखाम बुखार हो सकता है और जो चीजें जिनमें पानी ज्यादा हो जाता है ऐसी चीजें खाने से भी आपके शरीर पर नुकसान पड़ सकता है।

सावन के महीने में कई लोग हरी नहीं खाते क्योंकि जो हरी सब्जियाँ हैं उनमें पानी अधिक हो जाता है। अपने शरीर को पानी की इन दिनों में जरूरत रहती नहीं इसलिए आप अगर हरी सब्जी नहीं भी खाओगे तो भी आपका शरीर चलेगा। इसी तरह से इन दिनों में दूध पीने को भी मना किया जाता है। भले ही आपको दूध पचता हो, आपको फर्क नहीं पड़ता हो लेकिन फिर भी आयुर्वेद कहता है कि आपको सावन के महीने में दूध नहीं पीना चाहिए क्योंकि दूध गाय व भैसों से आयेगा और गाय-भैसें इन दिनों में हरी घास ज्यादा चरती है। उसमें पानी सबसे ज्यादा रहता है और उसमें उस घास का प्रभाव सबसे ज्यादा रहता है इसलिए वह दूध में भी ऐसे तत्त्व आ जाते हैं जिसके माध्यम से वह इन दिनों में पचेगा नहीं। आपको अगर इन चीजों से बचाव होगा तो आपका जीवन अच्छा चलेगा।

जो चीजें सावन मास में नहीं खाने योग्य हैं उनसे आप बच सकते हो, कमी ला सकते हो। इस ढंग से आप चलोंगे तो आपके प्राण भी सुरक्षित रहेगें। इसलिए आयुर्वेद में कहा जाता है कि सावन के महीने में खट्टा और दूध का परहेज करना। इसलिये यह नहीं है कि वह अभक्ष्य हो गया। जब भादों का महीना आये तो मही खाने का परहेज करना (छाछ तकरोती नहीं कहलाती है।) जब क्वार का महीना आये तो करेला खाने का परहेज कर और जब कार्तिक का महीना आये तो दही खाने का परहेज करना और नहीं करोगे तो उसमें लिखा है।

''इन चीजों से बचो नहीं तो मरो नहीं तो परो सही''

मरोगे तो नहीं लेकिन परे रह जाओगे मतलब बीमार तो पड़ ही जाओगे। यह सब चीजें हम आस पास के जीवन से सीखते हैं, जिनके माध्यम से हम अपने जीवन को चलाते हैं, हमें ज्ञान होना चाहिए कि हमारा जीवन किन चीजों से चलता है और किन चीजों से हमारे जीवन के स्त्रोत जो मूल तत्त्व हैं वो बढ़ते हैं।

आपको अगर यह ध्यान नहीं होगा तो आप कभी भी यह समझ नहीं पाओगे कि जीवन की महत्ता कितनी है। ध्यान करने से, योग करने से आपके पूरे शरीर में छवाँस के माध्यम से जो बाहर की oxygen है वह भीतर पहुँचती है। आपका अंग-अंग स्वस्थ होता है। आप अगर कमर झुकाकर बैठे हो, दोनों पैरों को छाती से लगाकर बैठे हो (ज्यादातर औरतें ऐसे बैठती हैं) तो आपको पेट से संबंधित रोग होंगे क्योंकि आपके अगर अपने दोनों घुटने पेट से लगाये तो आप देखना आपकी श्वाँस पेट तक जायेगी ही नहीं। श्वाँस आपनी छाती तक जाकर लौट आयेगी। पूरी श्वाँस नहीं लोगे

आधी श्वाँस लोगे तो जीवन आपका क्षतिग्रस्त होगा। आपके जीवन में कमी आयेगी। इसलिए हमेशा श्वाँस लेने की भी विधि सीख लेना चाहिये। कमर को टेढ़ा करके बैठने से थोड़ा आराम तो मिलता है लेकिन यदि आपकी वह आदत पड़ गई तो रीढ़ झुक जायेगी। अगर रीढ़ में कोई defect आ गया तो जीवन भर झुकी रहेगी। फिर सीधी करना भी चाहोगे तो नहीं हो पायेगी। इन चीजों पर हम ध्यान नहीं देते। दिन भर हमें या तो बैठने का काम है या फिर खड़े होने का काम है। खड़े होने के काम तो बहुत कम होते हैं और खड़ा होगा आदमी तो सीधा होगा उसकी श्वाँस बढ़िया चलेगी। आप जितना खड़े होकर के रह सको जीवन में आप देखना आपके लिए कोई बीमारी ज्यादा नहीं आयेगी। लेकिन आप खड़े ज्यादा रह ही नहीं सकते। आपको तो बैठने के लिए चाहिये या तो कुर्सी या सोफा, गद्दा आदि। बैठने के ढंग अगर आपको नहीं मालूम तो वही बैठक आपके लिए रोग का कारण बन जायेगी। उसी कारण से पेट के रोग होंगे। इसलिए सीधे बैठने की आदत जिसकी जितनी ज्यादा होगी उसको पेट व पीठ के रोग कम होंगे। पेट के रोगों के लिए आपको सही ढंग से oxygen मिलेगी तो पेट के रोग कम होंगे और रीढ़ सीधी रहेगी तो आपको पीठ के रोग नहीं होंगे। जीवन तो इसी पेट और पीठ से जुड़ा हुआ है। जहाँ इन दोनों में कमी आई वहीं सब कुछ मिटता हुआ सा दिखता है। पेट में कमी आयी तो कुछ अच्छा नहीं लगेगा और पीठ में, रीढ़ में कमी आयी तो आपको कुछ अच्छा नहीं लगेगा।

जीव और जीवन :

अगर इन ऊर्जाओं में कमी आ जाती है तो हमारे जीवन के संचालन में अपने आप defect आने लगते हैं। इसलिए आचार्यों ने जो सूत्र दिये हैं कि जीव क्या है और जीवन क्या है उनको समझो। जीव का मतलब निश्चय से तो चेतना जीव है, हमारा चैतन्य प्राण है। उस प्राण तक भी हमारे प्राण नहीं पहुँचते हैं मतलब उस चेतना तक अपने आपको पहुँचाना। अगर वहाँ तक पहुँच गये तो आपके जीवन में कोई बिगाड़ है ही नहीं। अगर वहाँ तक नहीं भी पहुँचे तो अपनी इन्द्रियाँ, अपने बल, अपनी श्वाँसोछ्वास और अपनी आयु पर क्या असर पड़ सकता है, हमारे शरीर पर क्या असर पड़ सकता है अपनी श्वाँसोछ्वास और आयु इन दोनों के चलने में यह चीजें सहायक बनी रहेंगी।

इन चीजों से यह जीवन चल रहा है। इन पर हम ध्यान देना, न अपने बच्चों को सिखाते है और ना हम खुद जानते हैं। जबकि यह कितनी बड़ी-बड़ी चीजें हैं जो हमें स्वतः मिली हैं और भीतर अनेक पुण्यकर्म के उदय चल रहे हैं इसलिए सब चीजें सही ढंग से मिल रही हैं। हमारी दृष्टि वहाँ पहुँचती ही नहीं। कहाँ चेतना है?, कहाँ कर्म है? कहाँ उन कर्मों के अनुभाग शक्तियाँ हैं? कैसे वो साता आदि कर्म हैं जो कर्म उदय में आ रहे हैं? इन सब चीजों पर तो हमारी दृष्टि

पहुँचती ही नहीं। हमारी दृष्टि केवल बाहर-बाहर रहती है। इस बात पर भी दृष्टि नहीं पहुँच पाती कि क्या करने से हमारी इन्द्रियों में क्या खराबी आती है?

आपको कभी बीमारी हुई तो आप यह नहीं सोचोगे कि हम किस कारण से बीमार हुए। आप सीधे डॉक्टर की तरफ भागोगे, बीमार हो गये इसकी दवाई करो, इसका ईलाज करो। यह नहीं सोचोगे कि हम बीमार पड़े क्यों, कल क्या खाया था, हम कल कहाँ घूमने गये थे, हमने कल क्या किया था जिसके कारण से आज हमारे लिए यह बीमारी आयी। कई बीमारियाँ ऐसी होती हैं जो आपके लिए दो दिन में तैयार हो जाती हैं और कई बीमारियाँ ऐसी होती हैं जो 15 दिन में तैयार हो जाती हैं। कुछ ऐसी होती हैं तो महीनों-महीनों पहले से चलती हैं। जब बाद में उनके सिम्पटम दिखाई देने लग जाते हैं तब पता पड़ता है कि यह बीमारी हो गयी।

कम से कम हम उन गहरी बीमारियों को नहीं जान पायें कोई बात नहीं, लेकिन जो तात्कालिक बीमारियाँ होती हैं उनके बारे में भी अगर हमारा ध्यान रहेगा तो हम समझ लेंगे कि हमारा शरीर क्या चाहता है और क्या नहीं चाहता है?

जरूरी नहीं है कि आपको पकौड़े अच्छे लगते हैं तो सबको ही अच्छे लगे, आपको पच जाते हैं तो सबको पच जाये। जरूरी नहीं है कि दूध के item आपको अच्छे लगें तो सबको अच्छे लगें। सबके शरीर अलग-अलग हैं और यह भी ध्यान रखना अगर आपके घर में चार लोग हैं तो आप ऐसा नहीं सोचना कि जो हमें अच्छा लग रहा है हम बना रहे हैं तो वो चार लोगों को suit कर जायेगा। चारों की प्रकृतियाँ अलग-अलग हो सकती हैं किसी को किसी मौसम में कुछ suit करे किसी को कुछ। एक समझदार माँ को भी यह ध्यान रखना पड़ता है कि मेरे बेटे की प्रकृति क्या है? उसको क्या suit करता है क्या नहीं करता है क्या खाने से बीमार पड़ जाता है क्या खाने से यह स्वस्थ हो जाता है यह अगर आपको ध्यान रहेगा तो यह कहलायेगा आयुकाल ज्ञान। आयु का ज्ञान करना ही है कि आप अपने जीवन का संचालन करना जानते हैं अगर आप जरूरत से ज्यादा किसी भी इन्द्रिय को परेशान करेंगे तो उस इन्द्रिय प्राण को धक्का लगायेंगे।

आचार्य महाराज हम लोगों को भी कई बार कहते हैं कि देखो तुम लोग ज्यादा पढ़ने की लालसा मत रखा करो। आचार्य महाराज हम लोगों से कहा करते थे कि तुम लोग हमेशा किताब खोलकर पढ़ने की भी चेष्टा मत किया करो क्योंकि पढ़ते-पढ़ते आँखों पर जोर पड़ने लग जाता है और आँखों पर जोर पड़ेगा तो नेत्र इन्द्रिय पर effect आयेगा। नेत्र इन्द्रिय प्राण है तो हम उन प्राणों को भी कभी आहत नहीं होने दें, पढ़ें उतना ही पढ़ें जितना कि हमारे सिर में दर्द ना हो, आँखों में दर्द ना होने लग जाये। अगर आपको लगता है कि एक घण्टा लगातार लिखने से, पढ़ने से हमारी आँखों में दर्द होता है तो आपको पौन घण्टे में लिखने-पढ़ने के बाद थोड़ा सा ब्रेक ले लेना चाहिए। 10 मिनट का रेस्ट ले लो, बीच में ब्रेक लेना जरूरी है जैसे आप ब्रेकफास्ट करते हो ऐसे ही अपनी

अपने इन्द्रिय प्राणों को चलाने की कला सीखें, उन्हें भी रेस्ट दें।

इन्द्रियों के लिये थोड़ा फास्ट जरूरी है। फास्ट का मतलब उनका उपवास हो जाना, उनके विषय को उनको नहीं मिलना तो इन्द्रियाँ उस समय पर थोड़ा रेस्ट लेंगी वो फास्ट में ही रेस्ट होता है जब रेस्ट लेगी तो उन्हें एनर्जी मिल जायेगी। आप फिर 15 मिनट बाद अपना काम शुरू कर सकते हो लेकिन आपको यह ध्यान रहे कि फिर पौन घण्टे के अन्दर उस चीज से अपनी आँख हटाना है। ऐसा नहीं कि हम दो घण्टे तक computer पर बैठे हैं तो बैठे ही हैं। पता चला कि computer से उठे तब तो आँखें इतनी दुखने लगीं कि सामने क्या है यह ही नहीं दिख रहा है। सिर में इतना दर्द होने लगा कि फिर लेट गये। इसका मतलब है कि अगर हमें उस चीज से परेशानी हुई है तो हमने इन्द्रिय प्राण को आहत किया तो आपको यह ध्यान रखना है कि वह इन्द्रिय प्राण आहत होने से पहले हम उस क्रिया को छोड़ दें। इसलिए पढ़ने वाले बच्चों को भी बताना चाहिए कि अगर आप पढ़ रहे हो भले ही आप दो घण्टा पढ़ो, कोई बात नहीं लेकिन आधा घण्टे के बाद, पौन घण्टे के बाद में थोड़ी सी किताब बन्द करके गहरी श्वाँस लो, आपको लगेगा कि हमारे प्राण, हमारी ऊर्जा हमारे अन्दर पुनः आ रही है और आप आँख बंद कर लो। आप 10 मिनट आराम करोगे तो वो 10 मिनट आपको बहुत ऊर्जा देंगे और आपका इन्द्रियों का काम बहुत चलने लगेगा।

आपको अपने इन्द्रिय प्राणों को चलाने की कला आनी चाहिए। जब आप ज्यादा सुन लेते हो तो आपके कान भी दुखने लग जाते हैं। जब कोई घर में दिनभर बोलता ही रहता है, बोलता ही रहता है तो क्या कहते हो- भैया, अब चुप तो हो जा, कान दुखने लगे हैं। लेकिन वो शब्द जब बार-बार कान में जाते हैं तो कान में भी पीड़ा होने लग जाती है, मतलब कान भी कहते हैं कि अब हमें रोक दो, हमारा काम लेना बन्द कर दो। आपको अपने कानों को भी rest देना पड़ता है।

आँखों को भी rest देना, नेत्र इन्द्रिय प्राण, कर्ण इन्द्रिय प्राण, जिह्वा इन्द्रिय प्राण को भी rest दो। जिनको दिनभर मुँह चलाने की आदत है, खाने की दिन भर आदत है, कुछ लोगों की आदत ही होती है भोजन करने के बाद मुँह में सुपारी रख लेना, पान मसाला रख लेना, कुछ ना कुछ चलाते रहना। मुँह में कुछ ना कुछ चलते रहना चाहिए। जिह्वा इन्द्रिय को भी rest मिलना चाहिए और आपकी हर एक इन्द्रिय को rest मिलना चाहिए। प्राण इन्द्रिय को भी और स्पर्शन इन्द्रिय को भी rest मिलना चाहिए। आप अगर इन इन्द्रियों को rest देंगे तो इन्द्रियाँ ढंग से काम करेंगी और आपके लिए पूरे जीवनभर काम में आयेंगी लेकिन अगर आप किसी भी इन्द्रिय से अगर उसका ध्यान नहीं देते हुए ज्यादा काम लोगे तो उन इन्द्रिय प्राणों पर भी घात होता है, इसलिए आचार्यों ने कहा है कि अपने प्राणों का घात नहीं करना।

यह जो 'द्रव्य संग्रह' का सूत्र है इसकी यह व्याख्या आपने कभी सुनी नहीं होगी। यह तो आप कह लोगे पाँच इन्द्रियाँ होती हैं, तीन बल होते हैं, आयु होती है, श्वासोच्छ्वास होती है। देखो तो यह है क्या, कितना बड़ा जीवन है यह और अगर यह समझ में आ जाये कि इसका नाम जीवन

है तो बाहर की हर चीज कोई महत्वपूर्ण ही नहीं। जिस चीज से हमारे लिए कोई फायदा नहीं वो चीज हमारे कोई काम की नहीं। मान लो सोने की गिन्नी रखी है, आपको बहुत तेज भूख लग रही है और वो आपकी जेब में रखी है वो बिस्कुट सोने का क्या करोगे आप? खा लोगे? सुना तो है बिस्कुट है, सोने का है, सोने में भी तत्त्व है, स्वर्ण तत्त्व होंगे। भूख नहीं मिटेगी उससे। वह सोने का बिस्कुट भी उस समय काम नहीं आयेगा। जिस समय पर आपको भूख लग रही है। आपके अन्दर भूख की पीड़ा हो रही है और आपको अगर प्यास भी लग रही है तो भी वह सोने का बिस्कुट कोई काम में आने वाला नहीं है। जीवन में कौनसी चीज का महत्व है यह देखना शुरू करो। आपके जीवन में जिन चीजों का महत्व है वो सब आपके पास है और आप बिना मेहनत के अपने जीवन को बहुत अच्छे ढंग से चला सकते हो लेकिन आप बहुत मेहनत करके अपने जीवन को बिगाड़ लेते हो। ज्यादातर आदमी अपने आपको व्यापार से, अपनी सर्विसों से ऐसी मेहनत करके ही अपने इन इन्द्रिय प्राणों को बिगाड़ लेते हैं और फिर रुग्ण होकर के अपना जीवन गुजारते हैं और यह चीजें जिन्हें समझना है जिनका जीवन शुरू हो रहा है वो यहाँ पर हैं नहीं और जिनका जीवन पूरा होने वाला है वो यहाँ पर बैठे हैं अब उनके जीवन में कुछ सुधार होने वाला नहीं।

अगर यह चीजें हम दूसरों को समझाने लग जायें और दूसरों को बताने लग जायें तो हमें समझ में आये कि वास्तव में जीवन क्या है और दूसरों का उपकार भी हम कैसे कर सकते हैं? अगर आपके बेटे को यह मालूम है कि अपना जीवन इनसे चल रहा है, मनोबल कभी कम नहीं होगा, अगर मनोबल कभी कम नहीं होगा तो उसके मन में कभी टेंशन आयेगा ही नहीं, चिंता आयेगी ही नहीं। पढ़ो, लिखो अपना जितना पुरुषार्थ है करो और उस पुरुषार्थ के साथ-साथ अपने इस जीवन का भी ध्यान रखो। अपने इस जीवन को व्यर्थ में मत गँवाओ, इस पर कभी आँच मत आने देना। इसको बेकार नहीं करना जो हो जाये सो करना और ना हो सो ठीक। यह जरूरी नहीं है कि हर किसी को हर कोई चीज मिल ही जाती है। लाखों व्यक्ति एक परीक्षा के लिए प्रयास करते हैं लेकिन सिलेक्शन तो हजारों के ही होते हैं, लाखों के नहीं होते हैं। लाख व्यक्ति उसमें आवेदन देते हैं बैठते हैं लेकिन जब भी उसमें से सिलेक्शन होंगे तो 10000 के या 5000 के ही सिलेक्शन होंगे बाकी तो सब आउट ही होंगे। आपको यह ध्यान रखकर के किसी भी परीक्षा में बैठना है और यह ध्यान आपके अन्दर रहेगा कोई बात नहीं हम अपना काम कर रहे हैं यह सब बाहरी चीजें है मिल जायेगी तो ठीक, नहीं मिले तो भी ठीक। लेकिन हमारा जीवन तो आयु से चल रहा है, हमारी श्वाँसोच्छ्वास से चल रहा है, हमारी इन्द्रियों से चल रहा है, हमारे मन, वचन और काय बल से चल रहा है इसमें कमी नहीं आनी चाहिए। यह अपने बच्चों को पहले सिखाना चाहिए, अगर बच्चे यह सीख गये तो कभी भी उस जीवन के माध्यम से जिससे कुछ नहीं मिलने वाला है उससे इस जीवन को घात नहीं पहुँचायेंगे। अब समझ लो बच्चे के अन्दर कितनी उल्टी बुद्धि हो गयी कि धन

यह जरूरी नहीं है कि हर किसी को हर कोई चीज मिल ही जाती है।

कमाने के लिए, जॉब कमाने के चक्कर में वो अपनी सुसाईड कर लेता है। मतलब उसे उसका महत्व दिख रहा है अपने जीवन का इतना महत्व नहीं दिख रहा है कि हमें 10 प्राण मिले हैं, यह हमारी चेतना का कितना बड़ा विकास होता है और हमारी चेतना तक अगर हम नहीं पहुँचे तो भी यह समझना कि हमने अपने जीवन का उद्देश्य पूरा नहीं किया है। इन 10 प्राणों के भीतर जो निश्चय से चेतना प्राण है उसकी तरफ भी हमारी दृष्टि जानी चाहिए। यह 10 प्राण तो पौद्गलिक हैं, यह तो केवल बाहरी पुद्गल द्रव्य से चलने वाले हैं। लेकिन भीतर का जो चेतना प्राण है जहाँ से 10 प्राण बनते हैं वो निश्चय से हमारा प्राण है और उस प्राण तक भी हमारा ध्यान पहुँचना चाहिए। वो ध्यान तो तभी पहुँचेगा तब आप वास्तव में आत्मा का ध्यान करेगें। अरिहन्त और सिद्ध परमात्मा का ध्यान करें तभी आपके अन्दर वह चैतन्य प्राण में ऊर्जा आयेगी और जब भीतर के चैतन्य प्राण में ऊर्जा आयेगी सब प्राणों में ऊर्जा भर जायेगी।

इसलिए ध्यान का अपने आप में बहुत महत्व है जो व्यक्ति ध्यान से भरा हुआ रहेगा वो हमेशा ऊर्जा से भरा हुआ होगा। बाहर की उसके लिए कोई भी चीजें अगर कम भी होगी उसके शरीर में कोई फर्क नहीं पड़ेगा क्योंकि भीतर से जो चीजें प्राप्त की जाती हैं वो हमें जीवन देती है और जीवन भीतर की चीजों से ही चलता है।

अगर आपके फेफड़े अच्छे चल रहे हैं तो आप बाहर की हवा खा पाओगे, श्वाँस ले पाओगे और अच्छे ढंग से काम नहीं कर रहे हैं तो जैसे हवा में ठंडक बढ़ेगी तो जुखाम बढ़ेगा, कफ बढ़ेगा। ठण्डी हवा है, लोग प्राणायाम कर रहे हैं तो उस हवा को भीतर खीचेंगे, उन्हें स्फूर्ति मिलेगी। जिनके फेफड़े खराब हैं तो उस हवा से उनको बीमारी बढ़ेगी। दमें की बीमारियाँ ठण्ड में ज्यादा बढ़ती है और ठण्ड को ज्यादा हेल्दी सीजन कहा जाता है। हेल्दी तो उनके लिए होगा जिनके पास हेल्थ है। भीतर जो चीजें चल रही हैं उनसे अपना जीवन चल रहा है यह पहले सीखना। अगर आपके भीतर अच्छे ढंग से आपके फेफड़े काम कर रहे हैं तो बाहर की हवा काम की है और आपके फेफड़ों ने काम करना बन्द कर दिया तो यह हवा भी कुछ काम की नहीं। बाहर की air condition तब काम की है जब आपके अन्दर की condition अच्छी हो। भीतर की condition अच्छी नहीं है तो air condition में भी आदमी करवटें बदलता रहता हे क्योंकि भीतर की कन्डीशन में टेंशन पड़ा है, चिंतायें पड़ी हैं और उसके कारण से उसके लिए कण्डीशन में भी आकुलता होती है तो बार-बार कमरे से बाहर निकल कर के आता है। सब सो रहे हैं उसको नींद नहीं आ रही है। अब उसकी कन्डीशन वही सम्भाल सकता है और वह वही जीव सम्भाल सकता है जिसको यह ख्याल हो कि निश्चय से हमारा चेतना प्राण ही हमारा जीवन है और व्यवहार से 10 प्राण हमारे जीवन हैं। फिर वो व्यवहार और बढ़ा तो यह बाहर का जीवन भी हमें दिखाई देने लगता है यह और बाहरी व्यवहार के कारण से है लेकिन वस्तुतः तो हमारा चैतन्य प्राण ही हमारे जीवन की शुरुआत है और वह प्राण

बाहर की air condition तब काम की है जब अन्दर की condition अच्छी हो।

तो हमारे पास में हमेशा है। उसमें तो कोई कमी है ही नहीं इसलिए इन प्राणों के माध्यम से जीवन चल रहा है तो यह आपके ज्ञान में आयेगा। आपको लगेगा यह धन आदि बाहर की चीजें इन प्राणों के लिये सहयोगी हैं यह वस्तुत: कोई प्राण नहीं है जो हमारे प्राण इनमें पड़े जा रहे हैं और हम इनके लिये मरे जा रहे हैं। कमाने की मनाही नहीं है, धन अर्जित करने की मनाही नहीं है लेकिन उनको हमने अपने प्राण समझ लिया है यह बड़ी बिडम्बना की बात है। यही बात आचार्य यहाँ कह रहे हैं कि **'वांछतां धनिनामिष्टं'** जिस धन की वांछा है ऐसे धनिको के लिए जीवन से ज्यादा उन्हें धन इष्ट हो रहा है।

'जीवितात्सुतरां धनम्'

जीवन से ज्यादा उन्हें धन अच्छा लग रहा है। जीवन अच्छा नहीं लग रहा है और धन के लिए अपना जीवन बिगाड़ लेते हैं और धन नहीं मिले तो अपने जीवन की हत्या भी कर लेते हैं। आत्महत्याएँ क्यों होती हैं जब बाहर इस प्रकार हमें कोई धन आदि सामग्री नहीं मिलती है या बाहर की हमें कोई अनुकूलताएं ऐसे नहीं मिलती है तो लोग जब भीतर से आहत हो जाते हैं मनोबल गिर गया, मन टूट गया, हृदय टूट गया, दिल टूट गया, कुछ भी कहाँ सब टूट गया। मनोबल गिरा, मन की एनर्जी गिरी तो डर लगेगा, कुछ है ही नहीं जीवन में, सब खाली-खाली अब उस खाली में अगर वो सोच ले कि हमें नहीं रहना, यहाँ पर तो वह अपना भी जीवन खाली कर लेता है। यह सबसे बड़ी अज्ञानता कहलाती है इस अज्ञानता से बचने के लिए आचार्य पूज्यपाद देव के सूत्र हैं-हमारे दिमाग में तो इतना निश्चय हो जाना चाहिए कि हमारा जीवन हमारे लिए इष्ट है, धन नहीं।

धन हमारे लिए सहयोगी है जीवन चलाने के लिये है। सहयोगी के लिए अपने मूल को नहीं खोना।

यह जब आप अपने को समझाओगे और अपने बच्चों को समझाओगे तो उनके ज्ञान में सही चीजें उतरेगी और तो जीवन की कीमत करना समझेगें और तब हम भी बच्चों से कहते हैं the life is more valuable then any other things.दूसरी चीजों से तुम्हारा जीवन ज्यादा valuable है तो पहले यह देखो और अगर यह तुम्हारे दिमाग में नहीं रहेगा तो परेशान ही रहोगे। उन्हें तो यह मालूम ही नहीं कि परेशानी का अन्त कहाँ होना है इसलिए अध्यात्म शास्त्र आज बहुत ज्यादा उपयोगी है क्योंकि आज आदमी ज्यादा टेंशनों में है, आज आदमी ज्यादा अपने से भटका हुआ है। इसलिए ऐसे समय पर यह चीजें बहुत उपयोगी हैं तो अपने बच्चों को यह चीजें सुनायें ताकि वे समझें कि जीवन में कुछ और भी है जो हमारे लिए इस धन आदि से ज्यादा महत्वपूर्ण है। यह इस सूत्र का अर्थ है। जीवन महत्वपूर्ण है और प्राण महत्वपूर्ण है। 10 प्राणों का हमेशा ध्यान रखो और उन 10 प्राणों से अपनी चेतना प्राण की ओर पहुँचो जो निश्चय प्राण कहलाता है उस तक आपकी पहुँच हो गयी तो आपकी आत्मा अन्तर आत्मा से परमात्मा बन जायेगी।

हमारा जीवन हमारे लिये इष्ट है, धन संपत्ति नहीं।

धन संचय करके उसका सदुपयोग करना, क्या बुरा है ?

16

त्यागाय श्रेयसे वित्तमवित्तः संचिनोति यः।
स्वशरीरं स पंकेन स्नास्यामीति विलिम्पति॥

अन्वयार्थ–(त्यागाय) दान करने के लिए तथा **(श्रेयसे)** अपने सुख प्राप्त करने के लिए **(यः अवित्तः)** जो निर्धन मनुष्य **(वित्तं सञ्चिनोति)** धन को संग्रहीत करता है **(सः)** वह (मनुष्य) **(स्नास्यामि)** मैं स्नान करूँगा **(इति)** इस विचार से **(स्वशरीरं)** अपने शरीर को **(पङ्केन विलिम्पति)** कीचड़ से लिप्त करता है।

- ☞ **पहले धर्म कमाओ फिर धन :**
- ☞ **अकृतपुण्य :**
- ☞ **दान चिंतामणि :**

पहले धर्म कमाओ फिर धन :

कई दिनों से आचार्य पूज्यपाद देव के उपदेशों को सुनने वाला श्रावक भक्त आचार्य महाराज से पूछता है–महाराज आप इतना धन के बारे में बता रहे हैं कि धन से राग नहीं करना चाहिए, धन की अपेक्षा से अपने जीवन पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। धन से मोह करना अज्ञानता है। वह आचार्य महाराज से पूछता है कि महाराज! अगर धन नहीं होगा तो दान कहाँ से करेंगे। इसलिए दान करने के लिए तो धन कमाना आवश्यक है। दान नहीं करेगें तो पुण्य कहाँ से आयेगा और पुण्य नहीं होगा तो कोई धर्म भी नहीं होगा। इसलिए धर्म के लिए साधन धन हो गया। ऐसे भी श्रावक होते हैं जो इस तरह के ज्ञानवर्धक प्रश्न भी कर लेते हैं गुरुओं से। तो ऐसे ही किसी श्रावक ने प्रश्न किया होगा आचार्य पूज्यपाद महाराज से कि महाराज! श्रावकों का धर्म तो दान करना है और दान तो तभी करेगा जब उसके पास में धन होगा। इसलिए अभी हमारे पास में धन है नहीं तो हम धन का अर्जन कर लेते हैं फिर बाद में धन को दान करेगें और दान करके हम धर्म कर लेंगे। उसके लिए यहाँ आचार्य महाराज उत्तर देते हैं कि देखो, अगर तुम्हारे पास धन नहीं है तो तुम यह समझो तुम बहुत अच्छे हो। अगर निर्धन हो तो तुम्हारे लिए अभी बहुत अच्छे अवसर हैं और अच्छा धर्म करने का अवसर क्योंकि जब तुम्हारे पास में धन आयेगा या तुम धन के अर्जन करने के लिये प्रयास करोगे तो तुम वो धर्म नहीं कर पाओगे जो धर्म तुम अभी कर सकते हो। अगर तुम्हारे पास में धन नहीं है तो तुम बहुत अच्छा धर्म कर सकते हो और तुम जो यह सोच रहे हो कि पहले हम धन कमा ले फिर उससे हम दान दे ले तो तुम एक उल्टे रास्ते पर चल रहे हो। धन कमाने में जो तुम्हें पाप का अर्जन होगा उस पाप की थोड़ी सी कमी फिर उस दान से हो पायेगी और अभी तुम्हारे पास में धन नहीं है तो बहुत अच्छी बात है, तुम सब कुछ छोड़ने के लिए भी बहुत जल्दी तैयार हो जाओगे। जिसके पास में कुछ है ही नहीं तो वो बहुत जल्दी सब कुछ छोड़ सकता है। लेकिन वह छोड़ नहीं पा रहा है।

धन नहीं होते हुए भी उसके अन्दर हमें धन अर्जित करना है इस प्रकार का भाव बना रहता है और उस भाव के कारण से वह धन नहीं होने के बावजूद भी धन कमाने के सब प्रयास करता है तो वह धन को छोड़ भी नहीं पाता और धन को प्राप्त भी नहीं कर पाता। लेकिन आचार्य महाराज कहते हैं कि तेरे पास में अभी बहुत अच्छा अवसर है, तू यह धन अर्जन करने के चक्कर में ही मत पड़ और तू सीधा–सीधा वो धर्म करने लग जा, धर्म आत्मा के कल्याण का कारण है। यह धर्म तो कोई ज्यादा आत्मा के कल्याण का कारण नहीं बनेगा क्योंकि यह श्रावक का धर्म है और अगर तू श्रमण धर्म अपना लेगा तो बहुत जल्दी तेरी आत्मा का कल्याण होगा। वो थोड़ा चूक गया, डर भी गया। महाराज! यह सभी इतनी जल्दी नहीं छूट सकता, घर में पत्नी है, बेटे हैं, भाई–बहन भी हैं। हम अगर सब कुछ छोड़ कर चले जावेंगे तो फिर इन सबका कल्याण कैसे होगा, गुजारा कैसे होगा। ऐसा सोचकर के वो महाराज से कहता है– देखो महाराज यह तो अभी सम्भव नहीं है जो

धन नहीं होने पर भी धर्म करने के बहुत अच्छे अवसर उपलब्ध हैं।

आप अभी उत्कृष्ट मार्ग बता रहे हो, यह श्रामण्य का मार्ग, श्रमण का मार्ग, अभी सम्भव नहीं है। हम तो यह चाह रहे हैं कि हम धन भी कमा लें और धर्म भी कमा लें आप तो ऐसी हमें सीख दो। महाराज हमें तो एक रास्ता बहुत अच्छा समझ में आ रहा है कि धन कमाओं और दान करो। आप बताते ही हो–उद्देश्य अच्छा रखा जाये तो अगर पाप भी हो रहा हो तो पाप नहीं होता वह पुण्य कहलाता है। उद्देश्य हमारा अच्छा है, भाव प्रधान धर्म है–यह भी आपसे हमने सुना है। भावों में अगर अच्छा भाव लेकर हम कोई काम करे और हमसे कोई पाप भी हो जाये तो पाप नहीं होना चाहिए। उसका फल हमको नहीं लगेगा, कोई पाप भी हो जाये तो पाप नहीं होना चाहिए। उसका फल हमको नहीं लगेगा और वो महाराज को कहता है कि महाराज! आपके चरणों की सेवा करते हुए, आपके उपदेश सुनते–सुनते इतना ज्ञान तो हमको भी आ गया है। अब अगर हम धन भी कमायेंगे तो हमें उससे कोई हानि नहीं होगी क्योंकि हमारा उद्देश्य बन गया है दान धर्म करने का। इस उद्देश्य से हम धन कमायेंगे और हम देखते हैं जितने लोगों के पास में बड़े–बड़े दान किये जाते हैं तो बड़ा–बड़ा जिनके पास में पैसा होगा तभी तो बड़ा–बड़ा दान कर पायेंगे, जब पैसा ही नहीं होगा तो दान कहाँ से करेंगे। दान को आप सबसे बड़ा धर्म कहते हो। दान करेगा, पूजा करेगा तो ही उसके लिए धर्म होगा।

इसलिए हम धन तो कमायेंगे लेकिन हम दान करने के लिए धन कमायेंगे। ऐसी आप अब हमें अनुमति दे दो, आज्ञा दे दो कि हम धन कमाने जा रहे हैं लेकिन दान करने के लिये। आचार्य महाराज कहते हैं कि देखो हम तो इसकी आज्ञा तुम्हें दे नहीं सकते। हम तो तुम्हें एक उत्कृष्ट मार्ग पर ले जाना चाहते हैं और उत्कृष्ट मार्ग तो यही है कि अगर तुम्हारे पास में धन नहीं है तो बहुत अच्छी बात है। उस निर्धनता को तुम अपना एक बड़ा वरदान समझ लो तो उस निर्धनता से धर्म रूपी धन direct कमा सकते हो। आचार्य तुम्हें indirect धन कमाने की बात को धर्म रूप में कहेंगे। दान करने के लिये कहेंगे, धर्म करने के लिये कहेंगे परन्तु direct धन कमाने की बात नहीं कहेंगे। तुमने व्यापार आदि करने में, धन कमाने में जो पापादि अर्जित किया है उसे 50 प्रतिशत, 20 प्रतिशत, 10 प्रतिशत यथायोग्य दान आदि करके कम कर सकते हो। इसलिये कोई भी श्रमण तुम्हें व्यापार करने को नहीं कहेगा, उद्योग करने को नहीं कहेगा क्योंकि उसमें होने वाली हिंसा आदि में वह अनुमोदना नहीं करेगा। पाँच प्रकार की हिंसा में उद्योगी हिंसा भी आती है। इसलिये उद्योग भी वैसा ही करना जिसमें कम से कम हिंसा आदि हो। वो उद्योग कौन से हैं जिनमें जीव का घात न होता हो, वह हैं कपड़े का व्यापार, सोने–चाँदी का व्यापार। इनमें खपत भी अधिक होती है और मुनाफा भी अधिक। अधिकतर जैनी लोग इस तरह के व्यापार में हाथ डालते हैं। ये बड़े व्यापार कहलाते हैं। टेलरिंग नहीं करना वह निम्न कर्म कहलाता है, फेक्ट्री भी नहीं डालना क्योंकि उसमें हिंसा होती है। बस डायरेक्ट व्यापार करना उसमें हिंसा कम होती है। कम से कम कृत पाप से तो बचोगे क्योंकि कृत, कारित, अनुमोदना के भेद से तीन प्रकार से आस्रव होता है। जैनी लोग

उत्कृष्ट मार्ग श्रामण्य का मार्ग है।

व्यापार ज्यादा करते इसलिये ये बनिया कहलाने लगे। इस प्रकार के व्यापार में भाव हिंसा भी कम होगी और द्रव्य हिंसा भी कम होगी। इसलिये आचार्यों ने कहा कि आप जितना हिंसा से बच सको वह करो। इसके अलावा और व्यापार हैं जैसे किराना, अनाज आदि के व्यापार में हिंसा अधिक होती है। इसलिये जिसमें जीवों की उत्पत्ति और हिंसा कम से कम हो वह व्यापार करो। निर्धन भी धन कमा सकता है परन्तु पहले पुण्य कमाओ, धर्म कमाओ तब जाकर धन की बात आ पायेगी। आपके अंदर इतना भाव आ जाये कि मैं जो कर रहा हूँ उसमें से कुछ दूसरे के लिये निकल जाये वह दान की सबसे बड़ी भावना है। आचार्यों ने चार प्रकार के दान कहे हैं–आहार दान, औषध दान, ज्ञान दान, अभय दान। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण दान है-आहार दान। आचार्य कहते हैं कि आहार दान करके ही भोजन ग्रहण करना चाहिये क्योंकि दान हमारा धर्म भी होगा और उससे पुण्य की वृद्धि होगी तो धन की भी वृद्धि होगी।

अकृतपुण्य :

शास्त्रों में अकृतपुण्य की कथा आती है। उसके गर्भ में आते ही उसके पिता की मृत्यु हो गई, सारा व्यापार चौपट हो गया, उसका नाम ही रख दिया अकृतपुण्य। उसकी माँ ने भी ये जान लिया कि इसी के कारण से हमारे घर में सब कुछ बदल गया। कभी पुण्यात्मा जीव का जन्म होता है तो समृद्धि होती चली जाती है और कोई पापात्मा आ जाता है तो सब समृद्धि चली जाती है। उसके घर में स्थिति यह हुई कि भोजन की पूर्ति भी नहीं रही। वह काम की तलाश में जाता है तो एक खेत में पहुँचता है। यह उसी का खेत है जो कभी उसी के पिता के यहाँ काम किया करता था। उस बालक को देखकर उसके अंदर दया का भाव आ जाता है और वह उसकी झोली में कुछ चने देता है तो उसकी झोली में जाते ही वह अंगारे बन जाते हैं/ कोयला बन जाते हैं। वह उन्हें फेंककर घर आकर माँ से जब इस घटना को कहता है तो माँ कहती है कि बेटा! अभी तेरा तीव्र पाप का उदय चल रहा है जिसमें तुझे चने खाना भी पुण्य नहीं है। माँ उसे लेकर दूसरे गाँव चली जाती है और एक घर के सामने बैठ जाती है, वहीं विश्राम करती है तभी उस घर का मालिक आता है तो उससे निवेदन करती है कि मेरा बच्चा भूखा है उसे कुछ खाने को दे दे। मालिक उन्हें देखता है कि ये तो किसी अच्छे घराने के दिखते हैं और उन्हें भीतर ले गया, पूरी आप-बीती सुनी और कहा कि अब तुम्हें कहीं जाने की जरूरत नहीं है, यहीं आराम से रहो, जो कुछ थोड़ा घर का काम हो वह कर दिया करो, हम तुम्हें खाना-पीना, कपड़े आदि सारी व्यवस्था कर देंगे। उस घर में उसके भी बच्चे थे जिनके साथ वह अकृतपुण्य भी खेलता रहता। जब खाने बैठते तो उन बच्चों को खीर खाते देखता तो मन में सोचता कि मुझे खीर क्यों नहीं मिलती तो उसके एक दिन अपनी माँ से कहा मुझे भी खीर खाना है। माँ सोचती है कि कहाँ से खीर खिलाऊँ फिर भी बच्चे की भावना को देखते हुए उसने एक दिन खीर बनाई। खीर को वहीं रखकर माँ पानी लेने के लिये गई तब उस बेटे को वहाँ बैठा दिया कि देखते रहना कोई कुत्ता/बिल्ली आदि ना आ जाये और यदि कोई मुनि महाराज

यहाँ से गुजरें तो बता देना। पहले हम आहार देंगे फिर खुद खायेंगे। ऐसा कहकर वह पानी लेने चली गई। इधर संयोग से मुनि महाराज का वहाँ से आहार चर्या के लिये निकलना हुआ। जैसे ही महाराज दिखे तो वह कहने लगा–महाराज! आप रुक जाओ, माँ ने खीर बनाई है उसे खाकर जाना। उसे पड़गाहन की विधि तो पता नहीं थी बस अपनी भक्ति की भावना से उन्हें रोक रहा था, उसने मुनिराज के पाँव पकड़ लिये। मुनि महाराज भी उस बच्चे की भावना को देखकर रुक गये। इतने में माँ आती है और विधिवत् नवधाभक्ति करते हुये खीर का आहार कराती है। उसने थोड़ी सी बनी हुई खीर में से मुनिराज को आहार कराया। ये होती है दान की भावना। अब मुनिराज तो चले गये तब वह बेटे को खीर परोसती है परन्तु खीर का कटोरा खाली ही नहीं होता। वह खाता जाता है, माँ ने खा लिया परन्तु कटोरा खाली नहीं होता क्योंकि उस चौके में अक्षीणऋद्धि के धारी मुनिराज आहार करके गये थे। उस बेटे ने कहा– माँ अब किसको खिलायें, तो माँ ने कहा– जाओ अपने मित्रों को भी बुला लाओ। वह गया और उन मित्रों को बुला लाया जिनके साथ रोजाना खेला करता था। उन सबने भी खीर खाई परन्तु खीर खत्म नहीं हुई। आज उस अकृतपुण्य का पुण्य इतना बढ़ गया कि उसका कटोरा खाली ही नहीं हो रहा यह पुण्य मुनिराज को आहारदान देने से बढ़ा। जितनी विशुद्धि की भावना, भक्ति की भावना होगी उतना ही पुण्य बढ़ता चला जायेगा। आप धन कमाने में लगे रहते हो परन्तु जब अवसर मिलता है तो धर्म कमाने की भावना रखोगे तो धन भी प्राप्त हो जायेगा और धर्म भी। देने का भाव अधिक हो, भक्ति का भाव हो, विशुद्धि का भाव हो तो ऐसे पुण्य की प्राप्ति होती है जैसे उस बेटे की हुई। वह अकृतपुण्य से सुकृतपुण्य बन गया। उसके जीवन में सब कुछ अपने आप बदलता चला गया और ऐसा बदला कि मरण के बाद भी जब उसका अगला जन्म हुआ तो इतना पुण्यशाली हुआ कि जहाँ हाथ रख दे वह सोना हो जाये। द्वेषी लोग उसे मारने के लिये अंगारे हाथ में रखते परन्तु वे सोना बन जाते, ऐसा पुण्य का प्रताप देखने में आया, सब परिणतियाँ अपने अंदर के पाप और पुण्य के फल से आती हैं। आचार्य महाराज कहते हैं कि सब प्रकार के कर्मों में सबसे बड़ा सुख देने वाला कर्म है तो सातावेदनीय कर्म और सातावेदनीय कर्म का अनुभव, बंध जितना आपके अंदर प्रशस्त होगा उतना बाहर आपको सुविधा मिलेगी और संसार का सुख मिलेगा तो वह भी सातावेदनीय कर्म के उदय से मिलेगा। धन कमाने के लिये भी प्रयास करते हैं तो उसके लिये भी पुण्य चाहिये, धन प्राप्त भी तो उसे उपभोग करने के लिये भी पुण्य चाहिये, कर्म का क्षयोपशम चाहिये। ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होगा तो ज्ञान प्राप्त होगा, दर्शनावरणीय कर्म का क्षयोपशम होगा तो श्रद्धा का भाव जागेगा, अंतराय कर्म का क्षयोपशम होगा तो संसार के सुख भोगने को मिलेंगे नहीं तो सारे साधन, सारी सामग्री होने पर भी उसका उपभोग नहीं कर पाओगे। इसी कर्म के क्षयोपशम से दान आदि करने में अपना मन लगा पाओगे अपने भाव बना पाओगे। धन की कमी नहीं है लेकिन उस धन से पुण्य अर्जित करने की, धर्म अर्जित करने की भावना की कमी है। हर आदमी हमेशा रोते हुये मिलेगा। पहले जो मिला है उसमें संतुष्ट होना सीखो तब जाकर आत्म संतुष्ट होगी। जो बिगड़ रहा है वह भी बनना शुरू हो जायेगा,

जितनी विशुद्धि की भावना, भक्ति की भावना होगी उतना ही पुण्य बढ़ता चला जायेगा।

बस संतोष रखो। तत्त्वार्थसूत्र में सातावेदनीय कर्म के बंध में संतोष भी आता है, लोभ कषाय की कमी होगी वहाँ सातावेदनीय कर्म आयेगा। भीतर का धर्म जब तक ऐसे कर्मों का बंध नहीं करायेगा तब तक बाहर भी आपको धन की प्राप्ति नहीं होगी और अगर हो गई तो उसका भोग नहीं कर पाओगे। इसलिये पहले संतोष गुण को लेकर आओ। आचार्य कहते हैं कि पहले धर्म करना शुरू कर दो, दान करना शुरू कर दो तो धन की प्राप्ति स्वतः हो जायेगी। परन्तु यह व्यक्ति क्या करता है– **''स्वशरीरं सपंकेन स्नास्यामीति विलिम्पति''** कि पहले कीचड़ को अपने शरीर पर लगायेगा फिर पानी से धोने का पुरुषार्थ करेगा। इसी तरह सोचता है कि पहले धन कमा लूँ फिर दान करूँगा। आचार्य कहते हैं यदि संभव हो सके तो पहले यथाशक्ति दान कर, यथाशक्ति धर्म कर तो ऐसा व्यक्ति भी सम्यग्दृष्टि है क्योंकि उसका भगवान के कहे हुए पर श्रद्धान है।

''जं सक्कइ तं कीरइ, जं च ण सक्कइ तहेव सद्दहणं।
सद्दहमाणो जीवो, पावइ अजरामरं ठाणं॥''

दान चिंतामणि :

यहाँ कह रहे हैं जितनी शक्ति हो पहले धर्म करो, जितना धन है पहले उसमें दान कर लो, शक्ति नहीं है तो श्रद्धा रखो, दूसरों के दान को देखकर श्रद्धा करो। अपनी शक्ति को ना छिपाते हुये दान करो। दक्षिण में देखो कितने बड़े-बड़े मंदिर और बड़ी-बड़ी मूर्तियाँ मिलेंगी। लोग कितना दान किया करते थे, दक्षिण में एक स्त्री हुई **अतिमव्वे** जो **दान चिन्तामणि** की उपाधि को प्राप्त हुई। उसके पास अभाव भी रहा तब भी उसने दूसरों को दान दिया। एक बार उसका बेटा युद्ध में गया और दुश्मन को खदेड़ते हुये बहुत दूर चला गया तथा एक नदी के पार चला गया तब वह माँ सोचती है कि अब बेटा कैसे आ पायेगा क्योंकि नदी काफी उफान ले रही है, सबकी चिंता बढ़ नहीं है तब वह नदी किनारे खड़ी होकर पंचपरमेष्ठी का स्मरण करती है और कहती है यदि मैंने अपने जीवन में धर्म किया हो, अपना धर्म निभाया हो, अपने शीलधर्म का पालन किया हो तो इस उफान को शांत कर दो। लोगों ने देखा कि थोड़ी देर में ही नदी एकदम शांत हो गई तब पूरी सेना और बेटा नदी पार करके इधर आते हैं, उसके आते ही नदी पुनः उफान लेकर बहने लगी। इस तरह के अतिशय सच्ची भावना से, धर्म की भावना से गृहस्थों के जीवन में भी प्रकट हो जाते हैं। उस अतिमव्वे ने अपने जीवन में लगभग 1500 जिन मंदिरों का निर्माण कराया, अनेकों मुनिराजों को आहार दान दिया। वह इतिहास में दान चिंतामणि के नाम से प्रसिद्ध हो गई। ये सब धर्म की भावना से होता है। धर्म की भावना हो तो जो चाहोगे वो हो सकता है परन्तु भीतर से भावना होना चाहिये। जब कभी हमें अवसर मिलें धर्म करने के भले ही कष्ट आये तो भी पीछे नहीं हटना। दान करने के लिये धन मत कमाओ दान करो धन अपने आप प्राप्त हो जायेगा नहीं तो कीचड़ से नहाकर फिर नहाने जैसी प्रक्रिया होगी। कुछ ऐसा कार्य कर लें जिससे हमारी परिणति में सुधार हो जाये तभी जीवन की सार्थकता है।

सब प्रकार के कर्मों में सबसे बड़ा सुख देने वाला सातावेदनीय कर्म है।

सांसारिक विषय कैसे हैं?

17

आरम्भे तापकान् प्राप्तावतृप्ति - प्रतिपादकान्।
अन्ते सुदुस्त्यजान् कामान् कामं कः सेवते सुधीः ॥

अन्वयार्थ—(आरम्भे) प्रारम्भ में **(तापकान्)** सन्ताप देने वाले **(प्राप्तौ)** प्राप्त हो जाने पर **(अतृप्ति-प्रतिपादकान्)** तृष्णा को बढ़ाने वाले तथा **(अन्ते)** अन्त में **(सुदुस्त्यजान्)** बहुत कठिनाई से छूटने योग्य **(कामान्)** विषय भोगों को **(कः सुधीः)** कौन बुद्धिमान् पुरुष **(कामं)** बड़ी रुचि से **(सेवते)** सेवन करता है।

- ☛ **विषयभोग का स्वरूप**
- ☛ **विषयभोग से तृप्ति नहीं**
- ☛ **बुद्धि के प्रकार**
- ☛ **आदिनाथ भगवान के जीव की कथा**

अब यहाँ कहा जाता है कि इस संसारी प्राणी को बहुत समझाओ लेकिन इसके समझ में धीरे-धीरे ही आता है और इसकी बुद्धि धीरे-धीरे ही सुधार को प्राप्त होती है। आचार्य महाराज ने ऊपर के श्लोकों के माध्यम से बताया कि जीवन में धन आदि की महत्ता अधिक नहीं है और धन आदि के माध्यम से दान आदि करके धर्म कमाना चाहते हो तो उसके लिए भी उन्होंने कहा कि ऐसा रास्ता अपनाने की कोई जरूरत नहीं है। उस धन से क्या होता है? वस्तुतः देखा जाये तो आचार्य महाराज ने सामने बैठे हुए उस शिष्य के मनोभावों को समझ लिया होगा, जिस शिष्य ने पहले यह प्रश्न किया होगा कि–हे भगवन्! मैं पहले धन का अर्जन कर लेता हूँ फिर बाद में दान कर लूँगा। दान धर्म है पर धन तो आपकी दृष्टि में धर्म है ही नहीं। आचार्य महाराज ने उससे कहा कि तू क्यों कीचड़ में लिप्त होना चाहता है और बाद में फिर स्नान करेगा। इससे कोई मतलब नहीं है। फिर उन्होंने यह भी समझा होगा कि इस तरह का प्रश्न क्यों कर रहा है क्योंकि इसकी इच्छा धन कमाने की है। कोई भी आदमी धन कमाने से संतुष्ट नहीं हो पाता है। धन तो रुपये, पैसे का नाम है और इतने मात्र से वह संतुष्ट नहीं हो जाता कि अपने पास में केवल रुपया, पैसा, सोना चाँदी आदि रख ले और उतने से संतुष्ट हो जाये। उस धन के माध्यम से वह विषय भोग की इन्द्रियों को आराम देने वाली सारी चीजें इकट्ठी करना चाहता है। ये जितनी भी चीजें है वह सब धन से ही मिलेगी और अगर वह चीजें इकट्ठी करेगा तो विषयों में लिप्त होगा। आचार्य महाराज को दृष्टि में यह आया कि धन की तृष्णा मत करो इसको मत बढ़ाओ। तुम जो प्रकारांतर से, अनेक उपायों के माध्यम से जो कहना चाह रहे हो कि जैसे हमें धन इकट्ठा करने की छूट दे दो तो हम दान में भी लगा देंगे तब आचार्य महाराज कहते हैं कि दान में लगा देने से तेरा धर्म ज्यादा नहीं हो जायेगा लेकिन तेरी बुद्धि जो बिगड़ जायेगी वह फिर कभी सुधर नहीं पायेगी क्योंकि धन जो है वह तेरी बुद्धि को बिगाड़ेगा, विषयों में आसक्ति पैदा करेगा, विषय-भोगों के प्रति रुचि पैदा करेगा और वह सबसे बड़ा बिगाड़ है। यह थोड़ा पैसा अगर तूने दान कर दिया तो उससे कुछ होने वाला नहीं है क्योंकि यह तो बाहर की चीज हो गयी, इससे तो बाहर प्रभावना होगी। यह तो बाहर के लिए कुछ काम में या उपयोग में आयेगा लेकिन इससे भीतर की वृत्ति तो सुधरने वाली नहीं है। इसलिए आचार्य यहाँ पर कहने जा रहे हैं कि ऐसा कौनसा बुद्धिमान है जो इन काम को यानि विषय भोगों को सेवन करने में रुचि ले। तेरी बुद्धि धन के कारण से विषय भोगों में रुचि ले रही है और इन विषय भोगों का, काम का, स्वरूप क्या है?

विषय भोग का स्वरूप :

यहाँ आचार्य महाराज बता रहे हैं '**आरम्भे तापकान् प्राप्ता**' – जब यह विषय भोग प्रारम्भ में हमें मिलते हैं तो उस समय पर अनेक प्रकार के ताप उत्पन्न होते हैं संताप उत्पन्न होते हैं। विषय

धन बुद्धि को बिगाड़ता है, विषयों में आसक्ति पैदा कर व्यक्ति को भोगी बनाता है।

भोगों से प्रारम्भ में संताप मिलता है। प्रारम्भ में यानि कि उन विषय भोगों को प्राप्त करने से पहले मन में एक ताप उत्पन्न होता है, मन में एक वेदना। संताप उत्पन्न होता है और उस संताप के बिना उन विषय-भोगो में कोई सुख नहीं आता। पहले ताप उत्पन्न होता है जैसे बोलते हैं शरीर में ताप उत्पन्न हो जाने पर आप कहते हो कि ज्वर आ गया, वैसे ही यह मन का संताप है। इस मन के संताप के माध्यम से ही वह विषय-भोगों की रुचि उत्पन्न होती है। किसी भी प्रकार की रुचि हो आप देखोगे कि उससे पहले मन में संताप उत्पन्न होगा और वह संताप किसी भी प्रकार से आपको दिखाई दे जायेगा। अगर आपके अन्दर इच्छा तीव्र हो जाती है तो उस ताप के कारण से आपका शरीर, आपके हाथ-पैर, ऐसे काम करेंगे जैसे बुखार में चेष्टा होती है। उसी प्रकार से इस मन के संताप से चेष्टा होने लग जाती है इसलिए आचार्य कहते हैं कि यह भोग व काम प्रारम्भ में ताप उत्पन्न करने वाले हैं।

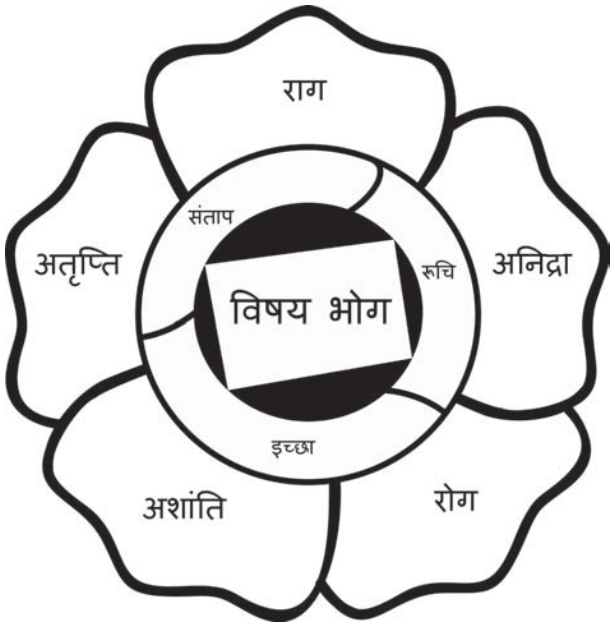

विषय भोग से तृप्ति नहीं :

'अतृप्ति प्रतिपादकान्' अगर मान लो मिल भी गये आपने इनका सम्पादन भी कर लिया, इनको प्राप्त कर भी लिया तो इनसे कभी तृप्ति नहीं होती 'अतृप्ति प्रतिपादकान्' बड़े गहरे सूत्र हैं। आप विषय भोगों में लिप्त होते हुए भी उन विषय भोगो के स्वरूप को कभी समझ नहीं पाते लेकिन आचार्य महाराज 'श्रमण संत' जो कभी विषय भोगो में लीन नहीं हुए फिर भी वह उस के स्वरूप को जानते है और वह यहाँ पर कह रहे है कि यह प्रतिपादित होने के बाद भी, मिलने के बाद भी, कभी शांति नहीं देते हैं बल्कि अतृप्ति ही देते हैं। कभी भी इनसे satisfaction नहीं होता है कि हाँ, इनसे मुझे सुख मिल गया। अगर सुख मिल गया तो फिर इनकी दुबारा इच्छा नहीं होनी चाहिए। सुख तो वह कहलायेगा, तृप्ति तो वह कहलायेगी कि एक बार तृप्त होने के बाद में दुबारा उसकी इच्छा न हो और ऐसा होता नहीं है। कोई भी विषयभोग हो, पाँच इन्द्रियों को मिलने के बाद भी वह तृप्ति नहीं देता बल्कि अतृप्ति ही बनी रहती है। चाहे भले ही आप कितने ही चाट-पकोड़े खा लें, खाने से आपका पेट

तो भर जायेगा पर मन में कभी भी तृप्ति का भाव नहीं आयेगा। यूँ तो कहोगे कि अब खाया नहीं जा रहा है, अब मत परोसो, रहने दो, लेकिन तृप्ति हो गयी हो ऐसा नहीं होता है। थोड़ी ही देर के बाद में वह वह फिर अतृप्ति का भाव आ ही जाता है और आज नहीं कल फिर अतृप्ति मन में वैसे के वैसे ही उत्पन्न हो जाती है। इसे कहते है अतृप्ति प्रतिपादित होने के बाद में भी, इन विषयभोगों के मिलने के बाद में भी, कभी भी इनसे तृप्ति नहीं होती है और अगर ज्यादा खा लोगे तो क्या होगा? रोग हो जायेगा

'अन्ते सुदुस्त्यजान्' और अन्त में इनको छोड़ना बड़ा कठिन हो जाता है बड़ी विचित्र मानसिक स्थितियाँ यहाँ महाराज बता रहे हैं तीन stage हैं–एक initial stage यह संताप उत्पन्न करते हैं जब तक मिल नहीं रहा, तब तक मन में ज्वर चढ़ा रहता है, ताप उत्पन्न होता है, वेदना/बेचैनी होती है। कुछ भी अच्छा नहीं लगता, नींद तक चली जाती है और उसी चिन्ता में रहता है। यह ताप है, उस ताप में ही उसको आनन्द आयेगा, यह initial stage की दशा है। middle stage में क्या होता है? मिल गया और मिलने के बाद भी उसे कोई तृप्ति नहीं हुई, unsatisfaction. कोई ऐसा भाव उत्पन्न नहीं हुआ कि हमें इसकी दुबारा जरूरत नहीं है और अन्त में यह छोड़े नहीं जायेंगे क्योंकि इनका सेवन करते करते ऐसी रुचि पैदा हो जाती है, ऐसे भाव पैदा हो जाते हैं कि फिर इनको त्यागना बड़ा कठिन हो जाता है। इसलिए आचार्य देव यहाँ लिखते हैं 'सुदुस्त्यजान्' यानि बड़े दूरतरता से, बड़ी कठिनाई से छोड़ने वाले होते हैं ऐसे काम, विषय-भोगों को 'सुधी:' कौन ऐसा बुद्धिमान होगा जो इनका सेवन करे। सुधी का मतलब सु यानि अच्छी, धी यानि बुद्धि जिसके पास में अच्छी बुद्धि होगी, वह इन काम भोगों का सेवन कैसे कर सकता है? जिसे इन काम-भोगों के सेवन का स्वरूप समझ में आ गया हो वह ऐसा नहीं करेगा बुद्धि तो सबके पास है लेकिन आचार्य कहते हैं कि वह बुद्धि दो प्रकार की होती है। अगर सु होती है तो कु भी होती है। अच्छी बुद्धि वाला तो इसका सेवन नहीं करेगा। अच्छी बुद्धि वाला तो इनमें रुचि नहीं लेगा और जिसकी बुद्धि में कुछ खराबी है उसी को इन विषयभोगों के सेवन में आनन्द आयेगा। पाँच इन्द्रियों के विषयों में आनन्द आता चला जाता है, चाहे वह स्पर्शन इन्द्रिय का विषय हो, चाहे घ्राण इन्द्रिय का विषय हो। हर इन्द्रिय के विषय में एक बार रुचि बढ़ जाती है, विषयों में आनन्द आता रहता है और उससे हमारा स्वास्थ्य भी बिगड़ जाता है, हमारा मन भी बिगड़ जाये तो वो भी हमें याद नहीं रहता है। यहाँ पर गोटेगाँव के कुछ भैया लोग बैठे हैं और उनमें से एक भैया के लिए ऐसा हुआ था। शिविर लगने का टाइम था, दसलक्षण का समय था और शिविर में आने के एक दिन पहले क्या हुआ? मालूम था कि दस दिन के लिए शिविर में जाना है तो वहाँ पर बहुत ज्यादा चाट-पकौड़ी खाने को नहीं मिलेंगे, दस दिन तक वहाँ पर टेस्टी भोजन भी नहीं मिलेगा तो उस भैया के घर के

विषयभोगों की इच्छा मन में संताप और अतृप्ति पैदा करती है।

लोगों ने उसको शाम के समय खूब अच्छा-अच्छा भोजन खिलाया क्योंकि शाम को entry होने वाली थी और सुबह दूसरे दिन से दसलक्षण शुरू होना था। शाम को घर वालों ने बहुत अच्छे मिष्ठान्न बनाकर के खूब अच्छे चाट-पकौड़ी बनाकर के खिलाये और ऐसे खिलाये, ऐसे खिलाये कि वह बीमार पड़ गया। ऐसा बीमार पड़ा कि उसको बोतल चढ़ाने की जरूरत पड़ गई फिर घर के लोग उसे ले गये और वह शिविर में भर्ती नहीं हो पाया। यह विषय भोगों की रुचि ऐसी है इनको जितना सेवन करोगे उतने रुग्ण होते चले जाओगे और रुग्ण होने के बाद में यह बड़ी मुश्किल से छोड़े जाते हैं। अब पूछा जाए कि बीमार होने के बाद उन चीजों को खाना छोड़ा या नहीं? नहीं छोड़ सकता क्योंकि जिस चीज में हमारी रुचि पड़ी है, चाहे उससे हमें कितना भी नुकसान हो, हम उन चीजों का सेवन करना नहीं छोड़ते हैं। वहीं आचार्य कहते हैं कि आदमी की बुद्धि खो गई है। आदमी तो कहता है कि हमारी बुद्धि बड़ी अच्छी है लेकिन आचार्य महाराज को, निर्ग्रन्थ मुनिराजों को आपकी यह बुद्धि अच्छी प्रतीति में नहीं आती है। सुधी यानि अच्छी बुद्धि और आपको समझ लेना चाहिए कि अच्छी बुद्धि का सम्बन्ध सम्यग्ज्ञान होगा, अच्छी बुद्धि होगी तो इन काम भोगों में, विषय भोगों में रुचि उत्पन्न नहीं होगी।

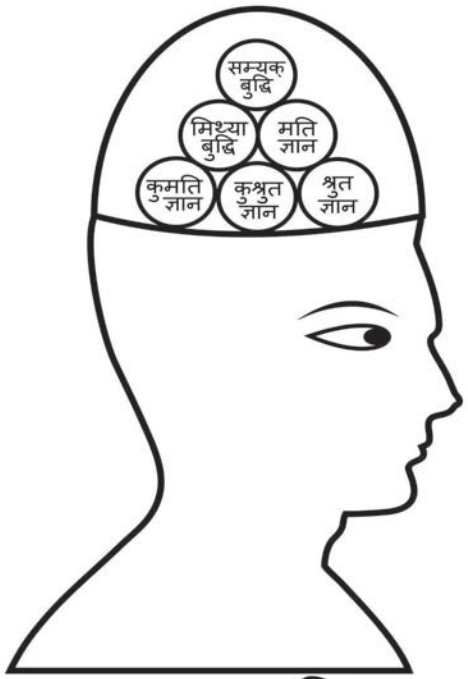

मानव बुद्धि

बुद्धि के प्रकार :

दो प्रकार की बुद्धि होती है एक सुधी और एक कुधी। सुधी यानि सम्यक् बुद्धि या सम्यग्ज्ञान। कुधी यानि मिथ्या बुद्धि या बुरा ज्ञान। अब यह बुद्धि क्यों अच्छी और क्यों बुरी बन गई? बुद्धि तो एक ही प्रकार की होनी चाहिए लेकिन आचार्य कहते है कि बुद्धि दो प्रकार की होती है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान आपको सामान्य रूप से दिखाई देगा लेकिन वह दो प्रकार से काम करेगा- एक कुमति ज्ञान व कुश्रुत ज्ञान के रूप में और एक सुमति ज्ञान व सुश्रुत ज्ञान के रूप में। जब आप की बुद्धि में पदार्थ की समीपता का ज्ञान होगा, तत्त्व का श्रद्धान होगा, जब आप जीवादि सभी पदार्थों को सही ढंग से जानेंगे तो आपका ज्ञान कहलायेगा

सुधी (सम्यक् बुद्धि) एवं कुधी (मिथ्या बुद्धि) दो प्रकार की बुद्धि होती है।

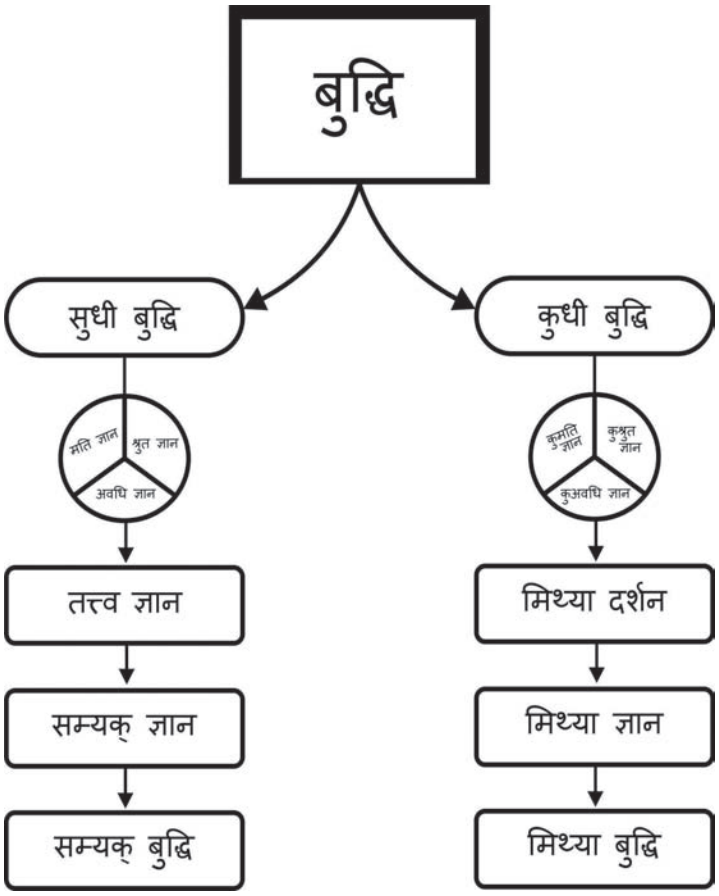

सम्यग्ज्ञान। जब आप जीव, पुद्गल आदि सभी प्रकार के पदार्थों के स्वरूप के बारे में जानकर के उनका श्रद्धान करेंगे तो वह ज्ञान कहलायेगा सम्यक् ज्ञान और उस श्रद्धान के साथ जो बुद्धि चलेगी वह बुद्धि कहलायेगी सम्यक् बुद्धि और जब आपके अन्दर जीव आदि सभी पदार्थों का सही श्रद्धान नहीं होगा तो वह कहलायेगा मिथ्या दर्शन। मिथ्यात्व और मिथ्या भाव के साथ जो बुद्धि चलेगी वो कहलायेगी मिथ्याबुद्धि या मिथ्याज्ञान। दो प्रकार के ज्ञान हैं अगर मन में जीवादि पदार्थों का श्रद्धान नहीं है, सम्यग्दर्शन की परिणति नहीं है तो वह ज्ञान भी मिथ्याज्ञान कहलाने लग जाता है और जब सम्यग्दर्शन की परिणति होने लग जाती है तो उसके साथ रहने वाला ज्ञान सम्यग्ज्ञान कहलाने लग जाता है। इसलिए आचार्य ने कहा कि मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधि ज्ञान यह तीन ज्ञान, अज्ञान रूप भी होते है और जब अज्ञान रूप हो गये तो इनके नाम दिये जाते हैं– कुमति, कुश्रुत और कुअवधि ज्ञान। कुअवधि ज्ञान को विभंग ज्ञान भी बोलते है। यह ज्ञान अपने आप मिथ्या हो गये।

दृष्टांत :

एक बहुत अच्छा उदाहरण आचार्यों ने दिया है–जैसे मान लो किसी पात्र में आपने दूध रखा है तो दूध अगर अच्छे पात्र में रखा होगा तब तक दूध अच्छा बना रहेगा और आप ने किसी ऐसे पात्र में रख दिया जिस पात्र में मान लो पहले से ही कोई कड़वा पदार्थ पड़ा हो या उस पात्र में जहर आदि पड़ा हो और उसमें आपने दूध डाल दिया तो वह दूध सारा का सारा कड़वा हो जायेगा,

जहरीला हो जायेगा। पात्र के संयोग के कारण से उस दूध का उलटापन हो गया, विपर्यय हो गया, विपरीतपना हो गया। ऐसे ही जब हमारे अन्दर मिथ्यात्व रहता है तो हमारा ज्ञान मिथ्याज्ञान हो जाता है और जब हमारे अन्दर सम्यक् दर्शन रहता है तो हमारा ज्ञान सम्यक् ज्ञान हो जाता है। जब हमारे अन्दर तत्त्व को समीचीन श्रद्धा होगी तब वह ज्ञान सम्यक् ज्ञान होगा। हमें तत्त्व की श्रद्धा नहीं होगी तो वह ज्ञान मिथ्याज्ञान होगा। आचार्य कहते हैं–इन दोनों प्रकार के ज्ञानों की परिणतियाँ सर्व संसारी जीवों में चलती रहती है लेकिन जो अपने ज्ञान को अच्छा बना ले, ऐसे जीव बड़े काम के होते हैं। धीरे-धीरे वे ज्ञान को अच्छा बना सकते हैं। शायद यह इष्टोपदेश सुनते-सुनते पढ़ते-2 आप लोगों का ज्ञान भी अच्छा हो जाये जो अभी कुधी के रूप में हैं, दुर्बुद्धि के रूप में हैं उनमें थोड़ी-थोड़ी कमी आ जाये और वह ज्ञान धीरे-धीरे समझाने से भी अच्छा बन जाता है। ऐसी नहीं है कि समझाने से कोई फर्क नहीं पड़ता है।

आदिनाथ भगवान के जीव की कथा :

भगवान् आदिनाथ के पूर्व भव में, दस भव पहले उनकी कथा में यह आता है कि उनको भी समझाया गया। यह समझ लो कि दस भव पहले की बात बता रहा हूँ कि उनका जीव एक जयवर्मा की पर्याय में था और उसके बाद में उसका जन्म हुआ तो वह महाबल नाम का एक विद्याधर बना। उस महाबल को राजा के रूप में रहते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया। एक दिन उसकी वर्षगाँठ मनायी जा रही थी और उस समय बहुत सारे लोग इकट्ठे थे, मंत्री लोग, सामन्त लोग, सभी के पुत्र-पुत्रियाँ, सब इकट्ठे हुए थे और उस समय पर कुछ मंत्रियों ने उस राजा से चर्चा की और राजा ने भी मंत्रियों से चर्चा करने का भाव किया कि आज थोड़ा सा धर्म, अधर्म के विषय पर चर्चा की जाये तो बहुत सारे मंत्री धर्म को मानने वाले नहीं थे, उन्होंने राजा को समझाया कि धर्म कुछ नहीं होता है। जो जीवन मिला है उसी का अच्छे ढंग से उपभोग करो, खाओ पीओ मौज करो, इसी का नाम जीवन है। यह धर्म वगैरह करने से तो कष्ट ही होता है और आगे क्या मिलेगा पता नहीं। लेकिन उन मंत्रियों में से एक मंत्री था जिसका नाम था स्वयं-बुद्ध। वो मंत्री बहुत ही समझदार था। जिनेन्द्र भगवान के धर्म को जानने वाला, तत्त्व को जानने वाला था। वो भगवान जब बने, उस काल की बात नहीं है। इससे पहले जो तीर्थ चल रहे होंगे उस काल की बात है। वो भव पहले यानि असंख्यात वर्ष पहले की बात हो गई क्योंकि नौ भवों के बीच में वह स्वर्ग में भी जाते हैं फिर मनुष्य बनते हैं क्योंकि धर्म तो कभी भी मिटता नहीं है। इसीलिए धर्म अनादि अनंत धर्म कहलाता है। सनातन धर्म भी इसलिए कहलाता है और नौ भव पहले की भगवान आदिनाथ के विषय में यह वार्ता चल रही है कि स्वयंबुद्ध नाम का मंत्री महाबल राजा को समझा रहा है। आदिनाथ भगवान् के जीव समझाते हुए वह कहता है कि धर्म पर विश्वास किये बिना तो हमें कभी सुख मिलने वाला नहीं है और वह कहता है कि जितने भी ये मंत्री आपको समझा रहे हैं, यह सब अपनी बुद्धि से

समझा रहें है लेकिन यह यथार्थ नहीं है। यथार्थ तो हम आपको बता रहे हैं और इनको अगर पुनर्जन्म पर विश्वास नहीं हो, तो मैं आपको पुनर्जन्म पर विश्वास करने वाली बातें भी बताऊँगा। स्वयंबुद्ध मंत्री, राजा महाबल से कहता है कि हे राजन्! आपके ही वंश में एक अरविन्द नाम का राजा हुआ है। उस राजा अरविन्द के दो पुत्र थे। एक का नाम था हरिश्चन्द्र और एक का नाम था कुरूविन्द्र। राजा अरविन्द को अपने पाप कार्यों से नरक आयु का बंध हो गया जब अंत समय आया तो उस राजा अरविन्द की स्थिति ऐसी हो गयी कि नरक में जाने से पहले उस राजा के अन्दर ज्वर पैदा हो गया एक ताप पैदा हो गया कि उसको तीव्र बुखार जैसा शरीर में बना रहने लगा। अब-अन्त में उसकी यह परिणति किसलिए हो गयी? तो आचार्य कहते हैं उसे नरक आयु का बंध हो गया, इसलिए हो रही है। यह ध्यान रखना जिनको नरक आयु, तिर्यञ्च आयु का बंध हो जाता है, उनका अन्त समय दुर्बुद्धि के साथ निकलेगा। उनकी बुद्धि अंत-अंत में बिगड़ेगी और बुद्धि ऐसी बिगड़ेगी कि वे ऐसे काम करेंगे कि उनके नरक में जाने योग्य परिणाम हो जायेंगे। जब उस राजा अरविन्द के लिए शरीर में ज्वर उत्पन्न होने लगा, बुखार आने लगा उसको कहीं पर भी शीतलता नहीं मिल रही थी, केवल शरीर में दाह उत्पन्न हो रही थी। बुखार में तो शरीर टूट जाता है लेकिन उसके शरीर में केवल दाह उत्पन्न होती और उस दाह को खत्म करने के लिए अपने बड़े पुत्र हरिश्चन्द्र को बुलाता है और कहता है कि हमें उत्तरकुरु भोग भूमि में ले चलो। कहाँ ले चलो? उत्तरकुरु भोगभूमि में क्योंकि वह विद्याधर राजा है और विद्याधर राजा कहीं पर भी जा सकते हैं। भोगभूमि में ऐसा वातावरण रहता है कि वहाँ पर हमेशा आपको बिल्कुल शीतलता मिलेगी। हवा, पानी वहाँ बिल्कुल भी गर्मी नहीं होती और यहाँ तक कि वहाँ के किसी बगीचे में घास लगी होगी, तो वह घास भी इतनी मीठी होती है कि आप घास ही खाते चले जाओ। वहाँ का वातावरण बड़ा शान्त सुखद होता है। उसके मन में विचार आया कि हमें यहाँ पर शांति नहीं मिल रही है और उस परिसर में जाने के बाद में हो सकता है कि हमारी यह दाह मिट जाये और हमें शांति मिल जाये। उस बेटे ने कहा- ठीक है। उसने अपनी विद्या का प्रयोग किया और विद्या का प्रयोग करके उसे भोग भूमि ले जाने का प्रयास किया, लेकिन वह भोग भूमि में नहीं पहुँच पाया, आधे रास्ते से ही उसे लौटकर के आना पड़ा क्योंकि विद्याएँ भी तब काम करती है जब हमारे अन्दर पुण्य हो। पुण्य जब खत्म होने लग जाता है नष्ट होने लग जाता है, तो वह विद्याएँ भी काम नहीं करती और उस राजा का पुण्य अपनी ही दुर्बुद्धि के कारण से, नरक आयु का बंध हो जाने से, वह पुण्य खर्च हो गया। उसके पास अब इतना पुण्य नहीं रहा कि वह भोगभूमि तक भी पहुँच पाये इसलिए उसे वापस लौटकर के आना। वहाँ अब शांति के लिए, शीतलता के लिए जिनने भी उपाय हो सकते है सब किए गए।

''कृतं मया चन्दनपूतलेप्यं, न शीतमाप्तं मनसापि किञ्चित्।
ततोऽघ सन्तप्त मनोविशान्त्यै, प्रपूज्यते मंङ्गल पाद पद्मम्॥''(आ.वि.सा. पूजन)

नरक आयु का बंध होने से तीव्र हिंसा और तीव्र कषाय के परिणाम उत्पन्न होते हैं।

यह चन्दन किसलिए चढ़ाया जाता है? इसलिए चढ़ाया जाता है कि हे भगवन्! हमने चन्दन और चन्दन जैसी सब चीजें शरीर पर लगा ली, पर शरीर कभी भी शांत नहीं हुआ इसलिए यह चन्दन भी आपके चरणों में अर्पित है। इसमें भी शांति उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है। हमारे मन की शांति तो इसके त्याग से ही होगी। उस राजा के लिए जितने भी विशिष्ट मलयागिरि के चन्दन, कपूर, ठण्डे - ठण्डे रत्न होते हैं उन रत्नों की शीतलता से भी ठंडक उत्पन्न नहीं हो पाई उसके शरीर की दाह शांत नहीं हुई। जब उसके शरीर की दाह शांत नहीं हुई तो वह अपने हरिश्चन्द बेटे से कहता है- बेटा! अब क्या करे? तब वह बेटा कहता है-पिताजी हमने सब उपाय कर लिये, जितने भी शीतल पदार्थ है, चाहे वह पिपरमेंट हो, कपूर हो, चंदन हो, चाहे ठंडा-ठंडा जल हो, शीतल-शीतल जितने भी सुगंधित पदार्थ हो सब लगा दिए लेकिन किसी से भी आपको शीतलता की प्राप्ति नहीं हुई है। एक दिन वह अपनी शय्यागृह में सो रहा था, लेटा था, उसको नींद तो बड़ी मुश्किल से आती थी। जहाँ पर लेटा था उस कमरे में दो छिपकली लड़ रही थी और लड़ते-लड़ते एक छिपकली की पूँछ टूटी और उसकी पूँछ का खून उसके मुँह पर आकर के गिरा। देखो! जीव की परिणति कैसी होती है? मिथ्या ज्ञान क्या होता है? दुर्बुद्धि क्या होती है? सुबुद्धि क्या होती है? उस छिपकली की खून की बूँद उसके मुँह पर गिरी और उस बूँद को चाटने के माध्यम से उसे ऐसा लगा कि इसमें बड़ी ठंडक है। उसमें ठंडक नहीं है, खून में उसे शीतलता का आभास हो रहा है।

लेकिन उसकी दुर्बुद्धि ऐसी चल रही है कि जैसे ही उसने उस बूंद को चखा तो चखते ही लगा कि आज मुझे थोड़ी सी राहत मिली, थोड़ी सी शांति मिली और उसके मन में आया कि अगर मेरे शरीर को शांति मिलेगी ऐसे ही खून पीने से मिलेगी। जीवों की विचित्र परिणतियाँ हैं। यह सत्य घटना है, पुराणों में लिखी हुई है। अब वह अपने छोटे बेटे को बुलाता है (कुरूविन्द को) और उससे कहता है-बेटा! हमारे लिए अनेक प्रकार के उपाय हो गये, लेकिन कोई भी उपाय कारगर साबित नहीं हो रहा है। किसी भी उपाय से मेरे शरीर को लाभ नहीं मिल रहा है। केवल एक मेरी अन्तिम इच्छा पूरी कर दो। मुझे ऐसा लग रहा है कि इस उपाय से मेरा रोग ठीक होगा और वह उपाय यह है कि तू एक तालाब में अनेक जीवों का, अनेक जानवरों का खून इकट्ठा करवा दो उसी मैं नहाऊँगा, उसी में मैं रहूँगा तो मेरे इस शरीर का ज्वर शान्त हो जाएगा। मेरी यह दाह शांत हो जाएगी। बेटे ने सुना तो चिन्ता में पड़ गया। इतनी हिंसा मैं कैसे कर सकता हूँ? इतना खून अपने पिता की इच्छा के लिए कैसे इकट्ठा कर सकता हूँ? उसने विचार किया कि पिता की आज्ञा नहीं मानी गई तो यह और ज्यादा क्रोधित होंगे और मानते हैं तो अपना धर्म जा रहा है। उसके मन में यह विचार आया कि पिताजी के अन्दर यह दुर्बुद्धि क्यों उत्पन्न हो रही है? कभी भी किसी का खून पीने से या खून में नहाने से कभी किसी को शांति नहीं मिलती लेकिन इनकी इच्छा में यह आ गया पर इनकी इच्छा की पूर्ति कैसे करें? फिर उसके मन में विचार आता है कि पहले यह समझें कि पिताजी को यह हो क्या गया है? तो वहाँ एक अवधिज्ञानी मुनि महाराज थे, उनके पास में गया

मिथ्या/विभंग ज्ञान में सही वस्तु सही रूप में ग्रहण करने में नहीं आयेगी।

और उनसे निवेदन करता है कि महाराज! हमारे पिताजी के अन्दर ऐसे-ऐसे विचार आ रहे हैं हम क्या करें? तो वह अवधिज्ञानी मुनि महाराज उससे कहते है कि तेरे पिताजी को नरक आयु का बंध हो गया है और नरक आयु का बन्ध होने के बाद में वह आयु छूट नहीं सकती है जिसको नरक में जाना है उसके अन्दर ऐसे ही परिणाम उत्पन्न होते हैं। तीव्र हिंसा के कारण तीव्र कषाय के कारण और इन परिणामों के कारण से ही उसके अन्दर ऐसी दुर्बुद्धि आ रही है। दूसरी बात यह है कि तेरे पिताजी को अवधिज्ञान भी है लेकिन वह अवधिज्ञान, मिथ्यात्व के कारण से कु-अवधिज्ञान या विभंग ज्ञान है। वह विभंग ज्ञान उल्टा काम कर रहा है। विभंग ज्ञान में सही वस्तु सही रूप में ग्रहण करने में नहीं आयेगी। गलत वस्तु गलत के रूप में ग्रहण करने में आयेगी, वह उल्टा काम करेगा। वह गलत को सही समझेगा, जिससे उसका नुकसान होगा, अहित होगा। तेरे पिताजी को यह विभंग ज्ञान है इस कारण से उनकी परिणति यह हो रही है। लेकिन एक बात ध्यान रखना अगर उनके निमित्त से तू पाप करेगा तो उस पाप के बन्ध से तेरे लिए ऐसे कर्मों का बन्ध होगा जिससे तू भी नरक गति जाने से बच नहीं पायेगा। इसलिए अपनी बुद्धि से काम कर, अपनी आत्मा को नरक में जाने से बचा। पिताजी के चक्कर में तू नरक आयु का बंध मत कर लेना। अब तू समझ ले, जो करने योग्य है वो मैंने तुझको बता दिया, हिंसा नहीं करना और अगर तुझे अपने पिताजी के मन का भी भाव रखना हो तो दूसरे उपाय कर लें लेकिन तू कभी हिंसा मत करना। पिताजी के लिए इतना खून मत बहाना क्योंकि पिताजी को तो नियम से नरक में जाना ही है, यह तो पक्की बात है। वो घर पर आ गया। उसके मन में विचार आया कि हमें महाराज की बात भी मानना है तो हमें हिंसा करके खून को उत्पन्न नहीं करना और पिताजी की बात मानना तो क्या करना? उसने कुंड में बहुत सारा लाल रंग इकट्ठा करवा दिया (खून जैसा लाल रंग) उसमें थोड़ा सा सुगंधित पदार्थ डलवा दिया, थोड़ी सी उसमें शर्करा भी डलवा दी, जिससे थोड़ा मीठापन आ जाये और उनको अच्छा लगे ऐसा सब कर लिया। एक दिन वह जब इकट्ठा हो गया तो उसने पिताजी को कहा-पिताजी, आपकी इच्छा पूर्ति के लिए कुण्ड तैयार है। पिताजी कुंड के पास गये और उन्होंने उस पानी को अपने मुँह में डाला और मुँह में डाल करके कुल्ला किया तो पिताजी समझ गये कि बेटे ने मेरे साथ धोखा किया है क्योंकि उसको अवधिज्ञान था और जब उसे लगा कि यह वास्तविक चीज नहीं है, जो हम चाह रहे थे तो उसको और गुस्सा आया। उसको गुस्सा आया तो वह अपने बेटे को मारने के लिए दौड़ा। एक उसने कटारी उठाई और कटारी को उठाकर के उसको मारने के लिए दौड़ा। बेटे ने देखा कि मेरे पिताजी मुझे मारने के लिए आ रहा है तो वो भागा और उसके पीछे-पीछे वो पिताजी भागे और भागते-भागते उसको ठोकर लगी। उसके हाथ में जो कटारी थी वह उसी के पेट में घुस गई और उसका मरण हो गया। यह कहलाती है दुर्बुद्धि, यह कहलाता है मिथ्याज्ञान, इसी को कहते हैं कुअवधिज्ञान और इसी को कहेंगे कुमति ज्ञान, कुश्रुत ज्ञान जिन चीजों में हमारा हित नहीं है उसमें हित मानना यह कुज्ञान, कुबुद्धि की सबसे बड़ी विशेषता है। जब उसका

मरण हो गया, वह नरक में चला गया तो वह बेटा देखता रह गया कि यह क्या हो गया? लेकिन उसे मालूम था कि मुनि महाराज ने कहा है कि ऐसा ही होगा तो उसके परिणाम में शांति आयी और यह घटना स्वयंबुद्ध मंत्री ने राजा महाबल को सुनाई। आप पुराण नहीं, पढ़ते हो क्योंकि पुराण में बड़े घुमाव रहते हैं। सुना किसी को रहे हैं, सुनता कोई है और उसके भी एक दो नहीं। नौ भव पहले की घटना और नौ भव पहले में भी, जो पार्ट चल रहा है, उसके भी बहुत पीछे की यह है कथा। ऐसी फिल्में नहीं देखते हो जिसमें पिछली-2 बातें चलती रहती हो और लास्ट में जाकर के उसकी नींद खुलती है, वह सब कुछ स्वप्न में देख रहा होता है और वह सारी की सारी फिल्म खत्म हो गयी। फिल्म तो देख लेंगे लेकिन पुराण नहीं पढ़ेंगे। आप जब भी आदिनाथ पुराण पढ़ोगे तो आपके लिए वहाँ इतने मोटे पुराण में अनेक प्रकार के वर्णन मिलेंगे। हो सकता है कि अब आपको यह पुराण समझ में आ जाये और अगर समझ में नहीं आये तो एक युगदृष्टा नाम की किताब है जो उपन्यास शैली में लिखी है, जिसमें आदिनाथ भगवान के दस भवों का वर्णन है और उसमें यह महाबल की कथा है और उसको पढ़ने के बाद आपको समझ में आ जायेगा कि देखो! भगवान बनने वाले जीव को भी कैसे समझाना पड़ता है और राजा महाबल की पर्याय में उसको समझाया जा रहा है। वह स्वयंबुद्ध नाम का मंत्री उसे समझा रहा है कि महाराज आर्त्तध्यान के परिणाम से राजा अरविन्द के जीव ने नरक आयु का बन्ध कर लिया और मरकर के नरक में गया है। यह आपके ही वंश में घटित होने वाली घटना है। यहाँ किसी से भी पूछ लो, जितने राज सभा में बैठे हैं। जैसे आप से कहा जाये कि बिजौलियाँ का इतिहास क्या है? आप यहाँ की घटनाएँ सुनाने लग जाओगे। यहाँ शिलालेख लिखा है, एक सेठ ने शिलालेख बनवाया था, यहाँ यह है जैसे आपको यहाँ की घटनाएँ पता है ना। वह मंत्री कहता है कि यह घटना इतनी प्रसिद्ध है कि यहाँ पर बैठा हुआ हर व्यक्ति जानता है और अगर आपके लिए यह विश्वास हो जाये तो अपने आप आपका विश्वास हो जायेगा कि पुनर्जन्म होता है, नरक गति भी है और नरक आयु का बन्ध भी होता है। नरक में जीव इस प्रकार के पाप कर्म का फल भोगने के लिए जाता है इसलिए आपको धर्म पर विश्वास करना है। लेकिन महाबल राजा को यह कहानी सुनने के बाद भी धर्म पर विश्वास नहीं हो पाया। एक कहानी से नहीं हो पाया तो दूसरी कहानी सुनानी होगी। इस कहानी में जो भाव है उसका यह एक पार्ट है और इससे यह समझना कि हमारा ज्ञान मिथ्या भी होता है और सम्यक् भी होता है। जब मिथ्या होगा तो विषय भोगों में रुचि उत्पन्न होगी और वह रुचि अन्त तक नहीं छूटेगी और वह रुचि बढ़ती ही जायेगी। उस रुचि से बुद्धि में भ्रम उत्पन्न होता चला जायेगा कि हमें इससे सुख मिल रहा है, जैसे उसको उत्पन्न हो गया कि मुझे इस छिपकली की खून की बूंद से सुख मिलना है। ऐसे ही आपको विषयभोगों के सेवन से लगेगा कि हमारी दाह कम हो गयी है लेकिन वह दाह कभी भी कम नहीं होती है। तृष्णा निरन्तर बढ़ती ही रहती है और वह तृष्णा रूपी नागिन मन में बैठी रहती है। थोड़ी देर के लिए वह शांत बैठ जाती है और फिर पता नहीं कब

विषय भोगों को त्यागने का भाव जीवन के अंत में भी मुश्किल से होता है।

फूँकार लग जाती है और वह डंक मार देती है फिर जहर चढ़ जाता है जिससे आदमी भ्रमित हो जाता है इसलिए कहना पड़ता है **''तृष्णा नागिन ज्यों-ज्यों डंके लहर जहर की आवे''** लहर तो आती है लेकिन जहर की आती है। लहर वह जहर जैसी दिखाई नहीं देती, समझ में भी नहीं आती। जिस किसी को भी वह लहर आती है तो जितना जहर उसके अन्दर होगा उतना लहराएगी। मतलब यह है कि वह तृष्णा रूपी नागिन जितने जहरीले ढंग से काटेगी उतने ही आपको काम भोगों में, विषय सेवन में आनन्द आयेगा और आपको लगेगा कि यह विषय सेवन से ही हमें सुख प्राप्त हो रहा है इसलिए आप उनको कभी भी छोड़ नहीं पायेंगे। जीवन के अन्त तक भी यह छूट नहीं पाते हैं। आदमी अशक्त हो जाता है। काम-भोगों के सेवन में उसका अंत तो हो जाएगा लेकिन वह उनका त्याग नहीं कर पायेगा। यह आप देख लेना जिनके ज्ञान में यह समीचीनता आने लगती तो, परिणति थोड़ी सम्यक होने लगती है। हाँ, चलो कोई बात नहीं, बुढ़ापा आ गया, यह रोग आ गया, अब तो इनको छोड़ दो। यह छोड़ने का भाव, मन से त्यागने का भाव भी बड़ी मुश्किल से आता है। नहीं तो आदमी सोचता रहता है, थोड़ा-थोड़ा भोगते रहे, थोड़ा-थोड़ा खाते रहे, थोड़ा-थोड़ा सेवन करते रहे, क्या फर्क पड़ता है? जब जैसी इच्छा हो गयी उतना कर लिया। बाद में तो फिर कुछ ही नहीं रहेगा। अन्त-अन्त तक भी उसकी यह स्थिति रहती है इसलिए आचार्य कहते हैं **'अन्ते सुदुस्त्याजान् कामान्'** अन्ते में भी बड़ी मुश्किल से छूटने वाले हैं। ऐसे कामों को सेवन करने वाला हमारी दृष्टि में तो वह अच्छी बुद्धि वाला तो नहीं होगा और हे शिष्य! तू जो सामने बैठकर के प्रश्न कर रहा है, तेरे अन्दर भी धन की तृष्णा के पीछे भी यह काम भोगों की तृष्णा पड़ी है इसलिए तुझे यह प्रश्न आ रहा है कि हम धन को इकट्ठा करेंगे तो उसमें नुकसान क्या है? बाद में दान कर लेंगे। दान तो तू धन का करेगा लेकिन तेरी बुद्धि कैसे सुधरेगी। चिन्ता तो इस बात की है कि धन निकल गया, दान हो गया। यह तो एक कहने को धर्म हो गया लेकिन बुद्धि थोड़ी ना सुधर गई। सबसे बड़ी चीज तो है अपनी बुद्धि को सुधारना, इसलिए आचार्य यहाँ पर कहते हैं इन काम भोगो के स्वरूप को भी समझो और इनको समझकर के आपकी बुद्धि में तृष्णा को कम करो। जितनी आप अपनी तृष्णा को कम करने का पुरुषार्थ करेंगे उतना आप के लिए सुख मिलेगा और इन काम भोगों से विरक्ति होगी। उस महाबल राजा के अन्दर भी यह ज्ञान नहीं आया अभी स्वयंबुद्ध मंत्री उसको और समझाएगा। हो सकता है कि कल आपको वह समझ सुनाई पड़े। उसकी परिणति कैसे परिवर्तन करती है यह भी आपको देखने को मिलेगी और आपके मन में भी यह आयेगा कि देखो एक तीर्थंकर होने वाले जीव भी पिछले भवों में इसी प्रकार के रहे हैं जिस प्रकार के हम अभी हैं। जैसा उनका भूतकाल रहा है अतीत रहा है वैसा ही हमारा अभी वर्तमान है या प्रजेंट है। इससे भी आपके लिए यह साहस पैदा हो सकता है। कोई बात नहीं, उनको तो समझ में आ गया। बहुत दिन हो गये हमको आज भी समझ में आ जाये।

अपनी तृष्णा को कम करने का पुरुषार्थ सुख प्रदान करता है।

शरीर कैसा है?

18

भवन्ति प्राप्य यत्सङ्ग-मशुचीनि शुचीन्यपि।
स कायः सन्ततापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा॥

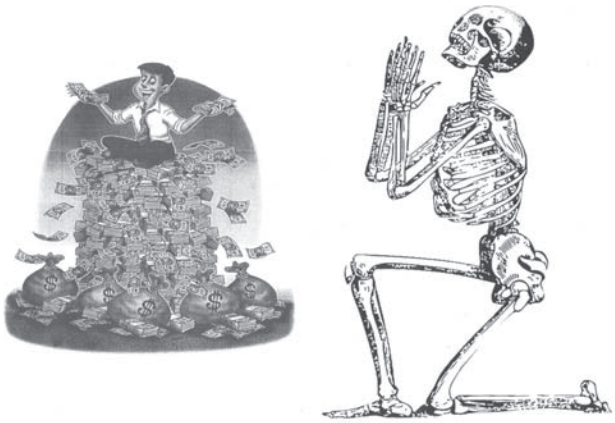

अन्वयार्थ—(यत्सङ्गं प्राप्य) जिसका संयोग पाकर **(शुचीनि अपि)** पवित्र पदार्थ भी **(अशुचीनि)** अपवित्र **(भवन्ति)** हो जाते हैं **(स कायः)** वह शरीर **(सन्ततापायः)** सदा विनाशीक बना रहता है अतः **(तदर्थं)** उसके लिए **(प्रार्थना वृथा)** पवित्र करने की कामना व्यर्थ है।

- **अशुचि शरीर**
- **कर्म सिद्धांत**
- **रत्नत्रय**

आत्मा के साथ अनादिकाल से जुड़ी हुई चीजें चल रही है वही इसका स्वरूप है और वह स्वरूप आत्मा के अन्दर बाँधे हुए कर्मों के उदय से अनेक रूपों में मिलता रहता है। शरीर को प्राप्त करके यह आत्मा शरीर से अनेक प्रकार के पाप आदि कार्य पुनः करता है। शरीर के लिए सबसे बड़ी चीज है-विषय-भोगों की इच्छा। वह विषय भोगों की इच्छा भी इस शरीर के लिए ही करता है जो पिछले सूत्र में आचार्य महाराज ने बताया कि जो विषय-भोग, काम आदि की पूर्ति करने के लिए आपके सामने आते हैं वह सब शरीर पर आश्रित होते हैं और शरीर का स्वभाव तो आप जानते ही होंगे, हम जानते हुए भी उस पर विचार नहीं कर पाते हैं। इसलिए कहकर के विचार करना पड़ता है कि यह मोह की बलिहारी है। आदमी हर चीज का विचार करता है लेकिन अपने पास की जो चीज है, निकट की जो चीजें हैं उस पर विचार नहीं कर पाता है और मोह के कारण सबकुछ समझकर भी एक अनजान सा बन जाता है। लेकिन आचार्य देव ने इस देह की सही - सही स्थिति बताने के लिए ही यह श्लोक लिखे हैं। शायद यह श्लोक लिखने से आपको यह समझ में आ जाये कि यह देह अशुचि है और आत्मा शुचि है। दुनियाँ में अगर कोई शुचि पदार्थ है, पवित्र पदार्थ है तो वह आत्म-तत्त्व है। वह आत्म-तत्त्व कभी भी अन्य पदार्थ से लिप्त नहीं होता सिवाय कर्मों के और कर्मों से लिप्त होने के बाद भी वह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता, जो उसका शुचि स्वभाव है (पवित्र स्वभाव है) वह बना रहता है क्योंकि वह उसके स्वभाव में नहीं है और उसके स्वभाव में कर्म आदि का बँधना भी नहीं है तो वह उसको कभी भी ग्रहण नहीं करता है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि यह हम समझ लें कि शुचि क्या है? अशुचि क्या है? पवित्र क्या है? और अपवित्र क्या है? हमारी दृष्टि पवित्रता पर ज्यादा रहती है या अपवित्रता पर ज्यादा रहती है। अगर हम अपनी आत्मा के पवित्रता की भावना करते हैं, अपने चित्त को पवित्र करना चाहते हैं तो हमें अपनी दृष्टि में भी पवित्र भाव लाने पड़ेंगे और वह पदार्थ सामने लाना पड़ेगा जो वास्तव में पवित्र हो, शुचि हो। जब हम आत्मा की ओर दृष्टि डालेंगे, आत्मा के स्वभाव के बारे में विचार करेंगे तो आपके चित्त में पवित्रता आयेगी और जब आप देह के बारे में विचार करेंगे, देह के बारे में आप आसक्त रहेंगे तो आपके चित्त में अपवित्रता बनी रहेगी। यह बात अलग है कि जब हम स्वरूप के बारे में विचार करें तो हमारा चित्त देह के स्वरूप का चिंतन करके भी पवित्र हो सकता है। यदि हम देह के स्वरूप का चिंतन करेंगे तो हमारा चित्त पवित्र हो सकता है और हमारे चित्त में से वह मोह घट सकता है।

अशुचि शरीर :

आचार्य महाराज कहते है कि '**भवन्ति प्राप्य यत्सङ्गमशुचीनि शुचीन्यपि**' शरीर का स्वभाव तो ऐसा है कि कितने भी शुचि पदार्थ हो, सब इस देह के सम्पर्क में आकर के अशुचि हो

आत्मा पवित्र है, वह कर्मों से लिप्त होकर भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ती है।

जाते हैं। जब हम कोई पदार्थ बाहर से देखते हैं तो हम उसे पवित्रता की दृष्टि से देखते हैं और उस पदार्थ का शरीर से संयोग हो जाने से वह पदार्थ अशुचि हो जाता है, अपवित्र हो जाता है। भोजन भी जिसको हम ग्रहण करते हैं वह भी शरीर में जाकर के अशुचि हो जाता है और बाहर से भी हम इस शरीर के लिए जितनी चीजें लगाते है वह सब भी इसके सम्पर्क में आकर के अशुचि हो जाती है। आपने अपने शरीर को नहलाया तो साबुन लगा, पानी लगा और वह जितना भी साबुन व पानी लगकर के बहा, वह अशुचि हो गया। जब तक वह साबुन व पानी आपके शरीर पर नहीं लगा तब तक अच्छा है, वह पवित्र है और जैसे ही आपके शरीर से होकर के निकल गया तो वह अपवित्र हो गया अब वह नाली में जायेगा, इसके अलावा और कहीं नहीं रखा जाएगा। उस शरीर के सम्पर्क को प्राप्त करने मात्र से वह अशुचि हो जाता है। आप कितने भी अच्छे-अच्छे क्रीम, पाउडर सब अपने शरीर पर लगा लो जैसे ही आपने शरीर पर लगाये समझ लो वह बेकार हो गये। यदि आपके मुँह पर ज्यादा पाउडर लग गया, क्या आप उस पाउडर को हटाकर के किसी दूसरे के मुँह पर लगा सकते हो? नहीं, वह बेकार हो गया। यहाँ तक होता है कि अगर कोई व्यक्ति फूलों की माला पहन लेता है, एक बार जिसके लिए वह माला पहना दी तो फिर वह दूसरे के गले में नहीं पहनाई जाती। क्यों? वह माला एक के गले में पड़ी है या एक के शरीर को स्पर्श हो गई है तो अब वह किसी दूसरे शरीर के लायक भी नहीं रहती है, यह स्वभाव है। इसलिए हम इस स्वभाव को समझकर के थोड़ा सा विचार करते हैं तो हमारी दृष्टि में अब यह आ जाता है कि हम इस शरीर के लिए कितनी चिन्ताएँ करते हैं। हम शरीर के मोह के कारण से चिन्ताएँ करते है लेकिन कभी भी शरीर के स्वभाव के बारे में नहीं सोचते हैं। दूसरों के बारे में सोच लेते हैं कि उसका शरीर गंदा हैं, उसके मुँह से बदबू आती है और उसका शरीर साफ नहीं दिखाई देता है। अपने मुँह से कभी बदबू नहीं आती है? क्या अपने शरीर से कभी दुर्गन्ध नहीं आती है? सब कुछ होता है लेकिन हम दूसरों के शरीर को देखकर तो घृणा कर लेते हैं पर अपना शरीर कैसा भी उससे घृणा नहीं करते हैं। हम यह नहीं सोचते कि जैसा इसका शरीर है वैसा ही शरीर मेरा है। हमें यह बात तब समझ में आएगी जब हम शरीर के स्वभाव का चिंतन करेंगे। हम शरीर के स्वभाव को देखकर के भी शरीर से उपेक्षा नहीं कर पाते हैं। उपेक्षा करना का तात्पर्य है कि–इससे थोड़ा सा मोह, राग कम कर देना। जब भी कभी आपके सामने ऐसे दृश्य आयेंगे तो आप मोह के कारण उसकी उपेक्षा कर देंगे लेकिन शरीर का चिंतन करके उसकी उपेक्षा नहीं कर पाओगे। जैसे घर में बच्चा होता है तो माँ उसकी हर तरह से सेवा करती है। वो गंदगी कर देता है तो उसको साफ करती है, उससे घृणा नहीं करती है ; अपने बच्चे को देखकर उसे कभी घृणा नहीं होती। लेकिन वो बच्चा पराया हो तो? आप स्वयं महसूस करके देखें, हमारी यह स्थिति इस मोह के कारण से होती है। जब हमारे अंदर मोह रहता है तो अपना खराब भी होगा तो भी अच्छा लगेगा और उस मोह के कारण से दूसरा

अच्छा भी होगा तो हमारे लिए घृणा का कारण बन जाएगा। एक ही जैसा बच्चा हो, एक ही उम्र का हो तो भी माँ अपने बच्चे के लिए सब कुछ कर लेगी और यदि दूसरा बच्चा हो तो उसके लिए इतनी जल्दी तैयार नहीं होगी। बच्चे से हमारा मोह जुड़ा रहता है इसलिए वह हमसे सब करा लेता है और हम सब कर लेते हैं और उसके बाद सब भूल जाते हैं। इसको कहते हैं मोह की परिणति और इसी मोह की परिणति के कारण से जब हम उस शरीर के साथ में थोड़े से बड़े हो जाते हैं तो बड़े होकर के उस शरीर के ऐसे परिणमन देखते हैं जिन परिणमनों को देखकर के भी हम घृणा उत्पन्न नहीं कर पाते, विचार नहीं कर पाते कि इस शरीर का ऐसा ही अशुचि स्वभाव है। कभी भी आप किसी बड़े Hospital में गये हो किसी Doctor के यहाँ-जहाँ पर ऑपरेशन हो रहो हो तो आप देखेंगे कि ऑपरेशन में क्या स्थिति होती है। एक बार भाग्योदय में जहाँ डॉक्टर लोग सेवा देते हैं उसी भाग्योदय में एक डॉक्टर ने तुरन्त निकला हुआ एक ट्यूमर दिखाया और बताया कि महाराज इस लेडी के पेट में इतना बड़ा ट्यूमर निकला जिसे वह एक बाल्टी में रखे हुए थे। हमें सोचकर के भी आश्चर्य होता है कि इतनी बड़ी-बड़ी भारी-भारी चीजें शरीर में बनती रहती है, जो उस शरीर के काम की नहीं है वे इकट्ठी होती रहती हैं, पीडाएँ देती रहती हैं लेकिन हम उनसे कभी घृणा नहीं करते। उसको बाहर देखकर तो घृणा होगी लेकिन जब तक वह शरीर के साथ जुड़ा हुआ है तब तक आपको ऐसा लगेगा कि इसको कोई टच ना कर दे, कोई इसको छू ना ले, डर लगता है।

वह सब कुछ देखने के बाद भी मन के अन्दर जब तक शरीर की अशुचिता का विचार नहीं आता तब आचार्य कहते हैं कि आपको आत्मतत्त्व की रुचि पैदा नहीं होगी क्योंकि आत्मा तो सूक्ष्म है, अदृश्य है और उस आत्मा का सम्बन्ध शरीर से होने से हम शरीर मय ही अपने आप को अनुभव करते हैं। शरीर से भिन्न कोई हमारा आत्मतत्त्व है, हम इस बात का कभी भी विचार इसलिए नहीं कर पाते हैं क्योंकि हमारी दृष्टि स्थूल पर टिकी रहती है, सूक्ष्म तक पहुँचती नहीं है। सूक्ष्म तक पहुँचने के लिए एक यही उपाय सामने आ जाता है कि अपनी दृष्टि को स्थूलता से हटाओ, जो तुम्हारे सामने है उसके बारे में सही ढंग से विचार करो और जब आप विचार करोगे तो आपके अन्दर थोड़ी सी राग की कमी होगी। बारह भावनाओं में भी एक अशुचि भावना रखी गई है अन्यत्व भावना और वह देह के आश्रित ही होती है। इस जगत में जितनी भी अपवित्रता मिलेगी, अशुचिता मिलेगी वह सब देह के आश्रित मिलेगी। बाहर का कोई पदार्थ इतना अशुचि नहीं है जितना कि यह शरीर है और इस शरीर के साथ में मोह निरन्तर बढ़ता चला जाता है। उसकी दशा बताते हुए यहाँ आचार्य कहते हैं कि तुमने सब कुछ किया, इस शरीर के लिए सुगन्धित पदार्थ लगाए हैं, खाये हैं, सेवन में लाये हैं और उनकी परिणति आपने क्या देखी? उस शरीर की परिणति आपने क्या देखा? उनकी परिणति भी खराब हो गयी और शरीर की परिणति तो निरंतर रूप से

मोह की परिणति के कारण से व्यक्ति शरीर की अशुचिता का विचार ही नहीं करता।

खराब होती जा रही है। उस शरीर की परिणति देखकर के उससे थोड़ा सा दूर हटने का भाव करो इसलिए बारह भावना में भी कहा जाता है कि ''केसर चन्दन पुष्प सुगन्धित वस्तु देख सारी; देह परसते हो अपावन, निशदिन मल जारी।'' केसर है, चन्दन है, सब अच्छे-अच्छे बहुमूल्य पदार्थ है, इतनी सी छोटी सी डिब्बी में केसर आएगी 500 रु या 1000 रु की। बस उसको घिसकर के उसकी सुगन्धि का अनुपान करेंगे या उसको किसी अच्छे भोज्य पदार्थ में डालकर के उसका सेवन करेंगे और वह सारा का सारा जैसे ही मुँह में गया सब खराब हो गया। केसर, चन्दन, पुष्प सुगन्धित न जाने कितने तरह के, अब तो पुष्पों की सुगन्धि तो आपको ज्यादा सूँघने को नहीं मिल पाती है लेकिन कितने type के scent आप शर्टों पर डालते हैं और आप अपने शरीर पर भी कितने प्रकार के scent, perfume डाल के अपने मन को मोहित करते हैं। यह सब आप जानते हैं कि शरीर अपने स्वभाव को कभी भी छोड़ता नहीं है इसलिए यह ध्यान रखने योग्य चीज है कि ''केसर चन्दन पुष्प सुगन्धित वस्तु देख सारी, देह परसते होय अपावन निशदिन मल जारी'' यानि देह का स्पर्श मिला और यह सब अपावन हुए।

अगर हम इस देह के लिए ही हमेशा इच्छा बनाए रखेंगे, प्रार्थना करते रहेंगे तो आचार्य कहते हैं कि यह प्रार्थना तुम्हारी देह के लिए करना बेकार है। **'तदर्थं प्रार्थना वृथा'** इस देह के लिए जो तुम इच्छा कर रहे हो प्रार्थना कर रहे हो यह भी तुम्हारे लिए व्यर्थ है क्योंकि देह की प्रार्थना करने से कुछ उपलब्ध होने वाला नहीं है। वो केसर हो, चन्दन हो, सुगन्धित पुष्पों के इत्र हो, तेल हो आदि चीजों का सेवन आप बहुमूल्य पदार्थों के रूप में करते है और यह सभी चीजें महँगी ही आती हैं। चंदन का तेल भी महँगा होता है, केसर भी महँगी होती हैं और जितने भी इत्र मिलेंगे चाहे इतनी सी शीशी होगी वो 500 रु से कम में नहीं आती है। यह सभी मँहगे पदार्थ जिनको आप use करते है और use करने के बाद में आपके मन में यह आता है कि हमने अपना बहुत standard बढ़ा दिया। जितनी मँहगी सेंट होगी उतना बड़ा आदमी होगा और वह चाहेगा कि हम जिसके पास से गुजरें वह भी थोड़ा सा एक बार तो अपनी गर्दन घुमा ले कि कौन गुजर गया मेरे पास से ? बस पैसे वसूल हो गये। वह यह भी पूछ ले कि कौन सी quality का सैंट लगाते हो। वह सैंट भी आपकी घ्राण इन्द्रिय को पुष्ट करता है, वह भी काम वासना को बढ़ाता है। यह सब चीजें जो हमारे उपयोग में आती है मन इनमें मोहित होता है और वह मोहित हुआ मन फिर भूल जाता है कि हमारे लिए क्या सही है और क्या गलत? यही भटकन अनादिकाल से जीव आत्मा की चली आ रही है।

तीर्थंकर स्वरूप जीव आत्माओं को जब तक अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं होता तब तक वे इसी प्रकार की अज्ञानता से जीते हैं। लेकिन जब एक बार ज्ञान हो जाएगा, आप उस ज्ञान के ऊपर अच्छे ढंग से विश्वास कर लेंगे तो वह अज्ञानता आपकी दूर हो जाएगी, यही अज्ञान या अंधकार कहलाता है। वह ऋषभदेव (तीर्थंकर स्वरूप) उनकी वह पवित्र आत्मा भी नौ भव पहले जब वह

महाबल राजा के रूप में थे और उस समय उसका स्वयंबुद्ध मंत्री उनको समझा रहा था उनको धर्म पर विश्वास नहीं था। (नौ भव पहले की जो उनकी बात है।) उनको धर्म पर विश्वास कराने के लिए पुनर्जन्म होता है, इस बात पर विश्वास कराने के लिए कि आदमी अपने पुण्य और पाप का फल भोगता है- इस बात का विश्वास कराने के लिए वह मंत्री समझाता है। वह स्वयंबुद्ध मंत्री धार्मिक था, जैन शास्त्रों को पढ़ने वाला था। उसने राजा को समझाया और समझाने के लिए अपने आस-पास के घटित उदाहरण उनको सुनाए। एक उदाहरण जो राजा अरविन्द का उदाहरण था, दूसरा उदाहरण सुनाया। उसने कहा-राजन्! आपके के इस पवित्र वंश में एक कथा प्रचलित है, आपके ही वंश में एक ऐसा व्यक्ति हुआ जिसका नाम दंडमाली था। वह अपने विषय-भोगों में इतना लीन रहता था कि उसने अपने पुत्र के लिए सारा का सारा राज्य दे दिया और स्वयं विषय-भोगो में लीन रहने के कारण से उसके लिए (तिर्यंच) आयु का बंध हो गया क्योंकि यह एक कर्म सिद्धान्त है। अधिक आरम्भ, परिग्रह और रौद्रध्यान के परिणामों में मन लगेगा तो नरक आयु का बंधा होगा। अगर आर्त्तध्यान के परिणाम में मन लगेगा तो तिर्यंच आयु का बंध होगा। उसके अंदर सबसे ज्यादा आर्त्तध्यान का परिणाम चलता था और वह आर्त्तध्यान धन वैभव के विषय में चलता था। वह उस धन वैभव को स्वयं भी बहुत ज्यादा नहीं भोगता था और खजाने में हमेशा दृष्टि रखता था कि उस खजाने में से कोई एक पाई भी ना निकाल ले। इतना उसको उस धन के प्रति लगाव था, अपने बेटे के साथ में रहते हुए भी वह उस बेटे को भी बहुत कम खर्च के लिए देता था और उस धन पर हमेशा दृष्टि रखता था और उस खजाने से उसको इतना मोह था कि अन्त-अन्त तक उसके मन में यह परिणाम बना रहा कि मेरा धन मुझसे छूट रहा है (मरते-मरते भी।) अब मरते-मरते तो कुछ भी परिणाम हो सकता है। आपके लिए मरण के समय पर इस प्रकार कभी परिणाम बने कि मुझसे मेरा घर छूट रहा है, मुझसे मेरे पुत्र छूट रहे हैं मुझसे मेरी पत्नी छूट रही है, मुझसे मेरा धन वैभव सब छूट रहा है, यह ही है आर्त्तध्यान। जिसको ज्ञान नहीं होगा तो वह मोह के कारण से सोचेगा कि हम तो जा रहे हैं। ये सब अब यहाँ पर रहेंगे इसका मतलब चिन्ता तो उसको ज्यादा हो रही है, दूसरों को ज्यादा चिन्ता नहीं है, चिन्ता उसको ज्यादा है कि हमसे यह सब छूट रहा है और दूसरे लोग इसका उपभोग करेंगे। अगर उसके मन में मरण के समय में यह परिणाम आ जाता है तो यह परिणाम ही कहलाता है आर्त्तध्यान का परिणाम क्योंकि इष्ट के वियोग की चिन्ता में आत्मा का परिणाम लगा हुआ है।

कर्म सिद्धांत :

आचार्य ने कर्म सिद्धान्त को लिखते हुए एक एक परिणाम के फल बताये हैं इसलिए कम से कम आप जैसे पढ़े हुए लोगों को यह ध्यान रखना है कि हम अपने परिणामों से कही ऐसी आयु का बंध न कर ले जिसके कारण से हमें तिर्यंच आयु का बंध हो जाए या नरक आयु का बंध हो

रौद्र ध्यान से नरक आयु एवं आर्त्तध्यान से तिर्यंच आयु का बंध होता है।

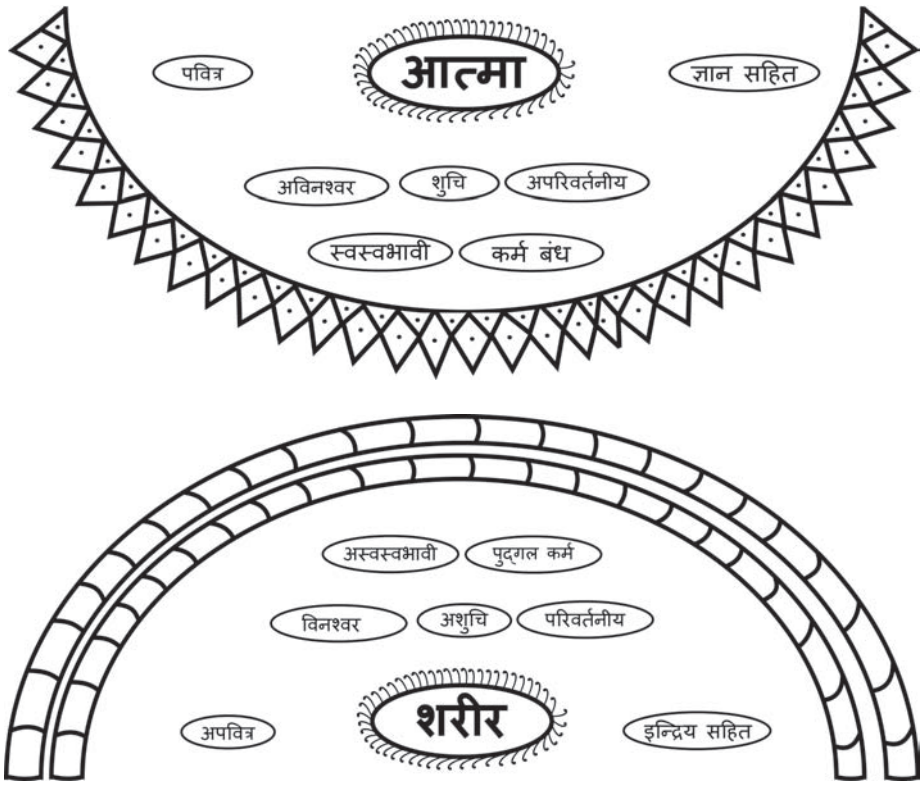

जाए। इसलिए अंत-अंत में श्रावक के लिए यह ज्ञान दिया जाता है कि जब आपके घर में किसी का मरण हो या स्वयं को भी कुछ हो तो अपने परिणामों में पंच परमेष्ठी का ध्यान लाना, उनका श्रवण करना और किसी का श्रवण मत करना क्योंकि पंच परमेष्ठी का श्रवण करोगे तो धर्म-ध्यान का भाव होगा और अन्य किसी पदार्थ का श्रवण करोगे तो वह आर्त्तध्यान का परिणाम होगा। अगर आपको थोड़ा सा ज्ञान रहेगा तो आप alert रहोगे उस alertness के कारण से आपके अंदर उस आयु का बंध होगा जो आयु शुभ होगी। अगर थोड़ी सी भी आपकी सावधानी में कमी हो गई तो वह अशुभ आयु का भी बंध हो सकता है। जीवन भर उस राजा के मन में धन के प्रति लगाव रहा और अंत-अंत में उसके परिणाम रहे कि यह धन मुझसे छूट रहा है और वह धन छूट गया लेकिन उसका परिणाम नहीं छूटा। आप जानते हो कि जब किसी भी चीज से हमारा ज्यादा लगाव होता है तो हम उसी के आस पास जाकर के पुनः जन्म लेते है। यह भी ध्यान रखना कि जिस रूप में आपका लगाव होगा तो उसी रूप में आपका वहाँ जन्म हो जाएगा। उसका जन्म भी उसी खजाने में हो गया, ट्रेजरी के अन्दर जाकर के, खजाने के अन्दर जाकर के वह एक साँप बन गया यानि साँप के रूप में उसका जन्म हो गया (तिर्यंच पर्याय के साथ)। जब उसका वहाँ जन्म हो गया तो

जागरुकता के द्वारा पंचपरमेष्ठी का ध्यान करके शुभ आयु का बंध कर सकते हैं।

वहाँ पर भी वह पहले की तरह मोह के कारण से उसकी रक्षा करने का भाव कर रहा है। उसको सब पहचानने में आ रहे हैं। ये मंत्री हैं, पुरोहित है? नौकर, सिपाही है और हमारा पुत्र है। उसकी परिणति कि अगर उस खजाने के पास में कोई अन्य व्यक्ति जाता है तो फूँकारता है, हाथ नहीं लगाने देता है। देखो, अभी भी उसकी रक्षा कर रहा है लेकिन उसका बेटा जाएगा तो बेटे के सामने वह अलग हो जाएगा और उसके लिए धन निकालने देगा लेकिन अन्य कोई भी व्यक्ति जाएगा तो वह फूँकारेगा और वहाँ से डराकर के भगा देगा। आप विचार करो कि क्या ऐसी परिणति हमारे साथ में है? उस परिणति के कारण से क्या क्या हो जाता है? वह धन, खजाना, सोना, चाँदी सब वही पड़ा है और चेतना जिसे जीव आत्मा कहते हैं वह मोह के कारण से उसके लिए मरता है, ऐसा मरता है कि मरकर भी वही पैदा हो जाता है और वहाँ पर भी उसकी रक्षा करने लगता है। एक बार उसका बेटा एक मुनि महाराज से पूछ लेता है कि महाराज यह क्या बात है कि जब इस खजाने का खजांची (जो कोषाध्यक्ष कहलाता है) वहाँ जाता है तो उसके लिए फूँकारता है और मैं वहाँ जाता हूँ तो वह अलग हट जाता है वह किसी और व्यक्ति हाथ नहीं लगाने देता है, यह कौन है, यह साँप आया कहाँ से? मुनि महाराज उसको बताते हैं कि यह तेरा पूर्व जन्म का पिता है जो धन वैभव की आसक्ति के कारण से यहाँ सर्प की पर्याय में उत्पन्न हुआ है और मोह के कारण से तुझे तो धन ले लेने देता है लेकिन उसका धन के प्रति अभी इतना लगाव है कि किसी को हाथ नहीं लगाने देता। तो क्या करे महाराज? करने का काम तो एक ही है कि तू पंचेन्द्रिय है और वह भी संज्ञी पंचेन्द्रिय है। उसके पास मन है और अगर तू उसको समझा सके तो बड़ी अच्छी बात होगी और उसके समझ में आ भी सकता है। अगर उसकी काल-लब्धि आ गई तो वह बहुत जल्दी समझ भी सकता है क्योंकि कभी-कभी मनुष्य पर्याय में कोई बात समझ में नहीं आती तो वह बात तिर्यंच पर्याय में समझ में आ जाती है। सुख के साथ अगर कभी कोई बात समझ में नहीं आती है तो वह दुःख के साथ समझ में आ जाती है। इसलिए तू एक काम कर उसको जाकर के समझाना। वह बेटा उसके पास में गया समझाया कि वह आज इस सर्प की पर्याय में क्यों है? वो ही इस घर का राजा था और इसी धन सोने, चाँदी के मोह के कारण से यहाँ पर सर्प बन गया। अब पुनः यहाँ पर भी वही मोह कर रहा है तो आगे क्या गति होगी? पहले तो इसी घर का राजा था, अब साँप बन गया है और आगे भी मोह करता रहेगा तो इसी धन वैभव के कारण से नरक चला जाएगा। तेरी इच्छा हो तो आज भी तेरे लिए समय है, मैं मुनि महाराज से पूछकर के आया हूँ।

अपने आत्म-कल्याण करने के लिए इस मोह को छोड़ दे, इस खजाने के प्रति मोह छोड़ दे यह खजाना कभी किसी का ना हुआ है, ना होगा। यहाँ से मरकर तुझे भी जाना है और मुझे भी। यह खजाना यहाँ पर ही पड़ा रह जाएगा इसके प्रति मोह करना छोड़ दे। कहते हैं कि उस साँप को वह उपदेश समझ में आ गया और उसने उससे मोह करना छोड़ दिया और उसके बाद में वह वहाँ

सुख में समझ में नहीं आने वाली बात दुख में बहुत जल्दी समझ में आती है।

से चला गया और वह अपने अन्दर पश्चाताप करते हुए (पश्चाताप की भावना से), अपने अंदर उस बेटे की बात को याद करते हुए उसका मरण हुआ तो देव गति को प्राप्त हुआ। उस साँप की गति देव गति हो गयी और पहले मनुष्य की गति साँप की गति हो गई थी। जब यह बात लोगों को पता पड़ी तो यह चर्चाओं का विषय बन गयी कि देखो इसका पिता (यहाँ का राजा) यह सर्प बना है और यह बात आपके वंश में घटी है। सब लोगों को यह मालूम है इसलिए मैं आपको बता रहा हूँ कि इस प्रकार से ही हर प्राणी अपने ही कर्मों का फल भोगता है और जन्म-मरण करता है। आप भी यह विश्वास कर लेना कि जैसा आप भाव करेंगे, वैसा ही फल आपको भोगना होगा। आप यह ना सोचें कि यह जन्म ही सब कुछ है इसके बाद में कुछ नहीं होगा।

जीव कौन से कर्मों का फल भोगता है?

आचार्य कहते हैं कि पुद्गल-कर्मों को भोगता है और वह पुद्गल कर्मों के फल ही उसके लिए निश्चय में भोगने में आते हैं। वह फल जब वह भोगता है तो उन फलों का जो भाव है वह तो निश्चय से कहलाएगा लेकिन कर्म की दृष्टि से जब हम देखेगे कि कर्म फल को भोग रहा है तो वह व्यवहार से कहलाएगा। जो भाव हुआ वह भाव तो आपका अशुद्ध निश्चय नय से भाव कहलायेगा। आपने कहा कि मैं इस खजाने से सुखी हो रहा हूँ, मुझे अच्छी कार मिल गई, मुझे बड़ा सुख हो रहा है, यह जो सुख का भाव है वह अशुद्ध निश्चय नय से चल रहा है, यह अशुद्ध भाव है। कर्म के फल से हुआ लेकिन आपके अंदर वह जो भाव उत्पन्न हो रहा है कि मैं सुखी हो रहा हूँ, यह जो सुख के भोक्तापन का भाव है वह अशुद्ध निश्चय नय का भाव है। जो आपको कर्म का फल (पुद्गल कर्म का फल) मिल रहा है यह साता वेदनीय कर्म के कारण से आपको सुख की वस्तुएँ मिल रही हैं, यह कर्म फल हो गया यह व्यवहार नय का विषय है। यह आत्मा हमेशा इस प्रकार से ही कर्म के फल को भोगता है और इसके अलावा इसके साथ में कुछ भी नहीं जाता। यह बात उस सर्प को समझ में आ गई। हे महाबल राजन्! आप भी इन बातों पर विश्वास करो कि आर्त्तध्यान करने से इस जीव को तिर्यंच गति की प्राप्ति होती है। आप को जो पिछले उदाहरण में बताया था कि रौद्रध्यान से वह राजा अरविंद मरकर के नरक गया। राजा महाबल को उस पर्याय में अगर कोई सिखाने वाला था तो वह स्वयंबुद्ध मंत्री था और उसने आर्त्तध्यान का उदाहरण दिया, रौद्रध्यान का उदाहरण भी दिया। सब शास्त्रों में लिखा है कि एक उदाहरण धर्म ध्यान के लिए भी दिया और शुक्लध्यान के लिए भी दिया वह आपको बाद में बताएँगे। आपको धीरे-धीरे सब कुछ सुनाया जाएगा तब ही आपको समझ में आयेगा। तीर्थंकर बनने वाले महापुरुषों के साथ में भी ऐसा ही होता है, नौ भव पूर्व उनको ना अपनी आत्मा पर विश्वास है, ना धर्म पर विश्वास है, ना पुण्य पर विश्वास है और ना ही पाप पर विश्वास है। अगर आपको इन चीजों पर विश्वास होगा तो ही धर्म पर विश्वास कहलाता है क्योंकि ये चीजें ही आपको आत्म हित करवाएगी और अहित की

चीजों से बचाएगी। आपको पुण्य और पाप की बातों पर विश्वास होना चाहिए। पुण्य करेंगे तो हमारे लिए धर्म होगा और पुण्य से ही इस आत्मा को सुख मिलेगा और पाप करेंगे तो हमारे लिए दुख मिलेगा और अनेक प्रकार की दुर्गतियाँ मिलेंगी। यह विश्वास भी अगर सामान्य रूप से रहता है तो आदमी थोड़ा सा धार्मिक हो जाता है। यह विश्वास तब तक अधूरा रहेगा जब तक कि आपको जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए नौ पदार्थों के विषयों में सही ढंग से विश्वास नहीं होगा। यह बात तो सामान्य व्यक्ति भी जान लेता है कि यह पाप है और यह पुण्य है। आप जैन होकर के जानो तो कोई बड़ी विशेषता की बात नहीं है। अनेक लोग इस बात को जानते हैं कि हिंसा करना पाप है, झूठ बोलना पाप है, चोरी करना पाप है, कुशील पाप है, यह सब जानते हैं लेकिन जैन और कुछ विशेषता के साथ में भी जानता है, वह विशेषता यह है कि जैन यह भी जानता है और जानना भी चाहिए कि पाप हो या पुण्य हो, ये सभी प्रकार के कर्म होते हैं।

ये कर्म हमारी आत्मा से बँधकर के हमें बंधन में रखते हैं। आत्मा को मुक्ति पाप और पुण्य दोनों से रहित होने पर मिलेगी, यह तीसरी चीज और जान लेना। पाप से दुख होता है, पुण्य से सुख होता है यह तो हो गया कि **''ववहारा सो दुक्खं पुग्गलकम्मफ्फलं पंभुजेदि''** यानि यह तो सब व्यवहार से हो गया। जो भी आप सुख भोग रहे हैं दुख भोग रहे हैं ये सब पुद्गल कर्मों के फल हैं। कभी आपने अच्छे कर्म कर लिये तो आप अच्छे फल भोग लेंगे और अच्छे फल भोगते हुए पुनः अच्छे कर्म नहीं कर पाये, चूक गये तो फिर क्या होगा? जितना आपके खजाने में था उतना आपने खा लिया बाद में फिर खाली हो गया तो आप दरिद्र हो जाओगे। आप सभी balance बनाये हुए हैं चातुर्मास में बहुत अच्छा balance बनता है। सबका पुण्य कर्म का balance अच्छा चल रहा है, लेकिन कभी आपकी बुद्धि बिगड़ गई और आप वह balance अन्य पर्याय में नहीं बना पाये तो क्या करोगे? यह जरूरी नहीं है कि जितनी अच्छी बुद्धि हमको अभी मिली है, अच्छा कुल मिला है वैसा हमेशा मिलता रहे। अगर किसी कुल में आपकी बुद्धि बिगड़ गई आपके लिए कोई ऐसा संयोग मिल गया कि आपको धर्म पर भी विश्वास नहीं रहा तो वह balance बिगड़ जाएगा। मैं ऐसे कई बच्चों को देखता हूँ।

एक बार मैं बाँसवाड़ा में था। एक दादी माँ अपनी छोटी सी बेटी को लेकर के आई और कहने लगी- महाराज जी को नमोस्तु बोलो, तो वह बेटी बोली नमस्ते-नमस्ते। दादी माँ कहती है कि नमस्ते नहीं बोलते हैं महाराज से नमोस्तु बोलते हैं तब उसने 'नमोस्तु' बोला। अब मुझे सोचकर के लगा कि यह कम से कम छह-सात साल की बेटी दिख रही है पर इसको नमोस्तु बोलना नहीं आता। मैंने उससे पूछा–तुम जैन हो? तो वह थोड़ी सी सकपकाई। बेटी तो नहीं बोल पाई लेकिन उसकी जो दादी थी वह जैन थी वो कहती है कि हाँ मैं जैन हूँ। मैंने उससे पूछा–बेटी क्या तुम मंदिर जाती हो? कहने लगी- हाँ मैं जाती हूँ। हमने कहा–मंदिर में जाकर के क्या बोलती

आत्मा को मुक्ति पाप और पुण्य दोनों से रहित होने पर मिलेगी।

हो? भगवान के सामने, तो कुछ नहीं वहाँ पर जाकर के हम 'नमस्ते', जय जय ही बोलते हैं। हमने कहा कि यह कौन से मंदिर में जाती है? उसकी दादी माँ ने बताया कि यह तो इसके घर के सामने जो मंदिर है उसमें जाती है और वहाँ तो 'नमोस्तु' की कोई जरूरत होती ही नहीं है। मतलब जैन मंदिर में नहीं जाती है वह किसी अन्य मंदिर में जाती है। तो मैंने कहा-ऐसा क्यों? तो कहने लगी कि इसकी माँ का विवाह अजैन व्यक्ति के साथ हुआ है और उसके कारण से उस बेटी के लिए भी कुछ पता नहीं है कि धर्म क्या होता है? इसका पिता जैन धर्म को नहीं मानता है। अब इसका पिता इसको जो कहेगा, करेगा, वैसा यह बेटी कर रही है। अभी यह नानी के यहाँ आयी है तो मैं इसको आप के पास में लेकर के आ गई और 'नमोस्तु' करने में इतनी सारी बात सामने आ गयी। ऐसा कई बार होता है अगर उस बेटी का जन्म जैन माँ से भी हुआ है तो जरूरी नहीं है कि वह जैन ही बन जाए क्योंकि माँ के लिए भी पराश्रितता रहती है कि पति का जैसा धर्म होगा वैसा ही धर्म उसे अपनाना पड़ता है और नहीं तो कई बार ऐसा होता है कि वह बेटी इधर भी जायेगी, उधर भी जायेगी सब जगह जायेगी। ऐसा कई बार होता है और वह सर्व धर्म समभाव के भाव में जीने लग जायेगी। ऐसी भी लोगों की पर्यायें देखने में आ जाती है। एक बेटी जो अभी यही बिजोलियाँ में किसी बैंक में सर्विस कर रही है और वह एक दिन दर्शन के लिए आयी। मैंने उसका हुलिया देखकर के उसे पूछ लिया- आप कौन हो? तो उसने बताया कि मेरी नानी उधर मालवा साईड में रहती है। कहने का मतलब यह है कि उसको भी यह नहीं मालूम कि मंदिर क्या है? महाराज क्या है? वह जैन है लेकिन उसको यह नहीं मालूम कि हमें महाराज को कैसे 'नमोस्तु' करना या हमें कैसे बोलना और हमें कैसे उनके सामने बैठना, यह भी नहीं मालूम क्योंकि उसको कभी संस्कार मिले ही नहीं। संभव है कि वह इसी कारण से उसकी माँ और उसके पिताजी किसी ओर जाति के होंगे उस कारण से उसे धर्म के साथ में जोड़ा नहीं गया। लेकिन उसे मालूम है कि बस मेरी नानी जैन है, बस मेरी माँ जैन है उसके अलावा उसे कुछ मालूम नहीं है और उसके लिए कोई संस्कार नहीं है। धर्म इस तरह से हमारी पर्यायों में छूट जाता है और जब यह सारी बातें हमारे दिमाग में चढ़ गई तो अब हमें कोई बताने वाला नहीं है कि हमारे अंदर वह जो पुण्य का balance है वह भी खाली होता जा रहा है। जिस दिन खाली हो जाएगा उस दिन कुछ भी सामने नहीं रहेगा और यह balance बनाये रखने से ही बनता है अगर आपने उसमें थोड़ी सी ढील डाल दी तो खाली होगा। इसलिए जो ज्ञानी आत्मा होता है तो वो सोचता है कि इसके भी चक्कर में कब तक पड़ना और इस पुण्य के चक्कर में भी कब तक पड़ना? इसी पर्याय में तो ठीक है उसकी अगली पर्याय में ठीक है लेकिन पता नहीं फिर आगे क्या होगा। इसलिए पुण्य और पाप यह दोनों भी कर्म है और यह आत्मा को सुख दुःख देने वाले कर्म है और इन दोनों को जानकर के जब आत्मा यह जान लेता है कि जीव आत्मा का, चेतना का यह स्वभाव नहीं है परन्तु यह केवल पुद्गल कर्मों के फलों

पुण्य का बेलेंस खाली होने पर संस्कारहीनता एवं दरिद्रता आती है।

को ही भोगता रहे, चेतना का अपना सुख अपना आनन्द अलग है। जब वह सुख और आनन्द की इच्छा करने लग जाता है तो फिर वह इन कर्मों के फलों पर भी ध्यान नहीं देता है। यह बात वही व्यक्ति जान पायेगा जो थोड़ा सा तत्त्व का ज्ञान रखेगा उसे कहते है तत्त्वज्ञानी हो गया है। यहाँ अब तत्त्वज्ञानी भी बन जाओ यह ज्ञान भी अपने अंदर रखो और इतना ही नहीं समझो कि केवल कर्मों के फल से मिलने वाले फल से हम सुखी होते रहेंगे यह सुख भी छूटेगा। जो चीज छूटने वाली है उसके पीछे ज्यादा मत पड़ो, उसके पीछे पड़ो जो अपने साथ हमेशा रहे इसलिए आचार्य महाराज यहाँ पर एक बात कहते हैं।

''सकायः संततापायः.....''

वह काय यानि शरीर संत हमेशा सततं यानि निरंतर अपाय यानि बिना स्वभाव वाला है उसका अपाय ही होगा। वह हमेशा विनश्वरता की ओर जाएगा। वह हमेशा अपने स्वभाव से नष्ट ही होता चला जाएगा। उस काय में कभी भी स्थिरता नहीं रहती है। विनाशीक स्वभाव है, नश्वर स्वभाव वाला है। उस स्वभाव के साथ में यह आत्मा उस काया के लिए ही प्रार्थना करता रहता है। इसलिए तत्त्वज्ञानी सोचता है-'तदर्थं प्रार्थना वृथा.....।' इसके लिए क्या प्रार्थना करे, इस अशुचि शरीर के लिए क्या प्रार्थना करना और इस अशुचि शरीर के लिए ही सब भोग, उपभोग की सामग्री इकट्ठी की जाती हैं और उसके लिए भी क्या प्रार्थना करना? प्रार्थना करने का मतलब है- इच्छा करना, चाहना, दूसरों से माँगना, अपने पास में इकट्ठा करके रखना। यह सब भी तत्त्वज्ञानी को रुचता नहीं है। अगर आपके अंदर भी ऐसा तत्त्वज्ञान उतरेगा तो आपके लिए भी यह प्रतिभाषित होने लगेगा कि यह सब कुछ विनाशीक स्वभाव वाला है। यह सब कुछ नश्वर स्वभाव वाला है। इसमें कुछ भी permanent नहीं है। nothing is permanent here. जो भी आप देख रहे हो उसमें कुछ भी यहाँ पर permanent नहीं है। पिपरमेंट जानते हो ना आप लोग? कर्पूर इसको खोल कर रख दो कहीं पर भी तो यह अपने आप उड़ जाएगा, पता भी नहीं पड़ेगा कब उड़ जाता है। इसलिए कहता हूँ Nothing is permanent here, everything is like peppermint. सब कुछ पिपरमेंट की तरह है। बस आप रख दो। जैसे उसका स्वभाव विनाशीक है उड़ता चला जाता है वैसे ही इस शरीर का भी स्वभाव है। इस विनाशीक स्वभाव के कारण हम जो अविनश्वर आत्मतत्त्व है उसको नहीं समझ पाते। यह हमारी इस शरीर के साथ में सबसे बड़ी भूल हो जाती है। इसके स्वभाव को समझना क्या permanent है और क्या temporary है? इसको भी जान लेना आप। आपके यहाँ भी पर दोनों प्रकार के व्यवहार चलते हैं। जब भी आप किसी से किसी का परिचय पूछते हो तो आप कहते हो कि आपका permanent address क्या है? एक permanent address होता है और एक temporary address होता है। अब कोई बाहर का व्यक्ति है वह यहाँ आकर के रह रहा है, आपके A.V.S.में service कर रहा है। क्या है यह सब? यह सब temporary

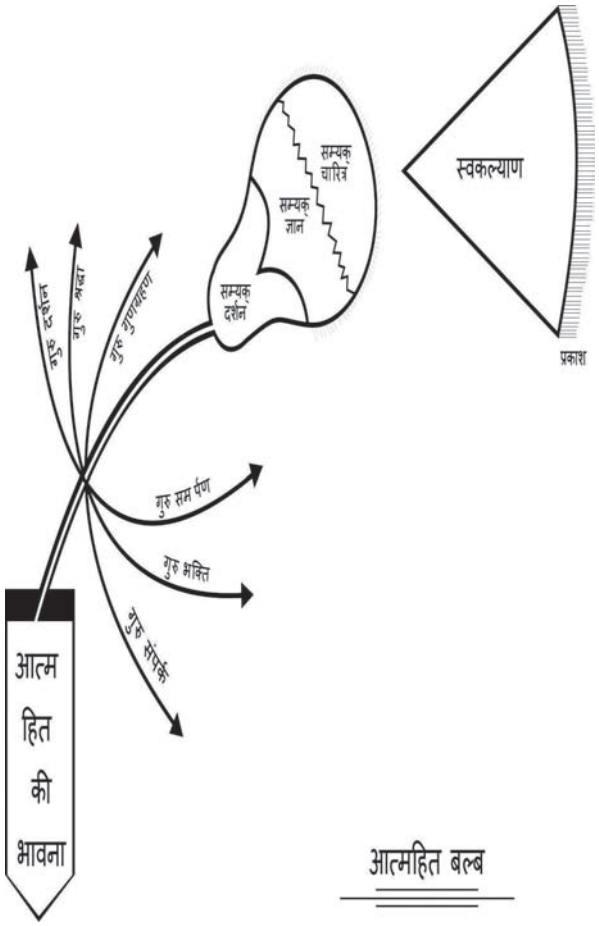

काम है। अब permanent address से तो उसके लिए है क्या? service दो साल, चार साल है उसके बाद में? आपने किसी को अपना address दिया तो वह पूछता है कि यह आपका permanent address है? नहीं-नहीं अभी तो यह local का है ऐसे ही है permanent address तो वहाँ का है, उस गाँव का है जिस जगह का मैं हूँ। आपके लिए हर चीज permanent नजर आ रही है जबकि वह permanent नहीं है। वह व्यवहार की दृष्टि से permanent है। आपका permanent address क्या है? यह आप खुद पूछो अपने आप से। मेरा पता क्या है? मैं कहा पर हमेशा रहूँगा? मेरा सही पता क्या है? post-card में यही लिखा रहता है-सही पता। वह सही पता क्या है? वह सही पता जब तक आपको पता नहीं होगा तब तक आपका पता भी किसी को पता नहीं होगा। उस सही पते को आप स्वयं ही पता नहीं कर पाओगे तो दूसरा क्या पता कर पाएगा? हर व्यक्ति अपने ही सही पते को स्वयं पता कर सकता है और दूसरा किसी के पते को कभी पता नहीं कर सकता है। इसलिए अपने पते को ढूँढ़ो। मेरा सही पता क्या है और वह सही पता आपके लिए जब खोजने में आयेगा तो आपकी दृष्टि में यह सब चीजें यथार्थ लगने लगेंगी, इनमें रुचि आने लगेगी। अभी आपको इन चीजों में बहुत ज्यादा रुचि आती नहीं है।

रत्नत्रय :

देह अति अपवित्र है, विनाशीक स्वभाव वाली है। इसके संग में आकर इसकी संगति को प्राप्त करके हर पवित्र चीज भी अपवित्र हो जाती है। इसलिए इसकी प्रार्थना मत करना और अपने सामने एक चीज और आ जाती है कि देह तो अपवित्र है लेकिन वह देह कभी-कभी पवित्र भी हो जाती है। अपवित्र देह क्यों है और वही देह पवित्र क्यों हो गई। आप रोजाना भगवान का अभिषेक

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूपी रत्नत्रय से आत्मा देह को पवित्र कर देती है।

करते हैं, भगवान की देह का भी अभिषेक होता है तो वह उनकी देह को आप पवित्र मानकर के करते हैं, आप मुनि महाराज के चरणों का गंधोदक लेते हैं तो पवित्र मानकर लेते हैं। यह अपवित्रता के साथ भी पवित्रता कैसे आ गई? कभी आपने विचार किया? आप अपने पैर धोओगे तो वह पानी नाली में जायेगा और मुनि महाराज के पैर धोए तो उसको आप सोचोगे कि किसी अच्छे स्थान पर डाल दें। आप किसी सुरक्षित स्थान पर उसको डालोगे क्योंकि वह पवित्र हो गया। मुनि महाराज में ऐसा क्या बात हो गई? शरीर तो वही है। जैसे उनके शरीर का स्वभाव है वैसे ही आपके शरीर का स्वभाव है। उस शरीर का स्वभाव तो ऐसा ही है, अशुचि है, अपवित्र है लेकिन उनके शरीर को पवित्र क्यों मान लेते हैं? उनके चरण छूने को लालयित क्यों रहते हैं? उसके लिए भी आचार्य कहते हैं–देखो! पवित्रता इस शरीर में भी आ जाती है जब आत्मा के अंदर पवित्रता आ जाती है तो आत्मा की पवित्रता से यह शरीर भी पवित्र हो जाता है और शरीर की अपवित्रता से आत्मा भी अपवित्र हो जाती है। जब हम शरीर के प्रति आसक्ति रखकर उसके साथ रहेंगे तो शरीर की अपवित्रता से अपनी आत्मा अपवित्र होगा और जब आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूपी रत्नत्रयों से सुशोभित हो जाता है तो रत्नत्रय से सहित आत्मा हमारे लिए पवित्र हो जाता है और उसकी देह भी पवित्र हो जाती है। यह अपवित्रता अगर शरीर में भी आयी तो किस कारण से आयी? आत्मा के कारण से आई। इसलिए जब भी कभी मुनि महाराज देखते हैं कि यह शरीर के चरणों का स्पर्श कर रहे हैं या गंधोदक ले रहे हैं तो वह जानते हैं कि शरीर तू तो दुष्ट था, दुष्ट है। यह तो मेरी आत्मा के अंदर जो रत्नत्रय है उसके कारण से तुझे पवित्रता भोगने को मिल रही है। लेकिन तू तो अपवित्र ही था। यह भेद-विज्ञान भी मुनि महाराज करना जानते हैं। आपको नहीं आता। आप तो बस सीधे-सीधे आये, कलशा डाला और चलते बने। लेकिन महाराज जानते हैं कि देखो आत्मा की रत्नत्रय की परिणति के कारण से यह अपवित्र भी पवित्र बन गया। वो आत्माकी रत्नत्रय की कितनी बड़ी चीज है जिसके कारण से उस स्वभाव में अशुचि होते हुए भी पवित्र हो गया। इसलिए आचार्य कहते हैं– **''स्वभावतौ शुचो काये रत्नत्रय-पवित्रिते।''** आचार्य समन्तभद्र महाराज रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहते हैं–**स्वभावतो शुचौकाये**। यह काया स्वभाव से अशुचि है लेकिन **'रत्नत्रय पवित्रते'** रत्नत्रय से ही पवित्रता को प्राप्त हो जाती है।

''निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सता''

एक तीसरा अंग आता है सम्यग्दृष्टि का जिसे कहते हैं निर्विचिकित्सा अंग। उस निर्विचिकित्सा अंग में सम्यग्दृष्टि जीव अपने दिगम्बर गुरुओं के प्रति इसी प्रकार की पवित्रता की दृष्टि रखता है क्योंकि उसके लिए वह देह अपवित्र नहीं है उसकी दृष्टि में वह रत्नत्रय के गुण हैं और उन गुणों के कारण से वह जानता है कि देह भी पवित्र है। यह उस सम्यग्दृष्टि का निर्विचिकित्सा अंग कहलाता है। ऐसे अंग भी गृहस्थ सम्यग्दृष्टि जीवों के अंदर रहते हैं। आप गृहस्थों के अंदर भी इस

प्रकार के सम्यग्दर्शन के भाव बन सकते हैं, बनते हैं। आपके केवल अपने ही भावों को इस तरह से जोड़ने का प्रयास करना है। इस सम्यग्दर्शन के भाव आपके अंदर आयेंगे तो इसी प्रकार गुरुओं के सम्पर्क से, उनके दर्शन से, उनकी संगति से और उनके सामने सब प्रकार की सेवा करने के बाद भी अपने मन में रहे कि यह रत्नत्रय से पवित्र हैं। यह अपने अंदर की भीतरी दृष्टि होनी चाहिए और उसी दृष्टि से आपके अंदर उन गुणों के ग्रहण करने का भाव आ पाएगा। आपने गुरु की सेवा की, उनके चरण दबाए याने उनका शरीर नहीं दबाया। देखो आपके लिए बता रहा कि आप कैसे ज्यादा profit कर सकते हो? अगर आपने केवल यह ध्यान में रखा कि केवल हमने इनके चरण दबाए, केवल हमने इनके शरीर की सेवा की तो profit तो होगा लेकिन प्रतिशत कम होगा और उसी समय आपके मन में यह भाव आ जाये कि मैं रत्नत्रयधारी की सेवा कर रहा हूँ। यानि मैं रत्नत्रय से युक्त आत्मा को दबा रहा हूँ, रत्नत्रय से युक्त आत्मा की सेवा कर रहा हूँ, उनका स्पर्श कर रहा हूँ तो आपके लिए बहुत profit अधिक होगा। profit के लिए भी थोड़ा सा दिमाग लगाना पड़ता है। बड़े आदमियों के दिमाग बड़े होते हैं कि नहीं होते हैं? ऐसे ही धर्म के मामले में अधिक profit करने वाले होते हैं तो उनके विचार भी थोड़े से उठे हुए होते हैं। ऊँचे विचार वालों के पास ही सब कुछ मिलेगा इसलिए आप भी अपने सोचने का स्तर बढ़ाओ। ऊँचे विचार रखो। इस तरह आप करोगे तो आपके लिए जो profit हो रहा है उसमें और plus होगा। यह आपके ही भले की बात बता रहा हूँ कि जो आप कर रहे हो उसी में और कैसे profit बढ़े। जैसे आपकी दुकान है वह दुकान और कैसे अच्छी चले, profit कहाँ से पायें। चीजें वही हैं, बस थोड़ा सा कमाने का ढंग बदलना पड़ता है। चीजें वही रहती हैं बस ग्राहक को tackle करने का ढंग बदलना पड़ता है। चीजें वे ही रहती हैं बस उसके लिए किस तरह से बताना पड़ता है कि वह अपने विश्वास से अपनी बात पर विश्वास करके हम जितना माँगें उतना दे दे। यही होता है ना! चीजें वही रहती हैं एक आदमी उन्हीं चीजों से अमीर बनता है और एक आदमी उन्हीं चीजों से वैसा का वैसा बना रहता है। चीजें तो वही रहती हैं लेकिन हमारे विचारों के ढंग से ही पुण्य और पाप के फल हमको प्राप्त होते हैं। इसलिए यह यहाँ पर बहुत अच्छा सूत्र है। यह इष्टोपदेश के सूत्र हैं जो अध्यात्म सूत्र हैं। गृहस्थों के लिए यदि अध्यात्म पढ़ना हो तो इसी ग्रंथ को पढ़ना चाहिए। इनके अर्थ आप एक-एक रोजाना सुन रहे हो, अगर दिमाग में बैठ गये तो हमारे जाने के बाद में भी यह सब आपको याद रह सकते हैं। हो सकता है कि जब आप इस ग्रंथ को उठायेंगे तो पढ़ेंगे तो आपको लगेगा कि देखो एक-एक घंटा महाराज ने हमें एक-एक सूत्र पर समझाया है। यह चीज ही आपकी सबसे बड़ी ज्ञान निधि कहलायेगी। इस ज्ञान निधि को सम्हालो। यही हमारी निधि है और उस निधि में पड़े रहे तो जो बताया है वह कुछ काम का नहीं रहेगा। सर्प जैसी दशा ना हो। ज्ञाननिधि को सम्भालोगे तो ज्ञानी कहलाओगे। तत्त्व ज्ञानी बनो।

अपने विचारों के ढंग से ही पुण्य और पाप के फल प्राप्त होते हैं।

उपकारी कौन?

19

यज्जीवस्योपकाराय तद्देहस्यापकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय तज्जीवस्यापकारकम्॥

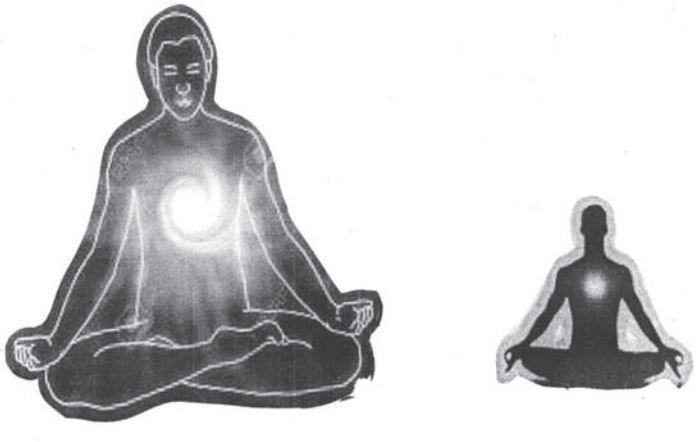

अन्वयार्थ—(यत् जीवस्य) जो कार्य आत्मा के **(उपकाराय)** उपकार के लिए है **(तत् देहस्य)** वह शरीर का **(अपकारकम्)** अपकार करने वाला है तथा **(यत्)** जो **(देहस्य उपकाराय)** शरीर के उपकार के लिए है **(तत्)** वह **(जीवस्य अपकारकम्)** आत्मा का अपकार करने वाला है।

- **शक्तितस्तप**
- **निर्वेग**
- **उपकरण, विनय व सूत्र अध्ययन**

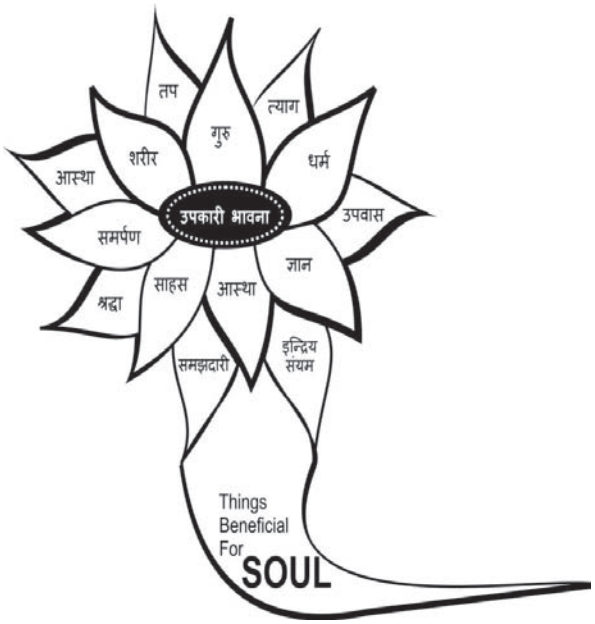

आचार्य पूज्यपाद महाराज ने अनेक प्रकार की शंकाओं का समाधान करते हुए पहले के सूत्रों में लोकों के माध्यम से बताया कि आत्मा का उपकार देह और धन के माध्यम से नहीं हो सकता, कोई शिष्य उनके सामने यह पूछता है कि धन से भी आत्मा का उपकार होता है, देह से भी आत्मा का उपकार होता है तो उसके लिये आचार्य देव कहते हैं कि आत्मा का वास्तविक उपकार न धर्म से होता है, न देह से होता है। शिष्य यह पूछ सकता है कि **''शरीर माद्यं खलु साधनम्''** सब लोग जानते हैं कि यह शरीर धर्म का प्रथम साधन माना जाता है शरीर धर्म का साधन है तो वह हमारी आत्मा पर उपकार करने वाला ही हुआ है और यदि वह आत्मा पर उपकार करने वाला है तो उससे हमें आत्मा का उपकार ही करना चाहिए। लेकिन आचार्य महाराज यहाँ कहते हैं जो जीवन का उपकार करने वाला है वह देह का अपकार करने वाला है और जो देह का उपकार करने वाला है वह जीवन का उपकार करने वाला है। उपकार का मतलब जो अपने लिये हितकारी हो जीव आत्मा के लिये जो हितकारी होगा वह देह के लिये अहितकारी हो जाता है। जो देह के लिये हितकारी हो जाता है वह आत्मा के लिये अहितकारी हो जाता है।

Whatever that is beneficial for soul that is harmful for our body and which is beneficial for our body that is harmful for our soul.

मतलब जो अपनी आत्मा के लिये लाभदायक होगा तो आचार्य कहते हैं कि उससे शरीर का उपकार हो सकता है क्योंकि शरीर का गुणधर्म और आत्मा का गुणधर्म दोनों अलग-अलग है। जो चीजें वास्तव में आत्मा का उपकार करने वाली है आत्मा के अन्दर संवर और निर्जरा कराने वाली है वो चीजें शरीर के साथ थोड़ा सा उपकार होता है तभी प्राप्त होती है। आप जानते हो आत्मा में अगर हमें कर्मों की निर्जरा करना हो तो क्या करना। पूरे तत्त्वार्थ में एक ही सूत्र आता है कर्मों की निर्जरा करने के लिये **'तपसा निर्जरा च'** आत्मा के अन्दर लगे कर्मों की निर्जरा तप

शरीर धर्म का साधन है एवं तप द्वारा कर्मों की निर्जरा होती है।

के माध्यम से होगी। जब तप की बात आती है तो आपके अन्दर तप शुरू हो जाता है, आत्मा की निर्जरा करने की इच्छा है लेकिन तप करके तपने की इच्छा फिर किसी की नहीं होती। इसलिए कहने में आ जाता है कि जब तक आप तपेंगे नहीं तब तक आपकी आत्मा का हित होने वाला नहीं और तप हो सकता है आपको लगे कि वह हमारे शरीर का अहित कर रहा है। ऐसा नहीं है कि तप करने से शरीर मिट जाता है पूरा नष्ट हो जाता हो, मर जाते हो। ऐसा नहीं होता, लोग बहुत बड़े-बड़े तप करते हैं और तप करके भी उनका शरीर बना रहता है लेकिन इतना जरूरी है कि जब आप तप करोगे तो आपको लगेगा कि शरीर में कुछ है ही नहीं, शरीर शिथिल हो जाता है, बैठा नहीं जाता, कमर सीधी नहीं हो पाती। ऐसा लगता है कि कोई जान बची ही नहीं, आत्मा तो कहीं है ही नहीं, वह शिथिलता हमको अच्छी भी नहीं लगती जबकि उस शिथिलता से ही आत्मा में कसाव पैदा होता है। जब आप शरीर को शिथिल छोड़ेंगे तो आप आत्मा के निकट होंगे शरीर में शिथिलता आएगी और आत्मा में कसाव पैदा होगा क्योंकि यह दोनों विपरीत चीजें है जब तक आप शरीर को कसोगे आत्मा कर्मों के बंधन में कसती जाएगी। कषाय बढ़ती जाएगी और जब आप शरीर को छोड़ दोगे आत्मा में कर्म के बंधन छूटते जाएंगे कषाय कम होती जाएगी। शरीर को शिथिलता से हमें डर लगता है और ऐसा लगता है कि जैसे शरीर हमारा छूटने ही वाला है अब तो कुछ बचा ही नहीं और जब यह भाव आ जाता है तब फिर आपको कोई तप करने की इच्छा नहीं रहती। आप यह सोचते हो हमें शरीर का अपकार नहीं करना चाहिए, आत्मा का उपकार हो या ना हो जैसे ही आप कोई तप करेंगे कोई भी त्याग करेंगे आपको कहीं न कहीं थोड़ा सा इन्द्रियों पर control तो करना ही पड़ेगा, मन को समझाना ही पड़ेगा क्योंकि मन तो उसी का आदी बना है, मन को बहुत समझाना पड़ता है चाहे एक व्रत भी करना हो। कई लोगों को तो घबराहट भी पैदा हो जाती होगी।

अनन्त चतुर्दशी का दिन था और इस तरह से एक बच्चे ने व्रत किया। जब रात हो गयी तो गर्मी का time था तो रात में उस बच्चे को प्यास लगी और उसको नींद नहीं आई। उस बेटे ने सोचा कि अब क्या करें, दिनभर व्रत किया और सभी व्रत करते हैं। अब रात में उसको प्यास लगी तो वह सोचता है- क्या करे? किसी से पानी माँगने जाएंगे तो कोई देगा नहीं और रात में किसी को पानी पीने की जरूरत भी नहीं। नींद भी नहीं आ रही है तो अब क्या करे? 10-11 बज गई, 12 बज गई और वह पढ़ा-लिखा बच्चा था उसके मन में आया कि 12 बज गई, मतलब दिन बदल गया। उसने सोचा अपना दिन तो पूरा हो ही गया तो उसने रात में 12:10 पर पानी पी लिया और सुबह उठकर के अपने घर के लोगों को बताया कि रात में इतनी प्यास लगी तो ऐसे ऐसे पानी पी लिया। घर के लोग कहते हैं- तूने अपना व्रत तो खण्डित कर लिया तो उसने कहा कि दिन तो निकाल लिया, रात के बाद तो दूसरा दिन शुरू हो जाता है। घर के लोग समझाते हैं कि बेटा रात्रि में कभी

तप द्वारा शरीर की शिथिलता से ही आत्मा में कसाव पैदा होता है।

भी पानी नहीं पिया जाता है, पानी पीने से भी व्रत खण्डित हो जाता है। ऐसे बच्चों को समझाया जाता है तब वे बच्चे बड़े बनते हैं और बड़े-बड़े मुनि महाराज भी बन जाते हैं। मतलब जब कोई भी तप करने की शुरुआत होती है तो ऐसे ही होती है। सबको डर लगता है और वह डर स्वभाविक है। अगर आपसे कहा जाये कि आप एकासन कर लें तो उसमें भी आपको डर लगता है कि आज पूरे दिन खाएंगे नहीं, कैसे काम चलेगा? आचार्य कहते हैं कि जो चीजें इस आत्मा के लिये उपकारक हो जाती है तो हमको ऐसा लगता है कि वह शरीर के लिये अपकारक है और उन चीजों को ज्यादा मात्रा में करोगे तो आपके शरीर का अहित करने वाली होगी।

शक्तितस्तप :

इसलिए आचार्यों ने यह भी कहा है कि आप अपने शरीर से उतना ही तप करें कि आपकी मानसिकता गिरे नहीं, उस शरीर के तप करने के साथ अपने मन की विशुद्धि को भी देखें। संक्लेश परिणाम उत्पन्न ना हों और मन के अन्दर हमेशा इतनी शक्ति बनी रहे कि हम शरीर के साथ होने वाले जो असंयम हैं उन असंयमों से बचे रहें। ऐसा नहीं कि जो तप हमने किया और उसके बाद में बढ़-चढ़ के असंयम करें, यह भी नहीं होना चाहिए। इसलिए इन आचार्यों ने यह भी कहा है कि तप करते हुए अपने मन को भी टटोलते रहें और उस तप को भी बढ़ाते रहें। धीरे-धीरे आपको यह लगेगा कि आत्मा के लिये हितकारी तप है। शरीर जो है आत्मा के लिये अहितकारी है, आपको यह भी लगेगा कि भोजन करने से शरीर का तो हित होता है लेकिन आत्मा का हित नहीं होता है। यह तब लगेगा जब आप थोड़ा-थोड़ा सा कुछ करेंगे तो आपको भी यह feelings आएगी और उस समय पर आपको ऐसा भी लगेगा कि एक बीच का रास्ता आचार्यों ने हमारे लिये दिया है कि ऐसा नहीं है कि आपको अपनी आत्मा का हित करने की इच्छा पैदा हो जाये तो आप शरीर छोड़ दोगे। एकदम से मान लो 1, 2, 5, 10, 20 उपवास कर लिये वैसे तो आप ऐसा कार्य कभी नहीं करोगे लेकिन फिर भी अगर किसी को कोई सनक चढ़ जाये तो आचार्य कहते हैं कि गलत है। मुनि महाराज के लिये भी आचार्य कहते हैं कि अगर आप मुनि बनने के बाद भी यह सोचे की हमें जल्दी-जल्दी इस पर्याय से मुक्ति मिल जाये तो आपका यह भागने का, दौड़ने का काम तो आपको रोक देना है। न जिन्दगी से भागो, न मौत से भागो। जब आप भागोगे नहीं तो आपको हर चीज को face करना होगा, सामना करने के लिये आपके अन्दर साहस होना चाहिये, जब आपके अन्दर साहस होगा तो न आप न यह सोचोगे कि मेरा जल्दी-जल्दी मरण हो जाये और आप यह सोचोगे कि कभी मरूँ ही नहीं, ये दोनों ही बातें सोचना गलत है। आप जितनी सावधानी के साथ मन को समता में डाल दोगे, इस भाव का विचार रखोगे कि हमें अपनी आत्मा का उपकार करना है तो आपके लिये एक सम्यक् ज्ञान उत्पन्न होगा और उसी सम्यक् ज्ञान से आपकी समीचीन संयम और समीचीन तपस्या का फल आपको प्राप्त होगा इसलिए भागने की कोई जरूरत नहीं है। लोग बहुत

तप के दौरान मन की विशुद्धि पर ध्यान दें। असंयम व संक्लेश परिणामों से बचें।

जल्दी-जल्दी जैसे वो अपने संसार के क्षेत्र में करने लग जाते हैं ऐसे ही मोक्ष मार्ग में भी करते हैं लेकिन आचार्य कहते हैं कि आपके अन्दर किसी भी प्रकार की आकुलताएँ नहीं होनी चाहिए। हर चीज बड़ी सहज होनी चाहिए। जब जैसा हो जाये उसको भी बिल्कुल सहजता से स्वीकार कर लेना चाहिए। ऐसी साधना बनाना जिसमें सब कुछ हम समता से सहजता से स्वीकार कर सकें तब आप अपने जीवन पर उपकार कर रहें हैं क्योंकि आपको जो ज्ञान आज है वह ज्ञान आपके लिये कल मिले न मिले लेकिन आज इस पर्याय में यह ज्ञान मिला है तो आप इसका अपनी बुद्धि से समझदारी से उपयोग करो। ज्ञान का उपयोग करना और उसके साथ संयम बनाकर के रखना, यह व्यक्ति को अपनी शक्ति के साथ जीवन पर उपकार करना चाहिए। जीवन पर उपकार करने के लिये सबके तरीके अलग-अलग भी हो सकते हैं। सबसे पहले समझ यही होनी चाहिए कि जीव पर उपकार करने के लिये हमारी आत्मा के अन्दर सम्यग्दर्शन और सम्यक् ज्ञान की परिणति होना चाहिए। सम्यक् दर्शन का मतलब आपके अन्दर एक श्रद्धा की परिणति होना आस्था की परिणति होना, तत्त्वों के प्रति पहले आस्था होना। संवर, निर्जरा, मोक्ष के क्या कारण हैं, आस्रव और बंध के क्या कारण हैं, सब के कारणों को जानना। जब आप कारणों को जान लेंगे तो आपके अन्दर श्रद्धा बैठ जाएगी कि यह मोक्ष मार्ग है। जब आपके अन्दर यह श्रद्धा बैठेगी कि यह मोक्षमार्ग है तो आपका कोई भी तप समीचीन तप कहलाएगा। अगर अभी आपके अन्दर श्रद्धा नहीं है, ज्ञान नहीं है और आप सीधा-सीधा तप करने बैठ जाएंगे तो उस तप से आपको बहुत ज्यादा लाभ नहीं होगा इसलिए पहले अपने अंदर श्रद्धा और ज्ञान पैदा कर लो। उसके साथ-साथ यह भी भावना पैदा कर लो कि मोक्ष-मार्ग यही है। अब आप जो भी तप करोगे उससे आपको आनन्द उत्पन्न होगा, फिर उससे आपको कभी भी संक्लेश नहीं होगा। वह सबसे पहली चीज है हमारी समझदारी, हमारे अंदर आस्था उत्पन्न हो जाना और वह बड़े ज्ञान की चीज है। उपदेश से भी आपके अंदर आस्था उत्पन्न हो सकती है, समझाने से, देखने से भी हो सकती है। जैसे कि आपको बताया था कि भगवान आदिनाथ को भी समझाने से आस्था उत्पन्न हुई। स्वयंबुद्ध मंत्री ने अपने उस महाबल राजा को समझाया धर्म, धर्म का फल समझाया।

उसने बताया कि देखो आर्त ध्यान, रौद्र ध्यान का क्या फल होता है और स्वयंबुद्ध मंत्री ने अपने महाबल राजा को यह भी बताया कि महाराज! धर्म ध्यान का क्या फल है और शुक्ल ध्यान का क्या फल है? वो सब दृष्टांत जब उसके आस-पास उस समय पर गुजर रहे थे। जो वहाँ के लोगों ने देखे जब चतुर्थ काल की तरह वहाँ पर काल चला करता है और उस समय पर पुरखे भी जो दादा-परदादा हैं इस प्रकार की साधना करके कोई स्वर्ग को, कोई मोक्ष को प्राप्त हुए। महाबल के दादा का नाम था शंतबल। उसके पिताजी के दादा का नाम सहस्र बल। वह सहस्र बल जो आपके पिताजी के दादा हैं उन्होंने अपने राज्य को छोड़ा, संयम धारण किया और अपने अन्दर तपस्या के

माध्यम से केवल ज्ञान प्राप्त करके उन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया। यह बात यहाँ के लोगों को मालूम है। आप यह सोचें कि जल्दी-जल्दी हमारा यह जीवन समाप्त हो जाये आपका यह सोचना भी गलत है और आप अगर यह सोचें कि हमारे कर्मों की निर्जरा बहुत जल्दी हो जाये इसलिए हम तप बहुत जल्दी-जल्दी कर लें।

आचार्य कहते हैं कि थोड़ा सा बैलेंस बनाकर के चलना चाहिए और ऐसे बैलेंस के साथ में चलना कि आपकी आत्मा का हित भी होता रहे और शरीर भी आपके लिये धर्म का साधन बना रहे। उस धर्म के साधन को अगर आप बहुत जबरदस्ती करके उसका अहित कर दोगे तो क्या होगा। मानलो आपके अन्दर यह जिद आ गई कि 'तपसा निर्जरा च' तप करने से निर्जरा होती है और आपके अन्दर जिद आ गई और आपने एक साथ 20 या 40 उपवास कर डाले और नियम ले लिया कि तप से ही निर्जरा करके छोडूँगा, आत्मा से कर्मों को अलग करके छोडूँगा। जब तक आत्मा से कर्म अलग नहीं होते हैं तब तक मैं शरीर का कुछ नहीं करूँगा। आपने उस शरीर का उपवास या अन्य किसी भी प्रकार के तपों के माध्यम से उस शरीर को छोड़ने का भाव कर दिया। यह एक दुर्भाव हो गया क्योंकि जो प्राप्त हुआ शरीर है, आयु है आपने उसका नाश करने का भाव किया। इधर यह भी कहा गया कि जितना आप जीव का उपकार करेंगे उतना शरीर का अपकार होगा। लेकिन आचार्यों ने यह भी कहा है कि जीव का उपकार करने के साथ में शरीर का उतना ही अपकार करना जिससे कि जीव का उपकार होता रहे। शरीर का इतना अपकार मत कर देना कि वह शरीर आपकी आत्मा से ही संबंध छोड़ दे और समय से पहले आपकी मृत्यु हो जाये। यह आपने एक बहुत बड़ा अपने ऊपर उपकार कर लिया क्योंकि केवल तप करने का नाम ही केवल शरीर का उपकार करना नहीं है। उस संयम से असंख्यात गुणी कर्म की निर्जरा जितनी देर तक आप इस शरीर से करते रहोगे उतनी देर तक आपके अन्दर कर्मों की निर्जरा चलेगी। आचार्य कहते हैं कि अगर आपने उस शरीर को जल्दी छोड़ दिया तो आपने आत्मघात कर लिया। यह भी एक छोटी सी आत्महत्या है इसको अज्ञान तप बोधि कहा गया है। ज्ञान पूर्वक तप करना अज्ञान पूर्वक नहीं करना और अज्ञान पूर्वक तप में आपके अन्दर किसी प्रकार की जिद आ सकती है। उस जिद को आचार्य कहते हैं कि यह तुम्हारा अज्ञान है क्योंकि आप कर्म की निर्जरा नहीं कर रहे हैं, इस शरीर की निर्जरा कर रहे हो। नोकर्म को बनाये रखते हुए कर्म की निर्जरा करते रहने का आपको प्रयास करना था और आप उल्टा करने लगे।

आचार्यों ने यहाँ तक कहा है कि अगर आप तप करके इस शरीर को समय से पहले छोड़ दोगे तो आपने असंयम कर लिया और असंयम की आपने प्राप्ति कर ली। असंयम आपको ही प्राप्त होगा और जब आपकी मृत्यु होगी तब आप कहाँ जाओगे? देव बन गए तो वहाँ पर तो असंयम ही है मनुष्य पर्याय में आपके साथ में संयम था उस संयम में आपको यथा शक्ति, यथा-

अज्ञानपूर्वक तप द्वारा कर्मों की निर्जरा नहीं होती है बल्कि असंयम की प्राप्ति होती है।

समय पालन करना था। आपने यदि जल्दी-जल्दी करने की भावना कर ली तो क्या होगा संयम में जो समय जाता है आपने वह काम कर लिया और वह समय असंयम में चला गया। देखो आचार्यों की बातें बहुत समझदारी की है और इस बात का भी कोई गलत अर्थ ना निकालें तो कोई तप ही ना करे यह बात भी है। इसलिए आचार्यों की भाषा को समझना और उसको व्यवहार और निश्चय के माध्यम से तोलते रहना, यह सबसे बड़ी सम्यग्ज्ञान की बात होती है। अब कई लोग इस बात को सुनकर के तप ही नहीं करते हैं क्योंकि अगर हम तप करेंगे शरीर हमारा कई समय से पहले छूट गया तो हमारे लिये असंयम हो जाएगा इसलिए समाधि के समय तक कोई समाधि तक नहीं लेते हैं। जबकि आचार्य कहते हैं कि समाधि के समय तक तो समाधि की तैयारी करते हुए इस शरीर से बिल्कुल निस्पृह होना है। उस समय पर तुम्हें यथाशक्ति जितना तप बने उतना करना लेकिन उस समाधि के समय पर करना और उस समाधि के समय पर जो आप तप करोगे उससे जो कर्म की निर्जरा होगी वह आपके लिये अज्ञान तप नहीं कहलाएगा क्योंकि उस समय पर आपके परिणाम इस बात के लिये नहीं हैं कि हमें जल्दी-जल्दी मरना है या जल्दी-जल्दी कर्म की निर्जरा करनी है। आचार्य कहते हैं कि जल्दी-जल्दी करने की कोई बात नहीं है जो है, जहाँ है, जिस स्थिति में है उस स्थिति में रह कर ही ज्ञानपूर्वक करो। भागो मत, दौड़ो मत। ये भाग-दौड़ तो रोक देना है। न जिंदगी से भागो, न मौत से भागो। हर परिस्थिति को face करने का साहस बनाओ। जब ऐसा साहस होगा तो आपके अंदर एक ज्ञान पैदा होगा जो सम्यग्ज्ञान कहलायेगा जिसे समीचीन तप का फल प्राप्त होगा। इसलिये कहीं भागने की जरूरत नहीं। आपके अंदर कभी भी आकुलता नहीं होना चाहिये सब कुछ सहजता से होना चाहिये। अपने अंदर संयम बनाके रखना, यह कहलायेगा जीव पर उपकार करना। जीव पर उपकार करने के लिये समझ होना, सम्यक् परिणति होना, सात तत्त्वों पर श्रद्धा होना, आस्रव, संवर, निर्जरा के कारण का ज्ञान होना। पहले अपने अंदर श्रद्धा व ज्ञान पैदा कर लो। जब मोक्षमार्ग पर श्रद्धा बैठ जायेगी तब जो तप होगा वह समीचीन तप कहलायेगा, उससे आनंद उत्पन्न होगा, फिर संक्लेश नहीं होगा। उपदेश से भी आस्था उत्पन्न हो सकती है।

आदिनाथ भगवान के जीव को भी समझाने से आस्था उत्पन्न हुई। स्वयंबुद्ध मंत्री ने अपने राजा महाबल को समझाया कि आर्त्तध्यान का क्या फल होता है? रौद्रध्यान का क्या फल होता है? शुक्लध्यान का क्या फल होता है? उस समय जो राजा थे वे मुनि बनकर कुछ स्वर्ग को प्राप्त हुये कुछ मोक्ष को प्राप्त हुये। वह महाबल के दादा सतबल थे उसके पिताजी के दादा का नाम था सहस्रबल। उन सहस्रबल ने तप के माध्यम से केवलज्ञान को प्राप्त किया मोक्ष को प्राप्त किया और देव जब उस मोक्ष प्राप्ति पर देव उसका उत्सव मनाने आये थे यह उनके लिये शुक्ल ध्यान का फल मिला और सबसे आप इस बात की जानकारी ले सकते हैं। वह स्वयंबुद्ध कहता है कि आपके मंत्री जो सतबल थे उन्होंने भी आपके पिताजी को राज्य देकर के गृह त्याग करके तप किया और तप

करके वह महेन्द्र स्वर्ग में देव बने और वहाँ से एक दिन जब केवलज्ञान का उत्सव जब सुमेरु पर्वत पर चल रहा था तब तुम भी सुमेरु पर्वत पर गये थे तब वह देव आया था उसने आपको समझाया था कि आपके स्नेह के कारण उसने आपको समझाया कि महाबल कभी भी धर्म मत छोड़ना धर्म करने से ही स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति होती है। 'आप भूल गये महाराज!' वह स्वयं- बुद्ध मंत्री महाबल महाराज को कहता है, तब उनका ध्यान आता है- भूले तो नहीं लेकिन धर्म पर एक विश्वास जम नहीं पा रहा है वह महाबल आदिनाथ भगवान का जीव है जो नौ भव पूर्व की है धर्मध्यान का फल भी सुन लिया, शुक्ल ध्यान का फल भी सुन लिया कि हमारे दादाजी धर्म ध्यान के फल से स्वर्ग गये, और पिताजी के दादाजी शुक्ल ध्यान से मोक्ष को प्राप्त कर गये लेकिन मन के अन्दर अभी भी धर्म के प्रति विश्वास नहीं हो पा रहा है। देखो, जीवों की कैसी परिणति होती है समझाने वाला जीव हर तरह से समझता है और उस मंत्री को धर्म के प्रति श्रद्धा है मंत्री को कर्म-बंध और कर्म-फल के प्रति श्रद्धा है, लेकिन वह जिन लोगों को समझा रहा है उन लोगों को श्रद्धा उत्पन्न नहीं हो रही है, उस समय पर सबने कहा- देखो स्वयंबुद्ध मंत्री ने कितना अच्छा धर्म का फल बताया है, सबने उसकी प्रशंसा की और स्वयं महाबल राजा ने उसकी प्रशंसा की लेकिन प्रशंसा करना अलग बात है और धर्म को समझना अलग बात है जब हम धर्म और धर्म के फल पर विश्वास करने लगते हैं तो यहीं से किसी भी संसारी प्राणी के मन में धर्म की शुरुआत होने लगती है इसको कहते हैं सम्यक् भाव उत्पन्न हो जाता है धर्म और धर्म के फल में प्रीति उत्पन्न होने का नाम है सम्यक् भाव आना, निर्वेग तो बाद में आएगा।

निर्वेग :

निर्वेग का मतलब एक वैराग्य भाव वह बाद में आता है पहले संवेग भाव आता है। आपको नई छहढाला में तीसरी ढाल में इसका वर्णन मिलेगा। इसमें आपको सम्यग्दृष्टि जीवों के गुणों का वर्णन मिलेगा ''सम्यग्दृष्टि जीव की होय नित धर्म-धर्म फल प्रीति''

एक संवेग का भाव है और एक निर्वेग का भाव है, पहले हमें यह समझ में आ जाये कि यह धर्म का फल है और यह अधर्म का फल है क्योंकि जब आप यह जान लोगे कि यह धर्म और अधर्म का फल है तो आपको अधर्म से डर लगेगा और धर्म करने का आपके अन्दर यह भाव आएगा और अधर्म से डर लगने का भाव ही है सम्यक् भाव। तब आपको लगने लगेगा कि इस संसार में रहते हुए हम सबको कुछ मिला है लेकिन हमने अपनी आत्मा के लिये कभी कोई धर्म नहीं किया। धर्म के दिन आने वाले हैं, 10 ही दिन होते हैं धर्म के और इन दिनों में भी धर्म करने का आदमी के अन्दर भाव नहीं बनता है। साल के 365 दिनों में से 10 दिन धर्म के व्यतीत करना उससे नहीं तो आपकी आयु कम हो जाएगी, न आपका व्यापार कम हो जाएगा लेकिन उन दिनों में धर्म का भाव करना भी सबसे बड़ी समझदारी का काम हैं। हमें 10 दिन तो यही सोचना चाहिए इन दिनों तो हम

अपने अन्दर इतना अच्छा समय निकालेंगे कि हमें जैसा महाराज कहेंगे हम वैसा ही करेंगे और कुछ नहीं करेंगे हम अपने जीवन को अपने ढंग से नहीं चलाएंगे अपने जीवन को गुरु महाराज के ढंग से चलाएंगे कि बताओ महाराज क्या करना है, और क्या नहीं करना।

जब तक हम किसी चीज के लिये पूरा समर्पित होकर समय नहीं निकालते तब तक हमें उसका पूरा-पूरा लाभ नहीं मिलता। इसलिए अणुव्रत, महाव्रत यह जीवन पर्यन्त के लिये होते हैं मुनि महाराज बनते हैं तो ऐसा नहीं कि दो चार साल के लिये बन गये देख लिया, नहीं समझ में आया तो दो चार साल के बाद छोड़ दिया, मतलब इन महाव्रत, अणुव्रत से जब आत्मा का कल्याण होता है तो वह जीवन पर्यन्त के लिये लिया जाता है। तब होता है अगर 10 दिन के लिये भी कोई संयम लेंगे व्रत लेंगे तो आपके लिये इस गृहस्थ अवस्था में भी बहुत बड़ी चीजें होंगी वह आपकी जीव आत्मा के ऊपर भी बहुत बड़ा उपकार होगा। अपकार कहीं नहीं होगा, आपका शरीर कहीं नहीं जाएगा।

आप देखोगे कि धर्म करने से कभी भी हमको हानि होती ही नहीं है, जीव का उपकार करना यह हमारी पहली शर्त होती है। उस जीव के उपकार करने के लिये हमें कुछ नहीं करना पड़ता केवल थोड़ा सा हम समय बस निकाल लें। मान लो कि हमको दस दिन हमारी जिन्दगी में मिले ही नहीं, शरीर का उपकार तो हम कर कर के थक चुके हैं और यदि आपको थकान न हो तो आप यह बात सोचकर समझ सकते हैं कि इस शरीर के उपकार करने के बाद भी यह हमारे ऊपर अपकार कर देता है। यह शरीर हमको धोखा दे देता है और इसके माध्यम से भी हमको कष्ट होने लगता है। उस उपकार का मतलब है कि इस जीव के अन्दर हमारी श्रद्धा बन जाये हमको समझ में आ जाये और इस जीव पर जो भी उपकार करने वाली चीजें है उन सब पर आप धीरे-धीरे अपना मन बना सकते हो, जो जीवन पर उपकार करे वही हमारे लिये सबसे बड़ा उपकरण है। शरीर भी हमारे लिये उपकरण बन जाता है जब वह हमारी आत्मा पर उपकार करने लग जाता है। उस शरीर को उपकरण जिन्होंने बना लिया वही मुनि महाराज कहलाने लग जाते हैं क्योंकि उन्होंने शरीर को उपकरण बना लिया जीव का उपकार करने के लिये इसलिए आचार्य कुन्दकुन्द महाराज कहते हैं कि शरीर पर उपकार करने की बजाय जब आत्मा पर उपकार करेंगे तो चार चीजें ध्यान में रखना। प्रवचनसार की यह गाथा है–

उपकरण व विनय सूत्र का अध्ययन :

उवयरणं जिणमग्गे लिंगं जहजादरूवमिदि भणिदं।
गुरुवयणं पि य विणओ सुत्तज्झयणं च पण्णत्तं।। प्रवचनसार 254।।

उन 4 उपकरणों में सबसे पहला उपकरण है- 'यथाजात रूप' यथा जात रूप को धारण करना यह इस आत्मा के ऊपर उपकार करना। यह सबसे पहला उपकरण हो गया तो इस शरीर के माध्यम

शरीर प्रथम उपकरण है जिसके माध्यम से कर्मों की निर्जरा सतत चलती रह सकती है।

से आपके शरीर में हर समय सतत कर्मों की निर्जरा चलती रहेगी। तप करके आप कर्मों की निर्जरा अधिक कर सकते हो लेकिन अगर आप तप नहीं भी करेंगे तो भी आपके लिये यह रूप उपकरण का काम करेगा क्योंकि आपकी आत्मा में किसी भी प्रकार के पाप कर्म का बंध नहीं होगा। पाप कर्म का बंध हिंसा के काम करने से, परिग्रह रखने से होता है। जब आप इस रूप को अपना लेंगे तो न आपके पास परिग्रह होगा, न आपके पास हिंसा होगी और न हिंसा के साधन होंगे। आपकी आत्मा में कभी भी वह पाप कर्म चिपकने वाला नहीं, यह आत्मा के ऊपर उपकार करने वाला जिन रूप है। सबसे पहले यह उपकरण बताया कि जिन रूप धारण करना अगर आप गृहस्थों का कभी मन बन जाये कि हमें भी कभी ऐसी परिणति मिल जाये कि यथा जात को धारण कर सके तो यह मन बनाना भी आपके लिये एक आपका उपकार हो जायेगा। मन भी बना लेना का मतलब है कि हमारी यथा जात रूप पर श्रद्धा तो हो गई, इन पर रुचि उत्पन्न हो गई, यह भी आपके अन्दर सम्यक् दर्शन आपकी आत्मा का उपकार करने वाला हो जाता है। इसलिए आचार्यों ने कहा है यह सबसे पहला उपकरण है, उपकार करने वाला फिर दूसरा उपकरण 'गुरु वयणं'- गुरु के वचन जो हमारे लिये उपकार करने वाले हैं। गुरु आपको जैसा बताये वैसा करना क्योंकि आप अपने मन से भी बहुत कुछ कर सकते हो और आपको पता नहीं पड़ेगा कि आपके लिये हित हो रहा है या नहीं लेकिन गुरु आपको जानेंगे तो गुरु की बात को मानना और गुरु के कहे अनुसार ही करना, आपकी आत्मा का ही हित होगा। गुरु के वचनों पर श्रद्धान करना, यह आपकी आत्मा पर उपकार करने वाला दूसरी चीज है यह उपकार करने वाली जितनी चीजें हैं उन्हें अपने अन्दर यथा शक्ति आत्मसात कर सकते हैं इनमें किसी भी प्रकार की कोई रोक-टोक किसी के लिये नहीं है लेकिन आत्मसात करने का मतलब इतना भी हो सकता है कि आपके अन्दर एक ऐसी रुचि पैदा हो जाये कि हाँ यह चीजें आत्मा के ऊपर उपकार करने वाली हैं। गुरु वचनों में बड़ी सामर्थ्य होती है अपने आप गुरु वचनों से समझ में आ जाता है कि हिंसा क्या है? और अहिंसा क्या है? बड़े-बड़े शास्त्रों से जो चीज समझ में नहीं आती वे चीजें गुरु के वचनों से समझ में आ जाती है, छोटी सी चीज आपको बताता हूँ कि जब मैंने अहिंसा का भाव गुरुजी से सीखा। बिलासपुर की बात है जब वहाँ पर पंचकल्याणक चल रहे थे उस पंचकल्याणक के समय पर भी आचार्य महाराज के साथ में विहार के लिये जाया करता था और कई खेतों को पार करके एक रेल की पटरी बीच में पड़ती थी और उसको पार करके उस ओर जाना पड़ता था, जब आचार्य महाराज के साथ मैं लौटकर के आ रहा था तो वहाँ पर जो रेल की पटरी थी उस पर अक्सर एक इंजन चला करता था इंजन वाला केवल अपना इंजन इधर से उधर ले जाया करता था और वह उसी टाइम पर मिला करता था। एक दिन उस इंजन वाले ने उसी समय पर उस इंजन को वहाँ पर लाकर खड़ा कर दिया उसको पता भी नहीं होगा कि यहाँ से किसको गुजरना है, किसको नहीं गुजरना। उसी रास्ते में खड़ा कर दिया जहाँ से अपन को क्रोस होना है, न इधर रास्ता है, न इधर रास्ता है सामने पगडंडी है और उसी को क्रोस करके जाना है।

गुरु के वचन हमारे लिये उपकार करने वाले हैं।

आचार्य महाराज और हम भी उनके साथ में थे। वे लौटकर के आये, वहाँ हम खड़े थे एक दो मिनट हो गये थोड़ा सा विचार में आया अब आचार्य श्री तो कुछ कहने वाले हैं नहीं तो मन में विचार आया कि यह train तो पूरी है ही नहीं यह तो engine वाला है self dependent रहता है। उस समय engine वाले से आवाज लगाकर के कहा कि थोड़ा सा इसको आगे-पीछे कर लो मैंने ऐसा बोल दिया। आचार्य महाराज बगल में ही खड़े थे उसी समय पर आचार्य महाराज कहते हैं नहीं, अपने को ऐसा नहीं बोलना क्योंकि वह engine हटाएगा इतनी बड़ी machine इधर से उधर करेगा तुम्हारे कहने से करेगा, अपने को उसकी अवमानना का दोष लगेगा, अहिंसा महाव्रत में दोष लगेगा। इतनी दृष्टि जब उनकी देखी तब समझ में आया कि इसको कहते हैं-अहिंसा व्रत। जब कृत कारित और अनुमोदना से भी कोई कार्य करते हैं तो 'गुरु वयणं' इससे समझ में आता है कि गुरु वचन हमारे लिये कितने हितकारी हैं। अब समझ में आया कि कैसे भी कोई चीज हो अपने को निर्देश देने में भी दोष लगता है। कई बार आप जैसे कमरे में आये और आपको अंधेरा दिखा, कमरे में अब आप क्या करते हो कि आपने light जला दी और फिर आप चले गये। अब यह विकल्प हमको शुरु हो गया कि यह light खुली है, light में हमको पढ़ना नहीं है तो या तो हमको उस स्थान से बाहर जाना पड़ेगा या फिर हमको अपनी पढ़ाई बंद करनी पड़ेगी। यह विकल्प उस समय पर आना शुरू हो जाएगा और आप उस चीज को समझ नहीं पाओगे पूछोगे- महाराज! light बंद कर दें, अब महाराज क्या बोलेंगे। न महाराज light बंद करने के लिये और न खोलने के लिये बोलेंगे। यह आपको अपनी समझदारी से करना है कि आपको जरूरत है तो आप खोलो और अगर आपकी जरूरत पूरी हो गई हो तो बंद करके चले जाओ। महाराज को light की जरूरत नहीं है यह गुरु वचन ही इस बात को बताने वाले होते हैं और यह चीजें बड़ी practically होती हैं।

तीसरा उपकरण है विनय, विनय भाव आपका देव, गुरु, शास्त्र, धर्म, धार्मिक के प्रति, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चरित्र के प्रति जितना विनय भाव होगा वह भाव उतना ही आपकी आत्मा के प्रति उपकार करने वाला होगा। विनय से भी आप अपने अन्दर श्रद्धा उत्पन्न कर सकते हैं और उससे आपकी कर्म की निर्जरा होगी यह विनय इतनी बड़ी चीज है इसलिए आचार्यों ने इसे तीसरे उपकरण के रूप में कहा।

चौथा उपकरण कहा है-सूत्रों का अध्ययन जो सिद्धान्त शास्त्र होते हैं उन शास्त्रों का अध्ययन करना यह भी विशेष रूप से निर्जरा करने के कारण होते हैं यहाँ पर आचार्य महाराज ने यह केवल इतना कहा है कि जो चीजें जीव पर उपकार करने वाली हैं वह शरीर का अपकार करेगी लेकिन वह शरीर का अपकार एक साथ नहीं कर देगी, शरीर का अपकार उससे होते हुए भी जीव का उपकार उससे हो जाएगा इसलिए आप डरना नहीं। जीव के उपकार की आप मुख्यतः रखेंगे शरीर का उपकार भी हो जाएगा तो उससे कोई अनिष्ट नहीं हो जाएगा। ऐसी भावना के साथ में आप यह ध्यान में रखें कि वास्तव में जीव का स्वभाव और शरीर का स्वभाव विपरीत है इसलिए

विनय से भी आप अपने अन्दर श्रद्धा उत्पन्न कर सकते हैं

आचार्य कह रहें हैं कि जो चीजें जीव के लिये लाभदायक हैं वह शरीर के लिये हानिकारक हैं और जो चीजें शरीर के लिये लाभदायक हैं वह जीव आत्मा के लिये हानिकारक है। आप इस पर विचार करेंगे तो आपको समझ में आने लगेगा कि जो धन वैभव आदि की आसक्ति है यह आसक्ति आत्मा के लिये हितकारी नहीं होती है, इसलिए आचार्य महाराज के यह वचन बड़े ही अच्छे हैं जैसे ही आप अपने जीव पर उपकार करने की भावना करें तो आप यह भूल जायें कि शरीर का अपकार होगा, वह अपकार थोड़ी देर के लिये आपको लगेगा लेकिन दूसरे दिन वैसे ही हो जाएगा। अगर मान लो आपने एक दिन में व्रत उपवास कर लिया, उस दिन आपको शिथिलता लगेगी आपको अपने ही शरीर से ग्लानि होगी, अपने ही शरीर से आपको अच्छा नहीं लगेगा लेकिन अगर आप इतना भी सोचकर के अपनी आत्मा के लिये कुछ करोगे तो भी आपके अन्दर वह शक्ति आएगी जिस शक्ति से आत्मा का उपकार होता चला जाता है।

इसलिए यह बात ध्यान में रखो कि आत्मा के लिये हमें कुछ भी छोड़ना पड़े, कुछ भी करना पड़े, अपना मन कष्ट में भी डालना पड़े लेकिन हम अपनी आत्मा का उपकार अवश्य करें। अपने शरीर को उस आत्मा के उपकार करने में लगायें, शरीर को धर्म का साधन बनाये ना कि भोगों का साधन जब शरीर धर्म का साधन बन जाएगा तो वह आत्मा के लिये भी उपकार करने वाला हो जाएगा। क्या करना है आपको, भोगों का साधन तो अनादिकाल से बना हुआ आ रहा है लेकिन धर्म का साधन यह कभी-कभी बन पाता है। देखो अभी महाबल को भी समझ में नहीं आया है, धीरे-धीरे आएगा जब महाबल को नहीं आया तो आपको कैसे आ सकता है, यह आपके दस भव पहले की भी कथा बन सकती है क्योंकि यह संस्कार आपके आगे के भवों में काम कर गया तो मान लो आपका भी पुराण अगर कोई वाचन करेगा तो कहा जाएगा कि आपने भी आठ भव पहले दसलक्षण के दिनों में दस दिनों की आराधना की थी और उससे ऐसा संस्कार पड़ गया कि आज दस भव के बाद आपके केवलज्ञान का कारण बन गया ऐसा भी हुआ क्योंकि जो कहानी किसी के साथ घटित है वह कहानी आपके साथ भी घट सकती है, बस आप अपना अच्छा मन बनाकर के रखो। अपने भाव अच्छे बनाकर के रखो, बस ऐसा भाव रखो कि जीव का उपकार करना है।

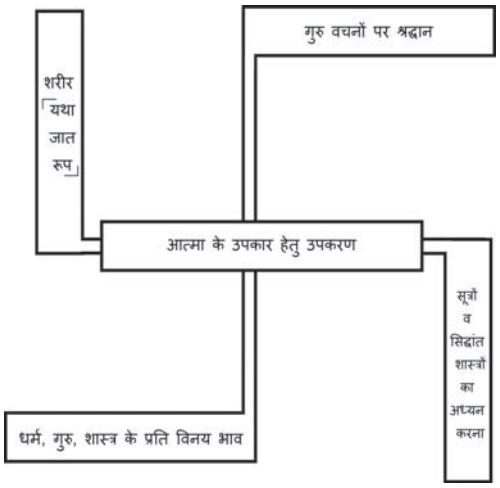

आपके अन्दर भी वह शक्ति आएगी जिस शक्ति से आत्मा का उपकार होता चला जाता है।

ध्यान से तो मन चाहा प्राप्त हो सकता है?

20

इतश्चिन्तामणिर्दिव्यः इतः पिण्याकखण्डकम्।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये क्वाद्रियन्तां विवेकिनः॥

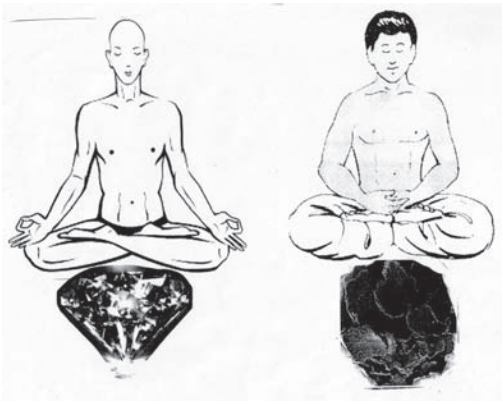

अन्वयार्थ– (**इतःदिव्यः**) एक तरफ दिव्य (**चिन्तामणिः**) चिन्तामणि रत्न और (**इतः**) दूसरी तरफ (**पिण्याकखण्डकम्**) खली का टुकड़ा (**चेत् उभे**) यदि ये दोनों (**ध्यानेन लभ्ये**) ध्यान के द्वारा प्राप्त होते हैं तो (**विवेकिनः**) बुद्धिमान् मनुष्य (**क्व**) किसमें (**आद्रियन्तां**) आदर करे ?

- **ध्यानेन चेदुभे लभ्ये**
- **चिंतामणि द्रव्य-ध्यान**
- **What is Respectable**

आचार्य देव कहते हैं कि इस जीव को सबसे पहले अपने ही जीव का उपकार करना चाहिए और अगर यह जीव उपकार नहीं करता है तो यह जीव संसार के अन्दर पर वस्तुओं को ही उपकार की दृष्टि से देखकर भ्रमित होता जाता है। कहते हैं कि संसार में जो कुछ भी मिलता है वह उसको अपने ही ध्यान से प्राप्त होता है। ध्यान हर व्यक्ति करता है और यूँ कहे तो संसार का हर प्राणी कोई ना कोई ध्यान कर रहा है। एक इन्द्रिय जीव भी ध्यान करते हैं, दो इन्द्रिय जीव भी ध्यान करते हैं, तीन इन्द्रिय जीव, चार इन्द्रिय जीव और पाँच इन्द्रिय जीव भी ध्यान करते हैं। वह ध्यान जो हमेशा चलता रहता है, उस ध्यान को सभी जीव किसी न किसी रूप में करते रहते हैं और वह ध्यान उन सब जीवों में अपने आप स्वतः संचालित है। वह ध्यान पंचेन्द्रिय जीवों में चलता रहता है। अभी आप सुन रहे थे कि अभिमान मत कर, ध्यान कर। अभी तक जो ध्यान हुआ है वो अभिमान का ही ध्यान है। जो भी जीव इस संसार में रहते हैं वे सभी जीव अभिमान ही करते हैं और जो भी वह ध्यान करते हैं वो सब अहं से ही करते हैं, जिससे हमारे अहं की पुष्टि हो वह जीव वैसा ही ध्यान करेगा। जिससे हमारे अहं को बल मिले, वह जीव उसी का स्मरण करेगा इसलिए हर जीव उसी का ध्यान कर रहा है। फिर भी यह ध्यान के शिविर क्यों लगाये जाते हैं। यह समझ में नहीं आ रहा है, यहाँ पर भी ध्यान का शिविर लगाना है और हर व्यक्ति ध्यान कर रहा है।

ध्यानेन चेदुभे लभ्ये :

हमें सब चीजें ध्यान से ही मिलती है, अगर आपको चिन्तामणि जैसी दिव्य कोई चीज मिलेगी तो वह भी ध्यान से मिलेगी और अगर आपको **पिण्याकखण्डकम्** , पिण्डयाकखण्डकम् का मतलब है ऐसा कोई पिण्ड जिसमें कोई सार नहीं है, बिल्कुल निस्सार हो। जिसे आप बोलते हो खली, खली माने तेल निकलने के बाद में जो बची रह गई, अब उसमें कुछ भी नहीं बचा, वह खली अगर सामने है तो वह भी आपको ध्यान से मिल रही है। अगर आपको चिंतामणि के समान कोई वस्तु है तो वो भी आपको ध्यान से मिल रही है, अब वो चीज क्या है? मैं आपको थोड़ी देर से बताता हूँ कि खली क्या है और चिंतामणि क्या है। हर चीज दुनिया में ध्यान से मिलती है। आचार्य कह रहे हैं– 'ध्यानेन चेदुभे लभ्ये' हर व्यक्ति ध्यान तो कर रहा है और उसके अंदर यह ध्यान करने का संस्कार अनादि से पड़ा हुआ है। अदृश्य का वह ध्यान नहीं करता है, जो देखने में आता है दृश्य का ध्यान करता है। अदृश्य भी जीव होगा तो वह अदृश्य का ध्यान नहीं कर पायेगा, वह दृश्य का ही ध्यान करेगा। आप जब भी ध्यान करेंगे आपके सामने वह चीज पहले कभी देखने में आयी हो दृश्य हुई हो तो आप उसका ध्यान कर पायेंगे और आपके लिए वह चीज अदृश्य है तो वह आपके लिए ध्यान का विषय बनेगी ही नहीं। हर व्यक्ति जो अपने दृश्य भूत वस्तुएँ होती हैं उन्हीं का ध्यान करते हैं और उसके ध्यान के पीछे उसका एक अहं भाव जुड़ा रहता है, जिसके कारण वह ध्यान को भी अभिमान के साथ करता है। एक ऋषि के पास में एक व्यक्ति कुछ समय के लिए

किसी ना किसी रूप में ध्यान सब जीवों में स्वतः संचालित रहता है।

साधना करने के लिए पहुँचा और कुछ समय साधना करने के पश्चात् जब वो वहाँ से चलने लगा तो उस ऋषि ने उससे कहा कि जाते हुए कुछ दान-दक्षिणा तो दे जाओ। शिष्य ने कहा कि क्या दे दूँ आपके लिए? ऋषि बोलता है कि ऐसी चीज लाओ जो दुनिया में सबसे व्यर्थ हो। मैंने तुम्हें पढ़ाया है, सिखाया है, तुम्हें साधना कराई है, ऐसी चीज ढूँढ़ के लाओ जो दुनिया में सबसे व्यर्थ है? शिष्य ढूँढ़ने के लिए जहाँ-जहाँ जाता है। जिस चीज से हाथ लगाता है और सोचता है कि यह चीज व्यर्थ है, वहीं पर उसकी अन्तर्रात्मा की आवाज आती है कि यह चीज व्यर्थ नहीं है। हाथ में मिट्टी ले लेता है और सोचता है कि इस मिट्टी की कोई कीमत नहीं है और मिट्टी व्यर्थ है। उसकी अन्तर्रात्मा फिर उससे कहती है कि तुझे पता नहीं है कि बिना मिट्टी के तो इस दुनिया में कोई चीज होती ही नहीं है, सब चीज इस मिट्टी से उत्पन्न होती है। सबका जीवन इसी मिट्टी से बनता है और जितने भी खाद्यान्न है वो भी सब इसी मिट्टी से बनते हैं। फिर एक जगह और जाकर के उसने जो कचड़ा घर होता है कूड़ा जहाँ पड़ा रहता है उसे जाकर के हाथ लगाया और सोचा कि यह सबसे बेकार की चीज है, इसी को चलकर के अपने गुरु को देंगे। वह घूरे (डस्टबीन) को हाथ लगाता है और घूरे को हाथ लगाते हुए ही उसकी अन्तर्रात्मा कहती है कि यह भी कुछ न कुछ काम में आने वाला है, घूरा भी जहाँ पड़ा रहेगा वही पर खाद उत्पन्न कर देगा और उसी खाद से फिर किसी के लिए जीवन बनेगा, पेड़ पौधे बनेंगे और यह घर की चीज भी काम आ जायेगी। वह व्यक्ति सोचने लगा अब क्या करूँ, कहाँ पर जाऊँ, व्यर्थ से व्यर्थ चीज जो गुरु ने पूछी है ले के आना है। नाली के पास गया, नाली के पानी में हाथ डालता है और बोला कि यह किसी काम का नहीं तो उसकी अन्तर्रात्मा बोलती है कि ये भी किसी काम में आने वाला है। इसमें भी अनेक जीव पल रहे हैं, जिनका जीवन भी इसी से चल रहा है अगर यह पानी निकल जायेगा, गंदगी निकल जायेगी तो इन जीवों का मरण हो जायेगा। जहाँ-जहाँ उसने देखा उसे दिखाई दिया कि यहाँ पर हमें कोई व्यर्थ की चीज समझ नहीं आ रही है। परेशान हो गया, सोचने लगा कि गुरु को अन्तिम दक्षिणा देना है, क्या दूँ? गुरु ने कहा है कि दक्षिणा लेकर के आना, अब कौन सी चीज लेकर के जाऊँ जो हमें व्यर्थ दिखाई दे। गुरुने कहा है कि जो व्यर्थ की चीज हो उसको लेकर के आना। सोचते-सोचते जब उसके सामने कुछ भी दिखाई नहीं दिया तो वह खुद गुरु के पास पहुँच गया और कहने लगा- गुरुदेव! हमें तो इस दुनियाँ में कुछ भी व्यर्थ समझ नहीं आ रहा है, आप ही बताओ- वह व्यर्थ चीज क्या है? वह हम आपको लाकर दे देंगे, आप बस उसका नाम बता दो। गुरु ने कहा- तुझे साधना करते-करते इतने दिन हो गये और तुझे अभी तक यह समझ में नहीं आया कि दुनियाँ में व्यर्थ चीज क्या है तो तू यहाँ से लेकर के क्या जायेगा और दुनियाँ को क्या देगा? तूने यहाँ पर सीखा क्या और जब कोई भी व्यर्थ चीज तुझे नहीं मालूम तो दुनिया को क्या बताओगे कि कौन सी चीज व्यर्थ है। अब तो शिष्य सोचता है कि हम तो गुरु के पास से जा रहे थे, गुरु दक्षिणा देने वाले थे और हमें

पता ही नहीं था कि हमें गुरु से और भी कुछ-कुछ सीखना है। शिष्य कहता है कि गुरु अब तो आप कृपा करके बता दो कि दुनियाँ में सबसे व्यर्थ चीज क्या है? गुरु कहते हैं- देखो! दुनिया की कोई भी दृश्य चीजें जो तुम्हें दिखाई दे रही हो उनमें कहीं कोई व्यर्थता नहीं है, हर चीज दुनिया में उपयोगी है, हवा, पानी, मिट्टी, नाली और कूड़ा-कचरे का उपयोग है, दुनियाँ में हर चीज का उपयोग है लेकिन कुछ चीजें तेरे अन्दर है जिसका कोई उपयोग नहीं, वह चीज मुझे दे दो। फिर गुरु से पूछता है- अब आप इतनी देर क्यों लगा रहे हो बताने में, आप बता दो मुझे क्या देना है, मैं सब कुछ आपको देने के लिए तैयार हूँ।

गुरु उससे कहते हैं देख तुझे लग रहा है कि इस दुनियाँ में ये चीजें व्यर्थ हैं, यह तुझे लगा कैसे कि यह मुझे बता, तुझे यह शरीर मिला, तुझे इतनी अच्छी पंचेन्द्रिय पर्याय मिली, तुझे अच्छी बुद्धि मिली, तेरी बुद्धि में यह आ कैसे गया कि इस नाली का पानी और इसमें रहने वाले कीड़े व्यर्थ हैं कि इसको अपने गुरुके पास ले चलूँ। वहाँ पर भी जीव है और उन जीवों का भी जीवन चल रहा है और वे जीव भी दूसरों को जीवन दे रहे हैं। शास्त्रों में आता है कि जो बादर जीव होंगे वे दूसरों को बाधा पहुँचायेंगे और दूसरों से बाधित होंगे लेकिन एक बात और आगे सुन लेना जो बादर जीव होंगे वो दूसरों को जीवन भी देंगे और दूसरों से जीवन भी लेंगे। यहाँ बाधा पहुँचाने का मतलब केवल परेशान करने का अर्थ नहीं होता, बाधा पहुँचाने का मतलब यह है कि किसी भी तरीके से एक-दूसरे के ऊपर कोई प्रभाव पड़ना, इसका नाम बाधा कहलाता है। अगर हमारा आप के ऊपर प्रभाव पड़ रहा है और आपका भी हमारे ऊपर पड़ता है तो दोनों एक दूसरे के लिए बाधित होंगे। यह बात अलग है कि हम उसको बाधा के रूप में भी मान लेते हैं, साधक के रूप में भी मान लेते हैं लेकिन अगर प्रभाव पड़ रहा है तो शास्त्र की भाषा में कहा जाएगा कि हमको आपसे बाधा है और आपको हम से बाधा है। यह शास्त्र की जो भाषा है वह थोड़ी सी ऊपर quality की होती है उसको भी समझने के लिए हमें थोड़ा सा 'द्रव्य संग्रह' के अलावा कुछ अलग प्रवचन सुनने पड़ेंगे क्योंकि उस समय वे चीजें समझ में नहीं आ सकतीं जो चीज अलग से हमें सुनने में आ सकती है। वह बाधा इसी प्रकार की जा सकती है, आपने हमको देखा, हमने आपको देखा- यह भी एक बाधा है। हर चीज जो आपको दिखाई देने वाली है वो चीज आपके लिए बाधा उत्पन्न करेगा वो जीव बादर जीव कहलायेगा।

इसलिए आचार्यों ने कहा हे कि बादर जीव से केवल बाधा ही उत्पन्न नहीं होती है वह बाधा के साथ आपके लिए साधन भी बन जायेगा और वो जीव जो आपको साधन के रूप में दिखाई देंगे उन्हीं से आपका जीवन चलेगा। एक इन्द्रिय जीव है जिनसे आपका जीवन चल रहा है वह भले ही बाधित होंगे, वह भले ही मरण को प्राप्त होगे लेकिन उनसे ही आपका जीवन चलेगा वो आपको बाधा पहुँचाएंगे और आप भी उनको बाधा पहुँचाएंगे लेकिन उन्हीं के माध्यम से आपका जीवन

बादर जीव दूसरों को बाधा पहुँचाते हैं, दूसरे को जीवन देते हैं एवं लेते भी हैं।

चलेगा। वह एक इन्द्रिय जीव पृथ्वीकायिक भी हो सकते हैं, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, और वनस्पतिकायिक भी हो सकते हैं। यह सब जितनी भी चीजें हमें दिखाई दे रही है वे सब दृश्य चीजें है और उन दृश्य चीजों में हमें कोई बाधा करता दिखाई दे रहा है तो गुरु उससे कहते हैं कि यह तेरा अज्ञान है। यहाँ पर कोई भी चीज किसी के लिए भी बाधा उत्पन्न कर सकती है। अगर तू उसको बाधा के रूप में देखेगा तो वह बाधा करने वाली होगी और अगर तू उससे अपना जीवन चलाने के रूप में देखेगा तो वह तुझे जीवन चलाने के साधन के रूप में दिखाई देगी लेकिन यह तेरी अन्दर की दृष्टि है और दृष्टि तेरी तेरे अहम् भाव से बनती है। जिस समय पर पंचेन्द्रिय प्राणी यह सोच लेता है कि मैं इतना बड़ा जीव हूँ, मैं इतना बड़ा हूँ तो उस समय पर उसे छोटे-छोटे जीव दिखाई नहीं देते और उन जीवों को वह व्यर्थ समझने लग जाता है। गुरु ने उससे कहा कि दुनियाँ में अगर कुछ व्यर्थ है, कुछ छोड़ने लायक है तो वह तेरे अन्दर का अभिमान है उसे छोड़ दे। जब तू यहाँ से जावे तो उसे छोड़कर के जाना क्योंकि दुनियाँ में अगर तुझे कभी कहीं सुख मिलेगा तो इस अभिमान को छोड़कर के मिलेगा। यह अभिमान ही व्यर्थ की चीज हैं और इस अभिमान के साथ ही आज तक तूने दुनिया देखी है। इसलिए इस दुनियाँ में तेरे अन्दर जो कुछ भी ध्यान रहा है वह हर दिखाई देने वाली चीज का ध्यान रहा है। तेरे अन्दर ध्यान रहा है कि यह चीज प्राप्त करना है तो वह कहीं न कहीं दृश्य चीजें है, अदृश्य चीज का तो तूने ध्यान किया ही नहीं और वो अदृश्य चीज क्या है।

चिंतामणि द्रव्य :

आचार्य यही कहते हैं '**इतश्चन्तामणिर्दिव्य:** आचार्य यहाँ कुछ बता नहीं रहे हैं, अब आपको समझना है कि आप बहुत दिनों से पढ़ते आ रहे हो जो आपने पिछले दिनों में सुना है उन सबका एक-दो भागो में यहाँ पर डिफरेन्शिएशन differentiation कर दिया गया। एक तरफ तुम्हारे लिए चिंतामणि द्रव्य है, चिंतामणि का मतलब होता है कि आपकी चिन्ताएँ हर ले या यूँ कहो आप जो चिन्ताएँ करे वो सब आपको मिल जाये उसका नाम है चिन्तामणि रत्न और वह दिव्य है। एक तरफ तुम्हारे सामने चिन्तामणि रत्न रखा हुआ है तो दूसरी तरफ खली का टुकड़ा रखा हुआ है और यह दोनों चीजें तुम्हारे सामने है, अब तुम बताओ तुम्हें क्या प्राप्त करना है? वो तुम सोचो और दोनों चीजें तुम्हें मिलेगी जिसका ध्यान करोगे वह चीज तुम्हें मिल जायेगी '**ध्यानेन चेदुभे लभ्ये**'।

यदि ध्यान से दोनों चीजें मिलती है तो वह '**क्वाद्रियन्ता विवेकिन:**' विवेकी जीव किसका आदर करेगा कहाँ पर आदर करेगा। बताओ, आपके सामने एक चिन्तामणि रत्न रखा हो और एक तरफ खली का टुकड़ा रखा हो आप किसको उठाओगे, ज्ञानी आत्माओं बोलो तो। यह कहोगे कि महाराज जी यह भी पूछने की बात है, सबको रत्न उठाने की पड़ेगी। अगर आपके अन्दर चिन्तामणि रत्न उठाने की भावना है तो आप चिन्तामणि रत्न उठा लोगे लेकिन आपको पता तो

होना चाहिए कि यह चिन्तामणि है और यह खली है। अगर हमने उस खली में ही कुछ ऐसा इंतजाम कर दिया कि उसको ऊपर से बिल्कुल काँच में लपेट दिया और अंदर से उसको अनेक प्रकार के रंगों से रंग दिया और फिर हमने उसमें लगा दी लाइट। आज कल सब हो सकता है, अन्दर से उसमें लाइट लगा दी, रेडियम लग जाता है अन्दर से, आपको बाहर से कुछ नहीं दिखेगा और वह लाइट में वह स्वरंग चमकने लगे। हो सकता है कि चिन्तामणि रत्न रखा हो सामने उसकी लाइट इतनी अच्छी नहीं लगे जितनी अच्छी उस खली की लगे, जितना आपको चमकीला चिन्तामणि रत्न ना लगे उतना वो artificial खली लगने लग जाए। महाराज वह खली ही अच्छी लग रही है, अभी चिन्तामणि रत्न अच्छा नहीं लग रहा है क्योंकि यह चिन्तामणि रत्न है, यह मालूम ही नहीं है। चिन्तामणि रत्न का स्वभाव क्या है, उस चिन्तामणि रत्न की पहचान क्या है? यह हमको मालूम नहीं है और हमको लुभाती है वो खली जिसमें कुछ है नहीं लेकिन वह ऊपर से बड़ी सुन्दर लगती है और बस यह भ्रम टूट नहीं पाता है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि तुम काबिल हो करके भी रह जाते हो। हर जन्म में तुमसे यह भूल हो जाती है और हर बार तुम यही गलती कर जाते हो। तुम्हें यह पता नहीं पड़ता कि वह चिन्तामणि रत्न है कहाँ? उसकी पहचान क्या है? इसलिए यहाँ पर आचार्य महाराज ने कुछ लिखा ही नहीं, चिन्तामणि रत्न है क्या? अगर आचार्य महाराज यहाँ पर होते तो हम उनसे पूछते कि महाराज! यह चिन्तामणि रत्न है कहाँ? बताओ आप ही लोग बता दो कि चिन्तामणि रत्न है कहाँ? स्वर्ग में होगा महाराज! और कहाँ मिलेगा यह चिन्तामणि रत्न दिव्य है। 'इतः' माने होता है यहाँ। जैसे कोई दो चीजें रखी हो, एक तरफ चिन्तामणि रत्न रखा हो और एक तरफ खली का टुकड़ा रखा है। आपको ध्यान से दोनों चीजें मिलेगी अब आप जान लो ध्यान से कौन सी चीज आपको चाहिए। आचार्य महाराज कहते हैं चार ही प्रकार के ध्यान है जो आपने पिछले दिनों में भी सुन लिये है आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान।

''यद् ध्यानमार्त्तरौद्रमता एहिक फल आंकाक्षिणाम्।
तम् परित्यज्य धर्मम्यं शुक्लयं च उपासिताम्॥''

आचार्य महाराज कहते हैं आपको इस श्लोक के अन्दर जितनी चीजें दिखाई दे रही है और इस संसार के अन्दर जिन चीजों को भी आप प्राप्त करने की इच्छा करोगे वो सारी की सारी चीजें आपको ध्यान में प्राप्त हो जायेगी लेकिन उस ध्यान का नाम है आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान। बस और कोई परिभाषा नहीं है आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान की। जो संसार के अन्दर या संसार में दिखाई देने वाली चीजें है जो इस श्लोक में आपको दिखाई दे रही है उनकी प्राप्ति की इच्छा करोगे, उस चीज के लिए जो ध्यान करोगे उनके नाम हैं- आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान। जब तुम उसको छोड़ दोगे बाकी का जो करोगे उनके नाम हैं- धर्मध्यान व शुक्लध्यान। इतनी short में परिभाषा बताई है अब दो चीजें हैं तो हो सकता है इस ध्यान से वो दो चीजें मिलती हो अपने आप। अपने को एक

संसार में दिखाई देने वाली चीजों की प्राप्ति की इच्छा ही आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान है।

conclusion निकालना है कि आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान से क्या मिला और क्या मिलेगा, खली का टुकड़ा या चिन्तामणिरत्न। आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान से क्या मिलेगा पक्का बोलते चलना। आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान से जो कुछ भी मिलेगा वो होगा खली का टुकड़ा। इसका मतलब क्या है? आपको जो कुछ भी देखने में आ रहा है, जो कुछ भी आप प्राप्त करने की इच्छा कर रहे हो इस लोक में आपको जो कुछ भी alternative दिख रहा है वो सब खली का टुकड़ा है और आपका ध्यान उसी में लगा है प्राप्त करने में। अपने आप आपके मन में ध्यान आ जायेगा इसलिए आचार्यों को कहना पड़ रहा है कि उसको छोड़ो। यूँ नहीं कह रहे हैं वो खली के टुकड़ों का मत छोड़ो, वो पड़ा रहने दो बाहर। लेकिन उस ध्यान को छोड़ दो जिससे वो टुकड़ा मिलता है। आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान को छोड़कर के **''धर्मम्यम् शुक्लयं च उपासिताम्''** धर्म और शुक्ल ध्यान की उपासना करने लग जाओ।

लोग पूछते हैं कि धर्म ध्यान कैसे किया जाये, धर्मध्यान किस चिड़िया का नाम है? कैसे हमारे अन्दर धर्म उतरे? एक बार आचार्य महाराज से भी एक बंदे ने ऐसे ही पूछ लिया? वह कहने लगा महाराज! आप हमें जल्दी बता दो और वो जो बंदा था, वो बड़ी जल्दी में था, उस समय उसके लिए ट्रेन छूट रही थी। आचार्य महाराज के दर्शन करने के लिए आया था। वह दर्शन करके जल्दी जाने वाला था उसने कहा- महाराज! आपके प्रवचन तो होगे 8:30 बजे, हमारे पास टाइम नहीं है, मेरी ट्रेन छूटने वाली है, मुझे जल्दी जाना है, आप जल्दी से मुझे इतनी बात बता दो। मेरे अन्दर एक जिज्ञासा है कि धर्म किसे कहते हैं? बस इतनी सी बात मैं आप से जानना चाहता हूँ। वह भागने वाला है और आचार्य श्री से पूछ रहा है। बिल्कुल real घटना बता रहा हूँ। धर्म किसे कहते हैं बस इतना सा बता दो तब आचार्य श्री उससे कहते हैं- तुम्हें जल्दी है जाने की। कोई बात नहीं लेकिन हम तुमको short में ही बता देते हैं। धर्म किसको कहते हैं, जो तुम्हें आज तक अच्छा नहीं लगा उसी का नाम धर्म है और जो तुम्हें आज तक अच्छा लगता रहा उसी का नाम अधर्म है। इतनी सी बात उसने सुन ली और वह चला गया, मनन करता रहा, चिन्तन करता रहा। उसकी समझ में आ गया की धर्म वास्तव में क्या है जो तुम्हें आज तक अच्छा नहीं लगा उसी का धर्म है और जो हमें अच्छा लगता रहा वो धर्म है ही नहीं। हम धर्मध्यान चाहते हैं तो हमारा धर्मध्यान हो जाये लेकिन आर्त्तध्यान रौद्रध्यान छोड़ के धर्मध्यान नहीं चाहते। हम यह चाहते हैं कि धर्म भी हो जाये और आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान भी हमारे अन्दर चलते रहे। आचार्य कहते हैं कि दोनों चीजें एक साथ हो नहीं सकती इसलिए उन्हें कहना पड़ा कि एक चीज छोड़ दो। आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान की परिणति छोड़कर धर्मध्यान व शुक्लध्यान की परिणति अपना लो। धर्मध्यान की परिणति तब अपनाने में आयेगी जब जितनी भी दिखाई देने वाली चीजें है उनसे आपकी आकांक्षा हट जायेगी और उसमें से अहं भाव हट जायेगा और उनसे अहं भाव जुड़ जायेगा। अहं भाव ही हमें बता देता है कि हमारे अन्दर किस-

हमें जो आज तक अच्छा नहीं लगा वह धर्म है और जो अच्छा लगा वह अधर्म है।

किस का ध्यान चल रहा है। आप विचार करे किस-किस चीज से आप अहं भाव को जोड़कर के देखते हो। हर वह चीज जो आपके अहं के साथ जुड़ी है। समझ लो आपके आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान का कारण है। अगर हमें यह भी ध्यान रहता है कि मैं यह शरीर हूँ तो यह शरीर के साथ भी कभी हमारे लिए आर्त्तध्यान हो जाता है जब यह शरीर रुग्ण हो जाता है। रोगी हो जाता है या जब इस शरीर का कभी अपमान हो जाता है तो शरीर के हमारे लिए आर्त्तध्यान का कारण हो जाता है और यह सारी चीजें हमारे अन्दर जुड़ी रहती है बस दृश्य जगत की अपेक्षा से। जो हमको दिखाई दे रहा है वह सब हम अपनी अहं बुद्धि से प्राप्त करना चाहते हैं और हम उसी का ध्यान करते हैं। असली ध्यान को आचार्य महाराज कहते हैं कि यह आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान है। अब तुम यह सोच लो कि तुम्हें इस आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान से कैसे बचना होगा, इस आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान की परिणति जब तक आप के साथ जुड़ी रहेगी, यह अहं भाव जुड़ा रहेगा- मैं यह शरीर हूँ, और इस शरीर के साथ जितनी चीजें जुड़ी हैं, जितनी पदवियाँ जुड़ी हैं, जितनी उपाधियाँ जुड़ी हैं, जितनी आपके अन्दर मानसिकताएँ जुड़ी हैं जब तक ये जुड़ी रहेगीं जब तक आपको चिन्तामणि रत्न की प्राप्ति होने वाली नहीं है। है वह चिन्तामणि रत्न लेकिन कभी हमको वह दिव्य लगा ही नहीं। यह आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान वाली चीजें हमको दिव्य दिखाई देती है, दुनियाँ की चमक हमको दिव्य दिखाई देती है लेकिन यहाँ पर आचार्य कह रहे हैं दिव्य कुछ और ही है और जो दिव्य है वो आपको दिखाई नहीं दे रहा है यह सबसे बड़ी विडम्बना है। आँखें जिसको देख रही है वो दिव्य है ही नहीं और जो आँखों से दिखाई नहीं दे रहा है वो दिव्य है। रस जिसमें दिखाई दे रहा है वो दिव्य है नहीं और जिसमें रस नहीं वो दिव्य है। रूप जिसका दिखाई दे रहा है वो दिव्य है ही नहीं और जिसमें रूप नहीं वो दिव्य है। शब्द से जो सुनने में आ रहा है वो दिव्य नहीं और जिसमें शब्द नहीं वो दिव्य है बड़ी उल्टी घटना है इसलिए हर कोई उस दिव्य तक पहुँच ही नहीं पाता। महाराज अभी तो आप चिन्तामणि रत्न की बात कह रहे रहे थे अब दिव्य की बात पर आ गये। वही चिन्तामणि रत्न है उस चिन्तामणि रत्न की दिव्यता ऐसी है कि वहाँ पर पहुँचते-पहुँचते हमारी आँखों तक अँधेरा आ जाता है और हमारी आँखें उस चीज को प्राप्त नहीं कर पाती है। इसलिए आचार्यों ने उस दिव्य चीज को इन अर्थों में कहा है-

''अरसमरूवमगंर्ध-मव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं।
जाण मल्लिगं गहणं, जीवमणिदिट्ठिसंठाणं ॥''

आचार्य श्री कुन्द-कुन्द देव की यह गाथा है यह दिव्य है उस दिव्य में क्या है, रस नहीं बताए देता हूँ निर्णय कर लेना अभी तो आपने बड़ी जल्दी बोल दिया था आपको चिन्तामणि रत्न चाहिए। अब मैं आपको बता रहा हूँ वह चिन्तामणि रत्न में, उस दिव्य में रस नहीं है-

There is no test, no colour, no smell, no touchment. कुछ भी नहीं है उसके अन्दर

चिंतामणि रत्न अहं भाव व अन्य पदवियों के जुड़े रहने से प्राप्त नहीं होता।

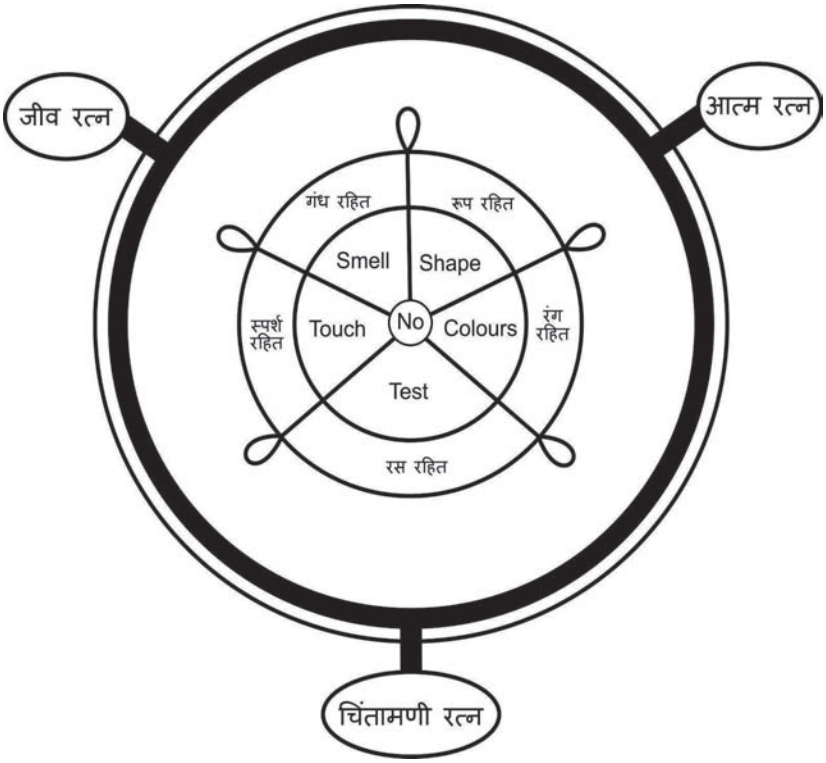

अरस, अरूप, अगंध, न उसमें रस है, न उसमें रूप है, न उसमें गंध है और 'नाहं अल्लिगं गहणं' उसको किसी भी चिह्न से पहचान सकते हैं कोई चिह्न नहीं है कि हम आपको दिखा दे। यह दिव्य चिन्तामणि रत्न है जिसका यह चिह्न है। जिसमें रूप, रस, गंध और चिह्न नहीं उसको तुम जानो ''**जाणा मल्लिगं गहणं जीव मणिट्ठि संठाणं**'' ऐसा वह कोई आकार भी नहीं है अनिर्दिष्ट संस्थान है। संस्थान माने आकार नहीं है उसका कुछ भी, एक निश्चित shape नहीं है कि यह इसी shape का है। आपने बड़ी जल्दी कह तो दिया कि हमें चिन्तामणि रत्न चाहिए जान तो लो वो चिन्तामणि है कैसा, उस चिन्तामणि की कोई shape नहीं है।

No shape, no colour, no test, no touch, no smell, nothing is lies in this chintamani ratna.

कुछ है ही नहीं, उसके अन्दर उसका नाम है चिन्तामणि रत्न। जिसमें यह अंग कुछ दिखाई दे रहा है- very delighted, very beautyfull, very colourfull जिसमें सब कुछ दिखाई दे रहा है light भी है, colour भी है, अच्छी smell भी है, सब कुछ है वो जो सब कुछ तुमको दिखाई दे रहा है वो कुछ और है और जो तुमको दिखाई नहीं दे रहा है वो कुछ और है। तुम्हें दोनों चीजों का ज्ञान कर लेना है।

इतः उसके साथ भी जुड़ा है। दो शब्द आये ना 'इतः इतः' माने इधर-इधर, यह हम और इधर यह हम। इन दोनों में से तुम्हें क्या अच्छा लग रहा है? तुम्हें प्राप्त कर लेने की भावना कर लेनी है। वह चिन्तामणि रत्न ऐसा है जैसा मैं आपको बता रहा हूँ, अब बताओ कितने लोगों की इच्छा हो रही है। जिसमें रूप, रस, गंध ना आकार है। नहीं महाराज! यह तो कुछ अच्छी चीज समझ नहीं

चिंतामणि रत्न रस, रूप, गंध, चिह्न, आकार आदि से रहित है।

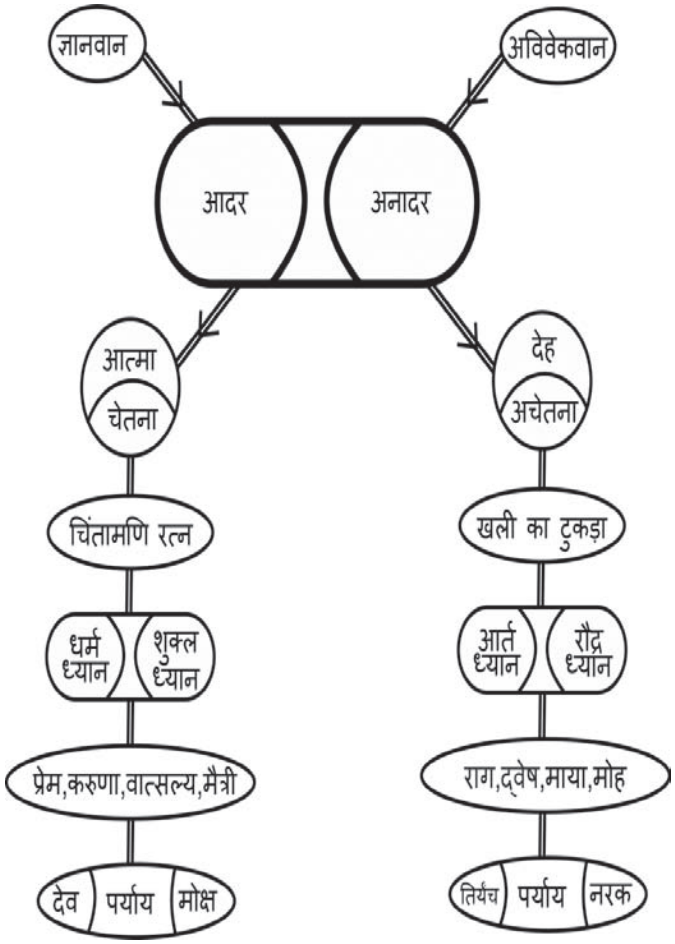

आ रही उसमें तो कुछ है नहीं, हमारी जो आदत पड़ी है वो इन्हीं चीजों की पड़ी है जिसमें कुछ रस हो, रूप हो, अच्छी सुगंध हो जिसे देखकर मन आल्हादित हो जाये, रत्न तो उसी को कहेंगे। लेकिन यहाँ पर जिस चिन्तामणि रत्न की ओर आचार्य देव indicate कर रहे हैं वो रत्न वह है जिसमें यह चीजें नहीं है और इस रत्न का नाम है जीव रत्न, आत्म रत्न, यही है दिव्य चिन्तामणि रत्न। उस आत्मा में कुछ भी नहीं और वह आत्मा इन सब चीजों की इच्छा कर रहा है रस, गंध, रूप, स्पर्श यह ही उसको चाहिए। इसलिए आचार्य कहते हैं कि तुम पहले समझ लो। बहुत जल्दी हाँ तो कर दी, हाथ तो फैला दिया हमें चिन्तामणि रत्न चाहिए, पहले समझ लो चिन्तामणि क्या है? चिन्तामणि रत्न का स्वरूप बता दिया, अब उसके अन्दर यह नहीं है यह तो बता दिया, उसके अन्दर है क्या? आचार्य महाराज कहते हैं कि उसके अन्दर चेतना है और जो आपके सामने खली का पिण्ड है उसके अन्दर अचेतना है उसमें कोई चेतना नहीं है। इतनी बड़ी चीज है बस सब कुछ इसी से सब अन्तर पड़ जाना है। जहाँ चेतना आ गई वहाँ चिन्तामणि रत्न है जहाँ चेतना नहीं वहाँ खली का पिण्ड हो गया, खली का टुकड़ा हो गया। आप कल्पना करो कोई ऐसी चीज जिसमें कोई चेतना नहीं है उन चीजों की कीमत है अथवा जिसमें चेतना हो उन चीजों की कीमत है। अगर सब कुछ यहाँ पर चेतना से शून्य हो जाये किसी चीज की कोई कीमत रहेगी ही नहीं। मान लो यहाँ पर एक बहुत बड़ा भवन बना है लेकिन यहाँ पर कोई आत्मा न हो, चैतन्य चीज न हो उसकी क्या कीमत होगी, इस भवन की भी कीमत करने वाला चेतना ही होगा। दुनियाँ की हर चीज की कीमत

दुनियाँ चेतना की कीमत नहीं आँकती, अचेतन की कीमत लगाती है।

करने वाली चेतना ही है। वह चेतना अपनी कीमत नहीं कर रही है, दुनियाँ की हर चीज की कीमत कर रही है। खली पिण्ड की कीमत कर रही है लेकिन उसे अपनी कीमत पता नहीं। अपनी कीमत को भूला हुआ है, चिन्तामणि रत्न में सब चीजें नहीं है जो चीजें खली पिण्ड में है, जो चीज चिन्तामणि रत्न में है वो चीज उस खली के टुकड़े में नहीं है। अब आपको सोचना होगा की आपको किसके प्रति आदर करना है।

What is Respectable ?

यहाँ पर 'क्वाद्रियन्ता विवेकिनः' आदर कहा करेंगे? अगर विवेकी हो गये आप। विवेकी का मतलब जिसे बोलते हैं विवेकवान् है, ज्ञानवान् है, इसके अन्दर अच्छी बुद्धि है अगर आपके अन्दर विवेक होगा तो आप किसका आदर करोगे? किसके लिए आप respect की दृष्टि से देखोगे? कौन सी चीज आपके लिए कीमती होगी जिसमें चेतना है वो या जिसमें अचेतना है वो।

'यज्जीवस्योपकाराय, तद्देहस्यापकारकम्।'

बस दो चीजों से सब तोड़ देते हैं या तो तुम अपनी जीव आत्मा पर दृष्टि डालो या अपनी देह की ओर दृष्टि डालो। देह की ओर दृष्टि डालोगे तो वह खली के टुकड़े की तरह है और आत्मा की ओर दृष्टि में ही वह चिन्तामणि रत्न तुमको समझ में आयेगा। अब उसकी प्राप्ति करने के लिए धर्मध्यान व शुक्लध्यान करना होगा। आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान से चिन्तामणि रत्न प्राप्त होने वाला नहीं है क्योंकि आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान से तो झगड़े होते हैं। जिन चीजों में झगड़ा हो आपस में खींचतान पड़ी हो लेने के लिए बहुत से लोग झपट रहे हो, समझ लेना वो सब कौए हैं, कबूतर हैं। कौए होते ही उस निस्सार चीज की उस डली के पीछे वो दौड़ते हैं, झपटते हैं लेकिन जो विवेकी जीव होते हैं वो कभी किसी चीज के लिए झपटते नहीं हैं। जिन चीजों में कलह उत्पन्न हो रही हो उस कलह में कभी पड़ते नहीं है और विवेकी जीव अपना एक अलग रास्ता नाप लेते हैं। विवेकी जीव उस कलह से दूर हो जाते हैं क्योंकि उस चीज में कलह है इसका मतलब वह जीव निस्सार है उसके दिमाग में आ चुका है। आप देखना चिन्तामणि रत्न के लिए कोई भी कलह नहीं करेगा खली के पिण्ड के लिए सब कलह करेंगे। बड़ी विडम्बना है दुनियाँ की उसी चीज के पीछे पड़ेंगे जिसमें कोई सार नहीं है और जिसमें सार है उसके लिए कोई कलह नहीं करेगा, कोई झगड़ा नहीं है। जो व्यक्ति उसको प्राप्त करने की इच्छा करेगा तो उसके अन्दर कभी कलह उत्पन्न होगी ही नहीं, झगड़ा उत्पन्न होगा ही नहीं, उसे कभी भी महसूस नहीं होगा कि इसके कारण से मैं परेशान हुआ हूँ इसका नाम है चिन्तामणि रत्न जो तुम्हारी सब चिन्ताएँ हर ले। चाहते हो हमारी सब चिन्ताएँ दूर हो जाये आपको कभी भी चिन्ता सताये आप अपने मन से पूछना कि वह चिन्ता हमारी किसके लिए है चिन्तामणि रत्न के लिए है कि खली पिण्ड के लिए है। आपको अपने घर की चिन्ता

सतायेगी, व्यापार की चिन्ता सतायेगी, बेटे व बेटी की चिन्ता सतायेगी आपके लिए किसी ने सम्मान दिया, उसकी चिन्ता सतायेगी, अपमान करेगा उसकी चिन्ता सतायेगी।

What are these things ? यह सब चीजें क्या हैं? इन सब चीजों में कोई चिन्तामणि रत्न है, कोई खली का पिण्ड है। अगर यह आपकी दृष्टि में निस्सार हो गये दुनियाँ की कोई चिन्ता आपको छू नहीं सकती। अपनी दृष्टि में यह निस्सार नहीं है इसलिए चिन्ता होती है। अपनी दृष्टि में निस्सार हो जाने से सब उस खली के टुकड़े के समान है जिसको पेलने से भी कोई रस निकलने वाला नहीं है क्योंकि उस में जो तेल था वो सब निकल चुका है। उसमें अब कोई सार नहीं है ऐसी निस्सार वस्तुओं के लिए हम चिन्ता करते हैं तो वह आर्त्तध्यान हो जाता है और उसी से हमारे अन्दर पीड़ा उत्पन्न होती है। उसी समय पर अगर आप अपनी दृष्टि अपने चिन्तामणि रत्न में डाल दो तो आपके अन्दर वह सब चिन्ताएँ छूट जाती हैं और आप बिल्कुल निश्चिंत महसूस करेंगे। यहाँ वो चीजें आपको सिखाई जा रही हैं जो दुनियाँ की किसी दुकान में नहीं मिलेंगी। करोड़ों कीमत देने पर भी आपको नहीं मिलेंगी। आपको चिन्ता से मुक्ति के वास्तविक उपाय यहाँ बताये जा रहे हैं। आप अपने ही विचार से अपने अन्दर चिन्ता उत्पन्न करते हैं और आपके ही विचार उस चिन्तामणि रत्न की ओर चले जायें तो कोई चिन्ता नहीं है। आपको भगवान आदिनाथ के नौ भव पहले की कुछ बातें बताई थीं।

आपको दस भव पहले की बात बताते हैं। वह दसवाँ भव जहाँ से वह बात शुरू होती है उसको गुजारने के बाद में वह राजा बने थे। वो महाबल राजा जिनकी बात मैं आपको बता रहा था उससे पहले वो एक राजा के ही पुत्र उत्पन्न हुए थे। राजा श्रीषेण उनका नाम था जिनके वो पुत्र उत्पन्न हुए, उस पुत्र का नाम था जयवर्मा और एक का नाम था श्रीवर्मा। यह नाम इसलिए बताये देता हूँ ताकि कभी आप आदिपुराण पढ़ने बैठे तो कुछ अच्छा-अच्छा लगने लग जाये। दोनों पुत्रों और पिता का जीवन चल रहा था और उस समय पर जो छोटा पुत्र था उसको लगता था कि पिताजी का सारा प्रेम हमारे लिए है और जो बड़ा पुत्र है उसको ऐसा लगता था कि पिताजी हमारे ऊपर कुछ ध्यान नहीं देते हैं। ये बातें आजकल की नहीं है, अनादिकाल की हैं। जहाँ घर में दो लोग होंगे वहाँ पर एक दूसरे से compare करेंगे और अपने-अपने अनुसार धारणा भी बना लेंगे। एक ही घर में रहने वाले दो भाई भी माता-पिता के प्रति धारणा बना लेते हैं कि माता का प्रेम हमारे प्रति है और पिता का प्रेम उसके प्रति है। पिता हमको चाहते हैं माता हमको चाहती है यह भी धारणा बना लेते हैं। इन धारणाओं में कभी-कभी ऐसा excess हो जाता है कि वो excess उनके साथ में हो गया। मतलब असंख्यात वर्ष पहले, नौ-दस भवों के पहले आदिनाथ भगवान के नौ भव पहले की है। समझ लो सृष्टि कब से चल रही है और वह उस समय पर उस राजा ने उस पिता ने अपने छोटे बेटे के लिए राज्य दे दिया और बड़े बेटे को यह अच्छा नहीं लगा कि छोटे बेटे को राज्य दे दिया।

असंख्यात वर्षों से सृष्टि चल रही है, तभी से राग-द्वेष, मोह-माया चली आ रही है।

बड़े बेटे को गुस्सा आया तो वह घर छोड़कर चला गया और उसके पुण्य से कोई निर्ग्रन्थ गुरु उसको मिल गये तो वह उनके पास में रहकर के दीक्षित हो गया। वह कुछ समय के लिए दीक्षित होकर रहा और जब उसका अन्त समय चल रहा था तो उस अन्त समय पर उसने विद्याधर राजाओं की विभूतियाँ देखी। ये विद्याधर राजा होते हैं, आकाश में उड़ते हैं और हर जगह पर आकाश में इन विमानों के साथ गमन करके कहीं पर भी जा सकते हैं ऐसे इनके पास में वैभव होते हैं और उस वैभव को देखकर के उसने निदान कर लिया। निदान का मतलब ''मुझे भी ऐसे ही विद्याधर का जीवन मिले'' यह निदान कर लिया। उस निदान के फलस्वरूप वह अगले जन्म में राजा महाबल की पर्याय में उत्पन्न हुआ, बहुत बड़ा विद्याधर राजा बना लेकिन धर्म पर उसके अन्दर विश्वास उत्पन्न नहीं हुआ क्योंकि दृष्टि में वह खली का टुकड़ा आ गया। जब संसार की कोई भी चीज सामने आई और आपने उसके लिए आकांक्षा की, यह हमें मिल जाये, समझ लो कि आपने खली के टुकड़े की इच्छा कर ली। यह बात बार-बार मैं इसलिए बोल रहा हूँ कि सभी आपके अन्दर बैठ जाये क्योंकि हमें मालूम है कि एक बार कहने से आपके अन्दर कोई बात बैठने वाली नहीं है लेकिन दस बार अगर कोई चीज को बोला जाता है तो वह आपके अन्दर बैठ सकती है। आपको बाद में याद आ सकती है और जब भी आप अपनी आँख बंद करके ध्यान करने के लिए बैठें तब जो चीजें सामने आ जायें तो सोचना, हमारे सामने खली का टुकड़ा आ रहा है या चिन्तामणि रत्न आ रहा है।

यह सब हम खली के टुकड़ों में पड़े हैं और वे टुकड़े मिल भी जाते हैं। धर्म भी आदमी इन्हीं टुकड़ों के लिए कर लेता है और जब धर्म के फल से इन टुकड़ों की इच्छा कर लेता है तो उसी को कहते हैं- निदान-बंध। भगवान आदिनाथ का जीव है, दस भव पहले उसने निदान बंध कर लिया। खली के टुकड़ों में दृष्टि पड़ी, अनादिकाल से हर आत्मा की दृष्टि ऐसे ही पड़ी है और वह दृष्टि धीरे-धीरे सुधरेगी। महाबल की पर्याय में आया और वहाँ पर वह स्वयंबुद्ध मंत्री समझा रहा है लेकिन उसके अभी भी समझ में नहीं आया है। दृष्टि धीरे-धीरे परिवर्तित होती है और उसके अन्दर वह ज्ञान धीरे-धीरे ऐसा आने लगा, उसके अन्दर विचार आने लगा कि स्वयंबुद्ध मंत्री ने हमें जो बताया है वह बिल्कुल सही बताया है। यह वो महाबल की पर्याय है उसके लिए ज्ञान आ रहा है लेकिन वह उससे पहले की पर्याय में तो इसी प्रकार की गलती की थी और उससे पहले गलती करता ही रहा, तभी तो संसार चलता रहा। आपके अन्दर भी यह दृष्टि जब बदलेगी तभी से समझना, आपके अन्दर का संसार अब घटने लगा। और कुछ नहीं करना है, बस चिंतामणि दिव्य रत्न की ओर अपनी दृष्टि करना है। जब आप उसकी ओर दृष्टि करो तो फिर वो चीजें याद मत करना जिन चीजों में कलर आ रहा हो, लाइट आ रही है, जिन चीजों में अच्छी smell आ रही हो। अगर किसी पड़ोसी के घर से भी गुजर जाते हो और कोई अच्छी smell आ जाती है तो आपको

धर्म के फल के रूप में किसी विशेष चीज की इच्छा करना निदान बंध कहलाता है।

खड़े होने का मन हो जाता है कि थोड़ी देर देख तो लूँ- यहाँ क्या बन रहा है? हलवे की गंध अलग आती है, घी की गंध अलग आती है तो आपका मन हो जाता है। अगर किसी चाट-पकौड़ी वाले ठेले के पास से गुजर जाओ और उसकी केवल हवा ही लग जाये वहीं पर बस आप अपनी जीभ टटोलने लग जाओगे कि हाँ चलो कुछ ले लें। इन सब चीजों में हमारा interest है, यह आजकल का नहीं है यह अनादि का है। यह सारा का सारा interest इतना ज्यादा बढ़ गया है कि चिन्तामणि रत्न की तरफ तो हमारा interest जाता ही नहीं है। यह हर उस आदमी की दशा है जो संसार में रह रहा है। हर उस आदमी के अन्दर तब तक यह ज्ञान नहीं आयेगा जब तक उसकी चिन्ताएँ कभी दूर होने वाली नहीं हैं। उसका आर्त्तध्यान कभी छूटने वाला नहीं है और उसका दुःख कभी मिटने वाला नहीं है। बस इतना हो जाता है कि जो हमने इच्छा की वो मिल गया, थोड़ी देर के लिए अपने को लगने लगा- हाँ चलो अपनी इच्छा पूर्ति हो गई बस, उसके बाद कुछ नहीं, फिर वो सब बराबर हो गया फिर दूसरी इच्छा शुरू हो गयी। वह आर्त्तध्यान फिर उसी इच्छा के साथ शुरू होगा इसलिए आचार्य कहते हैं कि यह आर्त्तध्यान बहुत बड़ा अपने अंदर एक संस्कार डाले हुए है, धर्म तो बहुत दूर है। अभी धर्म करने की इच्छा होती है उसके भी फल से हमें यही आर्त्तध्यान की चीजें प्राप्त करने की इच्छा हो जाती है। आचार्य ने सबसे बड़ी पहचान बता दी- आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान क्या है। इस लोक संबंधी कुछ भी इच्छा करोगे वो सब आपके लिए आर्त्तध्यान होगा। तीर्थंकर क्यों बनना चाहते हैं आप, यह बताओ, नहीं महाराज! तीर्थंकर बनने से ही तो मुक्ति मिलेगी।

अरे मुक्ति मिलने के तो तरीके दूसरे भी हैं, तीर्थंकर बनने का मतलब तुम अपने तीर्थ की प्रवृत्ति करने की इच्छा कर रहे हो, लोग हमको तीर्थंकर माने- यह इच्छा कर रहे हो, हमारे चारों ओर अष्ट प्रातिहार्य लगे हो; यह इच्छा कर रहे हो या हमारा समवसरण लगे, यह इच्छा कर रहे हो तो इस इच्छा में क्या बैठा है? आपका अहं बैठा है। अगर आपकी भगवान बनने की इच्छा हो जायेगी तो इस अहं से हो जायेगी। इसलिए 'णमो अरिहंताणं'- कहा जाता है, 'णमो तित्थयराणं' नहीं कहते हैं। मतलब कि हमें अरिहंत बनना है, यह इच्छा करो तो ठीक है, तीर्थंकर बनो, यह इच्छा क्यों करते हो, आचार्य बनो यह इच्छा क्यों करते हो, अपने अन्दर यह इच्छा करो कि हमें रत्नत्रय की प्राप्ति हो, हमारी आत्मा के अन्दर अरिहंत भगवान के गुण उत्पन्न हो। जिनेन्द्र भगवान के गुणों की संपत्ति मिल जाये। गुण अदृश्य होते हैं। आपने संसार की इच्छा की और संसार की इच्छा करने का मतलब यह है कि आपने आर्त्तध्यान किया। उसके पीछे आप कितने भी बहाने बनाये वो सब आर्त्तध्यान कहलायेगा। अहं से जब तक आपका ध्यान चलेगा तब तक आपका आर्त्तध्यान है।

इसलिए उस ऋषि ने उस शिष्य से कहा- तू जा तो रहा है लेकिन हमें दक्षिणा दे जा और वो चीज दे जा जो सबसे ज्यादा बेकार है, व्यर्थ की है जिससे आज तक तुझे कुछ मिला नहीं है। जब

तू उसको छोड़ देगा तो तुझको सब कुछ मिलना शुरू हो जायेगा। अहं छोड़ा तो सब कुछ मिलना शुरू होगा और उस अहं से ही सब कुछ जुड़ा हुआ है और वह अहं हमारे अन्दर उसी खली की तरह उन्हीं पदार्थों में दृष्टि पहुँचा देता है। उसी में हमें यह महसूस करा देता है कि हम उसी के कारण तो बड़े हैं, इसी के कारण ही तो हमारी reputation है। इसी के कारण तो हमारी कुछ आज value है। यह सब चीजें बस अहं के कारण से आती है और जब यह अहं छूटेगा तो वह गुरुकी दक्षिणा उस गुरुको मिल जाएगी और उस शिष्य का भी भला हो जाएगा। व्यर्थ की खली में यह आदमी उलझा हुआ है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि एक तरफ दिव्य चिन्तामणि रत्न है और एक तरफ यह खली का टुकड़ा है। चिन्तामणि दिव्य रत्न प्राप्त करना है तो आँखें बन्द करना और खली का टुकड़ा पाना है तो आँखें खोलकर प्रसन्न होना। जब भी आपकी उस चिन्तामणि की ओर दृष्टि पड़ेगी तो आपको आँखें बंद करनी पड़ेगी, महसूस करना पड़ेगा। इसलिए एक भजन में यह बात लिखनी पड़ी **''आत्मा में रस नहीं है लेकिन फिर भी उससे बढ़कर के कोई दूसरा रस नहीं है।''** बड़ा अजीब है वो रस, वो रस जिनको आने लग जाता है उनको सब रस खारे लगते हैं।

''रस विहीन आतम रस अनुपम, निज अनुभव रसिया रे॥ ''

कौन है उसका रसिया, रसिक, उसका रस पान करने वाला जो अपना अनुभव करे, निज अनुभव करे। निज अनुभव में ही आनन्द आये, अपनी ही चेतना के साथ जुड़ने में जिसको आनन्द आये वह उसका अनुभव ही ऐसा रसमय बन जाता है उसको अन्य चीजों में रस नहीं आता, ऐसा रस है। एक बार रस लग जाये मुँह में तो सब रस छूट जायेगा। शेर के लिए कहा जाता है कि शेर की दाढ़ में एक बार खून लग जाये तो वह खून ही चाहता है, ऐसे ही संसारी प्राणी की दाढ़ में विषय भोगों के रस लगे हुए हैं बस वह उन्हीं को चाहता है। एक बार उसे उस रस से लगन लग जाये जो निज अनुभव से अपना रस प्रकट होने लगे कि मेरी चेतना में जो रस है वो चेतना के रस के अलावा बाकी के रसों में तो रस आता ही नहीं है। जिस दिन आपको ऐसे सुख की अनुभूति होगी, ऐसी निश्चिंतता, निर्विकल्पता की अपनी आत्मा में अनुभूति होगी उस दिन समझना कि चेतना से कुछ रस बह गया। वह रस ही कहलाता है। ''निज अनुभव रसिया रे''।

''रस विहीन आतम रस अनुपम
निज अनुभव रसिया रे
एक बार चाखें जा रस जो
लगे भोग रस प्यारे
अरिहंत भजन कर प्यारे-
अरिहंत भजन कर प्यारे''

अहं ही हमारी दृष्टि आत्मा से हटाकर सांसारिक पदार्थों में लगा देता है।

यह अरिहंत भगवान के भजन करने से अपना भजन अपने आप होने लग जाता है। आत्मा का रस उन्हीं को देखने से आयेगा जिनकी आत्मा में यह रस उत्पन्न हुआ है। इसलिए उन अरिहंत भगवान को देखकर के भी चिन्तामणि रत्न को याद कर सकते हैं अगर हमारी दृष्टि में आ जाये कि यही तो चिन्तामणि रत्न है। उन्हीं की ओर हमारी दृष्टि लग जायेगी तभी हमारी आत्मा की ओर दृष्टि आ जायेगी और वो चिन्तामणि रत्न का ही विवेकी पुरुषों को आदर करना चाहिए। आदर करने का मतलब यही है कि आप लोगों को अपने अंदर respect की भावना, किसके अंदर अपने अंदर, अपने attitude में respect करना। जैसा आपका बाहर के भोगों के प्रति, बाहरी वस्तुओं के प्रति respect का भाव रहता है ऐसा ही respect का भाव आत्मा के लिए हो। ऐसा ही आदर का भाव अपने चेतन तत्त्व के लिए हो। 'अहो' मुझे आज आत्म तत्त्व उपलब्ध हो रहा है। ''अहो आज मेरा जीवन धन्य हो गया।'' ''अहो आज मुझे आत्मा की दृष्टि करने का सौभाग्य मिल गया।'' ऐसा अहो भाव आपके अन्दर बैठकर के अपने आप आने लग जाये। 'अहो' इस चैतन्य आत्मा को तो मैंने कभी अनादि से अनन्त पर्यायों में कभी समझा ही नहीं। मेरी दृष्टि केवल इस शरीर और शरीर के आश्रित चीजों पर ही रही, अहो आज मेरा जीवन धन्य हुआ, आज मेरे अन्दर चेतना का अनुभव हुआ, यह जो आपके अन्दर अहो भाव आयेगा, यही उसके प्रति विनय का भाव कहलायेगा। जैसे आपके घर में रिश्तेदार आता है तो आप कैसे गले लगाते हो। आ हाँ–हाँ–हाँ पूरा का पूरा शरीर खिल जाता है, मन खिल जाता है, अरे आप आ गये। जैसा अहो भाव हमारा दूसरों के प्रति है कभी एकान्त में बैठकर के ऐसे ही अहो भाव से ''अहो आज मुझे मेरा आत्मा मिल गया'', ''आज मुझे मेरी अनुभूति मिल गई'' ऐसे अहो भाव से जब तुम भरोगे तब तुम्हें इस चिन्तामणि के प्रति आदर पैदा होगा, नहीं तो तुम इस चिन्तामणि से कौए उड़ा रहे हो कौए। हाँ कौए जिसको झपट रहे हैं उसी को आपको झपटना है और जब वो हटेंगे तब आप झपट पाओगे इसलिए उनको हटाने के लिए आपको पत्थरों की जरूरत पड़ती है और वो पत्थर कहाँ मिलेंगे? सो वो चिन्तामणि को ही आप पत्थर समझ के उसके ऊपर फेंक देते हो, चिन्तामणि की तरह सब कुछ उल्टा–पुल्टा चल रहा है। कई बार आप उल्टे–पुल्टे सीरियल देखते हो, यह भी एक सीरियल चल रहा है, सब कुछ उल्टा–पुल्टा चल रहा है। जो वास्तविक रत्न है उसको हम ignore कर रहे हैं, उसके प्रति no respect, no value. और जिसमें कुछ नहीं उसी के प्रति हमारी आवभगत चल रही है। कभी आपने अपनी अन्तर आत्मा को इतने अहो भाव के साथ में ग्रहण किया नहीं कि अब सीखना है। ध्यान से दूसरों को भी ग्रहण किया जाता है और ध्यान से अपने को भी ग्रहण किया जाता है, ध्यान से ही दोनों चीजें ग्रहण की जाती है। आपने अभी तक जो ध्यान किया वो सब आर्त्तध्यान किया रौद्रध्यान किया। अब आगे के दिनों में आपके लिए आपको ही ग्रहण करने का

स्वयं के प्रति आदर और स्वयं को ग्रहण करने का भाव ही धर्मध्यान है।

भाव पैदा करूँगा। आपके ही अन्दर आपका ही आदर पैदा करने की कोशिश करूँगा और उसी का नाम है धर्मध्यान। ग्रहण करो, अपने आपको बड़ा आनन्द आयेगा, कोई चिन्ता किसी की मत करो, दुनियाँ में हर चीज अपने आप चल रही है, हर चीज अपने आप बन रही है, हर किसी का पालन-पोषण अपने आप हो रहा है, तुम सिर्फ अपने ऊपर दृष्टि डालो। बहुत बड़ा अहसान हो जायेगा तुम्हारा अरिहंतों के ऊपर, गुरुओं के ऊपर, जिनवाणी के ऊपर और जिनवाणी क्या चाहती है? तुमसे यही चाहती है जब तुम किसी की बात मानोगे तो तुम्हारा उसके ऊपर अहसान हो जायेगा। चलो, अहसान ही सही, अभी तक हमने अहसान ही किया है, दूसरों के ऊपर, छोटे-छोटे लोगों के ऊपर, मैंने तुझे यह दे दिया, मैंने तेरे लिए यह किया, मैंने तेरा इतना भला किया। अब तक छोटे-छोटे लोगों पर अहसान किया अब बड़े लोगों पर अहसान करो। जिनवाणी पर अहसान करो, देख जिनवाणी मैंने तेरी बात मान ली, ऐसे ही बोलो। गुरुओं पर अहसान करो, मैंने आपकी बात मान ली, अरिहंतों पर अहसान करो, हे भगवन्! आपने जैसा कहा मैंने वैसा ही किया, आपके ऊपर मैंने अहसान किया ऐसा भी भाव कर लोगे तो भी तुम्हारा भला हो जाएगा क्योंकि एक बार किसी की बात से भला हो जाये बस वो चीज बड़ी मुख्य है। **अपने अंदर ऐसी दृष्टि पैदा करने के** लिए आगे ध्यान के दिन आने वाले हैं।

''ध्यानेन चेदुभे लभ्ये क्वाद्रियन्तां विवेकिनः''

मतलब सब चीजें बड़ी व्यवस्थित चल रही हैं। बस आप व्यवस्थित हो जाओ। सब चीजें समय से पूरी होंगी, समय से सब कुछ होगा। बस आप थोड़ा व्यवस्थित होने का भाव करोगे तो आगे आने वाले यह जितने भी भाव हैं इन्हीं भावों से आपको ध्यान कराएंगे। आपके लिए आज जो पढ़ने में आ रहा है इसी का अनुभव करने की दशा में आयेंगे और वह ध्यान से ही हमारे अन्दर सूक्ष्म चीजें अदृश्य चीजें हमें अनुभूत हो सकेंगी क्योंकि बिना ध्यान के ज्ञान से हमें केवल ऊपर-ऊपर की स्थूल चीजें अनुभव में आती हैं इसलिए ध्यान का भी बड़ा महत्व है।

बस आप व्यवस्थित हो जाओ, सब चीजें व्यवस्थित हो जायेंगी।

ध्येय का स्वरूप

21

स्वसंवेदन-सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यन्त-सौख्यवानात्मा लोकालोकविलोकनः॥

अन्वयार्थ—(आत्मा) यह आत्मा **(स्वसंवेदन-सुव्यक्तः)** आत्म-अनुभव द्वारा स्पष्ट प्रकट होता है/जाना जाता है **(तनुमात्रः)** शरीर के बराबर है **(निरत्ययः)** अविनाशी है **(अत्यन्तसौख्यवान्)** अनन्त सुख वाला है तथा **(लोकालोक- विलोकनः)** लोक और अलोक को जानने-देखने वाला है।

- **लोक क्या है ?**
- **आत्मा का स्वरूप**

पिछले श्लोक में आचार्य पूज्यपाद महाराज ने बताया था कि यह एक तरफ चिंतामणि द्रव्य है जो दिव्य है और एक तरफ आपके सामने खली का टुकड़ा है जिसे आप पिण्ड कहते हैं और इन दोनों चीजों में से आप कोई भी चीज प्राप्त कर सकते हैं। अगर आपको चिंतामणि दिव्य रत्न प्राप्त करना है जिससे आपकी सब चिंताएँ दूर हों। हमेशा के लिए आपको सुख की प्राप्ति हो तो उस चिंतामणि दिव्य-रत्न के बारे में थोड़ा-सा जान ले। उस दिन आपको यह नहीं बताया था कि चिंतामणि दिव्य-रत्न कौन-सा है। यह तो बताया था कि उसका स्वभाव कैसा है? उसके बारे में और जानने की इच्छा हो तो आचार्य देव यहाँ कहते हैं आत्मा के स्वरूप को, आत्मा के स्वभाव को थोड़ा सा और अच्छे ढंग से समझ सकते हैं।

यह जो आत्मा है वह अनेक गुणों को धारण करने वाला है। अपने-आप में वह एक स्वतन्त्र द्रव्य है और उस आत्मा के जो गुण हैं उन गुणों में मूलभूत जो मुख्य गुण हैं जिनके माध्यम से आप आत्मा की विशेषता को समझ सकें। यहाँ आचार्य महाराज ने एक श्लोक में ही उन गुणों को रखने का प्रयास किया है।

'लोकालोकविलोकनः'

सबसे पहले यहाँ से शुरू करना है वह आत्मा लोक और अलोक को देखने और जानने वाला है। आत्मा केवल उतना ही देखने जानने वाला नहीं है, जितना अभी देखना और जानना हो रहा है। आत्मा उस लोक और अलोक सभी को पूर्ण रूप से जानने वाला है।

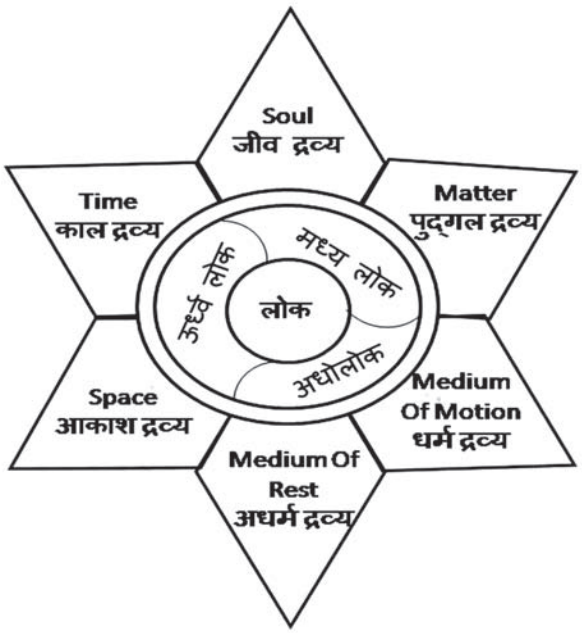

लोक क्या है ?

तीन लोक में जो कुछ भी भरा हुआ है वह लोक कहलाता है। नीचे अधोलोक है, बीच में मध्यलोक है और उससे भी ऊपर ऊर्ध्वलोक है। इन तीनों लोकों में छह द्रव्य रहते हैं। छहों द्रव्यों में जीव द्रव्य की मुख्यता है। सभी जीव द्रव्यों को वह आत्मा जानने और देखने के स्वभाव वाला है। सबको एक साथ जान व देख सकता है। यह तो लोक की बात हो गई। इस लोक के बाहर केवल **अलोक** है। जहाँ पर

आत्मा लोक और अलोक को देखने और जानने वाला है।

अन्य द्रव्य नहीं है। केवल आकाश ही आकाश है या अनंत आकाश है उस अनंत आकाश को भी यह आत्मा जानता है, देखता है।

आपसे पूछा जाये कि क्या आप आकाश को देख सकते हो, जान सकते हो? आप भी इसी धारणा में रहते हो कि आकाश जो है वो नीला होता है और यह जो हमें दिखाई दे रहा है यह आकाश है। जितना भी खाली स्थान दिखाई दे रहा है वो आकाश है। वस्तुतः तब भी आप आकाश को नहीं देख पा रहे हो। जो आकाश वास्तव में, आकाश द्रव्य के रूप में है वो आपको दिखाई नहीं दे सकता। यह तो विज्ञान के द्वारा माना हुआ आकाश है। जैन-दर्शन के अनुसार माना हुआ यह आकाश नहीं है। इस आकाश का रंग, अगर आपने नीला कह दिया तो आचार्य कहते हैं आकाश द्रव्य का कोई रंग नहीं है। इस आकाश द्रव्य का कोई रंग नहीं है क्योंकि छह द्रव्यों के बारे में विचार करते हैं और उसको जैसा भगवान की वाणी में कहा गया है वैसा स्वीकार करते हैं तब वो हमारी श्रद्धा का विषय बनता है। वह आकाश द्रव्य है उसके स्वभाव क्या है? उसका गुण क्या है? और वह आकाश द्रव्य हमें दिखाई देता है या नहीं दिखाई देता है? उसके अन्दर कैसा परिणमन चलता है? यह सब कुछ जब आपके ज्ञान में आयेगा तभी आपके अन्दर उस आकाश द्रव्य का सही श्रद्धान होगा। यह जो दिखाई दे रहा है वह सब आकाश द्रव्य नहीं है क्योंकि आकाश द्रव्य का कोई रंग नहीं है। छह द्रव्यों में सिर्फ पुद्गल द्रव्य का ही रंग होता है।

जिस जीव को, जिस आत्मा को जैसा भगवान के द्वारा कहा हुआ है उसका जैसा स्वभाव है वैसा तो हमने जाना ही नहीं और कभी वह जानने में भी आया तो अन्य-2 लोगों के द्वारा जैसा जीव और आत्मा के बारे में कहा गया वैसा ही हमने जान लिया है। अब वो संस्कार हटाकर के उसे ऐसा जानना जैसा कि जिनवाणी में कहा जा रहा है। जीव का कोई रंग नहीं है। एक मात्र पुद्गल द्रव्य का रंग होता है। विशेषताओं के साथ आप अगर ज्ञान करोगे तो वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान की ओर ढलता चला जायेगा। जब आपके दिमाग में छह द्रव्यों की विशेषताएँ आयेंगी कि इन छह द्रव्यों में से केवल एक द्रव्य में रंग होता है, बाकी किसी में रंग नहीं है। जो भी दिखाई दे रहा है वह सब पुद्गल द्रव्य का रंग है। जब आकाश-द्रव्य में रंग नहीं है तो यह कहना कि आकाश नीला है तो यह गलत है। लेकिन हम फिर भी जो पढ़ते हैं वही दिमाग में रहता है। अब अपने दिमाग में वो भी लाना जो भगवान के द्वारा कहा गया है, उसके अनुसार अपनी धारणा बनाना। जो बुद्धि हमारे ऊपर हावी रहती है उसे साइड में रख देना। यह जो पुरुषार्थ है उसी से आपका सम्यग्ज्ञान रुकेगा, ठहरेगा। इसलिए इन द्रव्यों के स्वभाव को भी बार-बार सोचना और यह जानना कि आकाश द्रव्य का रंग नहीं होता है।

आकाश द्रव्य आपको दिख नहीं सकता क्योंकि आँख का काम रंग रूप को देखना है और जिसमें रंग रूप नहीं है उसको आँखें देख ही नहीं सकती हैं। सब एक दूसरे से सिद्ध होते चले जाते हैं। उसको इन्द्रिय नहीं जान सकती, बुद्धि जान सकती है, ज्ञान जान सकता है। श्रुतज्ञान के द्वारा

आकाश द्रव्य रंग-रूप रहित है इसलिये आँखों द्वारा नहीं देखा जा सकता।

जान सकते हैं, मतिज्ञान नहीं जान सकता। मतिज्ञान इन्द्रिय और मन की सहायता से होता है। श्रुतज्ञान केवल मन से होता, इन्द्रियों का कोई उपयोग ही नहीं।

यह जो खाली दिखाई दे रहा है आकाश द्रव्य नहीं है। आकाश द्रव्य सभी को स्थान देता है। उसके अन्दर एक अवगाहन गुण होता है जो सब द्रव्यों को मुफ्त में रहने देता है, जगह देता है। आप उस जगह को नापकर के दूसरों को बेच सकते हो लेकिन वो कभी आपसे कुछ कहने वाला नहीं है। यह मुख्य गुण उस आकाश द्रव्य का है जो सबको स्थान दे रहा है। वह कभी भी आपकी पकड़ में आने वाला नहीं है। जो यह दिखाई दे रहा है यह सारा का सारा पुद्गल का परिणाम दिखाई दे रहा है। यह खाली भी अगर दिखाई देगा तो वह पुद्गल द्रव्य है। अगर यहाँ लाइट बन्द कर दी जाये, बिलकुल अँधेरा कर दिया जाये तो फिर क्या दिखेगा?

आकाश दिखता तो वह बाद में भी दिखाई देता। अँधेरा दिखाई देगा। अँधेरा भी कोई चीज है। अँधेरा भी पुद्गल द्रव्य का ही परिणाम है। जैसे प्रकाश है वैसे अँधकार भी पुद्गल द्रव्य का परिणाम है। छह द्रव्यों के नाम तो बहुतों को याद होंगे लेकिन थोड़ा सा उनके स्वरूप का विवेचन सुनकर उन पर श्रद्धान करो। इसी श्रद्धान से आपको सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होगी क्योंकि आचार्यों ने कहा है छह द्रव्यों के श्रद्धान से सम्यग्दर्शन होगा, तब ही आपको आत्मा का ज्ञान होगा। फिर, आप आत्मा के विषय में भी भ्रमित नहीं होंगे। जो कहा जा रहा है कि आत्मा कैसा है? लोक और अलोक के स्वभाव को जानने वाला है यानि इस आत्मा के अन्दर इतनी क्षमता है कि पूरे तीन लोक के सब जीवों को, सब पुद्गल पदार्थों को, यहाँ तक कि सभी द्रव्यों को एक साथ यह जान सकता है, देख सकता है। यह लोक और अलोक को जानने का स्वभाव अपनी आत्मा में है। ऐसा नहीं है कि यह केवल सिद्ध भगवान को ही दिखता है, केवल उन्हीं के लिए हो गया। अपने पास भी सब कुछ है क्योंकि जैसा सिद्ध भगवान का स्वभाव है वैसा ही अपना स्वभाव है। इसलिए कहा जाता है–

''सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया''

हम भी शुद्ध नय से शुद्ध हैं क्योंकि हमारे अंदर वह शुद्ध होने की शक्ति विद्यमान है। जीव के लिए ही कहा जायेगा कि वह जीव शुद्ध-नय की अपेक्षा से शुद्ध है, यह पुद्गल के लिए नहीं कहा जायेगा। क्योंकि उसमें वह सिद्ध भगवान की तरह शुद्ध होने की शक्ति नहीं है। देखने जानने का स्वभाव उसके अंदर नहीं है। वह स्वभाव जिसके अंदर है उसी के लिए कहा जायेगा कि यह द्रव्य भी अपने अंदर इतनी शक्ति रखता है कि यह सभी द्रव्यों को एक साथ जान सकता है, देख सकता है। इसलिए हम भी सिद्ध भगवान के समान शुद्ध हैं। हमारे अंदर शुद्ध ज्ञान और चेतना है। हमारे अंदर भी ज्ञान और दर्शन से सभी पदार्थों को देखने की क्षमता है। इसलिए कहा जाता है–

'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया'

आकाश द्रव्य अवगाहन गुण के कारण सभी को रहने का स्थान देता है।

यानि आपके अंदर भी लोक और अलोक को देखने की क्षमता है। जब आत्मा के स्वभाव का चिंतन करो तो अपने लिए यही गुण आत्मा के स्वभाव के चिंतन के लिए लाओ। वो यह दिव्य रत्न है जिसका यह स्वभाव है, उसकी क्वालिटी है लोक और अलोक को जानना और देखना। यह अपने आप में इतनी बड़ी चीज है कि दुनियाँ में कई लोग हैं जो आत्मा को तो मानते हैं लेकिन उस आत्मा के बारे में कुछ नहीं जानते हैं।

एक सांख्य मत होता है जो कहता है कि आत्मा तो है लेकिन आत्मा ज्ञान से शून्य होता है। जब आत्मा शुद्ध हो जाता है तो वह केवल चेतना मात्र रह जाता है। उन्होंने आत्मा को तो माना लेकिन सही स्वरूप उनके ज्ञान में नहीं आया। ऐसे ही योग मत वाले होते हैं। नैयायिक और वैशेषिक अनेक मत मतान्तर हैं। वे भी आत्मा को मानते हैं लेकिन उनका कथन है कि आत्मा में बुद्धि आदि विशेष गुणों का अभाव होता है। वे कहते हैं-

जब तक आपकी बुद्धि चल रही तब तक आत्मा नहीं है और जब आपकी बुद्धि शान्त हो जायेगी या समाप्त हो जायेगी तो आत्मा रह जायेगी। बस, उसका नाम ही शुद्ध-आत्मा है। ऐसे अनेक-अनेक प्रकार की कल्पनाएँ आत्मा के स्वरूप लिए हैं और उन कल्पनाओं में वे ही रहते हैं। लेकिन यहाँ पर आपको यथार्थ बताया जा रहा है। ना तो आत्मा कभी ज्ञान से शून्य होता है ना आत्मा कभी बुद्धि आदि गुणों से शून्य होता है। यह बात अलग है कि उस आत्मा के अन्दर जो अभी ज्ञान देखने में आ रहा है वहाँ ऐसा ज्ञान नहीं रहता। उस आत्मा के अन्दर शांत और विशद ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। जब आप इस मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से किसी चीज को जानते हैं तो आपके अंदर आकुलताएँ रहती हैं। आपके अंदर अनेक प्रकार के परिणाम उसकी इच्छा के रूप में रहते हैं। जब किसी चीज को केवलज्ञान के माध्यम से जाना जाता है तो उस केवलज्ञान में कोई आकुलता का परिणाम नहीं रहता है। वह ज्ञान बिलकुल शांत होता है। जो लोग अपने मन में तत्त्व की कल्पना करते हैं, आत्मा की कल्पना करते हैं उन्हें ऐसा लगता है कि अपना ज्ञान शून्य हो गया। जबकि उस समय पर अपने विचार-शून्य हो जाते हैं। वास्तव में ज्ञान तो आत्मा का स्वभाव है कभी भी शून्य नहीं हो सकता, विचार-शून्य हो जाता है। वो विचार मन की परिणति है। ज्ञान का संवेदन तो आपको होगा ही। इसलिए जिनको यह आत्मतत्त्व समझ में नहीं आया, ऐसे बहुत से लोग हैं जो इस दुनियाँ में जो आत्मा को मानते हैं लेकिन यथार्थ स्वरूप में जैसा कहा गया है वैसा नहीं मानते। आपको जिनदर्शन में जन्म लेने के बाद भी आत्मा के सही स्वरूप का ज्ञान नहीं है। कम से कम जिन लोगों को मिला नहीं तो जैसा तैसा कुछ ज्ञान तो प्राप्त कर रहे हैं। आपसे तो अच्छे ही हैं इस मायने में। लेकिन उनका ज्ञान अगर उल्टा हो गया उनकी धारणा उल्टी बन गई तो वो आपसे इस मायने में गलत ठहरायेंगे क्योंकि आप तो कम से कम सही चीज को जान सकते हो।

आत्मा का स्वरूप :

इसलिए आचार्य कहते हैं आत्मा के स्वरूप को समझो और वो स्वरूप समझने के लिए जितने भी title दिये जा रहे हैं उन्हें बिलकुल याद रखना। जब आप आत्मा का ध्यान करो, आत्मा

का चिन्तन करो तो इन्हीं शब्दों के उपयोग अपने को करने पड़ते हैं क्योंकि बिना आलम्बन के आपको अपनी आत्मा की धारणा बनेगी ही नहीं। उसके इन गुणों के माध्यम से श्रद्धान करना कि आत्मा इस लोक-अलोक को जानने और देखने वाला है। कुछ लोग कहते हैं कि आत्मा है और वह एक ही आत्मा पूरा व्यापक रूप में सर्वत्र फैला रहता है। बाकी यह आत्मा के टुकड़े हैं, अंश हैं। आचार्य कहते हैं ऐसा नहीं होता। हर आत्मा अपना स्वयं है, अलग है, अपना अलग द्रव्य है। 'एक ही भगवान है, सत्यं ब्रह्म, एक ही ब्रह्म है, बाकी सब उसी के Reflection हैं।' यह ब्रह्म को मानने वाले वेदान्ती आत्मा की इस प्रकार की धारणा रखते हैं। आपको अपनी आत्मा के विषय में Perfect Knowledge होनी चाहिए। वह Knowledge ऐसी होनी चाहिए कि उसमें आपके अंदर कभी भी कोई भी श्रद्धा में बिगाड़ ना आये। आत्मा तो अपना जैसा है वैसा ही सिद्धों का है और वैसा ही हर जीव का आत्मा है। कोई किसी का Reflection नहीं है। कोई किसी का अंश नहीं है। सब अपने आप में पृथक्-2 द्रव्य हैं और हर आत्मा के अंदर लोक और अलोक को जानने की और देखने की क्षमता है। यह जब आपके ज्ञान में आयेगा तो आप अपनी आत्मा में स्वयं भावना करोगे। यह भाव करते ही आपके अंदर ज्ञान विशाल होता चला जायेगा। आपके अंदर क्षुद्र कल्पनाएँ मिथ्या ज्ञान सब छूट जायेंगे। चिंतन, मनन से ही यह इस तरह की आत्मज्ञान की शक्तियाँ प्रकट होती हैं।

पहली Quality आत्मा की है-लोक-अलोक को जानने और देखने वाला। जब अरिहंत भगवान बन जाते हैं तो फिर भी आँखों से कुछ नहीं देखते, ज्ञान से देखते हैं। आँखें उनकी खुलती ही नहीं हैं। आँखों से देखना भी कष्टकारी होता है। यह तब समझ में आयेगा जब आपको आँख बंद करने के बाद में शांति मिलती है। आपको कुछ क्षण के लिए अनुभव हुआ होगा कि आँखें खोलने में भी कष्ट होता है। इससे आप अनुमान लगा सकते है कि वह शांति, वह सुख कितना गहरा होगा जिसे हम अनंत सुख, अनंत शांति कहते हैं। उसका यह एक अंश भी हमको नहीं मिल पाता है और उसी में हमें ऐसा लगता है कि न जाने हमने कैसा अनुभव कर लिया? कितनी ऊर्जा आ गई?

हम जो अनंत का ज्ञान कर रहे हैं, अनंत का अनुभव कर रहे हैं उनके अंदर इसी प्रकार का परिणमन हो जाता है कि वे फिर किसी भी चीज को उनके अंदर देखने की इच्छा ही नहीं रह जाती। जैसे हैं, वैसे ही अपने स्वभाव में निमग्न रह जाते हैं। इच्छा समाप्त हो जाती है और अपने आप उनकी आत्मा में सब कुछ Reflect होता है।

कितना उल्टा सब कुछ श्रद्धान चलता है। जब आप एक ब्रह्म की कल्पना करेंगे कि दुनियाँ में एक ब्रह्म आत्मा है तो उसका Reflection सब जगह पड़ रहा है और उसमें हमें अनेक रूप दिखाई दे रहे हैं। इधर सर्वज्ञ भगवान्, जैन दर्शन कहता है कि जब आपका ज्ञान केवलज्ञान बन जायेगा तो सब कुछ आपके ज्ञान में Reflect हो जायेगा।

हर आत्मा अपने आप में पृथक्-पृथक् द्रव्य है।

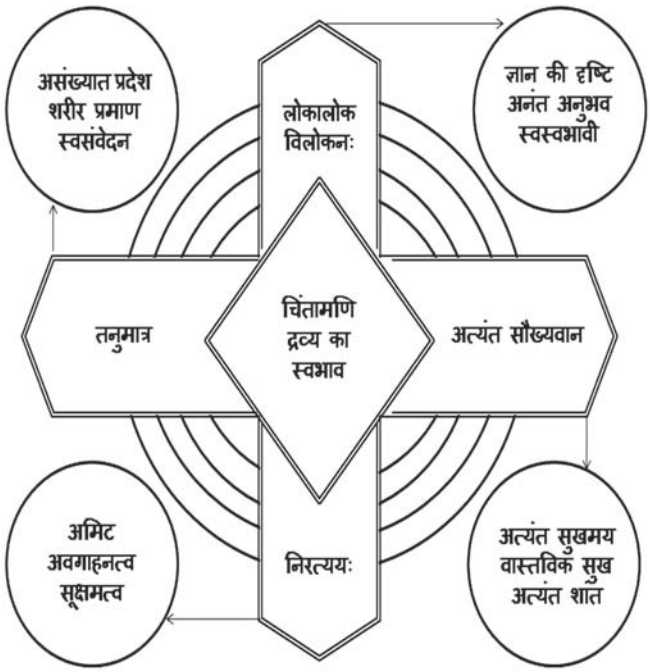

अगर आपने उस ब्रह्म का श्रद्धान किया तो आपका ज्ञान व श्रद्धान उल्टा हो गया। आपको उस आत्म-तत्त्व की उपलब्धि कभी नहीं हो सकती। जब आप उपनी आत्मा का श्रद्धान करेंगे तो आपको अपने आत्म-तत्त्व की उपलब्धि होगी और उसी में सब कुछ उपलब्ध होगा। आपको कुछ भी देखने और जानने के लिए कोई प्रयास करना ही नहीं पड़ेगा। सब कुछ आपके ज्ञान में स्वयं आयेगा, स्वयं झलकेगा।

यह आत्मा का स्वरूप विश्वास में लाने के लिए है और यह विश्वास तभी होगा जब आप उसके बारे में जानेंगे। जानने के लिए कि आत्मा में तीन लोक के अंदर अनंत जीव हैं, अनंत पुद्गल पदार्थ हैं ये सब कुछ अपनी आत्मा में अपने आप Reflect होगा। इसका नाम परम ब्रह्म की दशा, शुद्ध आत्मा की दशा, जिस शुद्ध आत्मा में सारा लोक और अलोक अपने आप बैठे-2 ऐसे दिखता है जैसे आप निर्विकल्प होकर अपने सामने TV या Projector देखते रहते हो। इसमें दो चीजें हैं- दिखाई देने वाली और देखने वाली। लेकिन जब यह स्थिति अयेगी कि 'लोकालोक विलोकनः' तो उसमें सब कुछ एक होगा, वही देखने वाला होगा और उसी में दिखने वाला होगा। सब एक में समाहित होगा। वही ज्ञान करने वाला होगा और उसी के अंदर सारा ज्ञान होगा। जितने भी ज्ञेय पदार्थ होंगे सब उसी में झलकेंगे। ऐसे आत्मा का स्वभाव भी दर्पण की तरह निर्मल हो जाता है। उस आत्मा में यह लोक-अलोक सब स्पष्ट झलकने लग जाते हैं। आप भी थोड़ी सी अगर ऐसी कल्पना में बैठ जायें तो अपको आनंद आना शुरू हो जायेगा।

आत्मा का स्वरूप-जिस स्वरूप का हम शान्ति के साथ में चिंतन करें तो आत्मा की पहली Quality है- **'लोकालोक विलोकनः'**

अत्यन्तसौख्यवान् अर्थात आत्मा-यह आत्मा की दूसरी Quality है- आत्मा अत्यन्त सुखमय है। सुख जैसी कोई चीज है तो बस, वो आत्मा में है और आत्मा के अलावा सुख कहीं

केवलज्ञान होने पर आत्मा का स्वभाव दर्पण की तरह निर्मल हो जाता है।

भी नहीं है। जो हमें अन्य कहीं सुख प्रतिभासित होता है वो सब सुखाभास है। उसको सुख की कल्पना कहते हैं। हमने जहाँ कहीं पर भी सुख मानकर रखा है या सुख की कल्पना करके रखी है वह वास्तविक सुख नहीं है। यह Reflection है जो वास्तविक नहीं होता।

हम हमेशा सुख की परछाई को पकड़ते हैं। सुख को नहीं पकड़ पाते क्योंकि सुख जहाँ है वहाँ तो हमें पता ही नहीं है। सुख जहाँ से शुरू होता है वह चीज मूल में छूट जाती है। उसके पीछे जो एक भ्रमणपूर्ण लाइट हमारे इन्द्रिय ज्ञान की पड़ जाती है वह उसका Reflection बाहर की ओर डाल देती है तो हमारा मन उसको पकड़ने के लिए ही दौड़ता है। इसका नाम है 'सुखाभास' या सुख की कल्पना।

हमने जहाँ कहीं पर भी सुख की कल्पना की है वह सिर्फ एक कल्पना हमने अपने दिमाग में कर रखी है। उसी के अनुसार हम चलते हैं। वास्तविक सुख कहाँ है ? आचार्य कहते हैं 'अत्यन्त सौख्यवान् आत्मा'। अत्यन्त का मतलब बहुत ज्यादा, लबालब भरा हुआ। जैसे कोई Tub पानी से पूरा भर जाता है वह लबालब कहलाता है। ऐसे लबालब भरे हुआ आत्मा के एक-2 प्रदेशों में वह सुख भरा हुआ है। वह सुख आत्मा का स्वभावभूत सुख है। सुख की जो कुछ भी परिकल्पना होती है वह तो इन्द्रियों के माध्यम से होती है। हम इन्द्रियों से जो सुख की अनुभूति करते हैं वो उस सुख का एक Reflection है। उस सुख का एक आभास है। हम उस आभास को ही सुख की परिपूर्णता समझ लेते हैं। जीव आत्मा में ही अनंतसुख है और वह सारा सुख मोह के कारण से दबा हुआ है। उस मोह के थोड़े से अभाव से जो कुछ भी प्रकट हो रहा है बस, उस सुख को हम एक सुख की कल्पना के रूप में जानने लग जाते हैं। वह सुख हमें इन्द्रियों के माध्यम से मिलता है। इसलिए हमारे दिमाग में आ जाता है कि जो इन्द्रियों से मिल रहा है वही सुख है। इसके अलावा कोई सुख है ही नहीं।

यह सुख जो आत्मा के स्वभावभूत है इसकी आपके अन्दर जब धारणा बनेगी तभी आप समझेंगे कि यह जो इन्द्रियों से मिलने वाला सुख है यह उस सुख का ही एक अंश है और वह अंश इस सुख के रूप में प्रतिफलित हो रहा है जो इन्द्रिय सुख कहा है।

लेकिन यह वास्तविक नहीं है। यह उसके एक आभास के रूप में है। जब आभास में इतना सुख है तो वास्तविकता में कितना सुख होगा। जब हमें थोड़ा सा इन्द्रिय सुख का आभास हो जाता है गर्मी लग रही है पंखा चला लिया, जब इस इन्द्रिय सुख में इतना आनंद आ रहा है तो वास्तव में जो सुख जहाँ पर बह रहा है, जहाँ वो सुख अंदर अनंत रूप में पड़ा हुआ है जब खुलेगा उस सुख का स्रोत तो कितना आनंद आपको महसूस होगा, इसकी कल्पना भी आप इस इन्द्रिय ज्ञान और इन्द्रिय-सुख से कर सकते हो। इसको आत्मिक सुख कहते हैं। यह आत्मिक सुख अत्यन्त शान्त होता है। जब तक किसी भी प्रकार की उथल-पुथल है तब तक आत्मिक सुख नहीं है। यह सुख जो होगा वह हमारे कर्म से उत्पन्न होने वाले सुख से भी रहित होगा। हम जितना भी सुख और दुख

साता और असाता कर्म के उदय से उत्पन्न हुए सुख और दुख को हम महसूस करते हैं।

महसूस करते हैं वो सब कर्म के उदय से उत्पन्न हुआ सुख और दुख है। साता वेदनीय कर्म के उदय से उत्पन्न हुआ साता का परिणाम हमारे लिए सुख कहलाता है। असाता वेदनीय कर्म के उदय से उत्पन्न हुआ असाता का परिणाम हमारे लिए दुख कहलाता है। साता और असाता कर्म हैं और इन दोनों कर्मों के उदय से उत्पन्न हुआ सुख और दुख का हम वेदन करते हैं। कर्म से रहित जो आत्मा का सुख है उसका तो कभी हम वेदन कर ही नहीं पाते क्योंकि हम कर्म से रहित अवस्था में पहुँचे बिना उसका संवेदन कर ही नहीं सकते।

इसलिए आत्मा का सुख अगर आपको समझना है तो वह कर्म से रहित अवस्था में प्राप्त होगा। अभी तो आपको उसका केवल आभास ही हो सकेगा। यहाँ यह बताया जा रहा है कि आत्मा अनंत सुख स्वरूप है।

अब आप जब भी सुख कल्पना करो या अपने अंदर सुख का आभास करो तो आपकी दृष्टि बाहरी सुख और दुख से परेशान नहीं होनी चाहिए। वास्तविक सुख तो ''अत्यन्त सौख्यवान आत्मा'' है। जिस चीज को हमें पकड़कर अपने पास ले जाना पड़े तब उससे सुख मिले तो वह सुख आत्मा का नहीं कहलायेगा। वह इन्द्रिय का, मन का सुख कहलायेगा, पराश्रित कहलायेगा। लेकिन आत्मा का सुख तो आत्मा में ही है। जो चीज जहाँ है वह वहीं तो मिलेगी। अतः वह आत्मा का सुख कहीं से उठाकर लाने की जरूरत नहीं है। वह आपके पास ही विद्यमान है बस, उस पर एक दृष्टि डालने की जरूरत है। उसके लिए विश्वास उत्पन्न करने की जरूरत है।

जो आपके दिमाग में चढ़ चुका है वो मन है, बुद्धि है और उस मन और बुद्धि में सिवाय कल्पनओं के कुछ नहीं है। परन्तु जो वास्तविक होता है उसमें काई कल्पना नहीं होती। जब तक आप कल्पनाओं को नहीं छोड़ोगे वास्तविकता की ओर पहुँच नहीं सकोगे।

इसलिए आचार्य कहते हैं आत्मा का यह स्वरूप समझो जो वास्तविक है। जिसमें इन्द्रियों की, मन की कोई कल्पनायें नहीं हैं। यह आत्मा का Real Nature है, स्वभाव है। इसको कहते हैं 'अत्यन्त सौख्यवान् आत्मा।' जब तक उस भरे हुए स्वभाव को हम अपने चिंतन का विषय नहीं बनाते तब तक हमें आभास भी नहीं हो पायेगा। इसलिए ज्ञान भी जरूरी है। केवल आत्मा कह लेने से कुछ नहीं होता।

बच्चा भी इस ज्ञान को ले सकता है, बूढ़ा भी इस ज्ञान को ले सकता है। इसके लिए कोई उम्र नहीं है। उम्र की पाबन्दी नहीं है। इसलिए इसमें कोई Class का विभाजन नहीं होता कि आप अभी यही सुनो, यह मत सुनो। थोड़ा भी जानो, विस्तार से भी जानो, संक्षेप से भी जानो, उसकी उत्कृष्टता से भी जानो। हर तरीके से उसको जानो।

आत्मा का वास्तविक स्वभाव यह है कि आत्मा अत्यन्त सुख से भरा हुआ है। अत्यन्त सुखवान है। एक बार यह विश्वास आ जाये तो अपने आप को लगने लगेगा कि यह बाहर का सुख क्या है ? यह सुख तो केवल काम चलाऊ सुख है। जब तक अपनी इन्द्रियाँ काम कर रहीं है तब तक उनका आभास होगा। बहुत अच्छा आपके लिए व्यंजन बनाया हुआ रखा है तो उसे खाने से

इंद्रियों का एवं मन का सुख पराश्रित है, केवल सुखाभास है।

सुख मिल रहा है। एक व्यक्ति को Cancer हो गया तो पूरा मुँह खराब हो गया। जीभ तो है पर वह उसका उपयोग नहीं कर सकता। Doctor ने कह दिया कि थोड़ा-2 तरल डाल दो। उसके गले में एक छेद बना दिया जाता है। क्या सुख रह गया अब उसके लिए ? जीभ है लेकिन जीभ का उपयोग नहीं कर सकता। यह इन्द्रियों का सुख तभी तक है जब तक यह काम कर सकती है। जिस दिन ये इन्द्रियाँ काम करना बन्द कर देंगी तो हो सकता है कि उस अभाव में भी आप ज्ञान का उपयोग करने लग जाओ। अगर ज्ञान नहीं होगा तो परेशान रहोगे। दूसरों को देखो वो ऐसा कर रहा होगा। ऐसा खा रहा होगा।

''अत्यन्त सौख्यवान् आत्मा'' को अपने-अपने दिमाग में नहीं भीतर गहराई में रख लो। विचार में यह गहराई से घुस जानी चाहिए। यह श्लोक सबको याद होना चाहिए। वैसे तो पूरा इष्टोपदेश याद होना चाहिए लेकिन यह सूत्र तो सबको याद होना चाहिये ही। आत्मा का स्वरूप क्या है ? यह दूसरी लाइन। पहली लाइन में लिखा है 'निरत्ययः' वह आत्मा व्यय से रहित। उस आत्मा का कभी भी व्यय नहीं होता। अभाव नहीं होता। विनाश नहीं होता। वह आत्मा कभी भी नष्ट नहीं होता। नित्य स्वभाव वाला है। अगर वह सिद्ध भी बन गया है तो वहाँ पर भी आत्मा नित्य है। वह कभी मिटता नहीं है। वह अपने ही आत्म प्रदेशों में उसका जैसा स्वभाव है वैसा ही बना रहेगा। सब आत्माओं के स्वभाव एक समान हैं। एक समान उनमें ज्ञान और सुख भरा हुआ है। थोड़ी देर के लिए हमें सुख की अनुभूति हुई, छूट गई तो ऐसा सुख किस काम का ? अनित्य सुख को तो हमने खूब भोगा है। खूब अनुभव किया है लेकिन नित्य सुख क्या है ? आचार्य कहते हैं यह आत्मा का भाव नित्य है। सिद्ध बनने पर यह मत समझ लेना कि वह कहीं विलीन हो गया, मिट गया। जैसे अन्य लोग कहते हैं आत्मा आपकी उसी ब्रह्म में जाकर मिल जायेगी। जैसे-नदियाँ सागर में जाकर मिल जाती है, नदियों का अस्तित्व समाप्त। जो है सो सागर है। ब्रह्म तो एक ही है आपको उसी ब्रह्म में जाकर मिल जाना है। आपका अपना कोई अस्तित्व नहीं है। अपने अस्तित्व को समाप्त कर देना बस यही ब्रह्म की उपलब्धि है। यह वेदान्त दर्शन का मत है।

आचार्य कहते हैं कि आत्मा अगर ब्रह्म स्वरूप हो जायेगा तो वह अपना अस्तित्व खो नहीं देगा। इसका मतलब यह है अगर उसी चीज को इस रूप से समझा जाये कि जहाँ पर अनंत-2 आत्मायें अपने स्वभाव में है वहीं पर जाकर अपना आत्मा भी उसी में लीन होगा। लेकिन लीन होते हुए भी वह अपना स्वभाव नहीं खो देगा। अपना अस्तित्व नहीं खो देगा, रहेगा तो उन्हीं में। अवगाहनत्व गुण के कारण आत्मा वहाँ रह पायेगी। सूक्ष्मत्व गुण के कारण से कोई बाधा नहीं होगी किसी को। जहाँ स्थूल है वहाँ बाधा होती है। एक ग्लास पानी मे अगर पानी ही डालते जाओगे तब तो वह बाहर बह जायेगा। लेकिन कोई ऐसी चीजें उसी में समाहित होती चली जाये जैसे उसमें नमक डालते चले जाओ तो उसी में घुलता चला जायेगा। ऐसे ही वह आत्मा जो सूक्ष्म गुण में परिवर्तन कर गई है, सूक्ष्मत्व गुण प्रकट हो गया तो कितनी भी सूक्ष्म आत्माएँ उसमें आती चली

अपने गुण के कारण बिना बाधा दिये अनंत आत्मायें ब्रह्म में विराजमान रहती है।

जाये वहाँ कोई किसी को बाधा डालने वाला नहीं है। इसका नाम है आत्मा का नित्य स्वभाव। वह नित्य स्वभाव उस ब्रह्म दशा में भी बना रहता है और वह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ती है।

जिनको यथार्थ का ज्ञान नहीं है उन्होंने यह कल्पना कर ली कि वहाँ पर जाकर के अपना अस्तित्व समाप्त हो गया। लेकिन आचार्य कहते हैं हर आत्मा का अपना-अपना अलग ब्रह्म है। वहाँ पर भी उसका स्वभाव नित्य रहेगा। आपका आत्मा न कभी आज तक मिटा और ना कभी मिटेगा। ऐसी आत्मा की तीसरी Quality है–

निरत्ययः। **तनुमात्रो**– तनु=शरीर, शरीर मात्र है। अपनी आत्मा की अगर अनुभूति करना तो अपने ही शरीर के अंदर ही करना। जितना जो कुछ भी है वह सब आपके पास में है। आपके शरीर के साथ में है। आत्मा शरीर के अलावा एक अंश भी बाहर नहीं निकलता, केवल समुद्घात को छोड़कर के। समुद्घात जब होगा तो उस समय आत्मा के प्रदेश बाहर निकलते हैं। बाकी आत्मा के असंख्यात प्रदेश आपके पास है। वह शरीर प्रमाण आत्मा का शरीर में बैठकर के ही अनुभूति करो। इसलिए यहाँ लिखा है '**तनुमात्रो**'।

शरीर मात्र ही आत्मा है। शरीर मात्र में ही वह फैला हुआ है। फिर '**स्वसंवेदन सु व्यक्तः**' यह सबसे महत्वपूर्ण है–ऐसी आत्मा के गुणों की, पहले तो आत्मा के गुणों के बारे में सोचते गये–

लोकालोक विलोकनः
अत्यन्त सौख्यवान्
निरत्ययः
तनुमात्र

यह गुण अभी अनुभव में नहीं है, प्रकट नहीं है। इनको प्रकट करो। उसके लिए विधि बताई है– '**स्वसंवेदन**'। स्व का संवेदन करो। स्वसंवेदन से ही यह आत्मा 'सुव्यक्त' यानि अच्छे ढंग से व्यक्त होने लग जायेगा। आपको खुद अनुभव में आने लग जायेगा। आपके अंदर वह व्यक्त होने लगेगा कि यह आत्मा है। यह आत्मा का स्वभाव है। यह आत्मा के गुण हैं, यह आत्मा का सुख है। यह सब कुछ आपको प्रकट होगा लेकिन जब आप स्व मात्र का संवेदन करें और किसी का नहीं। शरीर का संवेदन स्वसंवेदन है? मन का संवेदन स्व संवेदन है? नहीं है। स्व संवेदन में ना आपका बोलने वाला स्वभाव होगा क्योंकि बोलना तो वचन का व्यवहार है। आपका मन भी वहाँ पर काम नहीं करना चाहिए। आपको महसूस नहीं होना चाहिए कि मैं मन के साथ हूँ। फिर जब आप जो होंगे उसका नाम कहलायेगा 'स्वसंवेदन' स्व-आत्मा मात्र का संवेदन होना इसी को 'आत्मानुभूति' कहते हैं। आत्मदर्शन, शुद्धात्मा का अनुभव भी इसी को कहते हैं। यह ज्ञान जितना-जितना आपको बढ़ेगा उतना आप अपनी आत्मा को प्रकट कर रहे होंगे।

स्वसंवेदन जो जितना करेगा उसका आत्मा अपने आप स्वयं में उसे दिखाई देगा, व्यक्त होता हुआ दिखाई देगा।

स्व आत्मा मात्र का संवेदन होना ही आत्मानुभूति है, आत्मदर्शन है।

आत्मध्यान का उपाय

22

संयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतसः।
आत्मानमात्मवान् ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थितम्॥

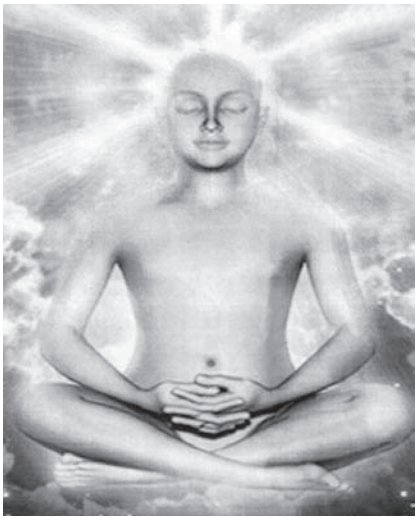

अन्वयार्थ—(आत्मवान्) आत्मा **(करणग्रामं)** इन्द्रिय समूह को **(संयम्य)** संयमित कर के [पंचेन्द्रिय के विषयों से रोककर] **(चेतसः)** चित्त की **(एकाग्रत्वेन)** एकाग्रता से **(आत्मनि)** अपनी आत्मा में **(स्थितम्)** स्थित होकर **(आत्मानं)** अपने आत्मा को **(आत्मना एव)** अपने आत्मा द्वारा ही **(ध्यायेत्)** ध्यान करना चाहिए।

- **एकाग्रता**
- **मन पर नियंत्रण**
- **मुमुक्षु**

आचार्य कहते हैं जो आपको आत्मा का स्वरूप कल बताया है उस स्वरूप को यदि आप अपने ध्यान में उसे अपने ज्ञान का विषय बनाना चाहते हैं तो आपको एक विधि से गुजरना पड़ेगा क्योंकि हर चीज को प्राप्त करने की कोई न कोई विधि अवश्य होती है। आत्म-ज्ञान करने की भी विधि होती है। ऐसा नहीं कि हम जिस किसी भी तरह बैठ जाये और हमें आत्म-ज्ञान हो जाये। उस आत्म-ज्ञान होने से पहले कुछ आवश्यक कार्य भी करने पड़ते हैं। कुछ आवश्यकताओं की पूर्ति भी होनी ही चाहिए। तभी वह आपमें आत्मध्यान की उन्मुखता आएगी। उसके लिए आचार्य कहते हैं कि अगर आपको आत्म-ध्यान करना है तो अपने चित्त को पहले एकाग्र करना होगा।

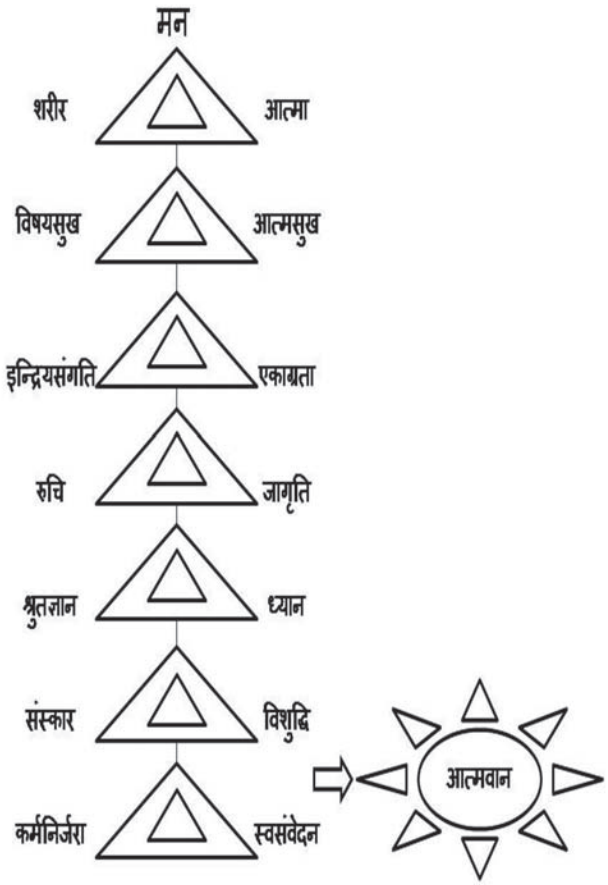

एकाग्रता :

'एकाग्रत्वेन चेतसः'

चित्त को एकाग्र किये बिना आप आत्मध्यान नहीं कर पाओगे। चित्त को एकाग्र करना बड़ी कठिन चीज है क्योंकि चित्त को एकाग्र करने के लिए ही हमें सब कुछ उपाय करने पड़ते हैं और जिसका चित्त एकाग्र हो जाता है तो उसको ध्यान तुरन्त हो जाता है। इसलिए आचार्य महाराज यहाँ कहते हैं कि पहले अपने चित्त को एकाग्र करो। एकाग्र करने का मतलब होता है उसे किसी चीज पर टिकाओ, किसी भी चीज़ पर तुम्हारा चित्त टिक जाये।

एकाग्रता पहले बढ़ाओ। इसके बिना आपको कभी भी आत्मा का ध्यान होने वाला नहीं है। हमारे शरीर में हमें मन मिला है और उस मन की एक दशा चित्त कहलाती है। मन में अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं। चित्त एक ऐसी दशा है जहाँ पर हमारे पुराने संस्कार पड़े रहते हैं। इसलिए कभी मन को और चित्त

चित्त (मन) को एकाग्र करे बिना आत्मध्यान करना संभव नहीं है।

को एक रूप में भी कहा जाता है और कभी-कभी इन्हें भिन्न रूप में भी समझा जाता है। यहाँ पर मन और चित्त को आप एक समझकर एकाग्र करना क्योंकि चित्त को एकाग्र करने के बाद ही आपके लिये आत्मा की तरफ उन्मुखता आयेगी। चित्त हमारे शरीर में विद्यमान है और आत्मा के बीच में यह मन रहता है और इस मन के लिए दोनों जगहों पर जाने के लिये यह आत्मा प्रेरित कर सकती है। इस मन को आप अपनी आत्मा में भी लगा सकते हो, इस मन को आप शरीर के माध्यम से इन्द्रिय के विषय में भी घुमा सकते हो। यह बीच में पड़ी हुई चीज है और इस चीज को आप अगर एकाग्र करेंगे जहाँ अभी तक रस नहीं आया उसमें एकाग्र करने में थोड़ी कठिनता होगी। यह मन एक दम से नहीं मानेगा। जैसे आपका बच्चा आपकी बात नहीं मानता वैसे ही यह मन भी आपका होते हुए भी बात नहीं मानेगा। इस मन को उन चीजों से हटाना जिसमें इसको रस आता है। वह है- 'करणग्रामः'। करण कहते हैं- इन्द्रियाँ और ग्राम का अर्थ 'समूह' होता है। करणग्राम इन्द्रियों के समूह में ही इसको रस आता है। मन की संगति इन्द्रियों के साथ ही रहती है। इसलिए यह हमेशा जो इन्द्रियों को विषय अच्छे लगते हैं वह उन्हीं को पकड़ता है। मन हमेशा इन्द्रिय विषय की ओर आकर्षित होगा और उसी में वो एकाग्र हो जायेगा। आपको अपना मन एकाग्र करना है तो सामने इन्द्रिय का विषय लाकर रख दो तो एकाग्र हो जायेगा। टी. वी. इन्द्रिय का विषय है और जब आप उस टीवी के सामने बैठ जाते हो तो उसमें जो चित्र आते हैं वो चित्र आपके लिए इन्द्रिय का विषय बनते हैं। उन चित्रों में मन इतना जुड़ जाता है कि हम समझते हैं इतनी एकाग्रता किसी और जगह नहीं हो सकती। उस समय पर आप अपने मन को वहाँ इतना लगा देते हैं घर के लोग कहते रहें- दुकान जाना है, देर हो रही है, मन्दिर जाना है, प्रवचन सुनने का समय हो गया है, बच्चों को स्कूल छोड़ने जाना है। लेकिन आपका चित्त उसमें ऐसा लग जाता है कि बस थोड़ी देर, बस थोड़ी देर, अभी रुको, अभी चलते हैं। चित्त अपने आप जिस तरह से इन इन्द्रियों के विषय में लगता है, ऐसे ही आचार्य कहते हैं आपका चित्त आत्मा का ध्यान करने में लगने लग जाये। उसका interest (रुचि) जो बाहर की तरफ चला गया है, उसकी रुचि अब अन्तरंग की ओर करना। उसकी रुचि बदले बिना कभी भी आपके अन्दर चित्त की एकाग्रता और आत्मा का ध्यान सम्भव ही नहीं है। यह इसलिए कहा जा रहा है कि इस आत्मध्यान की विधि में सबसे पहली कोई विधि है तो वह मन की एकाग्रता। वह मन की एकाग्रता किसी भी तरह से भंग नहीं हो। आपका चित्त एकाग्र हो जाये। कोई भी बाहर की आवाज आये, आप अपने चित्त को उधर ना ले जाये। जो आपके सामने सुनने में आ रहा है, बस आप उसी में चित्त एकाग्र कर लें यह भी चित्त को एकाग्र करने की विधि है। आप प्रवचन सुनते हैं। अगर पूरी एकाग्रता के साथ सुनते हैं तो आपका मन उस समय पर थोड़ी देर के लिये एकाग्र हो जाता है और यही एकाग्रता का अभ्यास आपको ध्यान के समय पर काम आता है।

इंद्रिय विषयों में मन तुरंत एकाग्र हो जाता है इसलिये रुचि बदलें।

क्योंकि जैसे आप अपने चित्त को टी.वी. के सामने एकाग्र करते हैं वैसे ही एकाग्र आप हमारे सामने कर लेते हैं। जैसे आपके सामने टी.वी. रखी रहती है वैसे ही आपके सामने हम बैठे रहते हैं। यह एक साधन बन जाता है। आपके चित्त को एकाग्र करने की वह रुचि जो आपकी divert (मोड़ना) होती है।

आप जब सामने बैठे होंगे और अपना पूरा ध्यान इस बात पर लगायेंगे कि हमें क्या सुनने में आ रहा है और क्यों समझने में आ रहा है। अगर आप जागृति के साथ पूर्ण रूप से सुन रहे हैं तो आप भी ध्यान में बैठे हैं। क्योंकि एक साथ आप अभ्यास करने बैठेंगे, ध्यान का तो आपका चित्त लग नहीं पायेगा। आचार्य कहते हैं चित्त आत्मा में उन्हीं का लगता है जिनके अन्दर श्रुतज्ञान होता है। इसलिए आचार्यों ने कहा कि श्रुतज्ञान के आलम्बन से आप अपने संवेदन की ओर आ सकते हैं। श्रुतज्ञान का मतलब होता है शास्त्र में दिया हुआ ज्ञान। यह शास्त्र का ज्ञान हमारे चित्त को पवित्र भी बनाता है, हमारे चित्त को एकाग्र करता है और हमारे चित्त के अन्दर एक ऐसी रुचि पैदा करता है कि उसके माध्यम से हमारा चित्त अपने आप आत्मा में लगने लग जाता है। यह श्रुतज्ञान कहलाता है। जो आप सुन रहे हैं यह भी श्रुतज्ञान है। यह सुनने के बाद में आपके मन में जो ठहर जाता है वह भी श्रुतज्ञान है जिस समय पर आप एकाग्र होकर के बैठ जाते हो, अपने आप आपके दिमाग में कोई बात याद आती है, शास्त्र भी प्रवचन भी श्रुतज्ञान है और उस प्रवचन की बात के माध्यम से आपका मन कुछ और अपने तरीके से विवेचन करने लग जाता है उसका नाम भी श्रुतज्ञान है। जो आपके मन में हमेशा चलता रहता है।

उस श्रुतज्ञान के माध्यम से ही ध्यान की परिणति आती है। श्रुतज्ञान के माध्यम से ही आत्मा के स्व संवेदन की परिणति आती है इसलिए आचार्य कहते हैं–

'सुदणाण आलम्बणेण'

श्रुतज्ञान का आलम्बन लेना। शास्त्रों का, श्रुत का ज्ञान होना चाहिए, अन्यथा शान्त बैठने के बाद में आपका ध्यान लगेगा कहाँ?

आप अपने चित्त को उस आत्मा की ओर नहीं ले जा पाये तो आपको आत्मा में कभी भी कुछ विशुद्धि उत्पन्न नहीं होगी। कर्म की निर्जरा नहीं होगी और आपको कभी भी आत्मज्ञान का अनुभव नहीं होगा।

चित्त को आत्मा की ओर उन्मुख करने के लिए हमारे अन्दर श्रुतज्ञान का संस्कार होना चाहिए और उस श्रुतज्ञान के संस्कार के माध्यम से हमने अपने संस्कार बदल दिये हों (मन को इन्द्रियों की ओर ले जाने के संस्कार जब बदल जाये) तब वह मन तैयार होता है आत्मा में डूबने के लिए। तभी वह मन बनता है 'आत्मवान्'। मतलब आत्मा वाला।

''आत्मानम् आत्मवान् ध्यायेत्''

श्रुतज्ञान मन को पवित्र एवं एकाग्र बनाकर स्वसंवेदन की ओर ले जाता है।

मन वाला आत्मा का ध्यान नहीं कर सकेगा। वह आत्मवान जो हो जायेगा तो फिर वह मन वाला नहीं होगा। जब मन वाला नहीं होगा तो मतवाला भी नहीं होगा। जिसने अपने मन को श्रुतज्ञान के माध्यम से 'आत्मज्ञान' में पिरो दिया है तो वह आत्मवान बन जाता है। वह आत्मवान ही आत्मा का ध्यान कर पाता है।

मन पर नियंत्रण :

मन को तो बाँध के रख दो। इन्द्रियों के विषयों में तो उस मन को जाने ही मत दो और उसके बाद में जब आप बिल्कुल आत्मवान बन जाये तब आप आत्मा का ध्यान करेंगे तो आपकी आत्मा में स्थिति बन जायेगी।

क्योंकि यह मन चंचल है और इस मन की चंचलता के कारण से ही हमारी गति आत्मा की ओर नहीं हो पाती। मन की चंचलता के कारण से विषयों में इसका रस पड़ा है। उन्हीं विषयों की ओर यह अपने आप बिना बताये दौड़ता है और उन्हीं विषयों को यह ग्रहण करके अपने लिए सुख मानकर संतुष्ट हो लेता है।

इसलिए आचार्य कह रहे हैं इस मन को रोकने का अगर कोई तरीका है तो आप श्रुतज्ञान के आलम्बन से इसका interest कम करें। इसकी रुचि को divert करें।

आपका मन इन्द्रियों के विषय में जो आसक्त होता है उस मन को विषयों की आसक्ति से दूर करें, दूसरे विषयों में लगाये।

देखना पड़े तो भगवान के प्रतिबिम्ब देखें। जो हम इन्द्रिय को तृप्त करने के लिए अन्य अनेक प्रकार के चित्र देखते हैं उन चित्रों से मन को हटाकर के भगवान के बिम्बों को देखो। जिन वाणी के लिखे हुए अक्षरों को देखो। नेत्र इन्द्रिय के विषयों का नियंत्रण करो।

कर्ण इन्द्रियों के विषय को नियंत्रण करना है तो जिन गानों से मन और मतवाला हो जाता है उन गानों को गाना छोड़ दो, सुनना छोड़ दो और उसकी जगह पर नई चीजें गुनगुनाना शुरू करो। चाहे वह चीजें इष्टोपदेश के श्लोक हों, चाहे वह छहढाला के छन्द हों, चाहे द्रव्य संग्रह की गाथाएँ हों। ये हो जाये तो अति उत्तम। यह भी ना हो तो जो आप रोजाना पूजा पढ़ते हैं उस पूजा के पाठ को गुनगुनाओ, उसी के गाने सुनो, तो आपका मन धीरे-धीरे नियंत्रित होने लगेगा। जब आप कहीं चल रहे हों, घूम रहे हों, मस्त हों और उस समय आपको यह श्लोक याद आ जाये-

''स्वसंवेदन-सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यन्त सौख्यवानात्मा, लोकालोकविलोकनः॥''

यह चीजें भी हमें याद आनी चाहिए। अपने आप अचानक से पूजा के पाठ, पूजा के स्वर, श्लोक, याद आ जाने चाहिए। अगर आपकी रुचि इनमें में लगेगी तो वो लाइनें आपको याद होकर के कभी भी गुनगुनाने में आ जायेगी।

चंचल मन आत्मा को छोड़ विषयों की ओर दौड़ता है।

हमने भी पूजा की है और हमें लगता है कि वो थोड़े समय की पूजा ने ही हमें बहुत बड़ा फल दे दिया है। क्योंकि हमने पूजा ज्यादा नहीं की। बहुत बड़े होने के बाद, जब एक माताजी थी जो मन्दिर में आयी थी। शायद चातुर्मास भी उनका हुआ था। जब कभी मन्दिर में दर्शन करने बाद में उन माताजी के पास चला जाता था तो वह माता जी कहती थी- तू अभिषेक नहीं करता, कभी नहीं किया? माताजी कहती- कम से कम अभिषेक तो कर लिया करो। अभिषेक होना शुरू हो गया। माताजी कहती हैं- थोड़ी एक पूजा भी कर लिया करो। चलो ठीक है, एक पूजा भी कर लेते हैं और उस एक पूजा में भी एक पंच-परमेष्ठी की पूजा थी जो बड़ी अच्छी लगती थी।

''हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु भव दु:ख मेटो अन्तरयामी''

यह पूजा में जो जल, चन्दन अर्घ्य है बड़े अच्छे लगते थे। यह पूजा 2, 4 sunday की होगी और एक दम से याद हो गयी और यह ही फिर गुनगुनाने में आती रहती थी। इस पूजा में ही इतना आनन्द आने लग जाता था कि बाद में जब गाना गाने का समय आता तो गाने ना गाकर के पूजा ही गाने में निकलने लगी। यह भी अपने आप होने लग जाता है। अपनी जब किसी चीज में रुचि बन जाती है तो अपने अन्दर परिवर्तन स्वयं होने लग जाता है। जब ऐसा होने लगा तो इसका मतलब है आपके अन्दर पूजा का संस्कार गहरा बैठ गया। हम समझते हैं कि उसी पूजा के संस्कार ने पूज्य दशा प्राप्त करा दी। उससे पहले कुछ नहीं जानता था। बस, धीरे-धीरे जब भगवान का अभिषेक भी करते थे तो भगवान की प्रतिमा को निहारते रहते थे, देखते रहते थे। भगवान कितने सुन्दर लगते हैं, बड़ा आनन्द आता था। उनको स्पर्श करने का भी अद्‌भुत आनन्द आता था और वह आनन्द आप लोगों को रोजाना करने में ना आता हो। वो आनन्द उस समय पर हमको आता था। हो सकता है जब हम किसी चीज को पहली बार नये ढंग से ग्रहण करते हैं उसमें रुचि लेते हैं तो उसका भी आनन्द कुछ अलग होता है और जब हम किसी चीज को रुटीन बना लेते हैं तो वो हमारे एक अभ्यास की चीज बन जाती है।

हमें ऐसा लगता है कि शायद बचपन से कुछ ज्यादा धर्म नहीं किया, उसका भी यह फायदा रहा हो। जब कभी एक दम से नया interest बनता, नये संस्कार पड़ते हैं तो उस समय हर चीज को ग्रहण करने की एक अलग क्षमता होती है और उसी क्षमता के कारण से यह संस्कार भी बदलते चले जाते हैं। मन को एकाग्र करने के लिये आचार्य कहते हैं- अपने विषयों को थोड़ा नियंत्रित कर दो। जो चित्र आप देखते हैं उनकी जगह वीतरागता के चित्र देखो तो आपके संस्कारों में परिवर्तन आयेगा। वह परिवर्तन आने से ही आपका थोड़ा सा इन्द्रिय के विषयों से ध्यान हटेगा। नहीं तो आदमी इन्द्रिय के विषयों में इतना ज्यादा लुप्त हो जाता है कि वह भूल जाता है कि हम क्या करने जा रहे हैं और हमें क्या करना चाहिए था?

एक सेठ था और उस सेठ की शय्या सजाने के लिए एक नौकरानी (मालिन) रहती थी।

नयी रुचि व संस्कार से चीजों को ग्रहण करने की विशेष क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

जो उसकी शय्या हमेशा नये-नये फूलों से सजाती थी। लोग अपनी इन्द्रिय विषयों का आनन्द अलग-अलग तरीके से लेते हैं। एक बार में जितने फूल उस शय्या में लगते थे वे अगले दिन काम नहीं आते थे। नये होने चाहिए, बिल्कुल सुगन्धित। वह सेठ उन इन्द्रिय के विषयों में आसक्त था। उसे रोजाना यह नये-नये विषय सेवन करने के लिये चाहिए थे। उसने सब तैयारी करने के लिए कई लोगों को नियुक्त कर रखा था और फूल पुराने नहीं होने चाहिए, किसी के काम में आये हुए नहीं होने चाहिए क्योंकि फूल भी अशुद्ध हो जाते हैं। जो मालिन रोजाना उन फूलों को लाकर वह शय्या बनाती थी। एक दिन शय्या को तैयार करने के बाद उसके मन में कुछ आया, वो बैठी तो जमीन पर थी लेकिन उस शय्या पर उसने अपना सिर रख लिया और उसको नींद आ गयी और सिर रख कर सो जाने से उतने स्थान के फूल खराब हो गये। सेठ ने आकर देखा, यह तो यहाँ पहले से ही फूलों पर शयन कर रही है। इसने फूल पहले से ही खराब कर दिये। उसको गुस्सा आया तो वह उस मालिन को मारने लगा, पीटने लगा और जब उसको वह पीटने लगा तो वह हँसने लगी, जब वो हँसने लगी तो सेठ पूछने लगा कि मैं मार रहा हूँ और तू हँस क्यों रही है?

मालिन कहती है–सेठ जी इन फूलों पर थोड़ी देर के लिए अपना सिर टिकाने से यदि हमें इतनी पीड़ा मिल रही है तो तुम तो रोजाना इन फूलों पर कई घंटों तक सोते हो तो तुम्हें कितनी पीड़ा भुगतनी पड़ेगी, मैं यही सोचकर हँस रही हूँ। यही सोच कर मैं चिन्तित हो रही हूँ कि यह तो बहुत कम है लेकिन आगामी समय में तुम्हारी आने वाली पीड़ा बहुत ज्यादा हो जायेगी क्योंकि इन इन्द्रिय के विषय का हमें इतनी सी देर का इतना दण्ड मिल रहा है तो तुम इन इन्द्रिय के विषयों का इतना उपभोग कर रहे हो तुम्हें कितना दण्ड मिलेगा। यह तुम्हारे कर्म के फल जब तुम्हें अगले जन्म में फलित होंगे तब तुम्हें समझ में आयेगा। कोई भी इन्द्रियाँ हो इन इन्द्रिय के विषयों में आसक्त होने पर पाप का ही बंध होता है और उस पाप के फल को ही हमें भोगना पड़ता है।

इसलिए आचार्य कहते हैं इस चित्त को, इस मन को इन्द्रिय के विषयों से हटाओ। इन्द्रिय के विषयों से हटाये बिना कभी भी आप आत्मवान बन नहीं सकते हैं।

तीर्थंकर भी जब तक घर में रहते हैं वे आत्मवान नहीं कहलाते हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टि भी होंगे, घर में रहकर वैरागी भी होंगे तो भी आत्मवान नहीं कहलायेंगे। **आत्मवान** तभी बनता है जब आप इन्द्रिय विषयों में आसक्त ना हो। घर में रहोगे सब प्रकार के इन्द्रिय विषय आपको मिल ही जायेंगे।

आदिनाथ भगवान भी घर में रहकर अप्सराओं का नृत्य देखते थे। वे पहले भी देखते होंगे इसलिए इन्द्र ने सोचा कि भगवान को वैराग्य दिलाने के लिए अप्सरा का नृत्य दिखाया जाए। वे भी अन्य राजाओं की तरह ही रहते हैं, भले ही वे भीतर से क्षायिक सम्यक्दृष्टि हों मतलब घर में रहकर भी वो इन्द्रिय विषय का सेवन करते ही हैं और वो नृत्य देख रहे हैं तो उनका चित्त उसी

इंद्रिय विषयों में आसक्त होने पर पाप का बंध होता है, फल भोगना पड़ता है।

इन्द्रिय विषय में लगेगा। लेकिन वह सम्यग्दर्शन आत्मध्यान, आत्मज्ञान नहीं करा सकता। बहुत से लोग इस भ्रम में रहते हैं कि सम्यक्-दृष्टि का मतलब होता है आत्मज्ञानी। ऐसा कुछ नहीं है सम्यग्दृष्टि अलग चीज है और आत्मज्ञानी अलग चीज है।

सम्यग्दृष्टि का इतना ही मतलब है कि उसका जीव आदि पर श्रद्धान हो गया है इसके माध्यम से उसमें इतना सम्यग्ज्ञान आ गया कि इससे आस्रव भी हो रहा है, बन्ध भी हो रहा है लेकिन आसक्ति को छोड़ नहीं पायेगा। इसका नाम हैं 'सम्यग्दृष्टि'।

आत्मज्ञानी होना अलग चीज है, आत्मवान होना अलग चीज है। वह आदिनाथ भगवान भी क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं लेकिन वे आत्मवान नहीं हैं।

इसलिए आचार्य समन्तभद्र महाराज आदिनाथ भगवान की स्तुति करते हैं तो स्वयंभू स्तोत्र में लिखते हैं वो

''विहाय यः सागरवारि वाससं, वधूमिवेमां वसुधा-वधूसतीम्।
मुमुक्षुरिक्ष्वाकुकुलादिरात्मवान्, प्रभुः प्रवव्राज सहिष्णुरच्युतः॥''

हे भगवान्! सागर के समान फैली हुई वसुन्धरा को आप जब छोड़कर गये और उस वधू के समान छोड़कर चले गये जैसे किसी वधू का, कोई सती होती है उसका कोई उपभोग नहीं कर सकता कि इस पृथ्वी का राजा होने से भी कोई प्रयोजन नहीं है क्योंकि राजा तो अनेक हो चुके हैं इस वसुन्धरा का भी कभी कोई उपभोग नहीं कर सका है आप उसको छोड़कर के जब गये 'प्रभु प्रवव्राज' -जब आपने दीक्षा ले ली। 'सहिष्णु रच्युतः' आप उस समय पर सहिष्णु बन गये और आप इस वसुन्धरा को छोड़कर के जब वैराग्य को प्राप्त हो गये तब आप आत्मवान बने। उस समय पर उन्होंने वह शब्द दिया-

''वधूमिवेमां वसुधा-वधू सतीम्''
''मुमुक्षु-रिक्ष्वाकु-कुलादि-रात्मवान्''

मुमुक्षु :

यहाँ कहते हैं अब आप आत्मवान बने। जब आपने यह सारा राजपाठ छोड़ दिया। (घर में रहे तब तक आप आत्मवान नहीं हैं) तभी आप मुमुक्षु कहलायेंगे। 'इक्ष्वाकु'- इक्ष्वाकु कुल के आप सबसे प्रथम महापुरुष थे। आप आत्मवान तब बने जब आपने घर का त्याग करके वैराग्य को धारण किया। तभी आप आत्मवान कहलाये, तभी आप मुमुक्षु कहलाये। क्योंकि मुमुक्षु का मतलब होता है 'मोक्तुं इच्छुः'।

मोक्तुं का मतलब होता है जो छोड़ने की इच्छा करे उसका नाम मुमुक्षु है। जो विषय-भोग हमें उपलब्ध हैं इनको छोड़ने की इच्छा करे उसका नाम मुमुक्षु है। कोई title लगाने से थोड़े ही मुमुक्षु हो जाता है।

सम्यग्दृष्टि, आत्मवान एवं आत्मज्ञानी तीनों अलग-2 व्यक्ति हैं।

मुमुक्षु तो भगवान को कहा जाता है। उन वीतरागियों को कहा जाता है, उन श्रमणों को कहा जाता है, जो सब विषय भोगों को छोड़ देते हैं तब उनके लिए मुमुक्षु संज्ञा मिलती है। आचार्य कहते हैं जब आपने इन सब चीजों को छोड़ा तब आपके लिए हम कह रहे हैं 'मुमुक्षु हुए' उसी समय पर आप आत्मवान बन गये। आपने सारा राज-पाट, गृह, रानियाँ, बच्चे सब छोड़ दिये उसके बाद आपको जो ज्ञान प्राप्त हुआ जो आपको आत्मा की रुचि उत्पन्न हुई उसका नाम है ''अब आप आत्मवान हो गये''। ऐसे आत्मवान बनने पर ही यह- ''आत्मानम् आत्मवान् ध्यायेत्''

आत्मवान जो बन जायेगा वो आत्मा का ध्यान करेगा और वो जब आत्मा का ध्यान ऐसे निरन्तर करता रहेगा तो उसमें स्थित होना भी उसे बन जायेगा। आत्मा में स्थिति बनी और आत्मा के अन्दर केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई इस आत्मा के ध्यान से ही केवल ज्ञान की प्राप्ति होती है और वह आत्मा का ध्यान चित्त को रोकने में होता है, चित्त रोकने से ही इन्द्रिय विषयों में जाने वाला जो मन है वो रुकता है और वह अपना कार्य करना छोड़ देता है। इसलिए आचार्य कहते हैं '**संयम्य**' संयमित करके।

इन्द्रियों के समूह को संयमित बनाकर के चित्त को एकाग्र करना और चित्त को एकाग्र करने के बाद में जब आप आत्मा के ध्यान में लीन होंगे तब आपको आत्मा के अन्दर थोड़ा सा रुकना, उसके अन्दर ठहराव होगा, तब समझना कि आपने आत्मा का ध्यान किया।

ध्यान की इच्छा हो तो चित्त को इन्द्रिय के विषयों से तो हटाना ही पड़ेगा। घर में रहकर भी आप कभी थोड़ा बहुत आत्मध्यान की रुचि पैदा करेंगे और वह रुचि उत्पन्न करके आप आत्मा तक नहीं भी पहुँच पायेंगे तो कोई बात नहीं, लेकिन आप इस प्रक्रिया को थोड़ा करेंगे तो आपके अन्दर आत्मा की रुचि बढ़ेगी। उस स्थिति तक पहुँचना महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण है हमारे अन्दर उसकी रुचि उत्पन्न हो जाना, क्योंकि जब रुचि उत्पन्न होगी तो अपने मोह को कम कर पायेंगे। उस मोह में कमी भी रुचि के माध्यम से ही आती है- इसी प्रकार से ध्यान का अभ्यास करने से रुचि उत्पन्न होगी और ध्यान का अभ्यास श्रुतज्ञान को अपने अन्दर समाहित करने से आयेगा। यह जितना भी श्रुतज्ञान है यह सब हमारे लिए ध्यान में काम में आता है। मानलो आप द्रव्य संग्रह पढ़ रहे हो-

''जीवो उवओगमओ अमुत्तिकत्ता सदेह परिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई॥''

यह आपका श्रुतज्ञान ध्यान में काम आयेगा जैसे ही आप अपने ध्यान में लीन होने के लिए बैठेंगे 'जीव आत्मा' इसके आगे कुछ आता ही नहीं। अब आपके लिए श्रुतज्ञान वहाँ काम आयेगा। आपको मालूम होगा जीव कैसा होता है।

अगला step 'उवओगमओ' अरे! अभी तक मैं जिस जीव को जान रहा था वो तो

जो विषय भोग छोड़ने की इच्छा करे, छोड़ दे उसे मुमुक्षु कहा जाता है।

व्यवहारनय था। चार प्राणों में घूमने वाला मेरा जीव तो कैसा है? ''णिच्छयणयदो दू चेदणा जस्स'' देखो सब ज्ञान काम आयेगा। निश्चय नय से मेरा चेतना ही जीव है तो वह आपके लिए अपने आप चेतना की ओर उन्मुख करेगा। वह श्रुतज्ञान होगा। यह श्रुतज्ञान का बहुत बड़ा उपकार है सुनने से तथा पढ़ने से भी श्रुतज्ञान आता है। उसी श्रुतज्ञान के माध्यम से आपका मन आपके अन्दर अपने आप स्थिर होने लगेगा। मन की स्थिरता के लिए आचार्य कहते हैं श्रुतज्ञान की वृद्धि करो। ज्ञान बढ़ायेंगे तो आपका मन स्थिर होगा और जब तक आप स्वाध्याय में, श्रुतज्ञान में रुचि नहीं लेंगे तो आपका मन स्थिर नहीं होगा। प्रवचन से तो थोड़ी देर मन स्थिर हो जाता है लेकिन वह स्थिरता बहुत देर तक बनी रहे उसके लिए तो आपको यह शब्द याद रखने पड़ेंगे जो आचार्यों ने लिखे हैं–

'जीवो उवओगमओ'

अर्थात जीव उपयोगमय है। जब जीव उपयोगमय है तो अब कहीं जाने की जरूरत नहीं है। उपयोगमय जीव में उपयोग को लगाओ, अपने को कहीं ओर दूसरी जगह मत ले जाओ क्योंकि उपयोग कहीं दूसरी जगह गया तो वो जीव वहाँ से भटक गया। वही उपयोगमय जीव जब आपके अनुभव में आयेगा अपने आप आपको रस आने लग जायेगा कि वास्तव में आत्मा का ध्यान करने के लिए हमें किन्हीं बाहरी और कारणों की जरूरत नहीं होती है। हमें सब कारण छोड़कर के आत्मा को स्वयं अपने ध्यान का विषय बनाना पड़ता है। आत्मा के लिए चिन्ता करने की बात इसलिए नहीं है क्योंकि आत्मा स्व को भी जानता है और पर को भी जानता है। जिस समय पर–आत्मा स्व को जानेगा उस समय आत्मा के अंदर पर का ज्ञान अपने आप आने लग जायेगा वह फिर पर को पकड़ने के लिए नहीं जायेगा। पर का ज्ञान उसके अन्दर उत्पन्न होने लग जायेगा कि वास्तव में ये इन्द्रियाँ और मन कैसे हमें भटकाते थे, कैसा भ्रम उत्पन्न करते थे। यह ज्ञान भी वास्तविक रूप में तभी होता है जब आत्मा उस मन के माध्यम से अपने आप में स्थिर हो जाता है।

इसलिए आचार्य कहते हैं श्रुतज्ञान का आलम्बन अवश्य लो। यह श्रुतज्ञान ही आपको आगे बढ़ायेगा, आपकी रुचि को बढ़ायेगा और इस श्रुतज्ञान के आलम्बन से ही आप ध्यान में उतरते चले जायेंगे। जीव है, उपयोगमय है, अमूर्तिक है। उस जीव का स्वभाव जब तक पुद्गलों के माध्यम से जानने में आ रहा है, तब तक वह पुद्गलमय है। जब वह जीव केवल अपने स्वभाव को कर्म से रहित होकर अनुभव करे तो वह अमूर्तिक जीव का स्वभाव उसके ज्ञान और अनुभव में आने लग जाता है। अमूर्तिक स्वभाव वाले उस जीव का भी आपको ज्ञान होगा। वह केवल पढ़ने से नहीं हो पायेगा। वह ध्यान से ही समझ में आयेगा। अमूर्तिक होने का मतलब है जो पुद्गल के विषय हैं स्पर्श, रस, गंध, वर्ण इनसे हटते जाना, इनसे छूटते जाना और इनसे जितना जितना छूटता जायेगा उतना ही उतना वो अपने आप में समाहित होता चला जायेगा। इसलिए आचार्य कहते हैं अपने अन्दर हमेशा इसी

श्रुतज्ञान को अपने अंदर समाहित करके ध्यान करने से मोह में कमी आयेगी।

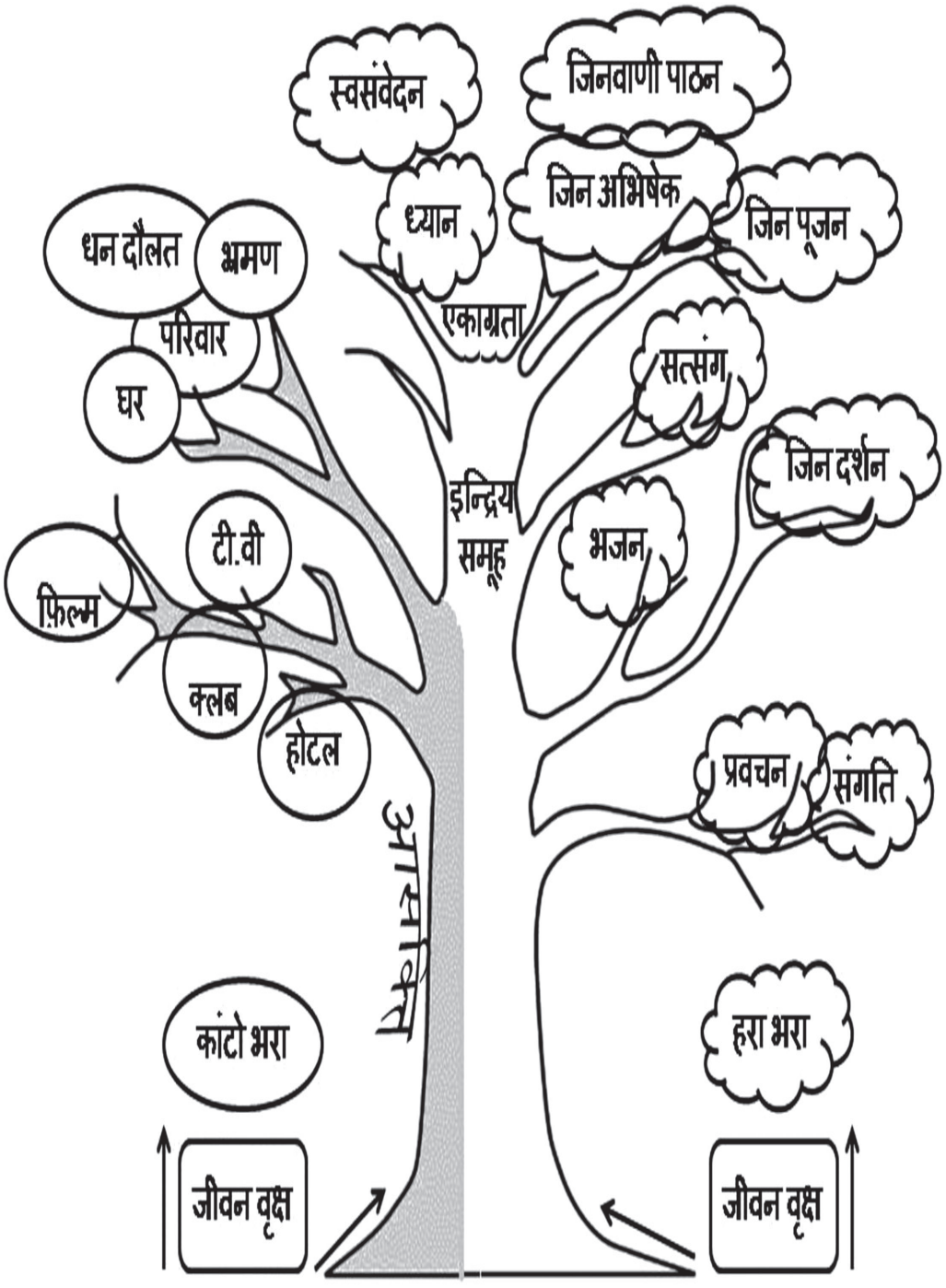
स्वसंवेदन
जिनवाणी पाठन
ध्यान
जिन अभिषेक
जिन पूजन
धन दौलत
भ्रमण
परिवार
एकाग्रता
घर
सत्संग
जिन दर्शन
इन्द्रिय समूह
टी.वी
भजन
फ़िल्म
क्लब
होटल
प्रवचन
संगति
आसक्ति
कांटो भरा
हरा भरा
जीवन वृक्ष
जीवन वृक्ष

प्रकार के ध्यान के माध्यम से स्व-संवेदन को बढ़ाते चले जाओ। अतः इस श्लोक में लिखा है **'स्वसंवेदन-सुव्यक्तः'**।

आत्मा की अभिव्यक्ति होगी तो इसी प्रकार के स्व-संवेदन के माध्यम से होगी। इन्द्रियों के संवेदन से आत्मा की अभिव्यक्ति होने वाली नहीं है। इससे तो केवल इतना ही कहने में आयेगा हाँ, इसमें जीव आत्मा है। यह पंचेन्द्रिय जीव है। इतना ही आप समझ सकोगे, इससे ज्यादा आपको जीवत्व का अधिक ज्ञान और अनुभव नहीं होगा। इसलिए आत्मा का ध्यान करने की यह विधि है। उसी विधि के लिए आपको तैयार किया जाता है जब आप थोड़ा सा योगाभ्यास करते हैं अथवा जब आप अपने मन को योगाभ्यास के माध्यम से पहले एकाग्र करते हैं तो आपके अनुभव में आता है कि हमारा मन कहीं नहीं है, केवल शरीर अपने तक ही सीमित रह गया है। इतना आपके मन के अन्दर ऊर्जा आ जाती है कि वो मन फिर उस शरीर तक ही सीमित रह जायेगा और शरीर में भी धीरे-धीरे वो शून्यता की ओर आ जायेगा।

उस मन के अन्दर भी उसका ध्यान जब श्वाँस-उच्छ्वास पर टिकने लग जाता है तो वह मन फिर और सूक्ष्मता की ओर चला जाता है। इसलिए जब आपसे कहा जाता है कि श्वाँस पर ध्यान दें, मतलब हम आपको स्थूल शरीर से भी सूक्ष्म की ओर ले जा रहे हैं। जब आपका ध्यान केवल श्वाँस पर रह जाता है तो आप बहुत कुछ सूक्ष्मता की ओर बढ़ जाते हैं और उसी के बाद में जब आपका ध्यान उस श्वाँस के साथ में, मन के साथ में आरोहण अवरोहण करने लगे तो फिर वह भी मन एकाग्र होकर के उस आत्म-ध्यान की ओर उन्मुख होने लग जाता है। मन की एकाग्रता के लिए ही यह योग और ध्यान की प्रारम्भिक प्रक्रिया है।

एक व्यक्ति ने प्रश्न पूछा था कि महाराज ध्यान तो तब होता है जब वैराग्य हो क्योंकि ये शर्तें हैं, वैराग्य हो, तत्त्व का चिन्तन करने वाला हो, उस व्यक्ति का ही ध्यान लगता है। लेकिन अगर आप यह सोचें कि ये सारी शर्तें आपको एक साथ उपलब्ध नहीं होती हैं तो कोई बात नहीं, लेकिन ये शर्तें आपको यहाँ बतायी जा रही हैं और वे शर्तें धीरे-2 आपके अन्दर समाहित होने लग जाती हैं। जब आप इस तरह के योग और ध्यान की प्रक्रिया से अपने आपको जोड़ते हैं क्योंकि उस समय पर आपके मन में फिर कोई और राग का विषय नहीं रह जाता। आपका मन बिल्कुल शून्यता की स्थिति में आ जाता है। शान्त-स्थिति में आ गया। जीते जी मन को मारना। मन है, पर मन में कोई तरंग उत्पन्न नहीं हो रही है। मन में तरंग ना हो तो वही मन की सबसे बड़ी एकाग्रता है। इसलिए मन के अन्दर कोई तरंग उत्पन्न ना होना और उसे कुछ भी ध्यान नहीं आ रहा है जैसे- घर में क्या? व्यापार में क्या ऐसा हो जाता है? अगर आपने थोड़ा सा भी अभ्यास किया तो आपके अन्दर आने लग जायेगा। आपको ध्यान नहीं रहेगा कि चौके के अन्दर क्या हो रहा है आप भूल जाओगे। यहाँ पर हो सकता है कि आप सोचकर आये हों कि अभी उठकर के चले जायेंगे कुकर की सीटी आ

अमूर्तिक होना यानि पुद्गल के विषय स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि से हटते जाना।

जायेगी। आप बैठे तो बैठे ही रह गये। यह भी आपके चित्त की एकाग्रता से सम्भव है। आप उन विषयों को भूलने लगे तो उसे समय पर आपका चित्त एकाग्र होगा, शान्त होगा और उसी समय पर आपके मन की शान्ति ही उस अभ्यास के कारण से आपको धीरे-धीरे अपने में समाहित कर देगी। इसलिए आप जो यह भजन बोलते हो ''मन की तरंग मार ले बस हो गया भजन'' बड़ा अच्छा भजन है जो इसके लिये ही बताया जा रहा है कि इन्द्रिय के विषयों से अपने आपको हटाओ। जो अभी हम आँखों से देखते आये, कानों से सुनते आये अब उसको न करके मन को श्रुतज्ञान के माध्यम से रमाओगे तो आपके मन के अन्दर वह तरंग आना बन्द हो जायेगी। वही आपका वास्तविक भजन होगा जो मन की तरंग मार ले। यह भजन जो है, ना जिसमें आप हिलते-डुलते भी रहते हो यह व्यवहार भजन कहलाता है। यह जो लय का आनन्द आता है, गाने का आनन्द आता है यह कोई आत्मा का आनन्द नहीं होता है वह सब इन्हीं ध्वनि-शब्दों का आनन्द होता है। यह ध्वनि-शब्द सब पुद्गल की पर्यायें हैं। लेकिन यह भी अपने लिये effect डालती हैं और उस effect से और भीतर तक पहुँचना, वह तभी होता है जब हम उसके भाव तक पहुँच जाये, मन के अन्दर की तरंग बिल्कुल शान्त हो जाये। उसको मारना भी नहीं है, कहने में आता है मार दिया। मारने का मतलब यह है कि उस विषय से अपने आपको हटा लिया। यही उसका मरना हो गया क्योंकि वो उसी में अभी तक जीता था, उसी में उसको राहत मिलती थी और वहाँ से उसका जीवन हट गया तो अब वहाँ से उसकी मृत्यु हो गयी। इसलिए कहने में आता है हमने अपना मन मार लिया लेकिन मन को मारना नहीं पड़ता बल्कि मन को बदलना पड़ता है। मन को बच्चे की तरह समझाकर के full trained बनाना पड़ता है। उस मन को समझाये बिना आप कभी भी अपने मन की तरंगों को रोक नहीं पायेंगे। मन की तरंगों को रोकना हो तो भजन से नहीं रुकेगी। वह इन इन्द्रिय के विषयों को अपने आप से हटाने से ही रुकेंगी। यह सब आप सुन रहे हो और सुनते-सुनते भी यह चीजें कहीं आपके समझ में आ गयी, अपनी आत्मा का उद्धार कर लिया। यह सब आध्यात्मिक विषय हैं और इन सब में रुचि लेने वाला जीव भव्य जीव कहलाता है। आत्मा के विषयों को सुनने की शक्ति भव्य-जीव के अलावा किसी में नहीं होती। अन्य कोई जीव होगा तो उठकर के चला जायेगा। इसलिए अपनी भव्यता को बरकरार रखना।

श्वास के साथ आरोहण-अवरोहण ही योग व ध्यान की प्रारंभिक प्रक्रिया है।

ज्ञानी के सान्निध्य से लाभ

23

अज्ञानोपास्तिरज्ञानं, ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।
ददाति यत्तु यस्यास्ति सुप्रसिद्धमिदं वचः॥

अन्वयार्थ– (**अज्ञानोपास्तिः**) अज्ञानी की उपासना/सेवा (**अज्ञानं**) अज्ञान को (**ददाति**) देती है (**ज्ञानिसमाश्रयः**) ज्ञानियों की उपासना/सेवा (**ज्ञानं**) ज्ञान को, (**तु**) क्योंकि (**इदम् वचः**) यह बात (**सुप्रसिद्धम्**) अच्छी तरह प्रसिद्ध है कि (**यस्य**) जिसके पास (**यत् अस्ति**) जो होता है, [उसी को वह] (**ददाति**) देता है।

ज्ञान-अज्ञान

आचार्य महाराज ने आत्म-ध्यान की विधि बतायी और कहा यदि आप अपनी इन्द्रियों को विषयों से हटाकर चित्त को एकाग्र करेंगे और अपनी आत्मा के ध्यान को अपनी ही आत्मा के माध्यम से अपनी ही आत्मा में करेंगे तो आपको आत्मज्ञान की उपलब्धि होगी। किसी ने ऐसा पूछा कि हमें अपनी आत्मा का ही ध्यान क्यों करना चाहिये? ध्यान तो हम किसी भी चीज का कर सकते हैं। आत्मा के ध्यान करने से हमें क्या मिलेगा और आत्मा का ध्यान करने के लिये ही आप प्रेरित क्यों करते हैं?

तो इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य महाराज यह श्लोक कहते हैं–

''अज्ञानोपास्तिरज्ञानं ज्ञानं ज्ञानि-समाश्रयः।
ददाति यत्तु यस्यास्ति, सुप्रसिद्धमिदं वचः॥''

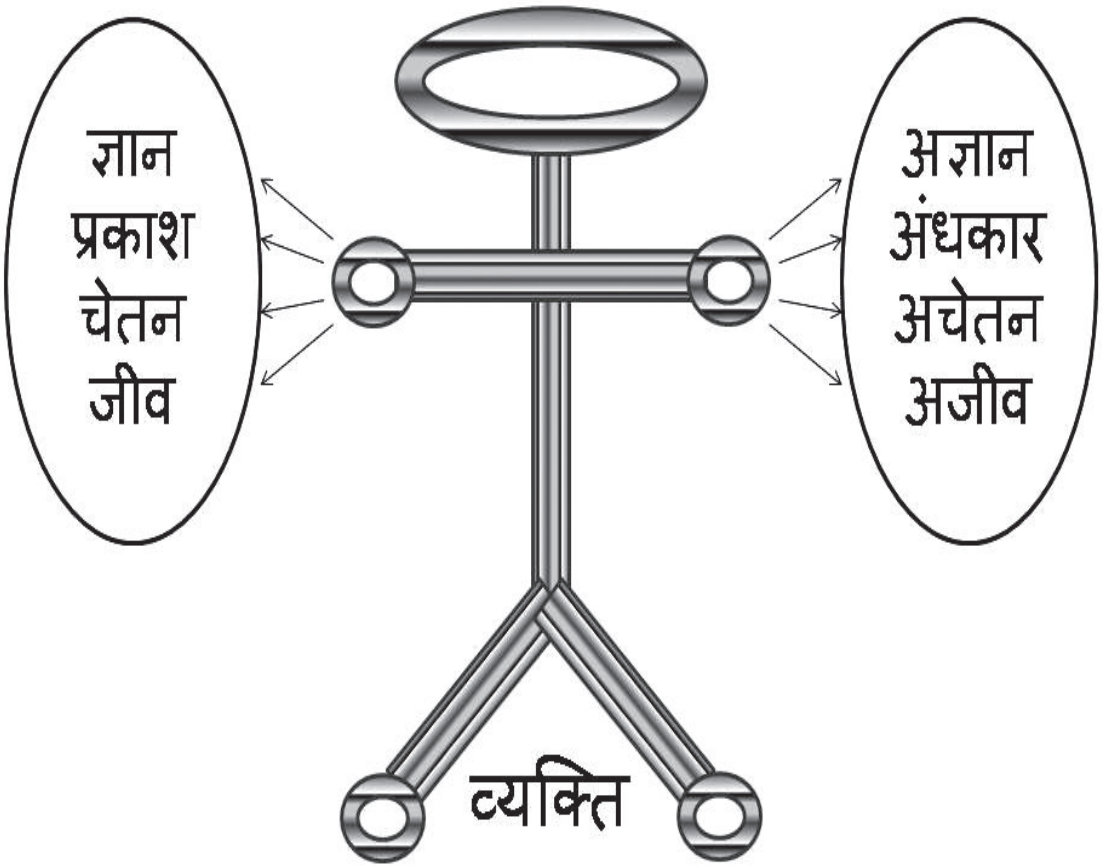

ज्ञान प्रकाश है, अज्ञान अंधकार है। सभी अंधकार से प्रकाश की ओर जाना चाहते हैं।

ज्ञान-अज्ञान :

आचार्य कहते हैं कि देखो, ऐसा है कि पहले आप निर्णय कर लो कि आप कौन हैं और आप क्या चाहते हैं? आपके अन्दर ज्ञान की उपासना की इच्छा है या अज्ञान की उपासना करने की इच्छा है। दुनियाँ में सिर्फ दो ही चीजें हैं या तो ज्ञान है या अज्ञान है। उन दोनों में से तुम्हें क्या

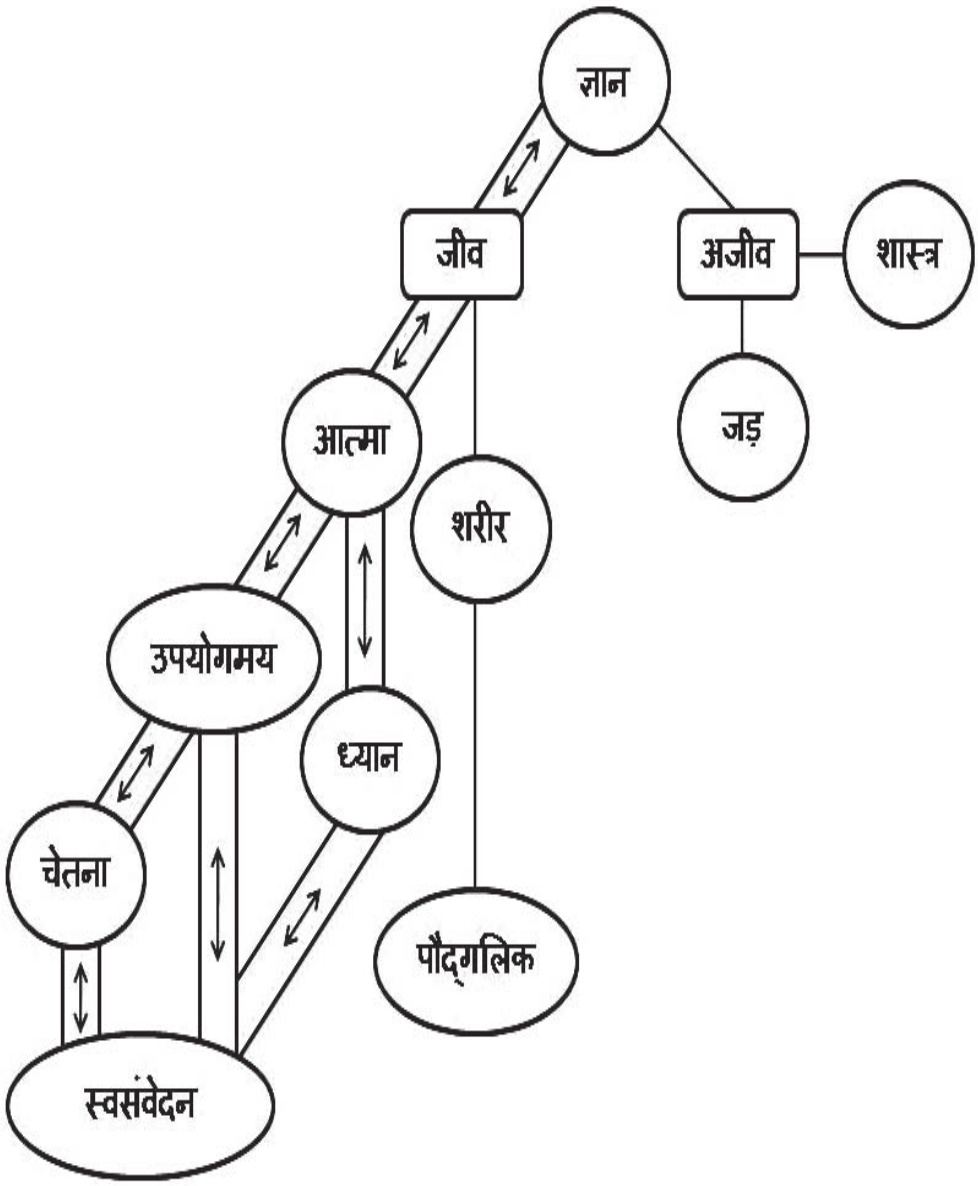

चाहिये? अच्छे ढंग से पहले विचार कर लो। ज्ञानी बनना चाहते हो या अज्ञानी बनना चाहते हो। ज्ञानी बनना चाहते हो तो ज्ञान की उपासना करें। अज्ञानी बनना चाहते हो तो अज्ञान की उपासना करें। अज्ञान को अंधकार कहा गया है। ज्ञान को प्रकाश कहा गया है। इसलिये हर कोई व्यक्ति जो भले ही कुछ नहीं जानता हो वह भी कहता है हे भगवान मुझे भी अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो। वह भी कहता है– मुझे अज्ञान से ज्ञान की ओर ले चलो। आपने सुना होगा कि हिन्दू दर्शन में यह कहा जाता है ''तमसो मा ज्योतिर्गमयः'' मुझे अंधकार से ज्योति की ओर ले चलो। वह अज्ञान ही अन्धकार है और ज्ञान ही प्रकाश है। आप पहले यह सोच लो कि आपको क्या चाहिये? प्रकाश में रहना है या अन्धकार में रहना है। अन्धकार में रहते हुए अगर अन्धकार की आदत पड़ गयी हो तो बात अलग है। लेकिन यहाँ हम जो प्रयास कर रहे हैं कि ज्ञान हम चाहते हैं तो वह ज्ञान कहाँ मिलेगा? ज्ञान किस चीज में है, पहले यह विचार करो। ज्ञान कहाँ पर है? आपसे पूछा जाये कि अगर आपको ज्ञान की उपासना करनी है तो ज्ञान के लिये आप कहाँ पर प्रयास करना शुरू करोगे? आप अपना ध्यान कहाँ ले जाओगे? आप कहोगे किताब खोलो, ज्ञान मिलेगा। अगर किताब में ज्ञान होता तो जिसके पास किताब होगी उसके पास ज्ञान होगा। अथवा किताब में अगर ज्ञान हो तो वह किताब ही आपके लिये ज्ञानी बन जाये। लेकिन आप देखेंगे कि कभी किसी किताब को ज्ञानी नहीं कहा जाता है। ज्ञानी तो किसी आत्मा को ही कहा जाता है। कोई आदमी ही ज्ञानी हो सकता है। ज्ञानी किसी न किसी चेतन पदार्थ के लिये ही कहा जाता है। किताब में ज्ञान होते हुए भी वह ज्ञानी नहीं बनती हैं। इसीलिये किताब वास्तव में ज्ञान नहीं है और किताब में ज्ञान भी नहीं है। किताब में तो केवल अक्षर होते हैं, वो नहीं होते हैं, आकृतियाँ होती हैं। उसमें कोई ज्ञान नहीं है। जैसे रास्ते पर एक माईल स्टोन लगा दिया जाये और उस पर लिख दिया जाये 'इन्दौर' और आप उस स्टोन को पकड़कर बैठ जाओ। यह इन्दौर है। यह इन्दौर है क्योंकि इस पर लिखा हुआ है। आप कहाँ पहुँचेंगे आप कहीं नहीं पहुँचेंगे। आप न घर के रहेंगे और न घाट के रहेंगे। यही स्थिति किताब की होती है। किताब का लिखा हुआ अक्षर, बस संकेत मात्र है कि ज्ञान वहाँ है। आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, जीव क्या है, अजीव, शरीर, चेतना क्या है? इन सब का संकेत मिलता है, किताब से ज्ञान हमें मिलता है। इसलिये वस्तुतः किताब ज्ञानी नहीं है। किताब में ज्ञान है। ज्ञान भी कहीं और है और ज्ञानी भी कहीं और है। जो वास्तव में ज्ञानी होगा वही उस ज्ञान का उपयोग करेगा। इसलिये आचार्य कहते हैं पहले तुम जानो कि तुम क्या हो, तुम्हें क्या प्राप्त करना है? वह प्राप्ति का स्थान कहाँ है। जो तुम बनना चाहते हो उसका भी निर्णय कर लो कि तुम्हें ज्ञानी बनना है कि अज्ञानी बनना है। ज्ञानी बनना है तो ज्ञान की उपासना करो। अज्ञानी बनना है तो अज्ञान की उपासना करो। ज्ञान की उपासना करनी है तो उसकी उपासना करो जहां पर ज्ञान उपलब्ध है। आपको यह ध्यान होना चाहिये कि ज्ञान कहाँ पर है? अब आप सोच लो

ज्ञानी आत्मा या चेतन पदार्थ होता है, कोई किताब नहीं।

कि ऐसी कौन-कौन सी चीजें हैं जिनको हम चाहते हैं और जिसकी हम उपासना करते हैं। उपासना करने का मतलब है हम उसके निकट में रहते हैं और हम उसी का आदर करते हैं। ऐसी कौन सी चीजें हैं जिसमें ज्ञान हो और उसका आप आदर करते हैं।

आपके पास आपका शरीर है। उस शरीर में ज्ञान है, निर्णय कर लेना है। अगर ज्ञान आँखों में है तो आँखें खराब होने पर आपको ज्ञान से रहित हो जाना चाहिये। अगर ज्ञान कानों में हैं तो कान खराब होने पर आपको ज्ञान से रहित हो जाना चाहिये। ज्ञान मन में हो तो मन से रहित होने पर आप अज्ञानी हो जाना चाहिये। आपको विचार करना है, ज्ञान हैं कहाँ? हम कहते हैं हमें ज्ञान चाहिये। इसलिये आचार्य यहाँ कहते हैं। सोच लो कि वह ज्ञान कहाँ कहाँ है और अज्ञान कहाँ कहाँ है? न तो किताब में दिखाई दे रहा है और नहीं किन्हीं बाहरी पदार्थों में।

इसलिये आचार्य कहते हैं यह ज्ञान की प्राप्ति के कारण भी नहीं है और इनमें ज्ञान भी नहीं है। आचार्य 'कुन्दकुन्द देव' समयसार जैसे महान ग्रन्थ में कहते हैं–

''णाणं सत्थं ण हवदि, जम्हा सत्थं ण याणदे किंचि।
तम्हा अण्णं णाणं अण्णं सत्थं जिणा विंति।।''

ज्ञान कभी भी शास्त्र में नहीं होता है। शास्त्र कुछ जानता ही नहीं है। इसलिये ज्ञान अलग चीज है और शास्त्र अलग चीज है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है। जड़ में कभी भी ज्ञान नहीं होता है। जो पदार्थ जड़ है उनमें ज्ञान भी नहीं है। ज्ञान पुद्गल में नहीं मिलेगा। शरीर पुद्गल है। शरीर में अगर सुई चुभा दी जाये तो ज्ञान चेतना को होता है लेकिन वह पुद्गल से इस ढंग से जुड़ा है कि वह उस पुद्गल को ही चेतना समझ लेता है। इसलिये सुई चुभने पर हमें लगता है कि हमें सुई चुभ गयी है। जबकि शरीर पुद्गल है, आप जो वाणी बोल रहे हो, कान, आँखे, मन यह सब पुद्गल ही है जितनी भी चीजें पुद्गल की है उनमें ज्ञान नहीं है, यह ज्ञान कर लेना।

इसलिए आपको बताया है- 'जीवमजीवं दव्वं।' जीव अजीव दो द्रव्य हैं। जीव उपयोगमय है। उपयोग करने वाला, जानने वाला, देखने वाला, चेतनामय केवल जीव है। अजीव चेतना से रहित है। जिस जिसमें चेतना नहीं उस में ज्ञान नहीं और जिस जिस में ज्ञान नहीं वह वह चेतन भी नहीं है। जहाँ पर ज्ञान होगा वहाँ पर चेतना होगी। इसलिये ज्ञान का सम्बन्ध किसी भी पौद्गलिक पदार्थ से नहीं है। ज्ञान का सम्बन्ध चेतना पदार्थ से है।

इसलिए आचार्य कहते हैं अगर आपको ज्ञान की उपासना करना है, आपको वास्तव में ज्ञानी बनना है तो अपनी आत्मा की उपासना करें क्योंकि ज्ञान जो है वह अपनी आत्मा में हैं इसलिये यहाँ पर कहा है–

'अज्ञानोपास्तिरज्ञानं'

अज्ञान की उपासना से आपको अज्ञान मिलेगा। शरीर के पास ज्ञान नहीं है लेकिन आप शरीर की सेवा में ही लगे रहते हो। आप को इसकी सेवा में ही आनन्द आता है। इसकी उपासना ही आपके द्वारा चलती रहती है। इसलिये जब तक आपका मन अपने शरीर की वचन की, ही हिफाजत करने में लगा रहेगा तो यह आपके लिये अज्ञान की ही उपासना चल रही है।

जब तक आत्मा, आत्मा के लिये ही कुछ कार्य ना करें, आत्मा का ही ध्यान ना करें और जब तक आत्मा इस संवेदन के ही माध्यम से अपना संवेदन न करें तब तक वह आत्मा ज्ञानी नहीं होता है। जबकि आत्मा में ही ज्ञान हैं। वह अज्ञान की उपासना करने में लगा है इसलिये आचार्य कहते हैं कि अगर ज्ञान की उपासना करना है तो

''ज्ञानं ज्ञानि-समाश्रयः''

जो ज्ञानी है उनका आश्रय लो, उनका आधार लो। ज्ञानी सबसे पहले अपना ही आत्मा है तो अपनी आत्मा का आधार लो। जो अपनी आत्मा का डाईरेक्ट आधार लेने में असमर्थ हैं तो उनका आधार लो जो ज्ञानी हैं। जो ज्ञान की ही उपासना करते हैं और जो ज्ञानी है उनकी उपासना करोगे तो भी आपको ज्ञान की उपासना का फल मिलने लग जायेगा। वास्तव में तो अपना स्वसंवेदन ज्ञान ही अपने को ज्ञानी बनायेगा। कोई कितना बड़ा योगी हो, ध्यानी हो, ध्यान को आप में नहीं डाल सकता। चाहे आप कुछ भी कर लें। किसी का ज्ञान किसी में पहुँचाया नहीं जा सकता। अगर ऐसा होता तो एक केवलज्ञानी न जाने कितनों को केवलज्ञानी बना जाते। यह वस्तु का स्वभाव ही नहीं है। जो वस्तु का स्वभाव नहीं होता वह कभी घटित होता ही नहीं है। अगर हम कभी व्यवहार से भी किसी ज्ञानी की उपासना करेंगे तो उससे हमें भी यही सीख मिलेगी कि धीरे-धीरे तू अपनी ही उपासना करने लग जा। इसी को कहते हैं- अज्ञान से ज्ञान की ओर आ जाना। अन्धकार से प्रकाश की ओर आ जाना। पर से निज की ओर आ जाना।

ज्ञान दो ही जगह है- या तो अपनी आत्मा की उपासना करो या फिर उनकी आत्मा की उपासना करो- जो अपनी आत्मा की उपासना कर रहें हैं, जिनकी आत्मा ज्ञान से भरी है। वही ज्ञान एक दिन सम्यक् ज्ञान के रूप में आपको आत्म ज्योति प्रकट करा देगा। इसलिये नीचे की पंक्ति में आचार्य महाराज ने एक नीति वाक्य जैसा लिख दिया

''ददाति यत्तु यस्यास्ति, सुप्रसिद्धमिदं वचः''

लोक में यह वचन प्रसिद्ध है जिसके पास जो होगा वही तो देगा। आत्मा की आराधना करोगे तो जो आत्मा के पास ज्ञान है वह तुम्हें ज्ञान देगा। अगर शरीर की, जड़ पदार्थों की सेवा में पड़े रहोगे तो वह तुम्हें अज्ञानी ही बना कर रखेगा। ज्ञानी बनना है तो चेतना की उपासना करो। चेतना से सम्बन्धित जो ज्ञान है उसकी उपासना करो। शास्त्र से बस, संकेत लिया और उसे विनयपूर्वक रख दिया क्योंकि शास्त्र ने हमें बहुत बड़ा रास्ता दिया है। उपचार से हम शास्त्र को ज्ञान कह सकते

हैं। लेकिन वास्तव में ज्ञान तो आत्मा का स्वभाव है। आत्मा के अलावा ज्ञान कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। इसलिये आचार्य कहते हैं :

अज्ञानी की शरण गहो तो सुनो तुम्हें अज्ञान मिले,
ज्ञानी जन की उपासना से ज्ञान मिले वरदान फले।
जिसका स्वामी जो होता है प्रदान उसको करता है,
लोक-नीति सुनी सभी ने प्रमाण बिरला करता है।

यह इन्हीं श्लोकों का पद्यानुवाद है जो आचार्य महाराज ने लिखा है। आपको यह ध्यान रखना है कि आप हमेशा ज्ञान की उपासना करें। स्वयं अपनी आत्मा की उपासना करें या जो आत्मा की उपासना कर रहे हैं उनकी उपासना करें तो ज्ञान की प्राप्ति होगी। यह ज्ञान ही हमारा प्रकाश है, बाकी सब कुछ अन्धकार है।

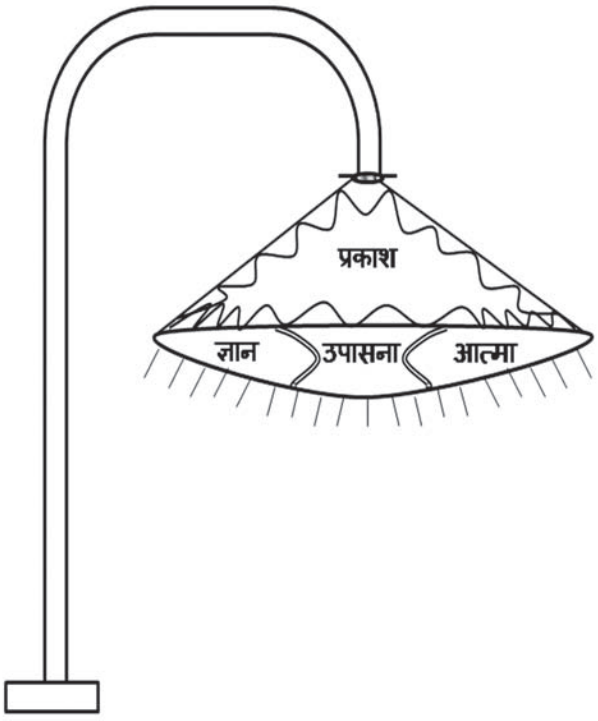

ज्ञानी बनने के लिए चेतना की या चेतना से संबंधित ज्ञान की उपासना करें।

आध्यात्मलीन योगी को लाभ

24

परीषहाद्यविज्ञाना-दास्त्रवस्य निरोधिनी।
जायतेऽध्यात्मयोगेन कर्मणामाशु निर्जरा॥

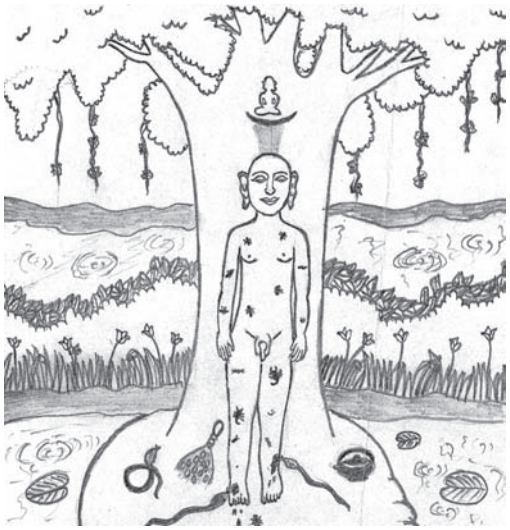

अन्वयार्थ–(अध्यात्मयोगेन) अध्यात्म के योग से/चिन्तन से **(परीषहाद्य-विज्ञानात्)** परीषह आदि का अनुभव/ज्ञान नहीं होने से **(आस्त्रवस्य)** आस्त्रव को **(निरोधिनी)** रोकने वाली **(कर्मणाम्)** कर्मों की **(निर्जरा)** निर्जरा **(आशु जायते)** शीघ्र होती है।

☞ **योग**
☞ **परीषह**

आचार्य पूज्यपाद महाराज जो निरन्तर आत्मध्यान की आराधना करने के लिए प्रेरित कर रहे है। आत्मा की उपासना कैसे करें, इसकी विधि बता रहे हैं। उनके समक्ष कोई शिष्य बैठा है और वह पूछता है– महाराज! आपने आत्मध्यान की विधि भी बताई, आत्मा का ध्यान करने से हमें कैसा फल मिलेगा यह भी बताया, ज्ञान की उपासना कैसे की जाए, अज्ञान को कैसे दूर किया जाए, यह भी बताया, लेकिन एक बात समझ में नहीं आती कि इस तरह से आत्मध्यान करने से हमें उसका वास्तविक फल क्या मिलेगा? ज्ञान की उपासना करें हम, ज्ञान को ही अनुभव में लाएँ। ये ठीक है कि हम अज्ञान से बच गये, इसका और आन्तरिक फल क्या है? इसका वास्तविक फल क्या है। इससे हमें कैसे मुक्ति मिल सकती है? इस प्रकार के ध्यान से हमें किस प्रकार मोक्ष मिल सकता है? इस बात की जिज्ञासा उस शिष्य ने गुरु महाराज से की है। तब वे गुरु महाराज इस श्लोक के माध्यम से बताते हैं कि आत्मध्यान से क्या क्या चीजें हमारे अन्दर घटित होती है तो यहाँ कहते हैं–

''परीषहाद्यविज्ञाना-दास्रवस्य निरोधिनी।
जायतेऽध्यात्मयोगेन कर्मणामाशु निर्जरा॥''

योग :

आचार्य कह रहे हैं– जब आत्मध्यान में लीन होंगे, अपने ही ज्ञान की अनुभूति करेंगे। उस समय पर आप अध्यात्म-योग से युक्त हो जायेंगे। एक योग होता है जो शारीरिक योग कहलाता है और एक आध्यात्मिक योग कहलाता है। शारीरिक योग वह होता है जिसके करने से हमारे शरीर पर फर्क पड़ता है। हमारे मन पर थोड़ा सा फर्क पड़ जाता है और थोड़ा बहुत हमारे विचारों में फर्क आ जाता है। उसको आचार्य कहते हैं कि वह तो एक शरीर के स्तर पर रहने वाला योग है। उस योग से आपको कोई विशेष-आन्तरिक उपलब्धि नहीं होगी। जो अध्यात्म-योग है, उसी से आपकी आत्मा में कुछ फर्क पड़ेगा। शारीरिक योग सभी लोग करते हैं। आध्यात्मिक योग यूँ कहें तो कोई भी नहीं करता है। वहाँ तक पहुँचने की गति हर किसी की हो ही नहीं पाती है। साधुओं में भी विरले साधु होते हैं जो इस अध्यात्म योग से गुजरते हैं। बाकी वह भी शरीर की क्रियाओं तक, मन और वचन की क्रियाओं तक सीमित होकर रह जाते हैं। यहाँ आचार्य कहते हैं कि अध्यात्म-योग किये बिना आपको वे लाभ नहीं होंगे जो लाभ हम आपको बताना चाह रहे हैं। शारीरिक योग से आप बहुत परिचित हैं। जिस तरह से आपको शारीरिक योग से स्वास्थ्य अनुभव में आता है ऐसे ही आध्यात्मिक योग से आत्मिक स्वास्थ्य की अनुभूति की जाती है। आध्यात्मिक योग जब अपने अन्दर धीरे-धीरे आने लग जाता है तो ऐसा आत्मिक स्वास्थ्य उससे उत्पन्न होता है कि उस धारा में, उस जीवात्मा के अन्दर कभी भी कोई बाहरी, किसी भी प्रकार की परिस्थितियाँ बन जाये, उसके अन्दर किसी भी प्रकार की बैचेनी उत्पन्न नहीं होती। जब आत्मिक-स्वास्थ्य

शारीरिक योग शरीर को एवं आध्यात्मिक योग आत्मा को प्रभावित करता है।

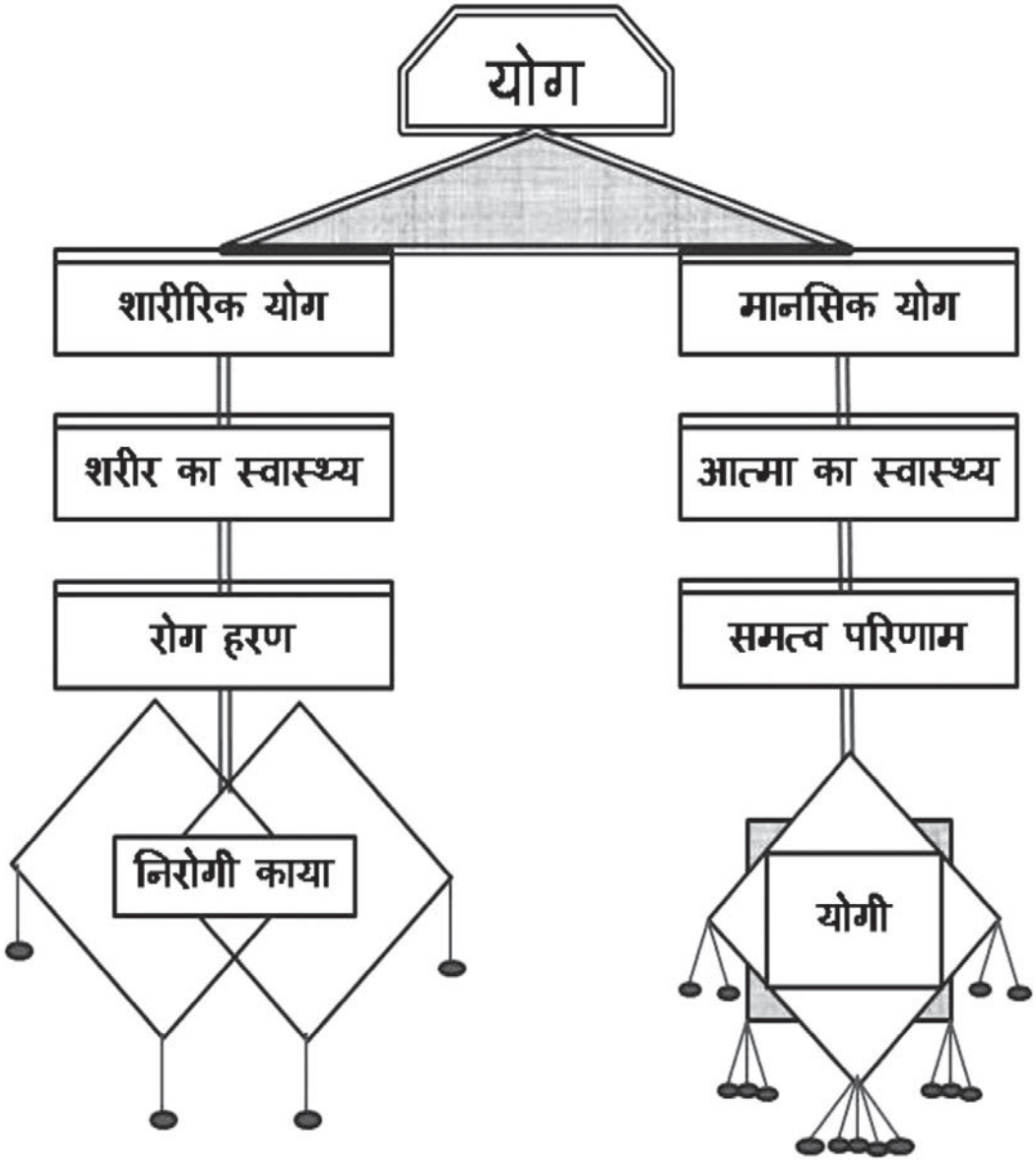

उत्पन्न होने लग जाता है तब भीतर से न कोई आकुलता होती है न कोई घबराहट होती है, ना कोई चिन्ता होती है, न कोई भय होता है। कुछ भी हो जाये और जब इस प्रकार का अध्यात्म योग उसके अन्दर आ जाता है तभी वह चीज घटित होती है। वह पूर्ण समता में ढलने लग जाता है और जब समत्व की आराधना होती है तभी यह चीज घटित होती है कि उसके लिए गाली दे तो फर्क नहीं

आत्मिक स्वस्थता आने पर भीतर की आकुलता नहीं होती है।

पड़ता और उसकी बेइज्जती करे तो भी फर्क नहीं पड़ता। यह कहना आसान होता है, लेकिन हर योगी इस भावना में ढलने नहीं पाता। गाली देने पर, बेइज्जती करने पर उसके अन्दर किसी भी प्रकार का हर्ष-विषाद उत्पन्न न हो, उसी का नाम वस्तुतः योगी कहा जाता है। जो इस अध्यात्म के योग से ढल रहा है वह योगी है। मन वचन काय को थोड़ी देर के लिए विराम देने का नाम योगी नहीं है।

यहाँ आचार्य कहते हैं ऐसे अध्यात्म-योग में ढलो कि आपके अन्दर समत्व की भावना बढ़ती चली जाये। आपके अन्दर किसी भी प्रकार का हर्ष-विषाद, बाहरी किसी भी स्थिति में उत्पन्न न हो और आप इस तरह की समता में ढल जाओ कि कोई भी परीषह आपके ऊपर आ जाये तो वह परीषह आपको कष्ट जैसा ना लगे। अध्यात्म-योग में इतना लीन हो जाओ कि परीषहों का भी आप को ज्ञान न रहे। जो हमारे शारीरिक कष्ट होते हैं तथा मानसिक कष्ट होते हैं उन्हीं का नाम परीषह है। 22 प्रकार के परीषह होते हैं और उन सब परीषहों में सभी के सभी परीषह शरीर और मन से सम्बन्धित होते हैं। या तो आपको शारीरिक कष्ट होंगे या मानसिक कष्ट होंगे। उन सब में किसी भी प्रकार से खेद-खिन्न नहीं होना या परीषहों से विचलित नहीं होना यानि आपको परीषहों का ज्ञान ही न हो, भान ही न हो, ऐसे जब ध्यान में लीन हो जाता है तब वह अध्यात्म-योग अन्तरंग में कुछ क्रियाएँ घटित करता है। उन क्रियाओं की जानकारी भी यहाँ दी जाने वाली है, लेकिन पहले यह जानना कि इस प्रकार के अध्यात्म योग से परीषहों को सहन करने की क्षमता आ जाये और उन परिषहों को सहन करते हुए भी आपके मन में किसी भी प्रकार की खेद-खिन्नता न रहे, प्रसन्नता ही रहे। सामान्य संसारी प्राणियों की तरह नहीं, एक अलौकिक आदमी की तरह। जिसका इस शरीर से, मन से और बाहरी संसार से कोई सम्बन्ध नहीं होता, वही व्यक्ति अपने भीतरी संसार में आनन्दित रहता है। जब इस भीतरी संसार में उसे आनन्द आने लग जाता है तो बाहर के किसी भी परीषह से उसको कोई खेद खिन्नता नहीं होती और उस समय ही वह इस आनंद के योग में अध्यात्म के योग में बैठता है तो उसके लिए वह पंक्तियाँ घटित होती हैं। जो अभी आप सुन रहे थे, सिद्धों की श्रेणी में आने वाला जिसका नाम है। सिद्ध पुरुष बन जाता है।

सिद्ध पुरुष का मतलब ही वह होता है कि उसे सब कुछ सिद्ध हो गया। बाहर की कोई भी चीजें उसके लिए परेशान करने वाली नहीं है और बाहर किसी भी सिद्धि के प्रयोग में नहीं पड़ा है। न उसे बाहर की किसी भी सिद्धि को प्राप्त करना है, न कोई बाहर की उपलब्धि चाह रहा है। कोई भी ख्याति की इच्छाएँ, किसी भी प्रकार की मन के अन्दर कामना ये सब उसके अन्दर से बिल्कुल शांत हो जाती हैं, नष्ट हो जाती हैं तब वह सिद्ध-पुरुष बन जाता है। उस सिद्ध-पुरुष के लिए यहाँ पर कहा जा रहा है कि वह परीषह आदि से कभी भी विचलित नहीं होता। जो भी कष्ट हैं उन कष्टों को भी वह हँसते-हँसते अपने मन की प्रसन्नता के साथ में सहन कर लेता है और उसके

कष्ट जितने जितने बढ़ते हैं उतने-उतने उसको आनन्द की अनुभूति होती है। बाहर देखने वालो को वे कष्ट लगते हैं लेकिन जो योगी होता है उसको कष्ट में आनन्द आता है। एक जगह पूज्यपाद महाराज जिन्होंने 'इष्टोपदेश' ग्रन्थ की रचना की है वही आचार्य पूज्यपाद महाराज जब 'सर्वार्थसिद्धि' ग्रन्थ में परीषहों का वर्णन करते हैं तो उस समय पर लिखते हैं कि मान लो कोई मुनि महाराज हैं आहार के लिए गये हैं, कई दिनों का उपवास है और उसके बाद भी आहार के लिए निकलने पर उन्हें आहार का लाभ नहीं हुआ। वे जिस जिस गाँव में गए, जिस घर में गये, वहाँ कोई पड़गाहन करने वाला नहीं था। मान लो कभी-कभी तो ऐसा भी होता था। जैन घरों को ढूँढ़ना पड़ता था। आज की तरह नहीं कि जैन लोग पहले से ही तैयार रहते हैं कि महाराज मन्दिर से निकलें और हम 'नमोस्तु-नमोस्तु' करने खड़े हो जाएँ। पहले घरों में जाना पड़ता था, घरों में जाकर देखना पड़ता था, आँगन तक पहुँचने के बाद पता पड़ता था कि यह जैन है कि नहीं है। फिर उसने महाराज की मुद्रा देख कर पड़गाहन किया 'महाराज! अत्र अत्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ तिष्ठ' तो महाराज खड़े हो गए और कभी-कभी तो ऐसे घरों में पहुँच जाते थे जहाँ कोई जानता नहीं था कि यह क्यों आए हैं? 'भैया कुछ ले लो', 'कुछ पी लो', 'कुछ खा लो' ऐसा किया तो महाराज वहाँ से निकल गये। यह परिस्थितियाँ हुआ करती थीं। पहले पता भी नहीं रहता था कि किन घरों में कौन से लोग रहते हैं। यहाँ पर जैन हैं कि नहीं हैं। यहाँ तक लिखा हुआ है कि अगर आपका ऐसे किसी घर में प्रवेश हो गया जो निम्न घर है या जिसकी जाति निम्न है, शूद्र आदि के घर में यदि प्रवेश हो गया या तो आप लौट आना या आकर किसी के घर में नहीं जाना। तब अन्तराय हो जाता है ऐसे घर में प्रवेश करने के बाद भी अगर वह लौट कर आ गये, उनके लिए लाभ नहीं हुआ, अलाभ हो गया तो भी वह मुनि महाराज यह गिनते हैं हमारे लिए यह बाहरी भोजन का लाभ नहीं हुआ, चलो बहुत अच्छा हुआ। जिनकी दृष्टि में कोई और चीज होगी तो उनकी दृष्टि में वह भी बहुत अच्छा कहलाएगा। चलो, इस शरीर के लिए नहीं दिया, नहीं मिला बहुत अच्छा हुआ। जो हमको यह अलाभ हुआ। इससे हमारी आत्मा के अन्तराय कर्म का विनाश हो गया। इससे हमने यह क्षुधा परीषह जीत लिया, यह लाभ हो गया। इस क्षुधा परीषह को जीतना, यह जो कष्ट है, इस कष्ट को जीतने का हमें और साहस मिलना, यह सबसे बड़ा लाभ है, न कि हमारा यह कष्ट कम हो गया। चलो, अच्छा हो गया, साधुओं की सोच दूसरी क्वालिटी की हुआ करती है। जो आप सोचोगे, उससे उल्टा सोचते हैं, आप कहोगे कि देखो इनके लिए मिला नहीं और कहेंगे हमें जो कभी भी मिला नहीं, वह हमें आज मिल गया। हमें अपने परीषहों को जीतने का लाभ मिल गया क्योंकि हमें कर्म की निर्जरा करने का लाभ मिल गया और इन परीषहों को जीतने में जो हमारे अन्दर समता परिणाम बना रहेगा, वह हमारा सबसे बड़ा लाभ है। इसलिए वह अलाभ को भी लाभ गिनते हैं। दूसरों के कहने में अलाभ आयेगा पर वह उनके लिए बहुत बड़ा लाभ होगा, उसी लाभ के कारण से कर्म की निर्जरा होगी।

परीषहों से अप्रभावित, भीतर से आनंदित, इच्छा रहित व्यक्ति ही सिद्ध बनता है।

लेकिन अगर आपसे कहा जाये कि यह अध्यात्म योग के माध्यम से अपने कर्मों का संवर करो। अपने कर्म की निर्जरा करो, इन आन्तरिक फलों की प्राप्ति करो तो आपको नौ बजे आने में भी कष्ट होगा क्योंकि वो आपकी रुचि नहीं है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि आप आत्मध्यान कर पायेंगे, जब जीवादि सात तत्त्वों का अच्छा ज्ञान भी हो, जब आपको अपने जीव तत्त्व का श्रद्धान होगा तभी आपको यह श्रद्धान होगा कि कर्म का आस्रव हो रहा है, कर्म का बन्ध हो रहा है। इन कर्मों के आस्रवों को रोकना है कर्मों के बन्धों को रोकना है तो आचार्य कहते हैं कि इन कर्मों के बन्धो को रोकने के लिए आपको दो चीजें याद करना है। एक कहलाता है-द्रव्यास्रव और एक कहलाता है– भावास्रव। द्रव्य-आस्रव से द्रव्य बन्ध होता है और भाव-आस्रव से भाव बन्ध होता है और इन दोनों चीजों को अगर आप ध्यान रखेंगे तो आपके श्रद्धान में ये चीजें आ जायेगी तो आप अपने अन्दर उस आस्रव को रोकने का एक परिणाम बना लोगे। द्रव्यास्रव का मतलब होता है- आत्मा में हर समय कर्मों का ऐसा प्रवाह बह रहा है जैसे आप देख रहे हो कि जब उन बाँधो के दरवाजे खुल जाते हैं पानी बाहर निकलने लग जाता है ऐसे ही आत्मा के अन्दर हर समय पर उस पानी की तरह कर्मों का आगमन होता रहता है। वह दरवाजे हमेशा खुले रहते हैं उन दरवाजो को बन्द करना, कर्मों के आस्रव को रोकना, उन कर्मों के आस्रव को रोकने के लिए आचार्य कहते हैं। यह तो हो रहा है द्रव्यास्रव जो हर समय कर्मों का आस्रव है। कर्म माने द्रव्य है, वह द्रव्य आस्रव है लेकिन वह द्रव्य आ कहाँ से रहा है। भावों का आस्रव रुकेगा तो द्रव्य का आस्रव रुक जायेगा। कर्म का आस्रव तब रुकेगा जब आपके भाव-आस्रव रुके। भाव-आस्रव आपके मन, वचन और काय से और परे रहने वाली चीज है। आपके मन,वचन और काय तो थोड़ा सा आपके शारीरिक योग से ठीक हो जायेंगे, शांत हो जायेंगे। लेकिन भाव आस्रव आपका रुकने वाला नहीं है जब तक कि आप उस भाव को ना समझें।

परीषह :

आचार्य कहते हैं कि देखो परीषहों का जब आपको लिए ज्ञान न रहे और आप अपने अध्यात्म योग में लीन हो तो उस समय पर आपकी आत्मा में जो कर्म चिपके हुए हैं वे कर्म इतने अधिक मात्रा में झड़ेंगे जो पहले कभी नहीं झडे। उसी को कहते हैं -कर्मणामाशु निर्जरा। शीघ्र ही कर्मों की निर्जरा होने लग जाती है। उन कर्मों की निर्जरा होगी तो आपके मन के अन्दर आस्रव भी रुक जाएगा। आत्मा में आस्रव भी रुक जाएगा क्योंकि आस्रव रुके बिना कर्म की निर्जरा नहीं होती। आस्रव रुकने का मतलब है कि आपके भाव बाहर के किसी भी वस्तु की ओर बहें ही नहीं। आस्रव का मतलब है कि आपके भाव अपने कर्म के संवर, अपने कर्म के निर्जरा के प्रति रहे और आप अपने आत्मतत्त्व के प्रति उन्मुख हो तो आपके भावों में आस्रव रुक जाएगा। भावों का आस्रव रुकेगा तो कर्म की निर्जरा अवश्य होगी, तभी आपको आन्तरिक फल मिलेंगे। इन फलों की इच्छा

परीषहों को जीतने से कर्मों की निर्जरा करने का लाभ मिलता है।

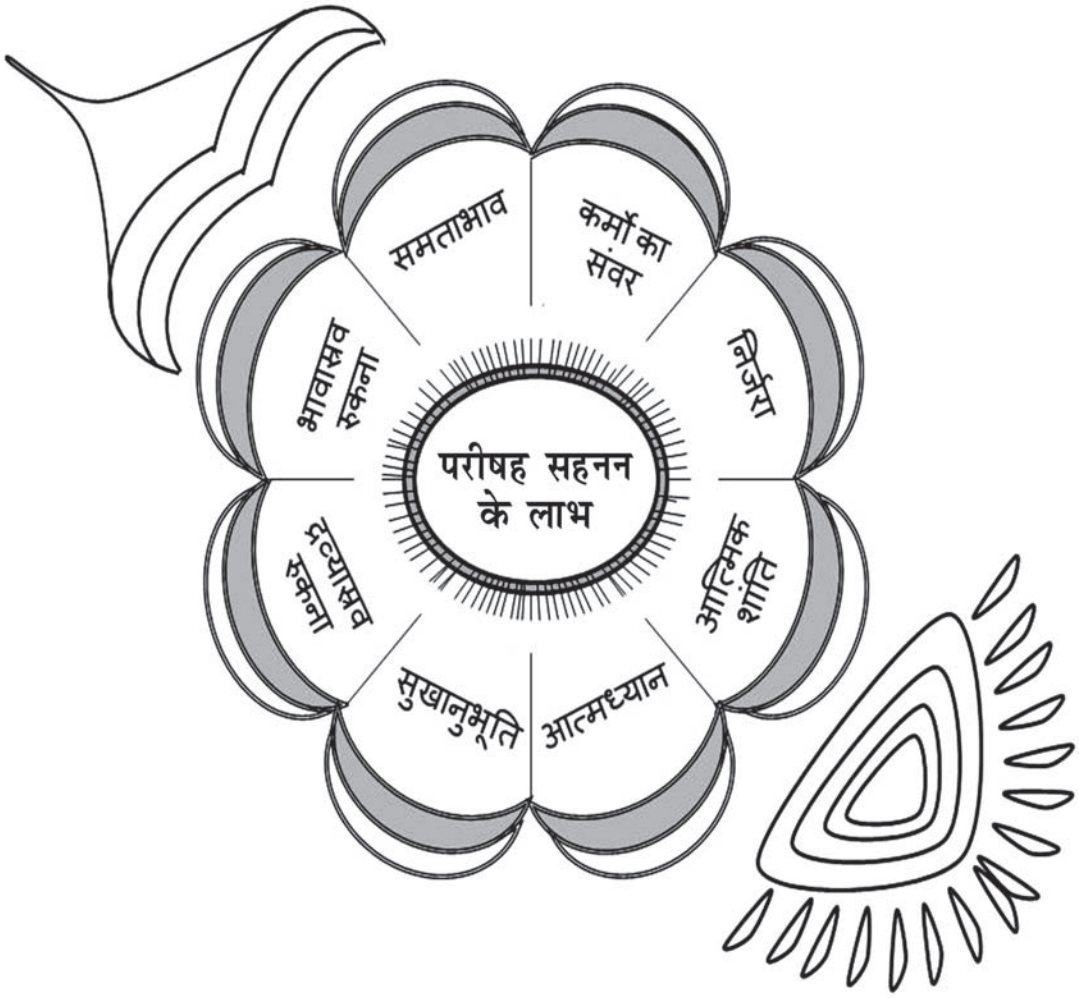

से ही यह अध्यात्म-योग होता है। बाकी के जितने भी योग हैं वो सब शारीरिक लाभ की इच्छा से होते हैं। कोई भी व्यक्ति योग करने बैठेगा तो पहले यह सोचेगा, इससे हमें क्या लाभ मिलना है? हमारे लिए कौन से रोग हैं? यह रोग हमसे दूर हो जाए तो बहुत अच्छी बात है। लेकिन यह कर्म रोगों को दूर करने की इच्छा हर किसी की नहीं होती है। आत्मा में हर समय आस्रव होता है कर्मों का बन्ध होता है। कर्म आत्मा के साथ में बिल्कुल एकमेक होकर बँधे हैं इन कर्मों से हम कैसे मुक्ति प्राप्त करें? कौन से ऐसे भाव हैं जिनसे यह कर्मों का आस्रव होना रुक जाए। यह योग जिसने सीखा तो उसके लिए यह शारीरिक रोग भी महत्व नहीं रखता। लेकिन यह ध्यान रखना ऐसे योगियों के लिए भीड़ नहीं मिलेगी और ऐसी योगियों की भीड़ भी नहीं होती। दुनियाँ में जो योग

आत्मा के अंदर हमेशा कषाय का उदय चलता ही रहता है, यही भाव आस्रव है।

चल रहा है वह भीड़ वाला योग चल रहा है। शरीर का लाभ मिलता है तो लोग दौड़ते हैं। अगर आपसे कहें कि आपकी आत्मा से कर्मों की निर्जरा करायेंगे, कल से आपको आत्मा का ध्यान लगवायेंगे। आप कहेंगे कि आप ही आत्मा का ध्यान लगाओ और आप ही करो कर्म की निर्जरा, हमें कुछ नहीं करना। आप तो यह बताओ कि हमारी कमर का दर्द कैसे ठीक हो? हमारे घुटनों का दर्द कैसे ठीक हो? अगर ऐसा कोई उपाय बताओ तो हम आ जाएँगे, अगर आप कहो तो चार बजे आ जाएँगे, अगर आप कहो तो पाँच बजे आ जाएँगे लेकिन फिर भी भाव आस्रव तो चलता ही रहता है। एक आस्रव वह है जो हमें बाहर से दिखाई देगा, हमारे मन वचन काय के माध्यम से हमें अनुभव में आयेगा। एक आस्रव वह होगा जो हमारे भावों में चलता रहेगा, आत्मा के अन्दर हमेशा कषाय का उदय चलता ही रहता है और वह कषाय का उदय चलने का नाम ही है भाव का आस्रव। वह भाव जो हमारी इनर फीलिंग में रहता है, हमारी अंतरंग की इच्छा में रहता है उस आस्रव का रुकने का नाम ही भाव आस्रव रुक जाना। किसी भी प्रकार की कोई इच्छा ही नहीं होना। क्रोध करना तो दूर, जो क्रोध करे हमारे ऊपर, उसके बारे में भी कभी क्रोध के साथ नहीं सोचना। इतनी उल्टी परिणति जब हो जाती है तो वह हो जाता है भाव आस्रव का रुक जाना। स्वयं क्रोध करना तो दूर की बात है लेकिन अगर कोई दूसरा भी क्रोध कर रहा हो तो भी हमारे अन्दर क्रोध ना आए, हमें महसूस ही ना हो दूसरा क्रोध कर रहा है। तब हमारे अन्दर वह भाव-आस्रव का रुकना होता है कि हमारे भावों में क्रोध है ही नही। इसको कहते हैं आचार्य- 'भाव-आस्रव निरोधनी'। आपके लिए जैसे ही भाव आस्रव रुका वैसे ही आपके अन्दर जो क्रोध कषाय पहले का जमा हुआ बैठा है वह भी निर्जरा को प्राप्त हो जाएगा, वह भी झड़ जाएगा क्योंकि आपके अन्दर आत्मबल आ गया। आत्म बल आया तो क्रोध का बल आपके ऊपर काम नहीं करेगा। आत्म बल के माध्यम से आपने उस क्रोध के बल को जीत लिया। जो क्रोध आपके कषाय के रूप में उदय आने वाला था, आपने उसका अनुभव नहीं किया। इसकी फीलिंग आप के अन्दर नहीं आयी मतलब आपने अन्दर उदय आने वाले क्रोध को जीत लिया। उसी को कहते हैं- क्रोध-कषाय को जीत लेना, परीषह को जीत लेना। यह भी एक परीषह है- एक तो क्रोध नहीं करना और एक क्रोध को जीत लेना। नहीं करना तो आप सभ्यता के तौर पर नहीं करेंगे। यह बात तो ठीक है लेकिन क्रोध को जीतना उनके लिए होता है कि कोई कितना भी उनके ऊपर पत्थर बरसा दे, ओले बरसा दे, कितनी भी बुरी-बुरी बातें सुना दे लेकिन फिर भी उनके मन में क्रोध नहीं आयेगा फिर भी उसके प्रति करुणा का ही भाव आएगा। आया, तो भी करुणा का भाव ही आया और कुछ नहीं आएगा। विचार करें कि देखो आत्मा कितना क्रोध कर-कर के कितना अपने अन्दर आस्रव कर रहा है और कितना क्रोध का अपने अन्दर डिपोजिसन कर रहा है और बंध कर रहा है। यह विचार की परिणति आएगी तो आपको सामने वाले के ऊपर क्रोध नहीं आएगा। अगर आपको यह श्रद्धान हो जाए कि क्रोध

कर्मों के आस्रव को रोकने के लिये मानसिकता बनाने पर ही कर्मास्रव रुकेंगे।

करने से हमारे अन्दर क्रोध कषाय और बैठ जाती है। क्रोध बंध हो जाता है फिर वह क्रोध-कषाय उदय में आती है। फिर हमारे लिए परिणाम होता है कि जो क्रोध कर रहा है उसको देखकर भी आप यह सोच सकते हो कि यह कितना कर्म का बन्ध कर रहा है कितनी कषाय कर रहा है हे भगवन्! इसके परिणाम अच्छे हो जायें। इसके अन्दर कषाय की कमी हो जाये, कहीं इसकी कषाय से नरक व तिर्यञ्च आयु का बन्ध न हो जाये। ऐसी करुणा के परिणाम जब आपके अन्दर आ जाये, उस समय पर सोचना हमने क्रोध-कषाय को जीत लिया। यह परिणाम आपके अन्दर आ सकते हैं। जब आपको इस आस्रव तत्त्व पर बन्ध तत्त्व पर श्रद्धान हो जाये। कषाय करने से बहुत कर्मों का आस्रव होता है। कर्मों का बन्ध होता है, हम कहते भी जाते हैं और कषाय करते भी जाते हैं। जब हम खुद भी कहते हुए कषाय करेंगे जब दूसरा हमारे ऊपर करेगा तो हम उससे कैसे बच पायेंगे? यह परिणति अगर आदमी के अन्दर आ जाये तो उसकी शांति को भंग कर नहीं सकता। उसके अन्दर के समता परिणाम को कोई मिटा नहीं सकता और उसके अन्दर हमेशा आस्रव रुका हुआ रहेगा क्योंकि वह हमेशा अपने अन्दर इस प्रकार के समत्व के भाव रखे हैं इससे कर्म की निर्जरा होती है। समता ही कर्म की निर्जरा कराने वाली है। समत्व का भाव कोई भी गुस्सा करने वाला सामने बैठा हो लेकिन आप उसकी बात सुन लेते हैं सुन कर के अपने मन में प्रसन्न हो ले। अगर आपको यह आ जाए तो आप घर में ही बैठे-बैठे देवता कहलाने लग जाएँ। घर में लोग आप को देवता की तरह पूजने लग जाएँ। घर के लोगों का मन हो जाए कि भगवान की आरती उतारने कहाँ जाना, इन्हीं की आरती उतारो। आज तो कितना ही क्रोध किया परन्तु इन्होंने आज कुछ कहा नहीं। वह मन तभी बनेगा जब आप का मन इस प्रकार हो जाए। जो भी हो, हमें गुस्सा नहीं करना।

अगर यह भावना जुड़ गई तो आपको सब करने से भी भाव आस्रव नहीं रुकेगा, भाव बन्ध नहीं रुकेगा, कर्म की निर्जरा नहीं होगी। कर्म की निर्जरा करने के लिए तो आपको सब भाव छोड कर सब प्रकार की अशांति के बावजूद भी जब आप इस तरह की परिणति अपनाये कि हमें कर्म की निर्जरा करने के लिए कुछ करना है। कर्म को रोकने का आस्रव-निरोध करने के लिए ही हमें कुछ करना है। तभी आपके लिए वह कर्म का आस्रव रुकेगा और कर्म का संवर होगा। यह कर्मों का आस्रव रोकने के लिए आपको अपने भाव को रोकना पड़ेगा। भाव जिस समय आपके जैसे बन रहे हैं आप उन भावों में यदि बहते चले जा रहे हैं तो आप भाव-आस्रव निरंतर करते चले जा रहे हैं। भावों को रोको, किसी को मत रोको, कोई आपको अहंकार के साथ बोले तो उसको मत रोको, अपने भावों को रोक लेना। अपन ने रोकने के लिए उससे गलत भाव कर लिया तो तुम्हारे लिए कर्म का आस्रव हो जायेगा। उसको भी मत रोको, उसको रोकने में भी गुस्सा आ सकता है। जो गुस्सा कर रहा है उसको रोकोगे तो कैसे रोकोगे- क्यों तू कितना गुस्सा करता है? जब देखो तब उल्टा सीधा बोलता रहता है, जब देखो तब गुस्सा करता रहता है। तुम भी तो गुस्सा कर रहे

हो। इस तरह से उसको रोक भी रहे हो और बोल भी रहे हो तब तुम्हारे अन्दर वह गुस्सा हो रहा है। उसके प्रति गुस्से को गुस्से से रोका नहीं जा सकता है। सब चीजें एक दूसरे के साथ भी हो सकती है। क्रोध से कभी भी क्रोध का अभाव नहीं होता। क्रोध से क्रोध का नाश नहीं होता और अहंकार से अहंकार का नाश नहीं होता। हर आदमी आज इसी दौड़ में लगा है। वह कितना अहंकार करता है। हम उससे ज्यादा अहंकार करके बतायेंगे। उसके पास में इतना पैसा है हम इतना पैसा लाकर बतायेंगे। उसे इतने पैसो की जरूरत नहीं है। उसे केवल अपने अहंकार को पुष्ट करने की जरूरत है। उससे बढ़कर के अहंकार दिखाने की जरूरत है और कुछ नहीं है। पैसे से अगर सुख मिलता है तो पैसा उसके पास में उतना है जितना दूसरों के पास में नहीं है लेकिन उसे उससे सुख नहीं मिल रहा है। उसे पैसे की और इच्छा इसलिए है ताकि हमारा अहंकार इससे बढ़कर हो जाये और हमारा अहंकार इससे कम न रह जाये। इसलिए आदमी यह बिजनेस कर रहा है, सब कर रहे हैं लेकिन अपने अन्दर यह भाव आस्रव को रोकने का काम नहीं कर पा रहा है। यह दवाई इसको कहीं नहीं मिल पाती है और इस दवाई को लिए बिना उसके लिए कोई उपचार सही से होने वाला नहीं। जब तक कि अपने अध्यात्म की ओर झुकाव नहीं होगा, अध्यात्म-योग नहीं सीखोगे तब तक आपके अन्दर आनन्द की अनुभूति नहीं होगी। परीषह आने पर भी उनका ज्ञान नहीं करना। आदमी तो दूसरों को ज्ञान कराना चाहता है देखो हम कितना गुस्सा कर लेते हैं, कितना अहंकार करते हैं वह अहंकार भी दूसरों को दिखाते हैं, क्रोध भी दूसरों को दिखाते हैं।

इसके पीछे घूमते घूमते-और वही इच्छा निरन्तर आपको कर्म का बन्ध करा रही है आप अपनी इच्छाओं पर जितना-जितना कन्ट्रोल करेंगे उतना आपके लिए कर्म का आस्रव रुकने लग जायेगा जैसे कि बाँध को बनाकर के पानी के प्रवाह को रोका जाता है। ऐसे ही अपने इच्छाओं को बाँध करके इन कर्मों के आस्रव को रोका जाता है। श्रद्धान होना चाहिए। आपको जीवादि तत्त्वों पर श्रद्धान होगा तभी आप सोचोगे- मेरी आत्मा के अन्दर आने वाले कर्म रुक जायें। इन कर्मों का अभाव हो जाये, इन कर्मों की निर्जरा हो जाये लेकिन आप कर्म की निर्जरा करते ही नहीं। अगर करने भी बैठ जाये तो नोकर्म की निर्जरा कर लोगे, आप शरीर की निर्जरा कर लोगे, कर्म की निर्जरा में आपकी परिणति आती ही नहीं। गुस्सा आ गया आज भोजन नहीं करना। भोजन नहीं करोगे तो शरीर को कष्ट होगा, शरीर की निर्जरा होगी, नौकर्म की निर्जरा कहलायेगी, कर्म की निर्जरा नहीं कहलायी। आज किसलिए भोजन नहीं कर रहे हो? गुस्सा आ गया इसलिए भोजन नहीं कर रहे हो, कहीं आपको गुस्सा आ गया, भोजन भी नहीं करना। चलो, आज क्षेत्र पर चलते हैं, वहीं पर आज दिन भर बैठेंगें, लेकिन आपके मन में क्या है? घर के प्रति गुस्सा है। आप क्षेत्र पर आ भी गये। आपके मन में आ गया पहले व्रत लिये थे, आज उसी में से एक व्रत कर लेते हैं। चलो आज कुछ खाना तो है ही नहीं, उपवास भी कर लेते हैं या व्रत कर लेते हैं। चलो, हमने भगवान की पूजन

भाव आस्रव विचारों के स्तर पर न होकर आत्मा के स्तर पर होता है।

भी कर ली, एक जाप भी कर ली तो भी आपको उस व्रत से कोई निर्जरा होने वाली नहीं है। क्यों नहीं? क्योंकि आप जो कुछ भी कर रहे हो वह गुस्से में कर रहे हो। गुस्से में भी तपस्या की जाती है, गुस्से में भी आदमी व्रत कर लेता है। गुस्से में भी अनशन हो सकता है ये सब चीजें अगर आपके व्यवहार में क्रोध है। गुस्से के साथ है वह आप यह मानलो, आप यह मानकर चलना यह सब कुछ हो सकता है लेकिन किसके लिए करोगे, अपने कर्मों की निर्जरा के लिए नहीं, सामने वाले को पीड़ा पहुँचे, दुःख पहुँचे, इस भावना से कर रहे हो। भावना क्या जुड़ी आपकी- अगर हम ऐसा करेंगे, सामने वाला परेशान होगा, दुःखी होगा और वह दुखी होगा तो हमको सुख होगा। भावना क्या है भीतर, उसके दुख से हमें सुख मिलेगा वह दुःखी हो, वह परेशान हो वह हमसे बार-बार पूछे वो हमको मनाये, वह हमसे क्षमा माँगे।

आचार्य कह रहे हैं कि कोई दूसरा भी दिखाए तो भी तुम नहीं करना, अपने आप को दिखाने की बात तो बहुत दूर की है। यह उल्टी परिणति जब दिमाग में बैठ जाएगी, आपके अन्दर यह कर्मों की निर्जरा होना शुरू होगी। वही कर्मों की निर्जरा उसके अन्दर अनन्तानुबंधी आदि कषायों का अभाव करती है। उस कषाय के अभाव होने पर ही भाव-आस्रव रुकता है। इसीलिए आचार्य कहते हैं कि भाव आस्रव की ओर देखो, जो इच्छाएँ तुम्हारे अन्दर पड़ी हैं वे आत्मा के अन्दर जो अनेक प्रकार की भावनाएँ पड़ी हैं जो आप व्यक्त नहीं कर पाते हैं, वे केवल आप महसूस कर सकते हो, उन इच्छाओं को, उन अनुभवों को रोको, उसका नाम है भाव-आस्रव का रुकना। आप स्वयं बैठे-बैठे इनको रोक लेंगे। अपनी आत्मा में कर्म आ रहे थे, कर्म के बल से आत्मा में कर्म का बंध हो रहा था, वह रुक जाएगा। आत्मा का बल जागृत हो जाएगा। दो चीजें हैं, उन दोनों के बीच यह चीज घटित होती है-आत्मा और कर्म। अगर आपने कर्म-विज्ञान को समझ लिया, कर्म-सिद्धान्त को समझ लिया तो आप इस कर्म को रोकने के भी परिणाम बनाएँगे। आखिर हमारी इच्छाएँ तो पूर्ण होती नहीं। हम भीतर इच्छा करते-करते मर जाएँगे। कब हम बिना इच्छा के जीवन जीयेंगे। जब तक आपके अंदर कोई न कोई इच्छा चल रही है तब तक आपके अंदर संसार चल रहा है। ऐसा कोई आदमी नहीं जिसके अन्दर इच्छा न हो, उस इच्छा के कारण से ही कर्म का आस्रव हो रहा है।

किसके माध्यम से कौनसा आस्रव होता है, तब तक आप भाव-आस्रव नहीं रोक पायेंगे। शरीर से, मन से और वचन से आपने अगर थोड़ी सी अपने अन्दर कुछ भावना को परिवर्तित करके उनका प्रयोग करना बन्द कर दिया या उनसे बच गये तो भी आचार्य कहते हैं कि आप अभी भाव आस्रव से नहीं बचे हो। भाव-आस्रव अलग है। वह कहाँ है? वह है -आन्तरिक अनुभव-जो विचारों से भी परे होते हैं, जो हमारी बुद्धि में आ रहा है और जो भीतर चल रहा है, वह अलग है। जैसे मान लो आपको क्रोध आता है। एक व्यक्ति वह भी हो सकता है जो क्रोध का विचार करता

बाहरी जोड़-तोड़ में लगे रहने से व्यक्ति अपनी आत्मा के बारे में सोच नहीं पाता।

है। इस क्रोध को तुरन्त अपने विचारों में रोक लेता है। विचार आया क्रोध करने का, क्रोध करने का आपने भाव किया लेकिन आपने रोक लिया। यह क्या हो गया? यह आपका रुकना, एक विचार के स्तर पर रह गया, यह आत्मा के स्तर पर नहीं हुआ। क्रोध नहीं होने के बाद भी आपके अन्दर क्रोध चल रहा है। क्रोध नहीं करने के बाद भी आपके अन्दर क्रोध कषाय का आस्रव हो रहा। यह कैसे पता पड़ेगा? यह आपको आस्रव तत्त्व के श्रद्धान से पता पड़ेगा। क्रोध नहीं करना या क्रोध नहीं दिखाई देना ये कोई बहुत बड़ी चीजें नहीं है। दुनियाँ में आपको ऐसे बहुत से लोग मिल जायेंगे जो आपसे बहुत शांत होंगे। ऐसे अजैन अनेक व्यक्ति मिल जायेंगे बिल्कुल अच्छे शांत परिणाम रखने वाले होंगे। नम्र व्यवहार करने वाले होंगे, क्रोध तो उनके चेहरे पर दिखे ही ना, इतने सभ्य-पुरुष मिल जायेंगे लेकिन उसके बावजूद भी उनके अन्दर क्रोध कषाय नहीं है या क्रोध का आस्रव नहीं हो रहा है, ऐसा नहीं है। आप इतना सुनने के बावजूद भी क्रोध करेंगे, अंहकार करेंगे, सब करेंगे और उन्होंने ज्ञान भी नहीं लिया है लेकिन फिर भी उन्होंने मन-वचन-काय को इतना सम्भाल लिया, इतना प्रशिक्षित कर लिया वे अपने मन-वचन-काय से क्रोध को, अहंकार को दूसरों को दिखायेंगे नहीं, प्रदर्शित नहीं करेंगे, इतने ही सभ्य बन जायेंगे। ऐसी उनकी परिणति बन जाती है। अनेक साधु पुरुष आपको देखने को मिल जायेंगे जो योग वगैरह सिखाते रहते हैं। अनेक प्रकार की ट्रेनिंग देते रहते हैं, अनेक प्रकार की कोचिंग करवाते रहते हैं। वे लोग भी आपको सभ्य नजर आयेंगे और भीतर से भी आपको लगेगा कि इनके पास भी बहुत शांति है, ये कभी क्रोध नहीं करते हैं, कभी अहंकार नहीं करते हैं।

एक बार एक व्यक्ति के अन्दर ऐसे ही प्रवचन सुनने के बाद मन में भाव आया कि देखो अपन को भी इस धन दौलत से कुछ मिलना नहीं है तो उसने मन बनाया। एक दिन धन-दौलत सब इकट्ठा किया और वह धन दौलत इकट्ठा करके एक साधु के पास पहुँच गया। वह जैन साधु नहीं था, कपड़े वाला साधु था। उसके पास पहुँच करके उसने कहा- साधु जी! हमने सब कुछ कमा लिया, सब कुछ अपने लिए अर्जित कर लिया लेकिन हमें किसी से सुख नहीं मिला। हमारे मन में आया कि ये हमें कोई सुख देने वाली चीज नहीं है इसलिए हम यहाँ पर इसे लेकर आये हैं और अब हम यह जानना चाहते हैं, बताओ, इसका हम क्या करे ? हमें इससे कोई सुख शांति नहीं मिली। हमें कोई सुख-शांति का उपाय बताओ। क्या पूछा ? सुख शांति का कोई उपाय बताओ? यह धन दौलत यह पड़ी है। उस साधु ने देखा कि इस आदमी को बताना पड़ेगा कि सुख शांति का उपाय कहाँ से आता है? वह जो पोटली थी वह उसके पास में रखी हुई थी साधु ने वो पोटली उठाई और चलते बना। जब वो साधु चलने लगा थोड़ी देर के बाद में वो आदमी सोचता है कि साधु पोटली लेकर क्यों चला गया? कहीं ऐसा तो नहीं, हमारा धन उठाकर चला गया और अब यह लौटकर ही नहीं आये। वो उसके पीछे गया और वो साधु उसको चक्कर लगवाता रहा। घुमाता रहा, घुमाता

रहा और उसको घुमाकर के फिर वहीं आकर बैठ गया। आकर के जब बैठ गया तो उसने कहा लो यह तेरी पोटली इसे ले जा। हमें पोटली नहीं चाहिए, तेरी पोटली तेरा धन मुझे नहीं चाहिए। तब उसको बड़ी प्रसन्नता हुई कि हमारा धन बच गया। अब साधु उससे कहता है कि तू एक बात बता तेरे लिए यह धन कुछ करने वाला नहीं था, तूने धन छोड़ दिया था। हम इस धन को लेकर गये, तू हमारे पीछे क्यों पड़ा? जब तुझे तेरा धन वापिस हमने दिया तो तुझे सुख की अनुभूति क्यों हो रही? हाँ, हमारा धन–वापस हमें मिल गया। इसका मतलब क्या है? वह साधु उसको सिखाना चाह रहा था कि देख धन से मुझे सुख न मिला है, न मिलेगा। तेरी भावना धन से जुड़ी है अगर तूने धन छोड़ दिया तो फिर हमारे पीछे भागने का दुख तूने क्यों पैदा किया। जब तुझे धन फिर मिल गया तो धन तो वही है जो तेरे पास में पहले था तो अब तुझे खुशी क्यों होने लगी? जब तुझे वो धन दुख दे रहा था तो अब उससे खुशी क्यों होने लगी? क्या हमारा धन मिल गया? गया कुछ नहीं, आया कुछ नहीं, बस परिणाम है जो हमें सुखी और दुखी बनाता है, यही तुझको समझाना था। यह परिणाम अगर तेरे पकड़ में आ जाये तो क्यों तू सुखी हो रहा है, क्यों तू दुखी हो रहा है ? तेरे लिए समझ में आ जायेगा कि हमारे लिए इस धन की प्राप्ति से भी अगर सुख मिल रहा है तो वे केवल हमारा परिणाम है। धन जो मेरे पास संजोकर रखा था वही खोया तो दुख हो गया वही हमको मिल गया तो सुख हो गया।

अगर मानलो हमारे पास उतना नहीं है। एक व्यक्ति के पास मानलो 10000 रुपये है और उसके पास से 1000 रुपये खो गये। उसके पास कितने रह गये 9000 रूपये रह गये। 1000 खो गये, उसको दुख हो रहा है किस बात का। हमारे 1000 खो गये, हमारे 1000 खो गये। एक व्यक्ति वह है जिसके पास में 5000 रूपये हैं और उसको कहीं से 500 रु. मिल गए। अब वो क्या करेगा? उसको खुशी होगी। हमें 500 मिल गये। 5000 थे अब साढ़े पाँच हजार हो गये। 500 मिल गये। खुशी किस बात से है? पैसे कम होने से खुशी मिलती है या पैसे ज्यादा होने से खुशी मिलती है। हमारी मानसिकता में है। अगर हमारे पास में 10000 थे तो 1000 कम हो गये हमारी मानसिकता कम हो गई। तब हमारा मन बिगड़ गया। यह हमने बना के रखा है। इसको समझ ले आदमी, तो अपने आप समझ आ जाये कि हमें सुख की प्राप्ति इस तरह हो। इन वस्तुओं की प्राप्ति में हम अपना सब पूरा जीवन चुका रहे हैं। थोड़ी देर समता का भाव लायें। अगर आप यह सोचते हैं कि हमारे पास में 9000 ही थे तो आपको कोई दुख भी नहीं होगा। अगर आप कल्पना करें कि हमारे पास में 9000 ही थे या मानलो आपके पास 5000 ही थे 9000 कैसे हो गये? उसी समय पर आप यह सोचने लग जाओगे कि हमारे पास तो पहले 5000 थे अब यह 9000 कैसे हो गये? आपको वे 1000 खोने का दुख नहीं होगा। कमी किसी चीज में है ही नहीं, केवल आपकी मानसिकता है। आप अपने विचारो को इतना परिवर्तित कर सीख लें तो 9000 में भी दुख नहीं होगा क्योंकि हमारे

हमारे अपने परिणाम ही हमें सुखी और दुखी बनाते हैं।

पास वह है जिसके लिए हमें सुख प्राप्त करना है। एक के पास में 500 बढ़े तो वह साढ़े 5000 में खुश हो रहा है और आपके पास 9000 है फिर भी आप दुखी है तो आपका दुख जायेगा, कहाँ से बताओ ? या तो आप उसके पास पहुँच जाओ, जिसके पास साढ़े 5000 है उसको साढ़े 3000-4000 दान कर दो।

अगर पैसे से ही खुशी मिलनी है, पैसे से ही सुख मिलना है तो उसकी खुशी देखो कि क्यों खुश हो रहा है? आपको यह समझ में आना चाहिए कि बाहरी जोड़-तोड़ में दिमाग लगा है। इसमें भी न कोई खुशी है, ना ही गम है। हमारे विचारों की कल्पना है और कुछ नहीं है। यह जोड़-तोड़ से जब तक हमारा दिमाग हटेगा नहीं तब तक हम अपनी आत्मा में कभी आ ही नहीं पायेंगे। तब तक हमारे अन्दर यह कभी महसूस होगा ही नहीं कि भाव आस्त्रव को कैसे रोका जाता है? इस भाव-आस्त्रव को रोकने के आपको तरीके बता रहा हूँ। आपको कभी नुकसान हो जाये तो अपने भाव-आस्त्रव को रोकना। जितना हमारा है, वह हमारा है उसमें ही खुश हैं। यह बहुत है जो हमारे पास में रखा है। जो खो गया यह समझ लो, हमारा था ही नहीं। हमने उसको मान लिया था, हमारे पास में आ गया वो हमारा हो गया। यह अगर आपके भावों में आस्त्रव रुक गया तो तुरन्त उसी समय पर आपके कर्मों की निर्जरा होगी। आपके भाव आस्त्रव रुकते ही आपको भावों में आनन्द आने लगेगा और आपके अन्दर एक समत्व की स्थिति बनने लगेगी। ये गृहस्थों के लिए समत्व बता रहा हूँ। पैसे की दौड़ में दौड़ता है और 1 बिल्डिंग 2 बिल्डिंग, 1 मकान 2 मकान, 1 फ्लैट 2 फ्लैट, 1 दुकान 2 दुकान सब उसी अहंकार को बढ़ाने के लिए होती है। आपको अपना अहंकार पकड़ में आने लग जाये तो आप सोचोगे करना क्या है? जिन्दगी आधी गुजर चुकी है और आधी और है गुजर जायेगी। इतना तो हमने हमारे पास रख ही लिया। अगर हम कुछ ना भी कमायें तो भी हम अपनी जिन्दगी को बड़ी आसानी से शांति से गुजार सकते हैं। अगर इतना आपके मन में सन्तोष का भाव आ जाये तो आप उस पैसे के पीछे अपनी जिन्दगी गुजारोगे ही नहीं। जिन्दगी किसके लिए निकल रही है और दौड़ किसके लिए पड़ी है ? नोटों को कमाने की दौड़ पड़ी है और उसी दौड़ में हम यह भूल रहे हैं कि कितने कर्मों का आस्त्रव हो रहा है? कितनी हमारी कषायें बढ़ रही हैं ? कितने लोगों से हमें उलझना पड़ता है? कितने झंझटों में हमें अपने भावों को डालना पड़ता है ? ये सब करने के बावजूद भी बस, भाव कितना सा रहता है? अगर हमारे पास यह आ गया तो हम ऐसे हो जायेंगे, बस इतना मन में रहता है। और कुछ नहीं रहता है। हर आदमी के मन में यह इतना हो जाये कि हम यह हो जायेंगे, हम ऐसे बन जायेंगे। हम ऐसे कहलाने लग जायेंगे लेकिन कुछ कहलवाने नहीं जाओगे क्या बन जाओगे ? क्या कहलाये जाओगे ? बड़े-बड़े राजा हो गये बड़े-बड़े चक्रवती हो गये, उनकी पूर्ति नहीं हुई, तुम्हारी क्या पूर्ति होगी उनके नामोनिशान नहीं रहे, तुम्हारे क्या नामो-निशान रहेंगे? उनका आज कोई नाम लेने वाला नहीं है तुम्हारा नाम कौन लेगा ? आदमी

आपके भाव आस्त्रव रुकते ही आपको भावों में आनन्द आने लगेगा।

बिना वजह की झंझटों में पड़ा है। पढ़ भी लेगा– ''कहाँ गये चक्री जिन जीता भरतखण्ड सारा। कहाँ गये वो राम अरु लक्ष्मण जिन रावण मारा'' कहाँ गये वो? कहाँ गये वो? बेसुधी में पढ़ लेता है। कहाँ गई वाली बात तो बेसुधी में चली जाती है। अगर यह दो पंक्तियाँ भी ढंग से पढ़ ले आदमी, तो उसका दिमाग दुरस्त हो जाये। क्या चाहिए ? हम किसके लिए दौड़ रहे हैं ? हम किसके लिए परेशान हो रहे हैं ? जो हमारे लिए सुख है, हम उस सुख की भी अपने अन्दर पूर्ति नहीं कर पा रहे हैं और एक नई दौड़ में पड़े रहते हैं। यह सब मिल जाये तो यह मिल जायेगा, यह हो जायेगा तो यह हो जायेगा। सब होने के बाद भी कुछ नहीं होता। वह क्यों नहीं होता, क्योंकि हमें पता ही नहीं है सुख कहाँ है? दौड़ हमारी उल्टी चल रही है। हमारे अन्दर कर्मों का निरन्तर बन्ध हो रहा है, आस्रव हो रहा है। अपने अन्दर की इच्छा को रोके बिना आपके अन्दर वह कर्म रुकने वाला नहीं, भाव आस्रव को रोकोगे तो आनन्द आयेगा। भाव-आस्रव से बचोगे तो आपको लगेगा हमें कुछ इच्छा है ही नहीं, हमें कुछ चाहना है ही नहीं। जहाँ कुछ चाहना नहीं है, वहाँ अगर थोड़ा कुछ मिल जाता है तो आदमी को बड़ा सुख मिलता है।

यह आपको करना ही पड़ेगा, नहीं तो जीवन भर दुखी ही रहोगे क्योंकि सुख का जो कारण है उसको थोड़ा भी अपनाओगे तो थोड़ा सुख मिलेगा। साधु तो पूरा अपनाते हैं। उनका शरीर छलनी भी हो जायेगा, कोई उनके शरीर को नष्ट कर दे तो भी वह अपने आत्म-ध्यान में लीन रहते हैं क्योंकि वह शरीर उनका नहीं हैं, उन्होंने यह सोच रखा है तो उनको उस शरीर से भी दुख नहीं होता है। वे तो ऐसे कर्मों की निर्जरा कर जाते हैं कि यदि वे चरमशरीरी हो तो उसी भव में मुक्त हो जाएँ और चरमशरीरी ना हो तो एक भव के बाद स्वर्ग जाने के बाद अगले भव में उनको नियम से मुक्ति मिलेगी क्योंकि उनके अन्दर अब आत्मा के अलावा और किसी भी प्रकार का परिग्रह नहीं है। उनके अन्दर अपनी आत्मा के अलावा किसी परवस्तु को मानने की अब कोई इच्छा नहीं रही। वे इसलिए इतना सुखी हो जाते हैं, कष्टों को समता से सहन कर जाते हैं। वही समता अगर थोड़ी सी आप गृहस्थों के अन्दर आयेगी तो वह भी इसी रूप में आयेगी। जब आपके लिए किसी भी प्रकार का कोई कष्ट हो थोड़ा सा समत्व का भाव अपने विचारों में लाओ कि जो है वह कम नहीं है हमारे पास में। उसको कम मत आँको। अगर आप इच्छाओं में पड़े रहोगे तो कितना भी मिल जाएगा आपको कम ही लगेगा क्योंकि इच्छायें तो कभी सिकन्दर की भी पूरी नहीं हुई, चक्रवर्तियों की भी पूरी नहीं हुईं तो तुम्हारी क्या पूरी होंगी। जीवन बीत जाएगा तो भी तुम्हारी इच्छाएँ कभी पूरी नहीं होने वाली हैं इसलिए यह पंक्ति गहराई से पढ़ा करो–

''कहाँ गये चक्री जिन जीता भरत खण्ड सारा''

पूरा भरतखण्ड जीतने पर भी कौन भरत चक्रवर्ती की आरती उतार रहा है कौन उसका नाम ले रहा है? हाँ, तुम बहुत बड़े चक्रवर्ती थे, तुम्हें याद किया जाए, कुछ नहीं। पुराणों में नाम लिखा है सो पुराण पढ़ते समय वो नाम सामने आ जाएंगे, नहीं तो कौन याद कर रहा है। आपको याद आ

रही है कि कोई भरत चक्रवर्ती हुआ। कुछ नहीं, यह सब चीजें यहीं पड़ी रहने वाली हैं। अपनी साँसो पर ध्यान दो, अपनी आत्मा पर ध्यान दो, अपने परिणामों पर ध्यान दो कि हमारे साथ क्या जाने वाला है–

''कहाँ गए चक्री जिन जीता भरत खण्ड सारा।
कहाँ गए वह राम रु लक्ष्मण जिन रावण मारा॥''

जिस समय रावण मरा था उस समय देखो कितनी वाह-वाह हुई थी। राम और लक्ष्मण के अलावा दुनियाँ में कोई दिखते नहीं थे लेकिन अब न रावण है और न राम है, न लक्ष्मण है, कुछ नहीं है। ये सब अतीत की बातें अतीत में रह गईं। नाम है, उसमें नाम से होना-जाना क्या है? मानलो वही नाम वाले आप यहाँ आकर बैठ जाओ, अगले जन्म में और उसी के गुण गाओ जिसके लिए आप पहले थे, क्या होगा। ऐसा भी होता है संसार के पंच परावर्तन में सब कुछ संभव है। आप पिछले जन्म में जो सेठ थे, राजा थे, वही आप सामान्य से व्यक्ति बन गये। वे हमारे पूर्वजों में सेठ थे और आप उनका नाम ले रहे हैं। अब आप एक सामान्य प्रजा की तरह हो गये।

सुख किसको मिल रहा है? किससे मिल रहा है? यह विचार जब तक आपके अन्दर नहीं आयेगा तब तक यह भाव-आस्त्रव रुकने वाला नहीं है। इसलिए आचार्य कह रहे हैं कि समता के बिना परीषहों को प्राप्त करके उसकी तरफ दिमाग मत लगाओ। हो गया, हो गया, चाहे मानसिक कष्ट आ गया आ गया, पैसा आ गया, आ गया। आ गया तो ठीक, गया तो ठीक। ऐसी मानसिकता बनाओ तो आपको कुछ समता का भाव आयेगा। कुछ सुख की प्राप्ति होगी नहीं तो इतने महान् जैन दर्शन में जन्म लेने के बावजूद भी भिखारी के भिखारी बने रह जाओगे। कुछ हाथ नहीं लगेगा, तुमसे अच्छे तो वे लोग हैं जो लोग कुछ थोड़ा सा शारीरिक योग अपनाने का अभ्यास करके थोड़ी सी सभ्यता के साथ जी रहे हैं। उनके अन्दर शांति का परिणाम है, वे अपने धर्म ग्रन्थ को सीख रहे हैं लेकिन आप अपने धर्म-ग्रन्थों से कुछ भी नहीं सीख रहे हो। हर धर्म-ग्रन्थ में इस बात को लिखा हुआ है कि आप अपने अन्दर समता के परिणाम रखो और उसी समता की भावना हर समय पर बना के रखो। यही हमारे लिए सबसे बड़ा अध्यात्म-योग है। अध्यात्म-योग का मतलब है– समता का भाव। एक ऐसा परिणाम जिसमें किसी भी प्रकार से हमारे मन में खेद-खिन्नता का परिणाम नहीं उत्पन्न हो। ऐसी समत्व की आराधना आप अपने विचारों से कर सकते हो, किसी भी परिस्थिति में कर सकते हो। आपको आपका मन बनाना है, आपके मन को प्रसन्न रहने के लिए कोई भी रोकने वाला नहीं है लेकिन जैसे ही आपके अन्दर इच्छा आयी, अरे उसकी दुकान में इतना माल? उसके घर में इतने लोग। उसके परिवार में इतना सामान? उसके पास में इतनी वस्तुएँ? बस वही तो आपने चैन खोया और इसके अलावा कुछ दुःख है ही नहीं। बस, समता का भाव लेके आयें तो शांति है।

समता की भावना हर समय पर बनाकर रखना ही अध्यात्म योग है।

ध्यान में कर्त्ता-कर्म का विभाग

25

कटस्य कर्त्ताहमिति सम्बन्धः स्याद् द्वयोर्द्वयोः।
ध्यानं ध्येयं यदात्मैव सम्बन्धः कीदृशस्तदा ॥

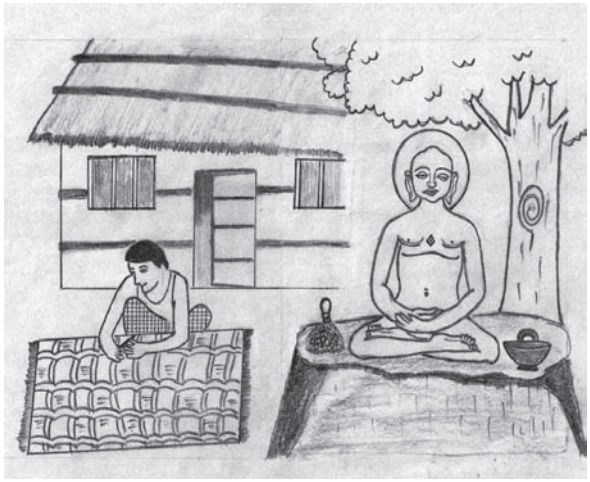

अन्वयार्थ–(अहम्) मैं **(कटस्य कर्त्ता)** चटाई का कर्ता हूँ **(इति सम्बन्धः)** इस प्रकार कर्ता-कर्म सम्बन्ध **(द्वयोर्द्वयोः)** भिन्न-भिन्न दो पदार्थों में **(स्यात्)** होता है, परन्तु **(यदा ध्यानं ध्येयं)** जब ध्यान ध्येय **(आत्मा एव)** आत्मा ही हो **(तदा)** तब **(कीदृशः सम्बन्धः)** सम्बन्ध कैसा?

- **कर्ता कर्म संबंध**
- **स्वतंत्रता**
- **चेतना का महत्व**

आचार्य पूज्यपाद महाराज जी ने जब आत्मा का स्वरूप, आत्मा के ध्यान की विधि और उस आत्मा के ध्यान का फल बताया तो मन में एक प्रश्न यह भी हुआ कि जब वह आत्मा अपनी ही आत्मा का ध्यान करेगा तभी वह बंध से कैसे छूट पायेगा क्योंकि बन्ध उसी विषय में होने लग जाता है, जिस विषय में हमारा मन लग जाता है। जिस विषय में हमारा सम्बन्ध जुड़ जाता है अगर हमारी आत्मा में भी सम्बन्ध जुड़ गया तो भी हम बंध से कैसे मुक्त होंगे? क्योंकि देखने में यही आता है कि जिसका किसी के भी साथ सम्बन्ध हो गया उसका उसके साथ में बन्ध हो गया। शिष्य पूछता है कि इसी तरह से अगर आत्मा में ही आत्मा का सम्बन्ध बना लिया तो फिर आत्मा में ही आत्मा का बंध हो जायेगा और आप कह रहे हो कि बन्ध से आपको मुक्ति मिलेगी क्योंकि पिछले सूत्र में बताया गया था–

''आस्त्रवस्य निरोधिनी, कर्मणामाशु जायते निर्जरा''

आस्त्रव रुक जाता है और शीघ्र ही कर्मों की निर्जरा होने लगती है आस्त्रव रुकेगा तो बन्ध भी रुकेगा, बन्ध भी रुकेगा तो कर्मों की निर्जरा भी होगी। इसी परिप्रेक्ष्य में यहाँ पर यह उत्तर दिया जा रहा है कि देखो, जब भी कभी कोई बन्ध होता है तो वह बन्ध अकेले में नहीं होता। बन्ध के लिए दो चीजें चाहिए होती है। अगर वो दो चीजें भिन्न-भिन्न होगी तो बन्ध होगा और दो चीजें एक ही में है तो बन्ध नहीं होगा। यह भी शिष्य को समझाना पड़ा। ''आत्मा को आत्मा का ध्यान करने से फिर आत्मा का बन्ध कैसे होगा''। आचार्य कहते हैं वह आत्मा का फिर बंध नहीं होगा क्योंकि बन्ध तब होता है जब हम दो से जुड़ते हैं क्योंकि बन्ध के लिए दो पदार्थ चाहिए और दो का दो से सम्बन्ध होना 'सम्बन्धः द्वयोर्द्वयोः'। दो से जब दो का सम्बन्ध हो जायेगा तो बन्ध हो जाएगा और उस बन्ध को समझाने के लिए भी आचार्य महाराज को एक उदाहरण देना पड़ा 'कटस्य कर्त्ता अहं इति'।

कर्त्ता-कर्म संबंध :

मैं कट यानि चटाई, मैंने चटाई बनाई, मैंने चटाई को निर्मापित किया। मैं चटाई का कर्त्ता हूँ। इसमें दो चीजें अलग-अलग हो गई। बनाने वाला अलग है और जो चीजें बनने वाली है वो अलग है। चटाई अलग है और मैं बनाने वाला अलग हूँ। इसलिए आपने इसमें कर्त्ता की बुद्धि डाल ली और यह कर्त्ता-कर्म का सम्बन्ध हो गया। यह कर्त्ता कर्म का सम्बन्ध दो वस्तुओं के सम्बन्ध के कारण से हो गया। इसलिए यह कर्त्ता बुद्धि के कारण से आपके अन्दर बन्ध पड़ जायेगा। लेकिन आचार्य कहते हैं कि जब हम आत्मा में ही आत्मा का ध्यान करेंगे तो उस समय पर आप का सम्बन्ध अपनी ही आत्मा में रहेगा, दो चीजों में नहीं होगा, क्योंकि आप आत्मा में ही आत्मा का ध्यान कर रहे हैं। ध्यान की क्रिया भी आत्मा में है और ध्यान करने वाला भी आत्मा ही है और जिसको ध्येय

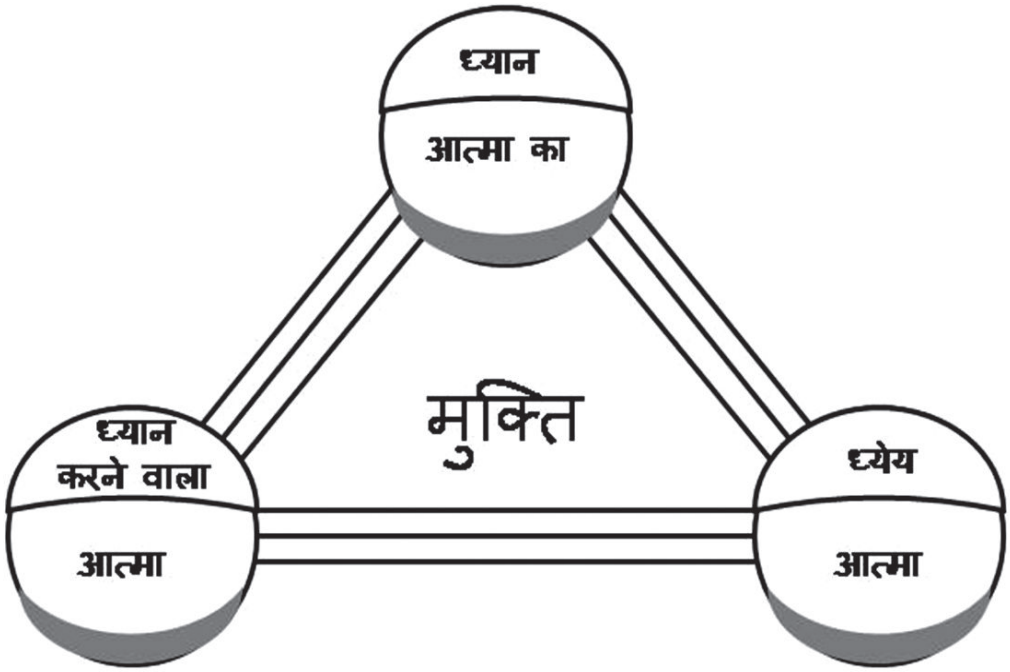

बनाकर के ध्यान कर रहा है वो ध्येय भी आत्मा ही है इसलिए एक में तीनों चीजें घटित होने से बंध नहीं होगा। आप बिल्कुल भी ना डरें, अगर आपको इतना बंध से डर लगने लगा हैं तो बहुत अच्छी बात है। हमारा सम्बन्ध किसी से भी हो जाये और उसका ही हमें ध्यान हो जाए तो आपने जिसको ध्येय बनाया है उसी से आपका सम्बन्ध बन जायेगा। जिससे आप अपना सम्बन्ध बनाओगे उसी से आपका ध्यान होगा और वही ध्यान आपके बंध का कारण बन जायेगा। इससे यह जानना इस श्लोक के माध्यम से कि हमारे दिमाग में जो चीजें आती है वे सब हमारे लिए ध्येय है। ध्येय का मतलब है जिसका हम ध्यान कर रहे हैं, जिसके बारे में हम सोच रहे हैं, जिसकी हम चिन्ता कर रहे हैं। जो कुछ भी आप सोच रहे हो, जो कुछ भी ध्यान में आ रहा है क्योंकि 'ध्येय चिन्तायाम्' संस्कृत में ध्येय धातु चिन्ता के अर्थ में भी आती है। चिंतन करना, ध्यान करना एक ही बात है। प्रारम्भ में जो आप चिंतन कर रहे हो वही ध्यान का विषय बनता जाता है, जो आपके चिंतन में आयेगा वही आपके ध्यान में आयेगा। जब आप ध्यान में बैठ जाओगे, तब वही आयेगा और जब आपको अपना ध्यान नहीं रहेगा। आप सो भी जाओगे तो भी आपके ध्यान में वही आयेगा जो आपके चिंतन में आ चुका है। इसलिए जो सबसे बड़ी चीज है वह आपके दिमाग में चिंतन की दशा

आत्मा द्वारा आत्मा का ध्यान करना ही आत्मा का ध्येय है।

है। आपका दिमाग जिस जगह पर लग रहा है वही चीज आपके चिंतन का विषय बन रही है और आप यही मानकर के चले कि अब आपके वही चीज ध्यान में आएगी और वही आपके दिमाग के अन्दर इतनी बैठ जाएगी कि वैज्ञानिक उसको एक अवचेतन मन की दशा कहते हैं। एक कहावत है–

एक Conscious mind और एक होता है sub conscious mind। जब हमारे लिए वह ध्यान और चिंतन गहराई में चला जाता है तो वह एक subconcise state में चला जाता है और वहाँ पहुँचने के बाद इसका मतलब है वहाँ अगर हमारे चिंतन की दशा पहुँच गई तो वह चीज हमारे अन्दर गहराई से बैठ गई। आपके मन में फिर वही चीज बैठने के बाद में स्वप्न में भी आएगी। वह चीज जो चिंतन में बैठ गई है जब आपके स्वप्न में वह चीज आने लगेगी तो आप परेशान होने लगेंगे कि हमें ऐसे स्वप्न क्यों दिखाई दे रहे हैं। परेशानी का मूल कारण, जहाँ से आपका दिमाग शुरु हुआ था, विचार, चिंतन शुरु हुआ था उसी समय आपको उस चिंतन को वहीं पर रोकना था लेकिन चिंतन करते समय पर तो आनन्द आता है और जब वो भीतर बैठ जाता है, रात में जब आप सो जाते हैं। सोने के बाद उभर कर आता है तो इतनी परेशानी हो जाती है कि लोग रात में अच्छे ढँग से सो भी नहीं पाते हैं। यह शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान कहता है। इसका मतलब है कि आपको नींद का लाभ नहीं मिल रहा है, आप resting position में नहीं है क्योंकि आपका दिमाग तो काम कर ही रहा है। नींद उसे कहते हैं जिससे हमें सोने के बाद में और उठके बैठे तो हमें पता ही ना पड़े कि हम अभी सोये तो अभी उठ गए। सोने के बाद भी अगर आपको स्वप्न आ रहे हैं तो आपका दिमाग काम कर रहा है, आप resting position पर नहीं हो। यह मैं आपको योग–विज्ञान बता रहा हूँ। अपनी परीक्षा स्वयं करो और यह सिस्टम सबके अंदर आने लग जाते हैं। जैसे बच्चा बड़ा हो जाता है, पढ़ने लग जाता है। उसके लिए यह परेशानियाँ आने लग जाती है। आपका दिमाग जिस काम में लगेगा उसी के स्वप्न आपको आएंगे। जैसे आपके दिमाग में दिनभर चलता रहता है कि आज मैं यह खा लूँ, खाने के बारे में सोचते रहते हैं तो आपको रात में भी खाने के ही स्वप्न आयेंगे, रात में भी खाते ही रहोगे। आपके दिमाग में वह चीज बैठ गई क्योंकि चिंतन से, विचार से वह चीज मन में अन्दर चली जाती है ध्यान के रूप में फिर वह हमारा ध्येय बन गई। जिसको हमें ध्येय बनाना था वह तो बहुत दूर की चीज है। वही ध्येय हमारे लिए बन जाता है जो विचार में आया और जिससे हमारा सम्बन्ध हो गया। बस, वह चीज ही अब हमको प्राप्त होगी। देखो आपका विचार ही आपको आप से सम्बन्धित बना देता है। जिस चीज में आपने विचार किया उससे आपका सम्बन्ध जुड़ गया समझ लो इतना, अगर आप अपने अन्दर सावधानी रखेंगे, जागृति रखेंगे तो आप अपने मन को कर्म के बन्ध से बचा पाएँगे। विचार किया माने, हमारा सम्बन्ध उससे जुड़ गया और वह इतना dangerous हो सकता है कि वह सम्बन्ध आपको कई महीनों बाद भी आपके सपने में आ सकता

आपका विचार ही आपको आप से संबंधित बना देता है।

है। इतना बड़ा खजाना भीतर भरा है। कर्म का बंध होने के बाद में वह धारणा में ज्ञान चला जाता है। इसी को लोग कहते हैं unconscious mind की दशा। वहाँ पर पहुँचने के बाद में उसमें उभार आता है, कभी भी तो वह चीज आपको कई महीनों बाद भी, वर्षों बाद भी परेशान कर सकती है और हर किसी को यह परेशानी होती होगी। जब तक कि आप अपने विचारों को स्वच्छ, सुन्दर ना बनायें, जब तक कि आपका अपने दिमाग पर control ना हो, जब तक कि आप यह ना समझें कि हमारे अन्दर कोई विचार आया तो हमें उसी समय पर क्यों नहीं रोका और उस विचार में हमें आसक्त नहीं होना। यह जब तक आपके दिमाग में नहीं आयेगा। तब तक आप अपनी इस बन्ध की परिणति को रोक नहीं पाएंगे इसलिए आचार्य कह रहे हैं-''आत्मा में कर्म का बन्ध निरन्तर होता रहता है।'' क्योंकि अन्दर जैसी हमारी फीलिंग (अनुभाव) चलती है। उसी के हिसाब से आत्मा में कर्म का बंध निरन्तर चलता रहता है। हमारा ध्येय भी वही बना रहता है। दो के बीच में बन्ध होता है। एक के बीच में कभी बन्ध नहीं होता है। इसलिए अगर तुम अपनी आत्मा में ही आत्मा का ध्यान करोगे तो तुम्हें दुनियाँ की कोई भी चीजें स्वप्न में नहीं आएंगी, तुम्हारा मन बिल्कुल शांत होगा, नींद बढ़िया आयेगी, सो जाओगे और सोने के बाद में जब उठोगे तो बिल्कुल ताजा महसूस करोगे। जब चिन्ता के साथ में सो जाओगे, सो तो जाओगे लेकिन चार घंटे के बाद जब उठोगे तो ऐसा लगेगा दिमाग में कितना बोझ हो गया। दिमाग चलता रहा, स्वप्न में भी वो दिमाग काम करता रहा और आपने उसको आराम दिया नहीं। इसलिए आचार्य कहते हैं कि जब आप स्वयं अपनी आत्मा का बिल्कुल थोड़ा सा निर्विकल्प भाव से ध्यान करेंगे तो बाहर की चीजें थोड़ी देर के लिए दूर हो जाती हैं, एक संस्कार मन के ऊपर पड़ता है और वही मन का संस्कार हमारे शरीर, मन, परिणाम सब में काम आता है। वह शांति जो आपको एक क्षण भी मिली, मान लो आप ध्यान के लिए बैठे, जाप करने के लिए बैठे आपको एक क्षण के लिए भी जो शांति महसूस होगी, एक क्षण के लिए भी आपका सम्बन्ध बाहरी दुनिया से टूटेगा वह आपके जीवन की बहुत बड़ी उपलब्धि है क्योंकि मन का वह संस्कार ही आपको अच्छी नींद देगा, वही संस्कार आपको अच्छी शांति देगा और इस शांति के लिए आदमी का मन बनता ही नहीं है। आदमी का मन दौड़ता रहता है, बाहर कुछ न कुछ करते रहो, व्यापार, धन, position प्राप्त करने में मन दौड़ाओ और जब तक वह दौड़-दौड़ करके पागल न हो जाये तब तक उसको दौड़ाते रहो। पागलपन की स्थिति आएगी तब उस आदमी को समझ में नहीं आएगा। जब तक वह पागल नहीं हो जाता है और जब तक समझने लायक है तब तक वह समझता नहीं है।

बड़ी विडम्बनाएँ हैं, हर आदमी के साथ ऐसी विड़म्बनाएँ जुड़ी हैं। बच्चे के लिए भी समस्याएँ होती हैं पर वह उस समय पर समझता नहीं है। परेशान होता रहता है। जब समझने की दशा है तब कोई नहीं समझना चाहेगा। हर बच्चे के लिए समझने की दशा रहती है जब वह कॉलेज

निर्विकल्प-भाव से किये गये ध्यान के संस्कार का हमारे मन, मस्तिष्क व शरीर पर गहरा पड़ता है।

लाइफ में पढ़ रहा हो और आप देखोगे कि कॉलेज का बच्चा कभी भी कुछ समझने की कोशिश नहीं करेगा, कभी धर्म सभा में बैठकर के सुनने की कोशिश नहीं करेगा, कभी भी किसी गुरु के पास उनकी वाणी को समझने का प्रयास नहीं करेगा क्योंकि उनके समझ में दूसरी चीजें पड़ी हैं। अभी हमें वे चीजें समझना ही नहीं हैं' उसकी समझ में यह पहले से पड़ा हुआ है और वह जब चोट खा जायेगा, आगे जाकर के परेशान होगा, आगे जाकर के वही गलती करके ऐसी गफलत में पड़ जायेगा। जब उसके सामने सब रास्ते बंद हो जायेगे। तब उसको लगेगा कि अब क्या करें? जो खो दिया उसकी पूर्ति कैसे करोगे, जो नुकसान, चारित्र अभाव, सम्बन्ध टूट गया, उसकी गिरावट हो गई। अब उसकी पूर्ति कैसे करोग? इसलिए आदमी को पछतावे के अलावा कुछ नहीं रहता है और जिंदगी में उसे कभी भी यह समझने में नहीं आ पाता कि हमें सही दिशा में कैसे चलना है।

स्वतंत्रता :

आचार्य कह रहे हैं आप जैसे ही किसी से अपना सम्बन्ध बनाएंगे, समझ लो कि आप बँध गये। हर व्यक्ति चाहता है हम स्वतंत्र हों, धर्म ही तो स्वतंत्रता का उपाय बता रहा है, अध्यात्म ही तो हमें स्वतंत्रता का उपाय बता रहा है और यह ग्रंथ ही तो हमें बता रहे हैं कि आप वास्तव में स्वतंत्र हो जाओ। लेकिन स्वतन्त्रता की भी परिभाषा हम अपने ढंग से लगा लेते हैं। हमें जो करना है वही हमें करने दो, हमारे जो मन में आ रहा है वह ऐसा हमें करने दो, इसका नाम है स्वतंत्रता। लेकिन इस स्वतंत्रता से आप पुनः फँस जाएंगे क्योंकि आप करोगे क्या? आपको यही नहीं मालूम कि करने लायक है क्या? जो तुम करने की इच्छा करोगे, पहले की जो गलतियाँ हैं उनके जो संस्कार पड़े हैं उसके कारण से वो चीज समझ में नहीं आ रही है और आपको आपके मन की करना है। जिसको मन की करने को मिल जाये तो वह समझता है I am free. feel freedom 'मैं स्वतंत्र हूँ, मैं स्वतंत्रता को महसूस कर रहा हूँ' लेकिन यह स्वतंत्रता भी आपको गफलत, परेशानी में डाल देगी क्योंकि आपका मन इतना समझदार नहीं है कि आप स्वतंत्रता का भी समझदारी से उपयोग कर सको। अगर आपके मन में वह समझदारी इतनी आ जाये कि हम अपने मन को थोड़ा सा समझाकर के यह महसूस करने लग जाएँ कि पहले यह समझ लें कि स्वतंत्रता कहते किसे हैं? आजादी कहते किसे हैं। 'हमें अपने ढंग से चलना है'- यह बात ठीक है लेकिन आपको पहले पता तो होना चाहिए कि हमारा ढंग क्या, कैसा होना चाहिए। अधिकतर बच्चों के सामने, बड़ों के सामने यह समस्या बन जाती है क्योंकि उन्हें यह लगता है कि हमारी स्वतंत्रता में कोई बाधा न बने। अब जब उन्हें यह लगता है कि हर व्यक्ति को स्वतंत्र होना चाहिए। बस, उन्होंने इतना सीख लिया हर को स्वतंत्र होना चाहिए। सभी अपनी-अपनी स्वतंत्रता से जीवन जिओ, कोई किसी को interfere मत करो। अब जिसके मन में जो आयेगा वो करेगा। घर में चार लोग हैं और चारों को यह मालूम है कि सबको

अपनी-अपनी स्वतंत्रता से जीना है तो अब चारों अलग-अलग दिशाओं में जायेंगे। ''स्वतंत्रता के साथ में रहना और स्वतंत्रता को भीतर से महसूस करते हुए भी आनन्द लेना'' यह समझ हर किसी के अन्दर नहीं आ पाती है। स्वतंत्रता का मतलब यह है कि हम स्वतंत्र रहकर के भी दूसरे को बाधा ना पहुँचाएँ और स्वतंत्र रहकर के भी दूसरे का ख्याल तो रखें। अगर आप स्वतंत्र रहना चाहते हो और आपने किसी दूसरे से कह दिया- 'तुम्हारे मन में जो है तुम करो, हमारे मन में जो आएगा वो हम कर रहे हैं, तुम्हारे लिए तुम्हारी स्वतंत्रता, हमारे लिए हमारी स्वतंत्रता बनाओ' तो घर की स्थिति क्या बनेगी। वो घर बनेगा कि बिगड़ेगा। जहाँ आदमी के दिमाग में ये बातें आयी तो इसका मतलब है कि आदमी के अन्दर क्रोध चल रहा है, गुस्से में बोल रहा है, उसका पागलपन उससे बुलवा रहा है, उसे खुद नहीं मालूम कि वास्तव में स्वतंत्रता किसे कहते हैं। एक समझदार आदमी कभी भी अपने घर में ऐसी बात करेगा ही नहीं, अगर आदमी के अन्दर समझदारी होगी तो। क्योंकि आदमी उस घर का मालिक होता है। अगर आदमी के अन्दर समझदारी है तो वह सबको लेकर के चलेगा और कहेगा- 'देखो सब लोग स्वतंत्र हैं।' यह बात ठीक है लेकिन यह ध्यान रखो कि हम एक-दूसरे के सहयोगी बनकर के रहें और एक-दूसरे का सहयोग करने की स्वतंत्रता रखेंगे तो घर बहुत अच्छे से चलेगा, नहीं तो घर-घर रह जायेगा, चारों लोग चार दिशाओं में चले जायेंगे। घर में कुछ नहीं रहेगा।

स्वतंत्रता को समझ पाना बहुत बड़ी चीज है। जहाँ स्वतंत्रता आएगी वहाँ पर आपके मन में बहुत बड़ा उत्तरदायित्व आ जायेगा। अगर आप यह सोच रहे हो कि स्वतंत्रता का मतलब बिना उत्तरदायित्व है तो बिना किसी अपनी जिम्मेदारी के जीना है तो यह आपकी बहुत बड़ी गलती हो जाएगी क्योंकि बिना उत्तरदायित्व के आप स्वतंत्र रह ही नहीं सकते हो। जैसे ही आप स्वतंत्र होकर के यह सोचोगे कि हमारे लिए कोई जिम्मेदार नहीं है, हम किसी के जिम्मेदार नहीं। इसका मतलब यह है कि आपके घर में रहते हुए भी आपके ऊपर किसी की जिम्मेदारी नहीं है और आप भी किसी के लिए जिम्मेंदार अपने को समझते हैं। इससे अच्छा तो यह हो कि अगर आप बिल्कुल ही स्वतंत्र रहना चाहते हैं तो आप घर ही छोड़ दें, सब सम्बन्ध को छोड़ दें और सम्बन्धों को छोड़ने के बाद अपनी आत्मा से अपनी आत्मा का सम्बन्ध जोड़ें। आपको बहुत अच्छी स्वतंत्रता का भान होगा, बहुत अच्छा आपको अनुभव होगा। अगर आप घर में रह रहे हो और उसके बावजूद आप इस तरह से दूसरों के सामने पेश आओगे तो आप यह मानकर चलना कि आप घर का बिगाड़ भी करोगे और अपना भी बिगाड़ करोगे क्योंकि जो आपसे छोटे हैं, बच्चे हैं उन्हें तो मालूम ही नहीं है कि जिम्मेदारी क्या होती है और जो जिम्मेदारी वो समझ रहे हैं वो जिम्मेदारी निभा नहीं रहे हैं, इसका मतलब है कि वह घर बिल्कुल ही बर्बाद होने की कगार पर खड़ा है। स्वतंत्रता को समझ पाना बड़ी कठिन बात है। इससे वास्तविक जो स्वतंत्रता होती है इसका आनन्द वो ही ले सकता है जिसका

स्वतंत्रता यानि एक-दूसरे को बाधा न पहुँचायें एवं एक-दूसरे का ख्याल रखें।

मन अपने नियंत्रण में हो तब आनन्द आता है स्वतंत्रता का। मन नियंत्रण में नहीं होगा तो मन जो चाहेगा वो करेगा। अब मन यही चाहेगा जो हमारे मन में पुराने संस्कार पड़े हैं, उम्र के साथ में जो संस्कार ऊभर कर के आने लग जाते हैं। बस, मन उन्हीं में लगेगा। बच्चा बड़ा होगा तो उसमें ही लगेगा जो पुराने उसके संस्कार पड़े हैं। लड़का होगा तो उसका interest लड़की के प्रति जायेगा और लड़की होगी तो उसका interest लड़के के प्रति होगा क्योंकि पुराना संस्कार पड़ा है। बड़े होते ही वो संस्कार उभरने लग जाते हैं और उस समय पर मनमानी करने का मतलब है कि अपने लिए ही आगे समस्या खड़ी करने जा रहे हैं। इसका अर्थ बच्चे समझते हैं कि हम स्वतंत्रता से जी रहे हैं। हमें स्वतंत्रता का आनन्द लेने दो।

स्वतंत्रता इतनी बड़ी responsibility होती है कि अगर आप वास्तव में स्वतंत्र हो जायेगे तो आपको लगेगा कि हम कितनी बड़ी जिम्मेदारी निभा रहे हैं। आप क्या समझते हो कि स्वतंत्र कौन है, जब आप हमारी तरफ देखते होगे तो आपको लगता होगा कि साधु बड़ा स्वतंत्र होता है। कहीं भी जाओ, कहीं पर भी रहो, किसी के भी चौके में जाओ। इस स्वतंत्रता के साथ भी उसके ऊपर कितनी responsibility होती है। अगर वह इस स्वतंत्रता का भी दुरुपयोग करने लगे तो साधु-साधु न रह जाए। वह साधु होकर भी कहीं ना कहीं बँधा हुआ रहता है। कोई भी स्वतंत्रता बिना बंधन के हो ही नहीं सकती और बिना बंधन के किसी स्वतंत्रता में कोई आनन्द भी नहीं आयेगा। यह भी आप ध्यान रखना। अगर आप किसी से बँधे हुए नहीं हैं तो आप कभी भी उस स्वतंत्रता का सही आनन्द नहीं ले पाएंगे जो आपके मन में आ रहा है क्योंकि आपके मन के अन्दर जो विचार आयेंगे जो आपसे आपकी मनमानी करवायें लेकिन आप कहीं से बँधे हुए होगे तो आप उस धारा में चलेंगे जिस धारा से सही रास्ते पर हमेशा चलना होता है। साधु भी स्वतंत्र होता है और साधु बँधा भी होता है। स्वतंत्रता इस मायने में है कि वह किसी दूसरे के आश्रित नहीं है, किसी दूसरे के इतना अधीन नहीं है कि वह अपना ध्यान, सामायिक अपने जो आवश्यक कार्य हैं उसे करने के लिए उसे दूसरे का मुँह देखना पड़े। नहीं, बहुत स्वतंत्र है, कहीं पर भी बैठ सकता है, कोई भी तप, सामायिक, ध्यान कर सकता है, कैसा भी अपने अन्दर स्वाध्याय कर सकता है? बिल्कुल फ्री है लेकिन बँधा भी है। साधु भी जिम्मेदारी से और अपने गुरु से बँधा है। वह बंधन ही उसके लिए सही रास्ते पर चलाते हैं। अगर वह बिल्कुल निर्बन्ध हो जायेगा। हमें जिनवाणी से कोई मतलब नहीं, हमारा कोई गुरु नहीं, हमें किसी से कोई मतलब नहीं तो आचार्य कहते हैं कि वह साधु है ही नहीं, वह दुर्जन है, असाधु है, उसके कभी भी मोक्षमार्ग बनने वाला नहीं। जब साधु के लिए भी स्वतंत्रता में इस प्रकार के बंधन आ जाते हैं तो आप समझे कि जब हम घर में भी रहे तो हमारे लिए घर में रहते हुए भी स्वतंत्रता का भी भान हो और साथ में हमें यह भी लगे कि हमारे ऊपर इनकी जिम्मेदारी है। आप अगर जिम्मेदारी से मुक्त हो गए तो आप न स्वतंत्रता का आनन्द ले पाएंगे, ना गृहस्थी का

जिनवाणी एवं अपने गुरु से बंधन साधु को सही रास्ते पर चलाते हैं।

आनन्द ले पाएंगे, आप बीच की दलदल में गिर पड़ेंगे और आपके लिए अनेक प्रकार की चिन्ताएँ, परेशानी आ जायेगी और आपका जीवन आगे बर्बाद हो जाएगा। जो जिम्मेदारी हमने ले ली है उसको निभाना अच्छे ढँग से, यह बहुत बड़ी स्वतंत्रता का भान करायेगा।

जब आपका दूसरे से सम्बन्ध बना, समझ लो कि आपका बन्ध हो गया और वह बंध जो आपने किया वह कोई आपने गलती से तो किया नहीं, समझदारी से हुआ है। जब वो समझदारी से आपका सम्बन्ध हुआ है, समझदारी से आपका बन्ध हुआ है तो अब समझदारी से उसको निभाओ। तब तो वह आप के लिए आनन्द देगा। अगर आपने उस बंध को बीच में ही तोड़कर के नासमझी करने का प्रयास किया तो वो बंध आपके लिए भी परेशानी का कारण बन जायेगा। दूसरे के लिए भी परेशानी का कारण बन जायेगा। हाँ, इतना अवश्य हो सकता है कि अगर आप बंधनों से मुक्ति चाहते हैं तो फिर आप घर में ना रहो, घर का त्याग कर दो। किसी साधु के पास पहुँच जाओ, किसी आचार्य के पास पहुँच जाओ, व्रत ले लो, किसी आश्रम में रहने लगो। फिर कोई दिक्कत नहीं, लेकिन घर में रहना है तब तो आपको यह मानना पड़ेगा कि यह मेरी पत्नी, भाई, बेटा, बेटी हैं और इन सब के प्रति हम जिम्मेदार हैं। इन सब के बीच में अच्छे ढंग से रहेंगे तो आपको सम्बन्धों में भी आनन्द आयेगा और अगर आप इन सब के बीच में अच्छे ढंग से नहीं रह पाये तो यह सम्बन्ध आपके लिए पीड़ादायक बन जायेंगे। आप यह न समझें कि हमारे पास में बहुत सारा पैसा है, हम कुछ भी कर लेगे। ''आदमी के अन्दर जब गुस्सा आ जाता है तो वो व्यक्ति को महत्त्व नहीं देता वो वस्तु को महत्त्व देता है।'' आदमी के अन्दर जब पागलपन सवार होता है, जब किसी चीज का मद सवार होता है, घमंड सवार होता है तो उस समय पर वह आदमी, आदमी की बेईज्जती करने लगेगा, उसको तो गिराएगा और अपनी बिल्डिंगों को बढ़ाएगा। एक बहुत बड़ा पागलपन पढ़ी-लिखी सभ्य समाज में देखने को मिलेगा। पागलपन इसीलिए कह रहा हूँ कि आपको जब पागल कहूँगा तभी समझ में आयेगा। पागलपन ऐसा है कि किसी पागल को समझाया जाए तो उसे समझ में नहीं आता है। ऐसे ही उस आदमी को समझ में नहीं आता है। हर आदमी आज यही कर रहा है, पैसे के पीछे उसके अन्दर इतनी आकुलता बढ़ जाती है कि वह अपने सम्बन्धों को महत्त्व नहीं देता। वह उन वस्तुओं को महत्त्व देता है जिनमें कोई चेतना नहीं। यह पैसा, कागज का नोट इसको महत्त्व देगा। इसमें कोई चेतना नहीं है। जिसमें चेतना है, जो हमारे घर के लोग हैं, हमारे परिवार के लोग, सम्बन्धी है उनको कभी महत्त्व नहीं देगा। अगर आदमी का महत्त्व इधर बढ़ने लग जाए तो समझ लेना कि आदमी की बुद्धि, जड़-बुद्धि हो रही है। जड़ माने जो अचेतन चीजों में, जड़ चीजों में जिसकी बुद्धि चिपक रही है उसका नाम है जड़-बुद्धि। जिसकी बुद्धि जड़ होने लगे तो जड़ का दूसरा अर्थ यह भी होता है कि यह बिल्कुल जड़ हो गया है माने

आज व्यक्ति रुपये पैसे के पीछे पागल है वह अपने संबंधों को महत्व नहीं देता है।

अब इसको समझाया नहीं जा सकता है, हिलाया नहीं जा सकता है। चेतना होगी तो उसमें स्पंदन होगा, चेतना होगी तो समझने की कोशिश करेगा। वही चेतना अगर मरने लग जाती है तो फिर हमारी बुद्धि, मन, सब कुछ जड़-पदार्थों की ओर आकर्षित होता है और हम चेतन की महिमा नहीं समझते। अचेतन की महिमा में पड़ जाते हैं। आदमी को खुश रहने के लिए, आनन्दित रहने के लिए उसे कभी भी जड़ पदार्थो को महत्व नहीं देना चाहिए। हमेशा यही सोचना चाहिए कि यह चेतन है कि अचेतन, यह जीव है कि अजीव है, यह द्रव्यों का ज्ञान जो हमें आचार्यों ने दिया है 'जीवमजीवं दव्वं' यह पढ़ने के लिए ही नहीं दिया है। यह इस बात के लिए दिया है कि आप जीव का महत्व समझे, चेतना का महत्व समझे। अजीव में तो है क्या? उसमें तो कुछ चेतना है ही नहीं और हम पड़े हैं उसी के पीछे। हमारा महत्व जीव की और होना चाहिए। अगर तुम्हारे पास में पंचेन्द्रिय जीव है तो तुम उसको महत्व दो, वह बहुत बड़ी चीज है तुम्हारे लिए। धर्म तुम्हारा अगर चलेगा, तुम्हारे अन्दर सुख और आनन्द आयेगा तो उस पंचेन्द्रिय के साथ में तुम्हारा कैसा व्यवहार है? इससे आयेगा न कि इस बात से कि तुम्हारा कमरा कितना well managed है या नहीं है, तुम्हारे घर में कितने करोड़ों के सोफा सेट पड़े हैं, डबल बेड पड़े हैं, वे सब पड़े रहेंगे, वे तुम्हें सब काटने लग जायेंगे। अगर तुम्हारे ही लोगों से अच्छे सम्बन्ध नहीं होंगे, अगर तुम अपने ही घर में अपने ही परिवार के साथ सुखी होने का, शांति रखने का भाव नहीं बनाओगे तो वह सोफासेट, डबलबेड तुम्हें ऐसे काटेंगे कि तुम्हें रात भर नींद नहीं आयेगी। घूमोगे तो इधर-उधर रात को पागल की तरह। यह पागलपन इसलिए सवार हो गया कि तुम जड़ वस्तु में ज्यादा लिप्त हो गये। जब व्यक्ति की बुद्धि जड़ बन गई तो उसका अपनी चेतना से भी सम्बन्ध टूट गया और जिसका अपनी चेतना से सम्बन्ध टूट गया तो वह दूसरी चेतना को भी कैसे महत्व देगा।

चेतन का महत्व :

इसलिए आचार्य कहते हैं कि चेतना को महत्व देना सीखो। जिसके अन्दर प्राण हैं, जिसमें आत्मा है, उस पंचेन्द्रिय जीव का आदर करो चाहे वो तुम्हारे घर का छोटा बेटा भी क्यों ना हो, गर्भ में भी रहने वाला पुत्र क्यों न हो उसके लिए भी बराबर सोचना, उसकी भी भूल से इन्सल्ट मत कर देना, वो भी उसके गर्भ में संस्कार पड़ जायेगा कि अगर तुमने कहा- 'कैसा बेटा जन्म ले लिया, कैसा बेटा गर्भ में आ गया, जब से मेरे गर्भ में आया है मेरे पेट में दर्द हो रहा है।' माँ कभी भी ऐसा नहीं बोलेगी। अगर उसने ऐसा बोल दिया और उसके मन में ऐसा विचार आ गया तो समझ लो कि उस बेटे के अन्दर घृणा के संस्कार पड़ गये। आपके लिए ऐसा सोचना उसके दिमाग में इतना बड़ा असर डाल सकता है कि वह बाद में जन्म लेने के बाद में घृणा करेगा तुमसे और वह कहेगा कि मैंने कहाँ जन्म ले लिया कि मुझे ऐसी माँ मिल गई। यह बहुत बड़े-बड़े संस्कार हमारे विचारों

आदमी को आनंदित होने के लिये कभी भी जड़ पदार्थों को महत्व नहीं देना चाहिये।

से, हमारे बच्चों पर पड़ जाते हैं, गर्भ में भी पड़ते हैं और वो जब गर्भ से बाहर आ जाते हैं जन्म लेते हैं, बड़े होते हैं तब भी पड़े हुए रहते हैं। इसलिए जब भी आपको किसी भी घर में परिवार में रहने की बात आये तो आप हमेशा इस सचेतना के साथ में रहना कि जो भी हमारे आस-पास लोग हैं हम उनसे घृणा ना करें, अपने मन में उन सबके प्रति प्रेम-भाव रखें। आप अगर अपने ही घर के लोगो से घृणा करोगे और ज्यादातर ऐसा होता है कि जिनसे हमारे घनिष्ठ सम्बन्ध होते हैं उनसे ही हमें घनिष्ठ घृणा उत्पन्न होती है।

जब यह बात आचार्य समझा रहे होते हैं कि किसी से घनिष्ठ प्रेम नहीं करना। उस समय पर समझ में नहीं आता और इनको तब समझ में आयेगा जब यह घनिष्ठ घृणा में पड़ जाता है और इनके मन में अनेक प्रकार के विचार उत्पन्न होते हैं अब क्या करें? अब उसको सम्भालना कैसे है? जब भी आपके मन में घृणा का भाव आये आप अपने को समझायें और यह सोचें कि इससे हमारा जैसा पहले प्रेम था हमें वैसा ही प्रेम अब बनाकर के रखना है। हमें उसके दोषों के बारे में नहीं सोचना, इसका कैसा भी nature हो इसके बारे में नहीं सोचना लेकिन हमें इसके साथ रहना है तो इसके गुणों के बारे में ही सोचना है। जैसा पहले सोचा करते थे वैसा ही अब सोचो लेकिन वो सोच धीरे-धीरे मर जाती है। जब सम्बन्ध बनने को होते हैं और जब सम्बन्ध बन जाते हैं तब अलग-अलग सोच होती है। उसके कारण से प्रेम, घृणा में परिवर्तित हो जाते हैं। यह चीजें अगर जीवन में आने लगें तो समझना हमारा जीवन अब बहुत ऊँचाई की ओर नहीं जा सकता। हमारा जीवन अब गिरने लगा है। जीवन में आनन्द आएगा जो आपके साथ में हैं, जैसे भी हैं आप उनसे निभायें, आपने जिम्मेदारी ली है यह आपकी responsibility है कि अब हम उनसे अपना बंध कर चुके हैं, सम्बन्ध बना चुके हैं तो हम उनके साथ में रहेंगे। यह आपका सम्बन्ध तब तक चलेगा जब तक आपकी उम्र है क्योंकि भारतीय संस्कृति में एक बार जो सम्बन्ध बन जाता है पूरी उम्र के लिए बनता है। बीच में तोड़ना है तो logical तरीका तो एक ही है। आप घर, परिवार छोड़कर साधु के पास पहुँच जाओ तो यह logical कहलाएगा और आपने illegal कुछ काम किया तो वो आपके लिए पीड़ा का कारण बन जाएगा। समाज आपको रहने नहीं देगी। आपको टॉर्चर करती रहेगी। अगर आपने illegal कुछ कर लिया या आपने illegal कुछ करने की बात सोच ली वह बात समाज तक पहुँच गई तो समझ लेना समाज में आपकी reputation गिर गई। इतना आदमी के अन्दर जब अपने विचारों पर control हो कि हम अपने मुँह से क्या बोल रहे हैं और हमारी यह बात चार लोगों के बीच में पहुँचेगी तो लोग क्या सोचेंगे? जब तक आदमी के दिमाग में इतना control नहीं होगा तो वो आदमी अपने को manage कर पायेगा, न किसी दूसरे को। ''ये दिमाग बहुत बड़ी फितरत है और इस दिमाग को control में रखना एक बहुत बड़ा पुरुषार्थ।'' इस पुरुषार्थ को आप अध्यात्म

आस-पास वालों से हम घृणा न करें, सबके प्रति प्रेमभाव से रहें।

ग्रन्थों के माध्यम से समझ सकते हो और जब आपके लिए यह समझ आएगी तभी आपको जीवन का सही आनन्द आयेगा। इसलिए आचार्य कहते हैं ''दो के बीच सम्बन्ध बनाओ ही नहीं'' एक सुरक्षा कवच बना दिया। एक रहो अपने में रहो, अपने में जो तुम्हारा सम्बन्ध बनेगा वो तुम्हें कभी कष्ट नहीं देगा। जैसे तुम ध्यान लगाने बैठोगे तो शुरु में नहीं लगेगा। धीरे-धीरे लगने लग जायेगा। उससे कोई कष्ट तो होगा नहीं, उसका कोई तुम्हे ऋणात्मक प्रभाव बाहर देखने को नहीं मिलेगा लेकिन जैसे ही आपने दूसरे से सम्बन्ध बनाया, आपके लिए बन्ध होगा। आप उसके कर्ता हो गये। यहाँ 'कटस्य कर्त्ता' कहा है। अब आपके पास जो-जो चीजें है उन सबके साथ लगाओ कि मैं इसका कर्त्ता हूँ, मैं इसका भी कर्त्ता हूँ। जिससे विवाह किया है मैं उसका कर्ता हूँ। मैं उसका कर्ता हूँ और वो मेरा कर्म है इस तरह से कर्ता कर्म को सम्बन्ध दो के बीच बन जाता है। जो-जो चीजें तुम्हारे पास में आ जाती हैं जिनको तुम समझते हो कि यह मेरा है यह सब तुम्हारे लिए कर्ता बुद्धि बन जाता है और उस कर्ता बुद्धि में जहाँ दो के बीच में सम्बन्ध हुआ वहाँ बन्ध अपने आप हो जाता है और जहाँ बन्ध हो गया तो तब स्वतंत्रता की बात कैसे करोगे। अब तो उसके बीच ही रहकर के भावना कर सकते हो और उस बन्ध को तोड़े बिना आपको कभी स्वतंत्रता मिल नहीं सकती लेकिन वह बन्ध तोड़ना भी illegal तरीके से नहीं चाहिए। legal तरीके से होना चाहिए।

आचार्य यहाँ कह रहे हैं '**सम्बन्धः कीदृशस्तदा**' फिर आपका सम्बन्ध किसका किसके साथ में रह गया मानें। आत्मा में ही आत्मा का सम्बन्ध होने से आपको कोई बन्ध नहीं होगा, आप बिल्कुल चिंता ना करें, आपके लिए कर्म की निर्जरा ही होगी। यह चीज हमको समझ में आना चाहिए कि स्वतंत्रता क्या है और आत्मा की स्वतंत्रता किससे मिलेगी। जब तक आप किन्हीं सम्बन्धों में जुडे हैं, तब तक आप उन सम्बन्धो का सही ढंग से निर्वाह करें, उसी में आपकी स्वतंत्रता है और जब आप उन सम्बन्धो को छोड़कर के किसी और से सम्बन्ध बनाये, गुरुओं से और किन्हीं लोगों से सम्बन्ध बनाये तो भी आपको उस responsibility में रहना पड़ेगा। तभी आपके लिए उस सम्बन्ध का निर्वाह होगा नहीं तो अगर आपकी आदत पहले जैसी रही तो एक दिन जाओगे गुरु के पास में दो-चार दिन रहोगे और चार दिन रहने के बाद में फिर वहाँ से भागोगे। हमें यहाँ पर भी अच्छा नहीं लग रहा है। इसी कारण से जिनके nature इस प्रकार से होते हैं वे कभी किसी गुरु के पास में भी नहीं रह पाते हैं, गुरु से भी उनके सम्बन्ध नहीं बन पाते हैं क्योंकि हमें हमारा nature समझ में नहीं आ रहा है और जब तक आप अपने nature में इस प्रकार की घृणा भाव रखोगे तब तक आपको कभी भी उससे आनन्द मिलने वाला नहीं है जो आपके पास में है। इसलिए ''सम्बन्धों को तोड़ना, सम्बन्धों को समझना और सम्बन्धों का निर्वाह करना। यह तीनों चीजें आपके ज्ञान में सही-सही ढंग से होना चाहिए।'' जब भी कोई बेटा बड़ा होता है तो उसे लगने लग

जाता है कि हमें स्वतंत्रता मिले। अपने माता-पिता से जिनके बीच बड़ा हो रहा है वह उन्हीं से स्वतंत्र होना चाहेगा, जिनके बीच में बुद्धि को प्राप्त हो रहा है, जिनसे पाला-पोषा गया है। वह पहले उनसे ही स्वतंत्रता चाहता है लेकिन वह स्वतंत्रता उसको पता नहीं रहती है कि यह स्वतंत्रता उसको कहाँ ले जाने वाली है। मनमानी करने का नाम स्वतंत्रता नहीं होता है। स्वतंत्रता का मतलब है कि अपने ऊपर बहुत बड़ी जिम्मेदारी लेना और यह जिसको कभी समझ में नहीं आएगा कि वह कभी स्वतंत्रता का आनन्द नहीं ले पाएगा। इसीलिए अधिकतर ऐसा होता है कि जैसे ही बच्चे बड़े होते हैं वे बाहर भागने की सोचते हैं कि मुझे बाहर पढ़ना है। पढ़ाई तो एक बहाना रहती है। उनके अंदर यह भाव रहता है कि मुझे मनमानी करना है और यह मनमानी करने का भाव उन्हें बाहर तो भेज देता है लेकिन वहाँ जाकर के जब वह मनमानी करते हैं और पढ़ाई में सफल नहीं होते हैं, परेशानियों में पड़ जाते हैं तो फिर वह घर के रहते हैं, न बाहर के रहते हैं। अब उन्हें वापस घर लौटकर के आने में भी शर्म लगती है क्योंकि अब क्या मुँह लेकर के घर पर जायें। अगर वहाँ रहते हैं तो वहाँ के लिए किस बात से कहे कि हमें यहाँ रहना है क्योंकि वहाँ पर फेल होते चले जा रहे हैं, सफल हो नहीं रहे हैं, घर में खर्चा बेवजह कौन उठाएगा। अनेक परेशानियाँ तब सामने आ जाती है। इसलिए हमेशा ध्यान रखना कि जो हमारे लिए सम्बन्ध बने है उन सम्बन्धों को समझदारी से निभाने के लिए समझदारी कैसे आएगी? धीरे-धीरे अपनी जिम्मेदारी को समझना और धीरे-धीरे अपनी जिम्मेदारी से मुक्त होना। यह जब गृहस्थी हो जाएगा तो उसके लिए सही रास्ता मिलेगा। अधिकतर गृहस्थ बड़ी जल्दी जिम्मेदारियों से मुक्त होने की बात करते हैं और वो कहते हैं कि हम सब कुछ छोड़कर जाना चाहते हैं। जब तुम घर में नहीं रह सकते हो तो गुरु के पास भी नहीं रह सकते हो। यह भी ध्यान रखना क्योंकि मन तो तुम्हारा वही है। तुमने अपने मन को कहाँ समझाया है। मन को समझदार बनाओ। जब मन समझदार हो जाएगा तो तुम्हें घर में भी अच्छा लगेगा और जब तुम किसी गुरु के शिष्य बन जाओगे तो वहाँ पर तुम्हें अच्छा लगेगा। यह बहुत अच्छे-अच्छे इष्ट उपदेश हैं। पहली बात तो यह है कि अपना सम्बन्ध किसी से बनाओ ही नहीं। सबसे बड़ी सुरक्षा है और अगर बन गये हैं तो अब उस बीच में भी यहीं भावना करो कि वास्तव में निश्चय से किसी भी द्रव्य का कर्त्ता नहीं हूँ, स्वामी नहीं हूँ और निश्चय से ना **किसी को दुख देने** वाला हूँ, ना सुख देने वाला हूँ, मैं अपने ही कर्मों से सुखी और दुखी होने वाला हूँ। दूसरा अपने कर्मों से सुखी और दुखी होने वाला है इसलिए मुझे किसी के द्वारा परेशान किए जाने पर दुखी नहीं होना चाहिए क्योंकि मुझे अपने ही कर्मों से सुख और दुख की अनुभूति होगी। आप उस दुख के समय पर भी साहस रखकर के अच्छे भाव रखोगे, प्रसन्नता रखोगे तो आपके लिए उस समय पर दुख आकर के भी ऊपर से चला जाएगा। आपके भीतर प्रवेश नहीं कर पाएगा और अगर आप दुख में दुखी हो गये तो समझ

स्वतंत्रता यानि बहुत बड़ी जिम्मेदारी लेना है, ना कि मनमानी करना स्वतंत्रता है।

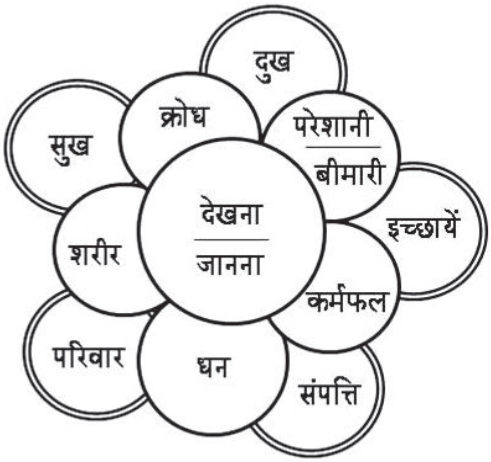

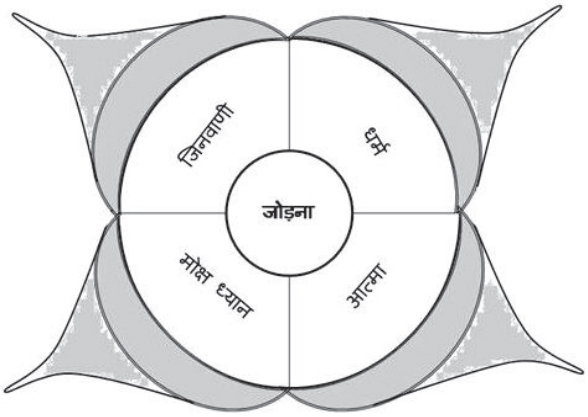

लो वह दुख आपके भीतर प्रवेश कर गया। वह दुख हमें फिर दुख देने के लिए बाहर आयेगा। यह भावना करोगे तो आप दुख से मुक्त हो पाओगे।

आचार्य कहते हैं आत्मा और कर्म का यह जो बन्ध है वो आजकल का नहीं है, इस जन्म का नहीं है, अनादि का बन्ध है और इस बन्ध को आप छोड़ना चाहते हैं, मुक्त होना चाहते हैं तो आप यह मानकर के चलो कि कोई भी जड़ पदार्थ मेरा नहीं है क्योंकि कर्म भी जड़ है और अन्य वस्तुएँ भी जड़ है और उन जड़ पदार्थों में मेरी जो इच्छाभूति होती है उसी के कारण से मुझे आत्मा में कर्म का बन्ध होता है। इस कर्म से बंध की मुक्ति का यही उपाय है कि अपनी आत्मा में आत्मा की भावना करो, कर्म अपने आप छूटता चला जायेगा। इससे मत डरो कि आत्मा में आत्मा की भावना करेगें तो हम फिर अपनी आत्मा से बँध जायेंगे। अपनी आत्मा से बँधने में कोई कष्ट नहीं होगा। उसी में तो स्थिति कराने के उपाय हैं, यह उसी आत्मा में लीन कराने का उपाय है, यह आत्मा इसलिए स्वतंत्र होता है कि यह अपनी स्वतंत्रता का भाव जब भीतर से कर लेता है कि कर्म भी मेरा नहीं है तो वे कर्म आदि यह शरीर मेरे कैसे हो सकते हैं और जब ये मेरे नहीं हो सकते तो हम

अपने मन के वेग को अपनी आत्मा से जोड़ना, दूसरे से ना जोड़ना ही निर्वेग भाव है।

इनमें अपनी कर्त्ता बुद्धि क्यों जोड़े ? जो भी हमारे लिए मिला है वह हमारे ही कर्म का फल है और उस कर्म के फल को भी आप थोड़ा सा अनासक्त भाव से भोगें। इसलिए आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं–

''णिव्वेद सम्मावण्णो णाणी, कम्मफलं विजाणादि।''

ज्ञानी वह है जो निर्वेद भाव से समापन हुआ है यानि मुक्त हुआ है। कर्म के फल केवल जान रहा है, भोग नहीं रहा है। आपको जो कर्म का फल मिला है उसको आप केवल जानो, भोगो नहीं। भोगोगे तो पुनः फिर वही कर्म का बंध होगा। जो कर्म तुम्हे अभी दुख दे रहे हैं जो भी तुम्हारे पास में है उसको केवल जानो, जो भी कर्म का फल मिल रहा है। मान लो तुम्हारे पास में अच्छा घर है उसको केवल जानो। जानने का मतलब ठीक है, बहुत अच्छा घर है, बहुत अच्छी चीजें है, हमारे पास बहुत धन है, हमारे पास बहुत अच्छा परिवार है, आप केवल इसको जानो। जानने के आगे अगर आपने उसमे आसक्ति रखने का भाव किया, राग का भाव किया उसको अपना मानकर के उसमें आनन्द का भाव किया तो यह आपके लिए कर्म का बंध हो गया। जानोगे तब तक ज्ञानी रहोगे और जानने के बाद में जैसे ही इसको भोगने की इच्छा करोगे तो अज्ञानी हो जाओगे। यह ज्ञानी और अज्ञानी के बीच का सबसे बड़ा अन्तर है क्योंकि ज्ञानी के पास में निर्वेग भाव होता है। निर्वेग का मतलब ही है कि हमारे मन का वेग हमें किसी दूसरे से जुड़ने नहीं देगा और हमारे मन का वेग हमें केवल अपनी ही आत्मा से जोड़ेगा ताकि सबसे वह जानने देखने का भाव करेगा। ये सब हमारे लिए जानने के विषय हैं इनको केवल जानना है, देखना है और आप देखोगे। जैसे ही आप जानने देखने की स्थिति में आ जाओगे, आपकी आत्मा में बहुत बड़ी शान्ति आ जायेगी। कोई आपके ऊपर गुस्सा कर रहा हो, आप उसे केवल जानो इससे ज्यादा कुछ नहीं करना। यह क्यों करना है, यह मुझे परेशान कर रहा है, यह मुझे दुख दे रहा है, यह जबरदस्ती गाली दे रहा है, कुछ मत सोचो। बस जानो यह मुझ पर गुस्सा कर रहा है, यह गाली दे रहा है, यह मुझको मार रहा है, यह मेरे लिए आपत्तियाँ पैदा कर रहा है, केवल इसको जानो। आप जानने की स्थिति में होगे। आप समझ लो कि आप उस गुस्से से बच रहे हैं। उससे होने वाला जो बंध है उससे आप छूट रहे हैं। इसके आगे आप एक कदम भी नहीं बढ़ना। एक कदम भी आगे बढ़े कि आप फँसे। इसके अलावा उसके बारे में कुछ सोचना नहीं जो कोई कुछ भी करे उसको केवल जानकर के छोड़ देना और जब आप जानोगे तब आप याद भी नहीं रखोगे बाद में क्योंकि आपने उस समय पर जाना था, ध्यान में नहीं रखा। अब तो गुस्सा करना बंद कर दिया। अब मैं तुम्हे देख लूँगा। अब अगर तुम उसको देखोगे तो आपने उसके गुस्से को अन्दर रख लिया। अब बाद में निकालने की सोच लूँगा। बात दोनों तरफ से चल रही है। जब भी कभी वो बात समाप्त होगी तो एक तरफ से तो बात को बन्द करना ही होगा। आप सुनते हो, ताली एक हाथ से नहीं बजती है। अगर दोनों action में रहेंगे तो बात पूरी

कभी नहीं होगी और अगर दोनों में से एक ही action में है तो उसका अभाव हो जायेगा। जैसे ताली बजती है तो एक दूसरे का आपस में support होगा, तभी बजेगी। support मिलने का मतलब है कि आप भी उसको सुन रहे हो, आप भी उसको उसी रूप में ग्रहण कर रहे हो। जब आपके ऊपर कोई आपत्ति आ रही है, आचार्यों ने बड़े-बड़े अच्छे-अच्छे formulas दिये हैं। आप केवल उसे जानो-देखो, कुछ नहीं होगा। जितना-जितना आप इस तरह का पुरुषार्थ करोगे। आपके अपने मन में अपने आप सुख और शांति महसूस होने लगेगी। कोई आप पर गुस्सा भी कर ले, कोई बात नहीं। लेकिन हमें अपने मन की शांति भंग नहीं करना क्योंकि मन हमारा है, हमारी आत्मा ने बड़े पुण्य किये थे। इसलिए हमें मन मिला है, पंचेन्द्रिय संज्ञी पर्याय मिली है। नहीं तो, हम एकेन्द्रिय बनकर कहीं पानी की तरह बह रहे होते, हवा की तरह उड़ रहे होते। मन हमें मिला, मन हमें उसके कारण से नहीं मिला जो हम पर गुस्सा कर रहा। मन तो हमारा है, हमारे पुण्य से मिला। इतनी बड़ी पर्याय, बुद्धि मिली, हमारे पुण्य से मिली। दूसरे के कारण से हम इसके ऊपर घात क्यों करें, दूसरे के कारण से हम अपने मन को दुखी क्यों करें? दूसरे के कारण से हम अपनी इस संपदा को आघात क्यों पहुँचायें? यह विचार आपके अन्दर आयेगा तो आप अपने आप में बिल्कुल अच्छे शांत और अपने आप में बिल्कुल अच्छे महसूस करेंगे क्योंकि यह सब तो दुनियाँ में चलता ही रहता है। हमें कैसे शांत होना है, यह सीखना है, दूसरा जब सीखेगा तब सीखेगा, उसकी जब काल-लब्धि आयेगी तब आयेगी लेकिन आपकी काल लब्धि आज आ गयी है। आपके लिए काल-लब्धि नहीं आई, आप यह सोच रहे होंगे तो किसी के लिए नहीं आई। आपकी समझदारी इसी में है कि आप उसमें समझदारी का परिचय दो और उसी समय पर भावना करो। मैं किसी का कर्त्ता नहीं हूँ, मेरा किसी से कोई सम्बन्ध नहीं है, मेरा अपनी ही आत्मा से अपना सम्बन्ध है इसलिए मैं खुश हूँ और मैं सुखी हूँ।

जितना-2 चीजों को सिर्फ देखेंगे व जानेंगे, आप सुख-शांति महसूस करेंगे।

बन्ध व मोक्ष का हेतु

26

बध्यते मुच्यते जीवः सममो निर्ममः क्रमात्
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन निर्ममत्वं विचिन्तयेत्॥

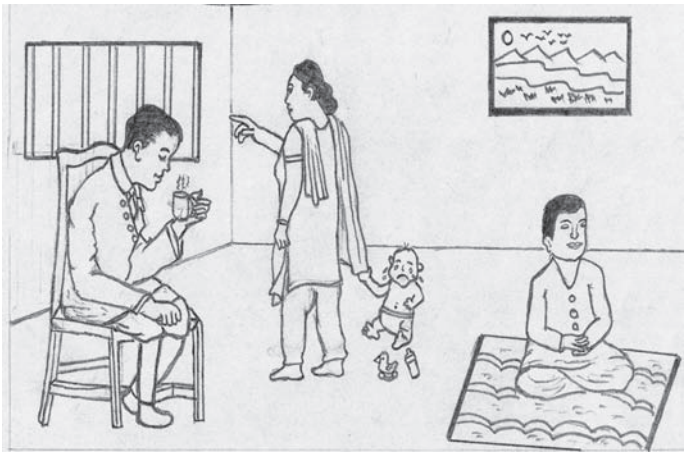

अन्वयार्थ–(सममः) ममता सहित और **(निर्ममः)** ममता रहित **(जीवः)** जीव **(क्रमात्)** क्रम से [कर्मों से] **(बध्यते)** बँधता है तथा **(मुच्यते)** छूटता है **(तस्मात्)** इस कारण **(सर्वप्रयत्नेन)** सर्व प्रयत्न से **(निर्ममत्वं)** निर्ममत्व को **(विचिन्तयेत्)** ध्यावे।

☞ छह द्रव्य
☞ जीवतत्त्व

एक ही श्लोक में बहुत short में बता दिया है कि यह जीव कैसे बँध रहा है और यह जीव कैसे मुक्त होगा। पहले हम यह समझ लें कि बन्ध और मोक्ष ये दोनों ही जीव में घटित होने वाले तत्त्व हैं। सात तत्त्वों में इन बन्ध तत्त्व और मोक्ष तत्त्व को सुना होगा। ये बन्ध और मोक्ष जीव में ही घटित होते हैं तो जीव ही इनका कर्त्ता होता है। जीव ही इन बन्ध और मोक्ष के फल का भोक्ता होता है क्योंकि बन्ध जीव में हो रहा है तो उस बन्ध दशा का अनुभव आपको अनेक रूपों में समझ आ सकता है। यह जीव शरीर से बँधा है। इन सब कर्मों के बन्धन इस शरीर के अन्दर रहने वाली उस आत्मा के अन्दर चलते रहते हैं। यह कर्म का बन्ध भी जीव कर रहा है और कर्म की मुक्ति की भी यह जीव ही करेगा। जीव को कर्त्ता मान लो पहले, कि यह जीव ही सब कुछ करने वाला है। अगर यह जीव संसार में है तो संसार का कर्त्ता भी जीव है और यह जीव जब संसार से छूटने का प्रयास करेगा तो उसका कर्त्ता भी यह जीव ही होगा। इसके लिये आचार्यो ने सात तत्त्वों के और नौ पदार्थों के ज्ञान कराने से पहले छह द्रव्यों का ज्ञान कराने का एक प्रक्रम दिया है।

छह द्रव्य :

पहले आचार्यों ने छह द्रव्यों का वर्णन इसलिये किया है कि आप यह समझ लो कि इस विश्व के अन्दर कितने द्रव्य रहते हैं और उन द्रव्यों में किस तरह परिणमन चलता है। वे द्रव्य कहाँ रहते हैं उनकी संख्या कितनी है? उनके बीच में जो जीव द्रव्य है उसकी स्थिति क्या है? यह सभी आपको द्रव्य के कथन से समझ में आ जायेगा। जब आप छह द्रव्यों का ज्ञान करेंगे तो आपके ज्ञान में आयेगा कि इस श्लोक के अन्दर छह द्रव्यों में जितने भी द्रव्य हैं, जीव द्रव्य को छोड़कर के वे सब अपने अपने स्वभाव में परिणमन कर रहे हैं। धर्म द्रव्य है वह कभी किसी से बँधता नहीं है, अधर्म द्रव्य है वह भी कभी किसी से बँधता नहीं है। आकाश द्रव्य है, वह भी किसी से बँधता नहीं है और काल द्रव्य है वह भी किसी से बँधता नहीं है। इन सब द्रव्यों में शुद्ध परिणमन निरन्तर चलता रहता है। धर्म द्रव्य सदैव शुद्ध रहता है, अधर्म द्रव्य हमेशा शुद्ध है, आकाश द्रव्य भी शुद्ध व काल द्रव्य भी। शुद्ध का अर्थ है कि वह अन्य द्रव्यों के साथ तो रह रहा है लेकिन अन्य द्रव्यों के प्रभाव से मुक्त है, यही उसकी शुद्धता है। धर्म, अधर्म द्रव्य उसी स्थान पर रह रहे हैं जिस स्थान पर जीव व पुद्गल द्रव्य रह रहे हैं। लेकिन धर्म, अधर्म आदि द्रव्यों में किसी भी प्रकार से जीव और पुद्गल के द्वारा कोई फर्क नहीं पड़ता। धर्म तो जीव और पुद्गल को केवल चलने में सहायता प्रदान कर रहा है अधर्म-द्रव्य जीव और पुद्गल के रुकने में सहायता प्रदान कर रहा है। आकाश द्रव्य जीव पुद्गलों को अवकाश दे रहा है जीव और पुद्गलों में परिणमन कर रहा है, ये इन चार द्रव्यों के शुद्ध काम हैं। इन चार द्रव्यों का परिणमन भी अपने आप अपने ही गुणों के माध्यम से ही पर्यायों के माध्यम से चलता रहता है। जब इस जीव की दशा को आप देखेंगे तो आपको ज्ञात होगा कि यह जीव द्रव्य पुद्गल द्रव्य के साथ में रहता है तो यह पुद्गल को भी प्रभावित करता है और पुद्गल भी जीव द्रव्य को प्रभावित करता है। इसलिये छह द्रव्यों में अगर आपसे कोई पूछे- कितने द्रव्य अशुद्ध है तो आप कह सकोगे कि दो द्रव्य अशुद्ध हैं- एक जीव द्रव्य और एक पुद्गल द्रव्य। अशुद्ध इसलिये हो गये

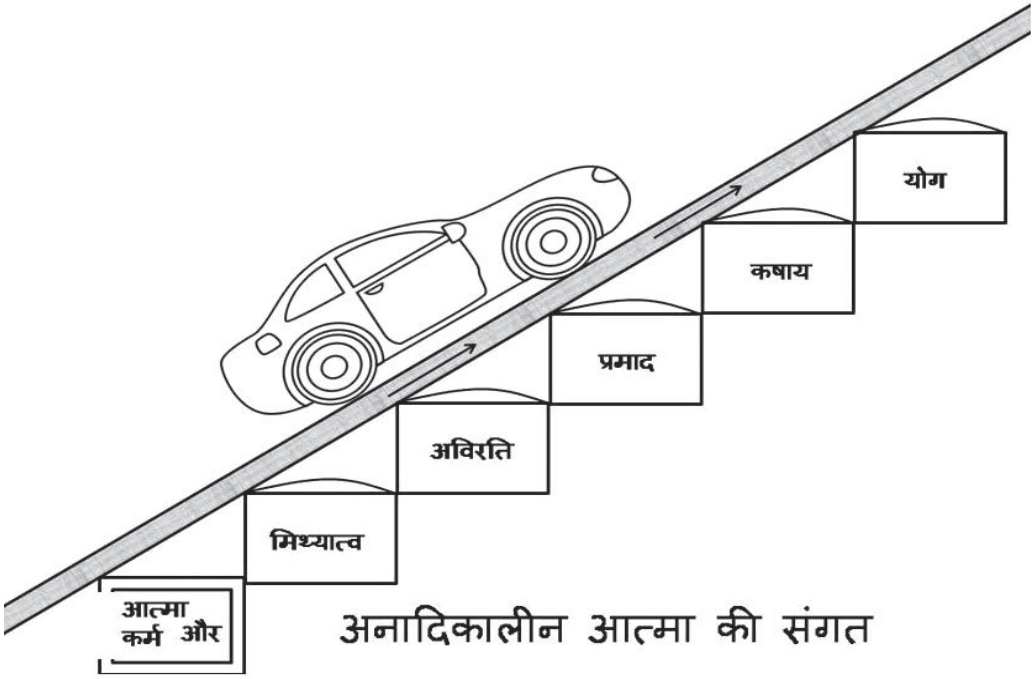

अनादिकालीन आत्मा की संगत

क्योंकि यह एक दूसरे के प्रभाव में आ गये, एक दूसरे के कारण से बन्ध को प्राप्त हो गये और दूसरे के अनुसार परिणमन करने लगे। इसीलिए ये दोनों द्रव्य अशुद्ध द्रव्य हो जाते हैं, बाकी के चारों द्रव्य शुद्ध-द्रव्य रहते हैं। छह द्रव्य में जब इस प्रकार का विभाजन आपके ज्ञान में आ जाता है तो आपके मन में आयेगा कि जीव द्रव्य सभी शुद्ध हैं या जीव द्रव्य अशुद्ध हैं।

आचार्य कहते हैं संसार में रहने वाले जितने भी संसारी जीव है वो सभी अशुद्ध हैं, क्यों है? क्योंकि वे पुद्गल कर्म के साथ संबंध को प्राप्त हुये हैं। जो संसार से मुक्त हो गये हैं वो जीव द्रव्य शुद्ध हैं क्योंकि वे अब पुद्गल के संबंध को प्राप्त नहीं होंगे और कोई भी पुद्गल अपना effect नहीं डाल पाएगा। यह परिणति जब अपने दिमाग में आ जाती है, देखने में आ जाती है तो अपने आप वह जीव द्रव्य सोचने लग जाता है कि इन कर्म के बन्ध से मुक्त होना चाहिये। इस जीव को भी इस पुद्गल के बन्ध से मुक्ति मिलनी चाहिये। यह परणति जब जीव के दिमाग में आ जाती है तब तो वह जीव द्रव्य न रहकर के जीव तत्त्व के बारे में सोचने लग जाता है। द्रव्य में जब तक रहा तब तक तो उसे दिखाई देगा कि हमारा परिणमन चल रहा है जीव द्रव्य का, सबके परिणमन में हम भी शामिल हैं अनंत, अनंत जीव, अनंत जीवों का संसार में परिणमन चल रहा है, यह हो गया जीव द्रव्य का ज्ञान। जब उस जीव ने यह सोचा- अरे, अपना जीव तो अपने ही पास में है, अपना तत्त्व तो अपने ही पास में है। अपना तत्त्व पर से क्यों बँध रहा है? और पर को क्यों बाँध रहा है? तो यह हो गया उसको जीव तत्त्व का ज्ञान होना। द्रव्य के ज्ञान में तो आपको बहुत सारे दिखाई दे जायेंगे। अनंत जीव द्रव्य हैं लेकिन जैसे ही आप तत्त्व का ज्ञान करोगे तो आपको अपना ही तत्त्व

धर्म, अधर्म, आकाश, काल शुद्ध द्रव्य हैं। जीव व अजीव अशुद्ध द्रव्य हैं।

दिखाई देगा कि जीव तत्त्व मैं हूँ। उस जीव तत्त्व के ज्ञान होने पर ही आपके अन्दर यह बन्ध और मोक्ष का सही सही ज्ञान होगा क्योंकि जीव में आस्रव होगा, बन्ध होगा। आस्रव होगा तो बन्ध होगा और बन्ध होगा तो निर्जरा होगी व निर्जरा है तो ही मोक्ष होगा। आस्रव व बन्ध के बीच कोई चीज है तो वह है कर्म। कर्म पुद्गल रूप में हमारे साथ में रहता है और वह जीव और कर्म का आस्रव निरन्तर अनादिकाल से चल रहा है। यह कोई आजकल का काम नहीं है, तभी से उसके लिए आस्रव हो रहा है तभी से उसका बन्ध हो रहा है। अब जब से मतलब है अनादिकाल शुरुआत से नहीं, शुरुआत अगर हो जायेगी तो वह जीव भी आदि को प्राप्त हो जायेगा। तब इसका मतलब यह हो जायेगा कि पहले जीव शुद्ध था बाद में कर्म ने उसे अशुद्ध कर दिया। किसी भगवान ने कर्म उसमें डाल दिये तो भगवान ने उसे अशुद्ध कर दिया तो भगवान के चरणों में माथा क्यों ढोकते हो, तूने मुझे अशुद्ध क्यों कर दिया उसी से कहो। जैन दर्शन कहता है, किसी पर इल्जाम लगाने की कोई जरूरत नहीं है कि भगवान ने ना किसी को अशुद्ध किया और ना भगवान किसी को शुद्ध करेगा। आपका परिणाम ही आपके साथ हमेशा रहा है और जीव हमेशा कर्मों के साथ ही रहा है अनादि से उसका संबंध है और संबंध को तोड़ने का प्रारम्भ भी करना पड़ेगा। इसीलिए भगवान से कुछ कहने की जरूरत नहीं है। अपनी आत्मा से कहने की जरूरत है कि जीव तत्त्व कहाँ है और वह जीव तत्त्व का जो कर्म के साथ संबंध हुआ है वही कर्म के साथ संबंध उसके लिए आस्रव का कारण है। इसी तरह से यह तत्त्व बन जाते हैं। सात तत्त्व जो इस जीव तत्त्व से बनते हैं।

जीव तत्त्व :

जीव तत्त्व ने अपने स्वभाव को भुला दिया इसीलिए कर्मों का उसके ऊपर प्रभाव पड़ा। कर्मों का आस्रव हो रहा है और यह आस्रव भी अनादि से चल रहा है। जितने भी आस्रव के कारण है भाव आस्रव के हैं वे अनादि से चल रहे हैं। आचार्य कहते हैं मिथ्यात्व का भाव आत्मा में अनादि से पड़ा है, अविरति का भाव आत्मा में पड़ा है, प्रमाद का भाव आत्मा में अनादि से पड़ा है, कषाय का भाव आत्मा में अनादि से पड़ा है और योग का भाव भी आत्मा में अनादि से पड़ा है। पाँच चीजें हैं जिनका आत्मा में अनादि काल से आत्मा के साथ में संबंध है– मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, और योग। ये सब अनादि से आत्मा के अन्दर पड़ी है और ये सब एक-एक करके निकलेंगी। आप इनको कहीं आगे पीछे से नहीं छोड़ सकते हैं। ये पाँच प्रकार के भाव आत्मा के अन्दर अनादि से अपनी पैठ बनाये हैं। ये पाँच प्रकार के भावों के कारणभूत जो कर्म हैं वे भी अनादि से आत्मा में बैठे है। जब से यह आत्मा है तब से यह कर्म है और तब से ही यह भाव के आस्रव हैं कोई आगे पीछे नहीं है। अब इनमें जो हटने का क्रम होगा, पहले मिथ्यात्व हटेगा, फिर अविरति हटेगी, फिर प्रमाद हटेगा, फिर कषाय हटेगी, फिर अन्त में योग हटेगा। यह इसी क्रम से हटेगा और यह इसी क्रम में आगे पीछे भी कुछ नहीं होने वाला और बीच में कुछ नहीं छूटने वाला। यह सब क्रम क्रम से हटेगा, जब मिथ्यात्व का भाव हटेगा तो जीव का श्रद्धान, अजीव तत्त्व का श्रद्धान, आस्रव तत्त्व का श्रद्धान, बंध तत्त्व का श्रद्धान, इन सब तत्त्वों का श्रद्धान होगा। तत्त्वों का

जीव तत्त्व का कर्म के साथ संबंध ही आस्रव का कारण है।

श्रद्धान मिथ्यात्व के हटने से होगा। जब सात तत्त्वों का श्रद्धान होगा तभी आप अविरति से हटेंगे, पाँच पापों का आस्त्रव हो रहा है, उस आस्त्रव से छूटेंगे और विरति का भाव आयेगा। मिथ्यात्व अविरति संसार का कारण है। सम्यक्त्व विरति संवर निर्जरा का कारण है। आत्मा मिथ्यात्व भाव का कर्त्ता है और मिथ्यात्व कर्म का कर्त्ता है। 'संबंधः स्याद्द्वयोर्द्वयो' जब दो का संबंध होता है तब वह आत्मा कर्त्ता हो जाता है। मिथ्यात्व आत्मा का भिन्न भाव है, वह हटेगा तो आत्मा का स्वाभाविक भाव सम्यक्त्व भाव प्रकट होगा और वह अनंतकाल तक बना रहा है। एक बार प्रारंभ होने के भाव अनंतकाल तक रहता है। वह सम्यक्त्व-भाव 'सादिअनंत-भाव' कहलाता है व मिथ्यात्व 'अनादिअनंत भाव' है। हमारे ऊपर अन्य कर्मों का इतना प्रभाव है कि हम अपने स्वाभाविक भाव को भूले हुये हैं। विरति भी स्वाभाविक भाव है। कुछ लोग कहते हैं कि विरति से पुण्य बंध होता है और बंध तो संसार का कारण है इसलिये बंध से दूर रहना चाहिये। द्रव्यसंग्रह में कहा है–''**मिच्छत्ताऽविरदि पमाद कषाय जोगा** '' ये मिथ्यात्व अविरति प्रमाद कषाय योग ये भावास्त्रव का कारण हैं न कि विरति। ये तो आत्मा का स्वाभाविक भाव इसलिये अरिहंत व सिद्ध भी विरत हैं। पंचेन्द्रिय विषयों से विरत हैं और आप लोक विरति से विरत हैं, व्रत लेने से डरते हैं। जहाँ से व्रत होते हैं वहाँ से आत्मा का स्वाभाविक परिणमन शुरू हो जाता है, मुक्ति का निर्जरा का साधन होता है।

मिथ्यात्व के साथ ममत्व का भाव जुड़ा हुआ है इसलिये वह व्रत की ओर नहीं बढ़ पाता। यदि वह कहीं और से जुड़ा हुआ है तो वहाँ से छोड़ना बहुत मुश्किल होता है। उसे समझाने पर वीतराग भगवान का मंदिर छोड़ने तैयार हो जाता है परन्तु मिथ्यात्व को नहीं छोड़ पाता। यह सब मिथ्यात्व से ममत्व भाव का परिणाम है। अपने अंदर के भाव को देखो कि किसके लिये क्या छोड़ सकते हैं? कभी तो ऐसा भी होता है कि कई पीढ़ियों से जो मिथ्यात्व क्रिया करते आ रहे हैं, किसी पत्थर को पूजते चले आ रहे हैं तो उसे एकदम से नहीं छोड़ पाते क्योंकि ये तो हमारे पूर्वजों से चला आ रहा है। यही आपकी मिथ्यात्व के प्रति चिपकन (ममत्व) का भाव। जब तक भीतर से विरति का भाव नहीं आयेगा तब तक ये परिणति नहीं छूट पाती। अविरति से चिपके रहने तक विरत की ओर भाव नहीं होगा। प्रमाद से भी बचना। आत्मा की कुशलता के कारणों में अनादर होना, व्रतों में अनादर होना, यह प्रमाद है, इससे भी बचना। स्नेह भी प्रमाद का भेद है। किसी भी वस्तु या व्यक्ति से स्नेह होना, मोबाइल से स्नेह होना, उसी में लगे रहना, यह भी प्रमाद की परिणति है। स्नेह-प्रमाद इतना हावी हो जाता है कि वह उसके सामने बाकी सबको अपना दुश्मन समझने लगता है, किसी की भी नहीं मानता। यह आत्मा के हित से, कुशलता से दूर कर देता है। आपका यह स्नेह अहित का कारण भी बन जाता है, इसलिये इसे कम करो। भीतर की कषाय परिणति से भी बचना। जितना आपके अंदर से ममत्व भाव कम होगा उतना ही आत्मा संसार से छूटता चला जायेगा। सभी प्रकार के प्रयत्न करके ममत्व को कम करो और निर्मम भाव का चिंतन करो, यही आचार्य महाराज का कथन है।

मिथ्यात्व के साथ ममत्व का भाव जुड़ा हुआ है इसलिये वह व्रत की ओर नहीं बढ़ पाता।

निर्ममत्व के चिन्तवन का उपाय

27

एकोऽहं निर्ममः शुद्धो ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः।
बाह्याः संयोगजा भावा मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा॥

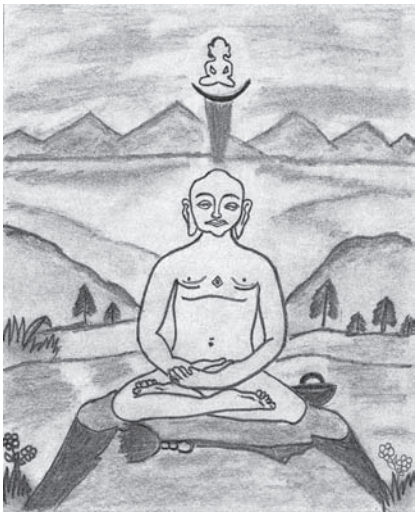

अन्वयार्थ– (**अहम् एकः**) मैं एक हूँ (**निर्ममः**) ममता रहित (**शुद्धः**) शुद्ध हूँ (**ज्ञानी**) ज्ञानी हूँ तथा (**योगीन्द्रगोचरः**) योगियों /मुनियों द्वारा जानने योग्य हूँ (**सर्वे अपि**) सभी (**संयोगजाः**) संयोग से उत्पन्न होने वाले (**भावाः**) पदार्थ (**मत्तः**) मुझसे (**सर्वथा**) सब तरह से (**बाह्याः**) भिन्न हैं।

- ☞ **Positivity**
- ☞ **Purity**

कल बताया था कि यह जीव मम-भाव से बंध को प्राप्त होता है और मम भाव से छूटने से कर्म बंध से छूटता है। उससे कैसे छूटें तो उसके लिये यहाँ भावना बताई जा रही है 'एकोऽहं'। मैं एक हूँ, यह भाव करने पर एक आत्मद्रव्य आपकी दृष्टि में आयेगा फिर अन्य जितनी परिणतियाँ हैं वे आपकी दृष्टि में छूट जायेंगी। आपकी दृष्टि केवल अपने अस्तित्व पर टिकेगी जो अस्तित्व केवल द्रव्य के साथ में चलता है। द्रव्यार्थिक नय से द्रव्य दृष्टि को प्राप्त करना। जब हम पर्यायों को गौण करके केवल द्रव्य पर ध्यान दें, वह द्रव्य दृष्टि होती है। कुछ लोगों ने इसे इस रूप में व्याख्यायित किया है कि हम केवल द्रव्य हैं, पर्याय नहीं जबकि आचार्य कहते हैं कि आपको द्रव्यार्थिक नय से द्रव्य दृष्टि बनाना है। जो केवल द्रव्य दृष्टि को पकड़कर बैठ जाते हैं उनकी दृष्टि में पर्याय नहीं आतीं, वे पर्यायों को गौण कर देते हैं। जब भी द्रव्यार्थिक दृष्टि से देखना हो तो द्रव्य के एक स्वभाव को देखना। मैं मनुष्य हूँ, यह भाव रहना पर्याय दृष्टि है, मैं देव हूँ यह पर्याय दृष्टि है लेकिन उसके साथ रहने वाला द्रव्य है, वह द्रव्य वही रहता है उसे उसी रूप में देखना यह द्रव्य दृष्टि है क्योंकि पर्याय छूटती है पर्याय बनती है पर द्रव्य हमेशा द्रव्य रूप में रहता है। अभी तक हमारी दृष्टि पर्याय रूप में रही उसे द्रव्यार्थिक नय से, द्रव्य दृष्टि से देखना। जैसे कंचे में देखने पर अनेक रंग दिखाई देते हैं परन्तु एक रंग उसमें आत्मसात् रहता है, वैसे ही आत्मा में पर्यायों के अनेक रंग देखता है तब उस आत्मा को एक द्रव्य रूप में देखना यही 'एकोऽहं' दृष्टि है। मैं एक हूँ, एक था, एक रहूँगा। जो जुड़ रहा है वह मैं नहीं हूँ, इसी का नाम द्रव्य दृष्टि। इस दृष्टि के आये बिना बाहर के संयोग से प्राप्त होने वाला छूट नहीं पाता। इस 'एकोऽहं' दृष्टि के आने पर निर्ममपना आने लगेगा। कर्म और आत्मा के बंध की गति बड़ी तीव्र चल रही है उसमें जो मंदता आयेगी वह भी इसी दृष्टि से आयेगी। जब आत्मा और कर्म की संधि पर ध्यान के द्वारा चोट लगेगी तो वह बंध की परिणति छूटेगी। 'एकोऽहं' की भावना यह है कि मेरा अनेकों से संबंध नहीं है एक से संबंध है, यही द्रव्य दृष्टि है। इसके आते ही हम negative से positive होने लगे। जितना ज्यादा आपके अंदर मम भाव आयेगा उतना ज्यादा अहं भाव आयेगा और यह भाव आपको negative बनाता चला जायेगा। अगर positive बनना है तो आपके यह दृष्टि, यह भावना जरूरी है। negativity जब भी आयेगी तो वह दूसरे से जुड़ने से आयेगी। अगर इसे दूर करना है तो अपने मन में भाव करो 'एकोऽहं'। इससे posotivity आयेगी। जो दूसरे से जुड़े रहने की परिणति है उसे छोड़ना होगा। जितनी भी परेशानी है वह खुद की हैं यदि ये सोचोगे कि मैं परेशान हो रहा हूँ तो वह भी परेशान करेगा। यदि सोचो कि मैं परेशान नहीं हूँ क्योंकि मैं एक हूँ तो वह भी परेशान नहीं कर पायेगा। ऐसा एकोऽहं के भाव सेअपने भीतर आंतरिक शक्ति मिलेगी फिर मुझे कोई डिगा नहीं पायेगा। जो भी परेशानी है वह मेरी अपनी अंदर की सोच से है, जो negative सोच है वही परेशान करती है।

पार्श्वनाथ भगवान के ऊपर कमठ ने कितना उपसर्ग किया, आँधी चलाई, पत्थर बरसाये परन्तु उन्होंने कभी परेशानी महसूस नहीं की कि कमठ मुझे परेशान कर रहा है। यह सिर्फ उस

एकोऽहं के भाव से हुआ। उनकी दृष्टि में कमठ नहीं, कोई दुश्मन नहीं। यह द्रव्य दृष्टि जब आ जाती है तो कोई परेशान नहीं कर पायेगा, किसी से परेशानी नहीं होगी। जो भी परेशानी है वह पर्याय द्रष्टि से ही होता है। उस समय दूसरा भाव करो 'निर्ममः'। मैं निर्मम हूँ, मेरा किसी से ममत्व नहीं है। ये अलग हैं, मैं अलग हूँ यह भाव आते ही सबके साथ रहते हुये भी किसी से चिपका नहीं रहेगा। अपने में स्वतंत्र वह सुखी महसूस करेगा। विपरीत भाव आयेगा तो कर्म बंध होगा, नहीं तो कोई बंध नहीं होगा। यही विपरीत भाव, यह वैरी है, यह मित्र है, यह शत्रु है इसी से कर्म का बंध होगा। आत्मा में बंध आत्मा के भाव से ही होगा। आपके ऊपर तो इतना उपसर्ग करने वाला भी नहीं होता जैसा कमठ ने किया। आपके बीच में तो कोई छोटी-मोटी बातचीत हो जाती है, किसी ने कुछ कह दिया आपके अहं को धक्का लग गया और उसे आपने ये लगा के रख लिया कि इसने मुझसे ऐसा कैसे कह दिया? क्यों कह दिया? यह रिकॉर्डिंग अपने दिमाग में चलती रहती है और वही परेशान करती रहती है। वही कर्म-बंध का कारण बन जाता है। बोलने वाला बोलकर चला गया, करने वाला करके चला और हम उसे वर्षों तक अपने दिमाग में रखे रहते हैं, कर्म-बंध करते रहते हैं, परेशान होते रहते हैं। वह परेशान नहीं कर रहा, मेरे अपने दिमाग में जो उलझन चल रही है वह परेशान कर रही है। अपने विचारों को स्वस्थ बनाओ, अपने दिमाग को स्वस्थ बनाओ, यह स्वस्थता इसी भावना से आयेगी 'एकोऽहं निर्ममः' मैं एक हूँ, मैं निर्मम हूँ। इन्हीं विचारों की स्वस्थता से जब पार्श्वनाथ भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हो सकता है तो आपको आत्मज्ञान तो हो ही सकता है उसी आत्मज्ञान को प्राप्त करो। अपने स्व में स्थित होने के प्रति लगाव उत्पन्न करोगे तो आपके अंदर positivity आती चली जायेगी और आसपास भी सब positive होता चला जायेगा। जब तक अपना कर्म ढीला नहीं पड़ता तब तक बाहर कोई घटना घटित नहीं होती। जैसे-जैसे कर्म उदय में आते हैं वैसे ही बाहर घटित होता है। पण्डित आशाधरजी ने 'अनगार धर्मामृत' में लिखा है कि भगवान पार्श्वनाथ को केवलज्ञान हुआ, वह उनकी अंतरदृष्टि से हुआ, ना कि धरणेन्द्र-पद्मावती के कारण। बाहरी कारण तो मिलते ही जाते हैं यदि दृष्टि अन्तरंग में हो। आपकी दृष्टि बाहर ही देखती है कि धरणेन्द्र ने उपसर्ग दूर किया इसलिये पार्श्वनाथ को केवलज्ञान हो गया जबकि वह तो बाह्य निमित्त मात्र है, केवलज्ञान तो उनके अन्तरंग की परिणति से प्रकट हुआ। कर्म-सिद्धान्त को तो देखो उसी से अपने भीतर positivity आयेगी। भाव आया 'शुद्धोऽहं' मैं शुद्ध हूँ। जब कर्म से संबंध छूट जाता है तो शुद्ध होता चला जाता है। अंतरंग में पुरुषार्थ होता है negativity दूर होती है तो purity आ जाती है। आत्मज्ञान आ जाता है, अध्यात्मज्ञान हो जाता है। अध्यात्म में ज्ञानी वही है जिसका ध्यान अपने ही ज्ञान में रहे, अपनी अनुभूति में रहे। आत्मा को शुद्ध अनुभव करो, वही सही रूप में ज्ञानी हो जायेगा और वही ज्ञानी योगियों के दृष्टिगोचर होता है 'ध्यानी योगीन्द्र गोचरः'। बस, अपने आप को देखो, अपने को जानो, बाहर से दृष्टि हटाकर आत्मदृष्टि बनाओ, बाहर के संयोग सब छूटने वाले हैं, दुख के कारण हैं, बंध के कारण हैं, मैं इन सब से भिन्न अत्यंत शुद्ध है, मैं एक हूँ, निर्मम हूँ, ज्ञानमय हूँ। यही द्रव्य-दृष्टि कल्याण में कारण है।

कर्म सिद्धान्त को देखो, उसी से अपने भीतर positivity आयेगी।

सम्बन्ध का परिणाम

28

दुःखसंदोह-भागित्वं संयोगादिह देहिनाम्।
त्यजाम्येनं ततः सर्वं मनोवाक्कायकर्मभिः॥

अन्वयार्थ–(इह) इस संसार में (**देहिनाम्**) जीवों के **(संयोगात्)** संयोग से **(दुःख-संदोहभागित्वं)** दुख समूह का भागीदार बनना पड़ता है **(ततः)** इस कारण **(एनं सर्वं)** इन सभी [शरीर और कर्म के] संयोग को **(मनोवाक्काय-कर्मभिः)** मन, वचन, काय की क्रिया/चेष्टा से **(त्यजामि)** छोड़ता हूँ।

- **दुख का कारण संयोग**
- **कर्म बंध के फल**
- **शुभ भावों से शुभ का बंध**
- **नश्वर सुख की चाह में निकलता जीवन**
- **जीव जुदा, पुद्गल जुदा**

आचार्य पूज्यपाद महाराज इस इष्टोपदेश में आत्मा का ध्यान करने का उपाय आत्मा के अन्दर ममत्व आदि जो भाव उत्पन्न होते हैं, उनको छुड़ाने का उपाय यह सब कुछ आपको क्रम-क्रम से बता रहे हैं। उसी क्रम में हम अपने अन्दर कैसे एक स्वरूप आत्मा की भावना करें उसकी आगे और विधि बताने जा रहे हैं।

कल आपको बताया था कि आप आत्मा की भावना करने के लिए अपनी आत्मा से ममत्व छुड़ाने के लिए 'एकोऽहं' इत्यादि भावना करें। उसी 'एकोऽहं' को हम और किस ढंग से कर सकते हैं? उसी प्रकारान्तर से बताने के लिए यहाँ एक श्लोक कहते हैं–

''दुःखसन्दोहभागित्वं, संयोगादिह देहिनाम्''

आचार्य महाराज यहाँ पर कहते हैं इस संसार में देह-धारियों को संयोग से अनेक प्रकार के दुःखों की प्राप्ति होती है। देहधारी उसे कहते हैं जो देह को धारण करने वाला हो। यह शब्द इस आत्मा के लिए प्रयुक्त होने लगा, जो आत्मा देह से रहित स्वभाव वाला है लेकिन वह देह को धारण करने के कारण से उसको 'देही' ही कहा जाता है।

जो देह में रहे वो देही है। इसलिए यह संबोधन दिया जाता है कि यह आत्मा कैसा है? देहधारी है, देह में रहने वाला है। इसी तरह से जब आपको कहा जाता है- प्राणी, तो आपका यह संबोधन भी प्राणों की अपेक्षा से बनता है कि आप प्राण धारण करते हो इसलिए आपको कहा जाता है 'प्राणी'। वास्तव में यह आत्मा का संबोधन नहीं है। यह जीव का संबोधन नहीं है। यह जीव को देह के कारण से, प्राणों के कारण से रस रूप में कहा जाता है तो हम उसे कहते हैं यह प्राणी है, यह देही है।

दुख का कारण संयोग :

इसलिए यहाँ आचार्य कहते हैं कि जो इस संसारी जीव को देह धारण करने का संयोग मिला है इस संयोग के कारण से यह देही कहलाता है। इस देह के लिए ही अनेक प्रकार के दुःखों को भोगना पड़ता है। अगर आप देह को धारण कर रहे हैं या किए हैं तो जितने भी दुःखों की उत्पत्ति होती है उन सब की शुरुआत इस शरीर से ही होती है। इसलिए '**दुःखसन्दोहभागित्वम्**' अनेक प्रकार के दुःखों के समूह का यह जीव भागी बन गया है। अनेक प्रकार के दुःखों के समूह को जीव अनायास प्राप्त होते रहते हैं और यह सब संयोग के कारण से इस जीव को प्राप्त होते हैं। आचार्य कहते हैं इस देह धारी को अपनी ही देह के संयोग से यह सब कुछ प्राप्त हो रहा है। इसलिए अगर आपको इन संयोगों से अपने आपको बचाना है तो मन, वचन, काय से इन सबको छोड़ दो। जितने भी आपके पास में संयोग हों उन सभी संयोगों को मन से, वचन से, काय से छोड़ दो। जैसे ही संयोग की प्राप्ति होती है सभी को सुख मिलता है। संयोग होने पर सभी को खुशी मिलती है।

जो देह में रहे वो देही है और जो प्राणों को धारण करे वो प्राणी है।

लेकिन वह संयोग आपके लिए दु:ख का भी कारण बन जाता है। वह आप समझ नहीं पाते हैं जब भी कभी आपको संयोग मिलेगा तो सबसे पहले तो आपको सुख होगा, यह संयोग की सबसे बड़ी विशेषता है। कोई भी संयोग मिले, चाहे आपको अपने बेटे का संयोग हुआ हो, आपको अपने परिवार का संयोग मिला हो, आपको अपने घर, व्यापार का संयोग मिला हो, पहले तो वो आपको सुख देगा। आपको लगेगा कि इसमें सुख है। संयोग से ही सुख की उत्पत्ति हो रही है। वह सुख बाद में धीरे-धीरे दु:ख के रूप में बदलने लग जाता है। संतान की प्राप्ति होने के बाद में और होते समय अनेक प्रकार के दु:खों की प्राप्ति होने लग जाती है वो उसको नहीं गिनता है।

उसकी धारणा में यह बैठा होता है कि जितने भी हमें सुख मिलेंगे हमें वे सब संयोग से ही मिलेंगे। हर व्यक्ति की धारणा में यही बात बैठी रहती है, जब भी कभी सुख की बात आयेगी तो वह सोचेगा कि किसके संयोग से हमें सुख मिले। जब भी कभी वह अपने आपको सुखी करने का भाव करेगा तो सोचेगा कहाँ जाऊँ? क्या करूँ ? किसको लाऊँ? किससे मिलूँ? उसके मन में दूसरों के प्रति संयोग की भावना उत्पन्न होगी और उसी संयोग से सुख मिलेगा, ऐसी उसके अन्दर दृढ़ धारणा बैठी रहती है। इसी दृढ़ धारणा को आचार्य महाराज तोड़ने का प्रयास कर रहे हैं। जब भी संयोग की प्राप्ति हुई, हमें लगा हमारे लिए बहुत अच्छा मिलने वाला है। आज का दिन भी किसी संयोग की प्राप्ति का दिन है। ये बच्चे यहाँ बैठे हैं, ये इसी छुट्टी के कारण बैठे हैं कि इन्हें भी आज कोई संयोग मिला था उस छुट्टी का सुख इनको आज मिल रहा है। संयोग जो मिलता है उसके साथ-साथ कितने दुख मिलने लग जाते हैं इन्हें आप इसी उदाहरण से देख सकते हो। महापुरुषों के जीवन में भी संयोग से दु:खों की प्राप्ति होती है।

जन्म हो रहा है एक बालक का और जन्म से पहले कितने ही इन्तजाम किये गये। जन्म से पहले ही बालक के लिए शत्रुओं की प्राप्ति हो रही है, जन्म से पहले ही उसके लिए अपने आप शत्रु बनकर खड़े हैं और वह शत्रु जन्म से पहले ही उसको मारने के लिए तैयार है। कितनी बड़ी-बड़ी सन्ततियाँ लेकर आदमी आता है, अभी बालक का जन्म नहीं हुआ है और उससे पहले उसको मारने के इंतजाम हैं। आज कृष्ण-जन्माष्टमी है अभी उस बालक की उत्पत्ति नहीं हो पायी। गर्भ से निकल नहीं पाया और उससे पहले ही कंस के मन में यह program चल रहा है कि जैसे ही बालक का जन्म होगा वैसे ही मैं उसका मरण कर दूँगा। निमित्त ज्ञानियों ने बता दिया है देवकी के पुत्र से ही तेरा मरण होगा यह उसको पहले से मालूम था। अब देवकी के पुत्र हो तो वो हमारे घर पर हो, वह छल करके देवकी को अपने घर ले आया, इस बहाने कि देखो, पहला पुत्र तो भाई के यहाँ पर उसके अपने मायके में ही होना चाहिए। ऐसे करके उसको पुत्र हुए एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, पुत्र हो गये और वह सारे के सारे छहों पुत्र अपने-अपने पुण्य से बच गये। कहते हैं वो

संयोग से सर्वप्रथम सुख मिलता है जो धीरे-धीरे दुख के रूप में बदलता जाता है।

पुत्र सब 'चरम शरीरी' थे। चरम शरीरी जीवों को कोई मार नहीं सकता। जैसे ही उनका जन्म हुआ देवता लोग उनकी रक्षा करने के लिए आ गये। जन्म होते ही उन पुत्रों को उठाकर दूसरी जगह ले गये और संयोग की बात- 'संयोगादिह देहनाम्' संयोग से देहधारियों को सुख भी मिलता है, संयोग से सुख भी मिल जाता है। संयोग से पुत्र की उत्पत्ति भी होती है और संयोग से किसी के यहाँ पर पुत्रों का मरण भी हो जाता है। इधर छः पुत्र उत्पन्न हो रहे थे देवकी के और उधर जब-जब देवकी के पुत्र उत्पन्न हुए तो उधर एक सेठानी के पुत्र की उत्पत्ति होती है लेकिन उसके मरे हुए पुत्र उत्पन्न होते हैं। यह भी एक संयोग है। यह इधर से पुत्रों को ले जाता है बचाने के लिए, उधर से वह सेठ अपने मरे हुए पुत्रों को लेकर आता है। इधर वासुदेव कहते हैं कि आप इनको ले जाए और वह सेठ अपना मृत पुत्र वासुदेव को दे देता है। वह मरे हुए पुत्रों को लेकर देवकी के पास लेटा देते हैं। कंस को पता चलता है- अरे देवकी के तो मरे हुए पुत्र पैदा हुए हैं। जिस समय देवकी के पुत्र पैदा होते हैं उस समय देवकी की आँख नहीं खुलती है वासुदेव उस पुत्र को प्रसूति गृह से ले जाता है और वहाँ से वो मरा हुआ पुत्र ले आते हैं और देवकी के पास लाकर रख देते हैं। कंस को सुबह पता पड़ता है और यह सब काम रात में हो जाता है। कितने ही पहरे लगे रहें, पुण्यात्मा जीवों के पुण्य ऐसे काम करते हैं और उन पहरों के बीच में भी वो देवता यह सब क्रियाएँ कर देते हैं। कंस को खुशी होने लग जाती है कि यह पुत्र हुआ, मरा हुआ हुआ, अब मेरे लिये कोई बाधा उत्पन्न नहीं होगी और हम किसी के द्वारा मरण को प्राप्त नहीं होंगे। ऐसा सोचने के बाद भी उस कंस के मन में यह आ जाता है कि कहीं यह जिन्दा ना रह जाये इसलिए वो उनको अपने हाथों से ही शिला पर पटक देता है। यह भी उस कंस की दयनीयता देखो, आप। उन पुत्रों को मारने के बाद में वह प्रसन्न होता है हम बच गये, हमें मरण कराने वाला शत्रु अभी पैदा नहीं हुआ। इस बात से भी खुश हो लेता है कि देखो, पहला और सभी छः पुत्र मरे पैदा हुए। अब हमें मारने वाला पैदा हो, ऐसी कोई बात ही नहीं है। वह सोच लेता है कि मुनि महाराज भी कभी-कभी झूठ बोल जाते होंगे। वह विचार करता है कि अभी देवकी को एक और संतान की प्राप्ति होनी होती है 9 महीने में। कभी-कभी 8 महीने में भी संतान हो जाती है कभी 7 महीने में भी संतान हो जाती है और यह जो संतान हुई उनका जन्म 7 महीने में ही हो गया। वो इन्तजार कर रहा था कि 9 महीने बाद होगा और इनका उधर जन्म हो गया। जन्म होने के बाद में उसी रात को भारी वर्षा, भारी पानी लेकिन पुण्यात्मा जीवों की रक्षा अपने आप देवों के माध्यम से होती है। ऐसे-ऐसे पुण्यात्मा जीव होते हैं। इस प्रकार के पुण्यों की उत्पत्ति भी ऐसे पिछले जन्म के पुण्य के भावों से होती है कि अगर आत्मा का कहीं जन्म भी हो तो अपने आप हमारा पुण्य हमारी रक्षा करता रहे। इतना पुण्य हम अपनी आत्मा में बाँधकर ला सकते हैं जैसे कि यह महापुरुष अपना पुण्य जीवन में बाँधकर लाये। पिछले जन्म में कोई बहुत बड़ी तपस्या की, बहुत बड़ा पुण्य अर्जित किया और उस पुण्य के माध्यम से इनका नाम यहाँ

महापुरुषों की श्रेणी में आ गया। 63 शलाका पुरुषों की श्रेणी में आ गया। ऐसे महापुरुषों का जब जन्म होता है तो कभी-भी जन्म के बाद उनकी मृत्यु नहीं होती है। आप ऐसे भी देखते होंगे कि कई पुत्र गर्भ में ही मर जाते हैं, गर्भ में ही उनको मरण होने के बाद उनको निकालना पड़ता है। कई पुत्रों की गर्भ से उत्पत्ति होने के बाद में ऐसी स्थिति रहती है जैसे-तैसे उसका एक दिन निकलता है, दो दिन निकलते हैं। अनेक प्रकार के इंजेक्शन लगते हैं, अनेक प्रकार की उसको जन्म से ही दवाइयाँ देनी पड़ती हैं और वह दो चार दिन मुश्किल से जीवित रह पाता है और मरण को प्राप्त हो जाता है।

ऐसे भी बच्चे होते हैं जो जन्म से ही कोई विशेष रोग लेकर आ रहे हैं, जन्म से ही उनको लकवा हुआ है, जन्म से ही मधुमेह हो रहा है, जन्म से ही उनके हार्ट में छेद हो रहा है। आप देख सकते हैं कि आज जो यह संतानें उत्पन्न होती हैं तो इन संतानों के लिए भी इनके पुण्य और पाप ही सब काम करते हैं। कोई भी नहीं चाहता कि उनका बेटा लकवाग्रस्त पैदा हो लेकिन अगर हो गया तो वह उसका अपना ही मूल पाप-कर्म है। उसने अपने पिछले जीवन में कोई ऐसा पाप कर्म किया जिसके फल से वह गर्भ से ही विकलांग हो रहा है। उत्पत्ति हो गयी लेकिन उत्पत्ति होने के बाद भी वह विकलांग है, रोगी है। आप विचार कर सकते हो आखिर इस प्रकार की संतानों की उत्पत्ति क्यों होती है? इससे आपके दिमाग में एक चीज आ सकती है कि यह जीव पिछले जन्म के कर्मों को लेकर आता है। गर्भ से निकल कर मर जायेगा तो उसके पाप कर्म के फल से, गर्भ से निकलकर खुश रहेगा तो उसके पुण्य फल से यह कर्म-सिद्धान्त हैं। मनुष्य-जन्म मिला, पंचेन्द्रिय पर्याय मिली। लेकिन आयु कितनी सी मिली?

उसकी आयु 9-10 महीनों की थी। मनुष्य तो बना, हो सकता है लेकिन वह 9 महीने के लिए ही बना और 9 महीने गर्भ में बीत गये। इसको कहते हैं 'आयु कर्म की स्थिति नहीं होना।'

अगर आयु कर्म का स्थिति बन्ध होगा तो वह उस आयु कर्म के माध्यम से ही उसका जीवन लम्बा होगा। अगर उसका स्थिति बंध थोड़ा है, 9-10 महीने का तो वह स्थिति पूरी हुई, जन्म पूरा हो गया, मरण को प्राप्त हो गया। जिसके साथ संयोग मिला, जिसके घर में उत्पन्न हुआ उसको दुख होगा, बेटा तो हुआ लेकिन एक महीने भी जी नहीं पाया। उसके लिए अनेक प्रकार की आकुलताएँ और मरण होने के कारण से शोक, दुःख, न जाने कितनी चीजें उत्पन्न हो गयीं।

उस जीव का अपना ऐसा पाप कर्म का बंध था कि अपने भावों से आयु का बंध इतना ही किया था और उस आयु बंध का फल उसे इतना ही मिलना था, इधर इन माता-पिताओं के लिए भी पाप कर्म का उदय था कि इनको भी इतना ही संयोग मिलना था और उनको वह उतना ही संयोग मिला। इसको कहते हैं-

''दुःखसन्दोहभागित्वम्, संयोगादिह देहिनाम्''

इन जीवों को जितने भी दुःख मिल रहे हैं वो सब संयोग से मिल रहे हैं। कर्म का भी संयोग

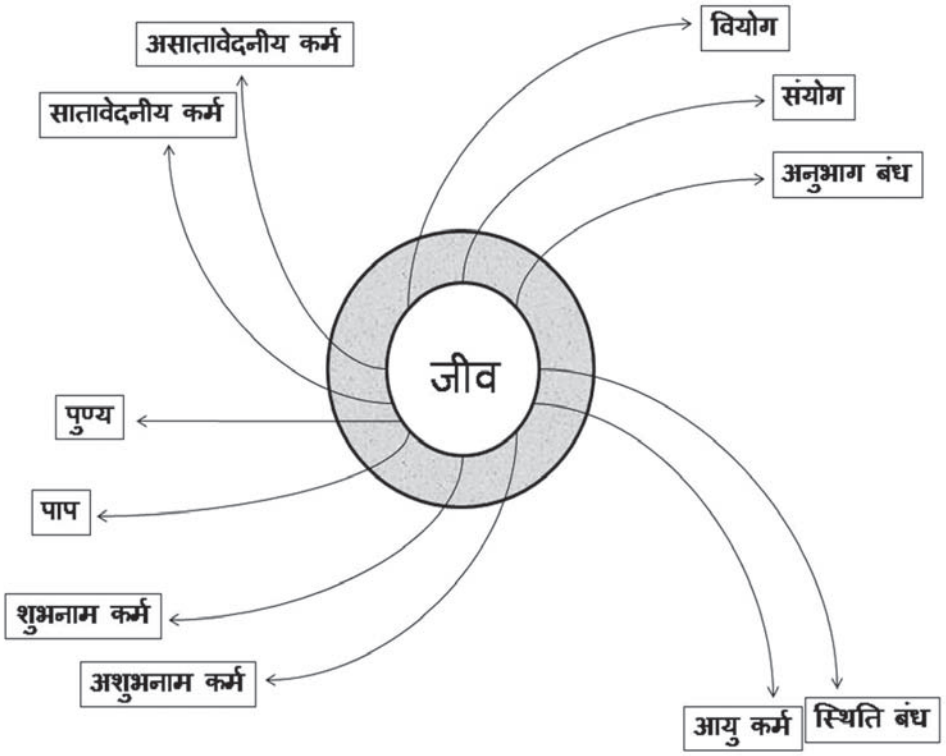

है जो जितना पुण्य कर्म का बन्ध पहले करेगा तो उसको उतनी अच्छी आयु मिलेगी, उतना अच्छा शरीर मिलेगा, निरोगता मिलेगी। आपको लगता है कि हमारा बेटा निरोग है, हमारा बेटा सुन्दर है हमने उसको सुन्दर बना दिया यह बुद्धिमान है, अपनी आयु से जी रहा है तो यह इसके अपने ही पुण्य कर्म का उदय है जो अपने पूर्व जन्म से लेकर आया है।

आपने क्या किया? एक संयोग किया और उस संयोग का आपने बस, फल देखा। फल आपको कैसा मिले, यह आपके हाथ में नहीं है। इसमें तो उस जीव जो संयोग से उत्पन्न हो रहा है उसके पुण्य और पाप का फल है और उसमें थोड़ा प्रतिशत उन माता-पिता का भी रहता है कि जिन्हें निरोग संतान मिल जाये, बलवान संतान मिल जाये, अच्छी आयु वाली संतान मिल जाये। उन माता-पिताओं का भी उसमें पुण्य का अनुभाग रहता है कि उन्हें इस प्रकार का सुख भोगना है तो उसी प्रकार का पुत्र उनकी कोख में आयेगा और अगर दु:ख भोगना है तो उसी प्रकार का पुत्र कोख में आयेगा। कई बच्चों को मैं देखता हूँ अपंग जन्म लेते हैं, घर में रहते हैं लेकिन वो चल नहीं पाते हैं। माता-पिता जीवन भर उनकी सेवा करते हैं, जीवन भर उनका लालन-पालन करते हैं

हर संयोग को हमें कर्मों के फल के रूप में देखना चाहिये।

लेकिन वह जितना सा है उतना ही बना रहता है। आयु कर्म है लेकिन उसके साथ-साथ अन्य भी कर्म हैं। 'नाम कर्म' उसके अशुभ नाम कर्म होने के कारण से उसको अशुभ अंग और उपांग मिले जिसके कारण से उसके उपांगों में पीड़ा होगी और उसका आयु कर्म के कारण से जीवन तो चलेगा लेकिन अशुभ नाम कर्म के बंध होने से उसका उसे अशुभ रूप में फल मिलेगा। अलग-अलग कर्मों की अलग-अलग स्थिति, अलग-अलग अनुभाग पड़ते हैं। ऐसे भी कर्म होते हैं जिनकी स्थिति कुछ समय के लिए होती है। अपने आप उनका अशुभ फल टल जायेगा शुभ फल मिलने लग जायेगा।

कर्म बंध के फल :

आचार्य कहते हैं हर आत्मा जो कर्म का बंध करता है वह उस कर्म के बंध में ही स्थिति, बंध, फल उसको आगे चलकर मिलता है और उन कर्मों के फल से ही बहुत अच्छे समय तक जियेगा। अगर कर्मों की स्थिति अच्छी होगी, आप देखते हैं एक जीव जिसके जन्म होते ही बचाने की कोशिश करते हैं पर बच नहीं पाता, रोना-धोना तो सब जानते हैं पर कर्मों का फल समझना हर किसी को नहीं आता। यह ज्ञान हमेशा रखना चाहिए कि हमारे सामने जो भी संयोग दिखाई दे हम उनमें हमेशा कर्मों के फलों को देखें। सहज है, आपको रोना आयेगा, चिल्लाना आयेगा, कर्मों को कोसना आयेगा, भगवान को कोसना आयेगा, यह सब ही आपके और उस बेटे के दोनों के ही मिले जुले कर्मों का फल होगा जिसके माध्यम से वह इतनी आयु लेकर आयेगा और इतने ही काल तक आपको सुख मिलेगा फिर बाद में दु:ख मिलेगा। जब तक कोई बच्चा गर्भ में रहा तब तक माता-पिता को लगा बच्चा है, बच्चा है जन्म लेगा, 9 महीने तक तो खुशी हुई और असली खुशी आनी थी। जन्म के बाद में तो जैसे ही जन्म हुआ डॉक्टर ने कहा कि यह रोगी है इसका बचना मुश्किल है तो अब उसको लिए-लिए घूम रहे हैं, परेशान हो रहे हैं, अब उसके साथ ही उसको दु:ख की प्राप्ति होने लगी। बचाने के बाद भी वह बच नहीं पाया इसका मतलब है कि वह इतना ही अपना स्थिति और अनुभाग बन्ध बाँधकर आया था। उसके अशुभ कर्म इतने ही थे, उसके शुभ कर्म इतने ही थे कि वो 9 महीने तक ही जी पाया और उसके बाद में उसका मरण हो गया- यह कर्म सिद्धांत है।

जिनवाणी को सुनने के बाद ही तो हमें यह समझना है कि कर्मों से ही हमको सब कुछ फल मिलता है। एक बच्चा वह जिसको मारने के लिए पहले से ही तैयारियाँ हैं जिसे श्री कृष्ण कह रहे हैं लेकिन जैसे ही उसका जन्म होता है तो देवता लोग उसको पहले से ही बचाने को तैयार खड़े हैं। 9 महीने में जन्म होना था तो 2 महीने पहले ही जन्म करा दिया। 7 महीने में ही जन्म हो गया। जैसे ही जन्म हुआ वहाँ श्री कृष्ण के भाई बलभद्र व पिता वासुदेव दोनों आकर खड़े हो गये। उनको उठाया और सोचने लगे इनको यहाँ रखना ही नहीं है, जल्दी से उठा कर ले चलना है और अँधेरी रात में ही बरसते पानी में ही उस पुत्र को लेकर चलते हैं और जैसे ही महल से बाहर निकलते हैं

पानी ही पानी, चारों ओर पानी सब नदियाँ चढ़ी हुई हैं लेकिन उस यमुना नदी में एक सुन्दर सा बैल आते हुए दिखाई देता है उस बैल के दो सींग पर दो अच्छे से रत्न दीपक लगे हुए थे। वह उस बच्चे को उस बैल पर बैठा कर के दीपक के प्रकाश में नदी को पार करते जाते हैं। वो नदी भी रास्ता देती चली जाती है और जैसे ही दूसरे पार पहुँच गये तो बलभद्र ने पहले ही सोच रखा था कि इस बालक को उस ग्वाले को देना है। वहीं इसका पालन-पोषण होगा क्योंकि जब तक यह बच्चा बड़ा नहीं हो जाता तब तक इसको कंस की आँखों से बचाना है। वे उस बालक को यशोदा के पास लेकर गये। वहाँ जाकर देखा तो उस ग्वाला के उसी रात एक पुत्री का जन्म हुआ था। लेकिन वो पुत्री उसको चाहिए नहीं थी। वो ग्वाला उसको लेकर बाहर निकल रहा था तो उसने कहा- कहाँ ले जा रहे हो? वह कहने लगा कि मेरी पत्नी बेटी नहीं चाह रही है इसलिए इसको किसी को देने जा रहा हूँ। बलभद्र ने कहा- इसे मुझे दे दो, तुम उससे कहना कि अरे तुमने गलत देख लिया था। तुम्हें तो बेटा ही हुआ है और उस ग्वाले को वो बेटा दे दिया। उस ग्वाले ने बेटा ले जाकर ग्वालिन के पास रख दिया, वो बड़ी खुश हुई कि मुझे स्वप्न आया मैंने गलत देख लिया था क्या? वो ग्वाला कहता है यह बेटी नहीं थी, बेटा था। देखो कितना सुन्दर है और उधर उस बेटी को ले जाकर देवकी के पास रख दिया और सुबह जब कंस को पता पड़ता है कि बेटी हुई है तो उसको पहले तो इतनी शांति हो गयी कि चलो, बेटी हुई है। मतलब हमारा मरण कराने वाला तो कोई पुत्र होना चाहिए था अब तो पुत्र तो हुआ नहीं, कोई बात नहीं और अब वो बेटी जिन्दा थी। तब भी कंस के मन में ऐसा दुर्भाव आया कि उसने उसकी नाक काट दी और उसके बाद उसने उसको छोड़ दिया। उसका पालन-पोषण करने के लिए भी एक जगह बना दी ताकि वो बड़े होकर भी कोई उपद्रव ना कर सके, कंस सोचने लगा कि अब मेरे लिए कोई खतरा नहीं है। मुनि महाराज की बात तो झूठी गयी। यह है पुण्यात्मा जीवों का चरित्र। जिनके अन्दर पुण्य हैं तो उन्हें कोई मारना भी चाहे तो मार नहीं पायेगा। अनेक कारण अपने आप उसके सामने आ जायेंगे और उसकी रक्षा हो जायेगी। हर किसी जीवात्मा के लिए उसका पुण्य और उसका पाप ही उसकी रक्षा करने वाला और उसे मारने वाला होता है। बाकी के लोग तो सहयोगी बन जाते हैं।

वह बालक अब बड़ा होने लगा, कोई उसे मारना चाहे तो भी नहीं मार सकता क्योंकि वो अपने भावों से शुभ आयु कर्म बाँध कर आया है, शुभ नाम कर्म भी हैं, साता वेदनीय कर्म भी हैं अच्छे-अच्छे जितने भी कर्म हैं उनकी स्थिति और अनुभाग अच्छी पड़ी हुई हैं तो वह काफी समय तक उस अनुभाग का सेवन करेगा। कर्म के फल का रस चखना ही अनुभाग फल की शक्ति कहलाता है।

एक क्षण के लिए आपके मन में आना चाहिए पुण्य कर्म हमेशा जीव की रक्षा करता है। अगर आपके पास में पुण्य हैं तो आपका असमय में कोई मरण करा नहीं सकता। आपकी चीज का कोई हरण कर नहीं सकता। जो आपके पुण्य में है वह कहीं नहीं जायेगा? इतना आप विश्वास बनाकर

कर्म के फल का रस चखना ही अनुभाग फल की शक्ति कहलाता है।

रखो। इस विश्वास से आपके मन में अपने ही भावों के प्रति दृढ़ता आयेगी। हम अच्छे से केवल अच्छे भाव करें। अच्छे भाव करेंगे तो अच्छा पुण्य बंध होगा और अच्छा पुण्यबंध होगा तो हमारी रक्षा अपने आप होती रहेगी। संक्लेश करने से कुछ नहीं होता है, यह कर्म सिद्धांत हैं। जितना आप संक्लेश करेंगे, जितना आप दुखी होएंगे उतना ही आपके लिए पाप कर्म का बंध होगा और उस पाप कर्म का फल मिलेगा तो आपको वो चीज मिलेगी ही नहीं जो आप चाह रहे हो।

शुभ भावों से शुभ का बंध :

एक बच्चा है, जब वो पढ़ता है, पाठ याद करता है और जब परीक्षा देने के लिए जाता है अगर परीक्षा के समय पर उसको डर लग जाये क्या होगा? कैसा पेपर आयेगा? कैसे करूँगा, क्या करूँगा? पेपर देखते ही उसको लग जाये कि जितने भी प्रश्न हैं एक भी हल होता नहीं दिख रहा, क्या होगा? अब वह जो उसे याद भी है उसको भी भूल जायेगा। अपने अन्दर डर पैदा करने के कारण से, दुख पैदा करने के कारण से जो अच्छा भी होने वाला है वो भी बुरा होगा। जब आपके मन में निश्चिन्तता होगी, संक्लेश नहीं होगा, दुख नहीं होगा, डर नहीं होगा तो आपके मन में अच्छे भाव आयेंगे और आपको अच्छे विचार भी आयेंगे और जब आपके सामने वही पेपर आयेगा तो आपकी स्मृति में आता चला जायेगा। चलो, कोई बात नहीं, यह एक प्रश्न कठिन लग रहा है, इसको बाद में देखेंगे पहले यह हम हल कर सकते हैं तो पहले इसको हल कर लेते हैं तब तक करते-करते दिमाग में उसको भी हल करने की विधि आ सकती है अगर आपका पुण्य काम कर रहा हो। अगर पुण्य आपका काम कर रहा होगा तो व दूसरा हल करते हुए भी आपको वो जो नहीं आ रहा था उसका हल भी याद आ जायेगा। जब अपने भाव अच्छे होते हैं तो अपना पुण्य काम करता है और अपना काम बनता चला जाता है। इसलिए आचार्य कहते हैं संक्लेश मत करो, दुखी मत होओ, कुछ भी जो आपको मिल रहा है उससे परेशान मत होओ, अच्छे भाव रखो, अच्छे विचार रखो, अच्छी भावना से आपको अच्छे कर्मों का बंध होगा और उन बंधों का जब उदय आयेगा तो अपने आप अच्छा फल मिलने लग जायेगा। परेशान होने से हमारे सामने अच्छी चीज भी बुरे रूप में बदल सकती है। यह कर्म-सिद्धान्त आपको समझ में आ जाना चाहिए।

इस कर्म सिद्धांत पर आप चलो तो आपके सामने अनेक ऐसे अभाव होंगे जिनके कारण आप परेशान होंगे, आप सोच रहे होंगे कि हमें यह मिल जाये, हमारे साथ यह हो जाये लेकिन वो कब होगा जब आप अच्छे भाव करे तब होगा।

इसलिए आचार्य कहते हैं कि आपको शुभ कर्म कमाने की कला आनी चाहिए और शुभ भाव के माध्यम से शुभ कर्मों में अच्छी स्थिति, अच्छा अनुभाग बंध डाल लेंगे तो आपको कर्मों के फल अपने आप मिलेंगे। यह आपको जो शुभ-अशुभ कर्मों के फल मिल रहे हैं इनको भी आचार्य कह रहे हैं कि वस्तुतः सब दुखी हैं यह सुख किसके लिए है?

अच्छी भावना, अच्छे विचारों से अच्छे कर्मों का बंध होगा जो भविष्य में अच्छा फल देंगे।

नश्वर सुख की चाह में निकलता जीवन :

जो संसार का सुख चाहे, तो उसके लिए यह शुभ कर्मों की दृष्टि रहती है, पुण्य कर्मों की ओर दृष्टि रहती है और जिसे संसार का सुख नहीं चाहना तो वह ना शुभ कर्मों की ओर दृष्टि रखता है न अशुभ कर्मों की ओर रखता है। वह तो अपनी दृष्टि आत्मा में 'एकोऽहं' की ओर रखता है। आखिर यह शुभ कर्म भी कब तक रहेंगे? अच्छे तो लगते हैं। कोई भी ऐसा जीवात्मा नहीं जो अनादिकाल से जी रहा हो। श्री कृष्ण नाम तो है पर अब श्री कृष्ण नहीं हैं। जो जन्म लेता है उसका भी मरण होता है और वह कितना ही सुन्दर, कितना ही बलिष्ट शरीर हो, कितना ही पुण्यवान हो उसका पुण्य भी एक दिन खाली हो जाता है, पुण्य से भी उसको वंचित होना पड़ता है। पुण्य भी उसका छूट जाता है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि शुभ कर्मों की ओर भी कब तक देखोगे, तुम्हें तो छोटे-छोटे वाले शुभ कर्म चाहिए। अच्छी संतान हो जाये, बेटा हो जाये, खूब पढ़ लिख ले, आई. आई. टी. कर ले, जॉब कर ले, खूब पैसा कमा ले , घर में भेजे, कार ले आये, अच्छी बहु ले आये, फिर क्या? सुख बहू तक ही सीमित हो जायेगा क्या? उसके बेटा नहीं हुआ तो फिर एक नया दुख जीवन इसी में निकल जायेगा। यह छोटे-छोटे पुण्यों की इच्छा में ही जन्म निकल जाता है क्योंकि आदमी के विचार में इससे ज्यादा कुछ है ही नहीं। वो जितना चाहता है उतना ही उसको मिल जाता है और नहीं मिलता तो उसकी दौड़ उतनी ही बन जाती है। क्षुद्र था और क्षुद्र ही बन कर रहा और क्षुद्र दशा में ही उसका मरण हो जाता है। जब आदमी यह सोच ले कोई फर्क नहीं, छोटे-छोटे पुण्यों के फलों को हमें नहीं देखना। जो होगा, हमारे अपने भावों से होता रहेगा ,हमें तो अपनी आत्मा की ओर देखना है। कर्म के फल इस आत्मा को अनन्त बार मिल चुके हैं। अच्छे व बुरे दोनों कर्म भोग लिये हैं। हर प्रकार का सांसारिक सुख भी भोग चुके हैं और दुख भी। इसलिए जीव को जब यह समझ में आ जाता है कि यह जन्म-मरण कोई आज का नहीं, सब के साथ लगा है यह सब मक्खी मच्छर के समान हैं। जैसे कोई कम समय जीता है, कोई ज्यादा समय तक जी लेता है। जो ज्यादा देर जी लिया तो उतना खुश हो गया। लेकिन बाद में तो सबको दुख ही मिलना है क्योंकि संयोग से जो सुख मिला है वो ज्यादा देर तक रहना नहीं है। जो संयोग से मिला है उसका वियोग भी निश्चित है, यह हमें ध्यान रहता नहीं। जो ज्ञानी होते हैं वो सोचते हैं कि अब कोई संयोग की अभिलाषा नहीं करना, जो है जितना है, बहुत है। हे भगवान्! अब हमें अपने ही उपयोग को अपनी आत्मा में जोड़ना हैं क्योंकि जब हम अपने उपयोग को अपने शरीर से, मन से, वचन से जोड़ेंगे उतना ही हमें वही चीजें बार-बार मिलती रहेंगी।

आचार्य पूज्यपाद महाराज जो यह 'इष्टोपदेश' में कह रहे हैं वही उन्होंने समाधितंत्र जैसे ग्रन्थों में लिखा है कि जब तक यह आत्मा अपनी बुद्धि से शरीर, वचन और मन को जोड़े रखता है तब तक इसको यह शरीर, मन और वचन मिलते हैं और इससे यह छूट जाता है तो इसको शुद्ध

आत्मा की प्राप्ति हो जाती है। इसके लिए यह मन, वचन छूटने का यहाँ पर उपाय बताया जा रहा है कि आपको अब क्या करना? मन मिला, वचन मिला, काय मिला लेकिन यह जानना कि यह सब संयोग से मिला (हमारे कर्म के संयोग से मिला), माता-पिता के संयोग से मिला। इस संयोग से प्राप्त हुई इस शरीर के अन्दर भी हमें अनेक प्रकार के दुःख हैं, हमारे मन में भी दुःख है, हमारे वचनों में भी दुःख है, हमारे शरीर में भी दुःख है। यह शरीर का जो पिण्ड है यह भी दुःख का ही कारण है इसलिए इससे अपने उपयोग को जागृति पूर्वक हटाओ इसमें अपना मन मत लगाओ। तो क्या करो?

आचार्य कहते हैं उसी मन-वचन-काय से यह भावना करो कि मैं मन नहीं हूँ, मैं वचन नहीं हूँ, मैं काया नहीं हूँ, मैं क्या हूँ?

जीव जुदा, पुद्गल जुदा :

मैं इन सबसे रहित हूँ क्योंकि यह सब चीजें पुद्गल में हैं और यह सब पौद्गलिक चीजें हैं। लेकिन आत्मा पुद्गल की नहीं है। आत्मा तो कुछ अलग ही द्रव्य है। वो अपना अलग द्रव्य है और उस द्रव्य को पुद्गल छू नहीं सकता लेकिन वह आत्मा उस पुद्गल द्रव्य में ही फँसी हुई है, पड़ी हुई है। ऐसी उस आत्मा की दयनीय दशा देखकर के आपको उस आत्मा पर अब दया ले आना है। किसी दूसरे की आत्मा पर दया नहीं करना, अपनी ही आत्मा पर दया करो, अपनी आत्मा की दयनीय दशा देखकर अपनी आत्मा से कहो कि हे आत्मन्! तू मन से रहित है, तू वचन से रहित है, तू काया से रहित है, तू तो अपना स्वतंत्र आत्म द्रव्य है।

जब तुम्हारे अन्दर ऐसी भावना आने लगेगी तो तुम्हारा मन, वचन, काया से सम्बंध छूटेगा। तुम्हें भी ऐसे ही सिद्ध दशा की प्राप्ति होगी जैसी सिद्ध-दशा सिद्ध भगवानों को प्राप्त हुई है। लेकिन पुरुषार्थ इसी ढंग से करना होगा। हमारे पुरुषार्थ में अभी इतनी ऊँचाईयाँ बन नहीं पायी। हम बस, इतना ही सुख चाहते हैं कि बस, हमें साता का सुख मिलता रहे। साता वेदनीय कर्म से होने वाला शुभ कर्म का बन्ध हम चाहते हैं। हर प्राणी बस, यह ही चाहता है कि हम कभी भी यह भावना करते ही नहीं कि हम कर्मों से मुक्त हो जायें। भले ही हम कितनी ही बार णमोकार मंत्र पढ़-पढ़कर के यह कहते रहें सिद्धों को नमस्कार है। अरिहन्त भगवान को नमस्कार हो इसलिए बोलते हैं कि णमोकार मंत्र बोलने से अच्छे कर्म का बंध होगा, अच्छे पुण्य के फल मिलेंगे तो हमें सब अच्छी-अच्छी चीजें मिलेगी, अच्छा घर मिलेगा, अच्छी पत्नी मिलेगी, अच्छे बेटे मिलेंगे। इस णमोकार मंत्र को बोलने के उद्देश्य भी आप थोड़ा अपने अन्दर बढ़ा लो। आचार्य कहते हैं कि जब आप यह बोलो- ''णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं'' तो आपके मन में यह भाव आना चाहिए है कि अरिहन्त भगवान मुझे भी अपने जैसा अरिहन्त बना लो, हे सिद्ध भगवान्! मुझे भी अपने जैसी सिद्ध गति में पहुँचा दो, मुझे भी उस सिद्ध गति में बुला लो। आपके मन के अन्दर भी उसी समय ऐसी भावना

हर आत्मा मन से, वचन से, काया से रहित है। वह स्वतंत्र आत्मद्रव्य है।

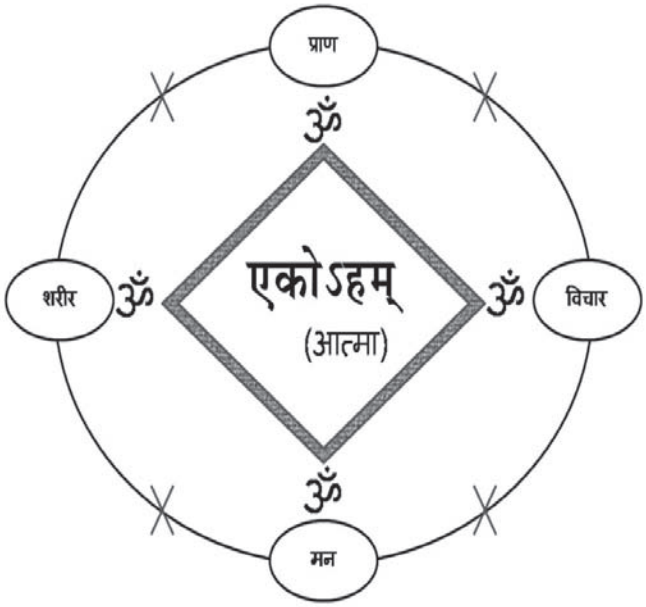

रहनी चाहिए कि मैं अरिहन्तों को भी नमस्कार कर रहा हूँ तो अरिहन्त बनने के लिए कर रहा हूँ, सिद्धों को नमस्कार कर रहा हूँ तो सिद्ध बनने के लिए कर रहा हूँ। सबको ऐसा लगता है कि पूजा करने से पुण्य मिलेगा, पुण्य के फल से हमें अच्छे संयोग मिलेंगे। बस उससे अपना जीवन अच्छा चलता रहेगा। कोई यह भाव नहीं करता है कि यह शुभ कर्म, अशुभ कर्म से रहित आत्मा का स्वभाव है, आत्मा इन कर्मों के साथ अनादिकाल से रहती आयी लेकिन इन कर्मों के फल भोगते-भोगते आत्मा को कभी तृप्ति होने वाली नहीं है। इसलिए आत्मा के शुद्ध स्वभाव को देखने के लिए आचार्य कहते हैं यह भावना करो-

''एकोऽहं निर्ममः शुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः।
बाह्याः संयोगजा भावा, मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा॥''

मत्तः मतलब मुझसे सर्वेऽपि सर्वथा-सर्वथा भिन्न हैं। यह भाव करते-करते आपके मन में अगर थकान आने लग जाये तो एक होता है positive भाव, विधि रूप भाव। एक होता है negative भाव कि यह मैं नहीं हूँ, मैं यह नहीं हूँ। निषेधात्मक विधि भाव, अतः जो आपके दिखाई दे रहा है तो निषेधात्मक विधि कहती है कि यह मैं नहीं हूँ, यह मैं नहीं हूँ जो भी आपको दिखाई दे रहा हो, यह घर मेरा नहीं है, यह मैं नहीं हूँ और यह मेरा नहीं है यह पत्नी मैं नहीं हूँ, यह पत्नी मेरी नहीं है। मन में तय कर लो, तलाक नहीं देने के लिए कह रहा हूँ। उससे सुख मिलेगा। उससे आपके मन के परिणाम शान्त होंगे। इस प्रकार की परिणति से आप अपने अन्दर तक आ जाओगे। जब आप अपने पास तक आ जाओ तो यह शरीर भी मैं नहीं हूँ क्योंकि यह भी छूट जायेगा। जो मन विचार कर रहा है वह मन भी मैं नहीं हूँ, मन भी छूट जायेगा। जो मैं बोल रहा हूँ, भीतर ही भीतर, वह भी मैं नहीं हूँ मैं शरीर से भी, मन से भी, वचनों से भी भिन्न हूँ, इसलिए मन वचन काय से मन वचन काय को छोड़ रहा हूँ।

मन, वचन, काया से मन, वचन, काया को छोड़कर आत्मा का स्वरूप पाता है।

जब आप इन तीनों को मन वचन काय से त्याग कर देंगे, उस त्याग करने के बाद जो बचेगा वो क्या कहलायेगा?

इन सबको घटाने के बाद जो बचे वह तुम हो। वही तुम्हारी आत्मा है। कब तक तुम यह सोचते रहोगे कि जब तक प्राण हैं तब तक मैं हूँ। प्राणी कहना भी आत्मा की ओर इंगित नहीं करता है। शरीरी कहना भी आत्मा की ओर इंगित नहीं करता है क्योंकि वह शरीर को ले आता है, प्राणों को पहले ले आता है। इसलिए आचार्य सम्बोधन तो देते हैं कि हे देहधारी, हे प्राणधारी। लेकिन उस सम्बोधन से वे तुम्हें उस आत्मा की ओर ले जाना चाहते हैं कि तुम प्राणों के स्वभाव वाले नहीं हो। प्राण तो तुम्हारे लिए तात्कालिक हैं। ये सब छूटेंगे और उसके बाद तुम्हें एकाकी हो यहाँ से जाना होगा।

''आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय, यूँ कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय''

कहने के बाद भी आप इसकी भावना नहीं करते। यहाँ आचार्य कहते हैं कि ऐसी भावना करो, अपने मन में संकल्पित हो जाओ कि यह सम्बन्ध मेरे मन से भी नहीं, वचन से भी नहीं, काय से भी नहीं हैं। वास्तव में कोई है नहीं। लेकिन इस प्रकार से भावना करने में हर संसारी आत्माओं को डर लगता है। इसलिए वो आत्मा के पास तक आ नहीं पाता है।

आया तो अकेला ही है और जब जायेगा तो अकेला जायेगा। कितने ही friends के साथ रह ले, अकेला ही तेरा मरण होगा। बीच में तुझे जो कुछ करना है, कर ले। अगर तू बीच में भी यह सोच लें, अकेलेपन की भावना कर ले कि मन वचन काय से कोई भी सम्बंध मेरा नहीं है। मैं अभी भी अकेला ही हूँ, पहले भी था और आगे भी रहूँगा।

पहले और बाद का तो अपने आप हो जायेगा, पर बीच के अकेलेपन का भाव तो तुझे करना पड़ेगा। यह भावना करोगे तो बड़ा सुख मिलेगा। इन देह के सम्बंधों से मुक्त होओगे। यह इतनी बड़ी science है कि हर आदमी इसको थोड़ी-थोड़ी अपना ले तो उसके जीवन में दुःख आये ही नहीं क्योंकि जो भी दुःख होंगे वो अपने से भिन्न होंगे, अपनी आत्मा में तो दुःख होता ही नहीं है। दुःख आत्मा का स्वभाव ही नहीं है। दुःख तो कर्म के उदय से प्राप्त हुई अपने लिए संयोग-वियोग की परिणति है। इसको कहते हैं 'त्यजामि' मतलब मैं छोड़ता हूँ ''मन वचन और काय से''।

कितने ही friends के साथ रह ले, तेरा मरण अकेला ही होगा।

मरण एवं रोगादि के भय निरर्थक

29

न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं न युवैतानि पुद्गले॥

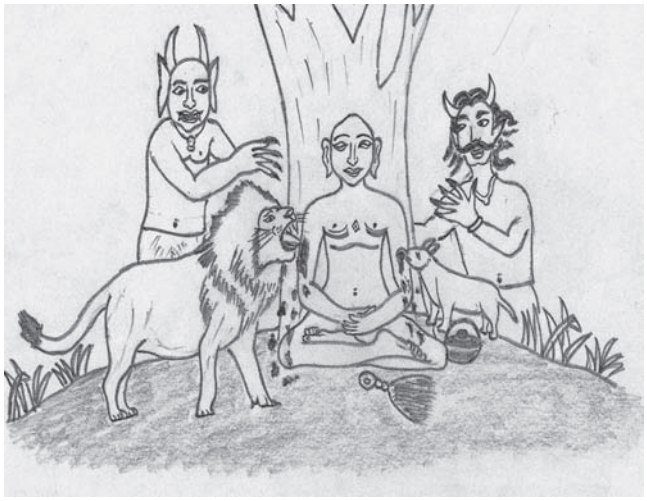

अन्वयार्थ—(मे) मेरी **(मृत्युः न)** मृत्यु नहीं होती [इस कारण] **(भीतिः)** भय **(कुतः)** किससे (हो सकता है?) **(मे)** मुझे **(व्याधिः न)** कोई रोग नहीं होता [इसलिए] **(कुतःव्यथा)** दुख किससे (हो सकता है?) **(अहम्)** मैं **(बालः न)** बालक नहीं हूँ **(वृद्धः न)** बूढ़ा नहीं हूँ **(युवा न)** जवान नहीं हूँ **(एतानि)** ये सब अवस्थायें **(पुद्गले)** पौद्गलिक शरीर में होती हैं।

- ☞ **पर में अनासक्ति से भेद**
- ☞ **मूर्तिक और अमूर्तिक में भेद**
- ☞ **व्रत और सम्यग्दर्शन**

पर में अनासक्ति से ही भय पर विजय :

एक बहुत ही अनुभूतिपरक यह व्याख्यान क्रम से चल रहा है जैसे कल बताया कि अपने मन वचन काय से अपने ही मन, वचन, काय को छोड़कर के सभी संयोगज सम्बंधों से मुक्ति प्राप्त करो। शिष्य पूछता है कि ऐसा करने से क्या लाभ होगा? ऐसा करने से हमें क्या? जीतने में आ जायेगा? ऐसा करने से हमें कौन सी उपलब्धि होगी? शायद इस प्रश्न का उत्तर देते हुए आचार्य यहाँ बताते हैं कि– देखो यदि तुम इस प्रकार से इन संयोगों से बचोगे, संयोगों से अपनी आत्मा को दूर हटाओगे तो तुम्हें बहुत बड़ी उपलब्धि होगी। तुम्हें जो सबसे बड़ा डर लगता है वो डर तुमसे छूट जायेगा। हर आदमी के अन्दर एक भय बैठा है और वो सबसे बड़ा भय रहता है 'मृत्यु का भय'। वह जीवन को देखता है, जीवन को जीता है और उस जीवन में बहुत सारी चीजें उपलब्ध करता है, बहुत सारा परिश्रम करता है और उस परिश्रम से जो चीजें अर्जित करता है, वो सब चीजें एक ही क्षण में छूट जाती हैं। बस, साँस रुकी, मृत्यु हुई और सब छूट गया। आदमी को घबराहट इस बात की होती है कि हमने जीवन में जो इतना परिश्रम किया, इतना कमाया और हमने आस–पास अपने सम्बंधों को जोड़ा और यह सब एक क्षण में चला गया, तो उस क्षण उसको बहुत डर होता है और यह डर उस आदमी के अन्दर गहरा समाया हुआ रहता है। उस डर से मुक्ति प्राप्त कराने के लिए आचार्य यहाँ पर कहते हैं– कि जब आप यह भावना भायेंगे।

'एकोऽहं' 'दुःखसन्दोहभागित्वम्'

आपके अन्दर अपने आप इतना आत्मबल पैदा होगा कि आप मृत्यु के भय को भी परास्त कर देंगे। मृत्यु से आपको डर नहीं लगेगा। जब आप जीते–जी इस प्रकार की भावना भायेंगे। किसी भी सम्बंध में मेरा मन वचन काय से कोई सम्बंध नहीं है तो फिर अब डर किसका? डर तो उसका होता है जो हमसे छूट रहा हो, और हम छोड़ना नहीं चाहते। अगर आपने ईमानदारी से मन से, वचन से, काय से यह भावना भा ली कि संसार का कोई भी पदार्थ मेरा नहीं है और यहाँ तक कि मेरा शरीर, मेरा मन भी मेरा नहीं है। मेरा आत्मा ही केवल मेरा है तो अब कुछ भी छूटेगा तो, आपको डर नहीं लगेगा, क्योंकि आपकी धारणा बन गयी है कि जो मेरा है वो मुझसे कभी छूटेगा नहीं। इसी भावना से आप मृत्यु को जीत पायेंगे। मृत्यु का डर छूट जाये तो, मृत्यु भी छूट जाये। आप देखोगे कई बार छत से कोई बच्चा गिरता है, नीचे आ जाता है। उसकी मृत्यु नहीं होती और किसी छत से कोई आदमी गिरता है तो वो कभी नीचे गिरकर, बचा हुआ नहीं मिलेगा। यह बहुत बड़ा मनोविज्ञान है। बच्चे को इस प्रकार का कोई डर नहीं रहता। इसलिए जब वो बच्चा कितनी भी ऊँचाई से गिरेगा तो वह नीचे भी गिर जायेगा और गिरने के बाद भी उसको हल्की फुल्की ही चोट आयेगी। आदमी अगर ऊपरी Building से गिरा तो वो नीचे आते–आते बीच में ही मर जाता है

व्यक्ति के अंदर सबसे बड़ा 'मृत्यु का भय' रहता है।

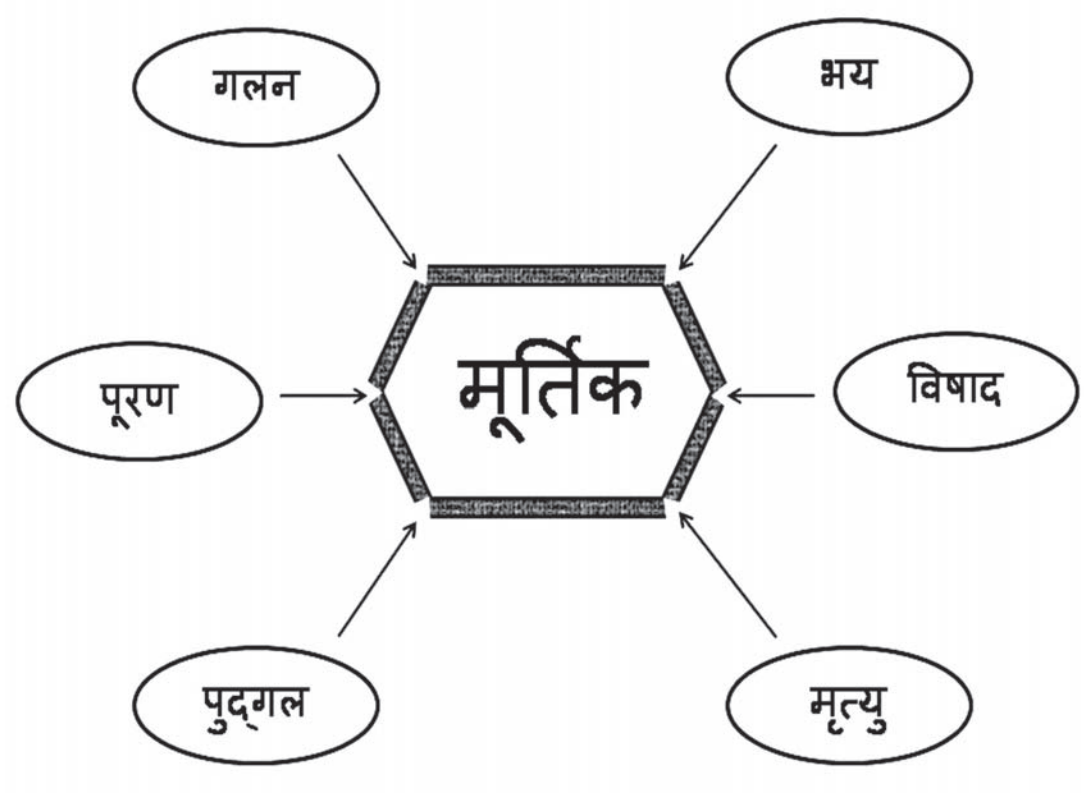

क्योंकि उसे मालूम है कि मैं बहुत ऊँचाई से फिसल गया हूँ, उस डर के कारण ही मरण हो जाता है। जो इस मृत्यु के डर को जीत लेगा, वह मृत्यु को भी जीत लेगा, इसलिए आचार्य यहाँ कहते हैं कि मृत्यु तो तुम जीत लोगे, उसकी चिंता मत करो। बस, पहले उस भय को निकाल दो। अपने अन्दर से तुम यह सोच लो, जो चीजें मर रही हैं, या मिट जायेंगी वो चीजें हमारी है ही नहीं। जो चीजें हमारी है वो कभी मिट नहीं सकती हैं। मृत्यु का प्रवेश होगा तो शरीर में होगा, आत्मा में नहीं होगा क्योंकि आत्मा कभी मरती नहीं हैं। आत्मा अजर है, अमर है तो मृत्यु के आने के बाद में डर किसका है। हमारे अन्दर वह भावों में कम्पन, शरीर विज्ञान में कम्पन। आचार्य कहते हैं कि आपके अन्दर अभी मृत्यु का डर बैठा है, आप कहते जरूर हो कि आत्मा अमर है। यह जो मृत्यु है और इस मृत्यु के साथ जो अमरता जुड़ी हुई है, वह जो चीज है, आत्मा है और दुनिया में किसी चीज को अमर नहीं कहा जाता। आत्मा ही अमर है, बाकी की सब चीजें मरने वाली हैं, मिटने वाली हैं। मरती क्यों है? क्योंकि वो Mortal हैं। यह Mortal जो शब्द बना है यह प्राकृत के, हिन्दी के, संस्कृत के शब्द से बना है। कई बार ऐसे बहुत शब्द आपको English की Dictonary में मिलेंगे

जो बिल्कुल हिन्दी से मिलते जुलते हैं, उन्हीं शब्दों से यह mortal शब्द जब मेरे सामने आता है तो मेरा दिमाग जाता है 'मूर्तिक की ओर' जो अमेरिकन लोग होते हैं उनके बोलने की Style कुछ अलग होता है। आप इसी को घुमा कर बोलो। मूर्तिक, मोर्टिक, मोर्टक, मोर्टल Mortal प्राकृत से अपभ्रंश, अपभ्रंश से हिन्दी ऐसे अनेक शब्द इन प्राकृत बोलियों से ही अंग्रेजी में प्रयुक्त हो गये। इसलिए जो Mortal शब्द है, उसका मतलब है 'मूर्तिक'। Immortal जब हम बोलते हैं अमुर्टिक, अमुर्टल, एमुर्टल, इममोर्टल Immortal हो जायेगा। अमूर्तिक यह शब्द हमें ले जाता है- Immortal की ओर। आज के जमाने में यह English बड़ी दिखाई दे रही है, लेकिन इसका शब्द कोश तो बिल्कुल खोखला है। दुनियाँ की और दूसरी भाषाओं को लेकर के English का शब्दकोश तैयार हुआ है। English के शब्दकोशों में सबसे कम शब्द रहते हैं, और जितने भी शब्द मिलते हैं, वे सब Russian के Conversion होते हैं या हिन्दी के Conversions होते हैं। इतना हल्का शब्द कोश था लेकिन धीरे-धीरे लोगों की प्रसिद्धि के कारण से वो शब्दकोश बढ़ता जा रहा है और अनेक शब्द हर साल शब्द कोश में इसी रूप में जुड़ जाते हैं, यह भाषा विज्ञान है।

मूर्तिक और अमूर्तिक में भेद :

Immortal का मतलब अमूर्तिक होता है। आचार्य कहते हैं- जो आत्मा है वही अमूर्तिक है आत्मा ही अमर है। बाकी जो मूर्तिक पदार्थ है वो पुद्गल कहो, मूर्तिक कहो एक ही बात है। 'पुद्गल' में पू का मतलब 'पूरण', गल का मतलब 'गलना', जिसमें कुछ मिलेगा और कुछ बाहर निकलेगा। यह पूरण और गलन स्वभाव वाला जो कोई भी पदार्थ है वहीं पदार्थ पुद्गल कहलाता है। वही मूर्तिक कहलाता है। उसी मूर्तिक पदार्थ का ही मरण होता है। अमूर्तिक पदार्थ का कभी मरण नहीं होता है। पुद्गल जो है वह दूसरे पुद्गल से रगड़ खाने पर, मलने पर, उसमें कुछ जुड़ता है निकलता है तो वह अपने आप नया बन जाता है। यह पुद्गल का स्वभाव है। इसलिए आचार्य कहते हैं वह हर चीज जो मूर्तिक होगी वही मरेगी। अमूर्तिक चीज का कभी मरण नहीं होगा। इस सिद्धांत को, ज्ञान को आप अपने अन्दर रख लो। जो आत्मा है वो मूर्तिक नहीं है, वो अमूर्तिक है इसलिए आत्मा कभी भी मरेगा नहीं, मिटेगा नहीं। जीव तत्त्व का यह श्रद्धान हुआ है तो आपको मृत्यु से कोई डर नहीं लगेगा। इसलिए आचार्य कहते हैं- 'न मे मृत्युः' जब मेरी मृत्यु ही नहीं है, तो मैं किससे डरूँ ? आपका शरीर है, उसमें जब आपने यह भावना कर ली, मैं आत्मा हूँ, आत्मा से अन्यथा, उनको छोड़ दिया, आपको मृत्यु का कोई डर रहा ही नहीं। आपने जिसको मन वचन काय से पहले ही छोड़ दिया तो अब उसके लिए किसी भी प्रकार की प्रीति रही ही नहीं। ऐसा करोगे तो ऐसी अनुभूतियाँ होगी कि दुनियाँ में आपको मृत्यु से भी डर नहीं लगेगा। जिसको अपनी मृत्यु से डर है वो सबसे बड़ा डर है। मृत्यु से डर नहीं है तो अपने शरीर से भी डर नहीं लगेगा। अब उस शरीर में पीड़ा हो गयी, शरीर मिटने की ओर दिख रहा है, क्या डर? वह तो शरीर का स्वभाव है- पूरण,

गलन। एक समय के बाद तो हर पुद्गल में पूरण, गलन होना बन्द हो जाता है। कोई भी फल है तो, पहले धीरे-धीरे वो बढ़ेगा, पकेगा, उसमें तापमान आयेगा, उसमें रस आयेगा और फिर धीरे-धीरे भीतर ही भीतर उसका रस सूखने लगेगा अपने आप। जो इस पूरण, गलन स्वभाव को समझ लेता है, उसे पूरण में और गलन में कोई हर्ष-विषाद नहीं होता है। उसी प्रकार आपका शरीर एक स्थिति तक बढ़ेगा, उसके बाद अपने आप Down होना शुरू हो जायेगा। यह जो पूरण-गलन की शक्ति है, शरीर के अन्दर वह एक समय तक बढ़ती है, फिर कम भी हो जाती है। जो शीर्ण होता चला जाये, उसका नाम है- शरीर। शीर्ण धातु से ही यह शरीर शब्द बनता है, मतलब जो गलता चला जाये, जीर्ण होता चला जाये। शरीर में रोग हो गया और यदि आपके शरीर में अन्दर से शक्ति होगी तो, वो उस रोग से बचाव कर लेगा। कई बार वह भीतर की शक्ति छूट जाती है तो फिर आप रोगों से बचाव कर नहीं पाओगे। यहाँ आचार्य कहते हैं 'न मे व्याधिः कुतो व्यथा'।

यह रोग मूर्तिक में होंगे, शरीर में होंगे। आत्मा में यह रोग नहीं होंगे, इन सब रोगों से आपको मुक्ति नहीं मिले तो आपको अन्त-अन्त में यही उपाय करना पड़ेगा। **'न मे व्याधिः कुतो व्यथा'** मैं मन्दसोर में था, विहार करके एक कॉलोनी में गया और वहाँ पर एक औरत आयी उसको कैंसर हो गया था। परेशान थी, उसका चेहरा दुखी हो रहा था, उसकी उम्र कम थी। एक दो बार उसकी 'कीमो थैरेपी' भी हो चुकी थी। एक बार यह कैंसर होने के बाद आदमी को लगने लग जाता है कि अब मेरी जिन्दगी गयी। उसने कहा, महाराज क्या करें? ऐसे समय यदि आपके चेहरे पर प्रसन्नता भी आयेगी तो आपको इस अध्यात्म की शरण लेने से ही आयेगी। अध्यात्म के उपदेश लेने के कारण से ही आयेगी। आप अगर उस समय पर अपने मन को बचायेंगे तो उसके लिए भी आपको यह लाइनें याद रखनी पड़ेगी। हम चाहे किसी भी तरीके से घुमा कर बात कह दें, लेकिन बात यहीं से शुरू होगी। **'न मे व्याधिः कुतो व्यथा'** उसको यही समझाया देखो-

रोग तो आया है जो शरीर में है लेकिन अगर तुम अपने मन को उस रोग में लगाये रखोगे तो वह मन भी धीरे-धीरे रोगी हो जायेगा और जब तुम्हारा मन भी रोगी हो जायेगा तो तुम कभी उस रोग से मुक्त हो नहीं पाओगे। शरीर के रोग में कमी करना है तो अपने मन के रोग में कमी कर लो। मन को बार-बार उस शरीर में नहीं लगाना। देखो, मरना तो निश्चित हैं, रोते-रोते मरोगे कि मेरा घर छूट जायेगा, पति-बच्चे छूट जायेंगे। मृत्यु सामने हैं तो आपके पास दो विकल्प है, या तो आप इसी गम में पड़े रहो- मरना है, अब क्या होगा? और दूसरा तरीका यह है कि अगर हमें मरना है, 4 साल के बाद में, तो आपके मन में विचार आना चाहिए कि हमें यह जीवन मिला है। मन को हम अपने हिसाब से सम्भाल सकते हैं। यह आपको चुनना है कि अभी खुश रहें या दुखी। जो होगा वो तो होगा ही। रो-रो कर भी मरना होगा और हँस-हँस कर भी, आप चाहो तो मर सकते हो। लेकिन हम समझते हैं, हँस के मरना ज्यादा अच्छा लगेगा। रोकर मरने में तो कोई फायदा है

रोग शरीर में होंगे, मूर्तिक में होंगे, आत्मा में नहीं होंगे, वह अमूर्तिक है।

ही नहीं अभी रोओगे, मरते समय रोओगे। लेकिन अगर आप अभी खुश रहोगे तो हो सकता है कि आप डॉक्टर को भी चेलेंज दे सकें।

अगर डॉक्टर ने कहा कि मृत्यु 4 साल बाद आयेगी, तो हम कह रहे हैं कि 4 साल और बढ़ जायेंगे। मृत्यु 8 साल बाद आयेगी। उस औरत को बात समझ में आ गयी और उसके चेहरे पर मुस्कान आ गयी। जैसे ही उसके चेहरे पर मुस्कान आयी तो सब लोग खुश हो गये। परिवार के लोग बोले कि आज पहली बार यह हँसी है। तुम अपने मन में रुग्णता मत लाओ। शरीर में रोग है, रहने दो। उस शरीर के रोग को भी तुम जीत लोगे, अगर तुम्हारा मन शुद्ध होगा। जब हमें यह जीवन मिला, तो हमारी अपनी इच्छा से नहीं मिला। हमें जीवन मिला, जीवन मिलने के बाद हमें भगवान के ज्ञान की प्राप्ति हुई और उसी भगवान के ऊपर अगर हम थोड़ा सा विश्वास करें तो आपके अन्दर बहुत कुछ बल उत्पन्न हो सकता है। अगर हम देखें जो भगवान सर्व शक्तिमान है जो भगवान सभी प्रकार के रोगों से रहित है। आप उस भगवान का थोड़ा सा ध्यान करें। अपने मन को अच्छी Positive भावना में लगायें और भगवान की विनती, प्रार्थना आदि करें तो आपका मन स्वस्थ होगा और यह रोग अपने आप धीरे-धीरे ठीक होता चला जायेगा। आपको जीवन का वर्तमान में जो आनन्द है, वो तो आयेगा ही। मृत्यु कभी भी आती है, तो एक क्षण के लिए आती है, सालों तक तो हम अपने मन के कारण से मरते रहते हैं। इसलिए अब अगर तुम्हें मरना है तो मरना तो सभी को है, हमें भी मरना है। जब यह निश्चित है कि मरना तो सबको है, कोई बात नहीं, कोई आगे और कोई पीछे, जीना सीखो। जीने के लिए अपने मन में यह भावना बनाओ कि मुझे जो शरीर मिला है अब भले ही यह रोगी हो गया तो कोई बात नहीं। मैं अब इस शरीर से दुखी नहीं होऊँगा, परेशान नहीं होऊँगा क्योंकि मन हमारा अलग चीज है और शरीर अलग चीज है। शरीर को अपना काम करने दो और मन को आप अलग काम में लगा दो, आप अच्छे ढंग से णमोकार मंत्र की ध्वनि अपने अन्दर उत्पन्न करो। प्रसन्न होकर अपने मन में यह भावना करो- मैं मर नहीं सकता, मुझे कोई मार नहीं सकता, यह शरीर तो वैसे ही सड़ गया है यह मरणधर्मा है। यह मरेगा तो भी हमारे लिए कोई दुःख नहीं होगा। इस प्रकार की भावना करने के लिए आपको चाहे किसी पुस्तक की आवश्यकता पड़े तो पुस्तक ले लो, लेकिन आप अपने मन को प्रसन्न रखो। पहले से मरने की तैयारियाँ मत करो। जो जीवन है उसे चलने दो। उसको समझ में आ गया। वो वहाँ से हँसती-हँसती गयी। हमें भी खुशी हुई कि कम से कम आत्मा के अन्दर यह ज्ञान पहुँचा तो

''न मे व्याधिः कुतो व्यथा''

व्याधि मेरे अन्दर नहीं है, मेरी आत्मा में नहीं है। व्याधि तो शरीर में है पर हमारे अन्दर व्यथा क्यों आती है? यह दुःख शरीर का है हमारे अन्दर नहीं है, यह शरीर हमारा है ही नहीं, यह तो छूटेगा। यह अगर आपके अन्दर विचार आ जाये तो आप अपने मन को इस शरीर से हटाकर प्रसन्न बना

बीमार होने पर सभी प्रकार के रोगों से रहित सर्वशक्तिमान् भगवान का ध्यान करें।

लोगे। यह अध्यात्म के उपदेश हमारे लिए हर समय पर काम आने वाले हैं और जो हर समय पर काम लेगा उसके लिए ही जीवन के अन्त में काम आयेंगे। जीवन के अन्त में भी आपको कष्ट होगा, परेशानी होगी तो आपको इसी उपदेश का सहारा लेना पड़ेगा। इसलिए इसको इष्ट उपदेश कहते हैं। कई बार हमें वो चीजें अच्छी नहीं लगती जो हमें माँ देती है, पिताजी हमें देना चाहते हैं, हमें वो चीजें अच्छी लगती हैं जो हमारा मन करता है। लेकिन अच्छी चीजें वास्तव में वे होती हैं, जो हमें माता, पिता देते हैं, आपको अच्छी लगेगी- वो मैगी, लेकिन माता-पिता कहते हैं कि बेटा मैगी नहीं खाना, कुरकुरे नहीं खाना, रोटी खाना लेकिन रोटी अच्छी नहीं लगेगी। कभी-कभी इष्ट को भी हमें समझना पड़ता है कि इष्ट क्या है? जो हमें माता-पिता कह रहे हैं, बड़े कह रहे हैं वो इष्ट हो जाये तो फिर हमको कभी रोग होंगे ही नहीं। हमें आदत हो गयी है, मैगी खाने की, पिज्जा, बर्गर खाने की, तो हम एक दिन रोगी हो जायेंगे, तो उसके बाद आप दवाई पूछेंगे तब डॉक्टर कहेगा, यह खाना छोड़ो क्योंकि जितना आप फास्ट फूड खाओगे, लीवर खराब होगा, पाचन-तंत्र बिगड़ेगा, मधुमेह होगा और शरीर में रोग बढ़ेंगे। डॉक्टर कहेगा, अब और कुछ नहीं खाना है, मसाले की चीजें तो खाना ही नहीं, रोटी खाओ वो रोटी भी ज्यादा मोटी ना हो, ना ही डबल रोटी खाना। जो हमारे लिए अनिष्ट होता है हमें वो अच्छा लगता है। इष्ट वह होता है जो वास्तव में सबके लिए इष्ट है। आज अच्छा नहीं लग रहा है, कल अच्छा लगेगा। जरूर लगेगा क्योंकि इष्ट उपदेश वही कहलाता है जो किसी ना किसी Time पर हमारे लिए इष्ट होगा।

मैं इसको मिष्टोपदेश कहता हूँ। एक इष्ट होता है और एक मिष्ट होता है। मिष्ट अर्थात मीठा तो सबको अच्छा लगता है। ऐसा एक-एक श्लोक मीठा लगता है कि इससे बढ़कर मिठास और किसी चीज में आती ही नहीं है। बहुत मीठी बातें हैं और जितने मीठे उपदेश इसके अन्दर हैं वो दुनियाँ में कहीं नहीं हैं। हर एक रोग की इसमें दवा है। हर एक मानसिक बीमारी का इसमें इलाज है, आप अगर करने बैठ जाओ तो आपको भी यह लगने लगेगा कि यह बहुत मिष्ट उपदेश है। आपको मीठा मिल रहा है और वो मीठा आपको पच रहा है, तभी वो मीठा आपको अच्छा लगेगा। नहीं तो वह आपके लिए रोग का कारण बन सकता है। ऐसी चीजें हैं यह 'इष्ट-मिष्ट' इनका आप कितना भी उपयोग करो, कभी कोई side effect नहीं होगा। जब भी आपको अपने मन को प्रसन्न रखना होगा तो आपको यही भावना करनी होगी। अध्यात्म का मतलब यह नहीं होता कि मैं बिल्कुल लाश हो जाऊँ या बिल्कुल मृत जैसा पड़ा रहूँ। अध्यात्म का मतलब होता है

live a life with fullness.

जीवन को पूर्णता के साथ जीना और जीवन पूर्णता के साथ कब आयेगा। जब जीवन को आप समझेंगे कि जीवन कहाँ से शुरु हुआ, कहाँ पर पूर्ण होगा? पहले से ही आपको मालूम है कि यह जीवन इसी रूप में पूर्ण होगा तो आपको यह भी ध्यान में रखना है कि इस जीवन की पूर्णता

अध्यात्म के उपदेश सदैव काम में आते हैं, वे इष्ट व मिष्ट होते हैं।

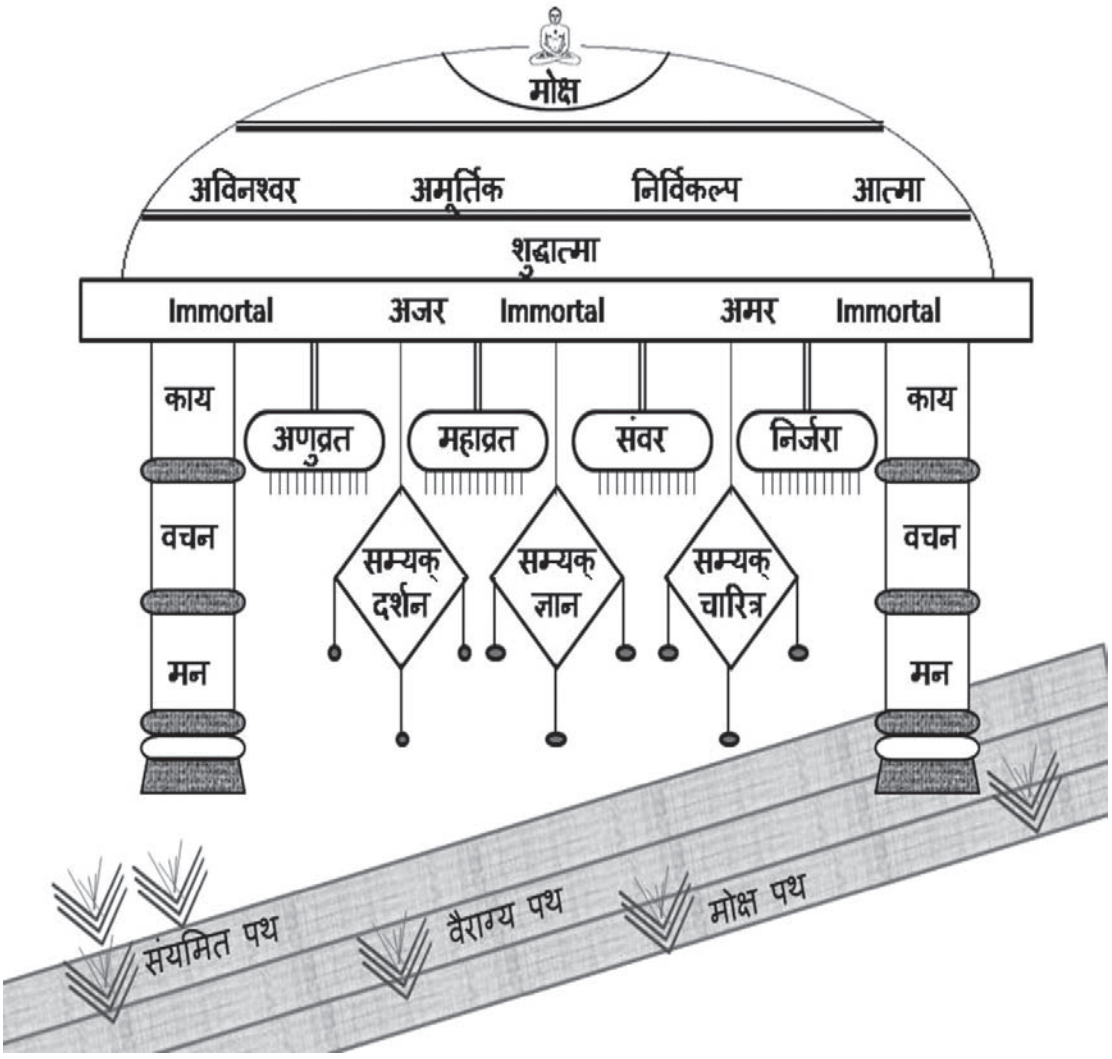

कभी भी इस शरीर के मरण से नहीं होगी। जीवन तो फिर मिलेगा, फिर किसी गर्भ में जन्म होगा, किसी स्थान पर जन्म होगा। यह जीवन की जो पूर्णता होगी अपनी इसी भावना से होगी '**एकोऽहं निर्ममः शुद्धो**'। इसलिए आचार्य कह रहे हैं कि तुम इन भावनाओं को भाने लग जाओगे तो, तुम्हें मौत का डर नहीं रहेगा और तुम्हें रोग भी दुखी नहीं कर पायेंगे। यह सब जन्म, जरा, मृत्यु को जीतने के उपाय हैं। केवल भगवान के सामने जल की दो बूँदें टपकाने से जन्म, जरा, मृत्यु दूर नहीं हो जायेंगे। भीतर से जब कोई चीज होगी तो उसके पीछे यही भावनाएँ होंगी, जितने भी महापुरुष हुए हैं सब इसी प्रकार की भावनाएँ करके और ऐसा ही पुरुषार्थ करके अपनी जन्म, जरा, मृत्यु को दूर किये हैं। 'भगवान नेमिनाथ' के पूर्व जीवन की एक बहुत अच्छी घटना आती है– जब वे अपने

दो-तीन पहले की पर्याय में एक राजा थे और उनके पिता ने सब गृह राज्य को त्याग करके जिन-दीक्षा ले ली। जिन-दीक्षा के बाद, उन्होंने अपने ध्यान से केवलज्ञान की प्राप्ति कर ली और उनको मोक्ष हो गया। उनको मोक्ष होने के बाद, उनका जो बेटा था जो यह नेमिनाथ भगवान का जीव था। अब उसके मन में यह भाव आता है कि अब तो मेरे पिताजी मोक्ष चले गये, अब तो वे कभी नहीं आयेंगे। मैं उनसे कैसे मिलूँगा? वह भी अपने आपमें सम्यग्दृष्टि था, अणुव्रतों का पालन करने वाला था लेकिन उसके मन में एक जिद आ गयी। ऐसी जिद किसी के मन में नहीं आयी होगी। जब तक मेरे पिता का मुझे दर्शन नहीं होगा, मैं आहार नहीं ग्रहण करूँ गा। पिता तो मोक्ष में गये मैं उनको देख नहीं पाया। वह यह नहीं चाहता कि मेरे पिता मुझे घर में आकर मिले, मेरे पिता की तरह ही दिखाई दें, अरिहन्त अवस्था में ही दिखाई दें। चाहे कैसे भी दिखाई दें, लेकिन मेरे पिता का दर्शन मुझे एक बार करना है। उसने प्रतिज्ञा ले ली। मुझे जब तक मेरे पिता के दर्शन नहीं होंगे तब तक अन्न जल का त्याग और उसके आठ दिन गुजर गये। आठ उपवास होने के बाद में देवों का आसन कम्पायमान हुआ। आठ उपवास के बाद में एक देव के अन्दर यह भाव आया, देखो कैसी लगन है, इसको अपने पिता से। वे तो मोक्ष को प्राप्त हो गये और यह यहाँ पर भावना कर रहा है कि मुझे उनके दर्शन हो जायें। एक देव ने आकर विक्रिया के माध्यम से समवशरण की रचना करके बिल्कुल उसके ही पिता का हुबहू रूप दिखा कर के उसके नियम की पूर्ति करायी। उसको उनके दर्शन कराये, तब जाकर उसने? अपना नियम पूरा किया। यह वह जीव है, जो दो भव के बाद नेमिनाथ तीर्थंकर बनने वाला है। यह अपराजित राजा बाद में मुनि दीक्षा लेकर स्वर्ग जाते हैं और बाद में पुनः एक बार मुनि बनते हैं, फिर तीर्थंकर प्रकृति का बंध करते हैं। तीर्थंकर प्रकृति के लिए सोलहकारण भावनाएँ मुनि अवस्था में भाते हैं उसके बाद स्वर्ग जाने के बाद वह नेमिनाथ तीर्थंकर के रूप में उनकी परिणति होती है। उससे पहले भी जब अपराजित राजा के रूप में मरण हुआ तब उन्होंने सल्लेखना ली, एक महीने की सल्लेखना ली। उन्होंने जीवन पर्यन्त तक अन्न-जल छोड़ दिया। मतलब, उन्होंने एक महीना पहले से ऐसा किया। एक महीने के बाद में उनकी मृत्यु हुई। इसको कहते हैं सल्लेखना मृत्यु। सल्लेखना मृत्यु का मतलब ही होता है- मृत्यु को जीतने वाला और इस मृत्यु को वही जीत पायेगा जो घर में भी अणुव्रती होगा, उसी के मन में यह भावना आयेगी कि हम सल्लेखना मरण कर लें। अणुव्रती के लिए सल्लेखना मरण की नियामक भावना उसके अन्दर बनती चली जाती है, अगर आप घर में रहकर व्रतों का पालन करोगे तो आपका अन्त में अच्छा मरण भी होगा, सल्लेखना मरण की भावना रहेगी। वह सल्लेखना मरण, व्रतों के लिए निश्चित होता है और अगर आपके अन्दर व्रत नहीं होंगे तो आप कभी वह मरण कर नहीं पाओगे। वह अपराजित घर में रहकर अणुव्रतों का पालन करता था और उसी पर्याय में जीवन के अन्त में दो मुनि महाराज उसको उपदेश देने के लिए आये कि तेरी उम्र केवल एक महीने बची है अब तुझे जो करना है सो कर ले। उसने उस एक महीने के अन्दर अपना सारा कायाकल्प कर लिया। सब

कुछ छोड़-छोड़कर उसने सीधे एक महीने की सल्लेखना ले ली और वह उस सल्लेखना मरण के माध्यम से ही स्वर्ग में जाकर के बहुत बड़ा देव बना। वही जीव एक दो पर्याय के बाद में तीर्थंकर का जीव बनता है। ये परिणतियाँ इसी रूप में शुरू होती हैं। इसलिए आचार्यों ने कहा है कि मृत्यु को जीतने वाला वही होगा जिसने अणुव्रतों या महाव्रतों को धारण किया है।

व्रत ही संवर और निर्जरा का कारण :

आप अगर घर में रहकर इन अणुव्रतों का पालन करें तो आचार्य कहते हैं कि यह बारह व्रत हमारे लिये 'पंचाणुव्रत निदयो' निधि कहा है। जैसे चक्रवर्ती के चौदह रत्न और नौ निधियाँ होती हैं। ऐसी नौ निधियों के समान 5 अणुव्रत और 12 पूरे व्रत हैं। इन निधियों का पालन करने के बाद ही आपके अन्दर immortal अमूर्तिक, अमरपना आयेगा। यही अमरपना लाने के लिए गृहस्थ श्रावक भी व्रतों का पालन करता था और आज भी लोग घरों में रहकर व्रतों का पालन करते हैं। जिन्हें अपनी आत्मा की अमरता का विश्वास हो जाता है तो फिर उन्हें इन व्रतों का पालन करने में क्या कष्ट होना है, वो तो प्रसन्न ही रहेगा। सब कुछ आपको उपलब्ध रहेगा। आपको लगता है कि इन बारह व्रतों में आपका खाना-पीना छुड़ा दिया जाता है। कहीं, आपको उपवास करने के लिए कहा जाता है आखिर क्या है?

जो यद्वा-तद्वा होता था, अनर्गल खाना-पीना होता है, बस उससे बचकर के शुद्ध, सात्विक, प्रासुक भोजन करो, पानी पीओ और अपने जीवन को स्वस्थ बनाओ। व्रत अपने आप अजरता, अमरता की ओर ले जाने वाले हैं। अगर आपकी हिम्मत है, आपमें शक्ति है, आपका शरीर काम कर रहा है तो आपको बुद्धिपूर्वक इन व्रतों का पालन करने का मन बना लेना चाहिए। संवर और निर्जरा जब भी होगी तो वह व्रतों के माध्यम से ही होगी। भाव संवर कहाँ से होगा?

व्रत और सम्यग्दर्शन :

'वदसमिदीगुत्तीओ' सम्यक् दर्शन से कुछ नहीं होगा। आचार्य नेमीचन्द्र महाराज ने संवर के प्रकरण में संसार के कारण से होने वाले आस्रवों को रोकने के लिए सम्यग्दर्शन को लिया ही नहीं। वह द्रव्य संग्रह की गाथा- 'बदसमिदीगुत्तीओ' व्रतों को पहले लाओ सामने। जब आप व्रतों को धारण करेंगे, सम्यग्दर्शन अपने आप पीछे-पीछे चला आयेगा। जब आप सम्यग्दर्शन के पीछे पड़े-2 जिन्दगी गुजार देंगे, व्रत कभी नहीं आयेंगे। पहले आपके दिमाग में यह निश्चय रहता है कि, पहले सम्यग्दर्शन हो जाये तो हम व्रत लें। जिन्दगी भर आप यही सोचते रहोगे कि सम्यग्दर्शन है कि नहीं, हुआ कि नहीं, कब होगा? उसकी कोई पहचान ही नहीं। व्रतों के माध्यम से वह सम्यग्दर्शन खिंचा चला आता है।

आचार्य कहते हैं-जैसे ही आपने व्रत इस संकल्प के साथ लिये, जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए अणुव्रत हैं। भगवान्, तीर्थंकर ने हम श्रावकों को इन व्रतों का पालन करने के लिए कहा है।

बुद्धिपूर्वक व्रतों का पालन अपने आप अजरता अमरता की ओर ले जाता है।

उनकी आज्ञा मानकर यह व्रत धारण कर रहे हैं। वही आपका सम्यग्दर्शन है क्योंकि आपने उनकी आज्ञा मान ली। इसका नाम है 'आज्ञा सम्यक्त्व' जो सम्यग्दर्शन की सबसे बड़ी पहचान। जैसे ही आपने आज्ञा मानी और व्रत लिये, भगवान ने बताया कि इन व्रतों से संवर होगा, निर्जरा होगी। संवर और निर्जरा ही तो करना है। आस्रव, बंध तो अनादिकाल से होता आया है। पुरुषार्थ नहीं हुआ है और यह पुरुषार्थ करने का जैसे ही मन बनता है, तो आचार्य कहते हैं- बस, यहीं से आपके लिए संसार की परम्परा टूटने लग जाती है। जितने भी लोग मुक्ति को प्राप्त हुए हैं, चाहे वो तीर्थंकर ही क्यों न हों, इसी प्रकार का अपने पूर्व जन्म में पुरुषार्थ किए हैं।

बिना अणुव्रत लिये कोई महाव्रत लेने की हिम्मत नहीं कर पाया और बिना महाव्रत लिये तो वीतराग चरित्र की प्राप्ति हुई नहीं, वीतराग चरित्र और वीतराग सम्यग्दर्शन के बिना तो केवलज्ञान हुआ नहीं।

इन सबका क्रम है। आज के सब श्रावक अपने मन में ऐसे चोरी के भाव लेकर बैठे हैं कि वे उन्हीं शास्त्रों को पढ़ेंगे जिनसे अपने मन का स्वार्थ और चोरी पुष्ट हो। जिन शास्त्र में लिखा है, पहले व्रत ले लो, बिना व्रत लिये सम्यग्दर्शन नहीं होगा, वो नहीं पढ़ेंगे। आचार्य नेमीचन्द्र महाराज सैद्धान्तिक आचार्य हैं, आध्यात्मिक आचार्य हैं और वे कहते हैं, यदि आप यह सोचकर व्रत लोगे कि यह भगवान के द्वारा कहे हुए अणुव्रत हैं, इन्हीं व्रतों से आत्मा में संवर और निर्जरा होगी तो इसका नाम है सम्यग्दर्शन क्योंकि इसने श्रद्धा आपकी जुड़वायी भगवान से। यह ज्ञान आपका काम कर गया तो इसका नाम है सम्यग्ज्ञान और इसमें जो आचरण करेंगे वो कहलायेगा सम्यक्चारित्र। यही आपके लिए सबसे बड़ी विधि बन जायेगी। इसलिए आचार्य नेमीचन्द्र महाराज कहते हैं- 'वदसमिदीगुत्तीओ' व्रतों से वह संवर शुरू होता है। जिन्दगी भर सम्यग्दर्शन करते-2 बैठे रहोगे, कुछ नहीं होने वाला। इसके बिना कभी भी वो संवर और निर्जरा का क्रम शुरू होने वाला नहीं है। भाव संवर यहीं से शुरू होता है। संवर करने वाला होगा तो होटलों में नहीं जायेगा। हर कहीं जाकर दावतें होती हैं, वहाँ नहीं जायेगा। बस शुद्ध भोजन खायेगा। उसी पर अपना जीवन चलायेगा। यह सब परिणाम भीतर के कषाय की कमी होने से ही उत्पन्न होंगे। कषाय कम हो जाती है तो बस, जो उचित होता है वही लेना है, ये परिणाम होते हैं। आचार्यों ने सदा कहा है कि गृहस्थ श्रावक को सदा अणुव्रतों का पालन करके ही अपना जीवन गुजारना चाहिए। अगर आप अणुव्रतों का पालन करोगे तो अपने आपको जीत लोगे। ''नाहं बालो न वृद्धोऽहं न युवा'' फिर क्या फर्क पड़ता है? व्रत चाहे युवावस्था में ले लो, बाल्यावस्था में, चाहे वृद्धावस्था में ले लो। ये भावनाएँ तो शरीर में, मतलब पुद्गल में हो रही है। आत्मा न बालक है, न युवा है और न वृद्ध है। आत्मा तो एक जैसा है। हमेशा जो कुछ भी परिवर्तन शरीर में आ रहे हैं, मैं ऐसा हो गया, मैं वैसा हो गया, यह सब पुद्गल में होते हैं। आत्मा में कुछ नहीं होता लेकिन वास्तव में जो आप हैं, इन से परे हैं।

व्रतों के माध्यम से सम्यग्दर्शन खिंचा चला आता है।

सभी सांसारिक वस्तुयें वमनतुल्य

30

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य मम विज्ञस्य का स्पृहा ॥

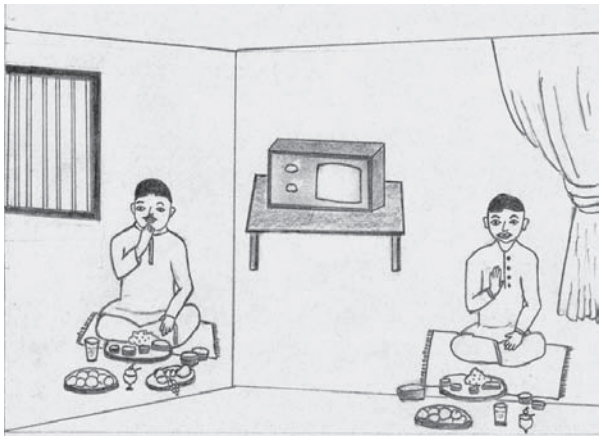

अन्वयार्थ—(सर्वे अपि) सभी **(पुद्गलाः)** पुद्गल परमाणु **(मया मोहात्)** मेरे द्वारा मोह से **(मुहुः)** बार-बार **(भुक्तोज्झिता)** भोगे और छोड़े जा चुके हैं अतः **(अद्य)** अब **(उच्छिष्टेषु इव)** जूठन के समान **(तेषु)** उन पुद्गलों में **(मम विज्ञस्य)** मुझ बुद्धिमान की **(का स्पृहा)** क्या लालसा हो सकती है?

- **राग के खिलौने**
- **अकाम निर्जरा, सकाम निर्जरा**
- **संकल्प शक्ति बढ़ायें**

राग के खिलौने :

आचार्य श्री पूज्यपाद महाराज इस इष्टोपदेश ग्रंथ में निरन्तर मन की भावनाओं को अच्छा बनाने के लिए और मोक्षमार्ग पर आरूढ़ होने के लिए जो भी भावनायें आवश्यक है उन सबके उपाय बता रहे हैं। यहाँ पर एक शब्द प्रयोग कर रहे हैं–मम विज्ञस्य का स्पृहा। विज्ञ कह रहे हैं आपको और हर उस जीव को जो स्वयं अपनी आत्मा की भावना कर रहा है वह विज्ञ कहलाता है। विज्ञ माने विद्वान् या जानकार। आपकी भाषा में intelligent कहलायेगा। जो इस प्रकार से भावना करते-करते अपने मन में वस्तु-तत्त्व का सही विचार करने लगा हो और जो उसके अन्दर बुराईयाँ हैं, जो उसकी आत्मा के पतन करने वाले भाव हैं और उन भावों को देखने लगा हो। अध्यात्म की भाषा में intelligent वह कहलाता है, जो अपनी ही आत्मा में उठने वाले हर एक भाव को समझने लग जाता हो। किस भाव से हमें क्या मिलता है? और उस भाव की अन्तिम परिणति क्या होती है? यह समझदारी जिसमें भी आने लग जाती है वह अध्यात्म की भाषा में intelligent या विज्ञ कहलाने लग जाता है। आपकी भाषा का intelligent अलग है। बहुत अच्छे मार्क्स-ले आया और 90 प्रतिशत ले आया 95 प्रतिशत ले आया। वह सब परसेन्टेज यहाँ पर कोई प्रयोजनीय नहीं होते हैं। यहाँ आचार्य कहते हैं कि आज अपनी आत्मा के हर उस एक भाव को देखो जो आपके अन्दर राग उत्पन्न करता है और आपको राग के माध्यम से बाहरी पदार्थों से जोड़ता है और उस राग की पूर्ति करने के लिए वह जिन-जिन चीजों को ग्रहण करता है, उन-उन चीजों के बारे में भी सोचो कि तुमने कितनी बार ले ली हैं और कितनी बार छोड़ दी हैं। बच्चे के लिए हम एक खिलौना देते हैं और वह उस खिलौने से खेलता है। खिलौना थोड़ा सा खराब हो जाता है। हम उसके लिए दूसरा खिलौना लाकर के दे देते हैं। ऐसे ही हम बड़े होकर के खिलौने से खेलते रहते हैं और उस खिलौने में हमें बाहर की जितनी भी चीजें मिलती हैं, उन सबसे खेल करके हम कभी थोड़ा सा खुश हो लेते हैं, कभी थोड़ा सा दुख प्राप्त कर लेते हैं। लेकिन उन खिलौनों की स्थिति भी वही है, जो स्थिति बच्चे की होती है। बच्चे के लिए हम कितने भी खिलौने दे दें, वह उन को तोड़ता भी जायेगा, अपने पास में रखता भी जायेगा। एक ढेर भी लगा लेगा लेकिन उसके अन्दर जब तक बचपना रहेगा, तब तक खिलौनों से खेलने का भाव करता रहेगा। ऐसे ही आचार्य कहते हैं कि जब आदमी बड़ा हो जाता है तो यह राग के कारण से अनेक खिलौनों से खेलता है, खिलौने इकट्ठा करता रहता है और उन खिलौनों में तब तक उस राग भाव को नहीं छोड़ता है जब तक कि उसे उससे अधिक ज्ञान की कोई चीज न मिल जाये। उस ज्ञान के माध्यम से ही वह उन खिलौनों से राग तोड सकता है और उस ज्ञान की वृद्धि होने का नाम ही बड़ा कहलाने लग जाता है। विज्ञ का मतलब हो गया, आप बड़े हो गये, सयाने हो गये। बोलते हो ना-सयाना। सयाना का

जीव जो स्वयं अपनी आत्मा की भावना कर रहा है, वह विज्ञ कहलाता है।

मतलब, बहुत बड़ा हो गया, समझदार है। ऐसे ही उम्र से बड़ा होना नहीं, शरीर से बड़ा हो जाना नहीं, भीतर से भावों से बड़ा होना।

अध्यात्म की गति अपने को अन्तरंग की ओर ले जाती है और जब कोई भी जीवात्मा इस तरह से अपने भावों को देखता है वह समझ लेता है कि दुनियाँ की हर चीज जो हम पा रहे हैं वह हम पहले पा चुके हैं। जो हमें आज नया लग रहा है, वह भी किसी ना किसी फॉर्म में, किसी ना किसी रूप में हमारे सामने पहले आ चुका है, कोई भी चीज इस दुनियाँ में नई नहीं है। इसलिए आचार्य यहाँ पर एक शब्द दे रहे हैं-'भुक्तोज्झिता'। तुमने भोगा भी है और 'उज्झिता' माने छोड़ भी दिया है। हर एक द्रव्य को, हर एक पदार्थ को हर जीवात्मा ने, जो इस संसार में भ्रमण कर रहा है, उसने हर पुदगल पदार्थ को भोग लिया है और छोड़ भी दिया है। यह बात इसलिए बतायी जा रही है कि आपके दिमाग में अगर यह आ जायेगा कि संसार में कुछ भी नया भोगने लायक नहीं है तो आपके राग में थोडी सी कमी आ सकती है। वह भोगने की वस्तुएँ सभी प्रकार की हो सकती है- खाने की, पीने की, पहनने की, ओढ़ने की। वह सभी वस्तुएँ जो हमने भोगी है और छोड़ी हैं। मोह के कारण से हमने उनको भोगा भी है और छोड़ा भी है। यह काम एक दो बार नहीं हुआ है। मोह माने होता है- बार-बार, अनेक बार, क्योकि हर जन्म में व्यक्ति के लिए, उस जीव के लिए इन्हीं-इन्हीं चीजों के माध्यम से उसका पोषण होता है, चाहे वो खाने-पीने की वस्तुएँ हों, चाहे वो पहनने-ओढ़ने की वस्तुएँ हों। उसके मोह के कारण से उसे हर एक पर्याय में इन चीजों को ग्रहण करना और उन चीजों को छोड़ करके चले जाना, यह उसका हर जीवन में चलता रहता है।

इसलिए यहाँ पर कहते हैं कि, जितने भी पुद्गल पदार्थ हैं- 'सर्वेऽपि पुद्गलाः'। वे सभी पुद्गल पदार्थ इस जीवात्मा ने ग्रहण भी कर लिये हैं और छोड़ भी दिये हैं। एक जीव की बात नहीं है, सबकी बात है। ध्यान रखना, धर्म जब भी कोई बात करता है, धर्म शास्त्रों में भी जब कोई बात आती है तो वो सब जीवों पर लागू होती है। जो भी जीव अपने को इस संसार में दिखाई दे रहे हैं उन सब के लिए यह कहा जा रहा है और उन सब जीवों के द्वारा यह सब कार्य हो चुका है। जितने भी पौद्गलिक पदार्थ हैं वे सभी ग्रहण भी किये हैं और सभी छोड़े भी जा चुके हैं। नया किसी के लिए कुछ भी नहीं मिल रहा है, सब कुछ पुराना है। पुराने में भी बहुत कुछ वह है जिसको हमने ही भोग करके छोड़ा है और पुनः हम उसी को प्राप्त कर रहे हैं। यह परिणति जब हमारे सामने आ जाती है तो उस समय पर हमारे मन में यह भाव आने लग जाता है कि अगर हमारे जीवन में कुछ नया भाव आयेगा तो वो कुछ नये भावों की संयोजना करने से ही आयेगा। अपने आप जो चलता रहेगा उसमें कुछ नया नहीं होगा। संसार में रहने वाले जितने भी जीव हैं वे सभी जीव जो त्रस पर्याय प्राप्त किये, मनुष्य आदि पर्याय प्राप्त कर रहे हैं और अनेक अनेक जन्मों के माध्यम से इन पर्यायों

हर एक द्रव्य को/पदार्थ को हर जीवात्मा ने संसार में भोगा भी और छोड़ा भी है।

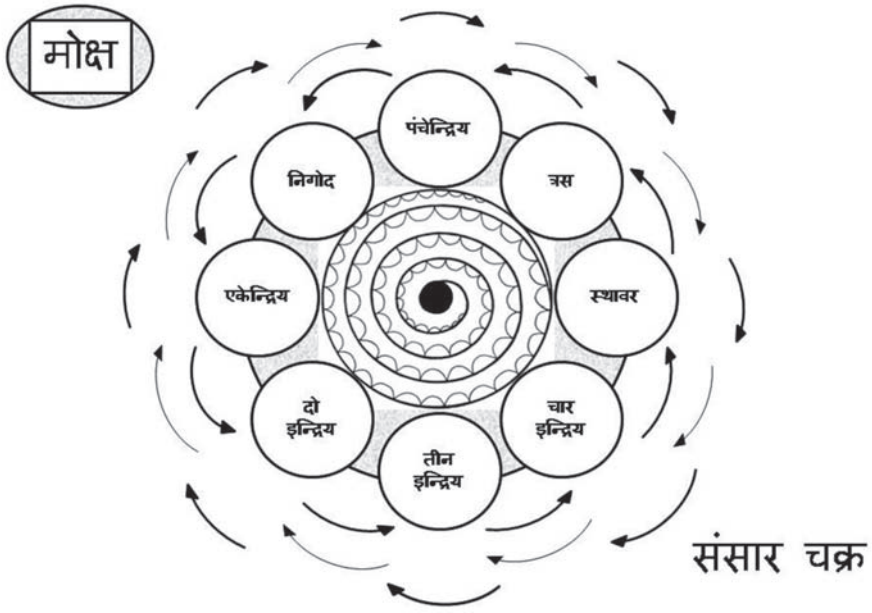

संसार चक्र

को छोड़कर के अनेक-अनेक दूसरी पर्याय को प्राप्त कर लेते हैं, वे सभी जीव इस प्रकार से हर एक पुदगल को भोगकर के छोड़ चुके हैं। यानि अपनी आँखों से जितने भी लोग देखने में आयेंगे, उन सबके लिए यह सूत्र लागू होगा। ऐसे भी जीव हैं जिन्होंने कभी एक इन्द्रिय से दो इन्द्रिय पर्याय भी प्राप्त नहीं की है उनके लिए यह सूत्र लागू नहीं होगा, बाकी सबके लिए लागू होगा। जो एक इन्द्रिय पर्याय में ही अनन्त बार जन्म-मरण कर रहे हैं और आज तक अनादिकाल से करते आ रहे हैं उनको निगोद जीव कहते हैं। उनके लिए कभी भी त्रस पर्याय में घूमना नहीं हुआ और जिन्होंने त्रस पर्याय में घूमना शुरू कर दिया तो फिर उनको ऐसा आनन्द आता है, इन पर्याय में कि बार-बार अपने ही अन्दर उन्हीं-उन्हीं भावों से, उन्हीं-उन्हीं चीजों को अर्जित करने से और उसी-उसी में मोह के कारण से आनन्दित होते हैं। लेकिन जिन्होंने कभी दो इन्द्रिय पर्याय ही नहीं पाई, जिन्हें कभी रसना इन्द्रिय ही नहीं मिली, समझो उन्होंने अभी तक कुछ खाया ही नहीं, अपनी जीभ से और एक इस संसार में रहने वाले हम और आप जैसे अनेक अनन्त लोग हैं जो अपनी ही रसना से इतना खा चुके हैं, अपनी ही जीभ से इतना खा चुके हैं कि वही खाया हुआ, वही छोड़ा हुआ अनेक-अनेक फॉर्म में बदलकर हमारे सामने फिर आ रहा है। एक वो जीव हैं जिन्होंने कभी रसना इन्द्रिय ही प्राप्त नहीं की है।

जिनवाणी से हमें एकेन्द्रिय, दो इंद्रिय, तीन-चार इंद्रिय जीवों के बारे में सोचने को मिलता है।

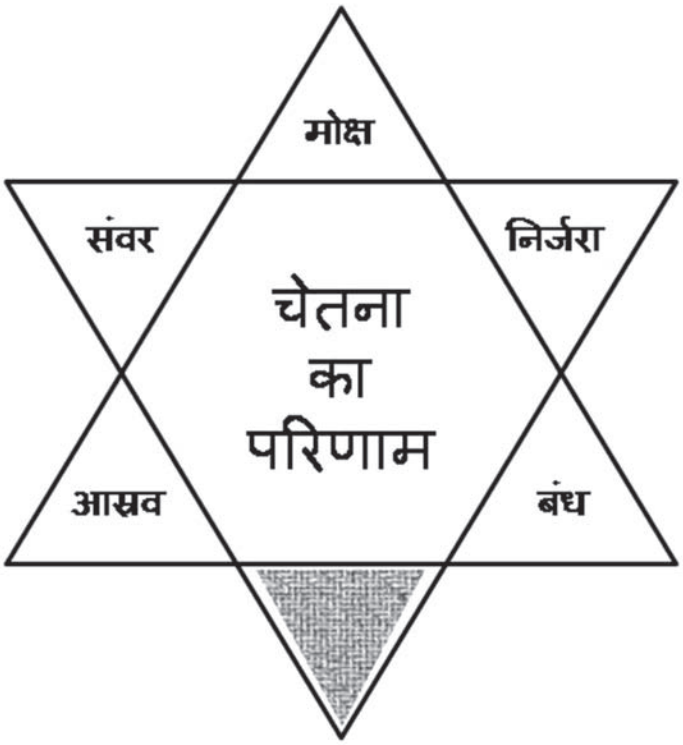

इसी जिनवाणी के माध्यम से उनके बारे में भी सोचने को मिलता है जिन जीवों को कभी दो इन्द्रिय पर्याय नहीं मिलीं। कुछ भी सूँघने को नहीं मिला, चखने को नहीं मिला, खाने को नहीं मिला। किसी भी पुद्गल पदार्थ का रस नहीं चखा, मात्र एक स्पर्शन इन्द्रिय से उनका अनन्तकाल आज तक बीतता आ रहा है और आगे भी अनंतकाल तक ऐसा ही चलता रहेगा। ऐसे भी जीव हैं। इसलिए आचार्य यहाँ पर उनको नहीं समझा रहे हैं। एक इन्द्रिय को तो सुनने आने वाला नहीं है जो समझ सकते हैं, सुन सकते हैं, उनके लिए आचार्य यहाँ कह रहे हैं कि अपने मोह की परिणति ऐसी हो गई है कि हर चीज का रस निकाल के उसको छोड़ दिया है, कर्म का भी और नौकर्म का भी।

एक शब्द आता है द्रव्यसंग्रह में– ''भुत्तरसं कम्मपुग्गलं जेण''। कर्म पुद्गलों का रस जिसने भोग लिया है, भोग लेने का मतलब किसी पदार्थ में कोई रस है, उसको हमने निकाल लिया, चूस लिया। जो हमारे अन्दर ज्ञानावरणादि कर्म हैं, वो फल देते हैं तो उनका भी रस चूस लेते हैं। जो हमारे सामने पुद्गल पदार्थ आते हैं, उनका भी रस हम चूस लेते हैं। दो प्रकार के पुद्गल होते हैं, एक कर्म पुद्गल और एक नौकर्म पुद्गल। कर्म जो हमारे अन्दर बन्धते हैं जिनका फल हम अपनी आत्मा में अनुभव करते हैं, वो कर्म पुद्गल और जो शरीर भोजन आदि बाह्य पदार्थ हैं, वे सभी नौकर्म पुद्गल कहलाते हैं। इन सब के रसो को हमने चूसा है, नौकर्म के रसों को चूसा है और कर्मों के रसों को भी चूसा है और चूसकर के भी उनको छोड़ दिया है। वो पदार्थ फिर किसी ना किसी रूप में परिवर्तित हुआ और पुनःपरिवर्तित होकर हमारे सामने आया। फिर मोह जुड़ा हमने मोह के कारण से फिर उसको ग्रहण किया। जो पदार्थ ग्रहण करने में नहीं आता, मोह हमें उस पदार्थ को ग्रहण करने

कर्म पुद्गल एवं नौकर्म पुद्गल (शरीर, भोजन आदि) दो प्रकार के पुद्गल होते हैं।

के लिए आकर्षित करता है। उस मोह के कारण से हम उस पदार्थ में मोहित हो जाते हैं तो हम उस पदार्थ को अपना मानकर के जैसे बने वैसे चूसने का प्रयास करते हैं। इसका नाम है- कर्म और नौकर्म पुद्गलों को ग्रहण कर लेना और छोड़ देना। यह इस आत्मा के द्वारा अपनी अनेक-अनेक पर्यायों में अनेक बार हुआ है और इनके पीछे एक ही संज्ञा जुड़ी है जिसका नाम है- आहार संज्ञा। समझ में आता है, हर जीव में एक संज्ञा जुड़ी होती है। चार संज्ञायें होती हैं लेकिन उनमें से एक बड़ी संज्ञा है जिसको कहते हैं- आहार-संज्ञा। इस संज्ञा के बिना काम नहीं चलता है, जीवन नहीं चलता है लेकिन इस संज्ञा को अगर कन्ट्रोल में न किया जाये तो यह जीवन बिगड़ भी जाता है। इस प्रकार के उपदेशों से हमें क्या सीखना ? महाराज, हम कुछ खाना-पीना तो नहीं छोड़ सकते। आचार्य आप से यह नहीं कह रहे हैं कि खाना-पीना छोड़ो, आचार्य आप से यह कह रहे हैं कि अपनी संज्ञाओं को जीतो। जो अपने अन्दर राग के कारण से पर-पदार्थों को ग्रहण करने की प्रणाली चलती है, उस प्रणाली को थोड़ा रोको और वह कैसे रुकेगा ? वह आपके मन से इस प्रकार से भावना पहुँचेगी तो रुकेगा क्योंकि ज्ञानी आत्मायें हैं। आप हर काम को अपने ज्ञान से करते हैं तो अपने परिणामों को रोकोगे तो वो भी परिणाम आपके ज्ञान का ही परिणाम होगा कोई दूसरा परिणाम आप को रोकने वाला नहीं है। आप जब भी पढ़ेंगे, संवर होगा चेतन के परिणाम से। निर्जरा होगी चेतना के परिणाम से। मोक्ष मिलेगा चेतना के परिणाम से। आस्रव और बंध होगा सब चेतना के परिणाम से। बाहरी चीज कुछ कर ही नहीं रही है, जो कुछ हो रहा है चेतना कर रही है और चेतना का परिणाम ही कर रहा है। चेतना का परिणाम ही हमारे लिए सब कुछ करा रहा है इसलिए आचार्य कह रहे हैं कि आपकी कोई भी क्रिया रुकेगी तो क्रिया को बाहर मत रोको, अपने चेतना के परिणाम में रोको। चेतना का परिणाम अगर रुक गया तो बाहर कोई भी चीज बनी रहे, कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। आप हमें यह बताओ, अगर आपके सामने कोई व्यंजन रखा है, वो व्यंजन आपसे कहता है कि हमें ले लो या आपकी चेतना का परिणाम कहता है कि इसे ले लो। ऐसा यह नहीं है कि चेतना का परिणाम कहता है, कभी कभी ऐसा भी होता है कि वो व्यंजन देखकर आपको भूख भी नहीं लग रही हो तो चेतना के परिणाम में भूख आ सकती है। वह व्यंजन देखकर के आपके चेतना के अन्दर भी परिणाम बन सकता है लेकिन अन्तरंग कारण तो अपने चेतना का परिणाम ही कहलाएगा। व्यंजन कितना भी अच्छा हो, जब तक हमारी चेतना का परिणाम उसको ग्रहण करने के लिए उत्सुक नहीं होगा तब तक वह व्यंजन हमारे मुँह में आयेगा नहीं और हम उसका रसास्वादन कर नहीं पायेंगे। कोई भी बाहरी चीज हमारे साथ में जबरदस्ती करती ही नहीं। कोई भी बाहरी चीज आप देखोगे, आप महसूस करोगे कि आप के लिए हर बाहरी चीज आपके साथ जबरदस्ती कर रही है लेकिन सिद्धान्ततः कोई भी बाहरी चीज आपके साथ जबरदस्ती नहीं कर सकती लेकिन हर बाहरी चीज आपके साथ जबरदस्ती करती हुई दिखाई देगी।

किसी भी क्रिया को अपने चेतना के परिणाम में रोकना चाहिये।

अकाम निर्जरा-सकाम निर्जरा :

आचार्य कहते हैं आपके अन्दर एक मोह परिणाम पड़ा हुआ है उसके कारण से आप किसी भी दुकान पर गये। आज कल दुकाने तो क्या, मॉल पर जाते हैं, बड़े-बड़े मॉल बन गये हैं ना, वहाँ पर खरीददारी करने जाते हैं, बड़े-बड़े लोग बड़ी-बड़ी जगह पर जायेंगे। अब उस मॉल में हर एक आइटम आपको मिलेगा, आपके अन्दर खरीदने का परिणाम नहीं होगा, उस चीज को ग्रहण करने का परिणाम नहीं भी होगा तो भी आप वहाँ पहुँचेंगे। आपके अन्दर उत्सुकता पैदा होगी, यह भी ले लो, यह भी ले लो। आप घर से सोच के नहीं गये कि यह खरीदना है लेकिन चीज देखने के बाद आपको यह लगेगा कि यह भी ले लो, यह भी ले लो। ले तो लो, अपनी जेब भी टटोल लो। फिर जेब टटोलने में आती है तो पता पड़ता है कि अपनी जेब में तो इतना नहीं है। एक ही आइटम ले सकता है। अपनी जेब तो खाली हो जायेगी तो आपने अपने मन को उस समय पर रोक लिया। इस कारण से नहीं रोक लिया कि आपके पास में उस चीज को लेने की इच्छा नहीं थी, इच्छा तो थी लेकिन आपकी कुछ बन्दिश थी। आपकी जेब इतनी गर्म नहीं थी, आपके पास में अकाउन्ट नहीं था। तत्काल आपको लगा कि वो सारा का सारा ले लेते हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि आपने अपनी इच्छा को जीत लिया। इच्छा की पूर्ति तो नहीं हुई, इच्छा को मार देना और जीत लेना इसमें अन्तर है। जब आपके दिमाग में यह आया कि हमारे पास पैसा नहीं है तो इसका मतलब यह हुआ कि अब हम और पैसा कमा लेंगे। जब हमारे पास पैसा हो जायेगा तो हम अगले हफ्ते फिर आयेगें और हम यह चीजें खरीद के आ जायेंगे। अब वह अगला हफ्ता कितने साल के बाद आये, यह बात अलग है लेकिन उस वस्तु ने आपके अन्दर इच्छा पैदा कर दी। वह जो इच्छा आपके अन्दर वस्तु ने पैदा कर दी तो इसका मतलब है, आपकी इच्छा आपके अन्दर से उत्पन्न नहीं हो रही है, वस्तु के कारण से हो रही है। जब वस्तु के कारण से आपके अन्दर इच्छा हुई है तो अब दुनियाँ में बहुत सारी वस्तुयें हैं, वो कोई भी वस्तु आपके अन्दर कितनी भी इच्छा पैदा कर सकती हैं। आपको अब इच्छा मारनी पड़ेगी क्योंकि आप हर इच्छा को पूर्ण नहीं कर सकोगे। यह कहलाता है- इच्छा को मारना, इसे कहते हैं- अकाम निर्जरा। निर्जरा तो हो रही है लेकिन इसे क्या कहेंगे- **अकाम निर्जरा**। माने हम इच्छा किये बिना भी अपनी इच्छाओं को मार रहे हैं, अपनी इच्छाओं पर अपने लिए रोक रहे हैं। लेकिन हमारी इच्छा भीतर से नहीं है, किसी कारण वश हमें रोकनी पड़ रही है। जहाँ कोई कारण आ जाये रोकने का, दूसरा कोई कारण तो वो समझ लेना उसका नाम है अकाम निर्जरा और यह अकाम निर्जरा हर संसारी जीव हमेशा करता रहता है। आप कहीं बन्धन में पड़ गये, आप कहीं ट्रैफिक में फँस गये, किसी स्थान पर उलझ गये, आपको मानलो, उस दिन भूखा रहना पड़ गया, प्यासा रहना पड़ गया तो उस दिन कुछ नहीं मिला। अनशन नहीं कहलायेगा आपका कि आपने एक दिन उपवास कर लिया। मानलो उस दिन आपने कुछ खाया ही नहीं, मिला ही नहीं

किसी कारणवश अपनी इच्छाओं को रोकना निर्जरा है।

आपको दिनभर और आप यह सोच रहे हो बस, अब मिला कि अब मिला, अब पहुँचे अब मिल जायेगा, अब मिल जायेगा और ऐसे करते-करते आपका पूरा दिन निकल जायेगा। रात हो गई और रात में आपके भोजन करने का त्याग है और दिन में आपको भोजन मिला नहीं। अब बताओ क्या करोगे? आपके अन्दर वह निर्जरा तो हुई कर्म की, लेकिन वह निर्जरा कहलायेगाी अकाम निर्जरा क्योंकि आपने अपनी इच्छा के साथ में निर्जरा नहीं की। इच्छा के साथ निर्जरा तब हो जाती अगर उस ट्रैफिक में या किसी स्थान पर फँस करके उस समय पर संकल्प कर लेते। चार घन्टे के लिये मेरे आहार का त्याग, जब तक घर नहीं पहुँच जायें तब तक के लिए मेरे आहार का त्याग। मुझे अपने घर पहुँच करके भोजन न मिले, थाली सामने न आ जाये, तब तक के लिए मेरा त्याग। अगर आप ऐसा कर लेते तो आपके लिए सकाम निर्जरा होती, अविपाक निर्जरा होती और वो कर्म की ऐसी निर्जरा होती कि जो कर्म आपको आगे दुख देने वाला था वो कर्म आपके लिए पहले ही झड़ जाता। आगे कभी आपके साथ में वो चीज बनती ही नहीं कि ऐसी परिस्थितियाँ फिर बने कि हमें फिर परेशान होना पड़े, फिर हमारे सामने अन्तराय कर्म आये और हमें ना मिले। यह क्यों होता है क्योंकि जिस समय पर हमें समर्थता रहती है करने की, उस समय पर हम नहीं करते हैं तो हमारे सामने यह कर्म आते हैं और उन कर्मों के फल हमें इस ढंग से भोगने पडते हैं।

आचार्य कहते हैं कि अकाम निर्जरा तो कई बार कर चुके हो अब सकाम निर्जरा करो, माने इच्छा के साथ निर्जरा करो, अपनी इच्छा बनाओ निर्जरा करने की, कर्मों से बचने की, थोड़ा सा कर्मों से अलग होने की और जो कर्म अपने को दुख दे रहा हो, उस कर्म को हम पहले ही छोड़ सकें, ऐसा करने की। जब तक आदमी स्वस्थ रहता है तब तक आदमी हर चीज खाता है, हर तरह के पेय पदार्थों को पीता है और उसकी एक स्थिति यह बनती कि वह खाने पीने के बाद में जब उसका शरीर बिगड़ने लग जाता है फिर उसके लिए खाना पीना एक मजबूरी बन जाता है और वह खा भी नहीं पाता। लेकिन उसकी इच्छा नहीं मरती है, इच्छा उसकी बनी रहती है। यह अगर हम ज्ञान रखें कि यह सभी चीजें हमने अनेक बार खाई हैं, पी हैं तो आपके अन्दर जब थोड़ा सा मोह कम होगा तो आप अनर्गल चीजें जो बहुत सारी खाते हैं, पीते हैं उनसे आप बच जायेंगे और कोई प्रयोजन नहीं है। बहुत सारी ऐसी चीजें हैं जो हमारे लिए नुकसान करने वाली भी हैं लेकिन फिर भी हम खाते हैं क्योंकि हमारे मोह के कारण से हमें उन चीजों में रस आता है। कितनी ही ऐसी चीजें होती हैं जो आपको ज्ञात होगी कि आपने उनको खाया, आपके पेट में दर्द हुआ, आपके पेट में परेशानी हुई लेकिन फिर भी आप उन्हें खाना छोड़ नहीं पाते हो। उसके लिए आचार्य कह रहे हैं 'मोहात्'। यह हमारा मोह है। बस, इसी का नाम मोह है जिससे हमें परेशानी हो जो हमें अहितकारी दिखाई दे और फिर भी हम उसको न छोड़ पायें, समझ लेना, हमारा मोह हमारे आगे-आगे काम कर रहा है और जब मोह हमारे साथ चलेगा तो हमारी बुद्धि, हमारा विवेक कोई काम नहीं करेगा

संकल्प करके इच्छाओं को रोकना सकाम निर्जरा है।

क्योंकि मोह काम कर रहा है। मोह हटेगा तो हमारी बुद्धि और विवेक से फिर सही काम होगा। ऐसे आपको कितने ही लोग मिलेंगे बुढापे तक, वृद्धावस्था आने तक खाने पीने का मोह नहीं छोड़ पाते हैं, यहाँ तक कि वह बीमार पड़े होंगे, खुद अपने शरीर की क्रियायें भी अपने से करने में असमर्थ होंगे लेकिन फिर भी उनके लिए मन चलता है कि चाट पकोड़ी कोई लाकर दे दे, खिला दें, बस उनको घर में अगर कोई बन रही हो चाट पकोड़ी और उनको सुगंध आ जाये, बड़ी मुश्किल हो जाती है क्योंकि घर में तो बनेगी, बच्चे हैं, बड़े है, सब हैं और उसी घर में बूढ़े भी रह रहे हैं। अब वो सब रहने के बाद, सूँघने के बाद, उसकी सुगंध लेने के बाद भी मन में उस समय पर इच्छा को रोकना तभी हो सकता है जब उस वृद्ध आत्मा के अन्दर यह भाव हो कि हमारा इस चीज का त्याग है और त्याग होता नहीं है। त्याग का यह बहुत बड़ा फल होता है कि संकल्प लेने के बाद में आपके अन्दर कर्म की निर्जरा होगी। संकल्प लेने के बाद में आपकी नाक सुगंधित हो जायेगी लेकिन वो पदार्थ मुँह से ग्रहण करने का भाव नहीं आयेगा क्योंकि हमारा संकल्प है, यह संकल्प शक्ति कहलाती है। यह शक्ति हमें मोहित नहीं होने देती है। लोग कहते हैं जब हमारा मन आयेगा हम कर लेगें हम उन चीजों को छोड़ देगें। आप कभी नहीं छोड़ पाओगे।

संकल्प शक्ति बढ़ायें :

आचार्यों ने कहा– अभिसन्धिकृता विरतिः। जो विरति होती है संधि पूर्वक, संकल्प पूर्वक होती है। आत्मा को संकल्प की शक्ति मिलती है तो हम मोह को जीत पाते हैं और जिनके लिए संकल्प शक्ति की कमजोरी रहती है वो कभी भी मोह को जीत नहीं पाते हैं। मोह को नहीं जीतोगे तो वो मोह आपको परेशान करेगा, एक दिन बहुत परेशान करेगा। हर व्यक्ति का बुढापा आने वाला है और बुढ़ापे में रोगो का आक्रमण सबसे पहले होता है। अगर मोह को आप अपने ही वश में नहीं कर पाओगे तो आपको आपका मोह परेशान जरूर करेगा। ऐसे-ऐसे लोग देखता हूँ, सुनता हूँ जिनकी किडनी खराब हो गई, लीवर खराब हो गया है, हर आठ दिन के बाद में डाइलेसिस कराने के लिए जा रहे हैं। मैं आपको जीवन्त घटना बता रहा हूँ, नाम नहीं बताऊँगा लेकिन सत्य घटना बता रहा हूँ। हर आठ दिन में डाइलेसिस के लिए जाना पड़ रहा है, यही आस-पास की बात बता रहा हूँ। कोटा जाते हैं। डॉक्टर ने कहा है, आपके लिए मक्का नहीं खाना, डायबीटिज है, किडनी खराब है। डॉक्टर ने कहा है- आपको केवल 25 ग्राम से 50 ग्राम के बीच में ही फल खाना है, इससे ज्यादा नहीं खाना। एक एक चीज की डॉक्टर ने क्वान्टिटी बना कर रखी, थोड़ा सा भी एक्सचेंज होगा तो आपके शरीर के सिस्टम बिगड़ने लगेंगे। आपके शरीर की एक्ससेन्स बिगड़ने लगेंगे और उसमें अनेक प्रकार के फॉल्ट और आने लगेंगे। लेकिन मन है कि मानता नहीं। अब इसको कौन मनाये? इसको मनाने के लिए तो आदमी को स्वयं अपनी क्षमता से पहले ही ऐसी संकल्प शक्ति से गुजरना पड़ता है कि हम अगर संकल्पित हों, हमें हमारा जीवन सुरक्षित चलता हुआ दिखाई दे

रहा है। हर आठ दिन के बाद में खून बदलना पड रहा है, डाइलिसिस करनी पड़ रही है, उसके अन्दर सब प्योरिफिकेन्स करने पड रहे हैं लेकिन उसके बाद भी मन करता है कि थोड़ा सा और खा लें, मक्का सीधी-सीधी नहीं खाते, पॉपकार्न खालो। अब पॉपकार्न और मक्का कोई अलग-अलग चीज है क्या? है तो फल, चीज वही फल के लिए कहा गया है कि बस इतना ही खाना 25 ग्राम, 30 ग्राम। जब सामने आ जाता है- आधा पीस और आधा पीस और ऐसा करते करते पूरा हो जाता है। ऐसी स्थिति में इस आत्मा के लिए कौन सहयोगी है? यह बताओ? ठीक है आपके पास में पैसा है, भरपूर पैसा है और उस पैसे के कारण से आपको लग रहा है कि अपना काम भी ऐसे डाइलिसिस से चलता रहेगा, पैसा देते रहो, डाइलिसिस कराते रहो। लेकिन कब तक? अगर आप अपने मन पर कन्ट्रोल नहीं करेंगे, अपनी संकल्प शक्ति को नहीं बढ़ायेंगे तो आपका शरीर जो एक वर्ष के भीतर मिटेगा, वो शरीर यह इससे पहले ही मिट जायेगा। यह यहाँ पर परिणाम बताऐ जाते हैं, मोह को जीतने के यह फायदे होते हैं। इसलिए जो जैन श्रावक होता है, जो गृहस्थ होता है, वह हर समय पर थोड़ा-थोड़ा अपने अन्दर तप त्याग करके अपने इस मोह को जीतता है। यह मोह हमें आगे परेशान करने वाला है, यह परेशानी सबके सामने आने वाली है और इस परेशानी से बचने के लिए अगर आपका मन पहले से तैयार नहीं होगा तो अचानक कोई काम होता ही नहीं है। आपकी उम्र मानलो 80 वर्ष हो रही है और 80 वर्ष तक आपने अपने मन से मनमानी की है। आप उस रु ग्ण अवस्था में अगर उसको समझाने की कोशिश करें, बहुत कम चान्स है कि वो मन उस समय समझ पाये। 8 वर्ष का बिगड़ा हुआ बेटा जब बड़ा हो जाता है तो फिर वह बाद में जिंदगी भर नहीं समझता। आपका मन तो 80 वर्ष का हो गया बिगड़ते-बिगड़ते, वैसे अनादि से बिगड़ा है लेकिन इस पर्याय की अपेक्षा तो कम से कम वह 80 वर्ष 60 वर्ष से निरन्तर बिगड़ा हुआ है क्योंकि आपने उसको कभी भी कन्ट्रोल किया ही नहीं है। जब आप बुढ़ापे में उसको कन्ट्रोल करने का प्रयास करेंगे तो वो इसलिए नहीं होगा कि आपका शरीर उस समय पर शिथिल हो जायेगा। अभी शरीर चुस्त है, मन को चुस्त बना सकते हो और जब शरीर शिथिल हो जायेगा तो शरीर भी मन से जुड़ा हुआ रहता है, मन भी इतना शिथिल हो जायेगा कि आप अपने मन को फिर संभाल नहीं पाओगे क्योंकि शरीर में इतना ढीलापन आ जायेगा। आप सोचोगे कुछ, सोचने में आयेगा कुछ, आपका मन ही नहीं होगा अच्छा सोचने का, अच्छा भाव करने का और आप भीतर से इतने परेशान होंगे कि आप चाहोगे भी तो अच्छे भाव नहीं कर पाओगे। मन अब इतना कमजोर हो गया कि वह आपके अन्दर अच्छे भाव पैदा ही नहीं होने देता। इसलिए बुढ़ापे की दशा बड़ी दयनीय दशा बनती है। सुन रहे हो जीवात्माओं! जिनको अभी बहुत ज्यादा बुढ़ापा नहीं आया वो थोड़ा सा एलर्ट हो, इन ज्ञान को सुनने के बाद में इनको थोड़ा सा सम्भालें और मन जो अनेक प्रकार से चुसकियाँ लेने का भाव करता है उसको थोड़ा सा संभाल करके, कम करें। जब आपके अन्दर

आदत पड़ जायेगी तो आप जीवन के अन्त तक वह चाय भी नहीं छोड़ पायेंगे, जो चाय आपके शरीर को नुकसान पहुँचा रही है। अब बड़ी-बड़ी बातें तो छोड़ो और चीजें तो छोड़ो, जिस चाय से आपके शरीर को कोई लाभ नहीं मिलता, आपकी भूख मरती है, शरीर का खून जलता है और शरीर में कोई फायदे का एक भी लक्षण नहीं है, उस चाय को भी अगर आपके पीने की आदत पड़ी है तो आपके अन्दर मोह पड़ा है। मैंने देखा है, 80 वर्ष के वृद्ध भी उस चाय के बिना जी नहीं पाते हैं और उन्हें चाय अवश्य चाहिए । जिस समय पर चाहिए, उस समय पर चाहिए। अब बताओ, कहाँ आप जैन रहे हैं ? जब तक आप यह छोटे छोटे से मोह नहीं जीतोगे, आपका बुढ़ापा सुरक्षित कैसे बनेगा? यह आपको किन्हीं चीजों से दूर नहीं किया जा रहा है, यह आपके भविष्य की सुरक्षा की जा रही है, आपके बुढ़ापे को निरोग बनाने का प्रयास किया जा रहा है। आपका बुढ़ापा सुरक्षित रूप से गुजरे इसलिए आपको पहले से थोड़ी सी सुरक्षा रखनी पड़ेगी और यह सुरक्षा इन भावनाओं के माध्यम से आयेगी। अरे! मैंने हर चीज बहुत बार खायी है, बहुत बार भोगी है, इस चीज के पीछे कब तक आसक्त होता रहूँगा। मन को थोड़ा सा उस समय कंट्रोल करना, मन को ही कहना और किसी से मत कहना, रे मन! कितनी बार तूने कौनसी चीजें नहीं खाई और तुझे अगर खाने की इच्छा हो रही है तो चल आज तुझे फिर खिलाता हूँ। मन फिर अगर नहीं माने, एक दिन जाना हलवाई की दुकान पर। एक दिन कहीं शॉपिंग करने किसी मॉल में नहीं जाना, एक दिन हलवाई की दुकान पर जाना और बैठ जाना। जितना पैसा आप दूसरी चीजों को खरीदने में लगाओ उतना पैसा आप उस दिन खाने में लगा देना। यह लड्डू लाओ, यह बालूशाही लाओ, यह रसगुल्ला लाओ, आज इस मन को खिला ही दो। ढंग से एक बार खिलादो। इसको और खिलाने के बाद में फिर जब शांत बैठ जाओ तब इससे पूछना बता, किस किस चीज में कितना-कितना रस आया? किस-किस चीज में तुझे कितनी देर कितना-कितना अच्छा लगा ? आप देखोगे, अगर आप अपने मन से पूछोगे तो आप कहने लगोगे कि नहीं एक दो लड्डू के खाने के बाद तो इच्छा ही मर गई थी। हम जबरदस्ती कुछ दूसरी चीजें खाते रहे लेकिन वास्तव में देखा जाये तो वे दो लड्डू, चार लड्डू खाने के बाद में इच्छा ही मर गई थी। जब मन के अन्दर यह परिणति आप, अपने ही मन से सँभालोगे, कहोगे तो आप उस मन से कह सकोगे कि ऐसी मन की पूर्ति हमने तेरे लिए अनेक बार की है और तुझको कभी भी तृप्ति नहीं हुई है। इसलिए अब तो इन चीजों में कमी ले आ और इन चीजों में मोहित मत हो। यह करना आपको पड़ेगा, मन को समझाना आपको पड़ेगा। जब आप अपने मन को इस ढंग से समझायेंगे तो अपने आप, आपका मन कहेगा- 'हाँ', यह चीजें तो कई बार हो चुकी हैं, अपने ही इसी जन्म में हमने कई बार हर चीज को ले लिया, खा लिया है लेकिन कभी भी कोई चीजों से ज्यादा सुख मिलता नहीं है। बस, एक बार मन जहाँ समझा वहीं पर आपके लिए उस मन को जीतने के संकल्प शक्ति बढ़ गई और वहीं से आपका मन आपके काबू में आ गया। आपने मोह

इच्छाओं पर कंट्रोल पाये बिना आत्मज्ञान और आत्मध्यान की परिणति नहीं आयेगी।

को जीत लिया। आपका काम बन गया। यह चीजें हर किसी के लिए बहुत उपयोगी है और आप अपनी छोटी-छोटी आदतों को देखो। एक दम से कोई भी चीज को न छोड़ो, न छोड़ पाओ तो कोई बात नहीं, कम से कम ऐसा करो। उस मन को समझने के लिए और समझाने के लिए कि देख, रोजाना मैं तुझे सुबह सुपारी, पान खिलाता हूँ, रोजाना मैं तुझे अच्छे सुगंधित पदार्थ खिलाता हूँ। एक प्रयोग करके देखता हूँ, प्रेक्टिकल करके मैं देखता हूँ, तीन दिन के लिए तुझे कुछ नहीं खिलाऊँगा। यह चीजें जिनमें हमारी आदत पड़ी है, जिनके बिना हमारा चलता नहीं है कि यह चीजें हमारे लिए अवश्य मिलनी ही चाहिए, आप उन पर अगर कन्ट्रोल पाना चाहते हैं तो अपने मन को समझाओ और समझा कर के एक दिन, दो दिन, तीन दिन तक उसको ले जाओ। जब आपकी संकल्प शक्ति धीरे-धीरे बढ़ती चली जायेगी तो आपको लगने लगेगा कि जब हम तीन दिन गुजार सकते हैं तो तीस दिन भी गुजार सकते हैं। यह धीरे-धीरे शरीर आपका एडजस्ट होता चला जायेगा और यह करने के बिना आपके मन में कभी भी उस मोह को जीतने की बात आयेगी नहीं। लोग छोटी सी चाय भी छोड़ नहीं पा रहे हैं और बड़ी-बड़ी बातें तो छोड़ो। तम्बाखू, सुपारी और न जाने कितनी ऐसी चीजें जिनसे अपने शरीर को नुकसान पहुँच रहा है। केवल पान हो, चूना हो फिर भी ठीक है लेकिन उसमें जो अनेक प्रकार के आइटम मिलाये जाते हैं- गुलकन्द और कत्था, उसके बिना टेस्ट नहीं आता, वो सब अशुद्ध होता है और उसके बिना आपको पान खाने का कोई स्वाद नहीं आयेगा। कच्चा पान खा के देख लें किसी दिन केवल शुद्ध चूना लगा के देख लें, तो इसका मतलब है कि हमारे लिए यह चीजें अशुद्ध रूप में भी ग्रहण करने में आ रही हैं और यह चीजें हमें मोहित भी कर रही हैं। इन चीजों से हमारे लिए परेशानी भी हो रही है, शरीर में भी नुकसान हो रहा है लेकिन फिर भी मोह के कारण से नहीं छोड़ पा रहे हैं। बस, इसी का नाम हमारी अज्ञता है। जो इनको समझ कर के इनके मोह को कम करेगा तो वह विज्ञ कहलाएगा। वो अध्यात्म की भाषा में इंटेलिजेन्ट कहलाएगा और जो अज्ञ होगा वो कहेगा- महाराज! मन है कि मानता नहीं। यह भूल लोगों की भाषा है, यह अज्ञ लोगों की भाषा है। इसलिए अपने को अब विज्ञ बनना है कि आचार्य कह रहे हैं-आप पढ़ते-2 विज्ञ बन चुके होंगे। ऐसी उन्हें आशा है। इसलिए कह रहे हैं कि विज्ञ होगा तो उसके अन्दर 'स्पृहा'। स्पृहा माने इच्छा। इस प्रकार के पदार्थों को ग्रहण करने की इच्छा नहीं रहेगी और वह अपनी इच्छा पर कन्ट्रोल करके उससे अकाम निर्जरा नहीं करेगा, वह सकाम निर्जरा करेगा। संकल्प हो गया तो वह सकाम निर्जरा कहलायेगी और संकल्प के बिना छोड़ रहा है तो अकाम निर्जरा कहलायेगी। जो विज्ञ होगा वो सकाम निर्जरा करेगा, अकाम निर्जरा नहीं करेगा। इसलिए जो विज्ञ हो रहे हों तो उनको अपने ही भावों को परखना है कि अपने अन्दर इन चीजों का मोह धीरे-2 कम करें। मोह कम किये बिना आत्मा के ध्यान की परिणति बनेगी नहीं। हम आपसे कहें कि आप आत्मा का ध्यान करो लेकिन आप जैसे ही ध्यान करने बैठोगे, आपका

मोह उस चीज से चिपकेगा जिसके अन्दर आपका इन्ट्रेस्ट पड़ा हुआ है, आपको वो चीज याद आयेगी। थोड़ी देर के लिए आपको सामने बिठा के करा भी देगें तो आप हमारे सामने एक मिनट बैठ भी जाओगे। आपको लगेगा कि कुछ मिनट महाराज के सामने ध्यान कर लेते हैं लेकिन आप अगर अकेले बैठोगे तो आप ध्यान नहीं कर पाओगे। आप देख लेना। पाँच मिनट हम आपको ध्यान करा सकते हैं लेकिन 5 मिनट आप अकेले कहीं ध्यान करके देख लेना, आप अकेले नहीं कर पाओगे। उसका भी यही कारण है। आपका मन बच्चे की तरह है। बच्चा अगर सामने बैठा हो किसी बड़े के तो थोड़ी देर के लिए वह सकपकाता है, डर जाता है। वह अपनी ही प्रवृत्तियाँ नहीं करता है क्योंकि उसको मालूम है बड़े बैठे हैं और जब वही बच्चा अकेला छोड़ दिया जाये तो अपनी मस्ती में घूमता है। ऐसा ही आपका मन है। जब आप हमारे सामने बैठते हो तो आपका वह मन रूपी बच्चा थोड़ी देर के लिए सकपका जाता है, मैं जैसा कहता हूँ वैसा कर लेता है और जब आप अकेले करते हो तो आपका बच्चा मानता नहीं है, फिर वो इच्छा से जहाँ जाना होता है वहाँ जाता है। मोह के कारण से हमारे अन्दर ऐसे-2 संस्कार पड़ते चले जाते हैं कि हम उन्हीं-2 इच्छाओं में बार-बार जुड़ते चले जाते हैं और इन इच्छाओं पर कन्ट्रोल पाये बिना आपके अन्दर आत्मज्ञान और आत्मध्यान की परिणति नहीं आ पायेगी। इसलिए आचार्य कहते हैं कि थोड़ा-2 सा अपनी इच्छाओं को परखो, उन पर कन्ट्रोल करो। ये दशलक्षण धर्म इत्यादि इसलिए आते हैं कि कम से कम साल भर तक तुमने जो इच्छायें बढ़ा ली हैं, आउट ऑफ कन्ट्रोल हो गयी हैं, जो उसका रोटेशन बिगड़ गया है वो सब फिर दस दिनों के लिए थोड़ा सा कन्ट्रोल में आ जाये और वह बैलेन्स बन जाये ताकि आपके आने वाले दिनों के लिए फायदा हो जाये। जीवनशैली हर आदमी की बिगड़ चुकी है, बहुत ज्यादा बिगड़ चुकी है। यह धर्म हमारी जीवनशैली को पुनः सुधारने के लिए एक बहुत बड़ा तोहफा है। गिफ्ट आप देते हो ना ; अपनी जीवनशैली को सुधारने के लिए। कोई हमें जो तोहफा मिलेगा, वो इसी प्रकार से इन दिनों में धर्म करने से मिलेगा। इनमें भी अगर हम अपने आपको बचाते रहे तो समझ लेना कि जिंदगी बिगड़ती चली जा रही है। हमारा मन हमारे कन्ट्रोल में है ही नहीं और अगर अपना मन कन्ट्रोल में नहीं रहेगा तो आपको परेशानी के अलावा कुछ हाथ लगने वाला नहीं है।

आचार्य कह रहे हैं थोड़ी 'स्पृहा', स्पृहा यानि होती है हमारे अन्दर की डिजायरनेस या इच्छायें। इनको थोड़ा सा कम करो, कंट्रोल में करो और अपने मोह को थोड़ा सा जीतने का प्रयास करो। जिस चीज को आप जीत नहीं पा रहे हो तो उसको जीतो। जो लोग छोड़ नहीं पाते, प्रयास करें, मन को समझाएँ। तम्बाखू छूट जायेगा, नहीं छूट रहा हो तो अपनों से, बड़ों से जाकर के कहें हमें कोई उपाय बता दें, हम उसको छोड़ना चाहते हैं। अगर आप छोड़ने का किसी से उपाय पूछेंगे तो अपने मन से कहेंगे। आपके अन्दर कहते-कहते ताकत आ जायेगी और कोई आपके सामने

धर्म हमारे इस जीवन की, अगले भव और हमारी आत्मा की सुरक्षा करता है।

अगर थोड़ा सा सुझाव बता देगा, आपने उसको फोलो कर लिया तो चीज आपकी बिल्कुल छूट जाएगी। ऐसे ही पान है, चाय है, ये ऐसे शौक हैं कि आगे चलकर के अपने लिए परेशानी का कारण बनने वाले हैं, उन पर हम पहले से थोड़ा कंट्रोल कर लें। चाय के अलावा ऐसी भी बहुत सी चीजें होती हैं, जो द्विदल के रूप में कहलाती हैं। अनेक प्रकार के जीव उसमें उत्पन्न होते हैं, शरीर में रोग का कारण बनते हैं। देखो, कभी भी आप अगर थोड़ा सा आयुर्वेद के बारे में जानोगे तो आयुर्वेद विज्ञान कहता है कि कभी भी दही बड़ा तो खाना ही नहीं चाहिए। अपने धर्म इसे द्विदल के रूप में कहते हैं, जिसे नहीं खाना चाहिए क्योंकि द्विदल माने बेसन या दाल, उसमें आपने छाछ मिला दी, दही मिला दिया और वो आपकी जीभ के सम्पर्क में आयी, लार रस से मिली तो उसमें जीवों की उत्पत्ति तत्क्षण हुई। वह आपके लिए नुकसान करेगी। आयुर्वेद कहता है कि अगर आप इस तरह के संयोजना वाली चीजें खाते हो तो आपको चर्म रोग जल्दी होने की सम्भावना है। जो लोगों को अनेक प्रकार के चर्म रोग होते हैं, अनेक प्रकार के कहीं भी, कभी भी दाग आदि उत्पन्न हो जाते हैं। उनके पीछे इसी प्रकार की संयोजना का खान-पान भी कारण है। जो भोजन हमारे पेट में जाकर के अनेक प्रकार की बीमारियाँ उत्पन्न करते हैं अगर हम उनको धर्म के रूप में कहते हैं तो आपको ऐसा लगता है कि हमसे धर्म कराया जा रहा है। अगर आपसे कोई डॉक्टर कहे कि दही और बड़ा आदि यह चीजें मिलने से आपके शरीर में ऐसे तत्त्व बन सकते हैं जो आपकी स्किन पर इफेक्ट कर सकते हैं, आपके लिए चर्म रोग पैदा कर सकते हैं तो आप बचने का भाव करोगे। चलो, कैसे ही सही, आप बचो तो सही। आप अपने शरीर को रक्षित करो, सुरक्षित करो और अगर आपके मन में थोड़ी सी धर्म की भावना हो तो उस चीज को हम उस रूप में संकल्प के साथ कर सकते हैं कि हम तो यह चीज अपने कर्म की निर्जरा करने के लिए छोड़ते हैं, उस डॉक्टर के कहने के डर से नहीं छोड़ रहे हैं। वह आपके लिए बहुत बड़ा धर्म बन जायेगा, कर्म की निर्जरा का कारण बन जायेगा और अगर आप डॉक्टर के कहने से बचोगे तो आपके शरीर की तो सुरक्षा हो जाएगी लेकिन आत्मा की सुरक्षा नहीं हो पायेगी। कैसे भी करो लेकिन आपको ये चीजें करने के लिए सोचना ही चाहिए। जो चीजें अपने लिए नुकसान पहुँचाती हैं, उन चीजों से हम बचें, संकल्पित होकर के बचें, संकल्प लेकर के बचें। संकल्प शक्ति से हम उन चीजों को कभी भी ग्रहण करने के भाव नहीं करेंगे जिससे कि हमारा बुढ़ापा अच्छा बनेगा और मरते-मरते हमें कोई ऐसी चीजें याद नहीं रहेंगी, इच्छाएँ ऐसी नहीं रहेंगी कि हमें मरने के बाद में किसी फल में जाकर के कीड़ा बनना पड़े। ऐसा भी होता है जिनको किसी भी पदार्थ में ज्यादा आसक्ति होती है ना, उसका अन्तिम परिणाम क्या होता है? वह उसी आसक्ति के साथ अगर मरा तो उसी फल के रूप में बनता है और उस फल में जाकर के कीड़ा भी बन सकता है। जिन-2 फलों में जो कीड़े उत्पन्न होते हैं, वो ऐसे

ही जीव जाकर के वहाँ पर उत्पन्न हो जाते हैं क्योंकि आपकी लालसा उसी में रही है तो आपको उसका फल उसी रूप में मिलेगा। आप समझो, इसका कितना बड़ा अपने को फल मिल रहा है। यह धर्म हमेशा सुरक्षा कराता है, इसलिए कोई भी बात जब आप धर्म की सुने तो उसको इस रूप में ही ग्रहण करें। यह हमारे लिए बड़ी हितकारी बात है। इससे हमारे जीवन की सुरक्षा होने वाली है। केवल यह इस जीवन की नहीं, अगले जीवन की भी सुरक्षा कराता है। मरने के बाद धर्म के अलावा आपकी चिन्ता करने वाला नहीं है। धर्म करोगे तो मरने के बाद भी अच्छी गति मिलेगी, अच्छे परिणाम मिलेंगे, अच्छी पर्याय मिलेगी और अगर आप धर्म नहीं करोगे तो मरने तक सब आपके आसपास घूमेंगे। मरने के बाद तो आपकी गति आपके परिणामों के अनुसार ही होगी। इसलिए जो धर्म एक साइन्स है उसको साइन्स के रूप में समझने का प्रयास करो। उस साइन्स का जब हम पालन करते हैं तो, हमारे मन, वचन, काय आत्मा के परिणाम सभी कुछ उससे इफेक्टेड होते हैं, शुद्ध होते हैं और उससे हमारे अन्दर कर्मों की निर्जरा, संवर आदि होते हैं। इसलिए यह उपाय बताया है, मोह को छोड़ने की भावना करना और भावना करके मन को समझाना। मन आपका अगर निरन्तर भावना करता रहेगा तो वह एक दिन समझ लेगा और उन चीजों को छोड़ देगा जिन चीजों से वह आपको परेशान करता रहा है। इसलिए यह भावनाएँ हैं–

''भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य, मम विज्ञस्य का स्पृहा॥''

कितनी बड़ी उपमा दे रहे हैं आज आचार्य महाराज। उच्छिष्ट का मतलब होता है झूठन। ऐसी कोई चीज नहीं है जिसको हमने नये रूप में ग्रहण करने का मन बनाया हो तो वो अब हर चीज हमारे लिए झूठन बन गई है, अब हर चीज अपने लिए झूठन के रूप में सामने आ रही है या तो अपने द्वारा छोड़ी गई या किसी के द्वारा छोड़ी हुई। जितने भी पुद्गल परमाणु अपने को भोग करने में आते हैं, वे सब अपने लिए एक उच्छिष्ट का रूप हैं, झूठन के समान है इसलिए जो बुद्धिमान है, विज्ञ है उनकी भोगों के विषय में इच्छा शांत हो जाती है। इच्छा को मारना नहीं, इच्छा को शांत कर देना है। शांत करने का मतलब है- धुँआ उठता ही नहीं और मार देने का मतलब है- धुँए को आपने दबा दिया क्योंकि अग्नि भीतर दबी है। शांत कर देने का मतलब अग्नि को बुझा देना बस, फिर कभी भी वह अग्नि जले नहीं, धुँआ उठे नहीं। आपका मन जब इस रूप में शांत होगा फिर आप देखो, आपकी आत्मा में आनन्द-2 भरा है। आप कहते रहते हो, वो अपने आप आपको महसूस होने में आने लगेगा।

इच्छाओं को मारना नहीं, शांत करना है। अग्नि को बुझाना है, धुँआ उठने नहीं देना।

कर्मबन्ध क्यों?

31

कर्म कर्म हिताबन्धि जीवो जीवहितस्पृहः।
स्वस्वप्रभावभूयस्त्वे स्वार्थं को वा न वाञ्छति॥

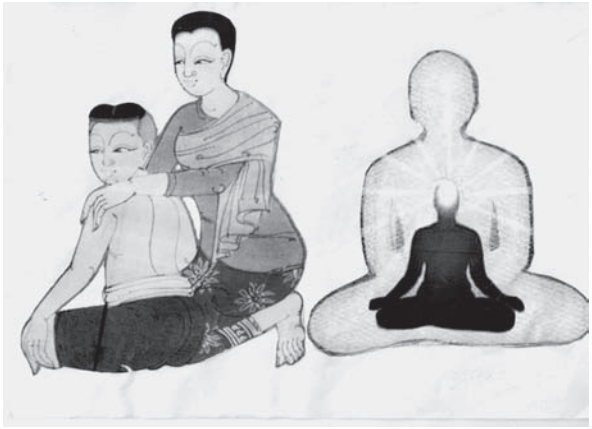

अन्वयार्थ—(कर्म) कर्म **(कर्महिताबन्धि)** अपने हित रूप साथी कर्मों को ही बाँधता है तथा **(जीवः)** आत्मा **(जीवहितस्पृहः)** अपने आत्मा के हित की इच्छा करता है **(स्वस्वप्रभावभूयस्त्वे)** अपने-अपने शक्तिशाली प्रभाव के होने पर **(को वा स्वार्थं)** कौन-सा व्यक्ति अपना हित **(न वाञ्छति)** नहीं चाहता?

- **किसका प्रभाव**
- **द्वंद्व**
- **मौत का सामान**

सभी जीवों के अंदर थोड़ा सा आत्महित का भाव भी आता किन्तु उसके साथ-साथ कर्म के उदय ऐसे चलते हैं कि वह सब कुछ देखकर के भी, जानकर के भी कई बार अपना आत्महित नहीं कर पाता।

इस कारिका में आचार्य कहते हैं कि कर्म भी जीव के साथ रहकर के इतना चैतन्य हो गया है कि वह कर्म भी अपने हित की बात सोचता है। कर्म कर्म को ही बढ़ाने की बात करेगा और कर्म जीव को अपने प्रभाव में लाने की ही निरंतर तैयारी में रहता है। जब जीव अपना हित करना प्रारंभ कर देता है तो वह जीव उस कर्म को दबाने की सोचता है।

जीव और कर्म ये दो चीजें आप सभी के अंदर विद्यमान हैं। आप सब यहाँ शरीर के अंदर अपने जीवत्व के साथ बैठे हैं और उस जीवत्व के साथ-साथ आपके कर्म भी आपके अंदर बैठे हैं और वे कर्म भी आपके साथ-साथ फल भी दे रहे हैं और उस कर्म का फल भी आप भोग रहे हो। आपको पता भले ही न हो क्योंकि एक प्रवाह चलता है कर्मों का। उस प्रवाह में कभी भी इस जीव को ये ध्यान आ पाए कि मैं कर्मों से रहित हूँ या मेरा जीवत्व इन कर्मों के कारण से हमेशा से पिटता आ रहा है, ये उसके ज्ञान में आ जाना ही एक बहुत बड़ा काम होता है, एक बहुत बड़ी उपलब्धि होती है। ये कब किसके लिए मिलेगा, कहा नहीं जा सकता।

एक इंद्रीय, दो इंद्रीय, तीन इंद्रीय, चार इंद्रीय व असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यायों में तो ये कभी संभव ही नहीं। संसार में तमाम पशु हैं, पक्षी हैं, मनुष्य हैं, अनेक विदेशी लोग हैं, उनके लिए भी यह संभव नहीं। कुछ लोग ही ऐसे बचते हैं जिनके लिए ये पुरुषार्थ करने का, कुछ अपने जीव को और कर्म को समझने का एक मौका मिलता है। उसमें कुछ ही लोग होते हैं जो यह समझ पाते हैं कि जीव और कर्म का क्या स्वभाव है और जीव और कर्म के अंदर किस तरह का एक दूसरे का प्रभाव चला करता है।

आप सोचते हो, जैन लोग दुनियाँ में बहुत थोड़े हैं। पर, आपको ये नहीं मालूम कि बहुत थोड़े लोग ही दुनियाँ में अच्छे काम करने वाले होते हैं। आप ये सोचते हैं कि जैन लोगों का प्रभाव दुनियाँ में बहुत कम है, पर आपको ये नहीं मालूम कि **जैन लोगों का जितना प्रभाव अपने आप पर रहता है उतना दुनियाँ में किसी भी संप्रदाय का नहीं रहता है।** अपने आप पर अपना प्रभाव आना, अपने आप के हित की बात करना, अपने हित में अपनी प्रवृत्ति करना; ये दुनियाँ में जैन के अलावा और कोई नहीं जानता।

सब लोगों को समझाया जाता है- दूसरों के लिए करो, यहाँ क्या समझाया जाता है, अपने लिए करो। थोड़ा उल्टा सा लगता है लेकिन जो चीज हमारे लिए दुर्लभ होती है वह चीज हमारे लिए कठिन भी होती है और जो चीज हमारे लिए कठिन है, अगर उस ओर हमारा मन लगने लग

अपने हित में अपनी प्रवृत्ति करना; यह दुनियाँ में जैन के अलावा और कोई नहीं जानता।

जाता है तो बस, वहीं से हमारे अंदर एक पुरुषार्थ जागृत होता है जिसे समीचीन पुरुषार्थ कहा जाता है। ये पुरुषार्थ करने का मौका, केवल इस मनुष्य पर्याय में मिलता है।

मनुष्यों में भी विदेशों में बहुत प्रकार के मनुष्य हैं उनको भी नहीं मिलता। इस भारत देश में रहने वाले मनुष्यों को ही मिलता है। और इस भारत देश में भी अनेक मनुष्य रह रहे हैं उनको भी नहीं मिलता; जो जिनवाणी को सुनते हैं, निर्ग्रंथ गुरु के उपदेश को सुनते हैं, उन्हीं को वह मौका मिलता है। ये मौका छोटा नहीं है अगर आप समझें कि आपके अंदर कर्म का प्रवाह चल रहा है और उस कर्म के प्रभाव को रोकने की आपके अंदर कोई भी भीतर से पुरुषार्थ की स्थिति नहीं है तो 'कर्म-कर्म हिताबंधि' कर्म अपने ही हित का बंध करता रहेगा और अपना संसार बढ़ाएगा। कर्म का भी अपना एक साम्राज्य है। कर्म अपने साम्राज्य को बढ़ाएगा। जीव का अपना साम्राज्य है। जीव अपने साम्राज्य को बढ़ाएगा लेकिन जीव को अभी पता नहीं है कि हमारा अपना कोई साम्राज्य है या नहीं। कर्म के साम्राज्य के प्रभाव में वह इतना उलझ जाता है, सोच नहीं पाता कि क्या हमारे हित में है। समझता तो है कि हम अच्छा कर रहे हैं लेकिन उसके साथ में अच्छा हो नहीं पाता।

रावण भी समझता था कि मैं बहुत अच्छा कर रहा हूँ। कभी उसने अपने लिए यह नहीं समझा कि मैंने कोई गलत काम कर दिया है। हमेशा उसने प्रजा की रक्षा भी की। जिनेन्द्र भगवान की आराधना करता था। हमेशा भगवान की स्तुति में मगन रहता था और सब नित्य प्रति कार्य, धर्मात्मा के जैसे कार्य होते हैं, उन्हीं तरीकों से सब कार्य करता रहता था लेकिन फिर भी कर्म के प्रभाव से बच नहीं पाया। जो उसने कर्म पिछले जन्म में कुछ ऐसे बाँधे हैं कि उनका फल उसे वे कर्म दे रहे हैं और उसे पता नहीं पड़ रहा है कि वह किस चंगुल में फँसता चला जा रहा है, इसी को कर्म का प्रभाव बोलते हैं। पता नहीं पड़ता है आदमी को। सोचता है कि मैं अच्छा कर रहा हूँ, अच्छा कर लिया है। कर्म उसके लिए ऐसी बुद्धि पैदा कर देते हैं कि जब देखता है कि मैं इस कर्म के प्रभाव में अब आ गया, तब तक तो उसके सामने बहुत देर हो चुकी होती है। ये समझ पाना भी बड़ा मुश्किल होता है कि जीव अपना काम कर रहा है कि कर्म अपना काम कर रहा है। रावण के लिए भी यह समझ नहीं आ पाई। बहुत विवेकी था, नीतिवान था, धर्मज्ञ था, शास्त्रज्ञ था, सब कुछ था वो। ऐसा मत समझना, जैसा आप उसे समझते हो, बहुत पंडित था वह और उसके लिए भी वह चीज समझ में नहीं आई कि कर्म उसको अपने प्रभाव में कब ले रहा है।

बात कहाँ से शुरू होती थी और कहाँ पर जाकर के इस बात ने अंत किया? जब उसकी बहन जंगल में वन में घूम रही थी तब उसकी इच्छा हो गई कि जो वन में घूम रहे थे वे राम और लक्ष्मण, ये मुझे अपना लें। किसका प्रभाव, किसके संबंध से किसके ऊपर पड़ता है। उस बहन की इच्छा

जो जिनवाणी को सुनें, निर्ग्रंथ गुरु के उपदेश को सुनें, उन्हीं को सच्चा मौका मिलता है।

हुई कि यह राम और लक्ष्मण मुझे अपना लें। राम लक्ष्मण ने जब उसको नहीं अपनाया तो उसे गुस्सा आया और घर पर रूठ कर के गई। आरोप लगाया कि इन्होंने मेरे साथ में गलत किया। रावण को गुस्सा आया, खरदूषण को गुस्सा आया और वो चल दिया उस जंगल में उनसे बदला लेने के लिए। लेकिन उस समय पर संयोग की बात, राम और लक्ष्मण उसको नहीं मिले, सीता उसको दिख गयी। सीता को उसने उठा लिया और लेकर के अपनी लंका में आ गया। जब लंका में आ गया, आने के बाद में उसे अभी तक भी समझ में नहीं आया कि मैं किस के प्रभाव में हूँ।

किसका प्रभाव :

''जीव जीव-हिताबंधी, कर्म कर्म हिताबंधि'' कर्म अपना हित कर रहा है कि जीव अपना हित कर रहा है। बस, वो Point समझना जरूरी होता है कि कहाँ पर कौन अपना प्रभाव डाल रहा है।

एक अबला को एक राजा उठा रहा है और उस पर मोहित हो गया; समझ नहीं पाया कि यह किसने क्या कर दिया? रावण ने कर दिया कि रावण के कर्मों ने कर दिया? थोड़ा समझने की कोशिश भी करना कि जीव कैसे-कैसे प्रभाव में आकर के कैसे-कैसे काम कर जाता है? ये जीव का अपना प्रभाव है कि कर्म का अपना प्रभाव है; जो जान रहा है कि एक अबला स्त्री है और उसके साथ में जबरदस्ती नहीं करना है। ये नियम भी उसने ले रखा था लेकिन फिर भी इतना मोहित हो गया कि उसको उठा ले आया। लेकिन जबरदस्ती नहीं की, उसे अपना नियम याद आ गया था। एक बार उसने नियम लिया था अनन्तवीर्य केवली से कि मैं अपने जीवन में किसी स्त्री के साथ में जबरदस्ती नहीं करूँगा, अगर वह चाहेगी तो ही उसके साथ रमण करूँगा, नहीं तो नहीं करूँगा। उस समय पर उसने अपना जीव का हित करने के लिए नियम लिया था और वह नियम भी उसके लिए रहा लेकिन कर्म ने अपना प्रभाव ऐसा डाला कि उसकी आंखों पर ऐसा मोह चढ़ गया कि वह अपने आप को रोक नहीं पाया। उसको उठा कर के अपनी लंका में ले आया।

ये किसका प्रभाव है? अब कर्म, कर्म का बंध करेगा, हित करेगा कि जीव, जीव का हित करेगा? यहीं से सब खेल बदलना शुरू हो जाता है। अभी तक जीव अपना हित कर रहा था अब उस जीव का जीव के माध्यम से हित नहीं हो रहा है अब कर्म का कर्म हित करेगा क्योंकि उस कर्म ने अपना प्रभाव डालना वहाँ से शुरू कर दिया और वही प्रभाव उसके लिए जीवन के अंत तक बना रहेगा; उससे वह अब छूट नहीं पायेगा। उसे कितनों ने नहीं समझाया? उसके पास रहने वाले जितने मंत्री थे उनने समझाया, उसको अपनी मंदोदरी पत्नी थी, वो पैर पकड़ पकड़ कर के, क्षमा मांग-मांग कर के, हर तरीके से उसको समझा रही है और उसको समझ में आ भी जाता है कि 'हाँ' मैंने कुछ गलत कर लिया है। मैंने सीता को अपने पास में रखकर के गलत कर लिया और देखो, ये सीता मुझे चाह भी नहीं रही हैं। अगर मैंने युक्ति करके राम को मार भी दिया तो

कर्म अपना हित कर रहा है कि जीव अपना हित कर रहा है।

इस सीता से मेरा क्या मतलब रहेगा, जो सीता मुझे चाह नहीं रही है। ये भी सोच रहा है और ये भी सोच रहा है कि इस सीता को अब हम कैसे उसके पास पहुँचायें? एक ही तरीका है, युद्ध कर लिया जाए। राम को जीत लिया जाए और फिर सीता को दे दिया जाये कि अब तुम अपनी सीता ले जाओ।

ये भी बुद्धि चल रही है और कर्म का प्रभाव भी चल रहा है। लेकिन जैसे ही उसकी बुद्धि इतनी पलटती है, उसी समय पर मन में आता है, बात तो सही है और उसी समय और उसके आस-पास के लोग समझते हैं कि देखो रावण को बात समझ में आने लगी और वो अपना एक दूत राम के पास में भेजना चाहते हैं। वह दूत जैसे ही राम के पास जाने के लिए तैयार होता है और रावण की अनुमति लेने जब वह दूत आता है तो रावण उससे कहता है– ध्यान रखना रावण की मान प्रतिष्ठा में कहीं कमी ना हो जाए, रावण ने एक बार जो कदम उठाया है वह कदम पीछे नहीं हटेगा, रावण एक क्षत्रिय है। वह दूत कहता है– राजन्! जैसा आप चाहोगे वैसा ही ये दूत बोलेगा, वैसा ही ये कहेगा, वैसा यह करेगा अन्यथा कुछ नहीं होगा और उस दूत ने वैसा ही जाकर के बोला। जहाँ आदमी की बुद्धि काम कर रही है वहाँ 'जीवो जीव हिताबंधुः' और जहाँ बुद्धि के ऊपर भी मोह चढ़ रहा हो और उसके लिए कोई दूसरी शक्ति उसके ऊपर काम कर रही हो तो वहाँ पर 'कर्म कर्म-हिताबंधुः'।

जीवन में जब कभी आपको ये distinguish करना आएगा। कि हमारी बुद्धि पर कब मोह चढ़ रहा है, कब हमारी बुद्धि पर कर्म का प्रभाव आ रहा है तब समझना हमारी pure knowledge काम कर रही है। ये सीखो। जब आदमी के जीवन में उसका विवेक भी काम कर रहा है, कह भी रहा है, उसके अंदर ये बात आ भी रही है कि– ये सीता अगर मुझे मिल भी गई तो मेरा होना क्या है? क्योंकि ये पर-स्त्री है; पर स्त्री को हमने अपना लिया तो बहुत बड़ा पाप कर लिया; ये तो खुद जान रहा है लेकिन इसको अब वापस कैसे करें और जैसे ही वापस करने की बात आती है तो लोग उसके लिए सलाह देते हैं– उसको वापिस कर दो, आप दे दो उसमें क्या है? दे कैसे दें? रावण जब किसी चीज को लेकर के आया, उठा कर के आया है तो अब राम के चरणों में जाकर के उसको वापिस कर दे, राम को उसके लिए दे दे। नहीं-नहीं, ये नहीं सोच सकता। देखो, कैसा खेल चलता है बुद्धि के अंदर कर्म का। वो खुद अपनी बुद्धि में ही सब सोच रहा है और उसकी बुद्धि उससे कहती भी है कि अगर तू केवल उस सीता को उसके लिए दे देगा तो तेरे लिए कुछ नहीं होगा और उधर उससे कर्म कहता है कि अगर तूने सीता को दे दिया तो तेरे जीवन का कोई भी मतलब ही नहीं रहेगा।

द्वंद्व :

कभी आपके अंदर विचारों के द्वंद्व पैदा होते हैं? होते तो होंगे। उन विचारों के द्वंद्व में आप

हमारी बुद्धि पर कर्म का प्रभाव कब पड़ता है यह समझना ही हमारी pure knowledge है।

कभी यह समझना कि यह द्वंद्व हमारा किसके साथ चल रहा है? उनमें दो चीजें आपको महसूस होंगी, अगर आप वास्तव में विवेकी होंगे और थोड़ा सा शांत मन से अपने अंदर विचार करेंगे तो आपको दो चीजें महसूस होंगी, एक आप को सही रास्ते पर ले जाने वाला ज्ञान काम करता है और एक कर्म का उदय काम करता है जो उस बुद्धि को बार-बार मोहित करके वैसा ही पटक देता है। ये दो चीजें हर आदमी के साथ रहती हैं क्योंकि आत्मा का स्वभाव ज्ञान है, बुद्धि है और वह ज्ञान भी काम कर रहा है लेकिन कर्म का उदय अपना प्रभाव जब उस बुद्धि के ऊपर डालता है तो इस बुद्धि के अंदर वह चीज भी आने लग जाती है कि नहीं हमें वह भी करना है जो दुनियाँ देख रही है। दुनियाँ क्या सोचेगी? रावण ने सीता को वापिस कर दिया। इतना बड़ा राजा हो कर के; जिसने इन्द्र को जीता; उस रावण ने राम के प्रभाव में आकर के और राम से हार मानकर के सीता को वापस कर दिया। नहीं रावण, इतनी बड़ी हार कभी नहीं हो सकती तेरी। राम को क्या है, ये तो सब भूमिगोचरी लोग हैं, वनों में जंगलों में भ्रमण करने वाले लोग हैं ; तू तो बहुत बड़ा है। क्या नहीं कर सकता तू? कितनी विद्याएँ सिद्ध की हैं। आज तक जीवन में हर राजा को परास्त करता आया है। बड़े बड़े विद्याधर राजाओं को तुमने बस में कर लिया है। यह तो सब सामान्य से गली कूचों में घूमने वाले लोग हैं और अगर इनके लिए तू झुक गया तो ये सारे के सारे राजा, जो हजारों राजा, तेरे चरणों में झुकते हैं वो क्या सोचेंगे? क्या कहेंगे?

कितना बड़ा द्वंद्व उसके अंदर चलता है। ऐसा नहीं कि वो सोचता नहीं है, सोच लेता है, जब मंदोदरी ने उसको समझाया तो उसकी समझ में आ गया कि हाँ, तू सही कह रही है, कोई मतलब नहीं है सीता से मुझे, मुझे कोई मोह भी नहीं है, उस सीता से, न मुझे वो सुन्दर लगती है। पता नहीं, जब उठा के लाया था तब तो अच्छी लग रही थी, जब से लंका में है, तब से वह भी अच्छी लगना बंद हो गयी मुझको। ये भी उसके दिमाग में आ रहा है, लेकिन मंदोदरी प्रार्थना करती है स्वामिन! उसको छोड़ दो, उसको उसके स्थान पर पहुँचा दो, तो कहीं कुछ नहीं होगा। बस, यही बात उसके गले नहीं उतरी। देख मंदोदरी! तू कहती है तो उसको पहुँचा दूँगा लेकिन तू ये तो जानती है कि राम अगर हमसे युद्ध करेगा तो राम ही मारा जाएगा। राम को मैं पकड़ लूँगा, राम मुझ को जीत नहीं सकता और जब मैं उसको पकड़ लूँगा, जीत लूँगा तो फिर मैं उसे वापस कर दूँगा। जा मैंने तुझको छोड़ दिया और फिर मैं उसकी सीता को दे दूँगा। मुझे सीता से कोई लेना-देना नहीं है। लेकिन राम से युद्ध किये बिना, यह रावण कभी भी सीता को उसके पास पहुँचाने की गलती नहीं करेगा। क्यों गलती नहीं करेगा? क्योंकि कर्म का प्रभाव उसको वह गलती करने ही नहीं देगा।

ये विचार जैसे उस रावण के अंदर चलते है, ऐसे ही हर आत्मा के अंदर चलते हैं। एक बुद्धि आपके लिए होती है, वो कहती है कि हाँ, महाराज कह रहे हैं वो सब सही कह रहे हैं। जब आप उपदेश सुनते हो तो उस समय पर आपके मन में आता है कि महाराज की एक एक बात सौ टंच

सही है और जब आप घर पर पहुँच जाते हैं तो फिर आपकी बुद्धि कहती है कि नहीं जो घर में पत्नी कह रही है वो सौ टंच सही कह रही है। यहाँ पर किस का प्रभाव हो जाता है, 'जीवो जीव-हितबन्धु', यहाँ पर बैठ कर के जीव अपने बारे में सोचता है, जीव का जीव से हित होता है और जीव अपने हित का विचार करने लग जाता है, लेकिन जैसे ही घर पर जाता है तो 'कर्म हितबन्धु'। माँ कहेगी बेटा बड़ा हो गया है, तेरे लिए लड़की ढूँढ रही हूँ। नहीं-नहीं माँ, मैं तो अभी-अभी महाराज के प्रवचन सुनकर आया हूँ। ये संसार में फँसने से कुछ नहीं होगा। बेटा! तू पागल तो नहीं हो गया, महाराज के केवल प्रवचन सुनकर, ज्यादा उनकी बातों में पड़ा मत कर। ये जिंदगी तो तुझे यहीं गुजारनी है। तू तो मेरा अकेला लड़का है। तुझे इतना पढ़ा-लिखा रही हूँ, सब तरीके से तेरा पोषण किया है और तू ऐसी बातें करेगा। हाँ, माँ बात तो सही है। होता है कि नहीं? क्या हो गया फिर 'कर्म कर्म हितबन्धु' और यहाँ बैठ कर के ऐसा लगता है महाराज आप कहो तो, सब अभी छोड़ दूँ। यहाँ पर बैठ कर के 'जीवो जीव हितबन्धु' और वहाँ पर पहुँच कर के, अभी दुकान पर हो के आता हूँ। थोड़ा सा बच्चों को संभालना है, कुछ और काम काज बचे उनको पूरा करना है और फिर आता हूँ महाराज आपकी class में।

एक ऐसा द्वंद्व भीतर चलता रहता है कि आदमी समझ नहीं पाता कभी कभी कि हमारे ऊपर किसका प्रभाव पड़ रहा है? और किसका प्रभाव पड़ना चाहिए। 'स्व स्व प्रभाव हुलस हुए'- आचार्य कहते हैं ये दोनों चीजें मल्ल की तरह हैं, मल्ल-जैसे जो लोग जब कुश्ती लड़ते हैं न योद्धा, इसी तरीके से अपनी बुद्धि और अपने कर्म दोनों आपस में लड़ते हैं। समझ में आ रहा है और आचार्य कहते हैं 'स्व स्व प्रभाव हुलस हुए' इसमें सब अपना-अपना प्रभाव रखते हैं और जो जिसके प्रभाव में आ जाएगा, बस उसी की बाजी वो जीत गया। रावण इसके प्रभाव में आ गया? कर्म के प्रभाव में आ गया, रावण बाजी नहीं जीता, कर्म बाजी जीत गया। जब वे अपनी अपनी बाजी जीतते हैं तो आचार्य कहते हैं यह तो एक सामान्य बात है 'स्वार्थं को न वांछिति?' - अपना हित कौन नहीं करना चाहता है, अपना साम्राज्य कौन नहीं बढ़ाना चाहता है, एक आतंकवादी भी अपना साम्राज्य बढ़ाना चाहता है, मोही व्यक्ति मोह को बढ़ाना चाहता है, रागी व्यक्ति राग को बढ़ाना चाहता है,जीव अपने हित की इच्छा में अपने हित का साम्राज्य बनाने की इच्छा करता है। 'स्वार्थं को न वान्छति' स्वार्थ कौन नहीं चाहता? स्वार्थ माने अपना अपना काम बनाना कौन नहीं चाहता? कर्म अपना काम बनाना चाहता है, जीव अपना काम बनाना चाहता है, लेकिन अनादिकाल से जीव कर्म के प्रभाव में रहा है। कर्म की गिरफ्त से निकल नहीं पाया और निकलते-निकलते उसको अनंत काल बीत चुके, आज वह इस स्थिति में आ कर के बैठा है कि वह यहाँ बैठकर के ये सुन सकता है , समझ सकता है कि जीव और कर्म एक दूसरे के ऊपर प्रभाव डाल रहे हैं। यह समझ में आना भी जीव का एक बहुत बड़ा पुरुषार्थ है।

अपनी बुद्धि और अपने कर्म दोनों आपस में लड़ते हैं।

श्रावकों में भी वह पुरुषार्थ हो रहा है, समझने की बात आ रही है और वह पुरुषार्थ करने के लिए आपके अंदर ज्ञान की ललक पैदा हो रही है, अगर आपका मन कहे, सुबह उठने के बाद कि मुझे सबसे पहले आज महाराज के दर्शन करने जाना है और आज सुबह से हमें क्लास अटेंड करना है, हमें महाराज से ज्ञान प्राप्त करना है तो समझ लेना जीव अब जीव के हित की इच्छा करने लगा। जब मन करे, कल तो गए थे, आज नहीं जाते हैं, कल की कल देखा जाएगा, आज नींद आ रही है, थोड़ा सा सो जाते हैं, थोड़ा सा सब्जी लेने जाना है, कुछ घर पर काम करना है, बाद में कर लेंगे, बाद में चले जाएंगे, सुन रहे हो ये किसका प्रभाव हो गया? कर्म का प्रभाव आपके ऊपर पर पड़ गया। ये ध्यान रखना कि कर्म ने अगर एक बार एक दिन आपके ऊपर प्रभाव डाला तो दूसरे दिन भी वो तैयार रहेगा। हाँ, अभी तो महाराज हैं, यहीं पर है, कहीं जा थोड़ी रहे हैं, अभी कल ही तो नहीं गए थे और एक दिन बाद चले जाएंगे। कोई फर्क नहीं पड़ रहा है, टी.वी. पर सुन लेंगे, किसी के मोबाइल से सुन लेंगे, प्रवचन ही तो सुनना है, कोई खास बात नहीं। फिर क्या हो गया, दूसरे दिन, कर्म ने आपके ऊपर और प्रभाव डाला, 'कर्म कर्म हितबंधु'। मोह मोह को बढ़ाएगा, आलस्य आलस्य को बढ़ाएगा और जागृति जागृति को बढ़ाएगी। एक दिन जागो, दूसरे दिन सो नहीं जाना और दूसरे दिन भी जागो, तो ध्यान रखना, तीसरे दिन फिर तुम्हारे सामने कर्म खड़ा होगा, उस दिन भी सो नहीं जाना और यह निरंतर पुरुषार्थ, अगर तुम तीन महीने कर लोगे तो आगे फिर ऐसे ही जागते रहोगे जैसे अभी जाग रहे हो।

समझो अपने आपको और यही पुरुषार्थ आपके लिए हित करने वाला है। जो जीव जीव का हित करेगा, हम आपका हित नहीं कर सकते हैं, आप स्वयं अपना हित करेंगे। अगर आप अपने आलस्य को जीतेंगे, आप अपने मोह को जीतेंगे, आप अपने बहानों को जीतेंगे, तो आपका हित होगा और जहाँ आपने एक बहाना शुरू किया, वहाँ पर कल दूसरा बहाना, खड़ा होगा तीसरा बहाना खड़ा होगा, आपको पता नहीं पड़ेगा कि कब चार महीने निकल गए। यह बहुत बड़ी पकड़ मैं भीतर की आपको बता रहा हूँ। अगर आपने अपने अंदर इतनी पकड़ बना ली कि नहीं, अभी तक भले ही मैं सोता था, अभी तक भले ही मैं आलस्य करता था, अभी तक भले मैं देर से उठता था, लेकिन अब मैं, जब तक मुनि महाराज यहाँ हैं तब तक जल्दी उठूँगा और जल्दी उठकर अपने दिन में जितने भी हमारे लिए सौभाग्य के अवसर मिलेंगे, उन सब अवसरों को लूँगा, तो ये आपका बहुत बड़ा जीव का जीव के ऊपर एक उपकार होगा। अपनी ही आत्मा पर होगा और किसी पर नहीं होगा।

रावण इस उपकार को समझ नहीं पाया। चाहता रहा कि मैं कभी गलत न करूँ, लेकिन उससे गलत होता गया, गलत कर गया और गलत करने के बावजूद भी, जब उसको समझाया गया तो उसे गलती महसूस भी हुई, लेकिन वह उस गलती को गलती मान कर के उसका प्रायश्चित

मोह, मोह को बढ़ाएगा, आलस्य, आलस्य को बढ़ाएगा और जागृति, जागृति को बढ़ाएगी।

लेना नहीं चाहता है। देखो, यह कितनी बड़ी बात होती है, जीव समझ रहा है कि मैंने गलती की है और फिर भी उसको गलत स्वीकार नहीं कर रहा है। किसका प्रभाव है यह? यह मोह कर्म का प्रभाव और उस मोह कर्म के प्रभाव के कारण से वह ऐसा फँसता चला जाता है, ऐसा फँसता चला जाता है कि वह सोच रहा है, राम से युद्ध करके मैं राम को जीत लूँगा, लेकिन उसे पता नहीं है कि उस राम के साथ युद्ध करके ही तेरा अंत होने वाला।

मौत का सामान :

वह सोचता है कि किससे मेरा अंत हो सकता है? मेरे पास तो चक्र है। कर्म के प्रभाव देखो, चक्र किसके पास है? रावण के पास है, राम के पास कोई चक्र नहीं है, लक्ष्मण के पास भी कोई चक्र नहीं है। ऐसा चक्र है, जो देवताओं से रक्षित होता है और जिसके ऊपर फेंक दिया उसका गला ही कटता है, कितना ही बड़ा हो, कितना ही वह विजेता हो, कितना ही पुण्यवान हो और वह चक्र किसके पास है? रावण के पास। पता नहीं पड़ता है, अपने पास में जो छुरी रखी है, अपने पास जो हथियार रखा है, वह इसके लिए रखा है? दूसरे को मारने के लिए रखा है। लेकिन जब पाप बुद्धि चलती है, पाप कर्म का उदय आता है तो उस हथियार से अपना ही नाश होता है। जब अपने ही मोह के कारण से, वह इतना मोहित होकर चला जाता है कि वह उस चक्र को लक्ष्मण के ऊपर फेंकता है, तो वह चक्र लक्ष्मण के गले के पास नहीं पहुँचता। लक्ष्मण के हाथ में आ जाता है और फिर क्या होता है? ये बहुत बड़ा कर्म का प्रभाव हर अर्धचक्री, हर प्रति-नारायण अपनी मौत अपने साथ में रखता है। ये तो उन चक्रवर्ती की बात बता रहा हूँ। आप भी अपने बारे में सोचते रहना कि हमने कोई मौत अपने पास तो नहीं रख ली है। कोई सौत अपने पास में तो नहीं रख ली है। जानते हो ना मौत क्या होती है? और सौत क्या होती है? ये अपनी मृत्यु के कारण बन जाते हैं। अपने ही अपयश के कारण बन जाते हैं। आदमी का जीवन भर का किया हुआ धर्म, उसका अपना किया हुआ जितना भी उसका पुण्य सब कुछ उसके जीवन के अंत में इस तरीके से परिवर्तित हो जाता है कि वह सोच नहीं पाता कि ये मेरे साथ क्या हो रहा है?

उस चक्र के अहं में, वह चक्र रावण ने चलाया था लक्ष्मण के ऊपर और वह चक्र लक्ष्मण के हाथ में आया और जब लक्ष्मण का कुछ नहीं हुआ चक्र से, तो फिर लक्ष्मण ने वही चक्र रावण के ऊपर फेंका, तो रावण का गला उसी चक्र से कट गया। कई बार हम अपनी मौत अपने साथ लेकर के चलते हैं, पता नहीं रहता हमें। जब आप कोई बहुत अच्छी गाड़ी खरीदते हो, कभी आप सोचते नहीं हो कि यह गाड़ी भी हमारी मौत का कारण बन सकती है। लेकिन बनती है कि नहीं, एक्सीडेंट होते हैं कि नहीं, पूरा का पूरा परिवार एक साथ पिस जाता है कि नहीं। लेकिन जब ली होती है तब! क्या सोच सकते हैं हम? कोई सोच सकता है कि मैं स्कूटी इसलिए सीख रहा हूँ कि मेरी टांग तोड़ेगी, मैं कार इसलिए खरीद रहा हूँ कि मेरे परिवार की मौत के लिए कारण बनेगी। यह होता है कि नहीं, होता है, कब होता है? जब कर्म का प्रभाव तीव्र हो जाता है। आप जिसे

हितकारी समझते हो वही आपके लिए अहितकारी हो जाता है। जिस चीज की आप संगति करोगे, जिसको आप साथ बैठाओगे, वही आपके लिए मौत का कारण बन सकता है लेकिन जब जीव जीव का हित करने लग जाता है, तो उस समय पर उसके साथ जो भी होते हैं, वो सब जीव के हित में काम आने लग जाती है।

राम के साथ भी फौज है, राम के साथ उनका परिवार है, लक्ष्मण हैं, सुग्रीव हैं, और सीता का भी भाई भामंडल है और यहाँ तक कि रावण का भी भाई विभीषण रावण को छोड़ करके किसके साथ हो गया? रावण क्या सोचता है? रावण क्या सोच रहा है कि ये विभीषण को अक्ल नहीं है, ज्यादा धर्म करता है तो आदमी पगला जाता है, इसको अक्ल नहीं, इसे मेरी शक्ति का भी ज्ञान नहीं है, इसलिए यह राम के पास चला गया। अरे इसकी भी मृत्यु होगी, चिंता नहीं करो। वह विभीषण जब राम के साथ मिल जाता है तो वह राम के हित में काम करने लग जाता है और उनकी भी अपनी बहुत बड़ी सेना है, बहुत बड़ा परिवार है, लेकिन उनका अहित नहीं हो रहा है। क्यों नहीं हो रहा है क्योंकि वो अपने सम्यग्ज्ञान के साथ, अपनी बुद्धि के साथ चल रहे, मोह के प्रभाव में नहीं हैं। उनका कर्तव्य है कि अगर एक व्यक्ति किसी दूसरे की स्त्री को जबरदस्ती ले जा सकता है, तो क्या मैं अपनी स्त्री को उसके पास से जबरदस्ती लेकर नहीं आ सकता? मैं अपनी स्त्री को तो अपने पास ले कर के आऊँगा ही, ये मेरा अपना कर्तव्य है। यह कर्तव्य बुद्धि है, उनके अंदर, उनका मोह नहीं है, इस चीज को समझना। जब अपना कर्तव्य कर रहे होते हैं, तो हम न्याय प्रिय होते हैं और जब हम अपने कर्तव्य से हट जाते हैं, तो हम अन्याय के समर्थन में चले जाते हैं। यह कर्तव्य था उनका और उन्होंने वह कर्तव्य किया इसलिए उनकी बुद्धि सही काम करती रही और वह 'जीवो जीवहितस्पृहः', यह प्रक्रिया चलती रही लेकिन उधर रावण के साथ उसके कर्म ऐसे काम करते रहे कि वह रावण फँसता चला गया और उसी चंगुल में घिरता चला गया, जो उसने अपने लिए जीवन की रक्षा के रूप में सजाऐ थे; वे सब उसकी मौत के काम आ गए।

आप लोग पुरुषार्थ करते हो, लेकिन अब आपको कुछ ऐसा पुरुषार्थ जागृत करना है जो आपके अपने हित में काम आए। यह जरूरी नहीं है कि पुरुषार्थ करने का मतलब यही होता है कि घर छोड़ देना, वस्त्र छोड़ देना, इसका नाम पुरुषार्थ नहीं है। पुरुषार्थ करने का मतलब है, अपने अंदर ऐसी बुद्धि, अपने अंदर ऐसे संस्कार अर्जित करना कि हम ये समझ सकें कि कब हमारा मोह हमारे ऊपर हावी होता है और कब हमारी बुद्धि हमारा सही काम करती है। ये भी एक साधना से होता है। इसके लिए भी ज्ञान अर्जित करना पड़ता है, कुछ संस्कार भी अर्जित करने पड़ते हैं और उन संस्कारों को अर्जित करने की अगर भावना पैदा हो जाती है तो समझना कि हमारे अंदर अब अच्छा आत्महित होने का समय आ गया है।

आप जिसे हितकारी समझते हो वही आपके लिए अहितकारी हो जाता है।

स्वोपकारी बनने की प्रेरणा

32

परोपकृतिमुत्सृज्य स्वोपकारपरो भव।
उपकुर्वन् परस्याज्ञो दृश्यमानस्य लोकवत्॥

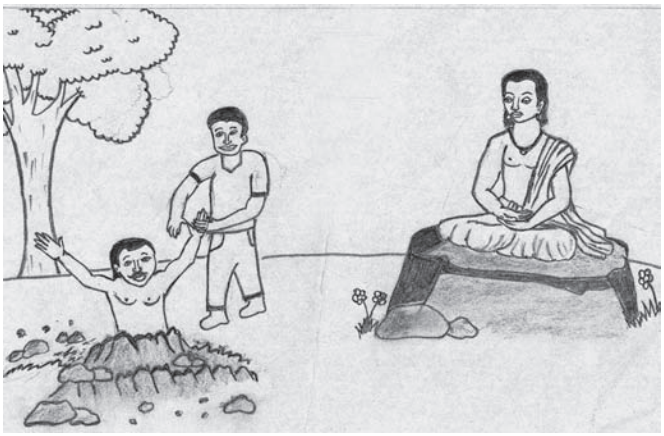

अन्वयार्थ–(परोपकृतिं) परोपकार को **(उत्सृज्य)** छोड़कर **(स्वोपकारपरः)** अपने उपकार करने में तत्पर **(भव)** हो, **(दृश्यमानस्य)** दिखाई देने वाले **(लोकवत्)** इस जगत् की तरह **(अज्ञः)** अज्ञानी जीव **(परस्य)** पर का **(उपकुर्वन्)** उपकार करता हुआ पाया जाता है।

- **स्व-पर उपकार**
- **सही अध्यात्म क्या है**
- **अंजन चोर**

स्व-पर उपकार :

आचार्य श्री पूज्यपाद महाराज इस इष्टोपदेश ग्रन्थ में निरन्तर जीवात्मा को अन्य हित करने की प्रेरणा दे रहे हैं इसी क्रम में यहाँ कहते हैं कि संसार में सभी जीव उपकार कर रहे हैं। वे पर का उपकार कर रहे हैं, अपना उपकार कोई नहीं कर रहा। जब आपको समझ में आ गया है कि स्व क्या है, पर क्या है तो अब आचार्य महाराज यहाँ कहते हैं कि अब पर का उपकार करना छोड़ो। ''परोपकृतिमुत्सृज्य, स्वोपकारपरो भव'' दुनियाँ में हर व्यक्ति जब अपने अन्दर किसी के प्रति भाव रखता है तो उस भाव में अगर अच्छा भाव भी रखने का प्रयास करता है तो वह उपकार का भाव ले आता है। जब किसी के लिए स्वयं अपने उपकार को करने की भावना नहीं होती तो वह पर के उपकार में संतुष्ट हो जाता है। जब वह अपने लिए कुछ नहीं करना चाहता या कुछ नहीं कर पाता तो वह पर के लिए कुछ करके संतुष्ट हो जायेगा। यह आप देखना, जब कोई भी व्यक्ति यह सोचता है कि हम क्या कर सकते हैं तो वह यह कभी नहीं सोचेगा कि हम अपने लिये क्या कर सकते हैं, वो हमेशा यह सोचेगा, हम दूसरों के लिए क्या कर सकते हैं। दुनियाँ में जब भी आपको कभी भी अच्छे रास्ते पर लगाया जाएगा तो आपसे कहा जाएगा- परोपकार करो, दूसरों का उपकार करो, परोपकार से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। ''पर उपकार सरस नहीं धर्म'' तुलसीदास का दोहा है, सब जगह लिखा है। अपने यहाँ पर भी लिखा है, पर उपकार से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। जैसे मानो कि यह जैन दर्शन के आचार्य न हो। यह कुछ अलग ही बोलते चले जा रहे हैं और कह रहे हैं पर का उपकार छोड़ो क्योंकि उन्हें हर जीवात्मा के भीतर की कमजोरी मालूम है और वो सबसे बड़ी कमजोरी यह है, जब भी कोई जीव अच्छी बात सुनता है, अच्छी बात को ग्रहण करता है, तो वह उसे सबसे पहले अपने ऊपर नहीं लगाता कि वह उसे दूसरे के ऊपर लगाना चाहता है। जो भी धर्म है, जो भी उपकार है, जो भी अच्छी प्रवृत्तियाँ हैं, वे सब अपने ऊपर न लगाकर के वह उसे दूसरे के ऊपर लगाता है। इसीलिए उसकी सहजवृत्ति बन जाती है, पर का उपकार करने की। इस 'पर उपकार' के भी कई अर्थ हैं। यहाँ पर किस अर्थ में ग्रहण किया है। वो सभी अर्थ आपको धीरे-धीरे बताऊँगा। एक तो पर उपकार का अर्थ यह है कि आपके लिए अब स्व व पर का भेद विज्ञान हो गया है तो आपको पता पड़ गया होगा कि पर किसे कहते हैं। 'एकोऽहं जीवात्मा' के अलावा जो कुछ है वह पर है। उस पर में आपका शरीर भी आ जाता है, पर में आपका अपना धर्म, परिवार भी आ जाता है। उस शरीर के लिए भी यहाँ पर कहा जा रहा है, तुम उस उपकार को भी छोड़ दो। हमारे दूसरे अर्थ में आ जाता है कि दूसरों के ऊपर उपकार करो, आचार्य उस उपकार को भी छुड़ा रहे हैं। इसका अर्थ है- दूसरे के ऊपर उपकार करना भी तुम्हारे लिए आत्म हित करने वाला नहीं है क्योंकि पर का उपकार करने का मतलब ही है कि तुम

परोपकार से बढ़कर कोई धर्म नहीं है।

स्व से अलग हो गये, स्व से छूट गये। जो कुछ भी तुम स्व के बिना करोगे, वह तुम्हारे स्व के हित के लिए नहीं होगा, जो स्व के लिए करोगे, वही स्व के हित के लिए होगा। इसलिए परोपकार के यह दोनों अर्थ आपको ध्यान में रखना। एक तो पर के ऊपर उपकार करने का भाव वो भी छोड़ना और एक पर माने अपने शरीर के लिये उपकार करने का भाव भी छोड़ना। इसके अन्दर सब है- इन्द्रियों के विषय, शरीर की पुष्टि आदि। यह सब पर का उपकार कहलाता है और इस पर के उपकार को छोड़कर के ही तुम स्व का उपकार कर पाओगे। दुनियाँ में जो परोपकार देखने में आता है तो वो इसी रूप में देखने में आता है। हर व्यक्ति कहता है- भैया दूसरे का हित करो, दूसरे के हित में सोचो, दूसरों के लिए ही करो, दूसरे का करोगे तो अपना भी हो जायेगा। यह भी एक thinking लोगों के अन्दर बना दी गयी है। दूसरे का उपकार करोगे तो अपना उपकार भी हो जायेगा लेकिन वो उपकार यदि आपका दूसरे के लिये शरीर सम्बंधी होगा तो आपके लिये भी वह शरीर सम्बंधी उपकार होगा यदि दूसरे का आत्मा संबंधी होगा तो अपने लिए भी आत्म-सम्बंधी होगा। आप कभी किसी दूसरे का उपकार करेंगे तो उसके शरीर के ऊपर उपकार करने की सोचेंगे। उसको सुख सुविधा देने की सोचेंगे और उसी में आप सोच लेंगे कि हमने उपकार कर लिया। दूसरे के ऊपर जैसा उपकार किया वैसे ही आपको return में मिलेगा तो आपको भी उसी से वही चीजें मिलेगी जैसा उपकार आपने दूसरे के लिए किया है। आपको कभी कोई किसी अभाव में व्यक्ति दिख जाये, आपके उपकार का भाव आ जायेगा और वह उपकार करके सोचोगे कि हमारे लिये बहुत बड़ा धर्म हो गया। वह उपकार करने के बाद जब आपके लिये उसका फल मिलेगा तो वह भी उसी रूप में मिलेगा कि आपको भी बस वही चीजें मिल जायेगी। किसी की आपने धन से सहायता की, आपको धन मिल जायेगा, किसी की आपने तन से सहायता की तो आपको तन मिल जायेगा। किसी के आपने अभाव को दूर किया, आपको भी उसी प्रकार के सद्भाव मिल जायेंगे। यह सब आपको return होकर के मिलेगा लेकिन इसमें कहीं पर भी आपका स्व उपकार नहीं हो पायेगा क्योंकि स्व कुछ अलग चीज है।

आचार्य इसलिए यहाँ कहने जा रहे हैं परोपकार को छोड़कर के स्व उपकार में लगना, यह उन्हीं के लिये संभव है जिन्हें स्व हित की अभिलाषा उत्पन्न हो जाती है, नहीं तो क्या होता है कि हर आदमी अपने अपने तरीके से रास्ते बना लेता है। बाहर उपकार करने के रास्ते सबके एक जैसे मिल जायेंगे। आप अपने धर्मायतनों में अपना पैसा लगाते हो। आप सोचते हो, हम धर्म कर रहे हैं। जो अन्य धर्म वाले हैं, अन्य सम्प्रदाय वाले हैं, वो अपने धर्मायतनों में अपना पैसा लगाते हैं, वे कहते हैं, हम अपना धर्म कर रहे हैं। अगर आप उसी में लीन होते चले गये और आपने केवल उसी को अपना धर्म समझ लिया तो आप अपने उपकार से, स्व उपकार से वंचित हो जाओगे

क्योंकि आप भी दूसरों को देखकर के या दूसरों को दिखाने के लिये दूसरों के लिये ही कर रहे हो। दूसरा भी आपको देखकर के उसी रूप में करेगा और वहाँ पर जाकर के दोनों एक ही level पर खड़े हो जायेंगे।

आप देखोगे, जब आपके यहाँ पर कोई धर्म का कार्यक्रम होता है, कोई जुलूस निकलता है, कुछ होता है तो बड़े अच्छे ढंग से आप अपने जुलूस को निकालते हो। उसी को देखकर के दूसरे लोग भी यही समझ लेते हैं कि धर्म इसी का नाम है। अच्छी gathering करो, अच्छे बैण्ड बाजे लाओ, अच्छा हल्ला करो और बड़े-बड़े DJ Sound लगाकर के सबके कान फोड़ दो, उसका नाम धर्म है। यह हमने इसी पर उपकार के भाव से इनको सिखाया। अब यह जब हमने इनको सिखाया तो वही लोग वो सीख गये उन्हें उसके अलावा कुछ नहीं मालूम कि स्व उपकार क्या है। उन्हें यह ही मालूम है कि पर उपकार का नाम ही धर्म है और परोपकार करने के लिये आपको दूसरे के कान तक अपनी आवाज पहुँचाना है, दूसरे को जगाना है, सड़क पर इस ढंग से निकलना है कि अगर अपने घर में कोई सो रहा हो तीसरी मंजिल पर, तो वो भी जाग के देखने लग जाये, बाहर क्या होने वाला है। वो भी अपनी बालकनी में आकर के खड़ा हो जाये बाहर और देखने लग जाये तो लगेगा कि हाँ हमने कुछ कर लिया, हमने प्रभावना कर ली, हमने उपकार कर लिया और इसी उपक्रम में हर जीव को आनन्द आता है। जैसे ही कोई धर्म की बात आयेगी तो वह धर्म की बात भी दूसरों को सुनाने के लिये करेगा। देखो, कितने लोग मन्दिर में आते हैं, देखो, कितने लोगों का वह कितना बड़ा जुलूस निकला, देखो कितने बड़े-बड़े कार्यक्रम हुए, देखो, कितनी भीड़ आयी यह किसके लिये है? इसमें कहाँ स्व उपकार छिपा है? हमें यह बताओ कि अध्यात्म है यहाँ? दो तरह बात होती हैं और जब तक आप इस दो type को पहचानने की क्षमता नहीं रखोगे तब तक आपकी स्व में प्रवृत्ति होगी ही नहीं, स्व हित की बात आपके मन में आयेगी ही नहीं। इसलिए आचार्य कहते हैं कि यह पर-हित की बात छोड़ो। अन्य शास्त्रों में लिखा है, अन्य आचार्यों ने लिखा है और स्वयं आचार्य पूज्यपाद महाराज ने भी इस ग्रन्थ में लिखा है, पर-हित भी करना लेकिन अभी यहाँ पर जो कर रहे हैं, इसमें कोई धर्म नहीं है, इसमें स्व आत्मा के ऊपर कोई उपकार नहीं है। यह सब चीजें एक आदमी की प्रवृत्ति में इस रूप में बसी हुई रहती है कि उसे मोह के कारण से वही अच्छा लगता है, जो वह अपने भीतर बसाये हुए हैं। जब तक आपको भीड़ दिखाई नहीं देगी, तब तक आपको धर्म भी दिखायी नहीं देगा। इसी पांडाल में, इसी हॉल में मान लो कोई दिन ऐसा आये कि केवल एक ही व्यक्ति बैठा हो। मैं भी सोचता हूँ, उस एक व्यक्ति के सामने भी मैं इसी ढंग से प्रवचन करता रहूँ जैसे मैं 100-200 लोगों के सामने करता रहता हूँ। लेकिन मैं तो प्रवचन करने के लिए हिम्मत जुटा लूँगा। सोचता हूँ कि कभी ऐसा भी दिन आये तो मैं उस दिन भी वैसे ही प्रवचन करूँ लेकिन आपकी क्या हालत होगी? यह आपका सोचना हो सकता है कि

जुलूस निकालना, बैण्ड-बाजे बजवाना, भीड़ इकट्ठा करना अध्यात्म नहीं है।

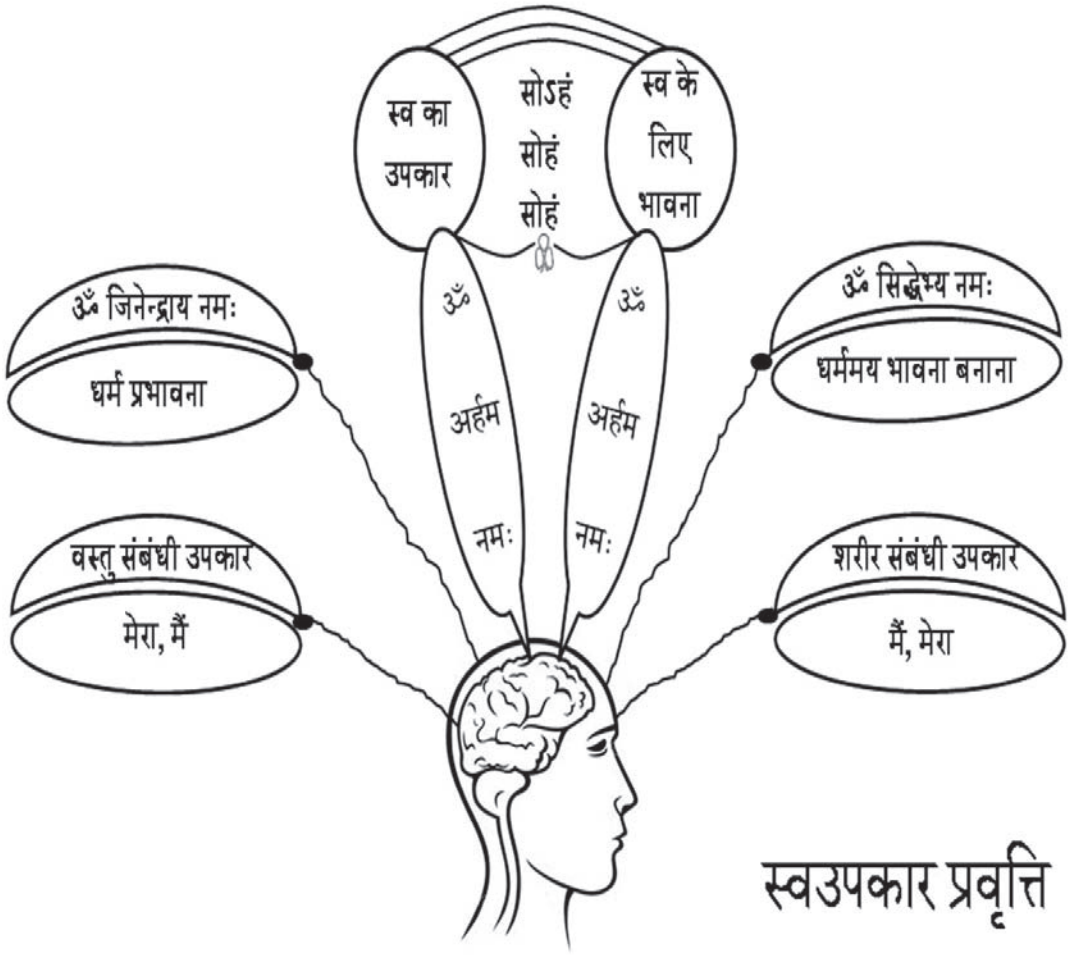

आपका मन भी तभी लगता है, जब यहाँ पर बहुत से लोग बैठे हों। आपके अन्दर भी वही परिणति पड़ी हुई है कि हम भीतर से बिल्कुल जैसे खाली रहते हैं।

भीतर से खाली रहने के कारण से हम बाहर से हर चीज को भरना चाहते हैं और बाहर से भरकर के हम अपने अन्दर उसे भीतर उड़ेलना चाहते हैं। लेकिन भीतर वह चीज पहुँचती नहीं है क्योंकि हमें भीतर से जिस रूप में भरना चाहिए, उस रूप में भरने की विधि को जानते ही नहीं, पर का उपकार करने की आदत हर किसी को पड़ी रहती है और पर का उपकार करने में धर्म हर कोई मान लेता है। लेकिन स्व उपकार में धर्म मानने वाले बहुत कम लोग और बहुत कम जाति के व्यक्ति मिलेंगे। जिनको स्व के लिए ही सब कुछ सूझता हो और उन्हें पर की कोई चिंता नहीं रहती हो, वह पर का उपकार आप करने जाओगे तो लोग आपकी शरीकत करने लग जायेंगे, आपसे भी

स्व का उपकार करना और स्व के लिये भावना करना अपनी बुद्धि का बहुत बड़ा आयाम है।

बढ़-चढ़कर आपको दिखाकर करने लग जायेंगे। आप एक बेण्ड बाजा बुलाओगे, वो चार बुला लेंगे, आप 1000 आदमी का जुलूस निकलवाओगे, वो 2000 आदमी का जुलूस निकालेंगे, आप जो करोगे, उससे ज्यादा वो करने के लिए तैयार हैं क्योंकि पर में सब तैयार हो जाते हैं, यह सहज मानसिकता है। जहाँ कोई हुजुम तैयार करना हो, कोई जलसा तैयार करना हो वो बहुत जल्दी हो जायेगा लेकिन अगर आदमी से कह दो, सब छोड़कर के स्व उपकार की प्रवृत्ति में लीन हो तो देखो कितने लोग आये, कितने लोग उसमें शामिल हुये। स्व का उपकार करना और स्व के लिए भावना करना अपनी बुद्धि को बहुत बड़ा आयाम देना है। बुद्धि अपनी बहुत सूक्ष्म है और उस सूक्ष्म बुद्धि को पकड़कर के अपने में लगाना यह बहुत बड़ा पुरुषार्थ होता है। यह इतना बड़ा पुरुषार्थ है जैसे हवा को पकड़ना और हवा को पकड़कर के अपने अन्दर डालना। अपने ही विचारों से अपनी ही बुद्धि से उस सुन्न में जाना, जहाँ पर हमें कोई दिखाई नहीं दे रहा है और जहाँ दिखाई दे रहा है वहाँ सब चले जायेंगे, मन्दिर सब आ जायेंगे, ग्रन्थ सब पढ़ लेंगे लेकिन जहाँ कुछ दिखाई नहीं दे रहा है, वहाँ जाने कि हिम्मत कोई नहीं करेगा। आँख खोलकर सब लोग एक घण्टे तक बैठ सकते हैं, सुन सकते हैं लेकिन आँख बंद करके आप एक घण्टे तक बैठ नहीं सकोगे। एक घण्टे तक अपनी अन्तर्गूंज को सुन नहीं सकोगे क्योंकि हमें भीतर से घबराहट होती है। वो घबराहट इसलिए होती है कि हमारा स्व के प्रति जो अभिलाषा है, स्व के प्रति जो इच्छा है वो ना के बराबर है, हर इच्छा में पर शामिल हो जाता है और हम हमेशा पर का उपकार करने के लिए ही कार्य करते हैं और उसी की प्रशंसा करते हैं। इसलिए आप देखोगे, दुनियाँ में जितने भी प्रशंसा के लोग मिलेंगे, वो पर का उपकार करने वाले मिलेंगे। जितने भी राष्ट्रपति-सम्मान से पुरस्कृत होंगे, बड़े-बड़े पद्मश्री और न जाने कौन-कौन से उपकारों से सम्मानित होंगे वे सब पर के उपकारों से सम्मानित होने वाले लोग मिलेंगे। जिनका स्व उपकार करने का बीड़ा है, उन्हें कोई सम्मानित नहीं करेगा। आपको चाहिए क्या? चाहिये तो वे ही दूसरों के द्वारा सम्मान मिले, दूसरे लोग कहे कि आपने बड़े-बड़े काम किये हैं, बड़े-बड़े लोग आपके लिये अपने स्थान पर बुलाकर आपको बड़े-बड़े अवार्डों से विभूषित करें तो आपको लगेगा कि हाँ हम बहुत बड़े आदमी बन गये हैं। उन्हीं को बुलाया जाता है और वे ही लोग इस प्रकार से सम्मानित होते हैं, जो पर का उपकार करने में लगे हैं उन्हीं का नाम मिलेगा आपको। बिलगेट्स ने कितनी सम्पत्ति दान में कर दी करोड़ों, अरबों डॉलरों की, सब जगह छाया हुआ मिलेगा। कोई भी व्यक्ति अपनी सम्पदा से कहीं पर hospital कहीं पर college चला रहा है, कहीं पर असहायों के लिए कोई स्थान बनाकर चला रहा है उसका नाम होगा, उस नाम की ही होड़ लगेगी। एक देखेगा कि यह अपना पैसा दूसरे के कल्याण में दूसरे के हित में लगा रहा है तो मैं भी अपना लगाऊँ क्योंकि मेरा भी नाम इस ढंग से ऊपर उठेगा। आज जितने भी बड़े-बड़े celebrities होते हैं, चाहे वो hero हो, चाहे वो crickter हो, उन सब में इस

हमारी स्व के प्रति अभिलाषा ना के बराबर होती है।

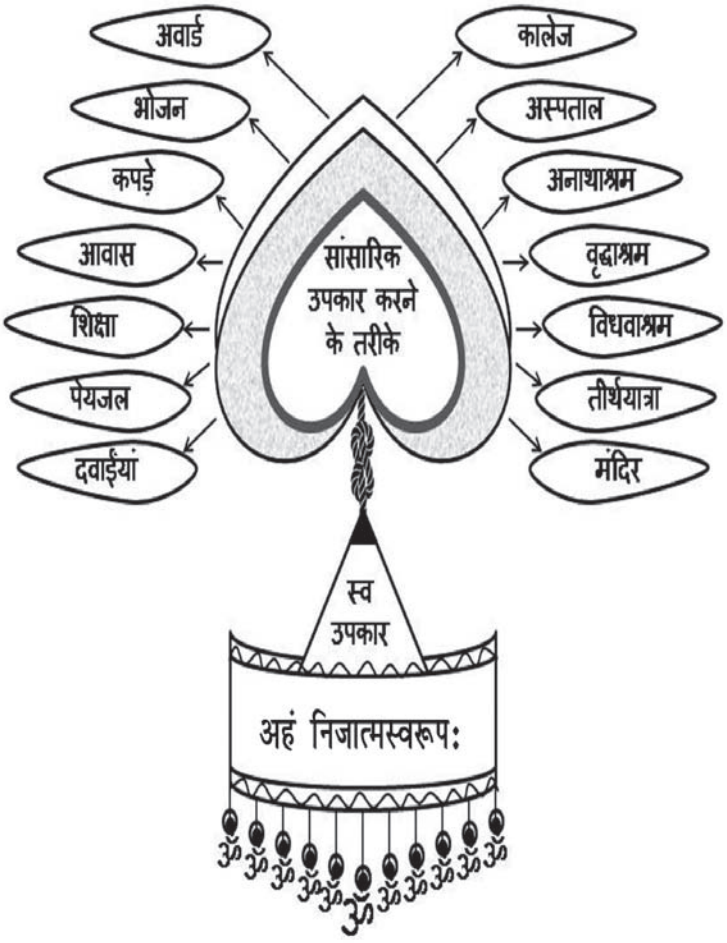

प्रकार की होड़ लगने लगी। एक व्यक्ति दूसरे के लिए जो करना चाह रहा है तो वो भी सोचता है, इस field में भी हम क्यों पीछे रहें, तो वह भी इस रूप में अपना पैसा लगाता है, परोपकारिक हो जाता है। दूसरे की नजरों में हम श्रेष्ठ बन जाते हैं, दूसरों की नजर में हम एक आदमी बनने के लायक हो जाते हैं। हर आदमी उससे कहेगा कि देखो इसने कितनी बड़ी आदमीयत का काम किया है कि इसने अपना पैसा दूसरों की सहायता के लिये लगाया है। हर आदमी यही सोचना चाहेगा कि इस प्रकार से जब अपनी हैसियत बढ़ जाती है तो फिर हमें और दूसरा काम करने की जरूरत है ही नहीं। इसलिए पर के उपकार में दुनियाँ सहज लगी हुई है, लग रही है और लग जाती है। उस पर के उपकार के होड़ में सब एक दूसरे से आगे निकलने का प्रयास कर रहे हैं।

इसलिए आचार्य यहाँ पर कहते हैं 'दृश्यमानस्य लोकवत्' लोक में इस प्रकार से आपको हमेशा दिखाई देगा, उन्हें भी इसी समय पर इसी प्रकार से दिखाई दे रहा होगा, जो आज हम अपने समय के लोगों को दिखा रहे हैं। हमेशा ही यह प्रवृत्तियाँ रही हैं लोक में, संसार में ऐसा ही चल रहा है, हर व्यक्ति दूसरे का उपकार करने में लगा हुआ है। उतने मात्र में ही वो संतुष्ट हो जाता है, उतने मात्र में वह अपने आप को धर्मात्मा मान लेता है और उतने मात्र से वो समझ लेता है कि हमने जगत् में आकर के बहुत बड़ा काम कर लिया। यही प्रवृत्तियाँ आपको चारों ओर देखने में आएगी। कोई भी समाज हो, व्यक्तिगत कोई व्यक्ति हो, उसकी पहचान इसी कार्यों से होगी कि वह कितने

परोपकार करके व्यक्ति अहंकारी बनता है, उसमें धर्म बढ़ने के बजाये कषायें बढ़ती है।

लोक हितकारी कार्य कर रहा है, कितना वो समाज के हित में कार्य कर रहा है। लेकिन एक नजरिये से देखा जाये तो वह क्या कर रहा है? मान लो किसी भी व्यक्ति के लिए आपने सहायता की और उसकी सहायता करके आपने उसको कुछ पैसा दे दिया, किसी भी प्रकार उसको उपकरण दे दिया या किसी भी वस्तुओं के माध्यम से उसको आपने सहायता कर दी। सहायता करने के बाद में आपके मन में आया कि हमने इसके लिए कुछ किया। यह जो आपके मन में भाव आया, इस भाव ने आपको अहंकारी बनाया या आपको परोपकारी बनाया, यह बताओ? इस भाव के साथ में आपके मन के अन्दर धर्म बढ़ा या आपके मन के अन्दर कषाय बढ़ी। जितना ज्यादा व्यक्ति अहंकारी होता जाएगा, बाहर से वह उतना ही धर्मात्मा कहलाता जाएगा। दुनियाँ की रीति उल्टी है और धर्म की नीति अलग है। धर्म का गणित ही अलग है, दुनियाँ का गणित अलग है। मान लो अगर दुनियाँ में कभी ऐसी स्थिति बन जाये, कोई भी व्यक्ति रुग्ण ना हो, कोई भी व्यक्ति विकलांग ना हो, कोई भी व्यक्ति अशिक्षित न हो, आप क्या करोगे? यह बताओ। आप किस की सहायता करने जाओगे? आप किसके ऊपर उपकार करने जाओगे? आप अपना पैसा कहाँ लगाओगे? आप क्या करोगे? आपके लिए बहुत बड़ी परेशानी बन जाएगी? मतलब हर आदमी के अन्दर यह बात गहरी बैठी रहती है कि हमें सहायता करने के योग्य लोग मिल जाये, माने हमें अपने से कमजोर लोग मिले, अपने से हीन लोग मिले, दरिद्री लोग मिले और उनके लिए हम कुछ करें तो वो हमारे लिए धर्म होगा। लेकिन धर्म कहता है कि अगर तुम ऐसे लोगों को ढूँढ़ करके और ऐसे लोगों के लिए कुछ करके अपने अन्दर अगर कोई इस प्रकार का भाव ले आओगे तो उससे भी तुम्हारा धर्म नहीं होगा क्योंकि उसमें भी तुम्हारे अन्दर उस व्यक्ति माने उस आत्मा के उपकार की कोई बात नहीं है। वो तो यह बात है, वह अभाव में है बाहरी वस्तुओं के, आपने उसको सद्भाव में पहुँचा दिया, बाहरी वस्तुओं की अपेक्षा में। इसलिए इसका धर्म से कोई सम्बंध नहीं है और यह गहरी बात आपको कहीं पर भी लिखी हुई नहीं मिलेगी, सिवाय इस इष्टोपदेश के।

किन्हीं भी आचार्यों ने यह कहने की हिम्मत नहीं की कि परोपकार को छोड़ दो और स्व उपकार में लग जाओ। ये महान् आध्यात्मिक आचार्य पूज्यपाद महाराज हैं जिन्हें अपना स्व-इष्ट है, इसलिए दूसरों के लिए भी कह रहे हैं। जान लो, इस सब दुनियाँ में जितना भी तुम्हें नाटक दिखाई दे रहा है, यह सब संसारी जीवों का अपने मोह के कारण से चलने वाला नाटक है। इसमें हर जीव इसी रूप में गोल होता चला जाता है, मैं धर्म करता चला जा रहा हूँ। धर्म कभी भी उस भाव से शुरू होगा, जिस भाव में हमारे अन्दर अपने ही जैसा दूसरों के प्रति भाव आये। आप अगर अधिक पैसे वाले हैं, आपने अगर किसी को सहायता की है तो हमें यह बताओ कि आप उसकी सहायता करके, क्या उसको बिल्कुल अपने जैसा बनाने की इच्छा करोगे? दुनियाँ के किसी भी अमीर आदमी से पूछ लेना। छाती पर हाथ रखकर के अगर कोई सच बोलने की हिम्मत करे तो, मेरे सामने

व्यक्ति के बाहरी वस्तुओं के अभाव को सद्भाव में बदल देना मात्र धर्म नहीं है।

आकर के बोलना- क्या कोई व्यक्ति किसी भी व्यक्ति को बिल्कुल अपने जैसा बनाने की भावना करेगा? नहीं करेगा। अगर करता तो, वो उसके लिए अलग जगह नहीं बनाता, अलग अनाथालय बना दिया, आप उसमें रहो और उसमें रहकर के हमारा नाम उस पर लिखा रहेगा कि यह हमने इतने अनाथों को जीवन दिया है, यह हमने अनाथालय बना दिया है।

वास्तव में परोपकार को कुछ हद तक हम धर्म समझ लें। जहाँ आप रह रहे हो उसी घर में उनको लाकर के रखा जाये। अगर आपके अन्दर वह जीव, जीव के रूप में दिखायी दे रहा है उसके लिए आपकी वास्तविक दृष्टि है कि वह भी हमारे जैसा बन जाये, हमारे समान हो। आप उसको अपने घर में लाकर के उसी आदर से रखो जैसे आदर से आप अपने बेटे को, भाई को रखते हो। पैसे वाले इतने हैं कि एक घर हो सकता है कि दसों एकड़ में फैला हो लेकिन उस दस एकड़ के घर के बीच में वो अनाथालय नहीं होगा, वो अनाथालय दूसरी जगह होगा। ऐसा क्यों? गहरी बात बता रहा हूँ आपको, वो मानसिकता जो आदमी की जुड़ी हुई है। इसलिए कि हम इनको अपने घर का सदस्य तो कभी मान ही नहीं सकते। इनको अपने घर का कभी बना हीं नहीं सकते हैं और इन्हें अपने बराबरी में कभी बिठाये ही नहीं सकते हैं। इसलिए कितना ही करोड़पति आदमी हो वो अपनी उन संस्थाओं के नामों को गिनेगा। मेरे द्वारा इतनी इतनी जगहों पर इतने इतने अनाथालय, वृद्धालय, इतने स्कूल, इतने हॉस्पीटल, इतने कॉलेज चल रहे हैं, यह उसकी लिस्ट में रहेंगे तो कभी भी यह नहीं सोचेगा कि जैसे हमारे घर के बेटे हमारे व्यापार में Involve हो रहे हैं, वैसे ही ये बेटे हमारे व्यापार में Involve हो जाये क्योंकि इसी का नाम है- आत्मा के अन्दर पर के उपकार का भाव आ जाना लेकिन यह परोपकार का भाव भी सच्चा नहीं होता है।

आचार्य कहते हैं कि परोपकार भी उसके द्वारा तब सच्चा होगा जब आप यह जान लोगे कि पर क्या है व स्व क्या है? जब आप अपने स्व को जैसा अच्छा चाहते हो वैसा ही दूसरे के स्व को भी अच्छा बनाने का प्रयास करो तो आपके लिए वो परोपकार होगा। अगर आप पर को पर के रूप में जानकर के कर रहे हो तो वह भी आपका परोपकार नहीं हुआ। एक और गहरी बात सामने आती है कि पर को जब तक पर के रूप में जानोगे तब तक आप पर का उपकार कर ही नहीं सकोगे। पर का उपकार करने का मतलब है कि उसको भी अपने जैसा बना लेना और वह बात आपके अन्दर तब आएगी जब आपके अन्दर वह दिखेगा कि वह जीवात्मा है, वह भी मेरे जैसा आत्मा है, जैसा मेरा स्व है वैसा ही उसका स्व है। ऐसा जब आप अपने अन्दर आभास करोगे तब आप यह भावना कर पाओगे और जब तक यह आभास नहीं होगा तब तक परोपकार भी सच्चा नहीं होता है। दुनियाँ में लोग कितनी ही अध्यात्म की बातें कर लें, कितने ही अपने आपको आध्यात्मिक कह लें कितने ही अपने आप को बड़ा आध्यात्मिक ग्रन्थ का रचयिता बना लें या कितने ही बड़े-बड़े आध्यात्मिक प्रवचन करने वाले बन जायें, स्व कि प्रवृत्ति करना यह बहुत दुर्लभ

है। जितने भी आपको आध्यात्मिक दिखेंगे वो आध्यात्मिक लोग भी पर उपकार में पड़े हुए हैं। आप देखोगे कि जिन्हें आप आध्यात्मिक नहीं कहते पाओगे जिनके आगे उपाधियाँ लगी होंगी, जो अपने किसी विशेष ग्रुप में आपको रहकर के आध्यात्मिक मानते होंगे। उनके अन्दर भी इसी प्रकार की प्रवृत्तियाँ पड़ी होंगी कि बस दूसरे का उपकार करो, दूसरे को ज्ञान दो, दूसरे के पास ग्रन्थ पहुँचाओ, दूसरे के लिए शिविर लगाओ, दूसरे के लिए सब कुछ करो लेकिन कोई भी बंदा आपको ऐसा नहीं मिलेगा जो कभी पाँच मिनट बैठकर के अपने स्व के लिए अपना समय निकाल पाता हो। कितने ही लोग आपको मिल जायेंगे समयसार, प्रवचनसार, न जाने इतने-इतने आध्यात्मिक सब ग्रन्थों के ऊपर बड़े-बड़े प्रवचन करने वाले मिल जायेंगे, लेकिन कभी भी आपको 10 minute ध्यान करते हुए नहीं मिलेंगे, 10 minute सामायिक करने की उनके अन्दर क्षमता नहीं होगी। 10 minute अपनी आँख बंद करके बैठ नहीं पायेंगे लेकिन 2-2 घण्टे अध्यात्म के प्रवचन करते रहेंगे क्या है? यह सब वही है। आचार्य पूज्यपाद अलग हैं, बहुत इष्टोपदेश हैं, अगर आदमी के अन्दर घुस जाये तो उसे कोई दूसरी चीज पढ़ने की जरूरत ही नहीं। पर के उपकार करने की प्रवृत्ति हमारे मोह के कारण से चलती रहती है और हमें पता नहीं पड़ता है कि हम मोही हैं, दूसरे का मोह छुड़ाने के लिए तत्पर रहते हैं, अपना मोह नहीं छूटता। बात वो ही आ जाती है कि दूसरों से तो कहते हैं कि यह माया-मायाचारी है, इस माया के झंझट में मत पड़ना और वो खुद वो माया समेटकर के चक्कर लगाते रहते हैं। दूसरों से तो कहते हैं- यह सब माया है और माया कहकर के उनकी माया निकलवा लेते हैं और खुद माया लेकर के नौ-दो ग्यारह हो जाते हैं।

सही अध्यात्म क्या है :

ऐसे ही तरीके से यह अध्यात्म की भी कुछ धाराएँ चल रही हैं, दुनियाँ को केवल यही बताना कि यह अध्यात्म है। यह अध्यात्म है लेकिन भीतर से कोई अध्यात्म नहीं क्योंकि आध्यात्मिक व्यक्ति पर की इतनी चिंता नहीं करता जितनी स्व की चिन्ता करता है और अगर कभी पर की चिंता करनी पड़े तो वह पर को कभी भी दुख देना पसंद नहीं करेगा, पर को कभी भी कष्ट में नहीं डालेगा, परके लिए कभी भी अहितकारी बात ना कहेगा, ना सोचेगा। तब वो कहलाती है अध्यात्म की भावना और अध्यात्म के कार्य। आप देखेंगे आध्यात्मिक लोगों के अन्दर भी कितनी बड़ी बड़ी कषाय आपको मिल जाएगी कि उनमें कषाय के कारण से वो अपनी वृद्धि कर लेंगे और दूसरे को नीचे दिखाने की भावना रखेंगे और अपने आपको आध्यात्मिक कहेंगे।

हमें बताओ कि यह आध्यात्मिकता का भाव होता है, हमारी जो समाज है, हमारा जो मन्दिर है, हमारा जो ग्रुप है वो बड़ा है और दूसरों का है, वो कम हो। यह बात अगर आपके अन्दर आ गयी तो आप आध्यात्मिक हो ही नहीं सकते। किसी भी समयसार और प्रवचनसार को पढ़ने का प्रयोजन कोई सिद्ध हो नहीं सकता। इसलिए आचार्य यहाँ कहते हैं कि अपने मन को टटोलो, दूसरों

के चक्कर में मत पड़ो और दूसरों के कहने में आकर भी धर्म मत करो क्योंकि उस भीड़ में दूसरों के कहने से जो करोगे वो आपके अपने विवेक का नहीं होगा, अपने विवेक से सोचो कि यह हमारे अन्दर क्या भाव आता है और हम दूसरे के प्रति क्या भावना रखते हैं। जिसके अन्दर वास्तव में परोपकार कि भावना होगी तो आचार्य कहते हैं- वही सच्चा परोपकार कर सकता है जो स्व उपकार भी करना जानता हो क्योंकि जो स्व उपकार करेगा तो वह कभी भी दूसरों का अहित नहीं कर सकेगा। वह वास्तव में कभी किसी दूसरे को कोई सीख देगा तो वह सीख उसके उपकार के लिये होगी, यह कहलाता है परोपकार।

जैसा पूर्व आचार्यों ने हमारे ऊपर किया। यह आचार्य पूज्यपाद देव के द्वारा, आचार्य कुन्द कुन्द महाराज के द्वारा, इस प्रकार के जो यह ग्रन्थ लिखे गये थे जो हमें अध्यात्म का उपदेश दिया गया वह उपदेश हमको आज अच्छा लगता है क्योंकि वो वास्तव में उन्हीं चीजों में घुले-मिले हुए थे, उनके अन्दर भी वही आत्म-भावना थी। इसलिए उस आत्म भावना का प्रभाव आज हमारे ऊपर पड़ता है तो हमारे अन्दर भी स्व उपकार करने की भावना आ जाती है, अन्यथा स्व उपकार करने की प्रेरणा तो आपको कोई भी दे सकता है। लेकिन आपके अन्दर वो भावना उत्पन्न नहीं हो सकती क्योंकि वह भावना भी तब उत्पन्न होती है, जब हमारे अन्दर भी कुछ हो। हम अपने उपकार करने की अगर इच्छा करेंगे तो हम कभी भी दूसरों को नीचा दिखाने का भाव ही नहीं कर सकेंगे। इसलिए आचार्य कहते हैं कि सच्चा उपकार करना सीखो।

अंजन चोर :

एक सेठ भी, एक गृहस्थ भी सच्चा उपकार करता है जैसे अंजन चोर के ऊपर एक गृहस्थ सेठ ने उपकार किया। वह सेठ स्वयं भी इस रूप में पढ़ता है कि चोर भी इस बात को मान लेता है। यह सेठ वास्तव में धर्म करता है। इस सेठ के अन्दर कोई भाव है तो वह कभी भी उसके अन्दर अहित का भाव नहीं हो सकता है। एक सेठ के कहने पर वो अपनी जान जोखिम में डाल देता है। सेठ ने उससे direct भी वह बात नहीं कही, indirect बात कही लेकिन उस अंजन चोर को उस सेठ की बात पर इतना विश्वास हो गया कि वह उस सीके पर बैठकर के नीचे जो तलवारें लगी थीं, उन तलवारों को देखकर के भी एक साथ उन रस्सियों को काट देता है और उसको डर नहीं लगता कि मैं इन तलवार पर गिरकर के मर जाऊँगा। उसे नहीं डर लगा क्योंकि उसको मालूम था कि यह स्व उपकार में लीन है, दूसरों को दिखाने के लिए नहीं करता है। किसी को पता नहीं रहता था और वो कृत्रिम जिनालयों में पूजा करता ही नहीं था, वो अकृत्रिम जिनालय में पूजा करने के लिये चला जाता था। जहाँ पर कोई भी सामान्य मनुष्य पहुँच नहीं सकता। वहाँ जाकर के वो पूजा करता था क्योंकि विद्या उसकी दृढ़ता से मिल गयी थी और उस विद्या के माध्यम से वो सुमेरु पर्वत पर पूजा करने चला जाता था। वहाँ पर पूजा करके आता था, किसी को कुछ नहीं बताता था और वो सब

अपना धर्म करता रहता था। उसके धर्म का यह प्रभाव कि एक अंजन चोर को विश्वास हो गया और उस अंजन चोर को जब उस विद्या ने बचा लिया तो वह विद्या उससे पूछती है- बताओ तुम्हें हम क्या दान दें? तुम्हारे लिए क्या उपकार करें? वह अंजन चोर कहता है- हमें अब कुछ नहीं चाहिए, हमें उस सेठ के ही पास ले चलो जो सेठ हमें इस मृत्यु से बचा ले आया, हमें गिरते-गिरते बचा लिया, हमें उसकी विद्या पर विश्वास हो गया है। उस सेठ के पास में विद्या ले जाती है और वहाँ जाकर के अंजन चोर उससे कह देता है- आपने हमारे ऊपर इतना बड़ा उपकार किया कि मैं आज आपके पास में आकर के खड़ा हो गया। अब आप हमें यह बताओ कि मेरा आत्महित कैसे होगा? मेरा कल्याण कैसे होगा? आप जो कहोगे मैं करने के लिए तैयार हूँ। एक गृहस्थ व्यक्ति भी एक चोर को एक सामान्य व्यक्ति को धर्म के मार्ग पर इस ढंग से लगा सकता है, लगा देता है अगर वास्तव में उसके अन्दर धर्म है तो स्व के उपकार में जो लगा है वो अगर कभी भी दूसरे का उपकार करेगा तो वह उपकार भी उसको स्व की ओर ही ले जायेगा। मैं आपको यह बताना चाह रहा हूँ। इस दृष्टि से दृष्टान्त के माध्यम से, जो सेठ स्वयं सम्यग्दृष्टि है तो वह स्वयं भी भीतर से धार्मिक है, वह भी पूजा कर रहा है और उसके धर्म का इतना प्रभाव, उसके स्व उपकार का इतना प्रभाव कि उसके सामने जब वह चोर आ जाता है तो वह उस चोर को कहता है कि जो तुमने हमारे कहने से कर लिया वो अच्छा किया। अब हम आगे भी जो कहें वो करना। तुम्हारे सामने अगर कोई ऐसे आकर के हाथ जोड़कर के बोले तो तुम्हारे मन में सबसे पहले यह भाव आएगा कि हम इसे अपने अन्डर में रख ले, चोर था उसकी हमने सहायता कर दी कि चलो कोई बात नहीं, अब तू मेरा नौकर बनकर के रहना, मेरे घर का काम करना। तू जितना माँगेगा उतना पैसा दूँगा, जो सुख सुविधाएँ चाहिये वे सब दूँगा लेकिन उस जिनदत्त सेठ ने क्या किया उस चोर के साथ में? आप लोगों ने वह भाव पकड़ा नहीं होगा, कहानी तो कई बार सुनी होगी, पढ़ी होगी और जिस मोड़ पर आकर के वो कहानी खड़ी होती है उस मोड़ पर वह विचार देना चाहता हूँ कि जिनदत्त सेठ अगर वो चाहता तो उस चोर को हमेशा के लिये अपना सेवक बना करके रख सकता था। चोर से कहता कि यही धर्म है, तू भी यहाँ पर आया कर, मैं भी यहाँ आकर के पूजा किया करूँगा और इसी तरह से अपना कल्याण कर लेंगे। एक व्यक्ति जो स्वयं भी कुछ नहीं कर पा रहा है अगर वो सम्यक्ज्ञान रखता है तो दूसरे के लिए कितनी प्रेरणा का कारण बन जाता है। वह दूसरों को उस राह पर चला सकता है जिस राह पर वह खुद नहीं चल पा रहा हो। यह भी सम्भव है, वो तब सम्भव है जब उसे गहरा विश्वास हो कि उपकार तो यहीं है। स्व उपकार किसे कहते हैं, यह तो पर उपकार हो गया। हमने विद्या उस को दे दी थी, तुमने उससे ले ली, यह तो पर उपकार हो गया और तुम यहाँ तक आ गये, यह भी पर उपकार हुआ। लेकिन जब वो चोर उसके सामने खड़ा होकर के बिल्कुल विश्वास के साथ कहता है- आपकी बात पर हमें 100 प्रतिशत विश्वास है। आप हमें यह बताओ, अब हमें आगे

क्या करना है? हम सब कुछ करने के लिये तैयार हैं। मैं आपसे यह पूछूँ आप भी आध्यात्मिक हैं ना। आपको भी पर उपकार करने की दृष्टि आती है कि स्व उपकार करने की दृष्टि आती है। आप उस सामने खड़े व्यक्ति को कहाँ ले जाते? आप सोचते, यह हमारे यहाँ के मन्दिर में रह जाये, यह यहीं पर स्वाध्याय करने लग जाये, कराने लग जाये, यह यहीं पर पंडित बन जाये, यह यहीं पर हम सबको पंडित बनाकर के दूसरी जगह पहुँचा दे और यह धर्म की प्रभावना करने लग जाये। बस, आपका अध्यात्म वहीं तक सीमित रह जाता। ज्यादा से ज्यादा होता तो उसे अपने साथ पूजा करने के लिए अपने साथ तीर्थ यात्रा पर ले जाने के लिए हो जाता। उस जिनदत्त सेठ ने क्या किया? जो जानता होगा स्व उपकार की महिमा को वही स्व उपकार करने के लिए दूसरों को प्रेरित कर सकता है। उस जिनदत्त सेठ ने उस चोर को ले जाकर के उसी सुमेरु पर्वत में, जहाँ नन्दन वन था एक मुनि महाराज तपस्या कर रहे थे। उनके सामने ले जाकर के निवेदन करके कहा- महाराज! इसको अब कल्याण का मार्ग बताओ। यह भव्य जीव आपके सामने प्रार्थना करने आया है कि बताओ मैं अपना अब कैसे कल्याण करूँ ? इतनी बड़ी बात है कि एक गृहस्थ अपने से भी गिरे हुए व्यक्ति को अपने से ऊँचा उठाने की सोचे। इसको कहते हैं- स्व उपकार और वास्तविक परोपकार, इसको कहते हैं- वास्तविक अध्यात्म का ज्ञान और इसको कहते हैं वास्तव में आत्म-कल्याण की भावना। जैसी भावना हमारे अन्दर होगी वैसी ही हम दूसरे के लिए पहुँचा पाएंगे। उस सेठ के अन्दर स्वयं कितना बड़ा श्रद्धान होगा धर्म का, आत्मा का कि उसने ले जाकर के एक चोर को मुनि महाराज के सामने खड़ा कर दिया, तेरा कल्याण यहाँ पर होगा।

आपके पास कोई आ जाये और कहे कि हमें मुनि महाराज के पास जाना है तो आप उसको दस बात समझाकर के रोक दोगे, बेटा अभी मत जा, अभी तेरी उम्र ही क्या है। अगर कोई आपसे ज्ञान लेने पहुँच जाये तो आप उसको कभी भी मुनि महाराज के पास में हाथ पकड़कर लाने की हिम्मत नहीं कर पाओगे। अभी तो तेरा जीवन कुछ ओर ढंग से चल सकता है, तू अभी इस मार्ग पर मत जा। यह मार्ग ठीक है, अच्छा है, सम्यग्दर्शन होता है, रत्नत्रय होता है, सब अच्छा है लेकिन फिर भी समझ ले क्योंकि आपके अन्दर खुद की श्रद्धा नहीं, वैसी हिम्मत नहीं। इसी कारण से आपके सामने कोई भी व्यक्ति आता है तो ना आप उसका सही उपकार कर पाते हो और ना आप अपना उपकार कर पाते हो और आप जैसे ही लोगों की भीड़ बढ़ती चली जाती है। वास्तविक जो स्व उपकार करने वाले होते हैं वो तो गिनती पर गिनने लायक रह जाते हैं क्योंकि कोई भी व्यक्ति जो आपके सामने आता है, आप उसे अपने ही विचारों में ढालने का प्रयास करते हो। इसलिए आचार्य कहते हैं-पहले यह समझ लो स्व हित, स्व उपकार क्या है और पर हित, पर उपकार क्या है ? हर कोई व्यक्ति पर उपकार करने की बहुत जल्दी करता है। जैसे ही उसको कुछ भी मिलता है तो थोड़ा सा ज्ञान मिल गया, कोई भी ग्रन्थ पढ़ लिया, कुछ भी थोड़ा सा कर लिया, दूसरों को

सबसे पहले देगा। हमको उससे कितनी संतुष्टि है? हमको उससे कितना आनन्द है? यह पहले नहीं परखेगा व दूसरे को पहले देगा और जब वो दूसरे को देगा तो उसके अन्दर खुद नहीं होने के कारण से जब वो चीज दूसरे के पास में पहुँचेगी तो वह उसको भी उसी प्रकार से असंतुष्टि देगी जो उसने लेने वाले से पायी है। इसी कारण से वह अध्यात्म की धारा आगे बढ़ नहीं पाती है क्योंकि कोई व्यक्ति वास्तव में स्व हित करने के लिए उत्सुक होता ही नही है, वह हमेशा पर-हित की चिन्ता करता है। आपको भी अगर थोड़ा सा ज्ञान हो जाएगा तो आप को भी ऐसी घबराहट होगी भीतर से कि आप दूसरों से कहोगे- भैया तुम भी यह ज्ञान प्राप्त करो, तुम भी यह ग्रन्थ पढ़ो, तुम भी यह सुनो लेकिन आप अपने लिए कितना कर रहे हो, अपने लिए कितना उस गहराई से उतर रहे हो, यह आप को चिन्ता नहीं होगी। ग्रन्थ अच्छा है, प्रवचन अच्छा है तो आप सुनोगे, आपके मन के अन्दर तुरन्त भावना आएगी कि इसको दूसरे लोग पढ़ें और दूसरे लोग भी सुनें लेकिन आपके अन्दर कितनी गहराई से यह भावना आएगी कि हम ही इसको आत्मसात् कर लें क्योंकि स्व उपकार की भावना गहराई से किसी के अन्दर रहती ही नहीं है और इसका एक मात्र कारण है कि हमारा मन ही हमें हमारा उपकार करने नहीं देता और दुनियाँ की बातों में उलझा देता है। यह पंथ, वो पंथ, यह गुरु, वो गुरु और इसी में उलझी दुनियाँ पड़ी है।

स्व उपकार किसी को कहीं से कहीं तक कुछ नहीं मालूम और इसी में मजा आता है। हम जैसे दस लोग खड़े हो गये तो अपन समझ लेगें, हाँ अपना धर्म अच्छा चल रहा है। बस, आचार्य कहते हैं कि यह लोक में अज्ञानता के कारण से चल रहा है यह सब अज्ञानता से कहा गया है ''उपकुर्वन् परस्याज्ञो दृश्यमानस्य लोकवत्'' जो यह दुनियाँ में हमें दिखाई दे रहा है, सब अज्ञानी लोगों के काम हैं, विज्ञ लोगों के काम नहीं हैं। अपनी आत्मा के हित की इच्छा से अपना आत्महित करने के लिए अपने उपकार में तत्पर हो जाना और अगर कोई वास्तव में उस उपकार को करने में निमित्त दिखाई दे तो उसी निमित्त के पास तक दूसरे को पहुँचा देना।

आप तो रोक लेते हो अपने घर के बेटों को भी, दूसरों के बेटे को भी और अगर कहीं दूसरे की बेटी भी अपने घर में आ गयी और हमारी विचारधारा वही है तो उसको भी अपन उसमें ही ढाल देंगे। मान लो आपकी विचार धारा में गुरू की मान्यता नहीं है तो आप कितने ही धार्मिक बने रहेंगे, आप उसको कभी भी गुरु के पास नहीं ले जाएंगे, सोचो, आप कहाँ हो? एक वो जिनदत्त सेठ है जो एक चोर को भी अपने गुरू के पास में खड़ा कर देता है। जब वह मुनि महाराज उस चोर को जिन-दीक्षा दे देते हैं, उसको निर्ग्रन्थ मुनि बना देते हैं तो उसी समय पर वह अंजन चोर के सामने जिनदत्त सेठ तीन बार झुक-झुक कर के 'नमोस्तु' करता है। हे भगवन्! नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु। इसे कहते हैं धर्म के प्रति श्रद्धा, इसे कहते हैं मोक्ष मार्ग के प्रति श्रद्धा, इसे कहते हैं स्व उपकार की भावना। ऐसी हिम्मत आप विचार तो करो क्या आपके अन्दर एक गृहस्थ होकर के आ सकती है?

दूसरों को कोई सुखी, आनंदित एवं सम्यग्दृष्टि नहीं बना सकता।

आप विचार करो कि क्या आप किसी को सही मार्ग पर लगाने के लिए भी उसका उपकार करने की भावना कर सकते हो? वह उपकार करने की भावना नहीं है तो सब कुछ आचार्य कहते हैं, यह जो भी हम कर रहे हैं, वो सिवाय पाखण्ड के कुछ नहीं है। दूसरों को भ्रम में डालने के अलावा कुछ नहीं है। जब तक यह स्व उपकार की भावना नहीं आएगी तब तक आपके अन्दर दूसरे का भी सही उपकार करने का भाव नहीं बन पाएगा क्योंकि आप भीतर से खोखले हैं, दूसरों को क्या देंगे? जिसके भीतर आनन्द नहीं है, वो दूसरों को क्या आनन्द देगा? जिसके पास खुद सम्यग्दर्शन नहीं है वो क्या दूसरों को सम्यग्दृष्टि बनायेगा? जिसके पास खुद सम्यग्ज्ञान नहीं वो क्या दूसरों को सम्यग्ज्ञानी बनायेगा? केवल पढ़ने से, केवल बातें करने से अगर किसी को सम्यग्दर्शन ज्ञान हो जाते तब तो बहुत लोग तर गये होते। जो चीजें दिखाई देती हैं, उन चीजों को हम समझें।

वो चीजें हमें इन दृष्टांतों के माध्यम से दिखाई देती हैं वो दृष्टांत भी हम पढ़ जायेंगे लेकिन हमको कभी भी वो गहराई पकड़ में नहीं आएगी। आप विचार करें कि उस दृष्टांत में कितनी गहराई की बात है। एक जिनदत्त सेठ ने एक चोर को 'नमोस्तु' किया है, आपके सामने कोई आज ही आया हो मालूम हो यह शराबी है, कबाड़ी है, वेश्यागमन करता है और सब करता था। वो वेश्या के लिए ही तो वो हार चुराने के लिए गया था और उसी के लिए भाग रहा था। समझो, कितना बड़ा धर्म का भाव और वहाँ जाकर के उसने सब छोड़ दिया तो उस सेठ ने यह नहीं पूछा- तूने कितनी चोरियाँ कीं, तू कब से वेश्या की संगति में है, तू कब से बुरे काम कर रहा है, क्या लेना देना? सही मार्ग पूछ रहा है। उसने सही मार्ग बताया और सही मार्ग ही वह बन गया। उसने उसके लिए 'नमोस्तु' किया और वह अपने रास्ते पर गया। वह चोर अपने ध्यान में बैठ गया और वो चोर उसी भव में उसी पर्याय में केवलज्ञान को प्राप्त करके सिद्ध बन गया है। सेठ का तो कुछ पता है ही नहीं, कौन से भव में मोक्ष गया, गया कि या नहीं गया। लेकिन चोर का पक्का मालूम है, अंजन चोर सिद्ध बन गया। समझो, कितनी बड़ी चीज है, हम जिन चीजों के लिए रोक रहे हैं, मुनि महाराज के पास आने के लिए भी रोकते हैं, मुनि के पास न जाये, ऐसी शिक्षा देते हैं और हम खुद अपने आपको सम्यग्दृष्टि कहते हैं। तुम्हारा सम्यग्दर्शन कहाँ से शुरू हो रहा है, हमें वो समझ में नहीं आता। किस कसौटी पर खरा उतर रहा है? हमें कभी समझ में नहीं आया। आप हमें समझा सको तो बहुत अच्छी बात होगी। सम्यग्दर्शन कि पहली कसौटी वह निःशंकित अंग जिसके लिए आचार्य दृष्टांत दे रहे हैं और इसीलिए दे रहे हैं क्योंकि उस कसौटी पर भी अगर हमारा सम्यग्दर्शन खरा नहीं उतरता तो आगे के सात अंगों से भी हम रहित हैं और वो सब अंग हमारे अन्दर नहीं हैं तो सम्यग्दर्शन हमारे अन्दर कहाँ से होगा? इस सम्यग्दर्शन की शुरुआत यहीं से होती है, आत्महित करने की भावना पहले और जो आत्महित करेगा व जो आत्महित कर रहे हैं उनसे कभी भी उसको वंचित नहीं करेगा बल्कि सम्यग्दृष्टि जीव के अन्दर यह भाव होगा कि एक बार चलो तो वहाँ?

जिसके भीतर आनन्द नहीं है वो दूसरों को क्या आनन्द देगा।

बिजौलिया पार्श्वनाथ में, वो दूसरे को रोकेगा नहीं और पकड़ कर के लाएगा कि एक बार सुनो तो आत्मा। आत्मा क्या होता है? एक बार आत्मा की बात बैठकर के सुनो तो, अच्छा ना लगे छोड़ आना, कुछ पैसा थोड़ी ना लग रहा है। वह सम्यग्दृष्टि दूसरों को भी इसी प्रकार से आत्महित में लगाता है तभी उसके सम्यग्दर्शन की कसौटी पर उसकी परीक्षा होती है। इसीलिए आचार्य कहते हैं- आत्महित करने की अगर आपके अन्दर वास्तविक भावना होगी तो दूसरों से कहलायेंगे नहीं, दूसरों को भ्रम में नहीं डालेंगे बल्कि आप उन्हें समीचीन मार्ग पर लगाने का हर भरसक प्रयास करेगें, स्वयं ऐसा नहीं बन पाये तो भी उसे बनाने का प्रयास करेगें तो आपके अन्दर परोपकार भी होगा। जैसे जिनदत्त सेठ ने परोपकार किया। कितना बड़ा परोपकार किया इसको कहते है- परोपकार। हमारा परोपकार बस दुनियादारी की देखा-देखी की बातों में लगा रहता है। उसने इतना किया तो हम इतना करेगें, उसने ऐसा किया तो हम ऐसा करेंगे। धर्म कितना है हमारे अन्दर, इससे कोई मतलब नहीं, बस इसमें ही सबका दिमाग चल रहा है और उसी में सब यह अज्ञानता बढ़ती चली जा रही है। जैन धर्म अध्यात्म विहीन होता चला जा रहा है, जबकि अध्यात्म रूप में ही जैन धर्म क्या, पूरी का पूरी आज दुनियाँ में सामान्य से व्यक्ति जिन्हें कुछ भी धर्म का ज्ञान नहीं है, वे बड़ी-बड़ी आत्मा की बातें भी कर रहे लोग उनकी बातें सुन रहे हैं। लेकिन जैनधर्म धीरे-धीरे सिवाय दिखाने का धर्म बनता चला जा रहा है जिसमें कोई भी आत्म कल्याण की भावना किसी के अन्दर अब आ नहीं रही है। यह एक पीड़ा उनके अन्दर होती है जो देख रहे हैं। वास्तव में हमारे पूर्वजों ने हमें क्या दिया और आज हम क्या होते चले जा रहे हैं इसलिए यह पीड़ा उत्पन्न होती है। आप वास्तव में आत्महित करने की भावना रखें और उसी तरीके से चलें, जैसा आचार्यों ने कहा है। आत्महित करने वाला व्यक्ति स्व-पर दोनों का सही सही उपकार कर सकता है और करता है, यह अपने लिए अन्दर स्व-पर का निश्चय करें और इस निश्चय में ही दूसरों को लगायें।

आत्महित की भावना रखने वाला दूसरों को समीचीन मार्ग पर लगाने का प्रयास करेगा।

स्व-पर भेदज्ञानी को लाभ

33

गुरूपदेशादभ्यासात् संवित्तेः स्वपरान्तरम्।
जानाति यः स जानाति मोक्षसौख्यं निरन्तरम्॥

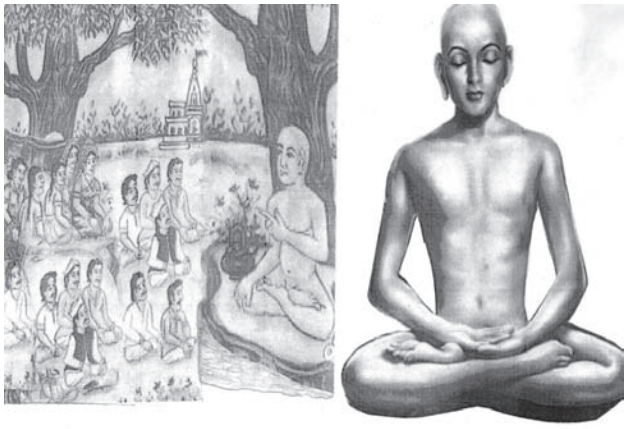

अन्वयार्थ—(यः) जो मनुष्य **(गुरूपदेशात्)** गुरु के उपदेश से **(अभ्यासात्)** अभ्यास से तथा **(संवित्तेः)** आत्म-ज्ञान से **(स्वपरान्तरम्)** स्व और पर पदार्थों के अन्तर को **(जानाति)** जानता है **(सः)** वह **(निरन्तरम्)** सतत **(मोक्ष-सौख्यं)** मोक्ष के सुख को **(जानाति)** जानता है।

- **श्वाँस और प्राण**
- **गुरु**
- **ध्यान**

आचार्य श्री यहाँ आत्महित की प्रेरणा देकर आगे कहते हैं कि आप मोक्ष सुख को भी जान सकते हैं, मोक्ष सुख का भी आप अनुभव यहीं बैठे-बैठे कर सकते हो। यहाँ कहा जा रहा है कि सिद्ध बनने की आपको जरूरत नहीं है, इसी दशा में आप मोक्ष सुख को भी जान सकते हो, मोक्ष सुख का भी आप थोड़ा सा अनुभव कर सकते हो। आचार्य महाराज यहाँ कह रहे हैं 'गुरूपदेश', गुरु के उपदेश को श्रवण किये बिना आपको कभी भी मोक्ष सुख का लाभ या उसका अनुभव नहीं होगा। गुरु के उपदेश का यह महत्व इसीलिये है कि जब तक आप गुरु के उपदेश से जीवादि सात तत्त्वों के विषय में नहीं सुनेंगे, तब तक आपको जीव तत्त्व के बारे में, अन्य तत्त्व के बारे में एक दृढ़ भावना नहीं बनेगी। जब तक आपकी दृढ़ धारणा नहीं बनेगी, तब तक आप कुछ भी करेंगे तो उससे आपको कुछ शान्ति तो मिल सकती है लेकिन विशेष उपलब्धि नहीं होगी। कई लोग आत्मा को जानते नहीं है, कई लोग आत्मा के गुणों के बारे में कोई ज्ञान नहीं रखते हैं। कई लोगों के लिये आत्मा कैसे परमात्मा बन सकता है? या आत्मा को परमात्मा बनने में बाधक कारण क्या है? इनका भी ज्ञान नहीं रहता फिर भी वे लोग थोड़ा सा किन्हीं दूसरे गुरुओं के कहने पर शान्ति से बैठ जाते हैं। आत्मा का ध्यान कर रहे हैं, ऐसा उनके लिये अनुभूत होता है क्योंकि हर एक जीव आत्मा है। वो वास्तव में है तो आत्मा ही लेकिन उसे पता नहीं है कि मैं कैसा हूँ, सामान्य व्यक्ति जिसने कभी इष्टोपदेश न पढ़ा हो, कभी जिसने जीवात्मा के गुणों के बारे में न पढ़ा हो तो वह भी जब थोड़ी देर के लिये मन को शान्त करता है।

थोड़ा सा वह ध्यान की स्थिति में बैठता है, कुछ नहीं करता है तो उन लोगों के लिये समझाया जाता है कि अपनी श्वाँसों पर ही ध्यान दो, यह क्यों होता है? जानते हो क्योंकि इससे ज्यादा भीतर की अगर हम कोई बात कहेंगे तो उनके समझ में नहीं आयेगी। जन-सामान्य उसी बात को ग्रहण करता है जिस बात का उसे अनुभव होता है। श्वाँस का हमें अनुभव होता है। हम आपसे कहेंगे- भैया, अपनी श्वाँस पर ध्यान दो तो आप जल्दी ध्यान दे सकोगे और हम आपसे कहेंगे- अपनी आत्मा पर ध्यान दो, आप कहोगे-कहाँ है आत्मा? तो जो अनेक लोग आत्मा को नहीं जानते हैं, वह भी थोड़ा सा शान्त बन जाते हैं। जब वो श्वाँस पर भी ध्यान देते हैं तो उसके लिये एक थोड़ी सी शान्ति मिल जाती है क्योंकि वह भी अपना प्राण है, श्वाँस भी अपना प्राण है [दस प्राणों में उस श्वाँस प्राण को कहा है]। थोड़ा तो हमारा अपने प्राण की तरफ ध्यान चला गया। जिसकी तरफ हमारा ध्यान गया, वही चीज हमारे लिये ऊर्जावान् हो गयी। प्राणों की तरफ हमारा ध्यान गया तो हमारे प्राण में भी एक गति आ जाती है, एक शक्ति आ जाती है और हमारे प्राण भी ऊर्जावान बन जाते हैं। जब आप श्वाँस को भी शान्ति के साथ लें और शान्ति के साथ छोड़ें, श्वाँस को भी आप चैन से लें और चैन से छोड़ें, श्वाँस को भी आप प्राण समझकर लें और प्राण समझकर के छोड़ें

सामान्य व्यक्ति आत्मा, आत्मा के गुण एवं परमात्मा बनने की प्रक्रिया से अनजान है।

तो आपको उस श्वाँस से भी पूरे शरीर में एक ऊर्जा मिलेगी। यह बहुत बड़े-बड़े विज्ञान चल रहे हैं। दुनियाँ में आपको पता नहीं है, इसको कहते हैं प्राणिक ऊर्जा का विज्ञान। प्राणों से हमें ऊर्जा मिलती है और वो प्राण ही हमारे लिये ऊर्जावान बनाते हैं। हर आदमी को आज ऊर्जावान बनने की जरूरत है। energetic बने रहना चाहिये। चाहे वह भले ही वह 80 साल का हो जाये। हर आदमी यह सोचता है, अपनी energy कम नहीं होना चाहिये। उसे energetic बनायें रखने के लिये अनेक-अनेक प्रकार की विधियाँ खोज रहे हैं। वो सब विधियाँ यहीं से निकलती हैं, जहाँ से यह जैनधर्म अपने को सब प्रकार की ऊर्जाओं के बारे में बताता है। इन्द्रियों की ऊर्जा, तीन बलों की ऊर्जा यह सब ऊर्जायें हमारे अन्दर हैं। आप जिस चीज पर ध्यान दो वहीं पर आपका उपयोग लगेगा, वहीं पर आपकी सारी शक्ति लग जायेगी और वो शक्ति अपने आप जो आपके अन्दर उत्पन्न होने वाली है, वह उसी से प्रकट होने लग जायेगी। आप श्वाँस पर ध्यान दोगे तो आपकी श्वाँस ही ऊर्जावान बना देगी आपको, क्योंकि आपका ध्यान गया उस ओर। आप कभी भी देखना कि हर समय जो हम श्वाँस लेते रहते हैं, उससे हमारे अन्दर इतनी energy नहीं आती है। आप जो सहज श्वाँस लेते हो उससे आपके शरीर में ऊर्जा आ रही है। आप अपने आप को बहुत fresh महसूस कर रहे हो यह नहीं लगेगा लेकिन आप जैसे ही श्वाँस पर ध्यान दोगे, श्वाँस को यह समझ करके ग्रहण करोगे कि मैं प्राण ग्रहण कर रहा हूँ और वो प्राण हमारे पूरे शरीर में प्रभावित हो रहे हैं तो आपके पूरे शरीर के एक-एक अंग पर उसका आघात पहुँचेगा और आपका एक-एक अंग उससे ऊर्जावान बनेगा। यह भी एक ऊर्जा है और वो भी ऊर्जा है, वह ऊर्जा उसी तन प्राण से निकली है। जब हम इन बाहरी प्राणों की ऊर्जा को ग्रहण करके अपने आप को इतना ऊर्जावान बना सकते हैं तो अंतरंग का जो प्राण है जिसे हम निश्चयप्राण कहते हैं, उस चेतना प्राण के पास तक पहुँचने पर हमारे अन्दर कितनी ऊर्जा आ जाएगी। यह आप अपने आप सोच सकते हो क्योंकि जितना आप अपनी ऊर्जा को भीतर से प्रकट करोगे और उसकी तरफ ध्यान दोगे उतना ही अपने बाहरी जो उपकरण है अपने आप सही चलते रहेंगे, श्वाँस पर ध्यान देंगे, श्वाँस सही चलेगी, एक-एक इन्द्रियों पर ध्यान देने से एक-एक इन्द्रिय को बल मिलेगा। एक-एक प्राण पर ध्यान देने से, बल पर ध्यान देने से एक-एक बल में ऊर्जा आयेगी और जब आप चेतना की ओर ध्यान देंगे तो यह सब अपने आप activate हो जायेंगे क्योंकि चेतना मूल प्राण है, निश्चय प्राण है। चेतना से ही सब प्राणों की उत्पत्ति हो रही है और लोग बाहर के प्राणों की ऊर्जा तक ही सीमित रह जाते हैं, चेतना प्राण तक पहुँच नहीं पाते हैं।

इन ग्रन्थों में जैन आचार्य उस चेतना प्राण तक पहुँचते हैं, चेतना की ऊर्जा तक महसूस कराने की भावना रखते हैं। वो कहते हैं कि आप उस चेतना प्राण की ओर देखोगे तो आपके यह जितने भी प्राण हैं यह सब अपने आप स्वस्थ होकर के सही चलते रहेंगे। उस चेतना प्राण को गुरु से ही

प्राणिक ऊर्जा का विज्ञान हमारी श्वांसों की आवा-जाही पर आधारित है।

समझना पड़ेगा, अन्य प्राणों की जानकारी तो आपको दुनियाँ में कहीं भी मिल जायेगी। प्राणिक ऊर्जा, श्वाँस की ऊर्जा, प्राणायाम की ऊर्जा यह सब आपको दुनियाँ में कोई भी दे देगा लेकिन चेतना प्राण की ऊर्जा आपको केवल निर्ग्रन्थ गुरु ही दे पायेंगे क्योंकि उनके अन्दर इन प्राणों का श्रद्धान है। वे केवल बाहरी प्राणों से नहीं जीते। उन्हें पता है कि अपना वास्तविक प्राण तो अपना चेतना प्राण है, वह चेतना प्राण कभी भी विनाश को प्राप्त नहीं होता। इह प्राणों की तो हम रक्षा करते-करते भी विनाश होते देख लेंगे। रक्षा तो कर लेंगे लेकिन इनका धीरे-धीरे विनाश भी होता जायेगा। 60 वर्ष की उम्र हो गयी, 70 वर्ष की उम्र हो गयी, हो सकता है 80 वर्ष में भी आपके शरीर के प्राण ऊर्जा अच्छी चल रही हो। कितना बड़ा धोखा हो जाता है कि जब व्यक्ति यह सोच लेता है- हमने अपनी शरीर की ऊर्जा को पूरा अच्छा बनाये रखा, अच्छे तरीके से आपने शरीर-क्रिया पर ध्यान करके अपने शरीर को बिलकुल ताजा बना कर के रखा, हर चीजें जो आपको अपने शरीर के लिये अच्छी मिल सकती हैं। खाने-पीने में बिलकुल limit के साथ doctor के साथ मिलकर के आपने उपयोग में लाये। आज हर व्यक्ति अपने शरीर के प्रति इतना ध्यान दे रहा है कि हर व्यक्ति ने अपना family doctor बना रखा है। उससे वो कहता है- देखो। आप हमारा बिलकुल checkup करते रहो, कब क्या होना है? यह तुम्हारी जिम्मेंदारी है, बस, तुम बताते रहो, हमें क्या करना है, कब हमारा B.P. होता है, कब हमारा B.P. हो जाता है, किस कारण से हो जाता है, हमें क्या करना चाहिये? आप बताओ, इतना अपने आप को आज वैद्यों पर, डाक्टरों पर समर्पित कर दिया है कि उसकी हर एक चीज, अगर डॉ. कहेगा- आपको सेव खाना है तो वह सेव खाएगा, डॉक्टर कहेगा- आपको केला खाना तो वो केला खायेगा। डॉक्टर के माध्यम से अपना जीवन उसने चलाना शुरू कर दिया और यह जानना चाहता है या अपने अन्दर यह महसूस करना चाहता है कि हम इस डॉक्टर के माध्यम से हमेशा चलते रहें, हमें कोई परेशानी ना आये और जैसे परेशानी हो तो यह डॉक्टर उसको हल कर देगा। डॉक्टर कहेगा-आज से आपको इतना जूस पीना है, आपको इतना सा टमाटर खाना है, आपको इतना यह फल खाना है, आपको वह हर चीज की quantity बता देगा। इसमें इतनी कैलोरी है, इसमें इतनी प्रोटीन है, वो सब बता देगा और सब करते करते आपकी उम्र मान लो 80 वर्ष हो गई, 90 वर्ष तक भी मान लो, आप बिल्कुल स्वस्थ हो, 80 वर्ष तक अपनी ऊर्जा को अच्छा बनाये रखा। अच्छे तरीके से आपके शरीर की श्वाँसोच्छ्वास हर क्रिया पर ध्यान देकर अपने शरीर को बिल्कुल ताजा बनाकर रखा। खाने पीने की चीजें बिल्कुल लिमिट के साथ डॉक्टर के साथ मिलकर के आपने उपयोग में लायी। आज हर व्यक्ति अपने शरीर के लिये इतना ध्यान दे रहा है कि हर कुछ कर रहा है। हो सकता है कि आप इतना नहीं करते हों लेकिन जो बड़े-बड़े लोग हैं ना, उनके रोजाना चैकप होते हैं। यह जितने भी एक्टर, क्रिकेटर होते हैं, बड़े-बड़े मल्टी मिलेनियम कम्पनी के मालिक होते हैं, इन सबके साथ ऐसा ही चलता है। इनके लिये

चेतना मूल प्राण है। चेतना से ही सब प्राणों की उत्पत्ति हो रही है।

रोजाना कुछ न कुछ होते हुए इन्हें ऐसा लगता है कि मेरा जीवन बिल्कुल सही चल रहा है, कोई भी बीमारी नहीं है। 80 वर्ष के होने के बाद भी वह हो सकता है तरोताजा हो लेकिन क्या उनका वह शरीर जो उन्होंने बना रखा है? वह शरीर उनका वैसा ही बना रहेगा या वह कभी छूट जायेगा? अगर वह शरीर तरोताजा भी बना रहे, उनके लिये हमेशा ही लगता रहा कि हम एर्नजेटिक हैं तो एक दिन वह अचानक से छूट जायेगा। एक तो वह व्यक्ति है जिसका शरीर उसे धीरे-धीरे लगने लग जाता है कि यह छूट रहा है और एक का अचानक से छूट जाता है। दोनों में से नुकसान किसको है, फायदा किसको है। यह सोचना है एक तो वह व्यक्ति है जो धीरे-धीरे समझता जा रहा है, मेरा शरीर कमजोर हो रहा है, मैं धीरे-धीरे अपने शरीर की ऊर्जा को कम महसूस कर रहा हूँ। वह अगर सोच रहा है तो वो व्यक्ति थोड़ा सा धर्म-साधन कर लेगा और जो हमेशा ऐसा समझेगा कि मैं 80 वर्ष का भी होकर के बिल्कुल फ्रेश हूँ, आप कहो तो 3 किलोमीटर दौड़ सकता हूँ, उसका शरीर अचानक से छूटेगा क्योंकि आयु तो उसकी क्षय को प्राप्त होगी। आयु क्षय को प्राप्त होगी तो जिस समय पर क्षय होगी, वह उसी समय लुढ़क जायेगा। डॉक्टर समझ नहीं पायेंगे कि यह कब लुढ़क गया और क्यों लुढ़क गया? फायदा किसमें है? यह आपको सोचना है। आप देखोगे कि शरीर की ओर दृष्टि है तो आपको लगेगा शरीर अच्छा बना रहे और हम शरीर के साथ जीते रहें और अचानक से महाराज! मृत्यु आ भी गयी तो चलो कम से कम पीड़ा तो नहीं हुई लेकिन अध्यात्म की दृष्टि से धर्म की दृष्टि से यह आपके लिये बहुत बड़ी हानि की चीज है। क्योंकि आपका अंत समय तक परिणाम अपने ही शरीर पर लगा रहा। अपनी आत्मा के लिये आपका परिणाम लगा ही नहीं। आत्मा शरीर से निकल गयी और कुछ समय के लिये उसने अपने शरीर का सुख पाया। शरीर हमारा स्वस्थ रहा, शरीर से हम तरो-ताजा रहे लेकिन उसने अपनी आत्मा के लिये कोई आगे के सुख की प्राप्ति नहीं कर पाई। दुनियाँ में बहुत अध्यात्म बिखर रहा है। आप कहीं हिल स्टेशनों पर चले जायें इधर, माउण्ट आबू की तरफ, इधर जम्मू कश्मीर की तरफ, चाहे कहीं ऐसे एकान्त स्थानों पर, वहाँ पर भी बड़े-बड़े आश्रम मिलेंगे। लोग बड़े-बड़े पैसे देकर के इस प्रकार के शान्ति के लिये थोड़े से आयाम करते हैं और ध्यान इत्यादि करने का अभ्यास करते हैं। आचार्य कहते हैं- यह सब चीजें आपको तात्कालिक सुख तो दे सकती हैं, तात्कालिक शान्ति तो दे सकती है लेकिन बहुत लम्बे समय तक आपको सुख और शान्ति की प्राप्ति इन चीजों से नहीं हो सकती क्योंकि आपकी अवधारणा में जीवन उतना ही है कि हम इस श्वाँस पर ध्यान दें, श्वाँस लेते रहें व श्वाँस छोड़ते रहें। प्राण आपके लिये श्वाँस तक सीमित है आपका चेतना प्राण की ओर ध्यान नहीं है। जब तक आपका अपने जीव का जो चेतना प्राण है उसकी ओर ध्यान नहीं जायेगा तब तक आपको शरीर का सुख मिल जायेगा लेकिन मोक्ष का सुख नहीं मिलेगा।

जब जिसका समय आयेगा, आयु क्षय को प्राप्त हो ही जायेगी।

जैन दर्शन हमें ऐसे आनन्द की ओर ले जाता है, जहाँ पर शरीर भी कष्ट में हो तो भी हम आनन्द में पड़े रहे, ऐसी तरकीब सिखाता है। शरीर कष्ट में हो तो भी आपकी आत्मा में कोई फर्क ना पड़े। आपकी आत्मा इतना चैतन्य प्राण से भर जाये कि आपको अपनी आत्मा का कष्ट महसूस न हो। अपनी आत्मा में किसी भी प्रकार की आपको पीड़ा महसूस न हो। यह विज्ञान आपको यह दर्शन सिखाता है। जब आप चेतना प्राण की ओर जायेंगे तो आपको अपनी चेतना के स्वभाव का ज्ञान होगा। चेतना का जो स्वभाव है, वो इन प्राणों का स्वभाव नहीं है। श्वाँस तो पौद्गलिक है, शरीर के सारे के सारे प्राण पुद्गल से जुड़े हुए है। वो एक भिन्न द्रव्य है जो हमारी चेतना से कोई सम्बन्ध स्वभाव की अपेक्षा से नहीं रखते हैं। चेतना का जो स्वभाव है वह स्वभाव अलग है, श्वाँस को ग्रहण करने का स्वभाव और छोड़ने का स्वभाव तो अलग है। इसीलिये चेतना प्राण जब अपना स्वभाव के रूप में दिखने लग जाता है तो इन श्वाँसों में कभी कमी भी आ जाये, इन प्राणों में कभी सुरक्षा रखने के बाद भी कमी आ जाये तो भी आत्मा के अन्दर किसी भी प्रकार का दुःख उत्पन्न नहीं होता। यह विधि यहाँ पर आपको आचार्य बता रहे हैं। इसीलिये यह सूत्र जो आपने पहले सुने है उन्हें भी कभी कभी remind करते रहना। ऐसा नहीं कि वो चार दिन पहले बताया था ''न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा'' यह चीज यहाँ नहीं लगेगी, ऐसा नहीं है। यह हर चीजें आपको ध्यान रखना कि जब मेरी मृत्यु नहीं है तो व्यथा किसकी, चेतना में मृत्यु नहीं, चेतन में रोग नहीं। जब आपके अन्दर चेतना के प्राण के बारे में दृढ़ श्रद्धा उत्पन्न हो जायेगी तो फिर आपके शरीर में ढीलापन आने पर भी, आपके शरीर में ऊर्जा कम होने पर भी यह नहीं सोचना कि हम शरीर की ऊर्जा को बनाये रखें। आप सोचोगे कि हम अपनी चेतना की ऊर्जा को बनाये रखें और यह चेतना की ऊर्जा आपकी बनी रहेगी तो यह आपको अगले जन्म में भी काम आयेगी। जब तक आपके साथ शरीर है, आपकी चेतना यदि उस शरीर में ज्यादा जुड़ी हुई है तो चेतना की ऊर्जा कम हो जायेगी। यह भी ध्यान रखना क्योंकि चेतना ने ध्यान शरीर पर ज्यादा दिया। इसीलिये ऊर्जा चेतना की कम हो जायेगी। जब चेतना को यह पता चल जाता है कि यह शरीर तो छूटना ही है, छूटेगा ही इसीलिये यह प्रभाव दिखा रहा है, चेतना को और अधिक ऊर्जा प्राप्त होती है, चेतना शक्ति वाली बन जाती है। जिस पर ध्यान दोगे, वही चीज शक्ति वाली बन जाती है। श्वाँस पर ध्यान दोगे, आपको लगेगा हाँ श्वाँस से अपने को ताकत मिली और आप पूरी चेतना पर ध्यान दोगे तो आपको लगेगा (उस बात की गहराई तक हर कोई नहीं पहुँच पाता इसीलिये आचार्य महाराज को यहाँ कहना पड़ा 'गुरूपदेशात') पूरी चेतना से अपने को ताकत मिली है।

गुरु :

गुरु का मतलब, क्या कोई भी अपने आगे गुरु लगा ले तो गुरु नहीं हो जाता। हम किसी को भी गुरु कह दें तो गुरु नहीं हो जाता। गुरु तो हम बचपन से सुनते आते हैं, जब हम सरस्वती विद्या

शरीर कष्ट में होते हुये भी आत्मा चैतन्य प्राण से भरा हो, ये जैन दर्शन सिखाता है।

मंदिरों में पढ़ते हैं, बाल मंदिर में पढ़ते हैं, तो वहाँ पर भी तो गुरु ही कहा जाता है। (वो बात अलग है कि कोन्वेन्ट स्कूल में 'सर' कहा जाता है, गुरु नहीं कहा जाता) लेकिन वह गुरु भी यहाँ अपेक्षित नहीं है। जो कोई भी गुरु हमें इस प्रकार से केवल शरीर तक सीमित रख देते हैं वो भी गुरु यहाँ अपेक्षित नहीं है। यहाँ गुरु है, जिन्हें हम कहते हैं- पंच परमेष्ठी गुरु और उन पंच परमेष्ठी में भी गुरूपदेश देने वाले हैं, वो हमारे लिये सबसे पहले गुरु हैं, सिद्ध भगवान भी बाद में क्योंकि वो कुछ करने वाले नहीं, बोलने वाले नहीं। इसीलिये सबसे पहले अपने अरिहन्त गुरु। जब अरिहन्त भी अपने सामने नहीं, हों तो, जो अपने लिये बोलने वाले हों, उपदेश देने वाले हों, ऐसे आचार्य, उपाध्याय और साधु गुरु हैं। यह गुरु आपको उस क्षेत्र तक ले जायेंगे और इन्हीं के उपदेश से आपको अपने जीव तत्त्व का श्रद्धान होगा। बाकी का सब कुछ आपको बाहर मिल जायेगा लेकिन आपकी चेतना तक आपकी गति नहीं पहुँच पायेगी। बाहर की शान्ति थोड़ी मिल जायेगी, बाहर के योग अभ्यास से, ध्यान से, आपको थोड़ा मानसिक सुख मिल जायेगा लेकिन उसके माध्यम से आप अपनी चेतना तक नहीं पहुँच पायेंगे।

चेतना तक पहुँचने के लिये आचार्य कहते हैं कि गुरु के उपदेश को सुनो और गुरु के उपदेश में ही आपको मिलेगा कि सात तत्त्व हैं। उन सात में जीव तत्त्व में ही सब कुछ घटित हो रहा है, जीव में ही बन्ध हो रहा है। जीव में ही आस्रव हो रहा है, जीव में ही निर्जरा होगी और जीव में ही मोक्ष होगा, जीव में ही आनन्द मिलेगा। यहाँ सात तत्त्वों की व्यवस्था भी आप अलग-अलग ढंग से आप के परिप्रेक्ष्य के माध्यम से कर सकते हैं। आनन्द कहाँ है? यह श्रद्धान भी आपको कर लेना चाहिये, मोक्ष कहाँ है? यह श्रद्धान भी आपको कर लेना चाहिये। लोगों को तो मोक्ष उतना ही समझ में आ जाता है कि शरीर छूट गया तो मोक्ष हो गया। कोई महापुरुष की मृत्यु हो जाती हो तो लोग उनके सामने भी कह देते, निर्वाण हो गया इनका।

चेतना की ऊर्जा को बनाये रखना सर्वोपरि है, यह अगले जन्म तक साथ देगी।

एम. पी. सरकार ने राज्यपाल के through कुछ नियम जारी किये कि सत्रह दिन की छुट्टी विशेष, छुट्टियों में पर्युषण के प्रथम दिन की छुट्टी पर्युषण के अंतिम दिन अनन्त चतुर्दशी आती है उसका अवकाश, महावीर जयंती का अवकाश यह सब अवकाश मध्य प्रदेश राज्य में घोषित हैं और उन्हीं में अवकाश लिखे हैं, बौद्ध जयन्ति का अवकाश और उसमें लिखा था- गाँधी-निर्वाण-दिवस। मैंने सोचा- देखो लोगों को निर्वाण शब्द तो अच्छा लगता है लेकिन निर्वाण क्या है? उन्हें पता नहीं रहता है। गाँधी जन्म दिवस का अवकाश अलग है और गाँधी निर्वाण-दिवस का अवकाश अलग है। जब उन्होंने देखा महावीर-निर्वाण दिवस का अवकाश महावीर-निर्वाण होता है तो गाँधी का भी निर्वाण हो गया होगा। आदमी इतना ही समझता है। किसी महापुरुष ने अपने जीवन में अच्छा काम किया, नाम किया, यश कमाया और वह मरण को प्राप्त हो गया तो उसका भी निर्वाण हो गया। जैसे महावीर का नाम चल रहा है, महावीर ने बहुत बड़े काम किये तो जैसे महावीर भगवान के लिये निर्वाण हुआ वैसे भी इनका निर्वाण हो गया, माने जो इस दुनियाँ से चले गये। इस निर्वाण की इतनी सी व्यवस्था है दुनियाँ में? हर चीजें चल रही हैं। यह ध्यान, यह आत्मा, यह मोक्ष जो यहाँ पर लिखा है, दुनियाँ में भी चल रहा है। उनके अन्दर जो इस शब्दावली का उपयोग है, वो अपने ढंग से चल रहा है और आपके यहाँ जो शब्दावली है वो अपने ढंग से उसकी ओर ले जाती है। अब हम मान ले गाँधी को निर्वाण हो गया और यदि आपका बच्चा कभी भी जैन शास्त्रों को नहीं पढ़ेगा तो वहीं समझेगा, निर्वाण का मतलब यही है- मृत्यु से छूट जाना या अपना इस संसार से चला जाना, इसी का नाम निर्वाण है। लास्ट पॉइन्ट तक आप देखोगे तो सबके लिये एक जैसे ही दिखेगा। महावीर भगवान भी चले गये हों, उनकी भी आयु का अन्तिम दिन खिरा तो उनका भी निर्वाण हो गया। कोई भी महापुरुष चला गया तो हमने कह दिया कि उसका भी निर्वाण हो गया लेकिन उस निर्वाण में और इस निर्वाण में बहुत बड़ा अन्तर है। उस आत्मा में और इस आत्मा में बहुत बड़ा अन्तर है। वो जो दुनियाँ में ध्यान-चक्र चल रहा है उसमें और यहाँ जो आचार्य ध्यान की ओर ले जा रहे हैं उसमें, बहुत बड़ा अन्तर है। इतना बड़ा अन्तर है कि वहाँ तो ध्यान करने के लिये आपको कुछ नहीं करना है और यहाँ ध्यान करने के लिये आपको बहुत कुछ करना है। जब आप पढ़ोगे तो आपको पता पड़ेगा कि आचार्य कहते हैं कि ध्यान की प्राप्ति आपको तब होगी जब आप अपने शरीर को, अपनी इन्द्रियों को, अपने मन को बिल्कुल संयमित बना लोगे। वह संयमित बनाना भी आपके लिये तब, जब आप संकल्प पूर्वक अपनी इन्द्रियों को नियंत्रित करोगे, व्रतों का पालन करोगे, गुप्तियों का पालन करोगे, हर एक चेष्टा में आपके अन्दर वह नियम पड़ा रहेगा। बिना नियम के आपका एक क्षण भी नहीं जायेगा तब आपके लिये इतनी सावधानी आयेगी कि आप भीतर से अपनी आत्मा संवेदन करने के लिये इस शरीर को जीते जी अपने से अलग देख सको। यह सावधानी आपके अन्दर इन व्रत, समितियों, गुप्ति के माध्यम से आयेगी। जहाँ पर यह

ध्यान की प्राप्ति मन, इन्द्रिय एवं शरीर को संयमित करने पर होती है।

व्रत की बात आ जाती है, बस वहीं पर अधिकांश लोग छूट जाते हैं। वो कहते हैं- यह तो अपने वश की बात नहीं और जब वो वश की बात नहीं है तो फिर आगे की कोई और चीज होनी नहीं है। यहीं से हमारा यह सम्बन्ध छूट जाता है। इसी कारण से जो जैन दर्शन में ध्यान आदि की परम्पराएँ थीं, जो ध्यान आदि के लाभ थे, वो सब हमसे छूट गये। हमने सोच लिया कि हम व्रतों को नहीं तोड़ सकते। अब कोई भी व्यक्ति ना व्रत लेता है, ना कोई व्यक्ति ध्यान करता है इसका यह परिणाम आया सामने, ध्यान की छोटी सी प्रक्रिया नहीं बनती। लेकिन अगर आप देखें कि एक जैन श्रावक की जो क्रिया होती है और उसे चर्या के रूप में ढंग से करते रहें तो भी आपको थोड़ी सी ध्यान की योग्यता आ ही जायेगी।

ध्यान :

आचार्यों ने जो कथन किये तो मुनि महाराजों के लिये इसीलिये किये क्योंकि उस ध्यान से उन्हें केवलज्ञान होना है लेकिन श्रावकों के लिये भी वह ध्यान होता है। वह धर्म-ध्यान आज भी श्रावक कर सकता है, करता है। धर्म-ध्यान मुनि महाराज भी करते हैं, धर्म-ध्यान श्रावक भी करता है। वह धर्म-ध्यान के माध्यम से अपनी चर्या को आज भी व्यवस्थित करके थोड़ा सा ध्यान और शान्ति के उपाय कर सकता है। आचार्य कहते हैं आप अपने मन में अपनी आत्मा के प्रति रुचि रखकर जब अपने अन्दर अपने ही उपयोग को थोड़ा शान्त करेंगे तो आपके लिये वह धर्म ध्यान की परिणति बन जायेगी। सबसे पहली चीज है, अपनी आत्मा का श्रद्धान, अपनी आत्मा की रुचि और वह रुचि आपके अन्दर आ गयी तो आप धर्म-ध्यान करने लग जाओगे। अपना आर्त-ध्यान छूटने लगेगा और वहीं से आपके लिये गुरु का उपदेश आपको लागू हो जायेगा। सबसे पहले

आत्मा का एवं जीव तत्त्व का श्रद्धान होने पर ही धर्मध्यान की परिणति बनती है।

गुरु का उपदेश इसीलिये जरूरी है कि आपको अपनी जीव तत्त्व का श्रद्धान हो जाये और जीव तत्त्व का श्रद्धान /रुचि हो जायेगी तो आपको आगे कुछ करते बनेगा।

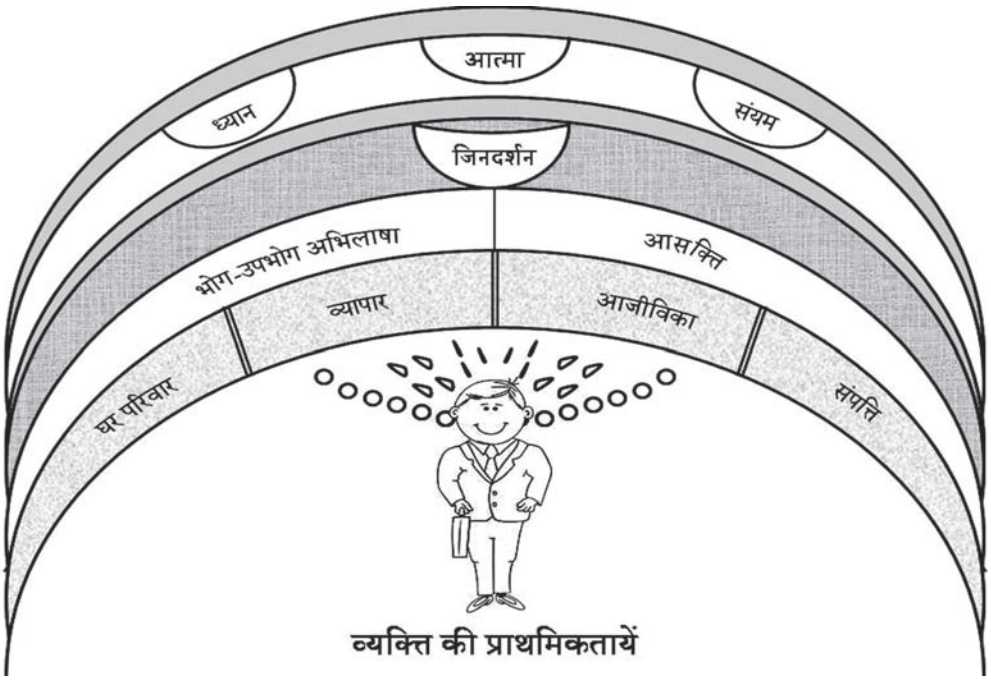

व्यक्ति की प्राथमिकतायें

फिर एक चीज आती है 'अभ्यासात्' देखो मोक्ष सुख की उपलब्धि कराने के लिये, मोक्ष सुख की अनुभूति कराने के लिये आचार्य कह रहे हैं- पहले गुरु का उपदेश और दूसरा काम अभ्यास। जो कहा जा रहा है उसका अभ्यास करना। अभ्यास से जो हमने सुना है उस अर्थ की, उस भाव की हमें निकटता प्राप्त होती है। अभ्यास माने निकट हो जाना। 'आस्' धातु बैठने के अर्थ में आती है, निकट बैठ जाना। हम जिस चीज का अभ्यास करेंगे, उसके निकट हो जाते हैं। आपने कोई चीज पहले पढ़ी थी, बचपन में। आपने न जाने कितनी स्तुतियाँ याद की होंगी, विनतियाँ याद की होंगी, पाठ याद किये होंगे, आज वो आपको केवल याद में है बस हमने याद किये थे। आपसे अगर हम पूछने बैठ जाये तो आप अभी कोई भी स्तुति याद नहीं, पाठ याद नहीं क्योंकि आपने अभ्यास नहीं किया जिस समय पर हम अभ्यास करते हैं तो वो चीज हमारे बिलकुल निकट होती है। आप भक्तामर पढ़ रहे हो, भक्तामर का अभ्यास आपको बना है तो भक्तामर के आप बिल्कुल निकट रहोगे और जब आप उसका अभ्यास छोड़ दोगे तो वो चीज आपसे बहुत दूर हो जायेगी। अभ्यास का मतलब होता है- अपने मन के निकट आ जाना। अपने मन के पास

अभ्यास माने हम उस चीज को हमेशा महसूस करेंगे, उससे निकट हो जायेंगे।

में उस चीज को रख लेना। इसीलिये पहले कहा जाता था- जो भी आप पढ़ो उसका अभ्यास करते रहो, अभ्यास नहीं करोगे तो वह विद्या आपके लिये विषम हो जायेगी, कोई काम नहीं आयेगी। आपके पास में होते हुये आपके उपयोग में नहीं आयेगी और अभ्यास बना रहेगा तो वह विद्या आपके लिये हमेशा काम की है, ऐसा लगता रहेगा। अभ्यास इसीलिये कराया जाता है कि आप अपने अन्दर अपनी निकटता में उस चीज को हमेशा महसूस करते हैं जो चीज आपको अच्छी लगती है। उसका आप अभ्यास करो जो पाठ अच्छा लगता है। यह पाठ अच्छा लग रहा है, जब तक आपने पढ़ा तब तक अच्छा लगेगा और कभी दो चार दिन का गेप पड़ गया तो पढ़ना छोड़ दिया, फिर बाद में आपके लिये पढ़ने के लिये भी मन नहीं होगा क्योंकि आपने उसका अभ्यास छोड़ दिया। जब तक अभ्यास करते रहोगे तब तक आपको वह चीज निकटता से उपलब्ध होती रहेगी।

इसीलिये आचार्य कह रहे हैं- गुरु के उपदेश सुनने के बाद में उसका अभ्यास भी करना, सो नहीं जाना। केवल सुन लिया, फिर घर पर जाकर व्यस्त हो गये, सो गये तो आपको वह गुरु का दिया हुआ उपदेश कोई काम में नहीं आयेगा। गृहस्थों के काम में वो इसीलिये नहीं आ पाता क्योंकि गृहस्थ जाकर के अपनी गृहस्थी में फँस जाता है। मुनि महाराज के लिये वो उपदेश इसीलिये काम में आ जाता है क्योंकि उनके लिये और कहीं फँसना ही नहीं है। वो जो कुछ भी करेंगे तो उन्हें हर समय पर अपना गुरु का उपदेश याद रहेगा। इसीलिये वह उपदेश उनके लिये ज्यादा कार्यकारी हो जाता है। जो मुनि के व्रतों को धारण किये हैं और उनके लिये वो ध्यान इत्यादि बड़ा सहज और सरल हो जाता है। लेकिन गृहस्थ भी यदि थोड़ा सा अभ्यास करता है तो उसको भी अभ्यास के माध्यम से यह चीजें मिलने लग जाती है। जब अभ्यास में कमी आने लग जाती है तो आचार्यों ने उसके लिये व्यवस्था कर रखी है- अष्टमी की, चतुर्दशी की, सोलह कारण व्रतों की, दशलक्षण पर्व की।

यह व्यवस्थाएँ जानते हो, इसीलिये हैं कि उन्हें मालूम है कि तुम धीरे-धीरे lazy होते चले जाओगे। फिर तुम्हें याद दिलायी जायेगी अष्टमी आ गयी, चतुर्दशी आ गयी, पिछली अष्टमी को क्या किया था? आज चतुर्दशी है पिछली चतुर्दशी को क्या किया था? आज फिर वही करना है। अब समय नहीं आज तो हम बहुत विजी हैं, आज तो वहाँ जाना है हमें, यह काम करना है। यह क्या हो गया? यह आपने चतुर्दशी, अष्टमी को भी किनारे रख दिया। अब उसको किनारे रख दिया तो आपका जो यह आलसपना है, इससे जो आपकी चेतना की ऊर्जा है, कम हो रही है। वह अब और पंद्रह दिन के लिये कम हो गयी क्योंकि अब अगली चतुर्दशी पन्द्रह दिन बाद आयेगी। अगर कहीं आपके अभ्यास में यह चीज बढ़ गयी तो हो सकता है फिर आपने जीवन में चतुर्दशी, अष्टमी का कोई महत्व ही ना रहे। आचार्य कहते हैं फिर सोलह कारण भावनाएँ वो भी आपको ध्यान ना

गुरु उपदेश सुनकर अभ्यास करने पर आपको अपने स्व और पर का अंतर ज्ञान मिलेगा।

रहे तो कम से कम साल में एक बार दस दिनों के लिये दशलक्षण पर्व में अपनी चेतना को थोड़ा सा सहलाना है। लेकिन आदमी ने हर चीज को बिल्कुल पीछे छोड़ दिया है। अब उसकी आदत में आ गया है। दशलक्षण पर्व भी अब हर साल आते हैं। एक दो पूजा कर आयेंगे, मंदिर में रोजाना पूजन करने नहीं जाते। यह जो चेतना की ऊर्जा है यह धीरे-धीरे जो कम होती चली जा रही है। यही हमारा भीतर से मरण है कि हम भीतर से जितनी-जितनी अपने अन्दर जाग्रति कम करेंगे, हम भीतर से उतने जल्दी मरण को प्राप्त होंगे। बाहर से शरीर कैसा भी बना रहे लेकिन भीतर की चेतना धीरे-धीरे मरण होती चली जायेगी। इसीलिये यह व्यवस्थायें हैं, पर्युषण पर्व की, दशलक्षण धर्म की कि इन दिनों में आदमी सब कुछ छोड़कर के कम से कम दस दिनों के लिये अच्छे ढंग से धर्म-ध्यान करूँ, ऐसा मन बना लेता है। लेकिन आज आदमी और ज्यादा आलसी हो गया है। व्यापार में ना कोई कमी आती है, ना व्यापार में ऐसा कोई अभाव आता है कि चलो कुछ समय के लिये इसको बन्द कर दो। अब तो ऐसी दुकानें है, ऐसे व्यापार हैं, एक बार खुलते हैं तो जिन्दगी भर बन्द नहीं होते हैं। रात की बात नहीं कर रहा हूँ। वह व्यापार जो एक बार चलना शुरू होता है तो फिर उसको कोई भी थोड़ी देर के लिये बन्द करना नहीं चाहता। पहले के लोगों के लिये ऐसी व्यवस्थाएँ रहती थीं, तुरन्त धर्म के कार्य होते थे, अपनी शटर गिरा देते थे। आज वो शटरें नहीं गिरती हैं और अगर उन्हें पूरी शटर नहीं गिराना हो तो भी एक आधी शटर गिरा देते थे, आधी खुली रहती थी, मानें दुकान थोड़ी और चल रही है। दशलक्षण के दिनों में इस तरह से व्यापारी लोग अपनी दुकानों की व्यवस्थाएँ बनाकर के रखते थे। इसका मतलब यह है कि बहुत जरूरी काम है, बस वो चल रहा है, बाकी तो एक तरीके से ऑफ ही है। दस दिन बिल्कुल निश्चिंत होकर के धर्म ध्यान करके अपनी चेतना को पूर्ण ऊर्जावान बनाने का यह प्रबंध करने के लिये ही इस प्रकार की व्यवस्था आचार्यों ने की है लेकिन आज यह व्यवस्थाएँ हम लोगों ने अपने आलस में ढाल ली हैं। अब किसी की दुकानें बन्द नहीं होती है, न आधी, न पूरी। आधी भी बन्द हो जाये, आधे समय के लिये बन्द हो जाये तो भी एक बहुत बड़ी बात है, तो चलो हम कम से कम कुछ तो इन धर्म के द्वारा, इस चेतना को जाग्रत करने का प्रयास करने के लिये तैयार हैं लेकिन हर आदमी यह सोचता है कि सुबह-सुबह बस थोड़ा सा पूजन कर लूँ और बाद में दिन भर अपनी दुकान पर रहो। अपने को दस धर्म के नाम तो मालूम ही हैं मार्दव धर्म की जय, सत्य धर्म की जय, यह स्थितियाँ जब बनने लगेंगी तो इसका मतलब है, आपकी जो चैतन्य प्राप्ति की ऊर्जा है वो बहुत कम हो रही है। इससे यह समझ में आता है। जिसमें यह चैतन्य प्राण ऊर्जा अधिक होगी तो वह अपनी ही चेतना के लिये ऊर्जा बढ़ाने के कार्य को महत्त्व देगा, उन्हीं का अभ्यास करेगा और उस अभ्यास में कमी नहीं लायेगा और वो निकटता से हर धर्म के पास में होगा। ऐसा नहीं कि दुकान

पर बैठकर के क्षमा धर्म की जय बोलने से हमारे अन्दर क्षमा आ जायेगी। निकटता से गुरु का उपदेश सुनो, अभ्यास की थोड़ी सी भावनाएँ करो- क्या क्षमा है, क्या मृदुता है, क्या आर्जव है, यह सब धर्म आपको गुरु के उपदेश से अभ्यास करने से ही आयेंगे। दुकान पर बैठे-बैठे केसिटें सुनने से भी नहीं आयेंगे।

यह आपको साक्षात् गुरु के माध्यम से, अभ्यास से ही आयेंगे इसीलिये आचार्य कहते हैं- गुरु के निकट बैठना और गुरु के निकट में बैठ कर के उपदेश सुनना और अभ्यास करना तभी 'स्वपरान्तरम् संवित्तेः' आपको अपने स्व और पर का अन्तर ज्ञान मिलेगा। आपको स्व सम्मति होगी कि मैं क्या हूँ? यह स्व संवेदन आपको इस प्रकार के अभ्यास से होगा। बहुत अच्छी श्लोक की यह लाईनें हैं और इन लाईनों में जो एक-एक चीज दी है, अगर आदमी उसका अभ्यास करे तो वह आज पंचमकाल में भी मोक्ष सुख क्या होता है? इसको समझ सकता है। एक चीज होती है, पूर्ण रूप से मिल जाना और एक चीज होती है उसका आभास हो जाना। आप आज भी मोक्ष सुख कैसा होता है? क्या होता है? इसका आभास करें। कई लोग पूछते हैं महाराज! सिद्ध बनने के बाद सिद्ध भगवान करते क्या हैं? सिद्ध भगवान को कौन सा आनन्द मिलता है? और जब उनके लिये कुछ खाना नहीं, पीना नहीं, किसी से बोलना नहीं, चालना नहीं तो, उन्हें क्या सुख मिलता होगा। यह बातें हमारे अन्दर के ज्ञान और हमारे अन्दर की श्रद्धा को बताती हैं। यह बताती हैं कि कहीं से कहीं उस सिद्धत्व की अनुभूति तो दूर की बात है, उस सिद्धत्व का सही ज्ञान भी नहीं है। सिद्धत्व की परिणति में, मोक्ष-सुख की परिणति में क्या होता होगा? यह भी आपको तब अनुभव में आयेगा जब आप गुरु के उपदेश को सुनकर के अभ्यास करके स्व व पर का भेद विज्ञान करके अपना स्व संवेदन करें। उस आत्मा के अनुभव के माध्यम से ही आपको महसूस होगा कि सिद्ध में क्या होता है? जब आप थोड़ी देर के लिये शून्य हो जायेंगे, स्व संवेदन मात्र अपनी चेतना का आपको अनुभव होगा तो आपको लगेगा कि इस चेतना में तो बहुत बहुत गहराई है जैसे किसी गुफा के चित्र को आप देखते हो तो उसके अन्दर चलते चले जाओ, चलते चले जाओ उसका अन्त नहीं है, ऐसे ही इस आत्मा के अन्दर आप चलते चले जाओ, अन्त नहीं मिलेगा और आपको लगेगा कि उन सिद्ध भगवान को ऐसी ही शान्त निर्वृत्ति की दशा का अपूर्व आनन्द उत्पन्न होता है, जिसमें कि उन्हें बाहरी जगत के किसी भी पदार्थ का आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। यह अनुभव तब आयेगा जब आप थोड़ा सा ध्यान का अभ्यास करेंगे, स्व और पर के भेद विज्ञान को जानेंगे और उसके माध्यम से आपको थोड़ी सी अनुभूति आयेगी तो आपको लगेगा कि ऐसा होता है सिद्धों का सुख। अगर मान भी लोगे कि ऐसा होता है सुख तो कोई आपत्ति नहीं होगी क्योंकि आपने अगर किसी अच्छी चीज की अपने अन्दर कल्पना कर ली है ऐसा होता है सिद्धों का सुख, मोक्ष का सुख, वह कल्पना भले ही आपकी गलत हो लेकिन फिर भी वह कल्पना आपके अन्दर रुचि पैदा कर देगी जिसके माध्यम से आप उस सुख को प्राप्त करने के लिये पुनः-पुनः अभ्यास

स्व और पर के भेद-विज्ञान के साथ अतीन्द्रिय सुख की अनुभूति होती है।

करेंगे और आपको लगने लगेगा कि ऐसा होता है सिद्धों के सुख। अभी तो हम केवल सुन लेते हैं सिद्धों का सुख बाधाओं से रहित है 'अव्याबाध सुख', अनन्त सुख है। अब हम जरा यह सोचते कि वह बाधाओं से रहित है, अनन्त है। वह सुख जब होगा तो उस सुख की परिणति में किसी भी बाहरी वस्तु का कोई व्यवधान नहीं होगा जैसे अगर कल्पना करना चाहें तो आप अपने अन्दर उस निद्रा सुख की कल्पना कर सकते हो जिस समय आप निद्रा में होते हो उस समय पर आपको क्या महसूस होता है– कुछ नहीं लेकिन आपके अन्दर सुख होता है या दुख होता है उस निद्रा के समय पर आपके अंदर क्या होता है? महाराज, अगर निद्रा आ जाये तो सुख होता है, जब निद्रा आ गयी तो उस समय क्या हो रहा है? यह आपको पता नहीं। निद्रा में सुख है यह जब आपके अन्दर धारणा बन जाती है तो आपकी कल्पना में भी दूर तक चला जाता है कि निद्रा आ जाये। निद्रा से पहले आपको सुख नहीं, कभी निद्रा में सुख की अनुभूति नहीं हुई और निद्रा के बाद आपको सुख नहीं मिल रहा है लेकिन फिर भी आपको लग रहा है कि निद्रा में सुख है क्योंकि जिस समय पर आप यह महसूस करोगे कि मैं सुखी हूँ, उस समय आपको नींद नहीं आयेगी और जिस समय नींद आ जायेगी उस समय पर आपको यह भी महसूस नहीं होगा कि मैं सुखी हूँ, मैं दुखी हूँ। यह भी महसूस नहीं होगा तो सुख दुख की कल्पना से परे हम हो जाते हैं। हम अपने वास्तविक जीवन में कोई सुख देख सकते हैं तो वह निद्रा की स्थिति है और उस निद्रा की स्थिति में क्या हुआ? न हमें यह लगता है कि मैं दुखी हूँ, न हमें लगता है कि मैं सुखी हूँ, कुछ न कुछ तो होंगे। ऐसे ही परिणति आत्मा के अन्दर आ जाती है तो उसमें ना तो सातावेदनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले सुख का वेद होता है, न असातावेदनीय। आत्मा सुख व दुख से परे अपनी आत्मा का अनुभव करता है। यह सिद्ध भगवान के सुख का अनुभव करने के लिये आप अपनी निद्रा के सुख का अनुभव करने का सोचो। जिस समय पर आपको नींद आ गयी उस समय पर आपको कोई अनुभूति नहीं और जब आप निद्रा से उठ कर बैठोगे तब आपको लगेगा कि हम दुखी हैं लेकिन अब सुख किसका? आप कहोगे कि निद्रा का सुख है, कहाँ, निद्रा में तो तुम हो नहीं। कैसी विडम्बना है? निद्रा में सुख है लेकिन निद्रा में सुख हमें कभी भी अनुभव में आता नहीं है और वह सुख निद्रा से पहले भी नहीं और निद्रा के छूटने के बाद भी नहीं, उस सुख को आप क्या कहोगे? कुछ ऐसे ही सुख हैं, जिनके बारे में हमने कभी सोचा ही नहीं, हमें किंचित् भी अनुभूति नहीं हुई। स्व और पर का भेद विज्ञान होता है और संवेदन जब मात्र अनुभव में आता है तो ऐसे ही अतीन्द्रिय सुख की अनुभूति होती है। उसी के लिये आचार्य कह रहे हैं कि वह मोक्ष सुख अनुभव में आ गया। समझ लेना कि निद्रा में मोक्ष सुख नहीं है। मर जाने पर मोक्ष सुख नहीं है। निर्वाण का वास्तविक सुख भी आपको शान्ति के साथ बैठ कर जब स्व और पर का भेद विज्ञान करोगे तब अनुभव में आयेगा। अनुभव जब एक बार आने लग जाता है तो आप उसको निरन्तर जानते रहोगे। बार-बार आपका मन करेगा जैसे हम सुबह अनुभव कर रहे थे शान्ति का, वैसे ही अनुभव करें, वैसा ही हमें

आत्मा सुख व दुख से परे अपनी आत्मा का अनुभव करता है।

शाम को अनुभव हो जाये और जैसे आप को शान्ति का अनुभव होने लगेगा तो आप जब भी कभी परेशान हुए बैठ जाओ ध्यान करने। ध्यान के अभ्यास की परिणति आपके अन्दर थोड़ी सी भी आ जाये तो आपको कितनी ही प्रकार की परेशानियों के बीच में रह कर के भी आपके मन में कभी यह नहीं आयेगा कि मैं परेशानियों से परेशान हूँ।

जैसे ही परेशानी आये चलें पंच परमेष्ठी की शरण में, आत्मा की शरण में, यह अभ्यास करने से आपको रुचि आयेगी और यह अभ्यास आप अपने घर पर भी जा कर के बार-बार करोगे कम से कम दो घंटे में, चार घंटे में एक बार याद आने लगे अपनी श्वाँस को ही ध्यान में लाने की, आत्मा तो बाद की बात है, पहले श्वाँस पर ध्यान लाना, फिर ओम् और अर्हम् के माध्यम से पंच परमेष्ठी का ध्यान कर लेना और फिर शान्ति से बैठ कर अपनी आत्मा की ओर उन्मुख होना। उसमें आपको 5 मिनट का भी अभ्यास किया, दिन भर में आपने 3 बार, बार-बार तो आप देखो कि आपके लिये 'मोक्षसौख्यं निरन्तरम्' निरन्तर चलेगा। यह निरन्तर चलने वाली चीज में आपने बहुत लम्बा अन्तर डाल रखा है। इसीलिये आपके लिये चीजें बहुत दुर्लभ हो गयीं हैं और इन चीजों का अन्तर कम करो, जिन चीजों का जिसमें हमें सुख मिलता है उसको बार-बार प्राप्त करो, यही अंतर्मन का सुख है, मोक्ष सुख इसी को बोलते हैं। इसका अन्तर जितना कम होगा उतना ही आपके अन्दर निरन्तर प्रभाव होता हुआ दिखाई देगा, नही तो जीवन किस क्षण छूट जायेगा, आपको पता नहीं पड़ेगा। यहाँ बेगमगंज के लोग बैठे हैं जिनके यहाँ पर बहुत अच्छे सेठ जी थे। जो खूब दान किया करते थे। महाराज सुधासागर जी की जन्मभूमि है ईशुरवारा, वहाँ पर जो मंदिर बना, सेठ जी ने वहाँ पर बहुत पैसा लगाया और जब कुण्डलपुर का महोत्सव होने वाला था तो उस समय पर दो दिन बाद ही उनकी डेट थी कि सब लोग वहाँ अभिषेक करने के लिये जायेंगे। सबने रिजर्वेशन करवा रखे थे और सेठ जी को अचानक से एक झटका लगा, हार्ट अटैक आया और वे वहीं लुढ़क गये।

दुनियाँ में आदमी के लिये बाद में सिर्फ पछतावे के अलावा कुछ बचता भी नहीं है। जिन्दगी भर आदमी सोचता ही रह जाता है कि जीवन का भरोसा किसी भी क्षण नहीं है। आप यह मत सोचो कि हम ध्यान का अभ्यास भी बाद में कर लेंगे। बाद में, जिन्दगी में कभी, अन्त में जाकर के हमें कुछ मिल जायेगा। जो करना, आज के दिन कर लो, अभी कर लो, जो अभी नहीं कर पाओगे तो फिर ध्यान में भी कभी नहीं कर पाओगे। वह आज नहीं कर पाओगे तो वह कल भी नहीं कर पाओगे। बुद्धिमानी इसमें हैं कि हम अपने जीवन को बड़ी सुरक्षा के साथ और जागृति के साथ हर समय में निकालें। वह जागृति यही है कि आप हर समय पर पंच परमेष्ठी के ध्यान और आत्मा के जागरण की स्थिति में रहें। यह अभ्यास आप रोजाना अपने घर, दुकान पर, कहीं पर भी बैठ कर के करने का अभ्यास करें और शर्म महसूस नहीं करें।

क्षणभंगुर जीवन का हर पल सुरक्षा और जागृति के साथ निकालें।

गुरु कौन?

34

स्वस्मिन् सदभिलाषित्वादभीष्टज्ञापकत्वतः।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः॥

अन्वयार्थ– (**स्वस्मिन्**) अपने में ही (**सदभिलाषित्वात्**) प्रशस्त [मोक्ष सुख की] अभिलाषा करने से (**अभीष्टज्ञापकत्वतः**) अपने प्रिय पदार्थ का जानने वाला होने से तथा (**स्वयं हितप्रयोक्तृत्वात्**) अपने हित में अपने आपको लगाने से (**आत्मा एव**) आत्मा ही (**आत्मनः गुरुः**) आत्मा का गुरु है।

- **गुरु**
- **Deep Inner Direct**
- **अभीष्ट**

पिछले श्लोक में यह बताया था कि मोक्ष के सुख को वही व्यक्ति जान सकता है जिसने गुरु का उपदेश सुना हो, अभ्यास किया हो और स्व और पर का अन्तर स्व संवेदन के द्वारा किया हो। यहाँ आचार्य देव कहते हैं कि गुरु का काम क्या होता है और वह गुरु तुम्हारे लिए कब तक काम करेगा, यह भी तुम्हें जान लेना।

गुरु परम उपकारी :

गुरु का सबसे प्रमुख काम है– सत् की अभिलाषा उत्पन्न करा देना, सत् माने – जो प्रशस्त है, जो मोक्ष सुख है, जो अनंतसुख के रूप में है, उसकी अभिलाषा उत्पन्न करा देना, उसकी इच्छा उत्पन्न करा देना यह गुरु का काम है। गुरु का काम मोक्ष सुख की अभिलाषा उत्पन्न करा देना और वह मोक्षसुख की अभिलाषा आपको गुरु के उपदेश को सुनकर ही आयेगी। गुरु के उपदेश के अनुसार थोड़ा सा अभ्यास करने से आयेगी और गुरु के उपदेश के अनुसार स्व और पर का विभाजन करके थोड़ा स्व संवेदन करने से आयेगी। ऊपर वाले सूत्र को इस सूत्र के साथ मिलाकर समझना। 'सत् की अभिलाषा' यह पहला कारण बताया जा रहा है और वह 'सत् की अभिलाषा' माने मोक्ष सुख की अभिलाषा गुरु के उपदेश से प्राप्त होती है। यह अभिलाषा जब आपके अंदर उत्पन्न हो जाएगी तो आचार्य कहते हैं– फिर आपको गुरु की भी कोई जरूरत नहीं रहेगी। गुरु की जरूरत तभी तक है जब तक हमारे अंदर यह अभिलाषा की इच्छा उत्पन्न नहीं हो रही है। जो इच्छायें उत्पन्न होती है वे सब बाहरी सांसारिक विषयों की होती है किन्तु अपने आत्म–सुख की या मोक्ष सुख की अभिलाषा उत्पन्न होना, यह बहुत पुरुषार्थ से होता है। इच्छायें तो दोनों ही है, desire जिसे बोलते हैं, वह तो दोनों ही है, बाहर की हो चाहे भीतर की हो। लेकिन बाहर की इच्छा सहज होती है और भीतर की इच्छा बड़े प्रयास से उत्पन्न होती है। उस इच्छा को अगर आपने गुरु के उपदेश से प्राप्त कर लिया है तो आचार्य कहते हैं अब आप बिल्कुल स्वतंत्र हो गये। अब आप को गुरु की ज्यादा जरूरत भी नहीं है और आप बिना गुरु के भी अपना आत्म कल्याण कर लेंगे। लेकिन वो तब होगा जब आपको अच्छे ढंग से इच्छा उत्पन्न हो जाए मोक्ष सुख में। वह सिद्ध भगवान का जो सुख है उस सुख के बारे में, उनके स्वरूप के बारे में सुनकर के उसका बार–बार मन से अभ्यास करके, ध्यान करके, चिंतन करके अपने अंदर अभिलाषा उत्पन्न होगी। ऐसे नहीं होगी, सुनकर के, पढ़ करके भी अगर आपने अभ्यास नहीं किया तो उत्पन्न नहीं होगी। सिद्ध भगवान का जैसा स्वरूप है, उसको ध्यान का विषय बनाना क्योंकि मन स्वेच्छा से कभी भी उनका ध्यान नहीं करेगा। यह कहेगा कि क्या जरूरत है उनका ध्यान करने की? क्या मिलेगा उनका ध्यान करने से ? कई बातें सोचेगा मन। जिनका कोई भी रूप नहीं है, जिनकी कोई भी आकृति नहीं है, जो बिल्कुल निराकार है, जो हमें दिखाई भी नहीं देते हैं और जो तीनो लोकों में सबसे ऊपर जाकर के लोक के शिखर

गुरु ही हमारे अंदर मोक्षसुख की अभिलाषा उत्पन्न कराते हैं।

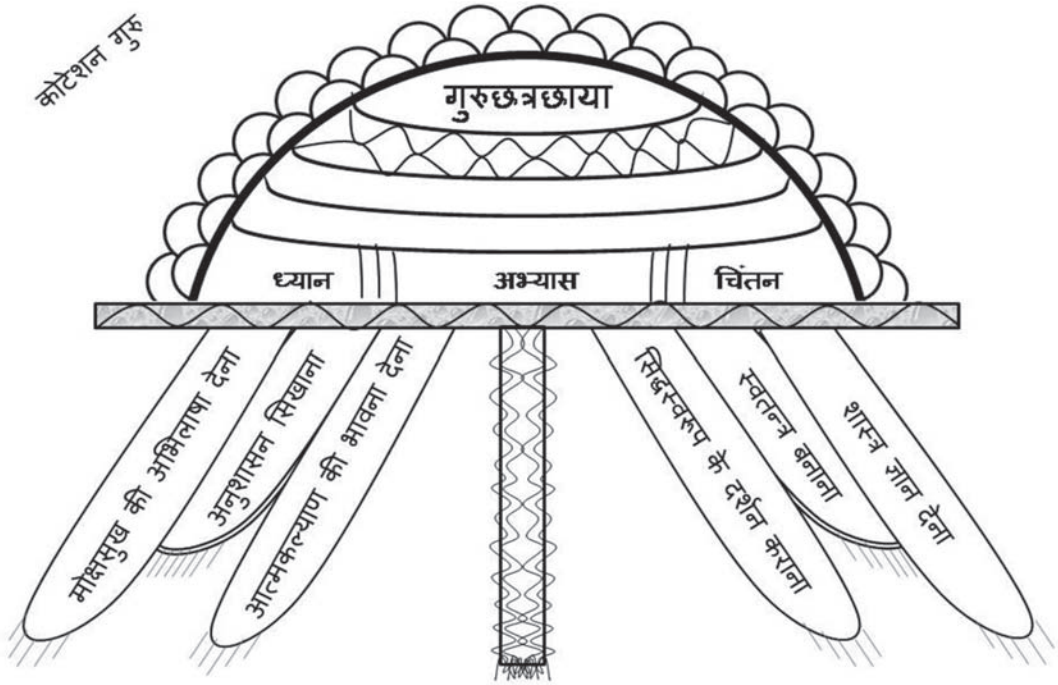

पर स्थित है। अपने आप में लीन है, अपने ही ज्ञान में, दर्शन में लीन है और उनके ज्ञान-दर्शन में सब कुछ दिख रहा है लेकिन वो हमारे लिए तो कुछ करते हैं नहीं - उनका ध्यान करने से हमें क्या मिलेगा ? आचार्य कहते हैं कि उनका ध्यान करने से, उनके लिए अपना उपयोग लगाने से ही आपको मोक्ष-सुख की इच्छा उत्पन्न होगी। जैसे आप किसी भी व्यक्ति को देखकर के उसकी इच्छा उत्पन्न कर लेते हो - बहुत अच्छी शर्ट पहने हुए हैं, बहुत अच्छी पेंट लेकर के आया है, बहुत अच्छी कार लेकर आया है, बहुत अच्छा घर है आदि। जैसे यह सब देखकर तुम्हारे अन्दर इच्छा उत्पन्न होती है तो इच्छा वो ही है। उसी इच्छा को अगर हम बनाना चाहेंगे तो हमें उनको भी देखना पड़ेगा और उनको देखने का नाम ही है कि हम उनका चिंतन करेंगे, उनका ध्यान करेंगे तो ही हम उन्हें देख पायेंगे। वो अपनी आँखों से कभी नहीं दिखेंगे, उन्हें तो मन की आँखों से देखना पड़ेगा। मन में भी जो श्रुत रहेगा, उस श्रुतज्ञान के माध्यम से ही आप उनको जान पायेगें। बिना ज्ञान के आप उनको देखने का प्रयास करोगे तो आपको कुछ भी दिखेगा नहीं। इसलिए उनको देखने के लिए मन में थोड़ा श्रुतज्ञान होना चाहिए। श्रुत अर्थात् शास्त्रों का ज्ञान होना कि शास्त्रों में क्या लिखा है, सिद्ध भगवान होते कैसे हैं-

''णट्ठट्ठ कम्मदेहो, लोयालोयस्स जाणओ दट्ठा।
पुरिसायारो अप्पा, सिद्धो झाएह लोयसिहरत्थो॥''

भगवान का ध्यान करने से मोक्षसुख की इच्छा बलवती होती है।

यह जब शास्त्रों के ज्ञान के माध्यम से आप देखोगे तो वैसा ही अपने मन में रखना पड़ेगा और अपने मन से कुछ भी देखोगे तो कुछ नहीं दिखेगा। बिना शास्त्रों के ज्ञान के आलम्बन के आपको यह ज्ञात ही नहीं होगा कि क्या मोक्ष है? क्या सिद्ध है? क्या उनका स्वरूप है? इसलिए इन गाथाओं का आलम्बन लेकर के सिद्ध भगवान के बारे में सोचना पड़ता है। 'णट्ठट्ठ कम्म देहो' – जिन्होनें आठ कर्मों को नष्ट कर दिया है। चिंतन करो, एक आत्मा है और आप छोटी सी आत्मा का चिन्तन मत करो, बड़ी आत्मा का चिंतन करो क्योंकि छोटी तो आपके दिमाग में आयेगी ही नहीं। खूब बड़ी आत्मा का चिंतन करोगे तो वह भी तुम्हारे दिमाग में छोटी हो जाएगी क्योंकि तुम्हारा दिमाग बहुत बड़ा है नहीं। जब खूब बड़े का चिंतन करोगे तब जाकर के तुम्हारे दिमाग में कुछ आकृति बनेंगी। भगवान ऋषभदेव की काया 500 धनुष की थी। बाहुबली की 525 धनुष की थी। एक धनुष चार हाथ का होता है। 2000 हाथ की भगवान की काया होगी। इतने बड़े भगवान और उनके आत्मा के प्रदेश। तुम तो कल्पना करो कि यहाँ से लेकर जितनी दूरी तक तुम्हें चन्द्रमा दिखता है, इतनी दूरी तक उनके आत्मा के प्रदेश है। तब जाकर के कहीं छोटे रूप में वह कल्पना, वह ध्यान में तुम्हारे थोड़ा सा कुछ विचरण होगा। तब जाकर के तुम्हें लगेगा कि सिद्ध कैसे होते हैं? जिनके इस प्रकार की शरीर की ऊँचाई है, अवगाहना है और उनके आत्मा के प्रदेश इतने विशाल रूप में फैले हुए हैं। उन्हीं आत्मा में किसी भी प्रकार का कोई भी पुद्गल कर्म चिपका हुआ नहीं है। हमारे अंदर तो यह कर्म चिक्कट होकर चिपके हैं। चिक्कट – जैसे किसी कपड़े पर डम्बर लग जाने से उसमें धूल चिपकती चली जाती है, वैसे ही हमारी आत्मा में कर्म ऐसे चिक्कट होकर चिपके हुए हैं। हमें तो आभास ही नहीं होता। कहाँ आत्मा है? कहाँ क्या है? क्योंकि वो आत्मा तो बेचारी सूक्ष्म थी, उसका तो कोई भी आकार प्रकार था ही नहीं। इन कर्मों ने उसके ऊपर इस तरह से अपनी चिपकन बना ली कि सूक्ष्म आत्मा तो हमें दिखाई नहीं देती। बस, यह कर्म और कर्म के परिणाम ही दिखाई देते हैं। उस आत्मा को उन भगवान के अन्दर देखने का प्रयास करो कि जो 500 धनुष की काया को लेकर के लोक के शिखर पर अर्थात् सबसे उत्कृष्ट पर वह विराजमान है। जहाँ पर उनका सिर स्पर्श कर रहा है, उसके बाद लोक का अंत हो जाता है। यह सब ध्यान करने की चीजें है। उनके सिर के touch होने के बाद लोक का अंत हो जाता है। 'वात वलय' जो अंतिम तीन वात वलय होते हैं, उसमें से भी तीसरे/अंतिम वात वलय पर उनका सिर छूता है और उसके आगे उनकी गति इसलिए नहीं होती कि कोई भी द्रव्य नहीं होते हैं। धर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों का अभाव है। मात्र आकाश ही आकाश है, अलोकाकाश जिसे कहा जाता है। ऐसे उन सिद्ध शुद्ध आत्माओं के रहने का वह स्थान। उन्हें कहा जाता है – सिद्धालयवासी। सिद्ध+आलय में रहने वाले भगवान की एक-एक आत्मा के प्रदेशों में पूर्ण रूप से शुद्धता आ गई है। कोई कर्म उनकी आत्मा में touch नहीं हो रहा है, चिपका नहीं है और उनकी आत्मा में जितना अनंत ज्ञान था, वह सब फूट पड़ा है। वह अनंत ज्ञान उस आत्मा से निकल पड़ा है, जैसे बहुत बड़ा तीव्र प्रभाव जल का होता है तो उसमें सब

भगवान की आत्मा में किसी भी प्रकार का कोई पुद्गल कर्म नहीं चिपका है।

कुछ सिमटता चला जाता है, वैसे ही उनकी आत्मा में अनंतज्ञान, अनंतदर्शन में यह लोक-अलोक सब दिखाई देने लगा। सबका उनको ज्ञान होने लगा। ऐसे उन सिद्ध आत्माओं का जो पुरुष के आकार की आकृति को लिए हुए है, स्त्री के आकार की नहीं मिलेगी क्योंकि मोक्ष पुरुष को ही होता है। अंतिम पर्याय में स्त्री को भी पुरुष बनना ही पड़ेगा और तभी उसको मोक्ष होगा। ऐसी उस पुरुष की आकृति में वह भगवान की आत्मा के प्रदेशो की आकृति बनी हुई है। वह पूर्ण रूप से शुद्ध, चारों ओर से उनकी आत्मा के किसी भी प्रदेशो पर पुद्गल आदि कर्मों का कोई प्रभाव नहीं। ऐसे सिद्ध भगवान लोक के शिखर पर विराजमान है। उनका जब आप मन से चिंतन करोगे तो वह कहलाएगा, उन सिद्ध भगवान को देखना। उनको तो मन से ही देखना पड़ेगा, आँखो से दिखाई नहीं देंगे। मन में भी जिनके अंदर ज्ञान होगा तो वह ज्ञान से देख पाएंगे, बाकी मन तो सबके पास है, लेकिन देखना किसी को होगा नहीं। ऐसे सिद्ध भगवान के स्वरूप को जानकर उसका थोड़ा अभ्यास करो। उनका चिंतन, ध्यान करने का अभ्यास करो। उनके उस अभ्यास से, ध्यान से, चिंतन से आपको मोक्ष सुख की अभिलाषा उत्पन्न होगी। सब कुछ बाहर इसीलिए हो जाता है और भीतर कुछ नहीं हो पाता है क्योंकि भीतर कुछ करने के लिए हमें कुछ अलग से आयाम करना पड़ता है।

बाहर कुछ करने के लिए हमें करना नहीं पड़ता। हमें सबके साथ में शामिल हो जाना पड़ता है। पूजा हो रही है, सबके साथ खड़े हो जाओ, अपनी भी पूजा हो गई। अपने अंदर यह भाव आ गया कि हमने पूजा कर ली क्योंकि हम भी आपके साथ में खड़े थे। सबके साथ खड़े होकर के आप पूजा कर सकते हो। सबके साथ बैठकर के आप स्वाध्याय कर सकते हो लेकिन सिद्ध भगवान का ध्यान तो सबसे अलग होकर के अकेले ही करना पड़ेगा। इसलिए आचार्य यहाँ यह कहने जा रहे हैं कि 'स्वस्मिन्' यानि अपने में ही, 'सदभिलाषित्वात्' यानि अपनी आत्मा में ही इस सिद्ध सुख की इच्छा कर लो। जब तुम्हारे अंदर उस सिद्ध सुख की इच्छा उत्पन्न हो जाएगी तो आचार्य आगे कहने वाले है कि फिर तुम्हें किसी गुरु के उपदेश सुनने की भी जरूरत नहीं है। तुम्हारी आत्मा ही तुम्हारा गुरु बन जाएगी। तुम्हें किसी दूसरे को भी गुरु बनाने की जरूरत नहीं है। आचार्य आपको पूरा independent बनाना चाह रहे हैं। पूरा आप स्वतंत्र बनते चले जाओ। आपको किसी भी पर आलंबन की आवश्यकता पड़े ही नहीं क्योंकि जहाँ पर आलंबन आ गया, वहाँ पर आत्म परिणति छूट गई। उस परालंबन के बिना तुम कैसे रह सकोगे? आचार्य कहते हैं कि पहले से छोड़ दोगे तो तुम्हारे पास पहले भी सब छूटा था, तुम वहीं के वहीं रह जाओगे। इसलिए कुछ पा करके छोड़ना, कुछ उनसे सीखकर के फिर छोड़ देना। आचार्य कभी यह नहीं कह रहे हैं कि तुम गुरु के पीछे लगे रहना। जैनदर्शन कभी गुरु का पिछलग्गु बनाने के लिए नहीं कहता। गुरु की भी आवश्यकता तुम अपने अंदर समझते चले जाओ, जब तक हमारे अंदर मोक्ष सुख की तीव्र

सिद्ध भगवान का ध्यान सबसे अलग होकर अकेले ही करना पड़ता है।

अभिलाषा उत्पन्न न हो जाए। एक माता-पिता अपने बेटे को स्कूल में तब तक हाथ पकड़ के ले जाते हैं जब तक बच्चा जाने की इच्छा नहीं करता। लेकिन बच्चे को नहीं मालूम कि स्कूल में जाने से कितना अच्छा होगा, माता-पिता को मालूम है। माँ उसको सुबह-सुबह तैयार करती है। हर कार्य में उसका मन लगाती है। फिर हाथ पकड़कर के माँ उसके स्कूल तक छोड़कर के आती है। स्कूल में बिठाकर के आती है। लेकिन बच्चे का स्कूल जाने में शुरू में मन नहीं लगता क्योंकि उसके माता-पिता, उसका घर छूट गया। लेकिन माँ को मालुम है कि यह अगर अभी से अपनी आदत इस तरह की नहीं डालेगा तो आगे पढ़ नहीं पाएगा इसलिए उसे दिलासा उत्पन्न कराई जाती है।

सबसे बड़ी चीज है deep inner longing जिसे बोलते हैं deep inner desire भीतर से तीव्र इच्छा उत्पन्न होना। जब तक आपकी उस विषय के प्रति तीव्र इच्छा उत्पन्न नहीं होगी, तब तक आपकी उस विषय में परिणति नहीं होगी और आपका मन भी उस विषय को प्राप्त करने के लिए तैयार नहीं होगा। जैसे वह माँ अपने बच्चे के लिए इच्छा नहीं है तो इच्छा उत्पन्न कराती है, वैसे यह शास्त्र और गुरु आप जैसे बच्चों के लिए इच्छा नहीं होकर के सिद्ध सुख की इच्छा उत्पन्न कराते हैं। नहीं भी आप चाहोगे तो वह इच्छा उत्पन्न करनी होगी। इतना आपको बार-बार समझाएंगे और बार-बार आपके मन में ऐसा interest उत्पन्न करेंगे कि आपके मन में एक बार वह ध्यान करने की अभिलाषा उत्पन्न हो जाए। एक बार तो गुरु के द्वारा कर लिया। लेकिन '**स्वस्मिन् सदभिलाषित्वात्**' एक बार आप अपने में इच्छा करो। अच्छे भावों की, सुख की अभिलाषा किए बिना, तुम्हारे अपने अन्दर आत्मपरिणाम क्या ले जा रहा है? कहाँ ले जा रहा है? इसका तुम्हें पता नहीं रहेगा। इसीलिए शास्त्रों में कई बार लिखा रहता है कि हमने हर जन्म में सबकुछ किया। खूब स्वाध्याय, तपस्या की है, पूजा की है। लेकिन इससे कुछ होने वाला नहीं है क्योंकि यह सब काम बाहर के हैं, बाहर ही रह जाते हैं। भीतर का काम यहाँ से शुरू होगा। ऊपर वाले श्लोक की जो लाइने हैं उसमे भी गुरु के उपदेश करने के बाद में, गुरु के उपदेश सुनने के बाद में हमने उस लाइन को वहीं पर छोड़ दिया। अभ्यास नहीं किया और अभ्यास किए बिना कभी भी अपने अंदर यह अभिलाषा उत्पन्न होगी नहीं कि हमें क्या चाहिए। सबके साथ बैठकर हमने सब कुछ किया। वह सबके साथ जो हो जाता है, वो अंदर तक पहुँचता हो, कोई जरूरी नहीं है। जैसे आपका मन अपने आप अचानक बाहरी पदार्थों से जुड़ जाता है। जिसको हमने देख लिया है, उसी का ध्यान करता रहता है। जैसे कोई अच्छी कार दिख गई तो, दिनभर वो कार दिमाग में घूमेगी। किसी के पास में अच्छे नोट दिख गए तो दिमाग में घूमेंगे। जैसे यह चीजें दिमाग में घूमती हैं वैसे ही यह घूमना चाहिए अपने आप। आचार्य यहाँ कह रहे हैं 'स्वतः स्वयं' स्वयं जाग्रत होना। आपकी गाड़ी स्वयं चलनी चाहिए। सिद्ध भगवान का ध्यान, स्मृति आनी चाहिए। अपना मन उसमें तुरंत लग जाना चाहिए। बिना प्रयास के जैसे ही आप कहे सिद्ध तो आपको सिद्ध ही दिखने चाहिए। अरिहंत तो अरिहंत सामने आने चाहिए। ऐसी जब मन की परिणति बन जाएगी तो आचार्य कहते हैं, अब तुम्हें अपनी

किसी भी कार्य को करने के लिये भीतर से तीव्र इच्छा उत्पन्न होना अति आवश्यक है।

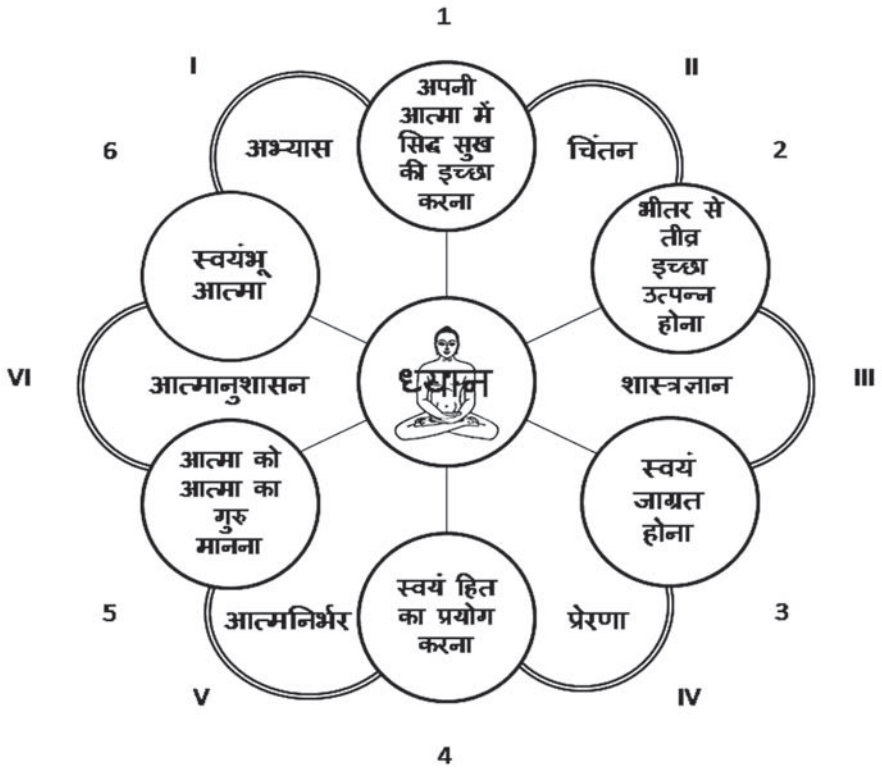

आत्मा के लिए किसी और गुरु की जरूरत नहीं पड़ेगी। बच्चे को तब तक जरूरत है जब तक कि उसका मन कक्षा में न लगने लग जाए। जब उसे स्कूल में अन्य विद्यार्थियों के साथ में आनन्द आने लग जाता है तो फिर वह स्कूल के लिए अपने आप तैयार होने लग जाता है, अपने आप इच्छा करने लग जाता है और अपने आप कहने लग जाता है कि मैं तो स्कूल जाऊँगा। गृहकार्य दिया गया है वह गृहकार्य पूरा करके मेम को दिखाऊँगा। जब वह देख लेगी तो मुझे award मिलेगा। किसी भी तरह से उसके अंदर स्कूल जाने की इच्छा तो उत्पन्न हो गई।

अभीष्ट :

जब इच्छा हो जाएगी तब आगे की एक ओर चीज आचार्य कह रहे हैं- '**अभीष्ट-ज्ञापकत्वतः**'। अपना अभीष्ट क्या है, इस बात को अपने आप जानने लग जाओगे। पहले तो इच्छा उत्पन्न करना और इच्छा उत्पन्न करने के बाद में आपका आत्मा खुद कहने लगेगा कि अब अपने लिए अभीष्ट यह है। अभीष्टयानि जो सबसे ज्यादा प्रिय है। वो सबसे ज्यादा प्रिय भी तब बनेगा जब आपका उपयोग बार-बार उसी चीज में interest को प्राप्त कर लेगा। एक बार इच्छा हो गयी तो interest बढ़ने लगा, इनाम मिलने लगा, बच्चों के बीच में मन खुश होने लगा। अपने आप

आपको लगेगा कि पढ़ने से ही तो ज्ञान आ रहा है, पढ़ने से ही तो हमारे अंदर नए-नए भाव उत्पन्न हो रहे हैं। उसी प्रकार की अभिलाषा से ही हमें अपने अंदर अभीष्ट की इच्छा उत्पन्न होने लग जाती है। अब हमारा अभीष्ट है बाकी सब दुनियाँ, सारा संसार यह तो एक जैसी इच्छाओं में जी रहा है, यह सब तो एक जैसे ही मन की पूर्ति करने में लगा है। इन सबसे हटकर के देखो, सिद्ध भगवान के सुख की अभिलाषा विरलों में होती है। वह किसी में होती है और जिसमें होने लगती है वह मैं हूँ। अब दूसरों के बारे में नहीं सोचना, वह मेरे अंदर उत्पन्न होने लगी है तो इसे छोड़ूँगा नहीं। हर जन्म में हमने कई बार निमित्तों को प्राप्त किया है। लेकिन इस प्रकार की अभिलाषा उत्पन्न नहीं हुई। इसीलिए सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्ति नहीं हो पाई। सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्ति होने पर ही इस प्रकार से मोक्ष सुख का श्रद्धान बन जाता है और उस मोक्ष सुख का श्रद्धान बनाने के लिए भी इसी प्रकार के अभ्यास करने पड़ते हैं। यह अभ्यास करते-करते अपने आप जानने में आने लग जाता है कि यह चीज हमें अपनी आत्मा को बताना है। इस सूत्र में हर चीज अपने लिए कही जा रही है। गुरु से सीखने के बाद में अब आपको अभीष्ट का ज्ञान अपने ही मन में खुद करते रहना है। मुझे इसी प्रकार सिद्ध-सुख की इच्छा हो गई तो इसी सुख को जानना, इसी का ज्ञान करना और इसी के बारे में बार-बार विचार करके अपने मन के अंदर ऐसी परिणति ले आना कि हमें सिद्ध सुख के अलावा और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। आपका विषय अपने आप छूटने लगेगा।

दो प्रकार की परिणति होती है। एक प्रकार की परिणति तो यह है कि विषय सुख छोड़ दो। विषय सुख छोड़कर के सिद्ध सुख मिल जाए यह जरूरी नहीं है क्योंकि विषय सुख छोड़ने के बाद भी सिद्ध सुख की ओर मन नहीं लगा तो वह अंततः आपका मन विषय-सुख की ओर ही चला जाएगा। आपके अंदर विषय सुख छोड़ने की इच्छा हुई नहीं थी, आपने किसी के कहने पर विषय सुख छोड़ दिए थे तो आचार्य कहते हैं कि आपने यह भी छोड़ दिया और वो भी प्राप्त नहीं किया तो तुम जैसा मूर्ख कोई नहीं है। दूसरी परिणति यह है कि आप चाहते हैं कि विषय सुख छूटे लेकिन छूटते नहीं है। अपने मन को इस सुख में लगाओ, सिद्धों के ध्यान करने में लगाओ व आत्मा के अंदर वैसा ही अपनी आत्मा को बनाने का भाव करो। ऐसा भाव करते-करते आपके अंदर से वह विषय सुख अपने आप ढ़ीला पड़ने लगेगा क्योंकि मन आपका ऊँची चीज में लगने लगा, नीची चीज अपने आप छूट जाएगी। नीची चीज से आपने मन को छुड़ाया और ऊपर कहीं लगा नहीं पाए तो वह फिर से बॉल की तरह नीचे गिरेगा। बॉल को हमने ऊपर तो फेंका लेकिन वो ऊपर जहाँ तक जानी चाहिए वहाँ तक नहीं गई तो लौट के वापस आएगी। आचार्य कह रहे हैं, अगर आपको इससे नीचे से, यहाँ के गुरुत्वाकर्षण बल से बॉल उठानी है तो इतना उसको ऊपर फेंको। इतनी अपने मन के अंदर भावना उत्पन्न करो कि नीचे का फोर्स उसको खींच ही नहीं पाए। अपने मन के अंदर ऐसे सुख की अभिलाषा निरंतर करोगे तो यह शरीर आपको हाड़-माँस के अलावा कुछ

नहीं दिखेगा। दुनियाँ का संसार स्वार्थ और माया के अलावा कुछ नहीं दिखेगा। जब आपको यह वास्तविक जानकारी हो जाएगी तो आपको वास्तविक खुशी आएगी क्योंकि सिद्ध सुख से बढ़कर और कोई सुख नहीं है। उसी को कहेंगे real pleasure / real happiness. सिद्ध के लिए हमारी ऐसी परिणति बन जाएगी तो अपने हित के काम अपने आप करने लग जाओगे। अब उसी में हित है जिसमें हमारा मन लग रहा है जो हमारा मन बार-बार हमसे कह रहा है तो उसी में अपने हित के आप स्वयं प्रयोक्ता बन जाओगे '**स्वयं हित-प्रयोक्तृत्वात्**'। तीसरा पद यह है-अपनी आत्मा के लिए स्वयं अपने लिए स्वयं, हित का प्रयोग करने लग जाओ। कोई आपको प्रयुक्त न करे, कोई दूसरा आपको लगाए नहीं और आपका मन आपके लिए स्वयं लगने लग जाए। यह पद अगर हो गए तो आपकी आत्मा ही '**आत्मैव आत्मनः गुरुः**'। आत्मा ही आत्मा का गुरु बन गया और किसी गुरु की इच्छा या जरूरत रहेगी नहीं। पहले अभिलाषा उत्पन्न करना। दूसरा उस अभिलाषा के बाद में अपने ही आत्मा को बार-बार बताते रहना। तीसरा उस अभिष्ट की प्राप्ति करने के लिए प्रयुक्त कर देना। आप जब आत्मा के इस तरह से हित करने के लिए प्रयोक्ता बन जाओगे तो फिर आपको किसी गुरु की जरूरत नहीं है। इसलिए आचार्य महाराज यहाँ कह रहे हैं कि पहले-पहले गुरु की आवश्यकता पड़ती है, बाद में फिर गुरु की भी कोई आवश्यकता नहीं रह जाती है। हर आत्मा इसी तरह से मोक्ष मार्ग को प्राप्त करता है। स्वयं में स्वयं के द्वारा ही मोक्ष मार्ग प्राप्त होता है। इसीलिए हर आत्मा जैसे-जैसे अपने आत्म उपयोग को हित में प्रयुक्त करता चला जाएगा तो वह पर से अपने आप निर्विकल्प होता चला जाता है। यही परिणति आने के बाद में उसे फिर गुरु की कमी महसूस नहीं होती। गुरु का भी काम पूरा हो जाता है क्योंकि गुरु का काम यही था। गुरु भी देखते हैं कि इसके अंदर सद् की अभिलाषा हो रही है या नहीं। यह अपने अभीष्ट का ज्ञापक बन रहा है या नहीं। यह अपनी आत्मा को हित में प्रयुक्त कर रहा है या नहीं। वह तो यह सब बाहरी क्रियाओं से ही देख सकेंगे, भीतरी परिणति जो करने वाला है, उसी को अनुभव में आएगी। गुरु भी यह सोच करके कि हमने जितना इसको बताना था उतना बता दिया, अब एक ही बात बार-बार कहते रहना और उसकी इच्छा अगर नहीं बन रही है तो उसके लिए निरंतर उसको प्रेरित करते रहना। कभी-कभी ऐसा लगता है उन गुरु को कि यह भी एक जबरदस्ती है। हर व्यक्ति को अपने हित की अभिलाषा स्वयं उत्पन्न होती है और वह हित की अभिलाषा जब उत्पन्न हो जाती है तो फिर गुरु भी उससे निश्चिन्त हो जाता है। गुरु के अन्दर भी यह भाव आ जाता है कि हमारे द्वारा करने वाला जो काम था, वह हो गया। शिष्य के अंदर जो सीख पहुँचनी थी वह पहुँच गई तो गुरु भी संतुष्ट हो जाता है। यही शिष्य गुरु के लिए कर सकता है। बाकी जो शिष्य करेगा अगर वास्तविक आत्म हित की इच्छा करने वाला गुरु होगा तो उस शिष्य से संतुष्ट नहीं होगा। शिष्य से भी वही गुरु संतुष्ट होगा जिसके अंदर यह इच्छा है, जैसा मैं कर रहा हूँ, वैसा ही तुम करो और हमेशा गुरु शिष्य की प्रवृत्तियों को देखकर के उसे उस ओर ले जाते रहते हैं। गुरु की भी यह tendency रहती है जिनको

आत्मानुशासन में शासन की भी आवश्यकता नहीं होती है।

सामूहिक रूप से सीखना है उनको सामूहिक रूप से सिखाएंगे। गुरु की दृष्टि में रहता है कि यह कुछ अच्छी इच्छा रखता है तो उसे अलग से भी बुलाकर सिखा देंगे, उसे अकेले में भी बुलाकर ज्ञान दे देंगे क्योंकि उन्हें मालूम है कि इसको इस विषय को लेकर तीव्र इच्छा है। संघ में बहुत सारे लोग रहेंगे। एक सामान्य उपदेश सबके लिए रहेगा। लेकिन कुछ विशेष उपदेश कुछ विशेष लोगो के लिए गुरु देते रहते हैं। कोई भी अच्छी अध्यात्म की बात आएगी तो वह बात उनके लिए सुना देंगे, चाहे वो कही पर भी मिल जाए क्योंकि एक गुरु के सभी शिष्य एक प्रकार की interest नहीं रख पाते। किसी को interest आ रहा है समाज की बातें करने में तो उससे समाज की बातें करेंगे और जिस शिष्य को interest आता है अध्यात्म की बात सुनने में, करने में, तो जिसका मन इसमें लगता है तो गुरु उसको उसी के रूप में समझाएंगे और उसके सामने बार-बार वही बातें करके उसका मन अध्यात्म में लगाएंगे। जैसे एक क्लास में सभी बच्चे पढ़ते हैं लेकिन सभी बच्चे पढ़ते हुए भी एक ही चीज नहीं पढ़ पाते हैं। अध्यापक जो पढ़ा रहा है सभी बच्चे वही नहीं पढ़ पाते हैं। सभी उतना पढ़ने लग जाएँ तो क्लास में सभी प्रथम आने चाहिए। लेकिन क्लास में प्रथम तो 1st, 2nd, 3rd ही आते हैं। जो कारण यहाँ है वही कारण वहाँ पर भी होता है। इसीलिए आचार्य कहते हैं कि यदि सभी के अंदर सत् की अभिलाषा उत्पन्न हो जाए तो फिर गुरु को भी कोई मेहनत करने की जरूरत नहीं पड़ती है। जिस गुरु के सभी शिष्य अपने आप इस प्रकार से आत्महित में लग जाते हैं तो वह गुरु भी अपने संघ से, अपने शिष्यों से, बड़ा संतुष्ट रहता है। वह अगर हजारों की संख्या में होंगे तो भी किसी के लिए ऐसा नहीं लगेगा कि ये हजार हैं।

आचार्य भद्रबाहु महाराज के 24000 शिष्य थे। इतने शिष्य होते हुए भी किसी से कोई परेशानी नहीं है। सब शिष्य एक साथ अनुशासन में चल रहे हैं क्योंकि सभी की अंतरंग अभिलाषा एक जैसी रहती है। अंतरंग की परिणति एक जैसी होगी तो कोई भी उपद्रव नहीं होगा। जब अंतरंग की परिणति एक जैसी नहीं है तो दो लोग भी साथ में नहीं रह पाएंगे क्योंकि उनके अंतरंग की परिणति में यह चीज नहीं आ रही है कि मुझे अपने हित की अभिलाषा, अपनी आत्मा को हित में लगाना। उनकी दृष्टि बाहर जाएगी, जहाँ पर यह चीज हो जाती है तो वहाँ पर दो लोगों के बीच में भी इतनी कलह हो सकती है कि दो लोगों को भी साथ में रहना मुश्किल हो सकता है। जहाँ पर सभी की दृष्टि समान हो जाए तो वहाँ पर किसी शासन की भी जरूरत नहीं पड़ती। अनुशासन ही सबसे बड़ा शासन है। आत्म अनुशासन करना जिन्हें आ गया तो उन्हें शासन करने की जरूरत भी नहीं पड़ती है। जो आत्म अनुशासित रहते हैं तो उन्हें कभी ऐसा लगता नहीं कि हमारे ऊपर अनुशासन किया जा रहा है। जो गुरु के अनुशासन में नहीं रहना चाहते, उन्हें लगेगा कि हमारे लिए बहुत कुछ बंदिशें हैं क्योंकि उनके आत्मानुशासन में कमी है। जिनको आत्मानुशासन में कमी होगी तो उनको इस बात से भी परेशानी हो जाती है कि गुरु हमको बार-बार उसी जगह पर ले जाते हैं। यह कई तरह की परेशानियाँ हैं। यह संघ के भीतर की बात कह रहा हूँ कि अभी तो गए थे

गुरु को सब कुछ समर्पित करके सिर्फ अपने सत् की अभिलाषा रखना चाहिये।

अमरकंटक, फिर से अमरकंटक जाना। अभी गए थे रामटेक और फिर से वही रामटेक। फिर गुरु समझाते हैं, अनेक-अनेक तरह से। तुम किसी भी प्रकार की बाहरी इच्छा में मन को मत उलझाओ। तुम्हें क्या लेना-देना है, तुम्हें अपनी साधना करनी है। तुम तो अपने सत् की अभिलाषा करो। कई लोग इन्हीं कारणों से गुरु से दूर हो जाते हैं, क्योंकि गुरु बहुत लंबी परीक्षा लेते हैं। इन परीक्षाओं में जो पास हो जाते हैं तो वही गुरु उन शिष्यों से संतुष्ट होते हैं। बाकी शिष्य तो बहुत रह जाते हैं लेकिन उन्हें आशीर्वाद नहीं मिलता। दीक्षित हैं लेकिन आशीर्वाद में इसलिए नहीं हैं क्योंकि अपना मन उस तरह से नहीं लग रहा है, जैसा गुरु मन लगाना चाहते हैं। ये चीजें हमेशा से रही हैं, जिन्होंने अपने मन को नहीं संभाला, वो भगवान आदिनाथ के समय पर भी फेल रहे हैं और भी जितने तीर्थंकर हुए हैं, उनके समय पर फेल रहे हैं। आचार्यों के सामने भी इसी प्रकार के शिष्य फेल हो जाते हैं जिन शिष्यों के लिए इस प्रकार की अभिलाषाएँ उत्पन्न नहीं होती है। करना यह है कि जब गुरु के लिए सब कुछ समर्पित कर लिया है, अपने हित की अभिलाषा उत्पन्न हो गई है तो अब गुरु से कुछ ज्यादा कहने की और जरूरत नहीं है। इतना शांत वातावरण अगर सभी शिष्यों के अंदर आ जाए तो किसी भी संघ के अंदर किसी भी प्रकार का कोई कोलाहल आपको सुनाई ना पड़े। 24000 मुनिमहाराज भद्रबाहु महाराज के साथ थे। 700 मुनि महाराज अंकपनाचार्य महाराज के साथ थे और इसी प्रकार से आचार्य गुरुदेव के शिष्य 200-250 हैं। जब भी वो एक साथ बुला लेते हैं, इकट्ठे हो जाते हैं तो इसी शांति से बैठे रहते हैं। 100-200 भी एक जगह बैठे रहेंगे तो आपको पता नहीं पड़ेगा। 48-50 साधुओं के साथ भी हम रहे हैं उत्कृष्ट रूप से।

एक मुनिमहाराज थे उनकी समाधि हुई, उस समय 48 मुनि महाराज नेमावर में थे। वो कहने को तो अन्य संघ के महाराज थे, अन्य संघ से दीक्षित थे। लेकिन उनकी अभिलाषा थी कि हमें आचार्य महाराज से ही समाधि लेना है। आचार्य महाराज ने उनकी परीक्षा ली। एक बार उनको मना किया, वो फिर भी आए और बाद में उन्होंने समाधिमरण किया। 48 मुनि महाराज ने उनकी समाधि कराई। सिद्ध सागर जी महाराज उनका नाम था। इतने उत्कृष्ट संघों में रहकर भी किसी प्रकार की परेशानियाँ नहीं क्योंकि आचार्य महाराज का शासन कभी शासन जैसा लगता ही नहीं और जिनको लगता है, उसका मतलब है वे अनुशासित नहीं है, यह अपने आप फलित हो जाता है। जिन्हें सत् की अभिलाषा होगी, अपना हित करने में मन लगाना होगा। कोई किसी को जबरदस्ती तो करा नहीं सकता। सब अपने-अपने हिसाब से रहते हैं। सबको एक साथ शिक्षा, दीक्षा दी जाती है लेकिन जिनके मन बिगड़ जाते हैं तो भगवान आदिनाथ के समय मारिची की तरह बिगड़ जाते हैं और जिनका मन लगता है उन्हें और कोई अभिलाषा उत्पन्न होती ही नहीं है। बाकी कई अभिलाषा कई बार हो चुकी है। केवल यह सत् की अभिलाषा एक बार भी नहीं हुई है। यह जिसकी समझ में आ जाएगा तो आचार्य कहेंगे अब तू जा। उसको गुरु अपनी इच्छा से कहीं भी भेज देंगे और उसके लिए जो कह देंगे वह मान लेगा। कभी भी गुरु से शिकायत नहीं करेगा तो गुरु समझ लेंगे यह

अपनी अभिलाषा में चल रहा है। इसके लिए किसी भी प्रकार की शिकायत नहीं है। जब गुरु के लिए ऐसा लगने लग जाता है, तब समझ लेना वह गुरु के लिए शिष्य भी अनुशासित हो गया है। गुरु भी उस शिष्य को अनुशासन में रख करके प्रसन्न हो जाता है कि कभी भी किसी प्रकार की शिकायत नहीं आने का मतलब ही यह है कि सत् की अभिलाषा और अपने हित की अभिलाषा इसके अंदर चल रही है। आचार्य कहते हैं 'आत्मैव आत्मनः गुरूः' अब अपनी ही आत्मा को अपना गुरु मानना। गुरु का काम है as a guide / as a teacher. इनका काम होता है केवल सही लाईन पर चला देना, अभिलाषा उत्पन्न करा देना।

जब यह काम तुम स्वयं अपने मन से करने लग जाओगे तो तुम्हारा मन, तुम्हारा गुरु बन गया। ऐसी ही जब मन की प्रवृति बनती चली जाती है तो फिर वह आत्मा अपने आप स्वयंभू होता चला जाता है। स्वयंभू यानि स्वयं हो। जितने भी भगवान होते हैं वे सब स्वयंभू होते हैं। पर के द्वारा कोई भगवान नहीं बनता है। इसलिए जिसको केवल ज्ञान होगा, वह सब स्वयंभू होंगे क्योंकि वह स्वयं अपने पुरुषार्थ से हुए हैं। इसलिए आचार्य कहते हैं तुम धीरे-धीरे बाहरी निमित्तों को छोड़करके आत्म-आश्रित होते चले जाओ। जो आत्म आश्रित होगा वो अनुशासित होगा और जो अनुशासित होगा उसको लगेगा ही नहीं कि हम किसी के अनुशासन में है। जैसे आपके लिए लगता है कि यह लोकशासन है, यह राजतंत्र का शासन है, आपको तो उनके शासन में रहकर के सब प्रकार के कर देने पड़ते हैं। यहाँ पर कोई भी टैक्स नहीं देना पड़ता है लेकिन फिर भी सब कुछ शासन चलता है। इसी को आचार्य समंतभद्र देव कहते हैं- '**अन्वद्यः स्याद्वादस्**' भगवान आपका यह स्यादवाद रूपी जो शासन है यह बड़ा निर्दोष है और आचार्य वहाँ कहते हैं '**गुणानुशासनः**' गुणों का अनुशासन करने वाला आपका शासन है। इसलिए आपका शासन गुणों का अनुशासन कराने वाला है। ''**दोषकशासनविभवः स्तुवंति चैनं प्रभाकृशासनविभवः**''। भगवान महावीर स्वामी की स्तुति करते हुए कहते हैं। '**दोषकशासन**' यानि कस बोलते हैं- घोड़े के ऊपर जो चाबुक मारा जाता है, ऐसे दोषों के लिए तो यह चोट करने वाला है। जो आपके शासन में आएगा उसके अंदर तो दोष रहेंगे ही नहीं, उसे दोषों पर चोट करनी ही पड़ेगी। '**गुणानुशासन-विभवः**' उसके लिए सबसे बड़ा वैभव होगा गुणों का अनुशासन उसे प्राप्त होता चला जाएगा। इसलिए हे भगवान्! आपका शासन हमें बहुत अच्छा लगता है तो भगवान का शासन हम स्वीकार करते हैं और दुनियाँ के शासन में हमें रहना पड़ता है। भगवान का शासन जो गुणों को चाहने वाला होगा वो खुद स्वीकार करेगा। हम आपके शासन में रहना चाहते हैं। राजाओं के शासन में कोई रहना नहीं चाहता है, रहना पड़ता है। लेकिन गुणों के अनुशासन में जो गुणी होगा वह अपने आप रहने की इच्छा करेगा। यही शासन अपने लिए आत्मानुशासन की ओर ले जाता है। इसलिए आचार्य कह रहे हैं कि जो आत्मानुशासित हो गया उसका गुरु उसका आत्मा बन गया।

जो आत्मानुशासित हो गया उसका गुरु उसका आत्मा बन गया।

धर्माचार्य आत्मज्ञान में उपादान नहीं, अपितु निमित्त हैं

35

नाज्ञो विज्ञत्वमायाति विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।
निमित्तमात्र-मन्यस्तु गतेर्धर्मास्तिकायवत् ॥

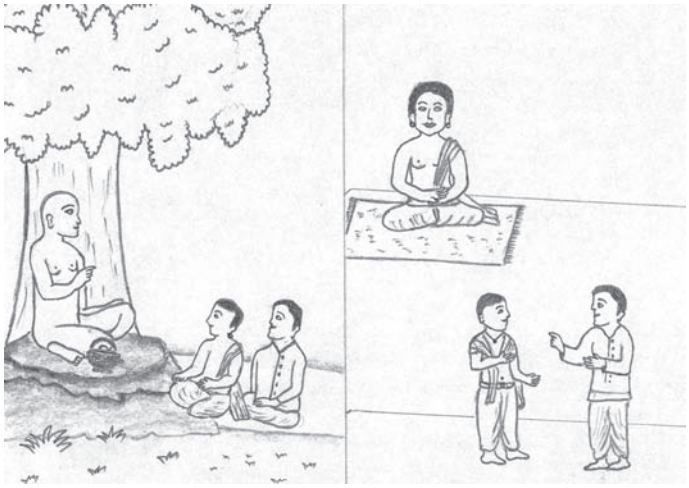

अन्वयार्थ— गुरु आदि के उपदेश से **(अज्ञः)** अज्ञानी **(विज्ञत्वं)** विज्ञानता (ज्ञान दशा) को **(न आयाति)** प्राप्त नहीं होता और **(विज्ञः)** ज्ञानी **(अज्ञत्वं)** अज्ञानता को **(न ऋच्छति)** प्राप्त नहीं होता है **(अन्यः)** अन्य अध्यापक, गुरु आदि **(तु)** तो (ज्ञान प्राप्ति में) **(गतेः)** चलने में **(धर्मास्तिकायवत्)** धर्मास्तिकाय की तरह **(निमित्तमात्रम्)** केवल सहायक मात्र हैं।

- ☞ **निमित्त और उपादान**
- ☞ **राजा वसु**

निमित्त और उपादान :

ध्यान का उपाय बताते हुये जब आचार्य महाराज ने यह सोचा कि सब तरह से समझाने के बाद भी अगर इस आत्मा को समझ में नहीं आता है तो यह मानना चाहिए कि निमित्त उस उपादान के लिए कोई काम नहीं कर रहा है। जो निमित्त होता है उस निमित्त को निमित्त की तरह ही मानना चाहिए। उपादान अपनी आत्मा की शक्ति है, तो निमित्त उस आत्मा की शक्ति को प्रकट करने में सहयोगी होता है। गुरु हैं, उपाध्याय आदि हैं, यह सब उस ज्ञान को सहायक रूप से और आगे बढ़ाने के लिए एक सहकारिक कारण बन जाते हैं। किन्तु यह ज्ञान किसी में उत्पन्न नहीं कर सकते। संसारी प्राणी की दृष्टि इस बात पर रहती है कि हमें ज्ञान कहीं से मिल जाए। हमारे अंदर ज्ञान उत्पन्न हो जाए। आचार्य यहाँ कहते हैं कि ज्ञान तुम्हें बाहर से, कहीं से उत्पन्न नहीं हो सकता, ज्ञान तुम्हारे अंदर से ही उत्पन्न होगा और उसके उत्पन्न होने का कोई कारण होगा तो वह भीतरी कारण होगा। वह भीतरी कारण है, आपके अंदर कर्मों का क्षयोपशम होना। आपके कर्मों का जैसा क्षयोपशम होगा उसी के अनुसार कर्मों का ज्ञान होगा। उस ज्ञान की परिणति जो आगे बढ़ेगी उसमें कई और कर्मों के क्षयोपशम और उदय उसमें जुड़ जायेंगे। वो सब कुछ मिलकर के जो चीज बनती है उसे कहते हैं- भवितव्यता। भवितव्यता का मतलब होता है- होनहार। जिसे आप कहते हैं, ऐसा ही होना था। कोई भी व्यक्ति है, उसके लिए हम ज्ञान बाहर से उतना ही दे सकते हैं जितना उसको ग्रहण करने की क्षमता होती है। गुरु की भी आवश्यकता तब तक है जब तक हमारे लिए उस गुरु के माध्यम से कुछ सीखने में आ रहा है। कुछ बच्चे ऐसे भी होते हैं क्लास में, जो गुरु के माध्यम से कुछ भी नहीं सीख पाते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जो थोड़ा सीख लेते हैं और कुछ ऐसे होते हैं, जो बहुत कुछ सीख लेते हैं। ऐसे भी बच्चे होते हैं, जिनको पढ़ाने के बाद में भी वो फेल हो जाते हैं तो उसके लिए कहते हैं, इसकी होनहार ऐसी ही थी। उसी तरह से आचार्य यहाँ कह रहे हैं कि कभी अज्ञ को विज्ञ नहीं बनाया जा सकता है।

''नाज्ञो विज्ञत्वमायाति।''

जो अज्ञ है, वो कभी विज्ञपने को प्राप्त नहीं होगा। अज्ञ ही विज्ञ बनता है लेकिन जिस समय पर जिस कक्षा में पढ़ रहा हो और उस कक्षा में पढ़ करके भी उसके लिए कोई अच्छे नम्बर नहीं आ रहे हो, वह फेल होता जा रहा हो, तो यह कहा जाता है कि यह तो अज्ञ है, अज्ञ ही रहेगा। उसी तरह से आचार्य कह रहे हैं कि कभी भी अज्ञ को विज्ञ नहीं बनाया जाता। मतलब यह है कि हम किसी को जबरदस्ती मिथ्यादृष्टि से सम्यग्दृष्टि तो नहीं बना सकते। ऐसा भी कह सकते हैं कि किसी के अन्दर वह तत्त्वज्ञान प्राप्त करने की योग्यता नहीं है तो वह योग्यता भी हम डाल नहीं सकते।

कुछ और भी कारण रहते हैं जिन कारणो के मिलने से वह योग्यता उसके अंदर धीरे-धीरे आती है। लेकिन अभी वह वर्तमान में नहीं आ रही है तो, उसकी उस योग्यता के प्राप्त न होने के

कर्मों के क्षयोपशम के अनुसार ज्ञान की परिणति होती है।

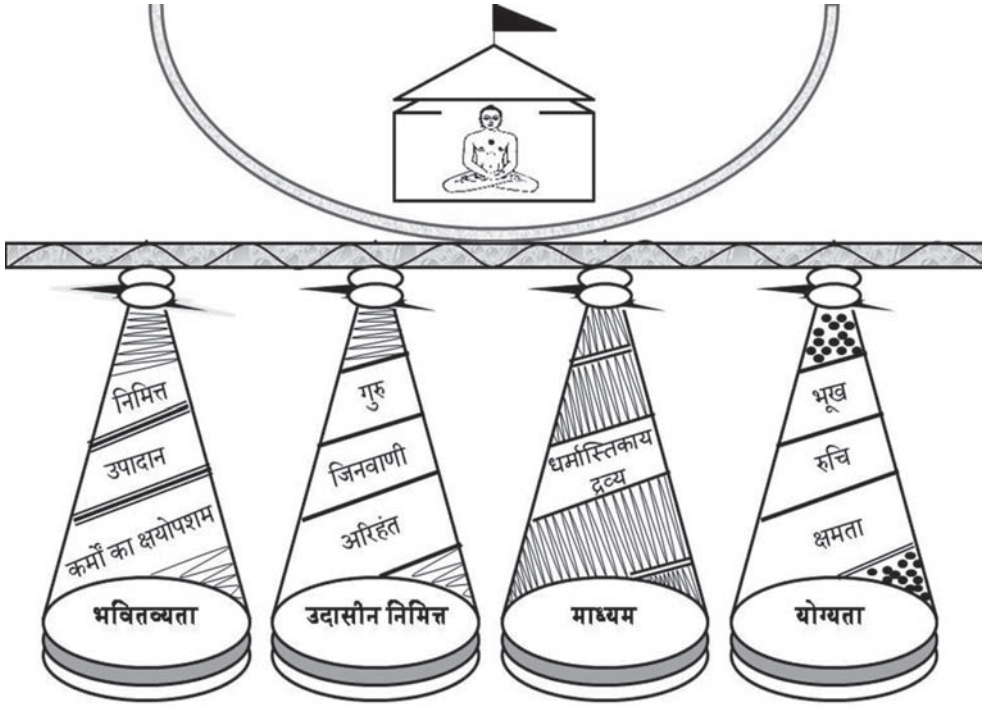

आत्मकल्याण

कारण तुम खेद मत करना। तुम मतलब जो सिखाने वाले हैं, जो गुरु है उनके लिए यहाँ कह रहे हैं कि यह सब जितने भी कारण होते हैं सब कारणों में अपने आपको एक उदासीन निमित्त मानना। गुरु भी उदासीन निमित्त की तरह होता है। हम सभी जानते हैं कि हम गुरु को प्रेरक निमित्त की तरह कहते हैं। देव है भगवान अरिहंत वो हमारे लिए उदासीन निमित्त है क्योंकि वह बिल्कुल उदास बैठे है। उनसे हमें कुछ प्राप्त करने के लिए अपनी तरफ से प्रयास करना पड़ता है। इसलिए हम उन्हें कहते हैं यह उदासीन निमित्त है। जिनवाणी भी हमारे लिए उदासीन निमित्त हैं क्योंकि इसको भी हमें पढ़ना पड़ता है। इससे भी हमें सीखना पड़ता है, इसके लिए भी हमें पुरुषार्थ करना पड़ता है। इसलिए यह तो उदासीन है। जो उदासीन निमित्त होगा, वो हमारे लिए कभी भी प्रेरित नहीं करेगा। यह जिनवाणी कभी ऐसा नहीं कहेगी कि तुम मुझे उठाके पढ़ो, तुम मुझे देखो आदि। तुम्हारी इच्छा हो तो जिनवाणी को उठाओ, पढ़ो, उसका चिन्तन, मनन करो। इसी तरह से भगवान अरिहंत देव कभी नहीं कहेंगे कि आप हमारे दर्शन कर लो, पूजा कर लो, क्योंकि यह उदासीन निमित्त हैं। यह कोई हमारे अंदर काम उत्पन्न कर सकते हैं। हमारे अंदर की परिणति को बदल सकते हैं। लेकिन यह उदासीन हैं, मतलब यह हमें प्रेरित नहीं करेंगे। जिनसे हमें प्रेरणा लेनी पड़े वो कहलाते हैं हमारे लिए उदासीन निमित्त। उनके माध्यम से हमें खुद अपने अंदर से प्रेरित होना पड़ता है। खुद हमें

अरिहंत भगवान व जिनवाणी उदासीन निमित्त हैं तथा गुरु को प्रेरक निमित्त माना जाता है।

अपने अन्दर भाव सँजोने पड़ते हैं इसलिए वो हमारे उदासीन निमित्त के रूप में हो जाते हैं। लेकिन जो गुरु होते हैं, उन्हें शास्त्रों में प्रेरक-निमित्त के रूप में कहा जाता है क्योंकि वो हमें प्रेरणा देते हैं। वो हमको कह सकेंगे। इसको पढ़ना, इसका अर्थ समझना आदि। हमें बहुत प्रकार की प्रेरणाएँ वो देते रहेंगे। इसलिए हम उनको कहते हैं, यह हमारे लिए प्रेरक निमित्त हैं। मन हमारा नहीं हो तो भी हमारा मन बना दें, मन हमारा लगने लग जाए, उसका नाम है प्रेरक निमित्त के कारण से होने वाला कार्य। सिद्धांत ग्रंथो में गुरु को प्रेरक निमित्त के रूप में कहा जाता है क्योंकि जब हम इन तीनों में तुलना करते हैं भगवान में, शास्त्र में या अन्य कोई भी निमित्त है उनमें तो उसकी तुलना में हमें गुरु एक प्रेरक निमित्त के रूप में समझ में आते हैं। लेकिन यह अध्यात्म शास्त्र है। इसमें आचार्य श्री पूज्यपाद महाराज कह रहे हैं -''**निमित्तमात्रमन्यस्तु गतेर्धर्मास्तिकायवत्।**'' यह जितने निमित्त हैं गुरु आदि के भी, यह भी धर्मास्तिकाय के समान सब उदासीन निमित्त ही हैं। उन्हें प्रेरक निमित्त नहीं कह रहे हैं, इसी का नाम अध्यात्म है। क्योंकि अध्यात्म की प्रेरणा एक लिमिट तक ही हो सकती है।

बाद में तो वह अपने आप से ही होगा और अध्यात्म की प्रेरणा के लिए कभी भी बाह्य निमित्तों को अगर वह प्रेरक मानकर चलेगा तो उनके ऊपर निर्भर हो जाएगा। अगर उनको उदासीन निमित्त मानकर के चलेगा तो उनसे अपना काम चलाएगा। उनके माध्यम से अपने अंदर का ज्ञान बढ़ाएगा, अपने अंदर की परिणति को बदलेगा। यहाँ उदासीन निमित्त कहने का एक कारण है। उदासीन निमित्त जैसे धर्मास्तिकाय एक द्रव्य होता है, जो द्रव्य हमारे लिए गति में सहायक बनता है। लेकिन वह उन्हीं के लिए गति में सहायक बनेगा जो गति करेंगे। चलोगे तो चलने के लिए वह एक मीडिया है, माध्यम है। जैसे मछली के लिए पानी एक माध्यम होता है, पानी कभी मछली को चलाएगा नहीं। मछली की इच्छा होगी तो पानी उसके लिए सहायक होगा। उसी तरह से आचार्य कहते हैं जितने भी निमित्त होते हैं, वो सब उदासीन ही होते हैं। प्रेरक तो कोई होता ही नहीं है। गुरु भी उदासीन निमित्त ही है। आप चलने की इच्छा करोगे तो वो आपको चलाने के लिए एक साधन बन जाएंगे। अगर आप चलने की इच्छा नहीं करोगे तो वो कितना भी चला लें लेकिन आप चल नहीं पाओगे क्योंकि आपको चलना नहीं है। अपनी-अपनी विवक्षा में दोनों ही चीजें समझ में आती है। जब हमारी दृष्टि में व्यवहार की मुख्यता हो जाती है, पर के ऊपर अपना उपकार करने की मुख्यता हो जाती है तो उस समय पर हमारी दृष्टि में यह आ जाता है कि यह हमारे लिए प्रेरक निमित्त हैं। जब हम अपने अंदर की परिणति को एक वस्तुस्थिति के रूप में देखते हैं। निश्चय की दृष्टि से देखते हैं तो हर एक आत्मा को यह प्रतिभासित होगा कि जितने भी निमित्त हैं, यह सब हमारे लिए उदासीन निमित्त हैं। जो इच्छा करेगा, उसको मिलेगा और जो इच्छा नहीं करेगा उसको नहीं मिलेगा क्योंकि भीतर की परिणति ही अंत तक हमारे लिए काम में आने वाली है। इसलिए

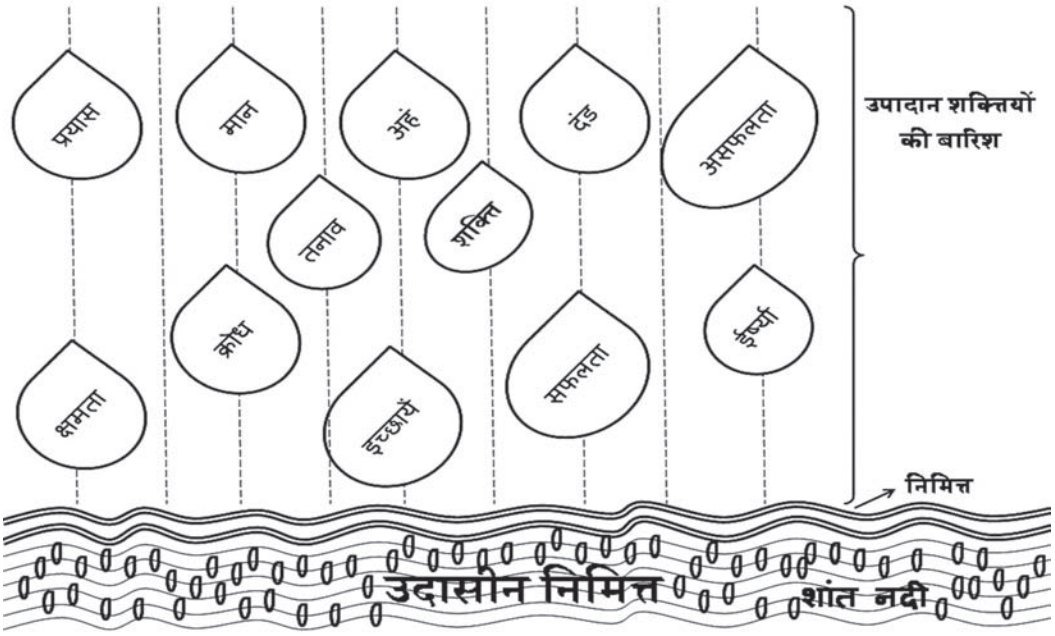

आचार्य कहते हैं, जब भी कभी भवितव्यता देखनी हो तो भीतरी दृष्टि डालना। भीतर देखना कि इसके अंदर कितनी क्षमता है, भीतर देखना कि इसके अंदर कितनी भूख व रुचि है क्योंकि वह अपनी रुचि से ग्रहण करेगा। बाहर कितना भी कुछ ना रखा रहे लेकिन ग्रहण करना तो अपनी रुचि से ही होता है। ऐसे ही आचार्य कहते हैं कि हम तुम्हारे लिए एक उदासीन निमित्त है। काम तो आपको ही करना है। अगर यह कहते रहेंगे कि हम आपके लिए प्रेरक निमित्त है तो आप सोच लोगे कि महाराज तो हमारे लिए प्रेरक निमित्त हैं, आप निश्चिन्त हो जाओगे। आपने कह दिया कि हमने अपने जीवन की नैया की डोर आपके हाथ में बाँधी तो इसका मतलब हम तो निश्चिन्त हो गए। अब आप ही को उसे चलाना है। बाँधने के बाद में भी कभी कहोगे कि जैसा चलाओगे वैसा नहीं चलेंगे, क्योंकि डोर बाँधने के बाद में चलाना तो उतना ही है, जितनी हमारे अन्दर क्षमता है। जिस गाड़ी में खुद के कोई भी पहिए नहीं हो उस गाड़ी को कोई दूसरी गाड़ी भी खींचकर के ले नहीं जा सकती। डोर हाथ में बाँधने के बाद भी आपको ही चलना पड़ेगा। आपके पैरो में दम होगा तो, आप चल पाओगे।

जब माँ एक बच्चे को बड़ा करती है तो उसकी उँगली पकड़ के उसको उठाती है। जब वो कुछ महीने तक जमीन पे रेंगता है तो, उसको उठने के लिए वो तैयार करती है, उसको धीरे-धीरे करके चलाएगी। उसी बच्चे में वो चलने की क्षमता आएगी जिसके पैर सही हो। उसके अपने

यदि हमारी दृष्टि उदासीन की रहेगी तो खुद को संभालना आसान रहेगा।

अंतरंग की परिणति इतनी सही हो कि वो चलने की इच्छा कर रहा है और उसके चलने में कोई बाधा नहीं है। थोड़ा सा प्रयास बाहर का और थोड़ा सा प्रयास उसका और उसके लिए समय उसका काम करता चला जाएगा तो वह धीरे-धीरे उँगली पकड़ के चलने लग जाएगा। कभी भी किसी को सुधारने के लिए उसके पीछे नहीं पड़ना। आचार्य कहते हैं कि अपने अन्दर में दृष्टि रखना कि हम किसी के लिए भी अगर कोई निमित्त हैं, तो एक उदासीन निमित्त है। उदासीन निमित्त की दृष्टि रहेगी तो पढ़ाने वाला भी अपने परिणाम अच्छे बनाए रखेगा और वो जिस ढंग से प्रेरित करेगा तो वह भी अच्छे ढंग से प्रेरणा पाकर प्रेरित हो जाएगा लेकिन दुनियाँ में ज्यादातर लोग आपको जबरदस्ती करते मिलेंगे। माता-पिता अपने बेटे से जबरदस्ती करते हैं। अगर कोई नासमझ गुरु होगा तो वह भी अपने शिष्यों से जबरदस्ती करता मिलेगा। कितनी बार हम अपने बेटे से जबरदस्ती करते हैं कि ऐसा तुम्हें पढ़ना है, जब जाकर वह पढ़ने के लिए तैयार होता है। लेकिन अगर वह पढ़ने के लिए तैयार उसके बावजूद भी नहीं होता है तो आप परेशान हो जाओगे। उस समय पर आचार्य कहते हैं अपने अंदर यह दृष्टि रखो कि हम किसी के लिए एक निमित्त हैं लेकिन एक उदासीन निमित्त हैं। अगर आपके अंदर उदासीन निमित्त की दृष्टि रहेगी तो आप अपने परिणामों को संभाल लोगे। जिस बच्चे को आप बड़ा करना चाह रहे हो और वह बच्चा आपके कहने से बड़ा नहीं हो रहा है। उसमें बड़ा होने की क्षमता है इसलिए बड़ा हो रहा है। हम उसी को चला पाएंगे जिसमें चलने की क्षमता हो लेकिन हम कहेंगे कि हमने तुझे बड़ा किया। कभी भी हम यह नहीं कहेंगे कि इसके अंदर भी चलने की क्षमता थी इसलिए यह चलने लगा क्योंकि हमारी दृष्टि में हमेशा भीतर एक अहं छिपा रहता है। निमित्त आश्रित ऐसी दृष्टि रहती है कि हम कभी किसी भी व्यवहार में उपादान की ओर तो देखते ही नहीं है। कोई भी कार्य होगा तो हम यही कहेंगे कि यह मैंने किया। इसलिए हर माता-पिता के अंदर एक अहंकार पैदा हो जाता है कि मैंने बेटे का पालन पोषण किया, उसको बड़ा बनाया। अगर तुम ही पढ़ा सकते तो दुनिया में कोई अनपढ़ रहता ही नहीं। अगर बेटे के अन्दर खुद का कोई ज्ञान नहीं है, उसके दिमाग की क्षमताएँ कम है तो आप उसे कितना भी अच्छा पढ़ा लोगे, कितनी भी अच्छी कोचिंग में भेज दोगे तो भी कुछ नहीं होगा। जिसके लिए भीतर से कोई ज्ञान नहीं है उसके लिए लाखों रुपये खर्च करके आप उसको अमेरिका भी भेज दोगे तो भी वह वहाँ पढ़ नहीं पाएगा। इस परिणति को जब तक हम नहीं समझते तभी तक हम परेशान होते हैं। जब हम इस अध्यात्म को समझने लग जाते हैं तो हमारे परिणाम अपने आप हमसे कहने लग जाते हैं कि हमारे करने योग्य है क्या ? हमारे करने योग्य तो इतना ही है कि हम उसके लिए उँगली दिखाएँ। वो उस उँगली को पकड़ ले और पकड़ करके वह अगर आगे बढ़ने की क्षमता रखेगा तो आगे बढ़ता चला जाएगा। हमारी उँगली उसके लिए प्रेरक निमित्त है। हम कहेंगे बस यह प्रेरक

निमित्त है लेकिन हमारी उँगली भी उस स्थिति में एक उदासीन निमित्त है क्योंकि वह चलने की इच्छा खुद कर रहा है। वो चलने की इच्छा करेगा तो उँगली पकड़ेगा और आप उसको खींचोगे तो वो आगे बढ़ेगा। अगर उसके अंदर चलने की इच्छा नहीं है तो वो उँगली पकड़ के भी गिर पड़ेगा क्योंकि उसके पैरों में खड़े होने की क्षमता नहीं है। आपको स्पष्ट हो जाना चाहिए कि हर बेटा अपनी क्षमता से ही बढ़ता है। हम उसके लिए उदासीन निमित्त हैं।

इन अध्यात्म सूत्रों को हम यदि इस ढंग से समझने लगे, घर के किन्ही भी संबंधो के बीच में हम अपने संबंधों को एक उदासीन निमित्तों के रूप में देखने लगे तो हमें किसी के साथ जबरदस्ती करने की जरूरत नहीं पड़े और जब हम किसी से जबरदस्ती नहीं करेंगे तो कोई भी हमसे परेशान नहीं होगा और स्वयं भी परेशान नहीं होंगे। हमें कोई दुःख तब होता है, जब कोई काम अपनी इच्छा से चाहते हैं और वो हमारी इच्छा के अनुकूल नहीं होता। वह इसलिए भी नहीं हो पाता क्योंकि हम दूसरे की उपादान शक्ति को देखते नहीं है। निमित्त उतना ही काम करेगा जितना वह कर सकता है। वह उसके लिए बाहर से माहौल दे सकता है। लेकिन भीतरी परिणति तो हर जीव की अपने-अपने कर्म के उदय से काम करती रहती है। ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम होगा तो बच्चा घर में ही रहकर के इतना पढ़ सकता है कि उसको कहीं स्कूल भी जाने की जरूरत ना पड़े। ऐसे कई वैज्ञानिको के इतिहास हैं, जो स्कूल नहीं गए हैं, कोई बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ उन्होंने नहीं ली हैं लेकिन वो बड़े-बड़े वैज्ञानिक बने हैं क्योंकि क्षयोपशम अपने अन्दर होता है। आचार्य कहते हैं सबसे बड़े ज्ञान को उत्पन्न करने का जो कारण है, वह हमारे ज्ञान कर्म के उदय से ढका हुआ नहीं है, उतना ही ज्ञान हमारे लिए काम करेगा। जो ज्ञान ढका हुआ है, वह ज्ञान हमारे लिए कोई काम करने वाला नहीं है। जिनके घर में अच्छे पढ़ाने के माहौल नहीं होते, माता-पिता के पास पैसा नहीं होता है लेकिन फिर भी बच्चे के अंदर एक लगन होती है और ज्ञान का क्षयोपशम होता है तो वह सब कुछ पढ़ता चला जाता है। अपने आस-पास भी किसी न किसी तरह अपनी व्यवस्था करता है और पढ़ता रहेगा, इसे कहते हैं, स्वयं की शक्ति से आगे बढ़ना। हम बच्चों को बाहर से इतना समर्थ कर देते हैं और इतना समर्थ कर देना चाहते हैं कि वह बच्चा भूल जाता है कि हमारे भीतर भी कोई शक्ति है या नहीं। जितने भी बच्चे पढ़ने वाले होंगे सबको सबसे पहले tution चाहिए। स्कूल तो पहले प्रथम आवश्यकता हुआ करती थी। tution, कोचिंग तो दूसरी आवश्यकता थी। आज के समय पर स्कूल दूसरी आवश्यकता है। पहली आवश्यकता tution है। सबसे पहले tution चाहिए। extra हमारे लिए पढ़ाने वाला चाहिए। हम उस चीज से नहीं पढ़ पा रहे हैं, जो सबके लिए कॉमन है। इसको common के बीच में से भी कुछ extra लोगों के बीच में से कुछ extra चीज चाहिए। वह कोचिंग जिसके माध्यम से बच्चे को पढ़ने की आदत पड़ जाती है तो फिर वह school के

कोचिंग बच्चे को ऐसा बना देते हैं कि वह अपनी भीतरी क्षमता परखता ही नहीं है।

teacher से न कुछ पढ़ पाता है न अपनी text book से। उसके लिए यह आदत पड़ गई, जो कुछ भी पढ़ना है यह सब tution वाले सर को पढ़ाना है। जो कुछ आगे बढ़ने के लिए मिलेगा वो सब tution से मिलेगा। बाहरी माहौल हमने उसको इतना दे दिया कि उसके भीतर की जो क्षमताएँ हैं, वो भी कई बार बाहरी क्षमताओं के कारण कम हो जाती है, कोई बच्चा अपनी क्षमताओं को परखता नहीं है। अगर अपनी क्षमताओं को नहीं परखेगा तो वह कभी भी आगे बढ़ नहीं सकता और हमेशा निर्भर होता चला जाएगा कि बिना tution के हमारा कोई काम होता नहीं है।

यह tution का माहौल आज का नहीं है। जब हम पढ़ते थे तब भी ऐसा ही चला करता था। थोड़ा कम था पर college व school की पढ़ाई पर महत्व रहता था। वो बच्चे उनके पास पढ़ाई करने जाते थे जो कमजोर होते थे और कई बार तो बच्चे इस संगति के कारण से चले जाते हैं कि मेरा दोस्त गया है तो मुझे भी जाना है। ऐसा माहौल उस समय पर भी रहता था। खुद मैंने महसूस किया है। जब 10वीं पढ़ने के बाद मैं ग्यारहवीं में पहुँचा, वहाँ school चेंज हो गया, पूरा सारा माहौल change हो गया। जितने भी अध्यापक थे, वह दसवीं तक छूट गए। अब ग्यारहवीं में सब नए-नए लोग आ गए। वहाँ की पढ़ाई भी अलग standard की। नया subject, नई site, नए लोग, सब पूरा अलग माहौल बन जाता है। उसके बीच में जब आगे बढ़ने की बात आती है, पढ़ तो रहे हैं 11 वीं, 12 वीं में लेकिन वहाँ पर 11 वीं, 12 वीं को intermediate college बोलते हैं। U.P. में school नहीं बोलते हैं। उस school में पढ़ाए जाने के बाद भी जो पढ़ाया जा रहा है, उन्हीं के बीच में से कुछ बच्चे अतिरिक्त पढ़ने के लिए tution लगाते हैं क्योंकि इसके बिना तो हम यह पढ़ ही नहीं पायेंगे। उनके अंदर पहले से डर बैठा है। physics की, chemestry की tution लगाओगे तो अच्छे नंबर आयेंगे। नहीं लगाओगे तो एक ओर डर बैठा दिया जाता है कि वे बच्चे जो tution नहीं लगाते, उनको practical में नम्बर नहीं मिलेंगे। लेकिन कुछ बच्चे ऐसे भी होते हैं जो देखते हैं कि हमें किस चीज की कितनी आवश्यकता है। हमें यह दिखाई दे रहा है कि इतनी बड़ी-बड़ी text book हैं, इनको पढ़कर के भी हमको समझ में आ रहा है और इनके साथ बनी हुई गाईड बुक होती है, उनसे यह चीजें और सरल हो जाती है। वह चीजें सब वही होती है जो सामने सर पढ़ा रहे हैं। वही हम school में पढ़ रहे हैं, text book में पढ़ रहे हैं। इतना पढ़ने के बाद अलग से tution करने की जरूरत ही नहीं। लेकिन बच्चे मानते नहीं। कुछ बच्चे होते हैं जो सोचते हैं हमारा काम स्कूल की पढ़ाई से ही अच्छा चल रहा है। अब उस बच्चे के लिए दूसरे बच्चे डराते हैं कि यह theory तो तुम अच्छा कर लोगे। लेकिन प्रायोगिक में उन सर के पास पढ़ोगे तो ही तुम्हें नंबर मिलेंगे। लेकिन कुछ बच्चे ऐसे होते हैं जो डरते नहीं है। half yearly exam हुई और उस बच्चे ने कोई tution नहीं लगाई। उसे मालूम था कि सब सर अपने से अपरिचित है। नए-नए है कोई बात नहीं। जहाँ पहले पढ़ा करता था, वहाँ सब जैन थे। अब जहाँ बाद में पढ़ना शुरू किया, वहाँ कोई

क्षत्रिय थे, कोई ठाकुर थे। उस बच्चे ने अर्द्ध वार्षिक की परीक्षा दी। सबसे ज्यादा डर लगता था। एक वहाँ physics का टीचर था बिल्कुल तैयार up to date होकर के आता था। वो देखने में भी जैसे बहुत बड़ा विद्वान् हो। बच्चे बोलते थे कि इन सर से कभी ज्यादा बात नहीं करना। बस उन्होंने अपना lacture दिया board पर लिखा और चले गए। उसको अपनी guide से मिलाओ और अपना पढ़ो। उस सबको पढ़ने के बाद में जब अर्द्ध वार्षिक की परीक्षा हुई तो उस अर्द्ध वार्षिक की परीक्षा में जो copy होती है वह दिखाई जाती है। होता यह है कि क्लास में बहुत सारे विद्यार्थी हैं और अधिकांशतः विद्यार्थी उन सर से कोचिंग पढ़ रहे हैं और जो coaching नहीं पढ़ रहे हैं, sir उसकी copy को हाथ में लेकर के कहते हैं यह copy पूरे class में कुछ विशेष है। अभी उसका नाम नहीं खोला गया। कॉपी लेकर के सर ने हिलाई और वो सर उसमें दो विशेषताएँ बताते हैं। एक तो इस कॉपी में सब कॉपियों में से सबसे ज्यादा नम्बर है और दूसरी बात यह है कि इस कॉपी के पीछे जो 'बी' कॉपी लगती है जिसे आप सपलिमेंटरी कॉपी बोलते हैं, वो इसमें एक भी नहीं लगी है, बाकी के सब विद्यार्थी ने सपलिमेंटरी कॉपी लगाकर के रखी है। तब बाद में उसका नाम बताया गया, वो नाम इस जैन का है। तब समझ में आया कि आत्मविश्वास भी कोई चीज होती है और अगर आदमी अपने अंदर इस प्रकार का आत्मविश्वास रखे तो वह दुनिया की भीड़ में रहकर भी अपने रास्ते अलग बना सकता है। उसके बाद ऐसा आत्मविश्वास बढ़ा कि फिर कभी भी ट्यूशन करने की जरूरत नहीं पड़ी।

ऐसी अपने अंदर जब क्षमताएँ आने लग जाती है तो वह बच्चा कहीं भी रहेगा, बढ़ता चला जाएगा। भीतर का ज्ञान अपने अंदर काम करता है। बाहर के माहौल तो उदासीन निमित्त होते हैं वो माहौल में कुछ भी माहौल हो। अगर दूसरा व्यक्ति है तो वह भी उदासीन ही निमित्त है क्योंकि वो आपके अंदर ज्ञान डाल नहीं सकता है, ज्ञान आपका होगा, उसको वह चालू कर सकता है। उसको वह थोड़ी गति दे सकता है, इसी को कहते हैं उदासीन निमित्त। आचार्य कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति जिसको आप सिखा रहे हो और वह अगर नहीं सीख पा रहा है तो आप उसके लिए उदासीन निमित्त है। अपने आपको प्रेरक निमित्त नहीं मानना। अब इसमें भी दो चीजें हैं, सिखाने वाला यह समझे कि मैं उदासीन निमित्त हूँ और सीखने वाला समझे कि यह हमारे लिए प्रेरक हैं, तब ठीक है। अगर सिखाने वाला यह समझ लेगा कि मैं प्रेरक हूँ और यह उदासीन है तो यह बात उल्टी हो जाएगी क्योंकि निमित्त को आपने मुख्यता दे दी व उपादान को आपने उदासीन कर दिया तो यह आपका उल्टा ज्ञान हो गया। हर माता-पिता को अगर अपने बच्चों को इसी तरह से सिखाना आ जाए तो कोई भी बच्चा बिगड़ेगा नहीं। बच्चा तब बिगड़ता है, जब हम उसके साथ में जबरदस्ती करते हैं और वह जबरदस्ती हम अपनी क्षमताओं से करते हैं, उसकी क्षमता को नहीं देखते। उसकी क्षमता के अनुसार अगर हम उसे वातावरण देते चले जाएँ तो वह अपनी क्षमता के अनुसार बढ़ेगा, अपनी

क्षमता में सन्तुष्ट रहेगा। उसकी यह संतुष्टि आपके लिए भी हितकारी होगी और उसके लिए भी हितकारी होगी। इसलिए हमेशा यह चीज ध्यान रखने योग्य है कि अज्ञ को कभी भी विज्ञ नहीं बनाया जा सकता है और उसी तरह से भिन्नता भी याद रखना कि विज्ञ को भी कभी अज्ञ नहीं बनाया जा सकता।

''**नाज्ञो विज्ञत्वमायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति**'' जो विज्ञ है तो आप उसको अज्ञानी नहीं बना सकोगे। अब इस श्लोक के कई अर्थ निकलते हैं, अज्ञ और विज्ञ से क्या अर्थ निकालना चाह रहे हैं? एक तो तात्पर्य यह है कि कोई अभव्य जीव है, उसको कभी हम भव्य नहीं बना सकते। जो भव्य है, उसको कभी अभव्य नहीं बना सकते। क्योंकि अभव्य के अंदर तत्त्वज्ञान की क्षमता नहीं रहती है और भव्य के अंदर तत्त्वज्ञान प्राप्त करने की क्षमता रहती है। जिसके अंदर तत्त्वज्ञान प्राप्त करने की क्षमता है तो हम उसकी क्षमता को कभी भी मिटा नहीं सकते, वह अपने अंदर की योग्यता को प्रकट कर लेगा। इसलिए आचार्य यहाँ कह रहे हैं कि हम कभी भी अज्ञ को विज्ञ नहीं बना सकते और विज्ञ को अज्ञ नहीं बना सकते हैं। दूसरा अर्थ यह निकलता है कि जो कोई भी प्रयास कर रहा है और प्रयास करने के बाद भी भव्यों की भी अपनी-अपनी क्षमताएँ समय-समय पर प्रकट होगी। अपनी-अपनी उपादान की योग्यता उस समय पर जागृत होगी। जब तक वह योग्यता जागृत नहीं होती है तब तक भी हम यह समझ सकते हैं कि अभी इसकी योग्यता जागृत होने का समय नहीं है। इसलिए आपको परेशान होने की जरूरत नहीं है। अधिकतर लोग यह करते हैं कि जब कोई व्यक्ति आगे बढ़ता है या विद्यार्थी भी एक को दूसरा बढ़ता हुआ देख लेता है तो उनके अंदर एक ईर्ष्या का भाव आ जाता है। अगर यह चीजें समझी जाए तो विद्यार्थी ईर्ष्या से बच सकता है। यहाँ कहा जा रहा है कि अपनी उपादान की जितनी योग्यता है, हम उतना ही प्राप्त करते हैं। पढ़ने को दस व्यक्ति एक साथ पढ़ रहे हैं, सभी मेहनत कर रहे हैं लेकिन जिसके लिए उपादान की योग्यता अच्छी है, ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम है तो उसको सब अच्छा समझ में आएगा और जिसके लिए थोड़ा सा कम है तो उसको कम समझ में आएगा। जो हमारे अंदर की क्षमताएँ हैं, हम उनको बदल नहीं सकते हैं। उनमें एक निश्चित मात्रा में ही थोड़ा सा परिवर्तन आ सकता है।

कितने घरों में ऐसे बच्चे होते हैं जो दिमाग से कमजोर होते हैं। उनका कितना ही इलाज करा लो लेकिन उनके दिमाग का वो स्तर है जो नहीं बढ़ता है। कुछ बच्चे ऐसे होते हैं जिनको पढ़ने पर याद ही नहीं होता है और उन्हें सब चीजों की याद्दाश्त रहेगी लेकिन पढ़ाई की याद्दाश्त नहीं रहेगी। ऐसा इसलिए होता है कि हर एक ज्ञान का अपना अलग-अलग क्षयोपशम होता है। आचार्यों ने कहा कि अगर आपके अंदर कोई प्रश्न उत्पन्न हो रहा है तो वह भी आपके ज्ञान के कारण से होगा। प्रश्न को उत्पन्न करने वाला भी एक ज्ञानावरणी कर्म होता है जिसे कहते हैं- ''**ईहा ज्ञानावरणी कर्म।**'' कर्म के उदय से तो प्रश्न उत्पन्न नहीं होगा। लेकिन कर्म का जब क्षयोपशम होगा तब

आपके अन्दर 'ईहा' यानि 'इच्छा', प्रश्न करने की जिज्ञासा उत्पन्न होगी कि यह क्या है? ऐसा क्यों होना चाहिए? यह भावना आएगी तो वह भी आपके ज्ञानावरणी कर्म के क्षयोपशम से आएगी। 10 बच्चे अगर किसी कक्षा में पढ़ रहे हैं तो उन सबके अंदर प्रश्न करने की इच्छा नहीं होती है। प्रश्न करना भी कोई-कोई ही जानता है। अपने अंदर शंकाएँ उत्पन्न करके उसका समाधान करने की इच्छा भी कोई-कोई जानेगा। लेकिन कहने की शक्ति सभी को नहीं होती है। हम प्रश्न को स्वयं मन से बनाकर दूसरे के सामने कह नहीं पा रहे हैं। यह भी एक ज्ञानावरण के क्षयोपशम की कमी के कारण से ही होता है। आगे तत्त्वार्थसूत्र में आता है कि अवग्रह ज्ञान, ईहा ज्ञान, अवाय ज्ञान और धारणा ज्ञान ऐसे ज्ञानों के भेद हैं। जिनके कारण से हमारे अंदर यह ज्ञान उत्पन्न होते हैं। जब तक हमारे अंदर यह ईहाज्ञान उत्पन्न नहीं होगा तब तक आपके सामने कोई भी चीज सुनने में आएगी, पढ़ने में आएगी, आपको जिज्ञासा पैदा नहीं होगी। किसी के लिए प्रश्न करने की क्षमता आना भी तभी होता है, जब हम उस विषय को पढ़ने के बाद में समझ भी रहे हो और साथ-साथ में ईहा ज्ञान का क्षयोपशम भी काम कर रहा हो तो वह जिज्ञासा होगी, हम पूछने के लिए तैयार रहेंगे। सभी की ज्ञान की परिणतियाँ इसी ढंग से अलग-अलग होती है और ऐसे भी लोग होते हैं, किसी ने प्रश्न किया, समाधान जिसने प्रश्न किया उसका नहीं हुआ, दूसरे का हो गया क्योंकि उसके अंदर अवाय ज्ञान का क्षयोपशम था। अवायज्ञान जो हमारे अंदर शंका थी उसका समाधान हमें करा देगा। हो सकता है कि जिसने प्रश्न किया है उसके अंदर अवायज्ञान का क्षयोपशम न हो। ईहाज्ञान का तो है। इसलिए कुछ लोग शंकाएँ तो बहुत करेंगे लेकिन समाधान को प्राप्त नहीं होंगे। कुछ लोगों को शंकाएँ करनी नहीं आएंगी लेकिन समाधान हो जाएगा। इन सबके पीछे अपने-अपने कर्मों के क्षयोपशम कारण होते हैं।

आचार्यों ने लिखा है कि हर चीज हमारे अंदर अपने उपादान से निकल रही है, अपनी शक्ति से हो रही है। जब हम यह जान जाते हैं कि हर व्यक्ति, हर आत्मा अपने-अपने क्षयोपशम से चल रहे हैं तो अपने परिणाम अपने आप शांत हो जाएंगे। हम प्रयास तो करेंगे लेकिन उन प्रयासों में केवल इतना ही प्रयास करेंगे जैसा प्रयास पानी का मछली के लिए रहता है, वृक्ष का एक पथिक के लिए रहता है। एक राहगीर है रास्ते में चल रहा है। धूप में चला जा रहा है। रास्ते में वृक्ष भी है, वृक्ष उससे कहेगा नहीं कि तुम यहाँ बैठ जाओ, हम तुम्हें ठंडक देंगे। राहगीर को सोचना है। अगर उसके बैठने की इच्छा होगी तो वृक्ष उसके लिए सहायक है और अगर उसकी इच्छा नहीं है तो वृक्ष उसको कभी पकड़कर के बैठाएगा नहीं। इस प्रकार आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय हमारे चलने में और ठहरने में सहायक हैं, वैसे ही जीव एक-दूसरे के लिए सहायक बने तो कभी भी ना ईर्ष्या हो, ना लड़ाई हो। इन अध्यात्म के सूत्रों का अगर इस ढंग से उपयोग किया जाए तो हम अपने जीवन को भी बहुत आध्यात्मिक बना सकते हैं और अपने भीतर

शांति का भाव बनाकर के उसका अनुभव भी कर सकते हैं। आप लोग तब परेशान होते हैं जब आप जैसा चाहते हो और वैसा नहीं होता है। हम जैसा चाहते हैं वैसा बच्चा पढ़ नहीं रहा, बढ़ नहीं रहा। आपकी यह परेशानी आपको परेशान करती है, लेकिन आप कभी बच्चे की क्षमता नहीं देखते और उसकी उपादान शक्ति नहीं देखते हैं। उसके कर्म के उदय को नहीं देखते जैसा उसके कर्म का उदय होगा वैसी ही उसकी बुद्धि चलेगी। इसलिए नीतिकारों ने कहा है 'बुद्धि कर्मानुसारणी'।

शास्त्रों में एक व्याख्यान आता है, एक गुरु तीन शिष्यों को पढ़ा रहे हैं। उनका खुद का बेटा था। एक राजा का बेटा था और एक ब्राह्मण पुत्र था। तीनों की परिणतियाँ अलग-अलग हैं, जो उनका खुद का बेटा था, वो मूर्ख था। एक क्षीरकदंब नाम का ब्राह्मण था, उसके बेटे का नाम पर्वत था। एक दूसरा ब्राह्मण पुत्र था, उसका नाम नारद था और एक राजपुत्र था उसका नाम वसु था। तीन शिष्य हैं, एक गुरु से पढ़ रहे हैं। वह गुरु का बेटा इतना नासमझ है कि वह जो पढ़ाते हैं उसका उल्टा सीख रहा है। जब वह अपने बेटे के साथ में अपने घर जाता है तो पत्नी उससे कहती है कि तुम इन तीन बेटों को पढ़ाते हो। वह जो दूसरा नारद है वो तो अच्छा सीख रहा है और तुम्हारा खुद का बेटा पर्वत तो कुछ सीखता नहीं है। वह कहता है कि मैं क्या पढ़ा रहा हूँ, मैं तो सबको एक जैसा पढ़ा रहा हूँ। इसकी बुद्धि ऐसी है कि हर चीज को उल्टा समझता है और हम तो इसको सही पढ़ाते हैं लेकिन इसकी बुद्धि इस तरह की चलती है। क्षयोपशम इसका है, उपादान परिणति इसकी है। एक बार अपने उन दोनों बेटों के साथ में एक दूसरे का बेटा था और एक अपना बेटा था, वो माता-पिता के साथ रास्ते में घूमने के लिए जाते हैं। जो नारद था, वो रास्ते में चलते-चलते दृश्य को देखकर के कहता है कि वो सामने किसी तालाब से मयूर निकलकर के गए होंगे और उनके कुछ निशानों को देखकर उसने कहा कि यह जो मोरो की लाइनें गई हैं, सबने गिन लिया कि यह 7 मोर है। लेकिन उस नारद ने अपने ज्ञान से बताया कि इसमें एक तो मोर है बाकी सब मोरनी हैं। जब नारद ने बताया तब उसके साथ में पर्वत भी चल रहा था। वो कहता है कि यह कोई जरूरी नहीं है, देख वहाँ जाकर के। वो मोर झुंड बनाकर के बैठे थे और वह देखने गया उसके साथ में माता-पिता भी थे। वहाँ जाकर के देखा वास्तव में एक मोर है बाकी 6 मोरनी हैं। अब जो गुरु था, पढ़ाने वाला वह खुद उस नारद से पूछता है कि बताओ तुमने यह कैसे जान लिया ? ज्ञान तो सबको मिल रहा है लेकिन किसी का ज्ञान अतिरिक्त चल रहा है। वो कहता है कि मैंने देखा कि यहाँ पर जितने भी मोर आए, वे सब पानी में भीग करके गए। इनके पानी में भीगने के कारण से जिसके पास में पंख थे, वो पंख पानी से भीग गए तो इस कारण से वह अपने पंखो को सुखाने के लिए पैरों को पीछे करता है और पीछे करके पानी को हिलाता है तो जहाँ पर ज्यादा पानी पड़ा है, जहाँ पर पैर पीछे हुए हैं, वो मोर है। क्योंकि जो पंख होते हैं, वह मोर के ही पास होते हैं, मोरनी के पास नहीं होते हैं। जो यहाँ से दूसरे निकल करके गए, उनने अपने शरीर को भी हिलाया लेकिन उनके

शरीर से इतना पानी नहीं निकला जितना एक के शरीर में से निकला। उनके छोटे-छोटे पंख तो वो उतने ही पानी से फड़फड़ा करके आगे निकल गए और मोर जो होता है वह पीछे भी हटता है, बार-बार पानी को हिलाता है। इसलिए यहाँ एक के तो कारण बहुत दिखाई दे रहे थे, बाकी 6 के कम दिखाई दे रहे थे। इसलिए हमने कहा 1 मोर है, 6 मोरनी हैं। इस प्रकार के ज्ञान कोई शिक्षा से नहीं दिए जाते। इसको बोलते हैं common sense और इसी को बोलते हैं नैमित्तिक ज्ञान।

फिर वे लोग आगे बढ़े तो नारद कहता है कि सामने से अभी हमने देखा हाथी निकल करके गया। उन हाथियों में एक हथिनी है और उस हथिनी की बाई आँख खराब है। फिर गुरु ने पूछा कि कैसे जान लिया ? फिर वे सब लोग गए। आगे जाकर के देखा तो वास्तव में उस हथिनी की एक आँख फूटी थी। फिर पूछा गुरुजी ने कि तुम्हें कैसे पता पड़ गया? उसने कहा-जब यह यहाँ से जा रही थी तो दाँयी तरफ से सभी पेड़ों को तोड़ती चली जा रही थी और बायीं तरफ के पेड़ों को कोई आघात नहीं पहुँचाया। फिर गुरुजी ने यह पूछा कि तुमने यह कैसे जान लिया कि यह हथिनी है ? उसने उसके शरीर के विन्यास से कहा कि यह इस तरह से जो मूत्र करती चली जाती है, उसकी भी एक पहचान होती है। उसके बहने का जो तरीका होता है, वह अलग होता है और उसने वह उसको बता दिया। उस समय वो गुरु उसकी पत्नी से कहता है कि सब चीज मैं तेरे बेटे को भी पढ़ा रहा हूँ लेकिन इसको कुछ समझ में नहीं आता है और उसको सब समझ में आ जाता है। इसलिए कभी भी अज्ञ को विज्ञ नहीं बनाया जा सकता है और विज्ञ को अज्ञ नहीं बनाया जा सकता है। मैं तो इन दोनों बेटो को पढ़ाने के लिए उदासीन निमित्त हूँ। ऐसा कह करके कुछ दिनों के बाद में वह क्षीरकदंब ब्राह्मण घर छोड़ करके सन्यास धारण कर लेता है क्योंकि इस प्रकार की परिणति देख करके हर कोई व्यक्ति अपने परिणामों को शांत बना देता है और सोचता है अपनी उपादान शक्ति को बढ़ाओ। यह चीजें अध्यात्म शास्त्रों में ही मिलेगी। इसलिए यह समझने का भाव करना कि हम एक दूसरे के लिए उदासीन निमित्त है। हम अगर किसी के साथ किसी भी प्रकार की जबरदस्ती करेंगे तो कोई लाभ होने वाला नहीं है। इसलिए किसी को किसी भी बात के लिए ज्यादा प्रेरणा मत दो, बिल्कुल शांत सहज चलने दो। आपको अपने आप लगने लगेगा जो वास्तव में अध्यात्म में आनंद है, वह और किसी में नहीं है। वास्तव में हर व्यक्ति जो अपनी स्वप्रेरणा से प्रेरित होता है वही अपने जीवन में कुछ लाभ प्राप्त करता है। अन्य प्रेरणा से प्रेरित हुए जीव ज्यादा लाभ प्राप्त नहीं करते हैं। प्राप्त उन्हीं को होता है जो स्वयं समझते हैं कि हमारे लिए क्या हित है, क्या नहीं।

कॉमनसेंस को ही नैमित्तिक ज्ञान कहते हैं।

तत्त्वाभ्यास का उपाय

36

अभवच्चित्तविक्षेप एकान्ते तत्त्वसंस्थितः।
अभ्यस्येदभियोगेन योगी तत्त्वं निजात्मनः ॥

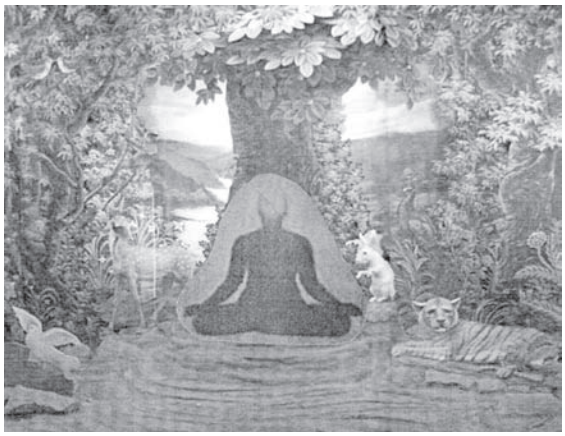

अन्वयार्थ– (चित्तविक्षेपः अभवत्) जिसके चित्त में क्षोभ नहीं है **(तत्त्व-संस्थितः)** तत्त्व विचार में स्थित है बुद्धि जिसकी **(योगी)** ऐसा योगी /मुनि **(एकान्ते)** निर्जन स्थान में **(अभियोगेन)** आलस्य, निद्रा को त्याग कर/सावधानी से **(निजात्मनः)** अपनी आत्मा के **(तत्त्वं)** स्वरूप-चिन्तन का **(अभ्यस्येत्)** अभ्यास करे।

- **चित्त का प्रशिक्षण**
- **विक्षिप्त मन**
- **आचार्य शांतिसागरजी महाराज**

चित्त का प्रशिक्षण :

आचार्य श्री पूज्यपाद महाराज यहाँ पर ध्यान करने के लिए कुछ योग्य सामग्री का उल्लेख कर रहे हैं, कहते हैं कि एक बाह्य सामग्री है और एक अंतरंग सामग्री है। बाह्य से भी आपको कुछ स्थान देखना, कुछ तैयारी करना और अपने मन को भी भीतर से तैयार करना। दोनों चीजें यहाँ बताई जा रही है। सबसे पहले यहाँ आचार्य देव कहते हैं कि आपका चित्त व्यवस्थित होना चाहिए। पहले अपने चित्त को उस प्रकार प्रशिक्षित करो कि उसमें किसी भी प्रकार का विक्षेप उत्पन्न न हो। विक्षेप का अर्थ होता है कि किसी भी प्रकार का उस चित्त में विकल्प ना हो, किसी भी प्रकार का disturbance ना हो, किसी भी प्रकार का चित्त में fluctuation ना हो। घड़ी का पैण्डुलम होता है, वह हमेशा हिलता ही रहता है, एक जगह पर वो कभी टिकता नहीं है, ऐसे ही आपके चित्त में परिणति न हो तो आपका चित्त ध्यान करने के योग्य बनेगा। इसलिए यहाँ सर्वप्रथम यह शब्द दिया है '**अभवच्चित्तविक्षेपः**' जिनके चित्त में किसी भी प्रकार का विक्षेप नहीं हो रहा हो वही ध्यान करने के योग्य होता है और वही योगी होता है। चित्त में विक्षेप किन कारणों से उत्पन्न होता है और विक्षेप उत्पन्न होने के बाद में वह किस तरह से अपने अंदर स्वयं को परेशान करता रहता है? यह सब कोई जानता होगा, अपने लिए अनुभव में करता होगा और जब भी आप कभी ध्यान करने बैठेंगे तो आपके चित्त में आपको जरूर विक्षेप देखने को मिल जाएगा। disturbence जरूर होगा और वह disturbence जो होगा किसी न किसी ऐसे कारण से होगा जो कारण बाहर से जुड़ा हुआ होगा। आपके मन में वह चित्त का विक्षेप कई कारणों से उत्पन्न हो सकता है। उनमें सबसे प्रमुख कारण होता है, अंतरंग में हमारा जिस किसी के प्रति भी राग या द्वेष का परिणाम होगा, वह हमारे चित्त में सबसे पहले उभरकर आ जाएगा। आप ध्यान करने बैठोगे, मन आपका ध्यान में नहीं लगेगा, वो आपके चित्त को divert करके उसी ओर ले जाएगा, जहाँ पर आपके अन्दर कोई ऐसी परिणति पड़ी है जिसके कारण आप उस संस्कार का ही अनुभव कर रहे हो या तो वो संस्कार राग का होगा या द्वेष का होगा। आचार्य कहते हैं कि इसी राग व द्वेष के कारण से यह जीव बाहरी अनेक प्रकार के प्रयासो से कई बार अपने मन को विक्षिप्त कर लेता है। उस विक्षिप्ति का मुख्य कारण रहता है कि इसके भीतर समत्व का भाव नहीं रहता। जब चित्त विक्षिप्त न हो तो वह चित्त ही हमारे लिए एक तत्त्व बन जाता है। समता में ढला हुआ चित्त ही कि तत्त्व कहलाता है। जिसके चित्त में विक्षिप्ति नहीं है, वही तत्त्व में स्थित हो पाएगा। आगे आचार्य कहते हैं तत्त्व में स्थिति बननी चाहिए। तत्त्व में हमें ठहरना चाहिए। हमारे अन्दर तत्त्व में रुकने की स्थिति तभी बनेगी जब आपका चित्त विक्षिप्त न हो और तत्त्व कोई चीज नहीं है। आचार्य कहते हैं, अविक्षिप्त मन ही तत्त्व है। इन्हीं आचार्य ने एक समाधितंत्र ग्रंथ और लिखा है उसमें वो लिखते

मन की विक्षिप्तता का कारण भीतर समता का भाव नहीं रह पाना है।

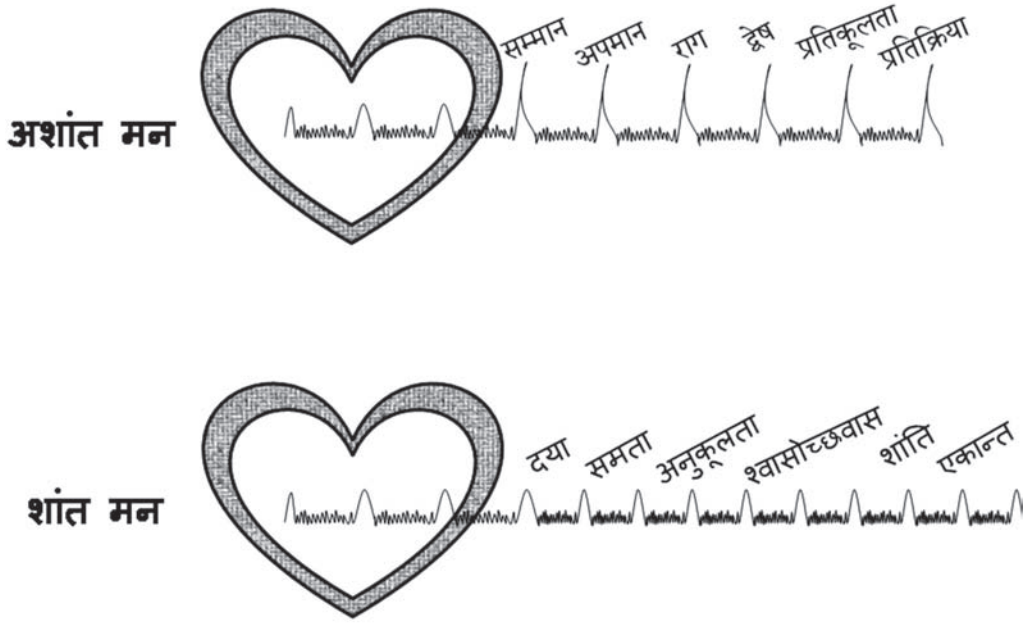

हैं ''**अविक्षिप्तं मनस्तत्त्वम्, विक्षिप्तम् भ्रान्तिरात्मनः। धारयेत्तदविक्षिप्तं, विक्षिप्तम् नाश्रयेत्ततः॥**'' उसमें भी इसी प्रकार के श्लोक है। आपका अविक्षिप्त मन ही तत्त्व है और अगर मन विक्षिप्त हो गया हो तो वही अतत्त्व हो गया। उस तत्त्व को अगर आपने धारण कर लिया तो आपका मन अपने आप समता में ढलता जाएगा और समता में ढला हुआ मन ही स्थिर हो सकता है, अपने आत्मस्वरूप में स्थित हो सकता है। विषमता में पड़ा मन स्थित नहीं होगा।

विक्षिप्त मन :

वहाँ पर आचार्य कहते हैं कि इस जीव को कई बार एकांत में बैठने पर भी इसके मन में जो बातें याद आती हैं और उसके कारण से उसका चित्त विक्षिप्त होता है तो उन विक्षेपों में एक बात आचार्य देव ने कही कि हर व्यक्ति को एकांत में बैठने पर अपने सम्मान व अपमान की बात याद आती है। अगर आपका कभी कोई सम्मान कर दे तो भी आपका चित्त जब तक उसकी याद रहेगी वह स्थिर नहीं रहेगा। कहीं आपको किसी award के लिए बुलाया जाने वाले हो तो आपको पहली रात में नींद नहीं आएगी, इतना चित्त विक्षिप्त रहता है। बच्चों का जब result आ रहा होगा उससे एक दिन पहले भी नींद नहीं आएगी, जब आ गया और आने के बाद भी बहुत अच्छे नंबर आ गए तो भी चैन नहीं पड़ेगा। यह चित्त की विक्षिप्ति के अनेक कारण हमारे अंदर रहते हैं। आचार्य कहते हैं कि जिसके चित्त में विक्षेप होगा, वह सम्मान और अपमान से बहुत जल्दी विक्षिप्त होगा और

मन के विक्षेप के भीतरी कारण बाहर के आलंबन से बनते हैं।

जिसको सम्मान व अपमान से कोई फर्क नहीं पड़े तो समझना उसका चित्त बहुत शांत है, समता में है। यह अध्यात्म में सब चीजें बताई गई हैं। इनसे अपने चित्त की परीक्षा हर किसी व्यक्ति को स्वयं करनी चाहिए। आचार्य कहते हैं कि अगर आपका किसी अपमान के कारण से चित्त में विक्षेप हुआ तो भी आपके समत्व के भाव में कमी है क्योंकि आपने किसी बाहरी वस्तु को लेकर के अपने मन में परेशानी खड़ी कर ली। चित्त के विक्षेप के कारण भीतरी तो होते ही हैं लेकिन वो भीतरी कारण जो बनते हैं, बाहर के आलंबन से बनते हैं। अगर आपसे किसी दिन कोई छोटी सी बात कह दे और आपको किसी बात का बुरा लग जाए तो वह बात आपको रात को नींद तोड़ के याद आएगी। कैसे कहा या उसने क्यों कहा, अब हम उसके लिए क्या करेंगे? हर तरह की बातें याद आएगी और यह सोचते-सोचते आपकी नींद खुल जाएगी। आचार्य कहते हैं कि चित्त की विक्षिप्तता जिसके चित्त में disturbance हुआ वो व्यक्ति तो कभी ध्यान तो कर ही नहीं सकता। सामायिक के लिए बैठ जाएगा पर भीतर से सामायिक नहीं हो पाएगी। यह साधना कहलाती है। इस तरह से साधना करने वाला योगी ही अपने चित्त को बचा पाता है। इसीलिए अपने चित्त में इस प्रकार की विक्षिप्तियाँ अगर उत्पन्न भी हो तो अपने चित्त को समझाने का प्रयास करना। उस चित्त को अपने ही विचारों से संभाल लेता हो तो वह व्यक्ति फिर भी थोड़ी देर के बाद में ध्यान कर सकता है, सामायिक कर सकता है। लेकिन जिसने अपने चित्त की कोई संभाल नहीं की है, उसके लिए ध्यान और सामायिक बहुत सपने की चीजें हैं। आँखे खोल के बैठा रहेगा तो उसको अच्छा लगेगा और वो आँख बंद करके बैठ गया तो उसके दिमाग में ही आता रहता है। वह अपने आपसे भीतर से परेशान हो जाता है, कभी-कभी तो वह उठकर के भाग जाता है। नहीं करना मुझे ध्यान, नहीं करना मुझे सामायिक, ऐसी परेशानियाँ लोगो को हो जाती है। इन सब परेशानियों के कारण वो होते हैं जो हमारे साथ बाहर दिन भर में कुछ प्रतिकूल हो गया, कुछ हमारी इच्छा के विपरीत हो गया, किसी ने हमारी insult कर दी। इसी को हम बोलते हैं, हम hurt हो गए। हमको चोट पहुँच गई। कहीं कोई accident हो जाए। कहीं गिर गए, वो चोट इतनी महत्व की नहीं है। उसमें भी नींद आ जाएगी आपको। लेकिन अगर कोई दूसरा अपने लिए कुछ कह दे, थोड़ा सा hurt कर दिया तो hurt सीधा heart पर होता है। अगर वहाँ पर चोट पहुँची तो वह चोट आपके मन को विक्षिप्त बना देगी और आपका मन हमेशा उसी में लगा रहेगा कि अब क्या करें। इसी बात में पूरा दिन और रात निकलेगी। किसी के साथ में भी कोई व्यक्ति बैठा है, आपस में बात कर रहा है। किसी भी प्रसंग पर कहा सुनी हो सकती है कि आपके घर, दुकान, ऑफिस, मंदिर में कही भी हो सकती है। आपके heart में अगर वो hurt हो गया तो समझ लो आपके लिए वो 1-2 दिन तो खराब हो ही गए। अगर वो बात ज्यादा घर कर गई तो हो सकता है जिंदगी भी खराब हो जाए। आदमी किसी भी बात को बस अपने मन में रख लेता है और रखकर के उसी को भोगता रहता

चित्त में उत्पन्न विक्षेप को अपने ही विचारों से संभालने का प्रयास करें।

है। सोचेगा कि मुझे इसके कारण से बड़ा अच्छा लग रहा है लेकिन वह परेशान रहेगा। किसी की बात को आपने अपने भीतर रख लिया और फिर आप उससे परेशान हो रहे हो। कभी आप अपने ही चित्त से पूछो कि तुम परेशान क्यों हो ? जिस समय पर आपको ऐसी परेशानी आए, जिस समय आपके चित्त में ऐसा विक्षेप दिखाई दे, उस समय आपको क्या करना। वह छोटी सी विधि बता रहा हूँ। कैसे आप उस चित्त के विक्षेप से अपने आपको उभार पाए। आप किसी एकांत स्थान पर जाकर शांति से बैठो। इसमें लिखा है "**एकांते तत्त्वसंस्थितः**"। सबसे पहले तो आप उन लोगों से दूर हो जाओ जिनके बीच में आपको चित्त का विक्षेप हुआ है। आप एकांत स्थान पर चले जाओ और बिजोलिया वालों के लिए बहुत अच्छा स्थान है। आकर के बिल्कुल शांति से एक शिला पर बैठ जाओ और अपनी गहरी सांस लेते हुए कम से कम 27 बार अपनी श्वास पर ध्यान देना। जब आपका चित्त विक्षिप्त होगा एकदम से आपके अन्दर धर्म की बात भी याद नहीं आएगी।

जो णमोकार आपको शांति देता था वो णमोकार में भी आपका मन नहीं लगेगा। कुछ भी स्तोत्र पढ़ने बैठोगे, भक्तामर स्तोत्र या चालीसा कुछ भी लेकिन दिमाग वही सोचता चला जाएगा। इसलिए जल्दी नहीं करना, पहले जाकर शांत बैठ जाना एकांत स्थान पर। अपने घर में जहाँ अपना कमरा हो उसमें भीतर से कुण्डी लगाकर शांति से बैठ जाना। बैठने के बाद में केवल बस गहरी सांस लेना और श्वास पर बस केवल ध्यान देते हुए 27 बार श्वास गिनने का अभ्यास करना। अगर आपके भीतर चित्त ज्यादा विक्षिप्त हो तो हो सकता है कि आप 27 बार नहीं गिन पाओ। एक बार नहीं गिन पाओ, दुबारा गिनने का प्रयास करना, तीसरी बार फिर गिनने का प्रयास करना। 3 या 4 बार में आपने 1 बार भी 27 बार श्वाँस गिन ली आपको relax होगा। पहले आप इस तरह की प्रक्रिया अपनाओ। 27 बार अपनी श्वाँस को relax के साथ में गिनो। जब यह हो जाए उसके बाद मन को बिल्कुल शांत करके आँख बंदकर के उस परिस्थिति के बारे में शांति से सोचो। जिसके कारण से तुम्हारे लिए विक्षेप उत्पन्न हुआ है उस परिस्थिति के बारे में बिल्कुल शांति से सोचो। इसमें यह भी सोचो कि अगर हमारे अंदर विक्षेप उत्पन्न हुआ है, तो सामने वाले के अन्दर भी विक्षेप उत्पन्न हुआ है या नहीं हुआ है। अगर किसी ने हमसे कुछ कहा है, गुस्से में कहा है तो उसके अंदर उस समय पर कितना गुस्सा था और उसने अपने चित्त में कितना विक्षेप किया होगा, तब जाकर उसने कोई बात हमसे उस समय पर कही। यह आप उसके बारे में सोचो और उस समय पर उसके बारे में एक दया का भाव लाओ। be kind, think kindfully जिसने आपको hurt किया है। उसके प्रति अपनी दया का भाव बनाओ। थोड़े से उसके प्रति दयाभाव से सोचो तो आप अपने बारे में भी सही सोच पाएंगे और उसके बारे में भी सही सोच पाएंगे। उसके बारे में दया से सोचो कि यह भीतर पहले कितनी दिनों से कितनी बार हमारे ऊपर गुस्सा कर चुका होगा तब जाकर के उसने

चित्त विक्षेप को दूर करने के लिये सर्वप्रथम शांति से बैठकर 27 बार श्वास गिनें।

हमसे ऐसी बात कही। मतलब, चित्त कितना विक्षिप्त होगा। हमने तो एक बार सुना और एक बार सुनकर के हमारे चित्त में इतना विक्षेप हो गया हम तो अपना चित्त संभाल लेंगे लेकिन यह अपना चित्त कैसे संभालेंगे? उसके प्रति दयावान बनो। जब आपको उसके प्रति दया का भाव आएगा तो आपके परिणामों में और शांति आएगी। जब आपके परिणामों में शांति आएगी तो उस समय फिर अपने बारे में सोचो कि हमने इसके साथ में ऐसा क्या किया जो इसने हमारे लिए ऐसा किया। अगर आप परिस्थिति का शांति से अपने ही अंदर observation करेंगे तो आपको अच्छा समाधान मिलेगा। अगर आप केवल विक्षिप्त होकर के, तूने क्या सोच रखा था, मेरे पास क्या ताकत नहीं है, मैं क्या कम हूँ, ऐसा तुम भी कर लोगे तो उस समस्या का कभी समाधान होने वाला नहीं है। उस समय पर आप अपने चित्त को भी इतना शांत बना करके मन में यह विचार लाओ धीरे-धीरे कि हम क्यों परेशान हैं। अगर उसने हमसे कुछ कह दिया कि कोई बात नहीं, हमें परेशान होकर के स्वयं से क्या मिलेगा, यह पूछना शुरू करो। अपने आपको परेशान करने से हमको क्या मिलेगा, यह अपने ही चित्त से पूछो और यह बात अपने मन में दोहराओ- रे मन! तू बार-बार उस बात को याद करके परेशान हो रहा है। तुझे इस परेशानी से क्या मिल रहा है? यह जब अपने मन से कहोंगे तो वो मन बिल्कुल शांत हो जाएगा और समझने लग जाएगा कि वास्तव में मुझे इस प्रकार से परेशान होने की कोई जरूरत नहीं है। बात छोटी सी थी और वह बात हुए भी समय हो गया। अब हमारे लिए उस बात को बार-बार याद करके परेशान होने से कुछ भी लाभ होने वाला नहीं है। इस प्रकार जो व्यक्ति अपने मन को ही समझाता है तो उसका चित्त धीरे-धीरे शांत हो जाता है और जिसका चित्त इस प्रकार से समझता नहीं है या अपने ही आपको नहीं समझाता है तो उसका चित्त कभी भी शांत नहीं होता है। आपको यह अभ्यास करके ही चित्त की शांति महसूस होगी।

साधक लोगों को इसी के लिए साधक कहा जाता है कि वे अपने चित्त को इसी तरह से साधते हैं। एकांत स्थान में बैठकर के जब आप अपने चित्त में इस प्रकार के विचार लाएंगे, तो आपका चित्त बिल्कुल शांत होकर के सही समाधान देगा और अगर आप वहाँ पर 20 मिनट या 1 घंटा भी बैठ लिए, आपने इस ढंग से अपने चित्त को समझाया तो वहाँ से आप जब उठोगे, वह निर्णय करके उठना कि मैं किसी के लिए परेशानी का कारण नहीं बनूँगा। अगर आपने यह निर्णय ले लिया तो आपके चित्त में अपने आप वह शांति आगे भी बनी रहेगी। जिस स्थान पर आप जाओगे वहाँ भी आपको परेशान करने वाला कोई नहीं मिलेगा और कर भी लेगा तो आपका चित्त उस समय परेशान नहीं होगा। फिर अगर घर के अन्दर बैठे हो तो धीरे से कुण्डी खोलना और इतने धीरे घर से बाहर निकलना जैसे हम किसी जले हुए स्थान पर या अग्नि पर पैर रख रहे हो, ऐसे धीरे-धीरे उस स्थान से निकलना। बाहर से व भीतर से भी शांत होना। उसके बाद भी आपके सामने अगर

मन को समझाकर बाहर व भीतर से शांत बनेंगे तो तन और मन अच्छा काम करेंगे।

कुछ हो जाए तो आप शांति के साथ अपने निर्णय को याद किए रहना। जब आप ऐसा करोगे तभी आपका चित्त शांत होगा। चित्त शांत होगा तो आपके लिए शरीर, मन, सब कुछ अच्छा काम करेगा। अगर आपका चित्त शांत नहीं होगा तो आपके मन में यह परेशानी हमेशा बनी रहेगी। घर का कोई भी काम करोगे तो अच्छा नहीं लगेगा, सो भी जाओगे तो नींद नहीं आएगी। इसलिए सबसे पहली जरूरत है, अपना चित्त शांत करने की और उसके लिए सबसे बड़ा कारण है, दूसरे के लिए अपने मन में दया भाव लाओ। इस तरह से अपने मन को शांत करोगे तो आप भी घर में रह करके साधक कहलाओगे।

आचार्य शांतिसागरजी महाराज :

आज आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज का समाधि दिवस है। वे आचार्य जब घर में थे तभी से साधना करते थे। एकदम से कोई घर छोड़कर साधक नहीं बन जाता। घर में भी अपने आपको संभालना पड़ता है और हर तरीके की घर में साधना करते थे। घर में रहकर भी वह सभी प्रकार के रसों को त्यागकर के साधना किया करते थे, उपवास किया करते थे। अपने माता-पिता की बात भी माना करते थे। उन्हें घर में इसीलिए रहना पड़ा कि उनके पिता उनको छोड़ते नहीं थे। उन्होंने कहा कि जब तक मेरी समाधि नहीं हो जाए तब तक तुम घर से नहीं जाना। उनकी समाधि कराके ही उन्होंने गृह त्याग किया। घर में रहकर भी एक बार जब वो सम्मेदशिखर की यात्रा करने के लिए गए थे तभी से उन्होंने कई रसों का त्याग कर दिया-घी, दही सभी का। एक समय भोजन करने लगे थे। घर में रहकर के इस तरह की साधना करने वाले साधक अपने एकांत स्थान पर जाकर सामायिक व ध्यान करते हैं और अपने चित्त को बिल्कुल अच्छा रखते हैं। जिसका चित्त अपने में मस्त रहे, वो सबसे बड़ा मस्त आदमी कहलाता है। आपको लगता है कि जब अगर हम एकांत में रहेंगे तो ध्यान, सामायिक करेंगे, हमारे लिए उदासीनता आ जाएगी। दूसरों को लगेगा यह अच्छा नहीं लग रहा है लेकिन वास्तविक आनंद तभी आएगा जब आप भी अपनी वृत्ति इस प्रकार की बना लेंगे। जो आदमी स्वयं अपने तक सीमित रहता है वह किसी के लिए ना परेशानी का कारण बनता है, ना कोई उसको परेशान कर सकता है। घर में रहकर के वह एकासन व उपवास किया करते थे। तब जाकर के उन्होंने 40-41 वर्ष की उम्र में क्षुल्लक दीक्षा ली थी। फिर उन्होंने मुनि दीक्षा ली और मुनि दीक्षा भी ली तो वह एक भट्टारक जी से ली। क्योंकि उस समय पर मुनि महाराज मिलते नहीं थे। पहले मुनि बनते हैं फिर वो कपड़े पहन लेते हैं फिर वो भट्टारक बन जाते हैं। नाम मुनि का रहता है, ऐसी स्थिति रहती है। घर में किसी के यहाँ आहार करने जाएंगे तो उनके साथ में एक व्यक्ति जाएगा। जिस मंदिर से निकलेंगे उस मंदिर का जो पुजारी होता है, उस पुजारी के under में भी भट्टारक जी कहते हैं। वहाँ ऐसी स्थिति रहती है। वहाँ जाकर के वो कहेंगे कि वहाँ से कमण्डलु में लौटते हुए कुछ लेकर के आना। वो ले जाकर उसे देना पड़ेगा। ऐसी स्थितियों में

दूसरों के प्रति दया भाव लाकर मन शांत करें एवं स्वयं साधक बनें।

भी लोग रहा करते थे। वह आचार्य शांतिसागर जी महाराज जब क्षुल्लक बने, उस समय पर भी वो स्वाध्याय करते थे। सब ग्रंथ उन्होंने पढ़े तो देखा मूलाचार आदि ग्रंथो में यह मुनियों का स्वरूप कुछ और ही लिखा है। इसमें तो यह कपड़े पहने रहते हैं, परिग्रहों के बीच में मठों के स्वामी बने बैठे हैं। जब उन्होंने देखा तो सोचा करें तो अब क्या करें? दीक्षा तो किसी से लेना ही है तो उन्होंने भट्टारक जी से दीक्षा ली। कहने को बहुत तपस्वी थे लेकिन परिस्थिति के कारण से उन्हें कपड़े पहनने पड़ते थे।

एक परंपरा चली आ रही थी पहले से इसलिए उन्हें वो करना पड़ता था। वो थे देवप्पा स्वामी। उनसे उन्होंने दीक्षा ली और दीक्षा लेने के बाद में उन्होंने कुछ दिन उनके पास रहने के बाद में धीरे-धीरे अपनी चर्या ऐसी बना ली। बहुत परेशानी हुई उन्हें उस चर्या को बनाने में। जैसी मुनियों की वास्तविक चर्या होती है वैसी चर्या उन्होंने धीरे-धीरे बनानी शुरू की। जैसे मुनियों के आहार आदि होते हैं वैसे उन्होंने करना शुरू किए और उसके लिए कई परेशानी हुई। कई वर्षों तक तो वह केवल दूध, चावल ही खाते रहे क्योंकि एक चौके में किसी ने दूध, चावल देना शुरू किया, महाराज लेकर के आ गए। फिर दूसरे चौके वालों ने पूछा महाराज क्या लेते हैं? वो तो दूध, चावल लेते हैं। चार वर्ष तक वो दूध, चावल ही खाते रहे। उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि आप इस तरह से क्यों करते हो क्योंकि उन्होंने सोचा कि जैसा श्रावक देता है वैसा ही लेना है। एक दिन श्रावक ने पूछ लिया कि आपका अन्न का, गेहूँ का, रोटी का त्याग है क्या ? महाराज ने कहा कि जो श्रावक देता है वो ले लेते हैं। इतना सुना, श्रावक ने और दूसरे दिन श्रावक ने सब बना लिया। उस दिन महाराज आहार करने के लिए गए और उन्होंने कुछ नहीं लिया। जो वो पहले लेते थे फिर वही लेकर के आ गए। फिर आकर के श्रावक ने पूछा- महाराज आज तो चौके में सब कुछ था, आपने कुछ लिया क्यों नहीं? तो उन्होंने कहा- पहले यह बताओ- जो तुमने आटा बनाया, जो मिर्च मसाले होते हैं उनकी मर्यादा कितनी होती है? यह हमें बताओ। वो तुमने कैसे बनाए? यह बताओ। जब तुम्हे उन चीजों की मर्यादा नहीं मालूम, उनका शुद्धि का तरीका नहीं मालूम तो हम कैसे वो आहार लें? तब श्रावकों को समझ में आया कि हमें पहले यह सीखना है कि शुद्ध चीजें कैसी होती हैं और कैसे बनाई जाती हैं। फिर जाकर के उनके लिए धीरे-धीरे इस प्रकार से आहार होना शुरू हुआ। उस तरह से करने में उन्हें कई परेशानियों का सामना करना पड़ा। लेकिन कभी भी उन्होंने अपनी चर्या में दोष नहीं लगाया और उनकी उस मुनिचर्या का इतना प्रभाव पड़ा कि बाद में उनके जो गुरु महाराज थे उन्होंने भी उसी प्रकार से चर्या का पालन करने का मन बनाया। अपनी जो भट्टारक की स्थिति थी वो छोड़ी और बाद में देवप्पा महाराज भी मुनिमहाराज बने। ऐसा करके फिर उन्होंने अपने संघ को बढ़ाया। लोगों को अनेक प्रकार की प्रेरणाएँ दी। वहाँ दक्षिण भारत में तो इतने मिथ्यात्व में डूबे हुए लोग थे कि वो जब भी कभी आहार लेते थे, पहले मिथ्यात्व का त्याग कराते थे। जैन होते हुए

आचार्य शांतिसागरजी ने मुनिधर्म और श्रावक धर्म को सच्चा स्वरूप प्रदान किया।

भी जैन नहीं थे। ऐसे लोगो के लिए उन्होंने जैन धर्म सिखाया। उसके बाद में जब उनके आसपास लोग आने लगे तब उनको दीक्षाएँ दीं, मुनि संघ बना। वो संघ विहार करते हुए दक्षिण भारत से होकर उत्तर भारत आया।

उस समय अंग्रेजों का राज हुआ करता था। 1925 से 1955 तक की स्थिति है लगभग। अंग्रेजों के राज्य में उस समय पर सर्वत्र मुनियों का विहार करना संभव नहीं होता था। लेकिन वे मुनि महाराज ऐसे तपस्वी थे, उन्हें किसी भी प्रकार के उपसर्गों से डर नहीं लगता था। वह विहार भी निर्द्वन्द्व होकर करते थे। जहाँ पर भी जाते थे और उन्हें पता पड़ जाता था कि यहाँ पर विहार में बंदिश है तो, वो वही चौराहे पर खड़े हो जाते थे। अपने आप वहाँ के नेता लोग होते थे, वो सब उनके चरणों में आते थे। उनसे पूछते थे कि महाराज आप क्या चाहते हैं? महाराज कहते थे कि हम कुछ नहीं चाहते। दिगम्बर धर्म है, यह जैन धर्म है और जैन धर्म का पालन करने वाले मुनि है। इनके विहार में कहीं पर भी रोक नहीं होनी चाहिए। हम सिर्फ यह ही चाहते हैं। वहाँ के लोग रहा करते थे, पुलिस रहा करती थी, उनको साथ-साथ ले जाकर के जहाँ भी जाना चाहे वहाँ छोड़ के आते थे। दिल्ली तक भी वह मुनि महाराज गए और वहाँ पर उन्होंने लाल किले के सामने जाकर के अपनी फोटो खिचवाई। वह इसलिए खिचवाई कि यहाँ मुनि महाराज आए और यहाँ पर मुनि महाराजों की कोई बंदिश नहीं हो। आगे के लिए यह मार्ग मुनि महाराज के लिए खुला रहे, इसलिए दिल्ली तक भी गए। वहाँ के उस समय पर जो वाइसराय हुआ करते थे, लॉर्ड हुआ करते थे, उन सब ने इस प्रकार की स्वीकृति दी कि अब आगे भी भविष्य में किसी भी प्रकार से मुनि महाराजों को भ्रमण करने में कोई बंदिश नहीं होगी। तब जाकर के यह सभी राज्यों, प्रदेशों में, पूरे भारत में भ्रमण होना शुरू हुआ। उससे पहले तो सब अपनी भट्टारकों की गद्दियाँ बना के बैठ गए थे। दक्षिण भारत तो उसी से भर गया था। उत्तर भारत में तो कुछ विद्वान रहते थे। इस आगरा और जयपुर की तरफ, तो थोड़ा भट्टारकों की कमी चला करती थी तो यहाँ भट्टारक कम हुआ करते थे। यहाँ पर लोगो का भट्टारकों के प्रति इतना विश्वास नहीं रहता था क्योंकि यहाँ के लोग थोड़ा सा पढ़े लिखे स्वाध्यायी हुआ करते थे तो यह अनर्गल बातो को स्वीकार नहीं करते थे। जब इस प्रकार से उन आचार्य महाराज ने सर्वत्र भ्रमण किया, तब जाकर सर्वत्र मुनि महाराजों के दर्शन होने लगे। अनेक विद्वान ऐसे रहते थे जो एकांत पंथी, निश्चय पंथी हो गए थे उन विद्वानों ने भी मुनि महाराज की परीक्षाएँ कीं और उन सब परीक्षाओं को करने के बाद में उन्होंने अपनी श्रद्धान की परिणति मुनिराज के प्रति बनाई। एक कटनी के विद्वान थे- जगन मोहनलाल जी। ऐसे निश्चय वाले विद्वान थे-कभी मानते नहीं थे किसी को। लेकिन जब यह आचार्य शांतिसागर जी महाराज आए। इनके पास बैठे, तत्त्व चर्चा की तो इन विद्वानों को लगता था कि यह केवल बस तपस्या ही करते हैं। देह को तपाते हैं, इनको कुछ ज्ञान नहीं रहता। ऐसे विद्वान अपने आपको ज्ञानी मानने वाले रहते हैं। जब

भगवान महावीर के तीर्थ में मुनिराजों का अभाव पंचमकाल के अंत तक नहीं होगा।

उनके पास बैठे, शास्त्रों की चर्चा की और जब सभी प्रकार के समाधान हो गए। तब उन्हें लगा कि महाराज तो बहुत ज्ञानी भी है। जब जाकर उन विद्वानों की श्रद्धाएँ बनीं और इस तरह से यह आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज की बहुत बड़ी देन है, आज जो सर्वत्र मुनिमहाराज भ्रमण कर रहे हैं और सभी मुनि महाराजों का विहार हो रहा है। सब लोगों के लिए यह मुनि परंपरा जो शुरू हुई, बीच में जो टूट गई थी। अभाव नहीं हो गया था क्योंकि भगवान महावीर के तीर्थ में मुनि महाराजों का अभाव पंचमकाल के अंत तक टूट नहीं सकता। उस समय पर भी मुनि महाराज रहा करते थे लेकिन वो गुफाओं में रहा करते थे।

जहाँ वो आचार्य शांतिसागर महाराज रहा करते थे, वहीं पर एक दूध गंगा, वेद गंगा नदी है वहाँ उस नदी को पार करके एक मुनिराज आया करते थे। आठ दिन में एक बार आहार करते थे। उनको घर में आहार कराते थे फिर उनको अपने कंधे पर बिठाकर के नदी पार कराके उन्हें उसी गुफा में छोड़ आते थे। आठ दिन बाद फिर आते थे। ऐसे मुनि महाराज उस समय पर भी रहा करते थे। उस समय भी मुनि महाराजों का कभी अभाव नहीं हुआ। यह अलग है कि उत्तर भारत में भ्रमण नहीं होता था। दक्षिण भारत में वह गुफाओं में, शिलाओं पर ऐसे ही प्राकृतिक स्थानों पर रहा करते थे और स्वयं आचार्य शांतिसागरजी भी जो कोन्नूर की बड़ी-बड़ी गुफाओं में रहकर तपस्या किया करते थे। सर्प उनके आस-पास आकर के घूमा करते थे और वो अपने ध्यान में बैठे रहते थे। एक गुफा में वो प्रवेश किए और उसी समय पर श्रावक तो गुफा के बाहर रह गए। उन्होंने देखा एक सर्प भी उसी समय भीतर घुस गया। वो महाराज तो ध्यान में बैठ गए और सर्प महाराज के आस-पास घूमता रहा। उनके शरीर पर भी चढ़ गया। श्रावक को तो डर लगने लगा। उसने फिर और बहुत श्रावक बुला लिए। ऐसी स्थिति में वो श्रावक वहाँ खड़े-खड़े देखते रहे और मुनि महाराज ध्यान में बैठे रहे। जब ध्यान करने के बाद में उस सर्प के लिए भी वहाँ पर किसी प्रकार की आपत्ति समझ में नहीं आई तो वह भीतर जाकर बिल में घुस गया। जब वह उपसर्ग टल गया तो वह मुनि महाराज अपना ध्यान छोड़ के गुफा से बाहर आ गए। एक बार जिस मंदिर में वो बैठे-बैठे सामायिक कर रहे थे। वहाँ पर कोई श्रावक दीपक जलाकर चला गया। वहाँ भी कुछ फैल गया और वहाँ पर इतने कीड़े हो गए कि वो वहाँ सामायिक करने के लिए खड़े थे तो सारे कीड़ों, चीटियों ने उनके शरीर को काटना शुरू कर दिया। रातभर उनके शरीर में चीटियाँ लगी रही और वह अपनी सामायिक में जैसे के तैसे खड़े रहे। सुबह जाकर के देखा लोगों ने कि महाराज के ऊपर तो इतनी चीटियाँ चढ़ गईं। तब लोगों ने यथाशक्ति उस उपसर्ग का निवारण किया। वह मुनि महाराज, अपने ध्यान से उतर करके चर्या के लिए निकले। वो इतने दृढ़ प्रतिज्ञ थे, इतने बलशाली थे शरीर से भी और मन से भी। उन्होंने जब सल्लेखना धारण की तब 36 दिन की सल्लेखना ली थी। 1955 में उनकी सल्लेखना हुई है। उन 36 दिनों में उन्होंने लगभग-लगभग 14-15 दिन पहले जल का भी त्याग

कर लिया था। 3 प्रकार के आहार का त्याग तो पहले से ही था। जल का त्याग करने के बाद में ऐसे ही सामायिक व ध्यान में रहते हुए उनकी सल्लेखना हुई। इतने उपवास और जल का त्याग करने के बाद भी उन्होंने एक उपदेश दिया 20 मिनट तक। वो उपदेश आज भी उपलब्ध है, मराठी भाषा में बोला। उस उपदेश में जो सबसे मुख्य बात बोली वो यह थी कि अपनी मराठी भाषा में बोले थे – **'भ्यु नखा भ्यु नखा'** मतलब डरो नहीं, डरो नहीं। 'संजम गेहु' मतलब संयम ग्रहण करो, संयम से डरो नहीं। इस संयम से ही तुम्हारे अन्दर शक्ति आएगी, इससे ही आत्मा का कल्याण होगा। ऐसे उन्होंने चरित्र पर 20-22 मिनिट तक व्याख्यान किया और वो व्याख्यान आज भी किताबों में मिलता है। विडियो कैसिट भी उसकी बनी हुई है और उसका हिन्दी अनुवाद भी मिल सकता है।

ऐसे आचार्य शांतिसागर जी महाराज के बाद में ही वीर सागर जी, शिवसागर जी महाराज हुए। उन्हीं की परंपरा में आचार्य ज्ञान सागर जी हुए। उन्हीं ज्ञान सागर जी से आचार्य गुरु महाराज है वो हुए। जो मुनियों का आवागमन दिख रहा है, यह सब उन्हीं श्री आचार्य शांतिसागर जी महाराज का दिया गया बहुत बड़ा वरदान है। नहीं तो बरसो तक भट्टारकों का राज चलता रहा। मुनि महाराज तो गुफाओ में कही 1-2 दिखा करते थे बस तीर्थ चलता रहता था। ऐसी स्थिति में श्रावक तरसते रहते थे कि हमें कब मुनि महाराज के दर्शन होंगे। इसलिए उत्तर भारत के कई विद्वान मुनि महाराज को देख ही नहीं पाए। यह पण्डित टोडरमल जी, बनारसी दास जी इन्होने कभी देखे ही नहीं। इसी कारण से लोगों की धारणा में बस विद्वानों की बातें समा गई और विद्वानों की बातें उनके लिए मुख्य हो गई। जो आज भी एक पंथ चल रहा है, निश्चय पंथ के नाम पर, वो इन्हीं विद्वानों की देन है, इसी कारण से चल रहा है। उस समय के विद्वानों ने लिखा कि मुनि महाराज तो होते ही नहीं और जो उन्हें दिखे सब परिग्रही दिखे, भट्टारक के रूप में दिखे। वो चीजें उन्होंने लिखी हैं कि पंचमकाल में मुनि नहीं होते, आज भी वही श्रावक पढ़ रहा है और उसी की परंपरा में अपना जीवन चला रहा है। अपनी आँखे खोलकर के वस्तुस्थिति को समझना, देखना, इतिहास को देखना, उसकी परिस्थिति को समझना। कौनसा ग्रंथ किस परिस्थिति के कारण से लिखा। विद्वानों के सामने कौन से ग्रंथ थे जिनके आधार पर उन्होंने लिखा। कौन सा उनके पास ज्ञान था जो हम विद्वानों की वाणी को सर्वज्ञ वाणी मान रहे हैं, लेकिन आचार्यों के ग्रंथ हैं, उनकी तरफ तो देख ही नहीं रहे हैं। पंचमकाल में कोई मुनि महाराजों का अभाव नहीं हो गया, ना अभाव था। कभी किसी भी राज्य में आक्रमण होते थे, कभी मुगलों के आक्रमण हुए तो उस समय धर्म में हीनाधिकता आती रहती है। लेकिन धर्म का प्रवाह तो हमेशा चलता रहा है और चलता रहेगा। ऐसा आचार्यों के उपकारों को हमें ध्यान में रखना चाहिए। ऐसे आचार्य ही हुआ करते थे। ऐसे साधक थे जिनके चित्त में कभी विक्षेप नहीं होता था। एक बार इनके सामने एक पागल आ गया। उस पागल ने इनके ऊपर कई

डंडे मार दिए। फिर भी वह मुनि महाराज शांति से बैठे रहे। गाँव के लोग आए तो देखा और वो इस पागल को मारने लगे तो उन्होंने बोला, क्या कर रहे हो तुम ? वे लोग बोले इसने आपको डण्डे मारे, पत्थर फेंके तो आचार्य श्री ने कहा, हमने ध्यान किया और ध्यान किया तो हमारे कर्मों की निर्जरा हुई। उसने तो हमारे ऊपर बहुत बड़ा उपकार कर दिया। तुम छोड़ दो उसको। इसको कहते हैं भीतर से दया का भाव होना। जो हमारे ऊपर अपकार करे तो उसके प्रति भी दया के भाव से सोचेंगे तो चित्त शांत होगा। चित्त का विक्षेप नहीं होगा तो ध्यान लगा रहेगा।

आचार्य शांतिसागर जी महाराज से कई बार लोग पूछा करते थे। महाराज! जब आपके शरीर पर सर्प चढ़ता होगा तो आपको डर नहीं लगता ? महाराज जी ने कहा, हम जब सामायिक में बैठ जाते तो हमें शरीर का तो ध्यान ही नहीं रहता। जब हम ध्यान खोलते हैं तो उस समय पर आस-पास कुछ दिखता नहीं है। हमें ध्यान हटाना हो और हमें लग रहा है हमारे ऊपर उपसर्ग है तो हम उसको और सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं कि अपनी कर्म की निर्जरा करने का एक और साधन मिल गया। ऐसे वह तपस्या करते हैं, तब जाकर के इस प्रकार की योगी की स्थिति बनती है। जो यहाँ पर लिखा है– 'योगी तत्त्वम् निजात्मनः' अपने आत्म तत्त्व का योगी इस तरह से अभ्यास करता है। अवियोग एक शब्द आया है, मतलब बिना किसी आलस के, बिना किसी निद्रा के, बिना किसी प्रमाद के और बस एक तरफ एकांत में बैठकर अपनी आत्मा की भावना करना, अपनी आत्मा के विषय में सोचना, यह जब करने आ जाता है तो वह धीरे-धीरे अपनी आत्मा में जुड़ता चला जाता है। उसी का नाम योगी कहलाता है। मन, वचन, काय से उसकी प्रवृत्तियाँ हटने लग जाती हैं। जब कभी आप ऐसा ध्यान कर लोगे तो और आपके लिए विपरीत परिस्थिति आ जाएगी। आप समझ लोगे यह सब तो शरीर संबंधी है, वचन संबंधी है, इसका आत्मा संबंधी कोई कार्य है ही नहीं। जब वो आत्मा संबंधी कार्य है ही नहीं तो उसमें हम अपना चित्त लगाए क्यों? ऐसा करके वह योगी हमेशा अपने चित्त को अविक्षिप्त रखता है। अविक्षिप्त चित्त वाला ही एकांत में बैठ के और तत्त्व में स्थित हो पाता है। जब अपना यह लक्ष्य हो कि एकांत में बैठकर के अपने चित्त को शांत करना है। इस लक्ष्य से आप एकांत में बैठोगे तो वह एकांत भी आपके लिए सहयोगी बनेगा। बाहरी एकांत और एक भीतरी एकांत, जैसे बाहर बिल्कुल शांति वैसे भीतर बिल्कुल शांति। बाहर की शांति को भीतर की शांति से मैच करो, अनुभूत करो। इस प्रकार अनुभव करते-करते आपका चित्त भी बिल्कुल शांत ढलने लग जाएगा। अभी आपको शांति अच्छी नहीं लगती। कभी आप अकेले में बैठोगे तो आपको डर लगेगा इसलिए आप अकेले बैठ नहीं पाते हो। मन में भीतर उतावलापन इतना भरा रहता है कि शांति से 5 मिनट बैठने के लिए भी मन नहीं होता और ऐसी शांति में योगी लोग अपनी जिंदगी गुजारते हैं और जीवन भर साधनाएँ करते रहते हैं।

जो धीरे-धीरे अपनी आत्मा में जुड़ता चला जाता है वही योगी कहलाता है।

स्वसंवेदन होने का चिह्न

37

यथा यथा समायाति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।
तथा तथा न रोचन्ते विषयाः सुलभा अपि ॥

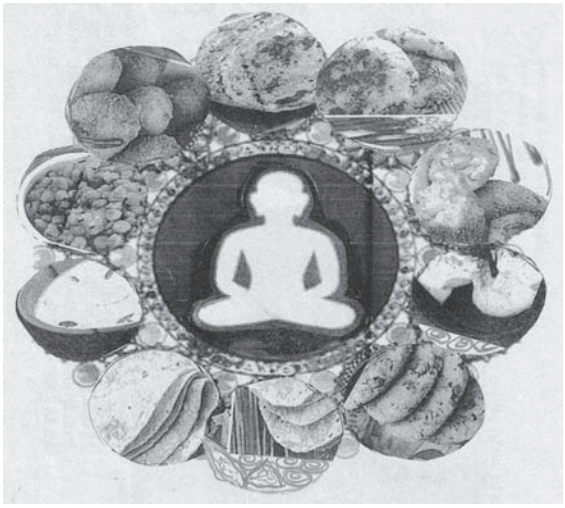

अन्वयार्थ— **(यथा-यथा)** जैसे-जैसे **(संवित्तौ)** अनुभूति में **(उत्तमं तत्त्वं)** उत्तम तत्त्व [शुद्धात्म स्वरूप] **(समायाति)** आता है **(तथा तथा)** वैसे-वैसे **(सुलभा-अपि)** सुलभता से प्राप्त हुए भी **(विषयाः)** विषय-भोग **(न रोचन्ते)** अच्छे नहीं लगते हैं।

- **स्व परिणाम परीक्षा**
- **ज्ञानी बनें**
- **मन, चित्त, अंतरंग आत्मा**

स्व परिणाम परीक्षा :

आचार्य श्री पूज्यपाद महाराज इस अध्यात्म ग्रंथ में निरंतर आत्मा में रुचि बढ़ाने के उपाय बताते हुए इस स्थिति तक पहुँचे हैं कि वह बता रहे हैं, आप अपनी परीक्षा स्वयं करें। कई बार अपने भाव कैसे हैं, हमें स्वयं पता नहीं पड़ता। अपने भावों का ज्ञान हमको नहीं होता है। अपने परिणाम हमें स्वयं जानने का कोई ज्ञान नहीं होता और यदि होता भी है तो उस ज्ञान का कभी अपने को जानने के लिए उपयोग नहीं करते हैं। किसी भी व्यक्ति से पूछोगे, तुम उनके बारे में क्या जानते हो तो वह उसके बारे में जल्दी बता देगा। आप दूसरों से पूछोगे, उसके परिणाम क्या है? तो आप उसके परिणाम बता देंगे। लेकिन आपसे कोई पूछे कि आपके परिणाम क्या हैं? तो आप अपने परिणाम नहीं बता पाओगे। हम दूसरे के बारे में बहुत जल्दी से बता देते हैं लेकिन अपने बारे में हम खुद नहीं जानते, हम क्या हैं? हमारे परिणाम क्या हैं? जब आचार्य महाराज अध्यात्म का आपको निरंतर रसपान कराते चले जा रहे हैं तो वे इस स्थिति पर लाकर आपको छोड़ रहे हैं कि आप स्वयं अपने परिणामों को पहचानने लगें। आप दूसरों से मत पूछो कि आपको कैसा संवेदन हो रहा है? आप दूसरों से मत पूछो कि तत्त्व की रुचि होने पर आपको कैसा लगता है? खुद अपने मन से पूछो। अपने परिणामों में अपनी रुचि को देखो। वह रुचि यहाँ पर इस परीक्षा के रूप में बताई जा रही है कि जैसे-जैसे आप अपना संवेदन करने में रुचि लेंगे, जैसे-जैसे आपको अपनी आत्मा के झुकाव में रुचि होगी। आचार्य कहते हैं वैसे-वैसे सुलभ भी विषय होंगे तो वह आपके लिए रुचिकर नहीं लगेंगे क्योंकि रुचि दो जगह नहीं चलती। यह रुचि एक ही जगह चलती है। धीरे-धीरे हम उसको divert करते जा सकते हैं। जैसे-जैसे अनुपात में वह रुचि divert होगी वैसे-वैसे दूसरी जगह से भी रुचि घटती हुई दिखाई देगी। भौतिक जगत से हटकर के आध्यात्मिक जगत में आना, इन्द्रिय के विषय से हटकर आत्मा को अपना विषय बनाना, धीरे-धीरे यह होने लग जाता है। उस समय यह परिणाम सामने आते हैं जो एक अनुभूत परिणाम है। वह परिणाम है आपको अगर आत्म-रुचि होगी तो आपको बाहरी विषयों में रुचि धीरे-धीरे कम होगी। interest दो जगह एक जैसा नहीं रहेगा, एकदम से interest change नहीं हुआ, यह अलग है। लेकिन interest में change थोड़ा आना शुरू हो जाता है। जैसे-जैसे हमारे अंदर तत्त्व ज्ञान बढ़ता है, वैसे-वैसे हमें अपनी आत्मा की बात अच्छी लगेगी, आत्मा की रुचि उत्पन्न होगी और हमें अपनी ही बात सुनने में आनन्द भी आएगा। आचार्य कहते हैं कि उत्तम तत्त्व में जिसकी संवित्ति बढ़ती चली जाती है (उत्तम तत्त्व यानि उत्कृष्ट तत्त्व) उसमें जिसका स्वसंवेदन बढ़ता चला जाता है, वह व्यक्ति धीरे-धीरे विषयों से अपनी रुचि को हटा लेता है और उसकी रुचि कम होती चली जाती है। एक रुचि का मतलब हम समझें तो आज की भाषा में हम कहते हैं enjoyment क्योंकि जिसमें हमारी रुचि होती है उसी में हम enjoy करते हैं। अगर हमारी विषयों में रुचि है तो विषयों में enjoy होगा। अगर आत्मा में रुचि

अगर आत्मरुचि होगी तो बाहरी विषयों में रुचि कम होती जायेगी।

है तो आत्मा में भी enjoy हो सकता है। सभी को लगता है कि आत्मा में तो enjoy करने जैसी कोई चीज है ही नहीं। जैसे ही enjoy करने की बात आएगी तो आपको कोई joy चाहिए। joy यानि भी खुशी होती है। enjoy और उस खुशी में वृद्धि हो गई लेकिन जैसे-जैसे यह पता पड़ने लगेगा कि वह enjoy हम अपने में भी करके आनन्दित रह सकते हैं तो आपके अंदर का यह विश्वास ही आपको विषयों से दूर करेगा। इस विश्वास की कमी के कारण ही जैसे ही आनन्द की बात आती है तो हम बाहर की ओर दौड़ते हैं। हमें आनन्द इन्द्रियों से मिलता है। हम आँखे खोलेंगे, कान से सुनेंगे, स्पर्श करेंगे तो आनन्द मिलेगा। लेकिन इन सबको किए बिना केवल आत्मा में रहने पर आनन्द की बात यह तो कभी हमारी धारणा में आई ही नहीं। वह इसलिए नहीं आई क्योंकि हमने हमेशा पर को जाना है। इन्द्रियाँ हमेशा पर को विषय बनाती है। इन्द्रियाँ कभी स्वविषय नहीं बनाती। जब इन्द्रियाँ अपना ही स्वविषय नहीं बना पाती तो वह आत्मा को विषय कैसे बना पाएगी। इसलिए आचार्यों ने कहा कि इन्द्रियों के माध्यम से तुम्हें कभी भी आत्मा का आनन्द मिल नहीं सकता है। इन्द्रियों का काम है पर को विषय बनाना। इन्द्रियाँ आँख से देखेगी तो पर को देखेगी और पर में ही आनन्द लेगी। वो आँख से अपने को भी नहीं देख पा रही है। आँखें जब भी देखेंगी दूसरे की ओर देखेंगी। अपनी ओर नहीं देखेंगी क्योंकि आँखें खुलकर के ही दूसरों की ओर देखती है। पहला attack ही दूसरे पर होता है। अपनी ओर कोई किसी भी तरीके का projection तो है ही नहीं और जब तक इन इन्द्रियों का projection अपनी ओर नहीं होगा तब तक इन्द्रियों की रुचि रुकती नहीं है।

लेकिन विडंबना इस बात की है कि यह इन्द्रियाँ कभी भी अपनी ओर आने का भाव ही नहीं रखती, इनका स्वभाव ही है पर को जानना, पर को देखना, पर को चखना, पर को महसूस करना। इसलिए आचार्य कहते हैं कि आत्मा ने अपने ज्ञान को इन इन्द्रियों के माध्यम से भुला दिया। यह आत्मा ज्ञानी तो था लेकिन अब ज्ञानी नहीं रहा। अब यह आत्मा बुद्धिमान बन गया, विद्वान् बन गया है। ज्ञानी और बुद्धिमान में थोड़ा अंतर होता है। बुद्धिमान होगा तो वह दूसरों के लिए हुए ज्ञान को अपने अंदर रख लेगा। आपने जो देखा, अपने-अपने पास में रख लिया। आपने जो सुना अपने पास रख लिया। दूसरे का ज्ञान आप अपने पास रखते चले जाओगे तो आप बुद्धिमान बन जाओगे। ज्ञानी नहीं बन पाओगे। बुद्धिमान बनने में आनन्द आएगा। दूसरों के ज्ञान का आत्मसात् कर लोगे तो आनन्द आएगा लेकिन ज्ञानी बनने में आनन्द किसी को नहीं आएगा क्योंकि ज्ञानी बनने का मतलब है, बुद्धि के ज्ञान को भी छोड़ देना। जब तक आपके अन्दर यह बुद्धि का भी ज्ञान काम करेगा तब तक आप आत्मज्ञानी नहीं बन पाओगे। यह बुद्धि का ज्ञान भी छोड़ना पड़ता है क्योंकि यह भी दूसरे source से आया हुआ है। यह भी पर का है, अपना नहीं है और जो कुछ भी अपना नहीं है, वह कभी भी अपने को आनन्द देगा ही नहीं।

ज्ञानी बनें :

इंद्रियाँ हमेशा पर को विषय बनाती हैं।

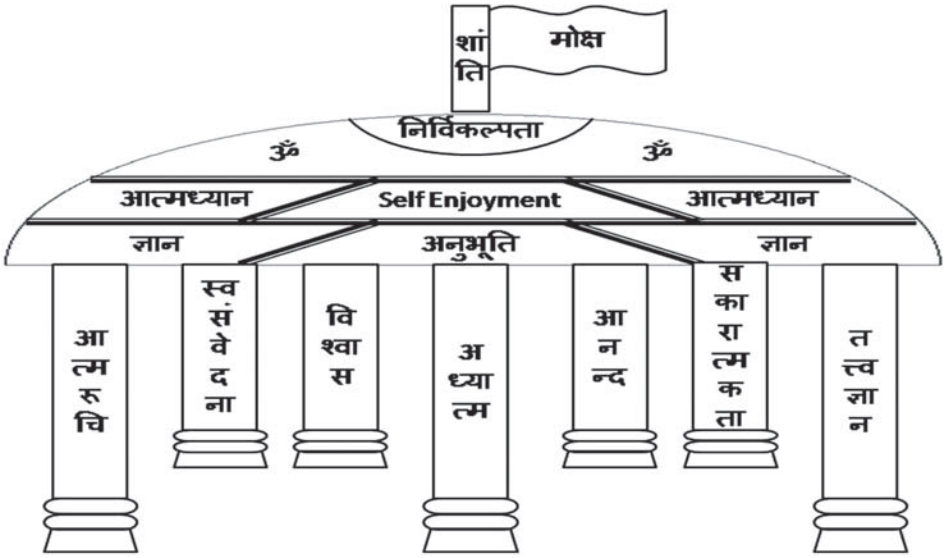

मन मन्दिर

पर का जो भी ज्ञान है, वो सब हमारे ऊपर धीरे-धीरे इतना बोझ बन जाएगा कि हम एक ओर अपने ऊपर अहंकार ओढ़ लेंगे कि हम बुद्धिमान हैं लेकिन आचार्य कहते हैं कि आप थोड़े से ज्ञानी बने, बुद्धिमान नहीं बने। बुद्धिमान तो आप हमेशा से बनते आए है लेकिन आप ज्ञानी नहीं बने। ज्ञानी बनने का मतलब है, अपने ज्ञान स्वभाव की ओर आना। ज्ञान स्वभाव तो सहज होता है। उसमें तो जो डला हुआ है उसको भी छोड़ना है। जब आपका वह ज्ञान स्वभाव धीरे-धीरे अपनी सहज स्फूर्ति में आ जाए। आपकी अंदर की बुद्धि का परिणाम बाहर से कुछ भी भरने का प्रयास न करे। भीतर से आपके स्त्रोत फूटने लगे तो आप समझना कि आपको उत्तम तत्त्व का संवेदन हो रहा है। वह संवेदन जब आपके अंदर होने लगेगा तो आपको सही self enjoyment होगा। अभी तो जितना भी enjoyment है that is the enjoyment of the object. जो बाहरी पदार्थ है उनका enjoyment है। अपना self enjoyment जब शुरू होता है तब उसके अंदर अपने आप वह स्त्रोत फूटते हैं। वह दूसरों से हटकर के भी अपने अंदर आनन्दित रह लेता है। वह आनन्द की कला जो सीख लेता है उसी के लिए आचार्य यहाँ कह रहे हैं कि बाहरी विषयों की रुचि उसकी छूटती चली जाती है। दो चीजें अगर धीरे-धीरे हम अपने अंदर ले आए, एक तो बाहरी विषयों का हम स्वभाव समझने लगे और एक हम अपने ज्ञान के स्वभाव को जानने लगे। जब दोनों चीजों के स्वभाव को जानने लगेंगे तो हमें लगेगा कि वास्तव में हम एकदम से बाहर चले जाते हैं। किसी ने एक बात यहाँ पूछी थी कि आँख खोलते हैं तो जहर चढ़ता है, पैर उठाते हैं तो पाप लगता है। ये दोनों बातें अपने आप में उन ज्ञानियों को अनुभूत में आएगी जिन्होंने स्वसंवेदन को अपने ज्ञान स्वभाव को

बुद्धिमान नहीं ज्ञानी बनें, ज्ञानी अर्थात् अपने ज्ञान स्वभाव की ओर आयें।

थोड़ा अनुभूत किया हो। जैसे ही आँख खुलेगी और जहर चढ़ेगा तृष्णा का, राग का, ईर्ष्या का। कान आपकी किसी भी बात को नहीं सुनेंगे तो आप अपने में सीमित रहोगे, शांत रहोगे। जैसे ही आपने आँख खोली सामने, आपको कोई न कोई दिखेगा और उसको ग्रहण करने की इच्छा अपने अंदर उत्पन्न होगी, वहीं से आपके अंदर आकुलता शुरू हो जाएगी। जैसे ही आँख खुली और ज़हर शुरू हुआ। वह ज़हर कुछ न कुछ ऐसी लहर लाएगा, उस लहर में आप बह जाओगे। इसी को कहते हैं- तृष्णा की लहर और वो लहर आपके अंदर आएगी, आप उससे बच नहीं पाओगे। आपने आँख खोलकर इन्द्रिय को कह दिया कि अब तू देख, अपना काम कर। तुमने अपने कान दूसरों को दे दिए, अब तू उसकी सुन। अब अपनी नहीं सुन पाओगे, अपने को नहीं देख पाओगे। यह प्रवृत्तियाँ हमारी इन्द्रियों के साथ चलती रहती है। हर मनुष्य इन्हीं प्रवृतियों से गुजरता रहता है। इसलिए वह कभी भी अपनी इन्द्रियों को रोककर नहीं बैठ पाता। इन्द्रियों के विषयों को छोड़ देगा। आँख बंद भी कर देगा तो उसके अंदर वो इन्द्रिय का विषय अपने आप मन के माध्यम से दिखाई देने लग जायेगा क्योंकि उसकी आदत ऐसी पड़ चुकी है कि उसके अभ्यास में इन इन्द्रियों का विषय ही आ गया है। उसकी जो पहचान बनती है वह दूसरों के माध्यम से ही बनती है। आप कभी अपने मन से पूछो कि हम क्या है ? जो हमने बुद्धि में भर लिया है हम पहले उसको सामने ले आते हैं और वो सामने आया तो हम उस मूल तक पहुँच ही नहीं पाते, जहाँ तक हमें पहुँचना है। आप जैसे ही बैठोगे आँख बंद करके कि हम क्या हैं और आपने सोचा हम आत्मा हैं लेकिन आत्मा हमको दिख नहीं रही है। आप अपने ही आपको समझा रहे हो और अपने ही आपको कह रहे हो कि हम आत्मा है। आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं, इसका कोई श्रद्धान नहीं। आपको भीतर से बैचेनी होगी। अगर आप थोड़े भी सच होगे तो आप सोचोगे कि जब आत्मा का अस्तित्व हमारे अनुभव में आ नहीं रहा तो हम अपने को आत्मा कह भी रहे हैं और कुछ महसूस नहीं हो रहा। इसीलिए आँख आपकी तुरंत खुल जाएगी। ऐसा जो आपको महसूस हुआ यह समझ लो, अपने ही अंदर का ज्ञान आपके बुद्धि के रूप में आपको परेशान कर रहा है। आपने आँख बंद की, आपकी बुद्धि आपको परेशान करेगी।

मन, चित्त, अंतरंग आत्मा :

मन, चित्त और अंतरंग की आत्मा यह सब अलग-अलग चीजें हैं, पहले आपकी बुद्धि आपको परेशान करेगी और वो पहले आपको बाहर फेंक देगी। आप उसी में ही आऊट हो गए तो यह ऐसे हुआ जैसे आप बहुत बड़ी पिच पर गए, बहुत अच्छे रन बनाने गए, बहुत अच्छे क्रिकेटर के रूप में गए और पहली बॉल में ही आप आउट हो गए। अपनी आँख बंद करके 5 मिनट में ही खुल जाना, अपनी ही बुद्धि से परेशान हो जाना। आप समझ जाना, अपनी बुद्धि से हार गए। यह बुद्धि की हार आपको महसूस करने में आनी चाहिए। उस समय पर हमारी स्थिति उस आऊट हुए क्रिकेटर की तरह हो जाती है। हम फिर बाहर आ जाते हैं, उस पिच से जिस पिच तक पहुँचने में

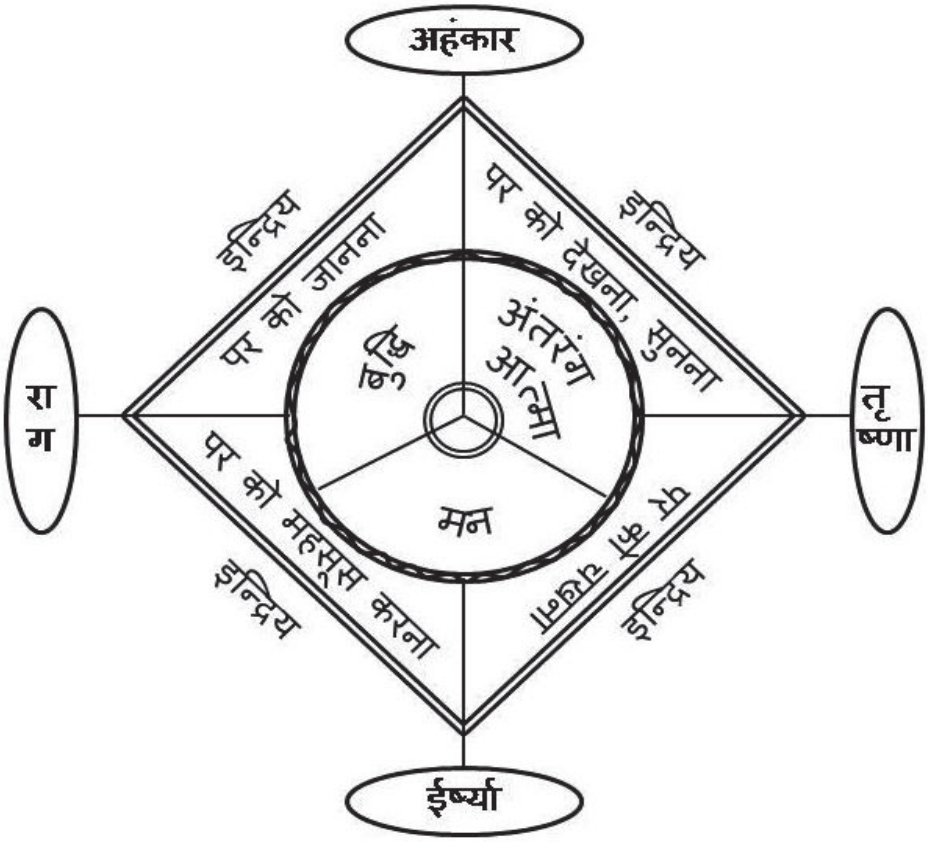

हमने मन बनाया था और बहुत पुरुषार्थ लगा था। यह चीज जब आपके दिमाग में रहेगी तब आपको लगेगा कि बुद्धि ही परेशानी का कारण थी। आपके लिए अगर अपना अनुभव होगा तो पहले अपनी बुद्धि को छोड़ना पड़ेगा। आप अपने में महसूस करने बैठो कि आप क्या हैं, आपको अपनी पहचान जो कुछ भी होगी वह दूसरे के माध्यम से होगी। पहले आपसे आपकी बुद्धि कहेगी कि आप बहुत बुद्धिमान हैं। पहली गलती यही हो गयी। जो मूर्ख, अज्ञानी होगा, वो कभी ऐसा ध्यान करने बैठ नहीं पाएगा और आप बुद्धिमान होकर बैठे तो आपको सबसे पहले दिमाग में आया हम बुद्धिमान हैं, हम इन लोगों से ज्यादा ज्ञानी हैं, हम इन लोगों से ज्यादा आत्मध्यानी हैं। यह बुद्धि जहाँ पे आयी वहाँ सब खत्म हो गया। यह इन्द्रियों के विषय, तत्त्व की रुचि और इस तत्त्व की रुचि तक पहुँचना। जैसे-जैसे तत्त्व की रुचि बढ़ती जाएगी, वैसे-वैसे इन्द्रियों की रुचि छूटती जाएगी। जो चीज आपके सबसे पहले दिमाग में आएगी कि पर के आश्रित आपकी पहचान, आपकी अपनी कोई पहचान नहीं होगी। दूसरा जो आपको मानेगा वही आप अपने को मानोगे। अगर सामने वाले ने आपसे कहा कि आप बहुत अच्छे सामाजिक कार्यकर्त्ता हैं तो आपको यही ध्यान आएगा कि मेरी पहचान अच्छे

सामाजिक कार्यकर्त्ता के रूप में है। अगर सामने वाले ने आपसे कहा कि आपका बहुत मधुर कंठ है तो उसको यही ध्यान में आएगा कि मेरा कंठ मधुर है। सामने वाले ने आपसे कह दिया कि आप बहुत बुद्धिमान हैं तो आपको यही ध्यान आएगा कि मैं बुद्धिमान हूँ। आपकी पहचान भी अपनी नहीं है और अपनी नहीं होने के कारण से खुद अपने को नहीं समझ पाते कि हम क्या हैं, आपकी जितनी भी पहचान है, वह दूसरों से बन रही है। दूसरे ने कहा आप अध्यक्ष हैं, सामाजिक कार्यकर्त्ता हैं तो हैं। लेकिन आप वास्तव में क्या है? यह आप दूसरे को हटा कर देखेंगे तो आपको पता पड़ेगा और जब आप दूसरे को हटा देंगे तो आप कुछ भी नहीं रहेंगे। जो कुछ भी अस्तित्व टिका हुआ है वह दूसरे पर टिका है, हम उसी को पकड़ लेते हैं जिसने आपको अच्छा कहा है। यह सहज नहीं है जिसने आपको अच्छा कहा है। यह सहज नहीं है इन्द्रियों के विषयों को छोड़ना, मन के विषयों को छोड़ना और आत्मा तक पहुँच जाना। हम उसी को अपना दोस्त बनाएंगे जो हमसे कहेगा तुम तो अच्छा बोलते हो, अच्छा गाते हो क्योंकि यह हमारी सही पहचान हमको बता रहा है। जब आप दूसरे पर depend होते चले जाओगे समझ लेना आपने आपको खो दिया है। आप अपने अस्तित्व में ही नहीं और जब तक यह अपनी पहचान स्वयं के द्वारा नहीं बनेगी तब तक आपका कोई अस्तित्व ही नहीं। इन अस्तित्व को खोने का कोई कारण है तो यह इन्द्रियों के विषय।

इसलिए आचार्य कह रहे हैं, यह विषय सुलभ हैं। आपको आस-पास लोग मिल जाएंगे आपकी पहचान कराने वाले और आप उन्हीं के साथ में रहोगे जिनसे हमारी पहचान बने। आपसे अगर कोई कहे क्या तुम गाते हो? अच्छा नहीं गाते हो, वो आपकी निंदा कर रहा है यह भी आपके मन में जो आ रहा है यह उसके प्रति गलत धारणा के कारण से आ रहा है। आप उसके बारे में सोच सकते हो कि अगर वो हमसे कह रहा है, तू अच्छा नहीं बोलता है तो उससे पूछो कि अच्छा बोलना कैसा होता है तू हमें बता। ताकि मुझे पता पड़े कि अच्छा क्या होता है। जो भी आपके प्रति थोड़ा नेगेटिव हुआ आपने उसके प्रति नेगेटिव भावना रख ली तो आप भी भीतर से नेगेटिव हो यह अपने आप सिद्ध होने लग जाता है। हर व्यक्ति दूसरे के लिए कहता है कि दूसरा व्यक्ति हमारे लिए बहुत negativity रखता है। हम उसके प्रति हमेशा positivity रखते हैं। ऐसा कहने वाला व्यक्ति भी अभी नहीं जानता कि positivity किसको कहते हैं। यह आपकी negativity है कि आप दूसरे को negative समझ रहे हो। अगर आप positive हो जाओगे तो आपको कहीं negative दिखाई देगा ही नहीं।

मान लो आप कभी मुनि नहीं बने लेकिन आपको मुनि महाराज की सभी अनुभूतियाँ मालूम हैं, अपनी आत्मा का ध्यान करते हैं, 28 मुलगुणों का पालन करते हैं, सब मालूम है आपको। बिना कुछ बने हुए भी आपको सब मालूम है। आप उनके भीतरी जगत की बाते पढ़ रहे हो, लिख रहे हो और आपके पास है कुछ नहीं। आप कभी भगवान की स्तुति कर रहे होते हो तो उनके बारे में ऐसी शब्दावली बोल रहे होते हो जैसे ऐसा लगता है कि इसको सब कुछ मालूम है। लेकिन आपके

पास में शब्दो के अलावा और कुछ नहीं होता है। शब्द तो हम कहीं से भी खोज ले आ सकते हैं और बड़ी-बड़ी जितनी भी अध्यात्म की बाते हैं, वो सब उन शब्दावलियों में डाल सकते हैं। लेकिन शब्दों से हमारी अनुभूतियों का कोई लेना देना नहीं होता है। यह आप किसी भी व्यक्ति से पूछ सकते हो, जो काव्य बनाता हो, गायक हो उसे वो चीजें ढूँढनी पड़ती हैं, जो हमारी लाइनों में दम ले आए। लेकिन वह चीजें वास्तव में अनुभूति तक नहीं आ पाती है। शब्द, अर्थ और अनुभूति की यात्रा में एक लंबा difference होता है। इसलिए बहुत अच्छे-अच्छे काव्य कलाकार मिल जाएंगे, काव्य पंक्तियों को सुनाने वाले मिल जाएंगे और वो सब अंतरंग की अनुभूति बता देंगे। जो सुनने वाले हैं वो यह सोचते हैं, इनको कैसे पता पड़ गया कि हम क्या कर रहे हैं। आप उस रूप में ढले नहीं और आपको पता पड़ गया तो इसका मतलब है, आपने शब्दों का ज्ञान अपने अंदर इकट्ठा किया है, आपने अपनी बुद्धि को उस रूप में ढाला है। आप अपने मन को अपनी आत्मा में लगा नहीं पाए, नहीं तो आपकी परिणति ऐसी रहती ही नहीं। यदि आपके अंदर वो बात गहराई से थोड़ी भी उतर रही होती। यदि आपको थोड़ा सा भेद-विज्ञान आता है तब तो आपकी परिणति भी थोड़ी सी बदल रही होगी। वो बदले तो यह सब चीजें सार्थक है और वो नहीं बदलती है तो आचार्य कहते हैं आपकी रुचि बदली नहीं है। अपनी रुचि बदलेगी तो उसकी परीक्षा आप स्वयं करें, कि जैसे-जैसे अपने विषयों से रुचि घटती जाए, तत्त्व की रुचि बढ़ती जाए। यह एक साथ दो श्लोक हैं। आगे भी इसी का उल्टा श्लोक लिखा जा रहा है।

''यथा यथा न रोचन्ते विषयाः सुलभा अपि।
तथा तथा समायाति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्''॥

जैसे-जैसे यह सुलभ विषय रुचि को प्राप्त नहीं होंगे, वैसे-वैसे आपका तत्त्व का संवेदन अपने आप में बढ़ता चला जाएगा। आप अपने आप में आनन्दित और संतुष्ट होते चले जाएंगे। आपको बाहरी विषय की संतुष्टि से कोई लाभ होगा, ऐसा आपका मन स्वयं मना कर देगा। यह परिणतियाँ जो दोनों प्रकार से लिखी गई हैं, यह बहुत बड़ी चीज है। यह ही हमारी आत्मा की कसौटियाँ हैं। दूसरा श्लोक लिखकर के आचार्यों ने दो लाइनें इसलिए बढ़ा दी क्योंकि पहले श्लोक में तो यह लिखा कि तत्त्व रुचि जैसे-जैसे बढ़ेगी वैसे-वैसे इन्द्रियों के विषय कम होंगे, उनके प्रति रुचि भी कम होगी। यह श्लोक में उल्टी चीजें नहीं हैं, उसके बाद की बात है। जब आपके अंदर तत्त्व रुचि बढ़ गई। इन्द्रियों के विषय की रुचि कम हो गई तो आगे आचार्य कह रहे हैं, अब अगर फिर वह विषय आपके सामने आएंगे तो उस समय उन विषयों में रुचि कम ही महसूस होगी। वह विषय की रुचि कम महसूस होगी तो तत्त्व रुचि में फिर आ जाएंगे। इसको इस तरह से समझा जा सकता है कि कोई भी व्यक्ति दश लक्षण पर्व के दिनों में धर्म करने की इच्छा करते हैं और धर्म करने के लिए वह कहीं भी जाते हैं, उन्हें पता होता है कि इन 10 दिनों में हम कहीं भी जाएंगे और कहीं भी शिविर में बैठेंगे तो हमारे लिए बहुत कुछ चीजें छूट जाएंगी। विषय की रुचि छूट जाएगी।

हम अपने जीवन को स्वयं के माध्यम से ना चलाकर इंद्रियों के माध्यम से चलाते हैं।

उस विषय की रुचि को छोड़कर हमें वहाँ रहना पड़ेगा तो पहले विषय की रुचि छूटी लेकिन अभी उनके अंदर तत्त्व की रुचि आई या नहीं आई यह नहीं कह सकते। विषय की रुचि को छोड़कर के वह वहाँ बैठ रहा है, इसका मतलब यह नहीं है कि उसमे तत्त्व की रुचि है क्योंकि बहुत आपको ऐसे मिलेंगे जो किसी विषय की रुचि छोड़े नहीं है। लेकिन छोड़ने के लिए उन्हें वहाँ पर नियम दिया जाएगा इसलिए उन्हें छोड़ना पड़ेगा। विषय की रुचि का स्वाद उनके अन्दर बहुत देर तक बना रहे इसलिए आप देखोगे कि जिस दिन उनको ऐसा कार्य करने के लिए जाना पड़ रहा हो, उससे पहले वो विषय सेवन भी अच्छे ढंग से करते हैं। सभी तरह के विषय सेवन स्पर्शन इन्द्रिय का, रसना इन्द्रिय का, यहाँ तक कि अगर कोई व्यसन भी पड़ा होगा जैसे सिगरेट पीने की आदत है, पाउच खाने की आदत है तो उनको पता पड़ रहा है कि आज चौथ है मतलब बुन्देलखण्ड में बोलते हैं कि धासन चौथ है यानि अच्छे ढंग से धाँस लो क्योंकि आज के बाद 10 दिन फिर अच्छें ढंग से खाने को नहीं मिलेगा। इसलिए आज इसको बोलते हैं-धासन चौथ। लोग इस रुचि में इतना पड़ जाते हैं कि आज के दिन वह सब करेंगे और कल से बिल्कुल धार्मिक बन जाएंगे यह जो प्रवृत्ति है जो बताती है कि हमारे अंदर धर्म को भी करने का एक ढकोसला बन गया। भीतर से कोई भावना, ज्ञान उत्पन्न नहीं होता और हम कई बार देखा-देखी भी बहुत करते हैं। शिविरों में कई बार लोग ऐसी मानसिकता से आते हैं कि 10 दिन अपने को कुछ नहीं करना, 10 दिन छोड़ देना और 10 दिन पहले अच्छी सिगरेट फूकेंगे, अच्छा-अच्छा खाएंगे। बाद में कहेंगे अब 10 दिन के लिए हम महात्मा बन गए और 10 दिन बाद फिर वैसे के वैसे ही हो जाएंगे। यह परिणतियाँ आपकी बनी ही रहती है और यही परिणतियाँ बताती हैं कि हमारे अंदर सब कुछ जो चल रहा है वो दूसरे के माध्यम से चल रहा है। हम अपने जीवन को अपने माध्यम से नहीं चला रहे हैं। इन्द्रियों के माध्यम से ही हमारी धारणाएँ बनती हैं। तत्त्व की रुचि हो जाना, आत्म तत्त्व में आनन्दित होना, यह कुछ अलग ही चीज है। इस different रुचि में आपके अंदर यह परिणति नहीं आएगी कि अभी हमने 10 दिन के लिए किया और 10 दिन बाद हम वही हो गए। जैसे पहले थे वैसे फिर हो गए। ऐसे प्रकार के कोई भी धर्म अनुष्ठान किसी धर्म में होते हो यह कभी भी अपनी आत्म उन्नति के कारण नहीं हैं।

अगर जैन लोग भी इसी प्रकार से मानसिकता रखने लगे हैं तो इसका मतलब है कि हम जैन होकर भी कुछ धर्म करने की भावना न रखते हैं और न कुछ जानते हैं। इन दिनों में ऐसी परिणति बननी चाहिए, इन्द्रियों के विषयों में कमी आनी चाहिए और वह कमी एक सहज स्वाभाविक होनी चाहिए। उस कमी को आने के बाद में भी हमारे अंदर ऐसा नहीं लगना चाहिए जैसे किसी अभाव से आए हों और एकदम से किन्हीं चीजों पर टूट पड़ें तो हमारे जीवन में बाद में भी धैर्य व संयम रहे। हमारी साधना कम से कम उन 350 दिनों के लिए एक एनर्जी लेके जाए। इस प्रकार आपकी चेष्टाएं आपकी मानसिकताएँ होनी चाहिए। आप पहले से ही सोच लेते हो केवल हम 10 दिन के

जब स्वयं में आनंद आने लगता है तो इंद्रिय के विषय की इच्छा नहीं रहती।

लिए कर रहे हैं तो आपका धर्म समाप्त है। अगर आप इस मानसिकता से रहोगे कि इन 10 दिनों में आगे आने वाले 50 दिनों के लिए अपने अंदर एक एनर्जी लेने के लिए आ रहे हैं तो आपके लिए वह एनर्जी बहुत समय तक काम आएगी। यह सिर्फ आपकी मानसिकता से होगा। मान लो, आप 10 दिन धर्म करने के लिए आते थे, आपको इन्द्रियों के विषय छूटते हैं, यह आदत एक बार आपके अंदर पड़ती है। नहाना तो थोड़े से पानी से नहा लिया, अच्छी-अच्छी बातों को सुनना, यह आदत जब पड़ती है तो आप यह भी ध्यान रखें कि अगर हम अभी-अभी लोटे पानी से काम चला रहे हैं तो आगे भी इसका अनुपात ऐसा ही बना रहे। तभी आपको सही ढंग से धर्म साधना करने का लाभ मिला है, ऐसा समझ में आएगा। इन दिनों में कई लोग साबुन नहीं लगाते, बाल नहीं बनाते इसलिए लोग पहले से ही तैयार हो जाते हैं। यह भी मानसिकता बनना अच्छी बात है। इस मानसिकता के माध्यम से जो संस्कार पड़े तो आप यह सोचकर के मानसिकता को नहीं बनाएँ कि हम 10 दिन के बाद फिर सब करेंगे। यदि हमारा मन इन अभावों में भी संतुष्ट हुआ है तो आपने अपने अंदर एक आत्म शांति की बहुत बड़ी सीख प्राप्त कर ली। फिर आपके लिए जो सद्भाव मिलेंगे उनमें आपकी धीरे-धीरे गति होगी तो आपके जीवन में संयम का धीरे-धीरे महत्व बना रहेगा और उसी महत्व से आपका जीवन अच्छा चलेगा। इसलिए आप यह ध्यान रखें कि हम जो कुछ भी यहाँ पर इन 10 दिनों में कुछ करने के लिए आए हैं उन दिनों में कुछ अच्छे संस्कार पड़े, एक अच्छी भीतर से रुचि जाग्रत हो। दूसरों को दिखाने के लिए नहीं करना।

अपनी अंतरंग भावना से परिणत होकर के थोड़ा भी करेंगे लेकिन यहीं से शुद्ध करेंगे, with honesty & with purity, ईमानदारी के साथ में शुद्ध भाव करके थोड़ा भी यदि काम किया जाता है तो वह हमारे लिए बहुत लाभदायक होता है और उसी लाभ से हमारा फिर आगे का जीवन भी अच्छा बनता है। आप यहाँ पर किसी भी प्रकार की साधना करें, सभी प्रकार के माहौल यहाँ मिलेंगे। हम अपने आपको जीयेंगे और किसी भी प्रकार के छल-कपटों से रहित होकर के साधना करेंगे। इस प्रकार से जब आपका मन बनेगा तो अपने आप आपके अंदर वह संयम का भाव बनेगा। तत्त्व की रुचि बढ़ेगी। इसी प्रकार की रुचि बढ़ाने के यह अवसर होते हैं। घर-घर में रहते-रहते हर आदमी के दिमाग में घर गृहस्थी की चीजें रहती हैं। लेकिन आप यहाँ रहोगे आपको कुछ चीजें ज्यादा याद नहीं आएंगी। मन जो आपको सिखाएगा वो आपके काम का होगा। इसलिए अपने मन को, वचनों को संयमित बनाओ। इस तरह से जब आपकी परिणति बनेगी तो धीरे-धीरे इस तत्त्व रुचि तक भी पहुँच जाएंगे। जहाँ यह पूज्यपाद महाराज जी इतने उच्च स्तर की बात कह रहे हैं जिस तत्त्व रुचि में इन्द्रिय के विषय बिल्कुल फीके लगने लग जाते हैं और जब अपने ही आपमें enjoy होने लग जाता है तो इन्द्रियों के विषय में इच्छा रहती ही नहीं है क्योंकि जिसने मीठा जल पी लिया है खारा जल क्यों पिएगा। **दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष-विलोकनीयं, नान्यत्र तोषभुपयाति जनस्य चक्षु। ''पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः, क्षारं जलं जलनिधे रसितुं क इच्छेत?''**

दूसरों के कहने पर अपने आप को वैसा मान लेना मिथ्या बुद्धि है।

जिसने आपकी शांत छवि का रसपान कर लिया है और जिसने आपके वीतराग स्वरूप को अपने रुचि का विषय बना लिया है तो अब उसको सरागता में कोई रुचि नहीं आती है। उसका अपने आप यह सब सराग विषय, मिथ्या विषय उसी तरह से खारे लगते हैं जैसे मीठा जलपान करने के बाद में खारा पानी पीना। आपकी स्थिति यह है कि मीठा जल पीना तो है लेकिन कुछ दिनों के लिए पीना है, बाद में तो खारा ही पीऊँगा क्योंकि इसी में मजा आता है। यह अपनी परिणति भीतर से बैठी है तो उस मीठे का असर आपके ऊपर कैसे पड़ेगा। इसलिए हर चीज में अपने मन को सत्य, शुद्ध बनाओ। आपके जीवन में भीतर से कोई बदलाव आएगा। जीवन का सच्चा आनंद आएगा। जब तक आप दूसरों की बातों में अपने आनंद को लेते रहोगे तो आप भ्रमित होते रहोगे। दूसरा क्या कह रहा है? उससे कोई मतलब नहीं रखना। दूसरा हमसे कहे तो हम तपस्वी हैं या हम अपने अंदर खुद महसूस कर रहे हैं कि हम खुद तपस्या कर रहे हैं तो हम तपस्वी हैं, दूसरे के आश्रित होना छोड़ दें। दूसरों की बातों में आना छोड़ दें। हम क्या हैं, यह हम खुद महसूस करेंगे और जो हम होंगे, वास्तव में वही हमारे अंदर महसूस करेंगे। दूसरे के कहने से हम कुछ नहीं हो जाएंगे। अगर दूसरे ने आपसे कह दिया कि आप बहुत सुंदर लगते हो तो केवल आप उसके लिए ही सुंदर होंगे और जो आपको नहीं कह रहा है उसके लिए तो आप सुंदर हो ही नहीं। आपने अगर मान लिया कि आप सुंदर हो और जबकि आप एक की अपेक्षा से थे तो इसको बोलते हैं मिथ्या-बुद्धि। इसको कहते हैं- अपने आग्रह से अपने से ज्यादा बढ़ जाने वाली बुद्धि। इन चीजों को छोड़ के शांतभाव से हम अपने आपकी पहचान करेंगे। आपको यह आत्मा की रुचि अपने आप लगेगी। फिर आप 10 दिन बाद भी विषयों में प्रवृत्ति करोगे तो उसके लिए यह सूत्र है **''यथा यथा न रोचन्ते, विषया: सुलभा अपि''**। जैसे-जैसे आपकी इन विषयों में रुचि कम होगी वैसे-वैसे आपकी आत्मा में रुचि बढ़ेगी। क्योंकि आपके अंदर वास्तव में आत्मा की रुचि आयी है। इस बात की पहचान इस दूसरे श्लोक से होगी कि जब आपको फिर विषय मिले तो आपने फिर उसमें प्रवृत्ति नहीं की। धर्म केवल ऐसा नहीं होता कि 10 दिनों के लिए किया जाता है। धर्म तो स्वभाव है। मुनि महाराज बनते हैं time limit के लिए नहीं बनते हैं। आप अगर थोड़े-थोड़े से नियम लेते हो तो time limit के लिए लेते हो। आपके लिए आपका गृहस्थ धर्म कोई यह नहीं कह रहा है कि time limit के लिए नियम लेना। जो भी नियम लो अपने आजीवन होने चाहिए क्योंकि वह छोटे-छोटे नियम हैं। वो नियम भी उस गृहस्थ अवस्था के लिए हैं। आप उस गृहस्थ अवस्था का मतलब यह मत समझो कि इसमें जो नियम होते हैं वो तो कुछ समय के लिए होते हैं और मुनि महाराज के नियम होते हैं वह हर समय के लिए होते हैं, ऐसा नहीं है। गृहस्थ भी जीवन पर्यन्त के लिए नियमों का पालन करते हैं। आप जैसी मानसिकता बनाएंगे मन वैसा ही तैयार आपको कर देगा। मन आपका बनना चाहिए।

जब तक आप दूसरों की बातों में अपने आनंद को लेते रहोगे तब तक आप भ्रमित होते रहोगे।

विषयों के प्रति अरुचि होने पर

38

यथा यथा न रोचन्ते विषयाः सुलभा अपि।
तथा तथा समायाति संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्॥

अन्वयार्थ—(यथा यथा) जैसे-जैसे **(सुलभाः)** सुलभ **(विषयाः अपि)** पञ्चेन्द्रिय के विषय भी **(न रोचन्ते)** आत्मा को अच्छे नहीं लगते **(तथा तथा)** वैसे-वैसे **(संवित्तौ)** अनुभूति में **(उत्तमं तत्त्वं)** उत्तम तत्त्व [शुद्धात्म स्वरूप] **(समायाति)** प्रतिभासित होने लगता है।

- **परिवर्तन अपरिहार्य है**
- **change करें**
- **व्रतों से पुण्यबंध**

परिवर्तन अपरिहार्य है :

कई प्रसंग एक साथ चल रहे हैं। चलना हर एक द्रव्य का स्वभाव है और वह गति हर एक द्रव्य में बनी रहती है। जब कोई चीज क्रम-क्रम से चलती चली जाती है तो एक शृंखला बन जाती है। उस शृंखला को हम चेन कहने लग जाते हैं। एक चेन बन जाती है तो हर आदमी अपने आपको उसी चेन में उसी शृंखला में बाँधता चला जाता है। जीवन में कभी-कभी इस चेन को तोड़कर के एक change लाना चाहिए। एक चेन होती है, उसका नाम चेन इसीलिए पड़ा है कि उसमें हर कड़ी दूसरी कड़ी से जुड़ी रहती है। उस चेन को तोड़कर यह आदमी जब तक थोड़ा सा पुरुषार्थ नहीं करेगा तब तक इसे कुछ उपलब्ध नहीं होगा। change से हर आदमी डरता है। आज के जीवन में हमें हर स्तर पर change आवश्यक है। अपने शारीरिक स्तर पर भी हमें बहुत change करने की जरूरत पड़ती है और मानसिक स्तर पर भी change लाने की बहुत जरूरत है। जब आप अपने शरीर के लिए भोजन को निरंतर करते रहते हैं तो doctor कहते हैं इसको भी थोड़ा change करो। कुछ दिन पहले एक doctor आए थे कोटा के, तो बातचीत के दौरान उन्होंने कहा कि महाराजजी एक जैसी चीजें निरंतर नहीं खानी चाहिए। एक जैसा तेल भी निरंतर नहीं खाना चाहिए, वो भी change करना चाहिए। change आवश्यक है। उसका कारण यह है कि change होने से आपके

शरीर में जो चीजें इकट्ठी होती हैं और इकट्ठी होने के, बाद वह कुछ रोग का भी कारण बन सकती हैं। अगर आप change करोगे तो जो कुछ चीजें, extra material कहो, toxic material कहो उसके रूप में इकट्ठी हो जाती हैं वो चीजें अपने आप डिजोल्व होने लगेगी और आपके लिए स्वास्थ्य का लाभ मिलने लगेगा। उस change के साथ ही आपके अंदर परिणामों में भी change आएगा, मानसिकता में भी change आएगा। आप देखोगे कि हर आदमी कभी नहीं चाहता कि कुछ change हो, बस जो चल रहा है चलने दो, किसी भी क्षेत्र में हो। मन अगर थोड़ा सा आराम पाने लगता है किसी भी जगह पर तो वह कहने लगता है कि नहीं आराम को छोड़ो। मन जहाँ पर जैसा लग रहा है अच्छा लग रहा है, जिसको करने में मन लग रहा है बस उसी को करते रहो। जैसा जीवन चल रहा है उसको चलने दो। change करते ही उसे बहुत सारी कठिनाइयाँ दिखाई देने लग जाती हैं। यह मन की एक स्थिति होती है और इस स्थिति को जो व्यक्ति समझ लेता है तो वह व्यक्ति अपने मन को change भी कर लेगा और change करके उससे खुश भी हो लेगा। जब किसी के सामने ऐसे परिवर्तन अपने आप आ जाते हैं जो वह नहीं चाहता है तब उसे परेशानी होती है और जब कोई अपने सामने आए किसी भी तरीके के परिवर्तन को ग्रहण कर लेता है, उन्हें अपने रूप में ढाल लेता है तो उसे कभी कोई परेशानी नहीं आती। इसलिए कई डॉक्टरों का कहना रहता है कि अपनी लाइफ स्टाइल को भी एक जैसे मत चलाए रखो। थोड़ा उसमें change लाते रहो। अपने खाने में, पहनने, ओढ़ने में भी change लाओ और थोड़ा सा अपने विचारो में भी change लाओ और थोड़ा सा change अगर आपको और अच्छा लाने की इच्छा हो तो अपने वातावरण में भी change लाओ। जैनाचार्य बहुत वैज्ञानिक थे इसलिए उन्होंने समय-समय पर अनेक प्रकार के change लाने के लिए आपको समझाया।

अनेक प्रकार की तिथियों के माध्यम से, व्रतों के माध्यम से, मौसम बदलने के माध्यम से आपके अंदर जो परिवर्तन होते हैं उन सब परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए आचार्यों ने कहा कि अपने जीवन में change लाने के लिए हमेशा यह भाव रखना चाहिए कि उसको हम स्वीकार कर लें। आदमी डरता है। वह यहाँ तक डरता है कि अगर आदमी को पता हो अभी यह ठंड के दिन चल रहे हैं और उसको उन ठंड के दिनों में सहूलियत हो तो वह कभी नहीं चाहेगा कि यह ठंड के दिन चले जाएँ और बारिश के दिन आएँ या गर्मी के दिन आएँ। जिसके लिए गर्मी के दिनों में सहूलियत हो रही है, ऐसे रोग हैं जो गर्मी के दिनों में नहीं होते हैं ठंड में होने लग जाते हैं तो वह कभी नहीं चाहेगा कि यह ठंड का माहौल आए। वह चाहेगा कि यह गर्मी का ही माहौल चलता रहे। जहाँ-जहाँ पर हमारे मन में यह भाव आ जाता है वहीं-वहीं पर हम अपने मन से बंध जाते हैं और हम अपने मन को दूसरी परिस्थिति से बाँधकर चलते हैं लेकिन वो परिस्थिति तो अपने

तिथि, व्रत, मौसम आदि के अनुसार जीवन में परिवर्तनों की अनेक दिशाएँ हैं।

अनुसार चलेगी नहीं। मौसम अपने अनुसार चलेंगे, वातावरण अपने अनुसार चलेंगे और हमारे मन की मानसिकता भी अगर उसके अनुसार change हो जाए तो हमें कभी कोई दुःख नहीं होगा। दुःख की प्राप्ति तब होती है जब change हमारे आस-पास हो रहा हो और हम अपने मन को उस according change के रूप में नहीं ढाल रहे हों। यह मन की एक स्थिति बन जाती है कि वो धीरे-धीरे जिस स्थिति में रह रहा है वह उसी स्थिति में अपने आपको बहुत आराम में महसूस करने लग जाता है। इसीलिए जब कोई भी व्यक्ति घर से बाहर निकलता है तो उसके सामने बड़ी परेशानियाँ होती हैं। मन कहता है कि तुम घर में ही रहो। घर में सब प्रकार की facilities है और घर से बाहर निकलेगा तो मन को कई बार उसके लिए दूसरे test देने पड़ते हैं, उसको समझाना पड़ता है, तब समझ करके वह मन घर से बाहर निकलने के लिए तैयार होकर के अपना साथ देता है। इसलिए आप देखोगे कि गृहस्थ लोग अपने घरो में अधिक रहते हैं और घरों में अधिक रहते हुए भी जब वो कभी यात्रा के लिए निकलेंगे या कभी बाहर निकलेंगे तो एक बहुत बड़ी संयोजना अपने आस-पास बना करके निकलेंगे। कहाँ जाना है? वहाँ जाकर के हमारे लिए पर्याप्त सामग्रियाँ मिलेगी या नहीं। घर के बाहर निकलने के बाद भी उनके मन में वो सब चीजें जो उन्हें घर के अंदर चाहिए, वो उन्हें घर के बाहर भी चाहिए क्योंकि मन उन चीजों का habitual हो चुका होता है। ऐसी स्थिति में हम कभी अपने मन को अपने अनुसार नहीं ढाल पाएंगे और हमेशा यह परेशानी रहेगी कि आपको जब भी कभी कोई चीज नहीं मिली तो कहीं भी बाहर जाओगे आपके लिए परेशानी खड़ी हो जाएगी। मन को जो व्यक्ति इस चेन से निकाल के थोड़े से इस change के रूप में ले आता है और उस change को इस रूप में स्वीकार कर लेता है कि ''change is inevitable.'' change जो है वह अपरिहार्य है; जीवन में हमेशा अपने अन्दर change होता ही रहेगा और अगर हम उस change को स्वीकार कर लेंगे तो हमें धर्म भी होगा और सुख भी होगा और अगर हम स्वीकार नहीं करेंगे तो हम धर्म से भी दूर हो जाएंगे और हमें सुख की भी प्राप्ति नहीं होगी। हमारे अंदर वह change आए इसके लिए हमें अपना मन खुद बनाना पड़ता है।

आपको मान लो कोई चीज खाने की आदत पड़ी है तो आप रोज़ाना कहोगे कि यह चीज हमें हमेशा चाहिए, जितनी मात्रा में चाहिए उतनी ही मात्रा में चाहिए। जितनी उसके अंदर मिर्च मसालों के साथ चाहिए उतनी ही मिर्च मसालों के साथ चाहिए और अगर जिस दिन भी थोड़ी कमी आ गई तो आपका मन उसको स्वीकार नहीं करेगा। लेकिन डॉक्टर हमेशा कहते हैं कि आपको हर चीज में अपना मन बदलते रहना चाहिए। वह change जब आपके अंदर आता रहेगा आपकी लाईफ में भी थोड़ा सा change आएगा तो आप बहुत बड़ी-बड़ी बीमारियों से बच जाओगे। एक श्रीमान जी ने बताया कि जिस जैन परिवार में शुद्ध भोजन इत्यादि चलते हैं, उस जैन परिवार में

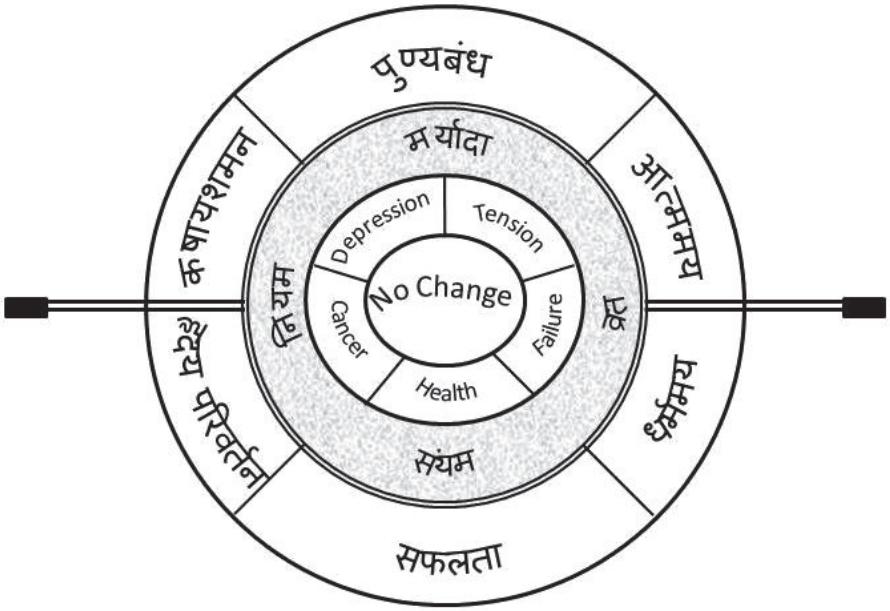

रहने वाली महिला के मुख में कैंसर हो गया। जिन्होंने कभी तम्बाखू नहीं खाई, किसी भी प्रकार का नशा नहीं किया फिर भी मुँह में कैंसर हो गया। अब इस कैंसर के क्या-क्या कारण हैं, यह डॉक्टर लोग अपने-अपने ढंग से बता सकते हैं। लेकिन आप कभी जैनाचार्यों के माध्यम से जानना चाहोगे या कभी जैन धर्म के माध्यम से जानना चाहोगे तो आचार्य आप से कहेंगे कि इस कैंसर के कारण ये हैं कि आपकी जो जीवन शैली बन गई, वह जीवन शैली इस ढंग से ढल गई कि जो चीजें आप खा रहे हैं, जो चीजें आप पी रहे हैं उन खाने पीने वाली चीजों में भी बहुत सारे केमिकल्स मिले होते हैं और केमिकल्स भी आपके लिए इस प्रकार की बीमारी का कारण बन सकते हैं और बन रहे हैं। शहरो में जहाँ पर लोग रहते हैं, वहाँ पर उनके लिए शुद्ध भोजन की जो आवश्यक चीजें होती हैं, वह भी नहीं मिलती। पानी भी शुद्ध नहीं मिलता। हम भले ही उस पानी को शुद्ध कहें कि यह अनेक प्रकार के process से छनकर आया है लेकिन वह सब प्रकार के जल तब तक अशुद्ध रहते हैं जब तक कि हमने उसको जैसा जैन प्रक्रिया में बताया है वैसा नहीं किया है। आप वह प्रयोग करते रहते हैं। आप उसको भले ही mineral water कहें चाहे कुछ भी कहें लेकिन एक अच्छा समझदार आदमी होगा तो वो जानेगा कि इसमें minerals तो है ही नहीं जो शरीर के लिए जरूरी हैं, जो हमारे भोजन के लिए जरूरी होते हैं, जो हमारे पाचन के लिए जरूरी होते हैं वो तो उसमें रहते ही नहीं और वो सब निकलने के बाद में जो बचता है हम उसे कहते यह mineral water है। वो पानी जो निरंतर आप पीते रहोगे, आपके लिए वो धीरे-धीरे रोग का कारण बनने लगेगा। वह

भोजन जो आप करोगे और उस भोजन में अनेक प्रकार के ऐसे chemical मिले रहेंगे जिनके माध्यम से वो chemical आपके शरीर में किसी न किसी माध्यम से इकट्ठा होते रहेंगे तो वह आपके लिए बीमारी का कारण बनेंगे।

Change करें :

इसलिए आचार्यों ने कहा है समय-समय पर थोड़ा सा कभी-कभी change भी किया करो। अपने जीवन में कभी-कभी ऐसा भी किया करो कि हम थोड़ा सा उपवास करें, व्रत करें। थोड़ा सा हम अपने जीवन को इन चीजों से बचा करके निकालें ताकि आपके अंदर कोई इस प्रकार के chemicals इकट्ठे हों ही नहीं और इकट्ठे हो गए, हो तो वह भीतर ही भीतर dissolve हो जाएँ। वह आपके स्वास्थ्य के लिए कारण बने रहे। आज के लोग यह नहीं कर पाते। जैनाचार्य ने कहा है कि जो व्यक्ति अपने अंदर थोड़ा सा अपने मन को संभालेगा, अपने मन में change लाएगा और इस प्रकार की जीवन शैली से चलेगा जो जैनाचार्य ने बताई है तो वह बहुत दिनों तक स्वस्थ भी रह सकता है और उसके जीवन में अनेक प्रकार के रोग अपने आप चले जाते हैं। इससे व्यक्ति अपने आप संयमित होने लग जाता है। इससे आपको कई फायदे मिलेंगे। आपका मन व तन भी अच्छा होगा क्योंकि आपके अंदर मन के change को स्वीकार करने की ताकत नहीं होगी तो आप कभी धर्म नहीं कर पाओगे। धर्म से आपको डर लगता रहेगा। आचार्यों ने कहा कि इस संसारी प्राणी को उसी से डर लगता है जिससे उसके लिए हित छिपा हुआ है और जिसमें हित नहीं है उसमें उसको डर नहीं लगता है। यह बड़ी उल्टी दशा है और उस उल्टी दशा के कारण से ही हमारे परिणामों में यह साहस नहीं आ पाता कि हम धर्म को स्वीकार करें। समय-समय पर जो हमारे सामने चीजें बदलकर के आती हैं हम उनको स्वीकार करें। change लाना जरूरी होता है। घर में जैसा चल रहा है उसमें भी थोड़ा सा change लाने का यह समय आ रहा है, दशलक्षण पर्व इसीलिए होते हैं। आपके घरों में रोजाना लोग जिस ढंग से व्यापार कर रहे हैं, जिस ढंग से सर्विस कर रहे हैं। उनके लिए आपको समझाना जरूरी होता है कि इन दस दिनों में अपन अपनी उस गति को रोकें। व्यापार में भी थोड़ी सी कमी लाएँ। धर्म के इन दस दिनों में हम थोड़ा सा समय निकाले, जिस समय पर हम अपने आपको थोड़ा सा समझ सकेंगे, अपने मन के परिणामों को समझ सकेंगे। हमारे अंदर यह change आएगा तो अपने आप हमारी बहुत सारी चीजें जो हमारे लिए दुविधा का कारण बन जाती हैं वह अपने आप सुविधा में बदल जाएंगी। हर घर में हर माता-पिता को अपने बेटों को इस change के बारे में थोड़ा सा समझाना चाहिए। रोजाना तू उठता है उसी routine में चलता है, उसी दुकान पर जाकर रोजाना बैठ जाता है। दिन भर लीन होकर उसी दुकान में अपना समय निकालता है। अब दस दिन के लिए तुझे अपने जीवन में थोड़ा सा change लाना है। यह चीजें जब तक आप अपने घर के लोगों को नहीं समझाएंगे तब तक उनके अंदर यह भाव आएगा ही नहीं कि धर्म के

हर धर्म/संप्रदाय में जीवनशैली में परिवर्तन हेतु कुछ विशेष अवसर आते हैं।

माध्यम से अपने जीवन में कोई परिवर्तन हो सकता है और वह जीवन एक जैसा चलता रहेगा। नतीजा यह निकलेगा कि जब उसको कुछ टाइम आगे बड़ी-बड़ी बिमारियाँ होंगी- मानसिक बीमारियाँ, शरीरिक बिमारियाँ, cancer, depression, tension आदि तब जाकर के वह परेशान होगा। जब कोई रोग आगे बढ़ जाता है तो फिर उसको संभालना बड़ा कठिन हो जाता है। जीवन-शैली में अगर change आता रहे तो आदमी अपनी टेंशन, डिप्रेशन को भी अपने आप सुधारने लग जाएगा और अगर इस प्रकार से आप अपने जीवन में थोड़ा सा change लाओगे तो अपने आप आपके वातावरण में भी परिवर्तन आ जाएगा। आपको यह परिवर्तन लाने का समय देखना चाहिए। यह दस लक्षण का समय है, अपने जीवन में परिवर्तन लाने का घर में भी परिवर्तन लाने का समय है, घर में एक धार्मिक माहौल पैदा करने का समय है और इस समय पर आपके मन में जो अपने आप अच्छे भाव आएंगे वो भाव कई दिनों तक याद बने रहेंगे। हर धर्म के अंदर इस प्रकार की व्यवस्थाएँ उन धार्मिक लोगो ने कर रखी हैं। आप देखोगे चाहे हिंदु धर्म हो, चाहे इस्लाम धर्म हो सबके लिए ऐसे 8-8 दिन के समय आपको मिलेंगे। कोई नौ दुर्गा करता है, किसी के रोजा चलते हैं। यह सब प्रोग्राम कहीं न कहीं अपने-अपने समय के अनुसार हर संप्रदाय में चलते हैं। लेकिन आप यह भी देखोगे कि जब अन्य संप्रदाय के लोगों के यहाँ इस प्रकार के समय आते हैं तो वह पूर्ण रूप से उसमें सहयोगी सहभागी बनते हैं और उससे अपना लाभ लेते हैं लेकिन जैन धर्म के लोग बड़े स्वतंत्र होते चले जा रहे हैं। उन्हें लगता है कि हमारे अंदर जितनी स्वतंत्रता है उतनी स्वतंत्रता किसी को नहीं है क्योंकि धर्म ने स्वतंत्र होना सिखाया। सबसे पहले धर्म में यही सिखाया जाता है कि हर आत्मा स्वतंत्र है। हर जीवन अपना-अपना स्वतंत्र है तो वह स्वतंत्रता से जीने लग जाता है लेकिन हमें उस स्वतंत्रता में भी किसी परिधि के भीतर रहते हैं, अगर हमारे अंदर कुछ boundation रहती है तो उस स्वतंत्रता का हमें आनन्द मिलेगा। हम अगर उस स्वतंत्रता का दूसरे रूप से पालन करने लगे तो हमें उस स्वतंत्रता का नाम फिर स्वच्छंदता देना पड़ जाता है। फिर वह स्वतंत्रता नहीं रहती है। मतलब अपनी मर्जी के अनुसार के लोग हैं, वे कभी न धर्म के अनुसार चलते हैं न धार्मिकों के अनुसार चलते हैं।

इसलिए आचार्यों ने कहा कि जब इस प्रकार के पर्व आते हैं, तिथियाँ आती हैं तो उस समय पर हम अपने अंदर भी change लाएँ। दूसरों के अंदर भी धीरे-धीरे इस प्रकार से भावनाएँ बढ़ाते जाएँ कि उनके मन भी धीरे-धीरे change होते चले जाएँ। इन दस दिनों में व्यापार आदि में भी कमी करके व्यक्ति के अंदर एक धर्म का attitude बढ़ जाए कि धर्म के प्रति उसका लगाव बढ़ता चला जाए तो कम से कम वह जो साल के 365 दिन में नहीं कर पाता इन दस दिनों में कर लेता है। यह change अगर हम अपने अंदर लाते रहेंगे तो बहुत बड़ी-बड़ी मानसिक बीमारियों से भी

किसी परिधि के भीतर रहने पर ही स्वतंत्रता का आनंद प्राप्त होता है।

बचे रहेंगे और शारीरिक बीमारियों से भी बचे रहेंगे। यह बहुत बड़े-बड़े फायदे हैं इसलिए पहले के लोग बहुत कम बीमार पड़ते थे। उनके लिए यह इस प्रकार की खतरनाक बीमारियाँ बहुत कम होती थीं जो आज के लोगों के लिए बहुत सहज हो गई हैं। उसका एक ही कारण है कि हमारे अंदर कोई भी चीज जो शुरू हो गई है वो कभी बदलती नहीं है और उस चीज को हम रोक नहीं पाते। मान लो किसी को दही अच्छा लगता है तो दही ही खाता रहेगा। इतना आदी हो जाएगा कि उसके लिए चाहे बरसात का मौसम हो और कोई भी मौसम हो वो दही खाएगा ही। आचार्य कहते हैं अपने मन को जब तक तुम परिवर्तित नहीं करोगे तब तक तुम न तो मन से स्वस्थ होंगे ना शरीर से स्वस्थ होंगे। हर महिने की भी कुछ न कुछ चीजें आयुर्वेद में विज्ञान के हिसाब से कही गयी हैं कि इन महिनों में इन चीजों का सेवन नहीं करना तो आप अपने स्वास्थ्य को अच्छा बनाए रखोगे। इसी तरह से आचार्यों ने जितने भी व्रतों के, शील के, गुणव्रतों के जो यह नियम बनाए हैं इन सबके माध्यम से जो व्यक्ति चलता है तो उसकी मानसिक व शारीरिक दशा बड़ी अच्छी रहती है। शील और व्रतों में अणुव्रत होते हैं, गुणव्रत होते हैं, शिक्षाव्रत होते हैं। पाँच अणुव्रत होते हैं, तीन गुणव्रत होते हैं व चार शिक्षाव्रत होते हैं। सब मिलाकर के बारह व्रत होते हैं गृहस्थों के लिए। उनमें गुणव्रत आते हैं-दिग्व्रत और देशव्रत। इसका मतलब अपनी दिशाओं की मर्यादाएँ करना। अपने रहने के लिए जो स्थान हैं उन स्थानों के लिए मर्यादाएँ बनाना। अगर हम हमेशा न बना सके तो कम से कम इन पर्वों के दिनों में बनाना। जब यह धर्म और पर्वों के दिन आते हैं- अष्टाह्निका पर्व, दसलक्षण पर्व आते हैं तो जो अच्छा जैन श्रावक होता है वह अपनी इन मर्यादाओं के माध्यम से अपने इन धर्म का पालन करता है। यह सोचकर के कि मैं इन आठ दिनों में या दस दिनों में अपने शहर या अपने गाँव के अलावा और कहीं भी बाहर नहीं जाऊँगा। बाहर के जितने भी साधन है उनसे हमारा कोई संबंध नहीं होगा और उसी सीमा के बाहर जो कुछ भी पाप होता है मेरा उन सबका त्याग है।

व्रत से पुण्य बंध :

आचार्य कहते हैं कि इस प्रकार के व्रतों के माध्यम से हमारे अंदर इतने पुण्य बंध होने लग जाते हैं कि हम भी बहुत-बहुत बड़े-बड़े महाव्रतियों की तरह अपने अंदर पुण्य का बंध करने लग जाते हैं। उस शांति से ही हम डिप्रेशन और टेंशन जैसी बीमारियों से अपने आपको बचा पाएंगे। जब आप यह सोच लोगे कि हमें अपनी इसी मर्यादा के अंदर रहना है तो आपको मर्यादा के बाहर से आने वाली कोई चीज से संपर्क नहीं रखना और किसी भी प्रकार का कारण पड़ने पर उस चीज को प्राप्त करने की इच्छा नहीं करना। यहाँ तक कि आपको मोबाईल के माध्यम से भी उन संबंधों का त्याग कर देना। किसी भी प्रकार के कोई भी समाचार दस दिन बाद सुनेंगे। दस दिनों के लिए सभी प्रकार के मोबाइलों को ऑफ करके शांति से अपनी एक जगह रहकर के मर्यादा बनाकर के रहेंगे। आचार्य कहते हैं जो व्यक्ति इस प्रकार से अपनी मर्यादाएँ बनाकर के धर्म का पालन करता

है तो मर्यादा के बाहर जितनी भी चीजें होती है, मान लो जैसे हिंसाएँ हो रही हैं- बड़े-बड़े जैसे स्लोटर हाऊस चलते हैं, बड़े-बड़े कत्लखानों में अनेक जीव मरते हैं, जितनी भी हिंसा की सामग्री बनती हैं, उन सबका उसके लिए त्याग हो जाएगा। आपको उसका पापकर्म का बंध नहीं होगा। लेकिन जब तक आप इस प्रकार की boundation में नहीं बंधेंगे, आपको पापकर्म का आस्रव निरंतर होता रहेगा, बंध होता रहेगा। इसलिए जैन श्रावक पहले अपने आपको इन मर्यादाओं में रखता था। दिशाओं की मर्यादा बना के, स्थान की मर्यादा बनाकर के अपने मन को शांत रखता था। हमें कोई प्रयोजन नहीं है। हम दस दिन के लिए, आठ दिन के लिए अपने ही नगर या गाँव में बस इतने ही भ्रमण का स्थान बनाएंगे और उसमें भी वह प्रतिदिन की मर्यादा और कर लेता है। जैसे आपने दस दिन की मर्यादा कर ली एक गाँव की लेकिन आपको पूरे गाँव में तो रोजाना घूमना नहीं है तो आप आज की स्थिति को देखकर के कि आज हमें बाजार की ओर ज्यादा नहीं जाना, आज हमारी मर्यादा अपने घर तक की है, अपने क्षेत्र तक की है, अपनी गली तक की है। ऐसा भी करके आप अपने अंदर बहुत कुछ आस्रव की कमी और पाप कर्म की निर्जरा के साधनों को अपना सकते हैं। केवल इसमें अपने मन को change करना है, मन को बताना है। मन में संकल्प लेकर के आपको वह मर्यादा को याद रखना है। यह इतना बड़ा विज्ञान है कि अगर आप इस विज्ञान के हिसाब से चले तो आपको जितने भी अनेक प्रकार के पाप होते दिखाई देते हैं, इन पापों में आपका मन नहीं जाएगा और उन पापों के आस्रव से आपका मन बच जाएगा।

इसलिए आचार्यों ने गृहस्थों के लिए अनेक प्रकार के व्रत व शीलों का वर्णन किया है। वह तभी संभव है जब आप अपने मन को थोड़ा सा change करने के लिए अनुकूल बना लें। मन को समझा दे कि जो भी change होगा वह हमारे लिए फायदेमंद होगा और वह change जब तब आप नहीं लाओगे तब तक आपको कोई फायदा नहीं होगा। आदमी अपने मन में कोई भी धारणा बना लेता है और उस धारणा में अपनी जिंदगी गुजार देता है। मान लें किसी ने किसी के साथ कोई धारणा बना ली कि हमें ऐसा करना है, हमें ऐसा नहीं करना है। उस धारणा के साथ वह मर जाएगा पर वह धारणा नहीं छोड़ेगा और उस धारणा से उसको चाहे कोई लाभ हो या ना हो लेकिन वह उस धारणा को इसलिए बनाए रखेगा क्योंकि हमारे द्वारा वह धारणा बनाई गई। दूसरों के सामने आने पर वह धारणा उसकी काम में आने लग जाती है तो वह समझता है कि इस रूप में ही थे, इस रूप में ही है और इस रूप में ही रहेंगे। यह धारणा जब तक नहीं छूटेगी तब तक आपके भीतर कुछ भी change आना कभी संभव ही नहीं है। आपको यह सोचना चाहिए कि आदमी के जीवन का कोई भरोसा नहीं रहता है। मान लो आप यहाँ रहते हो, आपकी किसी व्यक्ति या स्थान से कषाय हो सकती है। वह कषाय बाँधकर के ही आपका मरण हो गया और आप तो चले गए लेकिन गए कहाँ? यह ध्यान रखना कि आपके जीव को जो और अगला जीवन मिलेगा, उस जीवन में वह

मन को किसी भी परिवर्तन के प्रति अनुकूल बना लेने पर जन्म-जन्मांतर तक लाभ होता है।

कषाय कई गुना होकर के फल देगी। जिन कषायों की पूर्ति आप यहाँ नहीं कर पाए वो कषायें अब आपके लिए कई गुना फल देकर के आपके सामने आएंगी और आपको जिस स्थान से जिस चीज से कषायें हैं उसी रूप में आपका वहाँ जन्म होगा। आपको वहाँ पहले से कई गुना ज्यादा परेशानियाँ आकर के खड़ी हो जाएंगी क्योंकि जब आपके पास बुद्धि थी तब आपने वह कषायें नहीं छोड़ीं। आदमी मर जाना चाहता है लेकिन कषाय छोड़ना नहीं चाहता। ऐसी कषाय अपने अंदर रख लेता है कि वह सोच लेता है जब तक यह कषाय है तब तक तो मेरा अस्तित्व है। जब तक मैं इस कषाय को रखे हूँ तभी तो मैं जी रहा हूँ। लोग मुझे इस समाज के पंथ का मानते हैं यह भी एक कषाय के कारण से चलता रहता है। यह सब कषाय हमारे अंदर अहित के अलावा कुछ नहीं करती। एक समझदार व्यक्ति होता है तो वह दिमाग का खुला हुआ व्यक्ति होता है। जिसका दिमाग खुला हुआ नहीं होगा, संकीर्ण दिमाग होगा तो वह हमेशा इन कषायों में ही अपना जीवन गुजारेगा। किसी भी प्रकार की कषाय की परिणति हमारी आत्मा के लिए उसी-उसी स्थान पर हमारा जन्म कराएगी। उन्हीं-उन्हीं लोगों से बैर बढ़ाएगी और वह बैर की परिणति तब तक नहीं छूटेगी जब तक कि आपके अंदर की परिणति अपने अंदर से स्वयं ढीली नहीं होगी। यह तब होगी जब मन यह स्वीकार कर ले कि मुझे हर change स्वीकार करना है। लेकिन लगता ऐसा है कि change किया तो लोग क्या कहेंगे। change किया तो हमारा हमारे अंदर क्या अस्तित्व रहेगा। हमारे परिवार के लोग, समाज के लोग हमें स्वीकार करेंगे कि नहीं। कोई आंदोलन अगर भीतर से करना होता है तो हमें पहले खुद change करना होता है। change करने के बाद में जो सामने होता है और change करने के बाद में जो सामने आएगा उसको हम सहन करेंगे, वही वस्तुतः हमारे सुधार का सबसे बड़ा आंदोलन होता है। लेकिन हम किसी भी एक ही विचार को पकड़ लेते हैं और उन चीजों में हम अपना पूरा जीवन खो देते हैं।

इसलिए आचार्य कहते हैं अपने मन को थोड़ा change करो। अपने मन में भावनाओं की वृद्धि करो। बड़ा व्यक्ति वह होता है जो हर माहौल को स्वीकार करता चला जाता है। अपने मन में कोई भी पूर्व की ऐसी धारणा बैठा करके न रखें कि ''पंच मंजूर, पंचायत मँजूर लेकिन नाली तो यहीं से बहेगी'' यह बुन्देलखण्ड में एक कहावत है। सब प्रकार की मीटिंग व बातें हो गईं लेकिन घूम-फिरके बात तो वही है। ऐसे व्यक्तियों के जीवन में कभी उद्धार होने वाला नहीं है वो ऐसे ही कीड़े-मकोड़ों की तरह जीवन गुजारेंगे। मनुष्य पर्याय उन्हें कुछ पुण्य कर्म के कारण से मिल गई होगी। लेकिन ऐसी ही अगर परिणति रही तो आगे अपना सुधार नहीं होगा। हम ऐसी भावनाओं में जीएँ जहाँ पर हमारी आने वाली पीढ़ी भी इन संकीर्णताओं से उभर सके और अगर इन्हीं संकीर्णताओं को उन्होंने सीख लिया तो वो भी कभी आगे जाकर न कुछ अच्छा बन पाएंगे और न किसी समाज के लिए अच्छा कार्य कर पाएंगे। जिस घर में बेटे-बेटी जिस प्रकार के भावों से

पलते हैं वह उसी प्रकार के हो जाते हैं। इसलिए आप देखते होंगे कि जो शहरों के बच्चे होते हैं वो थोड़े खुले दिमाग के होते हैं जो ऐसे घरों के बच्चे होते हैं जिनके घरों में इस प्रकार की boundation होती है कि वहाँ नहीं जाना, वहाँ कुछ लेना नहीं। इस प्रकार की मानसिकताएं जब हम अपने बच्चों के अंदर दे देते हैं अगर वह मानसिकता उनके लिए घर कर जाती है तो वह भी उनके लिए हानि का कारण बनती चली जाती है। जो हीन मानसिकता वाले लोग हो जाते हैं वही धीरे-धीरे टेंशन, डिप्रेशन की स्थिति में चले जाते हैं। इसलिए आचार्य कहते हैं कि अपना जीवन देखो भीतर से, बाहर का जीवन तो कुछ सालों का है लेकिन भीतर का जीवन अनादि से चल रहा है। उस जीवन में change लाने के लिए हमें कभी थोड़े बहुत अपने भावों में change लाना पड़े तो बुद्धिपूर्वक हमें उसको स्वीकार कर लेना चाहिए। इन्हीं अच्छी भावनाओं के लिए धर्म आते हैं। हमारी सभी प्रकार की काषायिक प्रवृत्ति को मिटाने के लिए आते हैं। यह दसलक्षण पर्व साल में तीन बार आते हैं और हम इसको भादो के महीने में ही इसीलिए मनाते हैं कि सावन और भादों के महीने में सब ओर पानी का प्रवाह होता है और पानी के प्रवाह में सभी चीजें घुलमिल जाती हैं। पानी के प्रवाह में किसी प्रकार की चीज आ गई फिर उसमें किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं रहता। इसी प्रकार से यह धर्म होते हैं। धर्म में जो व्यक्ति बहेगा वह अलग-अलग रंग, अलग-अलग जाति, अलग-अलग क्रीडा, कल्चर में नहीं जाएगा। वह एक ही चीज में जुड़ता चला जाएगा और उसका एक ही रंग होगा the colour of our soul. the colour of our religion. अपने धर्म का रंग बस उसके ऊपर चढ़ा होगा और अपनी आत्मा का रंग उसके ऊपर चढ़ा होगा। बाकी के जितने भी रंग हैं वो तो ऊपर से ओढ़े हुए हैं। यह धर्म इन रंगो को धोने के लिए आता है और आप नहीं धोओगे तो आप वैसे के वैसे भद्दे बने रहोगे। धर्म के माध्यम से जो आत्मा का स्वभाव प्रकट होना चाहिए वह प्रकट नहीं हो पाएगा। हम समझते हैं भादो में इसीलिए दस लक्षण पर्व की सबसे ज्यादा उपयोगिता है। अन्य महिनों में भी आते हैं लेकिन हम उनमें अपना शोर नहीं मचाते हैं। इसलिए इस प्रकार आप अपने मन को change के लिए तैयार रखेंगे तो आप हर प्रकार की परिस्थिति से मुकाबला करने की ताकत अपने आप बना लेंगे। व्यक्ति इसीलिए डरता है कि उसका मन किसी न किसी परिस्थिति में habitual हो जाता है इसे आज की science की भाषा में कहते हैं कि मन एक comfort zone में पहुँच जाता है। और जो successful men होगा वह हमेशा इस मन को comfort zone से बाहर फेंकेगा, वो कहेगा जहाँ पर comfort नहीं महसूस हो रहा है वहाँ पर इस मन को ले जाएंगे ताकि यह मन कहीं पर भी रहकर हमें परेशान नहीं कर पाए। इसलिए हमेशा मन को संभालो मन को change करने की आदत डालो। एक जैसी चेन में ढलते चले जाओगे तो आपका चैन खो जाएगा और वह चैन भीतर तब ही बनेगा जब आप स्वीकार कर लो कि the change is invitable. परिवर्तन अपरिहार्य है।

खुले दिमाग का व्यक्ति स्वयं को कषायों से मुक्त कर पाता है।

स्वानुभवी की परिणति

39

निशामयति निश्शेषमिन्द्रजालोपमं जगत्।
स्पृहयत्यात्मलाभाय गत्वान्यत्रानुतप्यते ॥

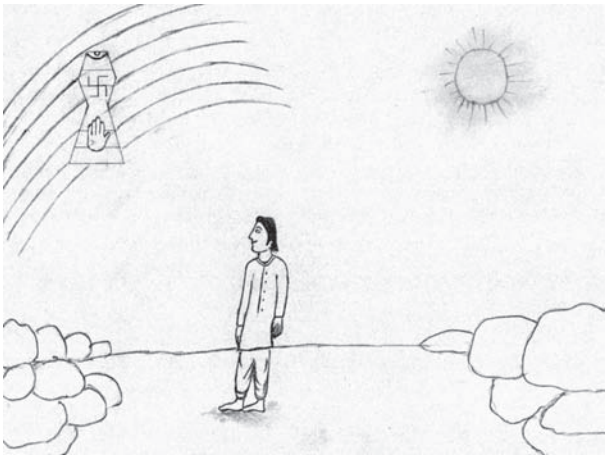

अन्वयार्थ–(निश्शेषं) जब समस्त **(जगत्)** संसार **(इन्द्रजालोपमं)** जादूगर के खेल जैसा [निःसार] **(निशामयति)** देखता है। तब **(आत्मलाभाय)** आत्मस्वरूप पाने के लिए **(स्पृहयति)** इच्छा करता है, उस समय यदि **(अन्यत्र)** आत्मा से भिन्न अन्य पदार्थों में **(गत्वा)** जाता है तो **(अनुतप्यते)** सन्तप्त/व्याकुल होते हैं।

- **आध्यात्मिक कैसे बनें**
- **संसार इंद्रजाल है**
- **आत्मा शाश्वत है**

आध्यात्मिक कैसे बनें :

इस ग्रंथ के माध्यम से भव्य जीवों को आत्मानुभव की दशा तक ले जाने का प्रयास कर रहे हैं और जैसे-जैसे भव्य जीव आत्मानुभव की दशा तक पहुँचता है उसको कैसा-कैसा प्रतिभासित होता है यह प्रतिभास भी यहाँ पर बताया जा रहा है। कोई भी जीव जब अपने चित्त की शुद्धि करता है, मन को विशुद्ध बनाता है तो उसके लिए किस प्रकार की अनुभूतियाँ होती है और उन अनुभूतियों में उसे यह जगत किस रूप में दिखाई देता है उसका यहाँ पर कुछ वर्णन किया गया है। जो जीव अध्यात्म की ओर बढ़ रहा होगा, अंतर्मुखी हो रहा होगा उस अंतर्मुखी जीव के क्या लक्षण होंगे, क्या उसकी दशा होगी, वह दशा का वर्णन यहाँ पर है। ऊपर के श्लोकों में भी आपको बताया था कि जैसे-जैसे कोई जीव अपनी आत्मा की संवित्ति में डूबता चला जाता है वैसे-वैसे उसे सुलभ विषय भी रुचिकर नहीं लगते हैं, यह एक अध्यात्म की अनुभूति की परिणति है। मन जैसे-जैसे अपने आप में स्थिर होता जायेगा, अपने आप में सुख और शान्ति प्राप्त करने लगेगा वैसे-वैसे मन को बाहरी विषयों से रुचि कम होने लग जाती है, यह रुचि का कम होना ही उसकी आध्यात्मिक होने की एक मनःस्थिति को बताता है। कई लोग पूछते हैं कि आध्यात्मिक कैसे बनें? आध्यात्मिक बनने के बाद क्या महसूस होता है? उन सब प्रश्नों का उत्तर यहाँ पर आचार्य दे रहे हैं कि आध्यात्मिक बनने के लिए आपको जो प्रक्रिया पहले बताई गई है उस प्रक्रिया में पहले तो आपके विचारों की शुद्धि होनी चाहिए और विचारों की शुद्धि के साथ-साथ आपकी चित्त शुद्धि भी होनी चाहिए। चित्त शुद्धि होगी तो आपका चित्त जिन अपने संस्कारों को अर्जित किये हुए हैं उन संस्कारों से हटकर के दूसरी ओर उन्मुख होगा। हमारी आत्मा में चित्त-शुद्धि नहीं होने के कारण वह संस्कार जो पूर्वजन्म के पड़े हुए रहते हैं, वहीं संस्कार बहुत जल्दी उद्‌भुत हो जाते हैं, प्रकट हो जाते हैं। उन संस्कारों को कैसे परिवर्तित करें तो आचार्य कहते हैं कि निरन्तर अपने मन को अच्छी भावनाओं से भावित करो, अच्छी भावना से उस मन को संस्कारित करो। मन जैसे-जैसे संस्कारित होता जाएगा अपने आप में स्थिर होता जाएगा और जैसे-जैसे मन स्थिर होगा तो आपकी चित्त शुद्धि के साथ-साथ आत्मा की शुद्धि भी होती चली जाएगी। दो विचारधाराएँ अध्यात्म में चलती हैं इस दुनिया में, एक तो महावीर भगवान की विचारधारा कहलाती है जिसे जैन धर्म कहते हैं और एक बुद्धों की विचारधारा कहलाती है जिसे बौद्ध धर्म कहते हैं। यह दो मुख्य हैं, बाकी जो हिन्दू धर्म में विचारधाराएँ हैं अध्यात्म की वो थोड़ी सी उस एक ब्रह्म के ही रूप में समाहित रहती हैं और उसी ब्रह्म के लिए जो कुछ भी हमें क्रियाकांड करना पड़ता है उस क्रियाकांड तक ही वो स्थिति रह जाती है। जो मुख्य रूप से दो चीजें हैं वो एक बुद्धों की होती है और एक जैनों की चली आ रही है और उन दोनों विचारधाराओं में बहुत बड़ा अन्तर यह है कि बुद्ध लोग आत्मा को नहीं मानते।

विचार शुद्धि व चित्त शुद्धि हमारे आध्यात्मिक होने की पहचान है।

बौद्ध मन को मानेंगे, शरीर को मानेंगे और मन की स्थिरता को स्वीकार करेंगे, मन की शुद्धि को अपनाने का प्रयास करेंगे और अपने आप को, मन को नियंत्रित करके ही हमने मुक्ति का रास्ता खोल लिया है ऐसा स्वीकार कर लेते हैं। जैन लोग मन को बीच में एक द्रव्य मानते हैं और मन को शुद्ध करेंगे, मन को संस्कारित करेंगे, मन को भी नियंत्रित करेंगे लेकिन उनके लिए मन को और अधिक स्थिर करने के लिए मन से भी परे कोई चीज होती है तो वह आत्मा होती है। बौद्ध के यहाँ पर ध्यान होते हैं उनका बहुत प्रचार जगह-जगह पर चलता है। वो भी मन को नियंत्रित करने के लिए अनेक प्रकार के ध्यान करते हैं।

एक विपश्यना-ध्यान होता है जो उनके यहाँ प्रमुख रूप से चला करता है। उस ध्यान की जो थीम है वो इस बात पर आधारित है कि मन अस्थिर है और मन के साथ जितनी भी संवेदनाएँ होती हैं वह सब अस्थिर होती हैं तो उन अस्थिर संवेदनाओं को हम अपने शरीर पर टिकाएँ। शरीर को भी हम अस्थिर मानें और शरीर की संवेदनाओं से मन की संवेदनाओं को समझें क्योंकि उनके अंदर मन के पीछे आत्म तत्त्व नहीं है वो मन को नियंत्रित करके शरीर पर ले आयेंगे और शरीर में होने वाली संवेदनाओं का अनुभव कराएंगे। शरीर में होने वाली सभी प्रकार की रागात्मक परिणितियाँ हों, चाहे द्वेषात्मक परिणितियाँ हों उनमें समता का भाव रखकर के आपको उनका केवल दर्शन करना है और आपको अपने शरीर की संवेदनाओं को समझते जाना है। इस तरह की थीम यह बौद्ध धर्म में चलती है जिसमें वो विपश्यना ध्यान के माध्यम से आपको शरीर के ऊपर टिकाते हैं। जैन दर्शन में आचार्य आपको आत्मा की ओर ले जाते हैं क्योंकि शरीर तो अस्थिर है मन को आपने अस्थिर वस्तु पर टिका दिया तो आपका मन अस्थिर संवेदन में लगा रहेगा और कहीं पर स्थिरता को प्राप्त नहीं करेगा क्योंकि स्थिर वस्तु का तो आपने आलम्बन लिया ही नहीं। स्थिर वस्तु का उन्हें ज्ञान नहीं और इधर जैनियों को भी ज्ञान नहीं है कि क्या आत्मा है, कहाँ शरीर है, कहाँ मन है? जैनियो के लिए भी अध्यात्म इतनी दूर की चीज हो गई है कि उन्हें जैन दर्शन से कोई लेना देना ही नहीं है, पूजा कर लिया, पाठ पढ़ लिया, बस इसी में अपना धर्म हो गया। यह जैन दर्शन जो हमारे चित्त को शुद्ध करने वाला है, मन को आत्मा में लगाने वाला है और अपने संस्कारों को बदलने वाला है। उस संस्कार के बदलने के कार्य की प्रक्रिया तो शुरू होती नहीं क्योंकि संस्कार को बदलने का कार्य बिना अध्यात्म के कभी हो नहीं सकता है। बाहर की चीजें दुनियाँ में खूब होती आयी हैं, सब जगह मिल जायेंगी लेकिन अध्यात्म के बिना आप कभी भी अपने चित्त के संस्कार बदल नहीं सकते, अपने मन को स्थिर करके अपनी आत्मा में लगा नहीं सकते।

संसार इंद्रजाल है :

जैनाचार्य हमेशा कहते हैं कि मन को स्थिर करके अपनी आत्मा में लगाना, शरीर में नहीं लगाना। बौद्ध लोग मन को शरीर में लगाते हैं और जैनाचार्य कहते हैं कि मन को स्थिर करके

स्थिरता को प्राप्त करने के लिये मन को स्थिर वस्तु यानि आत्मा पर केन्द्रित करना चाहिये।

अपनी आत्मा में लगाना। मन जब स्थिर हो करके आत्मा में लगेगा तो आत्मा के गुणों की ओर वह उन्मुख होगा, आत्मा के अन्दर का ज्ञान और मन जब दोनों एकमेक हो जाएंगे। तो उससे जो मन प्रभावित होगा, उससे जो मन के अन्दर की पवित्रता आयेगी, उससे जो सुख उत्पन्न होगा उस सुख को वह बाहर आकर के जब देखेगा तो वह आभास करेगा कि–

''निशामयति निश्शेषमिद्रजालोपमं जगत्।''

यह सारा का सारा जगत, यह सारा का सारा दिखाई देने वाला संसार, इस जीव के लिए इन्द्रजाल के समान दिखाई देने लग जाता है। कभी आपने नाम सुना कि इन्द्र जाल क्या होता है? शायद आप लोगों ने जो मिथ्या बाते हैं उनको तो सुना ही नहीं और जो मिथ्या हो सकता है उसकी तरफ आपकी दृष्टि नहीं। इसलिए आपको सब जगत बिल्कुल यथावत् सुन्दर, सत्य समझ में आता है क्योंकि आपको इन्द्रजाल पता ही नहीं है क्या होता है। इन्द्रजाल का मतलब है– जैसे कभी आपने इन्द्र धनुष देखा हो, बारिश हो रही हो हल्की–हल्की सी थोड़ा सा पीछे से सूर्य का प्रकाश भी आ रहा हो और बादल भी हो। उस सूर्य के प्रकाश की किरण की बादलों से होती हुई बारिश में स्केट्रिंग हो जाती है तो वह सात रंगों में विभक्त हुई दिखाई देती है। एक बहुत लम्बी बीम की तरह आपको एक आकृति दिखाई देगी जो सप्त रंगी आकृति होती है उस सप्त रंगी आकृति को देख कर के आप यह महसूस करेंगे कि देखो कितना सुन्दर दृश्य लग रहा है और वास्तव में सुन्दर लगता है। पानी के उन कणों के कारण से, उन बादलों के रुकावट के कारण से जब सूर्य का प्रकाश बादलों से होकर के जाता है तो वह सात रंगों में प्रकाश विभक्त हो जाता है और वह हमें बहुत सुन्दर लगता है। दूर तक आपको देखने की भी इच्छा होगी, आपके मन को भी उसको पकड़ने की इच्छा होगी, आप उसमें हाथ भी लगाने की इच्छा करेंगे कि यह कितना सुन्दर दृश्य है इसको हम छू लें, पकड़ लें, हम हाथ में ले लें। जब आप उसको हाथ में लेंगे तो आपके हाथ में कुछ नहीं आयेगा, आपके हाथ केवल गीले हो जायेंगे, इससे ज्यादा कुछ नहीं होगा। आपके हाथों में थोड़ा सा पानी आयेगा और कुछ नहीं आयेगा। वह हाथ से स्पर्श करने की चीज है ही नहीं, वह तो केवल आँख से देखने की चीज थी। आँख से देखते हुए भी आप उसे उस रूप में देखें कि देखो यह दिखाई दे रहा है और कुछ सेकण्ड लगेंगे कि आपको सब आकृति एकदम से धूमिल होती हुई नजर आयेगी। अगर कहीं थोड़ा सा प्रकाश सूर्य का पड़ गया तो वह एकदम से सारा का सारा इन्द्रधनुष बिल्कुल समाप्त होता हुआ देखने में आ जायेगा, यह कहलाता है– जगत इन्द्रजाल के समान है। इधर वह तैयार हो रहा है और इधर मिटता भी जा रहा है। थोड़ी देर के लिए आपको स्थिर भी दिखाई देगा, आपको लगेगा कि यहाँ से लेकर वहाँ दूर तक इन्द्रधनुष बना हुआ है। आप उसके नीचे–नीचे दौड़ते जायेंगे, आपको नहीं मिलेगा। जहाँ आप चलते चले जा रहे हो वहाँ पीछे–पीछे वो समाप्त होता जा रहा है और जहाँ आप आगे पहुँचे तो एकदम से आपको वह पूरे का पूरा समाप्त हुआ सा दिखाई देगा, बिल्कुल उड़

स्थिर मन को सारा संसार इंद्रजाल के समान दिखाई देने लग जाता है।

जायेगा, आपको कुछ भी महसूस नहीं होगा इसका नाम है इन्द्र धनुष सप्तरंगी तरंगें। इन तरंगों में मन तरंगित हो जाता है, इसी तरंगित हुए मन को स्थिर करके जो व्यक्ति अपने आत्म संवेदन में लगकर के अपने आत्मलाभ की इच्छा करता है तो वह इन्द्रधनुष से ठगा नहीं जाता। आप उसके पीछे जहाँ तक जा सकते थे वहाँ तक गए और वहाँ पहुँचने के बाद भी आपको फिर कुछ दिखा नहीं, लौट के वापस आये फिर कुछ मिला नहीं, जो आपकी दौड़ ने आपको ठग लिया, सही ठगी तो इसी को कहते हैं। सही ठगी तो यह है जो इससे ठगा जा रहा है बाकी तो आप दूसरों को अपनी दुकानों पर ठग रहे हो, अपने व्यापारों में ठग रहे हो वो कोई ठगाई नहीं है, वो तो सब एक दूसरे को ठग रहे हैं। लेकिन अध्यात्म की दृष्टि से वो ठगे जा रहे हैं जिन्हें अपनी आँख खोलने के बाद में लगे कि बड़ा सुन्दर संसार है और इस संसार में सब कुछ प्राप्त करने योग्य है। इस संसार में दौड़ो, इसमें बहुत कुछ मिलेगा और इस दौड़ में यह मन दौड़ जाता है, वो जहाँ तक दौड़ा वहाँ तक तो दौड़ गया और जब उसने पीछे उठकर के देखा कि हमने क्या पा लिया तो उसे पीछे कुछ नहीं मिलेगा। इन्द्रधनुष के समान सब साफ नजर आयेगा। रास्ता पीछे कुछ नहीं है, हाथ कुछ लगा ही नहीं, मन में कुछ समाहित हुआ ही नहीं। यह इन्द्र धनुष की उपमा के समान जगत की स्थिति है। यह उनको प्रतिभासित होती है जिन्हें अपने आत्म–तत्त्व की संवित्ति होने लग जाती है, संवित्ति माने संवेदना। अपने को किसी दूसरे से पूछने की जरूरत नहीं कि हमें आत्मतत्त्व की उत्पत्ति हो रही है या नहीं हो रही है या कैसी होगी। आत्म तत्त्व की उत्पत्ति होगी तो हमें कैसा लगेगा यह आचार्य यहाँ सब बता रहे हैं।

आपका अगर आत्मा में मन लगेगा तो इसका मतलब है आप जो एक स्थिर तत्त्व है, शाश्वत तत्त्व है उसको आपने पकड़ लिया और जितना भी कुछ अस्थिर है वो सब आपके सामने तो होगा लेकिन आप उसमे अपना मन नहीं लगायेंगे क्योंकि सब कुछ अस्थिर है सब जा रहा है, कुछ भी टिक नहीं रहा यहाँ पर। कल जो था वो आज नहीं है, जो परसो था वो कल नहीं था, जो उससे पहले था वो फिर उसके बाद नहीं है। हर चीज यहाँ बहुत पीछे चलती चली जा रही है। हम हर रोज को पीछे ढकेलते चले जा रहे हैं और यह कौन ढकेल रहा है? कौन ढकेलता चला जा रहा है? किसी को पता ही नहीं है। दशलक्षण पर्व हैं कि होंगे, हो गये, that will pass चेंज माने क्या है? जो गुजर गया। अब जो गुजर गया वो नहीं है और वैसा आगे आयेगा भी नहीं। न वो समय आयेगा, न वो लोग होंगे, ना वो भाव होंगे, फिर भी जो होगा वो एक कार्यक्रम के तहत होगा। फिर उसमें नया होगा, नया मौसम होगा, नये लोग होंगे, नया भाव होगा, सब होंगे लेकिन जो हो गया वो तो नहीं होगा। अगर आप लोग भी वहीं रहें और मान लो भाग्य से हम भी वहीं आ जायें, हॉल भी यही बना रहे तो भी वैसा नहीं होगा जैसा हो गया क्योंकि जो जिस समय पर हो गया दुबारा होने वाला है ही नहीं। यह जो समय के साथ में ढलता चला जा रहा है, गुजरता चला जा रहा है उसमें हम भी

इंद्रधनुष की सप्तरंगी तरंगें व्यक्ति को पूर्णतः मोह लेती है परन्तु हासिल नहीं होती।

पीछे हो रहे हैं, हमारे भाव भी पीछे होते जा रहे हैं और हम जिस रूप में आगे बढ़ रहे हैं, वो रूप जो आगे बढ़ता चला जा रहा है वो हमारा एक नया-नया रूप हमको लगता है। लेकिन अगर हम पीछे देखें तो हमारे हाथ में कुछ नहीं आयेगा क्योंकि वो इन्द्रधनुष के समान है, सब कुछ उड़ चुका है। आप चाहे उसे कितने ही memory में रख लें, चाहे आप कितनी ही GB की pendrive में उसको रख लें लेकिन वो मौसम, वो माहौल तो आपको महसूस होने वाला नहीं है जो उस समय के साथ में था, गुजर गया। यही स्थिति जब हमारे ज्ञान में आ जाती है तो आचार्य कहते हैं अस्थिर वस्तु में अपना मन मत लगाओ। जो अस्थिर है, constant नहीं है जिसमें स्थायित्व नहीं है, जिसके अन्दर हमेशा के लिए शाश्वतता नहीं है, उस चीज में मन को मत लगाओ। उसमे लगाओ जो स्थिर है, जो हमेशा शाश्वत है, जो हमेशा रहने वाला है उसमे अगर मन लगेगा तो कभी भी पश्चाताप नहीं होगा। पश्चाताप कब होता है जब कोई चीज हमारे हाथ से छूट गई हो और जो अस्थिर चीज होगी उसको पकड़ोगे तो वो हाथ में आयेगी भी नहीं, छूट भी जायेगी, समय चला जाएगा और बाद में आपको पश्चाताप के अलावा कुछ मिलेगा भी नहीं। अगर आप स्थिर चीज को पकड़ोगे, पकड़ नहीं भी पाओगे तो भी आपको पश्चाताप नहीं होगा क्योंकि आपको वो दिख रहा है, कुछ मंजिल है वहाँ हमें पहुँचना है वहाँ हमें प्राप्ति करना है। उस स्थिरता को प्राप्त करने की जब तक आपके अंदर ललक लगी रहेगी तब तक आपके अंदर पश्चाताप नहीं होगा और जब आप प्राप्त कर लोगे तो आपको आनन्द होगा क्योंकि वो चीज स्थिर है। बौद्धों के यहाँ का ध्यान एवं अध्यात्म सब अस्थिरता को लेकर के है। वहाँ सिद्धान्त है क्षणभंगुर, हर चीज नाशवान, उन्हें कोई चीज स्थिर दिखाई देती ही नहीं। आत्मा को उन्होंने कभी समझा नहीं और आत्मा की स्थिरता का आभास बुद्ध को कभी हुआ नहीं। इसलिए देश-विदेश में बौद्ध धर्म के लोग अस्थिरता के सिद्धान्त पर चलते हैं, क्षणभंगुरता के सिद्धान्त पर चलते हैं। वह अपने मन को टिकाने के बाद में, मन को रोकने के बाद में, मन को शरीर में, लगायेंगे क्योंकि शरीर की संवेदना नाशवान है उनका नाशवान ही सिद्धान्त है। जो कुछ है जगत में क्षणभंगुर है उसी में अपना मन टिकाओ। लोग वहाँ जाकर के ध्यान करते हैं और अपना मन भी टिकाते हैं लेकिन उनका मन टिकता है शरीर पर और जब हम आपको ध्यान कराएंगे, तो आपके मन को आत्मा में टिकाएंगे। यह बहुत बड़ा मौलिक अन्तर है। आपको अपनी आत्मा की तरफ लाकर के मन को ले जाना और जो हमारे अन्दर देखने वाला है वो मन नहीं है, वो आत्मा है। जो हमेशा देखता रहेगा, हमेशा जानता रहेगा, वो आत्मा तो स्थिर रहेगा लेकिन मन अस्थिर हो सकता है, शरीर भी अस्थिर हो सकता है। लेकिन उस आत्मा के लिए हमने अपने मन को लगाया तो हमारे मन का संस्कार बदलता चला जाएगा और मन की शुद्धि होते होते मन अपने आप आत्मा में डूब जाएगा। मन को आत्मा में डुबोना, शरीर में नहीं डुबोना, शरीर में तो वो पहले से ही डूबा हुआ है। शरीर में डूबा हुआ मन कभी भी शुद्ध नहीं हो सकता है क्योंकि वो

स्थिर या शाश्वत तत्त्व को समझना यानि आत्मा को समझ लेना।

अशुद्ध में डूबकर के कभी शुद्ध नहीं होगा। मन को जब आत्मा में डुबाएंगे तो मन को, आत्मा को कैसा अनुभव कराएंगे? जिस समय पर ध्यान किया जाता है उस समय पर कहा जाता है कि अपने मन को शुद्ध भावों से भावित करो। आत्मा भले ही अशुद्ध हो लेकिन ध्यान के समय पर तो आत्मा को मानना कि आत्मा शुद्ध है। इसलिए शुद्ध-नय के माध्यम से शुद्ध आत्मा की भावना करते हुए शुद्ध आत्मा का ध्यान किया जाता है।

इसलिए आचार्य पूज्यपाद महाराज ने भी पिछले श्लोकों में कहा था 'एकोऽहं निर्ममः शुद्धो' मैं एक हूँ मतलब स्थिरता की ओर ले जा रहे हैं। जो एक है वो स्थिर होगा, जो एक है वो शाश्वत होगा। जो शरीर है वो एक नहीं है क्योंकि शरीर तो हम कई बदलते रहते हैं, शरीर तो हमारे कई बार परिवर्तित होते रहते हैं इसलिए शरीर स्थिर नहीं है। मन को शरीर में लगाओगे तो एक की अनुभूति नहीं होगी, अनेक की अनुभूति होगी क्योंकि हर समय पर शरीर आपको परिवर्तित होता दिखाई देगा। इसलिए शरीर की ओर नहीं, अपनी संवेदना को आत्मा की ओर ले जाओ। आत्मा के लिए कहा गया कि वो एक है और वही आत्मा निर्मम है, ममता से रहित है। वह आत्मा जो आपके ध्यान का विषय बना, वो शुद्ध होना चाहिए। आत्मा कर्मों से अशुद्ध है क्योंकि आँख खोलकर के हम जिन्हें देखेंगे वो सब हमें जीव दिखाई देंगे, यह मनुष्य है, यह तिर्यञ्च है इत्यादि। यह सब हमें शरीर से सम्बन्धित दिखाई देंगे और जो शरीर के साथ है वो सब अशुद्ध जीव हैं। शुद्ध जीव आपको दिखाई देगा जब आप आँख बंद करो तो अपनी आत्मा को शुद्ध मानना, शुद्ध भावों से शुद्ध आत्मा की भावना करना। मेरा आत्मा कैसा है? शुद्ध है। कब? जब आप अपनी आत्मा का ध्यान करो तब। आत्मा का ध्यान छूट जाये तो अब आत्मा अशुद्ध हो गया। जब हम उस आत्मा को किसी और आत्मा के साथ देखेंगे तो अशुद्ध का अशुद्ध से सम्पर्क होगा। शुद्ध का शुद्ध से सम्पर्क तो केवल ध्यान में ही होगा।

'योगीन्द्र गोचरः'- केवल योगियों का, योग के माध्यम से ही शुद्ध आत्मा का शुद्ध आत्मा से स्पर्श होता है इसलिए जब आपको अपने मन को शुद्ध बनाना पड़ता है तो उस आत्मा की ओर ले जाना जो आत्मा शुद्ध है और उस समय पर ध्यान में आत्मा की शुद्धता की ही भावना करना, शुद्ध नय से शुद्ध है और अशुद्ध नय से आत्मा अशुद्ध है। जब आप आत्मा की अशुद्धता की भावना करेंगे तो उस समय पर आत्मा न तो कर्त्ता होगा न भोक्ता होगा क्योंकि कर्त्ता और भोक्ता तो सब अशुद्ध नय से ही होता है। शुद्ध भावों से वह केवल अपने शुद्ध भावों का ही करने वाला, शुद्ध भावों को ही भोगने वाला होगा। उस समय पर वह शुद्ध नय से कर्त्ता भोक्ता कहा भी जाए लेकिन वास्तव में वह कर्त्ता भोक्ता नहीं होगा क्योंकि कोई अन्य द्रव्य, अन्य द्रव्य को करे तो कर्त्ता भोक्तापन का प्रसंग आता है लेकिन जब आत्मा, आत्मा के लिए ही सब कुछ करेगा और आत्मा, आत्मा का ही अनुभव करेगा तो उसमे कर्त्ता, भोक्तापन भी वस्तुतः कहा नहीं जाता है फिर भी यदि कहीं पर कहा

गया हो तो वह उन शब्दावली की अपेक्षा से समझ लेना कि वह कहा गया है। वास्तव में तो उसमें कर्त्ता भोक्तापन है ही नहीं। शुद्ध अवस्था में आत्मा न कुछ कर्त्ता है, न कुछ भोक्ता है वह तो अपने ही भावों को कर्त्ता और अपने ही भावों का भोक्ता होता है। पर द्रव्य में कुछ न करने वाला, न कुछ भोगने वाला, इस प्रकार की जो ध्यान में अनुभूति करनी चाहिए वो अनुभूति जब तक आपकी नहीं होगी तब तक आपके संसार की जो जड़ें हैं, आपकी आत्मा में फल रही हैं वो कटेंगी नहीं। जड़ें कहाँ से कटेंगी? जब जडों की जगह पहुँचेंगे तभी कटेंगी। वहाँ तक अगर आप की पहुँच नहीं होगी तो आप बाहर-बाहर कुछ भी करोगे उससे संसार की कोई जड़ें नहीं कटेंगी।

वृक्ष है तो उस वृक्ष की ऊपर की शाखाएँ आप काट भी दोगे, फिर उत्पन्न हो जायेंगी, उनसे कुछ नहीं होगा। आपको दिखने में आयेगा कि यह ऊपर से वृक्ष की शाखा चढ़ रही है इसमें फल लग रहे हैं। चलो, इस शाखा को तोड़ दो। तोड़ भी दोगे तो उसमें फिर वही शाखा आ जायेगी, फिर वही उसमें फल लग जायेंगे, फिर वही सड़ जायेंगे। जो गलन सड़न का कारण है वो जड़ में होता है। वो जड़, आचार्य कहते हैं अपने भीतर के राग और द्वेष के परिणाम में है और भीतर का राग और द्वेष का परिणाम अपनी आत्मा की शुद्धता की भावना से टूटेगा। ''एकोहं निर्ममः शुद्धो''- आप से कहा था रट लो, याद कर लो। आत्मा की भावना करने के लिए इससे बढ़िया सूत्र कहीं नहीं मिलेगा और उस शुद्ध आत्मा की भावना करते-करते जब आप थोड़ी देर भी स्थिर हो जाओगे फिर आँख खोलोगे तो आप को लगेगा कि इस जगत में कुछ भी स्थिर नहीं है। कल तो यहाँ हॉल में कैसा दिख रहा था। हल्ला ही हल्ला, लोग ही लोग, तालियाँ ही तालियाँ, माहौल ही माहौल और आज एकदम शान्ति, सन्नाटा। आपने आँख खोली, आपको यह जगत कैसा दिखाई दिया, जो आपकी पूर्व स्मृति में पड़ गया था उसकी अपेक्षा से आप आगे देख रहे हो। यह भी अपने देखने की एक गलती होती है और हमारा मन हमेशा पूर्व धारणा के साथ ही देखता है, जो जैसा है उसको वैसा देख ही नहीं पाता। अगर मन आपका एक दम से ऐसा देखने लग जाए जो अभी मैं देख रहा हूँ वो ही दृश्य है। जो हमने कल देखा था उसकी तुलना मन अपने आप अंदर करता रहेगा। मन के अंदर दो तरह की picture चलती रहती है, पहले क्या और अभी क्या और उन दोनों का combination चलता रहता है। इसी को आचार्यों ने कहा- मति, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान। मति माने जो हमारी बुद्धि है, जो हमारी बुद्धि में आ रहा है वो तो है मति। स्मृति माने पीछे जो हो चुका है उसकी स्मृति और उस स्मृति को वर्तमान की मति में जोड़कर के यह तीसरा ज्ञान उत्पन्न हो जाता है जिसे कहते हैं प्रत्यभिज्ञान और यह सब चलते हैं मन में। ये सब मतिज्ञान की परिणतियाँ हैं, यह सब आपको पता नहीं पड़ेगा। आपने अपनी इन्द्रियाँ खोलीं और उस इन्द्रिय में यह ज्ञान इतने मिक्स-अप होकर के सामने आते हैं कि सप्तरंगी तरंगों से ज्यादा तरंगित हो जाते हैं। उसमें तो सात ही तरंगें हैं लेकिन अपने ज्ञान में कितनी तरंगें हैं आपको पता नहीं। मतिज्ञान के 336 प्रकार के भेद

शुद्ध अवस्था में आत्मा न कुछ कर्त्ता है न कुछ भोक्ता है।

आचार्यों ने बताये हैं। अपना मतिज्ञान ये है कि आपने आँख खोली, दृश्य दिखा, जैसे ही दृश्य दिखा आपके अंदर 336 प्रकारों में से कितने ही प्रकारों के मतिज्ञान आपके अंदर एक साथ काम करने लग जायेंगे। आपको पता नहीं पड़ेगा इसलिए जैसे ही आप आँख खोलेंगे आपके सामने वही सब चीजें आ जाएंगीं जो पहले थीं, जो सामने है उस पर आपकी दृष्टि टिकेगी ही नहीं। कभी आप आँख खोलो और केवल इतना ही सोचो जो सामने है, इतना ही देखो जो सामने है उसकी पहले की स्मृति से तुलना मत करो। अगर तुम इतना भी करना सीख गए तो तुम्हारे दिमाग में कभी भी tension नहीं आयेगी, तुम्हारे दिमाग में कभी भी depression नहीं आयेगा। depression क्या होता है जब हम पहली वाली चीज को भुला नहीं पाते हैं तब आता है।

कल एक लड़का कोटा का जो यहाँ पर पिछले दस दिनों से था। थोड़ा सा किन्हीं कारणों को लेकर के अपने आप से परेशान होता गया। दस दिन के बाद कल उसको जब फुरसत मिली तो वो हमारे पास बैठा। वो जाने वाला था और जाते-जाते भी बैठ गया और मैंने उसको भीतर से टटोला तो वो इस स्थिति में है कि वो कहता है-महाराज! मेरे अन्दर अब निर्णय लेने की क्षमता नहीं रही। मैं क्या करूँ? मेरे साथ सब गलत-गलत होता चला जा रहा है। मेरी जॉब लगी थी मैंने वहाँ जॉब छोड़ी फिर अब कोटा में आकर के बैंक में जॉब करने लगा और उसके साथ ही मेरी शादी हो गई थी। शादी हुई तो वह भी मुझे छोड़कर चली गई और मेरे माता-पिता हैं, वो मेरे साथ में है। वो पता नहीं मेरे बारे में क्या सोचते हैं, मैं क्या करूँ, मेरा सब बिगड़ गया। उससे कहा कि तेरा कुछ नहीं बिगड़ा। उसको आधा घंटा समझाया, 15 मिनट उसको ध्यान लगवाया और फिर आधे घंटे उसको एक विशेष योग निद्रा में डालकर ध्यान लगवाया। उसने यहाँ दस दिनों में एक भी दिन ना ध्यान किया, न पूजन किया, न कोई अध्ययन किया, कुछ नहीं किया। बस जो कुछ किया कल अंतिम दिन किया, जब सब करके चले गए तब मैंने केवल उसको कराया और पौन घंटा वो ध्यान में बिल्कुल स्थिर रहा। उसको जैसा बताया वो वैसा करता रहा और करने के बाद जब उसको उठाया तो वह उठकर के बैठा। उससे पूछा कैसा लग रहा है। पहली बार जब उसने कहा- हाँ, अच्छा लग रहा है। उससे कहा- बोल, अब I am happy, I am happy, I am so much happy. जब उससे ध्यान करना शुरू करवाया था तब वह तीन शब्द भी नहीं बोल रहा था। इतना भी बोलने की उसमें हिम्मत नहीं आ रही थी कि वह शब्दों को repeat कर ले। कैसे कर ले वो, इतने दुख में पड़ा है। यह भी वह अपने मन में नहीं कह पा रहा है कि I am happy, I am happy, I am so much happy. और पौन घंटे बाद जब उसको बुलाया तो कहने लगा I am happy, I am happy, I am so much happy. फिर उससे कहा- अब बता तुझे क्या करना है। घर पर जाना है या यहीं पर और treatment लेना है। तैयार हो गया वो यहीं पर रुकने के लिए लेकिन फिर वह अपने दोस्त के साथ भोजन करने के लिए गया, फिर उसके लिए अपना घर का माहौल दिमाग

में आया, ध्यान में आया और फिर उसके दिमाग में वही फितूरी शुरू होने लग गई। अब कोई लम्बी बीमारी है तो वह एकदम से आधा, पौन घंटे में बहुत देर तक ठीक नहीं हो सकती। लेकिन अगर उसके लिए थोड़ा सा भी कहीं संस्कार पड़ा, थोड़ा सा भी relief मिला तो इसका मतलब है कि वो लम्बे समय से इस प्रकार की प्रक्रिया से गुजरे तो ठीक हो सकता है, वह हो जाता है। मतलब यह है कि स्मृति इतनी खतरनाक चीज है, वह स्मृति किस रूप में है? मैंने जो कुछ भी किया गलत किया, मैं गलत करता चला गया, मेरे साथ गलत होता चला गया, मैं गलत लाइन पर चलता चला गया। आज मेरे अन्दर न कोई धर्म का संस्कार रहा, न मेरे अन्दर कोई धर्म की बात रही। आज मैं बिल्कुल परेशान हूँ। वो इस बात से भी परेशान है कि मैंने जो कोई भी धर्म के संस्कार थे, वो सब छोड़ दिये। किन्हीं महाराजों से कोई नियम लिये थे वो भी छोड़ दिया और मेरे उन्हीं संस्कारों के अभाव के कारण से आज मेरे साथ सब कुछ गलत हो गया। अब उसके अन्दर कुछ भी करने की इच्छा ही नहीं रही। क्या करे, कोई बहुत बड़ी बात नहीं बिगड़ गई। अभी तीस, बत्तीस वर्ष की उम्र है उसकी, एक साल भी नहीं हुआ उसकी एक साल पहले शादी हुई, उसकी पत्नी उसको छोड़कर के चली गई। यह तो आजकल की बहुत बड़ी बीमारी हो गई है। यह तो समझ लो एक फैशन बनने जा रही है। धीरे-धीरे लड़कियों के लिए भी यह फैशन बनता जा रहा है। एक महीने रही, दो महीने रही बाद में छोड़कर के आ गई। क्या घर में बैठकर के करेगी, कुछ पता नहीं। दोनों में से एक कोई कमजोर दिमाग का या दिल का होगा तो नियम से परेशान होगा। depression में जायेगा, जीवन तो वैसे एक का जरूर खराब होगा। कोई-कोई उस चीज को सहन कर लेता है और कोई-कोई सहन नहीं कर पाता है। किसी को रहता है कि बस हमारे सामने जो है यही सब कुछ है और किसी को लगता है नहीं, यह सब कुछ क्या है। इसके अलावा भी बहुत कुछ होता है व सब छोड़ देता है, सबकी thinking अपनी-अपनी। जिस समय पर अपनी परिणति बन जाती है उस समय पर उसे सम्भालना इसलिए कठिन हो जाता है कि यह स्मृति है। यह स्मृति ज्ञान बाद में मति ज्ञान के ऊपर हावी होता है और फिर प्रत्यभिज्ञान जुड़ता है और इस प्रत्यभिज्ञान से परेशान होता चला जाता है। इसको आचार्यों ने संज्ञा नाम का ज्ञान कहा है। आपने अगर पहले अध्याय को सूत्र पढ़ा हो 'मति स्मृतिः संज्ञा' तो उसमें संज्ञा का मतलब यह प्रत्यभिज्ञान होता है। माने जोड़ रूप ज्ञान इसी जोड़ रूप ज्ञान के कारण से सब परेशानियाँ सामने रहती हैं। आप अपने अंदर डिफरेंशियेशन करो अपनी बुद्धि का कि आपकी बुद्धि कभी भी मति के रूप में आपके सामने नहीं आती, हमेशा स्मृति के साथ overlap होकर के सामने आती है। जैसे कोई व्यक्ति सफेद शर्ट पहनकर आया, देखा तुरंत मतिज्ञान ने जान लिया कि यह वही है जो दस दिन पहले आया था। मतलब इतनी तेजी से अपना ज्ञान काम करता है। उस मतिज्ञान को मतिज्ञान हम कहते हैं लेकिन

आँखें खोलकर सामने की चीज को सिर्फ देखें, उसकी पहले की स्मृति से तुलना न करें।

वो मति ज्ञान कितनी पर्यायों के साथ काम कर रहा है मति, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान। पहले नम्बर की परिणति में only see अगर आपका आँख से ज्ञान हो रहा है तो only see with our eyes. that is Mati सबसे पहला ज्ञान- मतिज्ञान। जैसे ही आपको आयी स्मृति मतलब आपने पहले कुछ जो स्मरण में रखा है वो स्मृतिज्ञान आपके सामने आ गया तो वो हो गया दूसरे नम्बर का ज्ञान-स्मृति। यह ज्ञान के अन्दर ज्ञान, यह काम करता चला जाता है और यह सब मन से हो रहा है क्योंकि स्मृति मन में ही होती है और कहीं नहीं होती है। मन के पहले स्तर पर यह आया मतिज्ञान, दूसरे स्तर पर पहुँचा स्मृतिज्ञान और मन के तीसरे स्तर पर फिर आया- गया दोनों का जोड़ रूप ज्ञान वो- प्रत्यभिज्ञान। जिसे संज्ञा भी कह सकते हैं और प्रत्यभि ज्ञान भी कह सकते हैं। जैसे यह ज्ञान सामने आया तो फिर आगे इस ज्ञान की और परिणति बढ़ती है वो परिणति-यह अच्छा, यह बुरा। जैसे ही आपको कोई दृश्य दिखा वो दृश्य अच्छा आपने feel किया कि बुरा feel किया। आपको पता ही नहीं पड़ा कि कैसा feel किया। कोई भी दृश्य आपके सामने आया तो उसके साथ वो feeling भी आ गई, अच्छी या बुरी। अच्छा फील हुआ, आपकी आत्मा में जुड़ा हुआ राग कर्म का उदय और आपके अंदर अगर बुरी feeling आयी तो आपकी आत्मा में जुड़ा हुआ द्वेष नाम के कर्म का उदय। वह द्वेष आपके अंदर उदय में आयेगा तो वो आपको अंदर से बुरा feel करायेगा। मान लो एक ही व्यक्ति है सौ लोग देखने वाले हैं लेकिन एक ही व्यक्ति के प्रति feeling सौ लोगों की अलग-अलग होगी। एक व्यक्ति, वह है जिसने उसको पहले देखा ही नहीं तो उसके मन में न राग की बहुत feeling होगी, न द्वेष की बहुत feeling होगी। एक व्यक्ति वह है जिसने उसको पहले देखा और देखने पर भी उसे लगा कि यह मेरे लिए अच्छा था तो एक दम देखते ही उसके अंदर आपके लिए feeling अच्छे रूप में होगी, राग रूप में होगी।

एक व्यक्ति वह भी होगा जिसके अंदर अच्छेपन की feeling तो होगी लेकिन किसी के लिए तीव्र होगी, किसी के लिए हल्की होगी, किसी के लिए और हल्की होगी। यह कई प्रकार की फीलिंग होती हैं, राग की फीलिंग। ऐसे ही द्वेष की भी, अगर उन सौ व्यक्तियों में से किसी को याद आ गया कि इस व्यक्ति ने हमसे पहले यह बुरे वचन बोले थे। यह वही व्यक्ति है जिसने मेरा अपमान किया था, एक सैकण्ड भी नहीं लगेगा उसके प्रति हमारे मन में घृणा आ जायेगी।

कैसे हमारा ज्ञान काम करता है, कैसे हमारे संस्कार काम करते हैं, कैसे हमारे कर्मों के उदय काम करते हैं। यह हमें कुछ भी पता नहीं है और सब होता चला जाता है। हम ऊपर-ऊपर से सब उसी में एकमेक होकर के सब करते चले जाते हैं और हमें लगता है कि हमने बहुत अच्छा भी कर लिया और बहुत बुरा भी कर लिया लेकिन आचार्य कहते हैं कि न तुम्हें अच्छा करना है, ना तुम्हें बुरा करना है, तुम्हें सिर्फ जो जैसा है वैसा ही उसको उसी रूप में देखना है, जानना है। अगर अपने कर्मों के संस्कारों को मिटाना है तो यह संस्कारों को मिटाने की प्रक्रिया है। इसलिए जो अपने मन

मतिज्ञान, स्मृतिज्ञान और प्रत्यभिज्ञान मन में हर वक्त चलते रहते हैं।

को आत्मा की ओर ले जायेगा तो आत्मा में दिखेगी स्थिरता। जब मन बाहर अपनी इन्द्रियों से देखेगा तो मन को दिखेगी अस्थिरता। मति, स्मृति जितनी भी काम करेगी वो सब इन्द्रियों के विषयो में काम करेगी। आत्मा के विषय में काम नहीं करेगी। क्योंकि आत्मा की तो कोई स्मृति आपको है ही नहीं। आत्मा के बारे में तो मतिज्ञान कुछ जानता है ही नहीं और आत्मा का वो जोड़ रूप ज्ञान कभी हो नहीं सकता तो आपको बाहर होने वाले इन इन्द्रिय ज्ञानों से अपने मन को बचाकर के अपनी आत्मा में ले जाने के लिए मन के ऊपर जो बाहरी संस्कार हैं उन संस्कारों को तोड़ना पड़ेगा। उन संस्कारों को तोड़ने के लिए आपको अपने ज्ञान पर, मतिज्ञान पर नियंत्रण करना पड़ेगा। लोग ज्ञान को और बढ़ाना चाह रहे हैं, एक तो होता है Quality बढ़ाना और एक होता है speed बढ़ाना। अगर आपके ज्ञान की speed पहले से ही बढ़ी हुई है तो आप उसको बढ़ाने का कोई पुरुषार्थ मत करो। वो पहले से ही खतरनाक बना हुआ है। आपके ज्ञान की जो स्पीड बनी हुई है उसको कम करो और वो speed यही है जो मैं आपको बता रहा था। अपने मन के ऊपर पड़े हुए वो संस्कार जिनके माध्यम से एकदम से मति, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान और उसके बाद में चिन्ता के बाद अभिनिबोध, फिर श्रुत ज्ञान की परिणति शुरू हो जाती है। मन ही मन अपने आप लगने लग जाता है, यह खराब है यह अच्छा है, यह मेरे लिए बहुत बुरा लग रहा है, यह मुझे मिल जाये, यह मुझसे दूर हट जाये, यह सब भीतर का श्रुतज्ञान सोचने में लग जाता है। इस तरह की मन की परिणतियों को जो व्यक्ति समझ लेता है तो वह जब अपनी आँख खोलता है तो जगत उसे इन्द्रजाल की तरह लगने लगता है। उसे कुछ मतलब नहीं रहता है कि आस-पास क्या हो रहा है और वह वास्तविकता को अवास्तविकता के रूप में नहीं देखता है।

जिस दिन आपकी आँख खुले और ऐसा लगे कि इस जगत में कुछ भी ऐसा नहीं है जो ग्रहण करने योग्य हो और हम उसको सत्य रूप में स्वीकार कर लें क्योंकि सत्य तो हमारे भीतर है, सत्य रूप में अगर कुछ है तो वह हमारी आत्मा है। वह आत्मा के आस्वादन करने के बाद, आत्मा का अनुभव करने के बाद में अगर आपने आँख खोली होगी तब तो यह आपको सब ऐसा दिखेगा और अगर आपने नींद में आँख खोली होगी तो आपको फिर वैसा ही दिखेगा जैसा आपकी स्मृति में पहले से बसा हुआ है। इसलिए दस दिन में भी कुछ भूलता नहीं हैं आदमी। न वो लोग भूल पाये जो यहाँ बैठे थे और न वो लोग भूल पाए जो स्थाई रूप में यहाँ बैठे थे और वह जो आते जाते रहते हैं। स्मृति से कुछ नहीं जाता और जब तक स्मृति से कुछ नहीं जायेगा तब तक आपका मन आत्मा के अनुभवन में लग नहीं पायेगा। आत्मा का अनुभवन करने के बाद में भी मन अगर बाहर आये तो उसे स्मृति की जो परेशानियाँ हैं, वह परेशानियाँ न हो तो यह तभी संभव है जब आपने उस आत्मा का थोड़ा अनुभवन किया हो। आत्मा के अंदर मन को लगाने से यह बाहर दिखने वाले मतिज्ञान के ऊपर काम करने वाली स्मृति से हम अपने आप को मुक्त कर सकते हैं। उस लड़के

मतिज्ञान एवं स्मृतिज्ञान का जोड़ प्रत्यभिज्ञान या संज्ञा कहलाता है।

के लिए हमने यही करने का प्रयास किया। उससे ओम् अर्हम् का अन्तरनाद करवाया, जाप करवाई और वह उसमें ऐसा लीन हो गया कि मैंने तो सोचा था वह दो मिनट में थक जाएगा। उसने दस मिनट तक 'ओम् अर्हम् नमः' का अन्तरनाद किया, अपनी आँख और कान बंद करके ऐसा उसका मन लगता गया। कभी आप करके देखना अगर आपको कोई स्मृति परेशान कर रही हो तो 'ओम अर्हम् नमः' का जाप अगर आप कान पर अँगूठा रखकर के अपनी अंगुलियाँ आँख पर रखकर के दस मिनट करो। कुछ नहीं, जितनी देर मन लगे उतनी देर करो। कोई स्मृति आपको परेशान कर रही हो, बार-बार आप उससे मुक्त होना चाह रहे हो, कोई चीज याद आ रही हो और हम उसके कारण से परेशान हो रहे हो तो आप अपने अंदर वह शक्ति अर्जित स्वयं से करो और यह प्रयोग आप स्वयं करोगे तो आपको स्वयं में रिलीफ महसूस होगा। जितनी ज्यादा देर करोगे उतना ज्यादा उस मन पर असर पड़ेगा और जितना असर पड़ेगा उतना ही बाद में आप आँख खोलोगे तो उतनी देर तक कम से कम उसके दसवे भाग के समय तक रिलिफ मिलेगा ही। यह काम खुद करो और अपने बच्चों से भी कराओ क्योंकि आगे बड़े होने के बाद यह बच्चे सब टेंशन में आने वाले हैं, सब के लिए कोई ना कोई डिप्रेशन के कारण बनने वाले हैं। कोई किसी को छोड़कर के चला गया, किसी ने किसी को धोखा दे दिया, कोई व्यापार में धोखा खा रहा है, दुनियाँ ऐसी ही धोखों से भरी पड़ी है। वो आचार्य कह रहे हैं, यह सब इन्द्रजाल के समान ठगने वाली दुनियाँ है इसको अगर तुम सही मानोगे तो तुम भी ठगे जाओगे। अगर तुम अपने आप को यह समझ लोगे कि इस दुनियाँ में ज्यादा उलझना नहीं, नहीं तो ठगे जाएंगे तो आप अपने आप में स्थिर हो जाओगे, अपना मन अपनी आत्मा में लगाने लग जाओगे। हम भीतर से अपने ही इस स्मृति ज्ञान, अपने इन राग और द्वेष के संस्कारों से ठगे जा रहे हैं तो उन संस्कारों से बचने के लिए आचार्य कहते हैं- देखो अगर तुम ठग गए तो तुम्हारे पास पश्चाताप के अलावा कुछ नहीं रहेगा।

''स्पृहयत्यात्मलाभाय, गत्वान्यत्रानुतप्यते''

अगर आत्म लाभ करने वाला पुरुष कभी आँख भी खोलगा, कान से कुछ सुनेगा और अगर इस दुनिया के अन्दर की कोई चीज देख, सुनकर के अपने अंदर रख भी लेगा तो भी उसे पश्चात्ताप होने लगेगा कि कहाँ हम अपने मन की शान्ति खोकर के इस अशान्ति में पड़ गए हैं। अगर आपने थोड़ा सा भी शान्ति का अनुभव किया है, ध्यान में आपने थोड़ा सा भी आत्म संवेदना, आत्म लाभ लिया है तो बाद में जब इन्द्रियों के विषय सामने आयेंगे और फिर आप अपने मन को देखेंगे तो आपको यह अनुभूत होना चाहिए कि इन इन्द्रियों के विषय में तो सिवाय ताप के, संताप के, पश्चाताप के और कुछ नहीं है और फिर वह अपने आत्म-लाभ की ओर उन्मुख हो जायेगा। यह अनुभूतियाँ है जो यहाँ बताई जा रही है। इन अनुभूतियों से गुजरने वाले व्यक्ति के लिए बाहर की जाने वाली क्रिया एक ताप पहुँचाती है, करना पड़ता है, देखेगा, सुनेगा, करेगा लेकिन करने के बाद

में उसे लगेगा कि सब बहुत हो गया। अब तो बिल्कुल आत्मा की शान्ति का अनुभव करना है। वो ध्यान का संस्कार दिमाग में आ जाना चाहिए। उस समय पर कितना अच्छा लग रहा था, कितना हल्का शरीर, कितना हल्का मन और आज इतना भारी क्यों हो रहा है? आज इतना पसीना, इतना तनाव क्यों हो रहा है, यह तुलना अगर दिमाग में आ जाये तो भी आपके लिए वो स्मृति लाभदायक बन जायेगी। फिर आप उसी रूप में ढलने का प्रयास करें। शान्ति तो वही थी जो पिछले दस दिनों में मिली। कल एक और रामगंजमण्डी का भैया था। कह रहा था- महाराज! मोबाईल के बिना मैं रह नहीं पाता था और मेरे लिए चिड़चिड़ापन आता था। मुझे पता नहीं था कि वो चिड़चिड़ापन किस कारण से आता है और जिस दिन हम आये उसी दिन आप ने कह दिया कि कोई भी यहाँ पर मोबाईल नहीं रखेगा। हमने दस दिनों से मोबाईल बंद रखा। हमें एक भी दिन चिड़चिडापन नहीं आया। यह जो फीलिंग है वो ही तो सबसे बड़े अनुभव हैं और इन्हीं अनुभवों को हमें साझा करना चाहिए दूसरों से और दूसरे लोगों को भी समझना चाहिए कि क्या हमारे लिए मन की परेशानियों के कारण हैं। मन से चिड़चिडापन आना, परेशान होते रहना, दुख भरा रहना, दुख की संवेदना बनी रहना जबकि बाहर कुछ भी नहीं है फिर भी सब होता है। हम जब तक अपने मन को इस तरह से समझेंगे नहीं, मन को जब तक हम ध्यान में लगाकर के आत्म-शांति का अनुभव करेंगे नहीं, तब तक वो हमको समझ में आएगा नहीं कि हम किस कारण से परेशान हो रहे हैं और लोग परेशान होते ही रहते हैं। मोबाईल भी आपके लिए चिड़चिड़ापन का कारण हो सकता है। आप उसको दूर रखकर के इसी तरह से आत्म-ध्यान करने की प्रक्रिया बनाये रखो। सुबह का एक घंटा और शाम का एक घंटा अगर आप के इसी तरह के 'अर्हम् ध्यान' के माध्यम से गुजर जायें तो मैं आपसे कहता हूँ एक महीने के अन्दर आप इतने बोल्ड हो जाओगे कि आपके सामने कितनी ही बड़ी परेशानी, परिस्थिति आ जाये तो आप भीतर से परेशान नहीं होओगे। इतनी शक्ति आपके अन्दर आ जायेगी। सामने अगर आपके पहाड़ भी टूट रहा हो, सब मिटता हुआ दिखे फिर भी आपका मन इतना प्रबल होगा कि कुछ नहीं हुआ। यह जिसके मन में आ जाये समझ लेना उसने अपने मन को जीत लिया। यह पूजा, कोई स्वाध्याय से नहीं होगा। यह सिर्फ और सिर्फ ध्यान से होगा और किसी कारण से नहीं होगा और जैन इस चीज में बहुत पीछे हैं। आप इसी तरह की वृत्ति बनाओ कि हमारा ध्यान अपनी आत्मा के लिए हो। यह आचार्यों ने इतने महान आध्यात्मिक ग्रंथ केवल योगियो के लिए नहीं लिखे हैं यह सबके लिए लिखे हैं और यह योग्यता आपके अंदर भी आ सकती है, यह आत्मा के संस्कार बढ़ाना।

किसी भी स्मृति से मुक्त होने के लिये 'ओम् अर्हं नमः' का अंतर्नाद करे।

आत्मानुभवी के और चिह्न

40

इच्छत्येकान्तसंवासं निर्जनं जनितादरः।
निजकार्यवशात्किञ्चिदुक्त्वा विस्मरति द्रुतम्

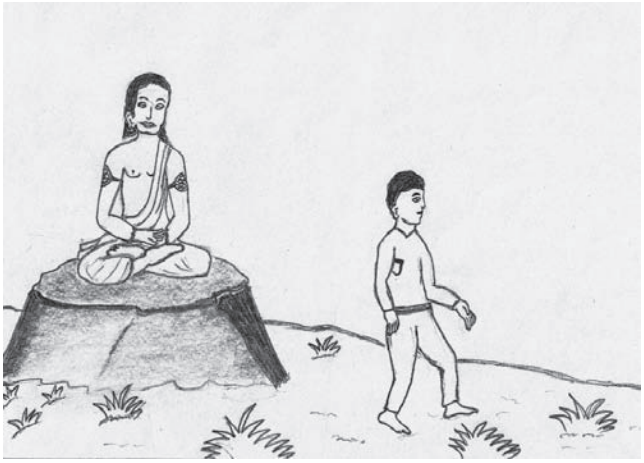

अन्वयार्थ— (**निर्जनं**) निर्जन स्थान (**जनितादरः**) जिसे अच्छा प्रतीत होता है ऐसा पुरुष (**एकान्तसंवासं इच्छति**) एकान्त में रहना चाहता है (**निजकार्य-वशात्**) अपने कार्यवश से (**किञ्चित् उक्त्वा**) कुछ कह करके (**द्रुतम्**) शीघ्र (**विस्मरति**) भूल जाता है।

- ☛ **आत्मसुख हेतु प्रयास**
- ☛ **सामायिक की प्रक्रिया**
- ☛ **वचन व्यापान**

आत्मसुख हेतु प्रयास :

आचार्य पूज्यपाद महाराज इस इष्टोपदेश ग्रंथ के माध्यम से कहते हैं कि जो व्यक्ति आत्म सुख की इच्छा करने लग जाता है तब वह क्या इच्छा करता है? यदि आत्मसुख की इच्छा होगी तो आचार्य कहते हैं कि वह सबसे पहले अपने लिए एकांतवास की इच्छा करेगा, एकांत में रहने की इच्छा करेगा। एकांत का मतलब जहाँ पर वह अपने को अकेला महसूस करे, जहाँ पर किसी भी प्रकार के लोगों का आना जाना न हो, जहाँ पर किसी भी प्रकार का व्यवधान न हो। ऐसे एकांत स्थान में रहने की इच्छा करना योगी के लिए ही संभव है और योगी में भी वह योगी जो अपने आत्मसुख की इच्छा कर रहा हो उसी के लिए संभव है। आचार्य कहते हैं मुनि, श्रमण बहुत लोग बन जाते हैं। श्रमण भेष को धारण करने वाले, जिन-भेष को धारण करने वाले बहुत से मुनि महाराज होते हैं लेकिन एकांत की इच्छा करने वाले बहुत कम योगी होते हैं क्योंकि एकांत की इच्छा वही करेगा जिसे अपने आप में सन्तुष्टि होने लग जाये। यदि व्यक्ति अपने आप में सन्तुष्ट नहीं है तो वह दूसरों की इच्छा करता है। जो अपनी आत्म-सन्तुष्टि से परिपूर्ण है उसे पर की कोई इच्छा नहीं रहती है। पर की इच्छा जब भी उत्पन्न होती है तो उस इच्छा को उत्पन्न करके भी वह तुरन्त उस को भूल जाता है, उसमें रमता नहीं है। जिनके अन्दर दूसरों के मन को रमाने की, दूसरों को अनेक माध्यमों से रंजायमान करने की इच्छा होती है वो योगी नहीं कहलाते। आचार्यों ने कहा है कि जो अनेक प्रकार के चमत्कार दिखाये व अनेक प्रकार के मंत्र-तंत्रों से लोगों को लुभाये, अनेक प्रकार के प्रलोभन देकर के मन को रंजायमान करे वो कभी योगी नहीं होता है वे मुनि हो सकते हैं, योगी नहीं होंगे। यहाँ तक कहते हैं कि जो स्व आत्मा का अनुभव करने वाला है, जो अपनी आत्मा के अनुभव में तृप्ति करने वाला है, वह व्यक्ति 'इच्छेत्येहकान्तसंवासं' एकांत की इच्छा करेगा और लोगों में उसका बहुत आदर नहीं होगा। 'निर्जनं जनितादरः' वह निर्जन स्थान या यूँ कहें कि लोगों का ऐसा आदर नहीं करेगा कि उनके पीछे ही पड़ जाये और उन लोगों के अन्दर किसी भी प्रकार से मन को रंजायमान करने के लिए उपाय करे। इस प्रकार का करने वाला योगी नहीं होता क्योंकि वह योग के माध्यम से यदि अपनी आत्मा की इच्छा कर रहा है तो उसके अन्दर इस प्रकार के भाव उत्पन्न नहीं होंगे। यह बहुत बड़ी एक पहचान बताई जा रही है-योगी की। जिन्हें अपने आत्मा के कल्याण की इच्छा होती है उनके अन्दर इस प्रकार की परिणतियाँ आ जाती हैं और जिन्हें आत्म-कल्याण की इच्छा नहीं है उन्हें बाहर के ही वातावरण से, बाहर की ही चीजों में ही उनका मन लगता है। उनका मन अपने में नहीं लगता, बाहर के कारण से उनका मन थोड़ा सा लगता है क्योंकि वो ऊपर के ही स्तर पर जीवन जीते हैं और उनकी बुद्धि में केवल कुछ बातें रहती हैं तो वो बातें खुद उनके अनुभव की नहीं रहती हैं क्योंकि उन्होंने कभी आत्मा का अनुभव किया ही नहीं।

आत्मसुख की इच्छा रखने वाला योगी एकांतवास की चाह रखता है।

जो भी बातें रहती हैं केवल बस सुनी-सुनाई, पढ़ी पढ़ाई बातें रहती हैं और बुद्धि के ऊपरी स्तर की बातें रहती हैं और उसी के माध्यम से वह दूसरों को रंजायमान करके अपना समय गुजार लेते हैं। उससे उन्हें कभी भी कोई आत्मा के अनुभव की दशा को उपलब्ध नहीं होते हैं।

योगी की विशेषतायें

इसलिए आचार्य यहाँ कह रहे हैं कि योगी की सबसे बड़ी इच्छा होती है एकांत में रहना जहाँ पर भीड़-भाड़ ना हो, जहाँ पर ज्यादा लोग ना आ रहे हों, जा रहे हों और जहाँ पर किसी भी प्रकार से ध्यान, सामायिक, अध्ययन में कोई बाधा उत्पन्न ना हो इसलिए पहले जो योगी लोग होते थे वो सब गुफाओं में, पर्वतों पर, किन्हीं दूर गाँवों से जाकर के निवास करते थे और अपने एकांत में रहकर के अपने तत्त्व में स्थित रहा करते थे। यह योगियों की इच्छा, यह योगियों का भाव जो उनके अन्दर उत्पन्न हो जाता है वो यह बताता है कि वो अपने आप में बडे संतुष्ट हैं, तृप्त हैं। यह सन्तुष्टि, यह तृप्ति और किसी में देखने को नहीं मिलेगी। सबसे बड़ी चीज यही है इस मनुष्य जीवन की कि आदमी अपने में सन्तुष्ट होने लग जाए, अपने में ही तृप्ति का अनुभव करे, बाहर उसके पास में कुछ भले ही ना हो लेकिन भीतर से बिल्कुल तृप्त हो। बाहर उसके पास में कोई साधन भले ही ना हो मन को रंजायमान करने के लेकिन भीतर उसका मन बिल्कुल स्थिर हो, आनन्दित हो यह जो दशा होती है इसी का नाम है आत्मा के अनुभव की दशा, इसी को कहते हैं

जिसका मन तृप्त, आनंदित एवं स्थिर हो वो योगी की दशा है।

योगी का आनन्द। जिसके अन्दर स्वयं में आनन्द आयेगा फिर वह दूसरों में आनन्द नहीं खोजेगा और अगर वह कभी दूसरों के साथ में रह भी लेगा, दूसरों से कोई बात कर भी लेगा तो आचार्य कहते हैं आगे 'उक्त्वा विस्मरति द्रुतम्'। वह अगर किसी से कह भी देता है तो वह कह करके उसे तुरन्त भूल जाता है ज्यादा देर तक उसे याद नहीं रखता है। स्मरण शक्ति बाहर के विषय में काम नहीं करती और बाहर के विषय में उसका कोई interest नहीं होता है इसलिए उसके लिए बहुत देर तक कोई स्मरण रहता ही नहीं है। देखा, जाना थोड़ी देर तक, जब तक वहाँ पर रहा याद रहा और बाद में वहाँ से आगे बढ़ गया भूल गया। कितने ही लोग आते हैं पूछते हैं- महाराज! आपने पहचान लिया? अब किसी गाँव में रुक कर के आया, किसी शहर में रुक कर के आया और वहाँ पर भी एक दिन, दो दिन, चार दिन भी रुक गया, आठ दिन भी रुक गया, कितने लोगों में पहचान करूँ? कितने के चेहरे देख-देख करके याद करूँ? अगर वह व्यक्ति मुनिमहाराज को देख रहा है, जान रहा है तो वह यह जान रहा है कि हमारे यहाँ पर मुनि महाराज आये थे और वो कभी दो महीने बाद, चार महीने या चार साल बाद आता है तो उसे याद रहता है कि हमारे गाँव में महाराज आये थे। लेकिन अब वो महाराज से पूछता है कि आपको याद है? आप हमारे गाँव में आये थे। अब महाराज को इतना तो याद हो सकता है कि इस गाँव में आये थे। अब एक-एक चेहरा याद रखें तो फिर अपना चेहरा कब याद होगा और आदमी को इसी में प्रसन्नता होती है। अगर कहीं हम रुककर के आये हैं, कोई भी उस गाँव का है और उस गाँव के आदमी ने आकर के कहीं दूसरी जगह पर दर्शन किये हैं और हम उससे कह दें- हाँ हाँ, बिल्कुल याद है, तुम मंदिर के बिल्कुल बगल में रहते थे, तुम्हारे घर में आहार हुआ था ना। फिर ऐसा उछलता है कि मानो उसे कितनी बड़ी खुशी मिली हो और अगर बिल्कुल हम उदासीन हो जाये। हाँ हाँ, आये होंगे, ठीक है तो आप कहोगे कि महाराज को कुछ मतलब ही नहीं है, उनको कुछ याद ही नहीं रहता है। एक सामान्य व्यक्ति उसी चीज से हर्षित होता है जिस चीज से उसका राग बढ़े, उसका आत्मा के अनुभव की योग्यता से कोई लेना देना नही। अगर उस व्यक्ति को यह मालूम पड़ जाये कि महाराज को हमारी याद है तो वह दस जगह जाकर के कहेगा- महाराज! तीन साल बाद, दो साल बाद भी हमें भूले नहीं। हमारा नाम लेकर के बता दिया, स्थान बता दिया और बता दिया कि हम कितने उनके साथ में रहे थे। देखो! महाराज की क्या याद्दाश्त है? जो लिखा है, योग्यता है उसकी कोई प्रशंसा नहीं होगी। इनकी प्रशंसा करने वाला वह होगा जो इसकी योग्यता को समझे, जो जानता हो कि योगी, ध्यानी, आत्मानुभवी क्या होता है? अगर वह इस चीज को समझेगा तो वो समझ सकता है। लेकिन सामान्य आदमी तो इनकी कोई प्रशंसा करेगा ही नहीं और ऐसे कितने ही लोग रह चुके हैं, हो चुके हैं किन्हीं गुफाओं में, जंगलों में रहते थे कोई उनका नाम नहीं जान पाता। इन योग्यताओं की कोई प्रशंसा नहीं करता है, प्रशंसा वही व्यक्ति करेगा जो अयोग्य है और आप हमेशा उसी की प्रशंसा करोगे, इन्होंने मुझको इतने साल

लोगों की पहचान को याद रखने वाला अपनी आत्मा को याद नहीं कर पाता है।

के बाद में भी पहचान लिया। अगर आप कहीं ऐसी जगह पहुँच गये जहाँ आप से ही पूछना पड़े कि आपको कहीं देखा तो है, कहाँ से आये हैं तो आप कहोगे- अरे महाराज! आप तो भूल गये, आप तो हमारे यहाँ आठ दिन, 15 दिन रहे थे तो आपने हमको पहचाना ही नहीं। यह पहचान को ध्यान में रखना, याद रखना और ऐसे याद रखने वाले को आचार्य कहते हैं कि वह योगी नहीं रह सकेगा क्योंकि जिसके दिमाग में यह सब चीजें चढ़ी है वो अपनी आत्मा को याद नहीं कर पायेगा। क्योंकि जैसे ही वह ध्यान लगाने बैठेगा उसे यह ही सब चीजें याद आने लग जायेंगी क्योंकि मन के ऊपर उस चीज का प्रभाव पड़ता है। विज्ञान के अनुसार एक conscious mind होता है और एक unconscious mind होता है। एक चित्त की ऊपरी दशा होती है और एक चित्त की भीतरी दशा होती है। जब ऊपरी दशा में प्राप्त किये गये संस्कार भीतरी दशा में पहुँच जाते हैं, हम ध्यान करने बैठते हैं तो वह संस्कार उभरते हैं। अगर आप ध्यान करने बैठे और आपके मन में किसी की याद आने लगी तो समझना कि वो आपकी स्मृति में बैठ गया, वो आपके चित्त में छा गया, आपके अन्दर उसने अपना संस्कार अर्जित कर लिया और यह संस्कार अगर आपके ध्यान में आयेंगे तो आप कभी भी अपनी आत्मा का ध्यान नहीं कर पायेंगे इसलिए सबसे बड़ी चीज होती है कि बाहर के लोगों से मिलना-जुलना, बातचीत करना इतना ही हो कि वो हमारे अन्दर कोई प्रभाव नहीं डाल पायें। इसलिए आचार्य कहते हैं- **''निजकार्यवशात् किञ्चितदुक्त्वा''** अगर किसी से बोलना पड़े तो अपने काम से बोलना। निजकार्यवशात् अगर कभी बोलना भी पड़े तो तब जब बोले बिना काम न चल रहा हो, कोई अपना विशेष काम हो तो बस उतना ही बोलना और बोलकर के भूल जाना। आपने किसी से कुछ काम के लिए कहा और उसने काम करने के लिए आप से कह दिया कि हाँ हम कर देंगे। वो भी अपने काम में लग गया और आप भी अपने काम में लग गए तो दोनों ही भूल गए। अब वो काम नहीं होगा। अब जिसने कहा है वो व्यक्ति अगर याद रखेगा तो उसके दिमाग में रहेगा कि हमने इसको इस काम के लिये कहा था, दो दिन हो गये यह अभी तक काम करके लाया नहीं। विकल्प उसका होगा जिसने उस काम के लिए कहा और अगर वह काम उसके लिए कोई गहरे राग के साथ हो रहा होगा तो उसको और ज्यादा विकल्प होगा। मैंने तो उससे कहा था, आज चार दिन हो गये, एक ही दिन बाद लाने को कहा था तो उसके अंदर और ज्यादा आकुलता होगी और ज्यादा विकल्प आयेगा क्योंकि उस कार्य के प्रति ज्यादा राग है। एक काम ऐसा होता है, हाँ ठीक है, ऐसा हो जाये तो कर देना वो अपने काम में लग गया और अपन अपने काम में लग गये। जब उसको याद आ गया कि महाराज ने कुछ काम के लिये कहा था तो उसने वह काम कर दिया, बाद में लेकर के आ गया, लो महाराज यह काम हो गया, ठीक है रख दो, यह कहलायी एक **सहज प्रवृत्ति**। इस काम में कराने वाले को संक्लेश नहीं होगा, करने वाले को भी नहीं होगा और पहले वाले में जो करा रहा है उसको भी बहुत दिनों तक वो चीज याद रखनी पड़ेगी कि यह

विज्ञान के अनुसार conscious mind व unconscious mind होते हैं।

जल्दी नहीं कर रहा है या इसके लिए मेरी कोई याद नहीं आ रही है, यह मेरा काम करने के लिए 'हाँ' भी भर के गया था फिर बाद में करना भूल गया। इस प्रकार के संक्लेशों में यदि पड़ जायेगा तो आचार्य कहते हैं तू कभी भी आत्मा का ध्यान नहीं कर पायेगा। बाह्य जो भी काम हो, वो काम चलाऊ हो। हो जाये तो ठीक और न हो तो भी ठीक। अगर ऐसी परिणति रहेगी तो रागद्वेष नहीं होगा। अगर कोई रागात्मक और द्वेषात्मक तरीके से कोई काम करवाया जाता है तो उसकी स्मृति, उसके दिमाग में इतनी गहरी भी छा सकती है कि वो जब ध्यान करने बैठे और उसे वो ही चीज याद आये। बहुत कठिन होता है एकान्त में रहना और उससे भी कठिन होता है एक अकेली आत्मा का ध्यान करना। एकांत में रहने में ही किसी-किसी को घबराहट हो जाती है, डर लगने लग जाता है। आदमी अकेला, एक स्थान पर, किसी शोरगुल से रहित अगर वहाँ पर रहने की इच्छा कर ले तो वह उसके बहुत बड़े धैर्य और साहस का प्रतीक होता है। पहले के लोग इसीलिए श्मशान में जाकर के, गुफाओं में जाकर के, एकांत स्थानों पर जाकर के रुक जाते थे, उन्हें कोई घबराहट नहीं होती थी और अगर आपको अपने मन की जाँच करना हो तो कभी ऐसे एकांत स्थान पर जाकर के बैठ जाना जहाँ पर कोई भी आ नहीं रहा हो, जा नहीं रहा हो, आप देखना वहाँ आप कितनी देर तक बैठते हो। अकेला अगर आपको इस हाल में बैठने के लिए कह दिया जाये तो आप यहाँ पर आधा घंटा भी नहीं बैठ पाओगे, घबराकर के बाहर आ जायेंगे। आपके अंदर की घबराहट आपके अंदर के धैर्य की कमी को बताएगी और यह भी बताएगी कि आपका मन अपने में नहीं लगता है, यह सबसे बड़ी इस चीज की पहचान है।

सामायिक की प्रक्रिया :

इसलिए आचार्य कहते हैं कि एकांत में रहने का अभ्यास डालो, एकांत में ही आप ध्यान, सामायिक कर पाओगे। श्रावक को जब आचार्य सामायिक करने के लिए बताते हैं तो जो व्रत, प्रतिमा ले लेते हैं (दो प्रतिमाधारी श्रावक भी), वे सामायिक नियम से करते हैं तो आचार्य कहते हैं कि अगर तुझे सामायिक करना है तो '**एकांते सामायिके**' रत्नकरण्डक श्रावकाचार में आचार्य समन्तभद्र महाराज कहते हैं कि एकांत में सामायिक करना, घर के बीच में नहीं, चौके में बैठकर के सामायिक मत करना। '**एकांते सामायिके**'। ऐसे स्थान पर बैठना जहाँ पर बिल्कुल एकांत हो, किसी के आने-जाने से अपने को कोई फर्क न पड़े और एकांत स्थान का सबसे बड़ा लाभ होता है कि वहाँ पर मन के अंदर भेद-विक्षेप (खेद) उत्पन्न नहीं होते हैं। मन के अंदर हलन-चलन, क्षुब्धता जिसे कहते हैं, वह क्षोभ एकांत में उत्पन्न नहीं होगा और अगर आप अनेक लोगों के बीच में बैठे होंगे तो सबके ऊपर आपकी दृष्टि जायेगी, आप सबकी क्रियाएँ देखेंगे, आपके मन के अन्दर क्षोभ बना ही रहेगा। आप अपने आप तक आ ही नहीं पायेंगे। इसलिए पहली शर्त है कि बाहर से अकेला होने की, फिर बाद में भीतर से अकेला होने की। बाहर से अकेला हुआ जाता है तो उसे

एकांत में रहने का अभ्यास करने पर मन में भेद-विक्षेप, क्षुब्धता उत्पन्न नहीं होती।

कहते हैं go to lonely place. जो आप लोग बोलते हैं ना lawn, यह lawn, lone शब्द से बना दिया। एकांत स्थान, lonely place, का मतलब जहाँ पर कुछ न हो पेड़, पौधे, घास हो बस। ऐसे निर्जन स्थान पर जाकर के बैठ जाओगे तो पहले तो आपको lonely place ढूँढना पड़ेगा फिर आप जब बैठ जाओ तो आपको only place ढूँढना पड़ेगा।

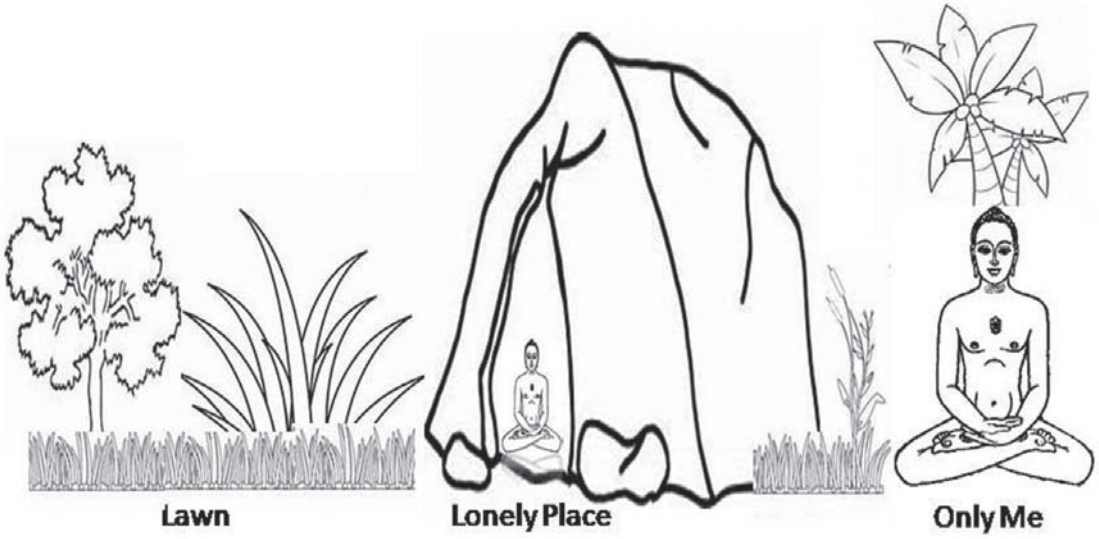

Only माने केवल हम रह गये। ऐसे स्थान पर पहुँचने के बाद में आप अपने आप को only महसूस करोगे। बस, केवल मैं ही हूँ और कुछ भी इस जगत में नहीं है। उस स्थान पर पहुँचने पर जब आपके अंदर इस प्रकार की परिणति आयेगी कि देखो, संसार तो है सारा का सारा लेकिन मैं उसको देख रहा हूँ, मैं जान रहा हूँ, लेकिन संसार में कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं है जो मुझे देख और जान रहा हो। अपने आप आपके अंदर एकांत आता चला जाएगा। अपने आप आपके अंदर अकेलापन आता चला जाएगा और जितना अकेलापन आयेगा उतना ही आप, अपने निकट होंगे और अगर आपके अंदर वह अकेलापन उस एकांत स्थान में बैठकर के नहीं आ रहा है तो इसका मतलब है कि आप अपने पास में नहीं हैं। तुरन्त आपको याद आ गई अपने बेटे, बेटी, रिश्तेदार, घर कार्य की तो आप अपने पास में हो ही नहीं पाते हैं। सबसे बड़ी विडम्बना इस मनुष्य जीवन की यही है कि आदमी अपने निकट तक नहीं पहुँच पा रहा है सबके निकट तो पहुँच रहा है लेकिन अपने निकट नहीं पहुँच रहा है। सबसे पूछेगा कि क्या तुम हमें जानते हो? हमें पहचाना क्या? लेकिन कभी अपने से नहीं कहेगा कि मैं अपने को जानता हूँ, मैंने अपने को पहचाना कि नहीं। पहचान भी एक दूसरे के लिए बनाये रखने की एक आदत पड़ी है और उसी आदत में वह जीता रहता है

विडम्बना है कि मनुष्य स्वयं के निकट कभी नहीं पहुँच पाता एवं पहुँचना चाहता भी नहीं।

और अपने अंदर कभी भी महसूस नहीं कर पाता कि वस्तुतः यह आदत हमको हमसे दूर कर रही है या हमको हमारे पास ला रही है यह जिंदगी भर आदमी को अनुभव में नहीं आता। अपने से दूर करने वाली इन आदतों के कारण मन के विकल्पों के कारण मन को दुष्ट कहा जाता है। आपने सुना है कि मन बड़ा दुष्ट है। आप कह तो देते हो क्योंकि शास्त्रों में लिखा है। शास्त्रों में उन्होंने लिखा है जिसने मन की दुष्टता को समझा है और आपने केवल पढ़ के समझ लिया कि मन बड़ा दुष्ट है। आप मानोगे भी उसी दुष्ट की, रहोगे भी उसी दुष्ट के वश में और जब महाराज, भगवान सामने होंगे तो स्तुति पढ़ दोगे, उनको सुना दोगे कि मेरा मन बड़ा दुष्ट, दुर्जन, परेशान करने वाला है। इस मन को दुष्ट इसीलिए कहा गया है क्योंकि यह ऐसा दुष्ट है जिसके कारण से ही आदमी अपने आप को नहीं पहचान पा रहा है, आत्मा अपने आप का ही ज्ञान नहीं कर पा रही है। वह कभी सोचता भी है मुझे अपनी पहचान हो जाये तो यह दुष्ट उसको बाहर फेंक देता है, दूसरों की याद उसके सामने लाकर के रख देगा। इसलिए आचार्य कह रहे हैं कि धीरे-धीरे ऐसा अभ्यास करो। ज्यादातर वे बातें ध्यान में आती हैं जो हमने अपने वचन व्यापार से की हो। किसी के साथ आप रहे, कोई आपके साथ में रहा, यदि आपने उससे कोई बातचीत नहीं की तो आपका उससे कोई व्यवहार नहीं बनेगा। आपका उससे कोई सम्बन्ध नहीं बनेगा। सम्बन्ध जब भी बनेगा आपके बात करने से बनेगा और आप देखेंगे कि बात किये बिना आपसे रहा नहीं जायेगा। आप ट्रेन में, बस में जाते हो कितनी ही ऐसी जगह जाते हो जहाँ भीड़ होती है कोई आपकी पहचान का नहीं होता है, कोई अगर आपकी बर्थ पर आपके ही पास में आकर के बैठ गया तो आप कितनी देर अपने आपको रोक पाओगे कि हम उससे न पूछें कि भाईसाहब! कहाँ से आये हो? वो अगर नहीं भी बोल रहा हो, मान लो वो इस तरह का हो कि उसको किसी से कोई प्रयोजन नहीं है, उसे किसी से मतलब नहीं है और वो आकर के बैठ गया, अपनी किताब पढ़ रहा है, अपने काम में लगा है। आपके मन में कितनी बार आयेगा कि मैं इससे पूछ तो लूँ, इतना शान्त आदमी यह कहाँ से आया है? कौन से ग्रह से उतर के आया है, क्या पढ़ रहा है? यह भाव अपने मन में इसीलिए आते हैं क्योंकि आप अपने मन में नहीं रह पाते हो। अपरिचित से भी परिचय बनाने में मजा आता है और फिर उस मन के माध्यम से मन को मजा आता है, मन का रंजन होता है। मन इसी में रंजायमान होता है और मन आपको ऊपर-ऊपर से रंजायमान किये रखता है। भीतर आपको इसीलिए नहीं पहुँचने देता क्योंकि फिर मन का मनोरंजन छूट जायेगा। अगर आप आत्मा का रंजन चाहोगे, आत्मा में लीन होना चाहोगे तो फिर मनोरंजन नहीं कर पाओगे।

इसलिए आचार्य ने कहा है- किसी से अगर बात भी करना हो तो उतनी ही करना जितनी अपने काम की हो और काम नहीं हो तो बोलने की जरूरत नहीं है। आपके पास कोई बगल में

जब मन का मनोरंजन नहीं होगा तब ही आत्मा का रंजन हो पायेगा।

आकर बैठ गया तो क्या काम है आपको उससे? आप ट्रेन या बस में हैं तो क्या मतलब है आपको दूसरे से? कौनसी बात है जो आपको उससे प्रेरित कर रही है, अपने मन से पूछो? महाराज टाइम पास नहीं होता है। जिनका टाइम पास नहीं होता है वही तो मनोरंजन करते हैं। जिनको आत्मानुरंजन करना है, आत्मा में तृप्त होना है तो उन्हें ऐसा लगता है कि टाइम तो कुछ मिलता ही नहीं है। टाइम पास करने का मतलब है कि हमें अभी जीवन की उपयोगिता समझ में नहीं आयी। मनुष्य जीवन में हमें क्या करना चाहिए था, यह अभी तक समझ में नहीं आया। इसलिए मन को ऊपर मजे देकर के रंजायमान करके बस, हम मजे में हो जाते हैं और जब कभी भी हमारे सामने ऐसे कोई प्रसंग आते हैं कि अब आप आत्मशांति की ओर आओगे तो आप आ कैसे पाओगे? आपने अपने अंदर इतना भर लिया है कि जैसे ही आपका मन थोड़ा सा भी अपने अंदर शांति उत्पन्न करने का भाव करेगा तो भीतर बैठा हुआ जो अचेतन मन है, उसके अंदर इतने संस्कार पड़ गये, वो आपको उखाड़कर के बाहर फेंक देगा। वो अपने ऊपर दबाव महसूस करता ही नहीं है, इसलिए अगर उस मन के ऊपर दबाव पड़ा तो वो आपको बाहर फेंकेगा। फिर आप कभी भी अपने जीवन में ध्यान करने की, आत्मानुभव करने की योग्यता प्राप्त नहीं कर पायेंगे। आचार्यों ने श्रमणों के लिए इसीलिए मना किया कि तुम कभी मंत्र-तंत्र में नहीं पड़ना क्योंकि मंत्र-तंत्र में भीड़ लगी रहेगी। आप शुरू कर दो बस, मंत्र देना कि मेरे पास में ऐसा मंत्र है कि तुम्हारे व्यापार चलेंगे तो फिर देखना कि यहाँ पर लोगों के लिए पैर रखने की जगह न मिले। मेरे पास ऐसा चमत्कार है कि आपके घर के काम जो बिगड़े पड़े हैं सब इस प्रकार के मंत्र से, अनुष्ठान करने से, अपने आप बनने लगेंगे। आपके मन के अन्दर जैसे ही यह लुभावनापन आया, आपने दूसरों को लुभाना शुरू किया, दूसरों को चमत्कार से अपने लिए मोहित करना शुरू किया और यह परिणति अगर आपके अंदर आ गयी तो आचार्य कहते हैं कि अब आप कभी भी सामायिक नहीं कर पाओगे। जो मुनि महाराज इस प्रकार के मंत्र-तंत्र, ज्योतिष, चमत्कार, नारियल से फूल निकालना, नारियल को उल्टा करना, इन सब कार्यों में मजे लेते हैं तो वो कभी भी जिंदगी में सामायिक नहीं कर सकते हैं। वो एकांत में बैठ भी जायेंगे तो उन्हें यही याद आयेगा कि कैसे और दूसरों को बेवकूफ बनायें, कैसे और दूसरों को लुभायें, कैसी और कल्पना करें कि जिसके माध्यम से लोग हमसे आकृष्ट हों, यही उनके ध्यान में रहेगा और वो एक घंटा निकाल देंगे, उन्हें कुछ भी पता नहीं पड़ेगा कि हम कहाँ थे? हमने क्या किया? यह श्रावक की, श्रमण की भी स्थिति है। इसलिए मूलाचार आदि ग्रन्थों में आचार्यों ने कहा कि इस पंचमकाल में कोई भी मुनि महाराज इन मंत्र-तंत्र फालतू के चक्कर में न पड़े, नहीं तो उन्होंने जिसके लिए भेष धारण किया है वो उन्हें पता ही नहीं पड़ेगा। जैसे श्रावकों की स्थिति हो जाती है वैसे ही श्रमणों की स्थिति हो रही है, उन्हें पता ही नहीं रहता है कि हमने किसलिए दीक्षा धारण की है? पूरे जीवन भर इस प्रकार के माहौल अपने आस-पास बना लिये हैं कि फिर उसी

दूसरों को लुभाने के चक्कर में स्वयं की आत्मानुभव करने की योग्यता नष्ट हो जाती है।

में फँसते चले जाते हैं और उसके बिना फिर उनका मन नहीं लगता। आत्मध्यान तो दूर की बातें हैं, आत्मा के ज्ञान की भी बात उनके मुँह से नहीं निकल पाती है। ऐसी परिणतियाँ जिनकी बन गईं तो उनके लिए आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं कि तुमने ऐसे मुनि रूप को धारण करके भी अनन्त भव इसीलिए गुजार दिया, तुम्हें कुछ नहीं मिला क्योंकि जिसके लिए तुम्हें यह करना चाहिए था वो तो तुमने किया ही नहीं और तुम्हारे अंदर यह राग, द्वेष, मोह की परिणतियाँ बढ़ती चली गई। तुम कैसे अपनी आत्मा का ध्यान करोगे? आत्मा का ध्यान करने वाला योगी ज्यादा नहीं बोलता, अगर बोलता है तो राग रहित, द्वेष रहित, मोह रहित होकर के बोलता है और किसी व्यक्ति विशेष से कोई काम है तो बस अपना जो वास्तविक जरूरी काम होगा तो बोलेगा, नहीं तो उसके लिए किसी से भी बोलने की जरूरत नहीं है। आप देखोगे कि आप किसी से भी बिना बोले नहीं रह सकते हो लेकिन कई बार आपको ऐसा देखने में आ सकता है कि मुनि महाराज किसी से बिना बोले भी रह सकते हैं। बहुत कठिन काम है यह, बोलने से ही सम्बन्धों की शुरुआत होती है, मौन लेना अलग बात है और नहीं बोलना अलग बात है। आप अगर कभी यह इच्छा करो कि हमें आज बोलना नहीं है तो आप इस प्रकार का अभ्यास तो कर लोगे कि हमें बोलना नहीं है लेकिन आपका मन अगर भीतर से बोलने की इच्छा कर रहा है तो आप भीतर से उससे बोलते चले जायेंगे, मन बोलता चला जायेगा और आप बाहर से मौन भी रह जायेंगे। कई बातें अध्यात्म से हमें दूर कर देती है। इसलिए एक बार एक दोहा बनाया था–

''श्रमण वही जो श्रम करे, मुनि जो मन से मौन।
यति पालें गुण यत्न से, मात्र लिंग से कौन॥''

'श्रमण वही जो श्रम करे' कोई फावड़ा, कुदाली पसीना नहीं बहाना है। अपने मन को रोकना। यही श्रम करे। अपने मन को अपनी आत्मा के ही लिए प्रयत्नशील बनाना, यह बहुत बड़ा श्रम है। अपने ही ध्यान, अपने ही अध्ययन में मन को रमाना, यह बहुत बड़ा श्रम है, जो करे उसी का नाम श्रमण है।

'मुनि जो मन से मौन' मौन वचन से नहीं, मन से मौन। वचन से मौन तो बस हम मौन है और अगर आपने कभी यह वचन से मौन ले लिया और आपके सामने उसी दिन कोई अच्छा ग्राहक आ गया तो हूँ, हूँ, हूँ वहाँ पर जो लिखा है, कितना देना है, कितना लेना है वहाँ से सुनकर के इतना रख के चले जाना। यह मौन तो हो गया लेकिन वचनों से हो गया, मन से मौन नहीं हुआ। मन से मौन होने का मतलब, किसी से मतलब ही नहीं होना। वचन से मौन होगा तो वह बाहर आने की इच्छा करेगा। भीतर रहा नहीं जाएगा, उसे डर लगेगा, चुप रहने से, आदमी घबराने लग जाता है। अगर मन से मौन होगा मतलब मन ही जिस का बिल्कुल चुप हो गया तो अब उसे किसी से कोई फर्क नहीं पड़ेगा। कितना भी आवश्यक कार्य लेकर के कोई आया हो और उससे कितना ही

लाभ होने वाला हो। नहीं, अभी हमारा तुमसे कोई प्रयोजन नहीं है। सामायिक में ऐसे ही मन से मौन हुआ जाता है, गृहस्थ श्रावक भी जब सामायिक करता है तब अपने सामने कोई चोर भी आ जाये, चोरी करके चला जाए तो कहेगा नहीं कि तू कहाँ जा रहा है? क्या कर रहा है? बिल्कुल बैठा-बैठा ज्ञाता दृष्टा बना हुआ देखता रहेगा। पहले भी ऐसे गृहस्थ हुए हैं, आज भी हैं। अभी के एक व्यक्ति ने बताया कि जयपुर में एक व्यक्ति है वो सामायिक करने के लिए बैठे और जिस कमरे में वो सामायिक कर रहे थे, उसी कमरे में ऊपर से चोर घुस आये और उनका सब सामान लेकर के चले गए। वो बैठे-बैठे सामायिक करते रहे। इसे कहते हैं, मुनि जो मन से मौन। इसीलिए सामायिक के समय श्रावक को भी मुनि का दर्जा दिया गया है वो भी मुनिवत् हो जाता है। जैसे हमेशा मुनि मन से मौन रहते हैं वैसे ही सामायिक के समय पर श्रावक भी मन से मौन हो गया और जब मन से मौन हो गया तो फिर हूँ, हाँ करने की कोई जरूरत ही नहीं रह जाती। अगर तुम्हारा उस वस्तु से लगाव है तो वह सामायिक ही नहीं है और अगर सामायिक है तो उस वस्तु से कोई लगाव होगा ही नहीं। सामायिक में इसीलिए संकल्प लेकर के बैठा जाता है कि कोई भी दुनियाँ का पदार्थ, परिग्रह, आरम्भ हमारे लिए इतने समय तक मन, वचन, काय से नहीं है। यह संकल्प लेकर के निश्चिंत होकर के बैठ जाना सामायिक है। फिर उस सामायिक में जो लीन होता है तो फिर ऐसी घटनाएँ जब घटित होती हो तो उनसे भी वो क्षुभित नहीं होता, आनन्दित होता है। वो कहेगा आज हमारी बड़ी अच्छी सामायिक हुई क्योंकि मैं सब देखता रहा लेकिन मन में कोई खलबली नहीं हुई, आत्मा से बढ़कर कोई संपत्ति नहीं है और जो चैतन्य-संपत्ति आत्मा की है वो अपने पास में है बाकी तो सब अचेतन निधियाँ है यह आएँगी, जाएँगी, नष्ट होगी, इनमें हमारा कोई भी प्रयोजन नहीं है। इस बात की परीक्षा तो तभी होगी जब कुछ सामने ऐसी घटना घटे।

वचन व्यापार :

इसलिए आचार्य कहते हैं अगर आत्मध्यान के लिए उन्मुख होना चाहते हो तो वचन व्यापार कम करो, दूसरों से बोल-चाल कम करो। अगर करनी भी पड़े तो काम की करो, व्यर्थ की मत करो। मोबाइल में महीने में इतना बैलेंस चला जाता है, आप देखना कि काम की बात से जाता है या व्यर्थ की बात से ज्यादा जाता है। काम की बात कितनी सी होती है। जब कोई किसी से बात करता है तो देखते हैं कि वो घंटे-घंटे भर से उससे बात कर रहा है तो अपने आप समझ में आ जाता है कि घंटे भर तो कोई काम की बात हो ही नहीं सकती। काम की बात एक मिनट से ज्यादा होती नहीं है और बेकार की बात कितनी ही देर तक करते रहो। इसलिए जब कभी आप इतनी देर तक बात करते हैं तो आप व्यर्थ की बात कर रहे हैं और अगर कभी कोई चिपकू स्वभाव वाले व्यक्ति का फोन आ गया तो समझ लो उसका फोन व्यर्थ की बात करने के लिए आया होगा, फिर हो गया एक घंटा खराब। आप कितने ही कहते रहो कि ठीक है, ठीक है लेकिन वो बात करता रहेगा।

व्यर्थ की बात करने से मन बहुत उकसाता है इसलिये इसे दुष्ट कहा गया है।

ऐसे लोग अगर आपसे जुड़ गये तो कोई लाभ नहीं होगा, समय जायेगा, दिमाग में फितूरियों के अलावा कुछ नहीं मिलेगा। इसलिए जब कभी आपके मन के अन्दर आत्मानुशांति की बात आये तो आप यहीं से शुरू करें कि मैं दूसरों से बोलचाल कम करूँ। जितना है उतना ही काम से काम की बात करूँ और अगर आप व्यर्थ की बात करना बंद कर देंगे तो आप बहुत कुछ शांत होने लग जायेंगे। आप देखना व्यर्थ की बात करने के लिये यह मन हमें कितना उकसाता है। बगल की सीट पर कोई आकर के बैठा है तो आप उससे व्यर्थ की बात करोगे कि काम की करोगे? काम की बात तो जब होगी अगर वो परिचित हो लेकिन अपरिचित से काम की बात होने की संभावना ही नहीं है और आप उससे व्यर्थ की बात करना शुरू कर देते हो। इतने सारे लोग होते हैं ट्रेन में, क्या सबसे पूछने बैठोगे कि कहाँ से आ रहे हो? कहाँ जाओगे? क्या ticket checker हो गये। अगर आपकी उसी से पूछने की इच्छा है तो इसका मतलब यह है कि जो बगल में बैठा है हम उसी से अपना परिचय बनाने के लिए इच्छा करने लग जाते हैं। वह अपरिचित भी होता है तो हमारे मन में आता है कि यह हमको जान ले, हम इसको जान लें और जब ट्रेन से उतरे तो एक ऐसी स्थिति आ जाती है कि आज आपके साथ बैठकर के बड़ा अच्छा लगा और अच्छे लगते-लगते इतना भी अच्छा लग सकता है, फिर मिलेंगे। फिर कैसे मिलेंगे? तो आप अपना नम्बर हमें दे दो और हमारा नम्बर आप ले लो। अब यह जो आपने आगे तक का स्थिति का बंदोबस्त कर लिया है, यह अपने मन को एक बहुत बड़े परिचय में डाल दिया, अंधकार में डाल दिया। ये चीजें जो आपकी जिंदगी में होती चली जा रही है, इनसे आप कब तक उबर पाओगे। जब तक उबरने की उम्र है तब तक आपको इसी में आनन्द आयेगा और जब उम्र नहीं होगी तो फिर आपको साठ-सत्तर साल के बाद जो बचपन के किस्से हैं बस वो ही आपको याद आयेंगे। इसलिए आप देखना कि बूढ़े आदमी को जितना बचपना याद आता है उतना किसी जवान आदमी को नहीं आता है क्योंकि जवान को तो अपने दूसरे काम से फुरसत नहीं है और बूढ़े आदमी को फुरसत के अलावा कुछ है नहीं, जितना बचपना आपको बुढ़ापे में याद आयेगा उतना कभी भी जवानी में आपको याद नहीं आयेगा। यह मनोविज्ञान है, logic है क्योंकि उसके अन्दर इस बात की कोई जानकारी ही नहीं है कि इसके अलावा भी कुछ है और वह चीज आपको बुढ़ापे में परेशान करने लग जाएगी क्योंकि जवानी में आपने सम्बन्ध बनाए थे और बुढ़ापे में इतने सम्बन्ध बन नहीं रहे हैं जो बने हुए हैं उन्हीं में राग, द्वेष होगा। अगर उसने बहुत दिनों से याद नहीं किया, फोन नहीं किया तो कोई बात नहीं, उसने नहीं किया तो हम कर लेते हैं और आपने फोन, मैसेज किया और उसने कोई responce नहीं दिया तो आप उदास होते चले जाओगे। जो जुड़ेगा, जुड़ने के बाद में आपके अन्दर जो अपेक्षा उत्पन्न होगी, वो अपेक्षा की पूर्ति नहीं होगी। मन एकदम से उदास हो जायेगा।

मन का कार्य है— अपेक्षा रखना, योजना बनाना फिर पूर्ति ना होने पर खेद-खिन्न होना।

उदास होने का मतलब ही है खेद खिन्न हो जाना, परेशान हो जाना। दुख की पर्याय में पहुँच जाना और मन के अंदर दुख की उत्पत्ति मनोरंजन ने की। बस, मन को इसी में आनन्द आता है। किसी से कुछ पूछो, बताओ, जानो, किसी को अपना परिचय बताओ और इसी से मन पहले तो शुरुआत करता है फिर जो अपेक्षा रखकर करता है उसकी पूर्ति नहीं होती है तो वो खुद ही परेशान होता है, बस मन का और कोई काम है ही नहीं। खुद ही परेशान होना, खुद ही योजना बनाना, इतना ही मन का काम है और आत्मा बेचारी मन के कारण से जन्म-जन्म तक अपने मन के संस्कारो को ढोती रहती है। मन के कारण से आत्मा में संस्कार पड़ जाते हैं और उसे उसी के अनुसार चलना पड़ता है। उस आत्मा को अपना ध्यान इस मन के कारण से नहीं आ पाता है और इसी कारण से मन को दुष्ट कहा जाता है। कहीं सुनी सुनाई बातों से नहीं, अनुभव की बातों से कहो कि मन दुष्ट है। आपको कब अनुभव हुआ कि मन दुष्ट है वो अनुभव भी तब होगा जब आप शांति चाह रहे हो और मन शांत नहीं हो रहा हो, शांति उत्पन्न नहीं करने दे रहा हो तभी आपको अनुभव होगा कि मन दुष्ट है इसके कारण से शांति नहीं मिल पा रही है। इस दुष्ट मन को जब तुम अपने कब्जे में कर लोगे, जब अपने under में कर लेंगे तभी यह दुष्ट मन दुष्टता करना छोड़ेगा।

इसके संस्कारों से आप बच जाओगे, तब जाकर के आपके लिए अच्छा लगेगा। अब हम एकांत में बैठे केवल अपनी आत्मा के अंदर के गुणों का चिंतन, पंच परमेष्ठी का चिंतन कर पाएँगे। अब कोई हमारे लिए दूसरा प्रयोजन नहीं है क्योंकि जिनसे राग द्वेष, मोह उत्पन्न होते हैं उनसे कभी भी मन को शांति मिलने वाली नहीं है। इसलिए पंचपरमेष्ठी का चिंतन, आत्मा का चिंतन, ओम् ह्रीं अर्हं का चिन्तन करो क्योंकि इनसे कभी राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होगा। राग, द्वेष और मोह, यही तो इस आत्मा के लिए सबसे बड़े भार हैं जो कर्म का बंध निरन्तर कराये चले जाते हैं और इन्हीं के माध्यम से यह आत्मा संसार में जन्म मरण का चक्कर करता रहता है। कोई भी सम्बन्ध है वो आपके लिए थोड़े समय के लिए होंगे लेकिन कई सालों तक परेशानी के कारण बने रह सकते हैं। अब आप suppose करो जो आपको उस ट्रेन में, बस में मिला जिससे आपने see off कर दिया, उसको विदा कर दिया और आपने उसका नम्बर ले लिया। कभी आपके लिए चार, छः साल बाद कभी खबर आये कि उस आदमी का accident हो गया और उसकी मृत्यु हो गयी तो कुछ क्षण के लिए आपका मन भी दुःखी होगा, सिर्फ उस परिचय के कारण से। उस ट्रेन में कितने ही लोग बैठे थे, कितने ही लोग मर चुके होंगे। आपको किसी से कोई प्रयोजन नहीं होगा लेकिन जिससे आपका परिचय हो गया है उसके प्रति आपके मन में खेद उत्पन्न होगा। वो इस कारण से हुआ कि आपने उससे बातों ही बातों में सम्बन्ध बना लिया थे इसलिए मन भीतर रुकता नहीं है, मन भीतर से मौन हर किसी का नहीं हो पाता है, मन बात करने की इच्छा करता है और वह जितना अकेला

बैठेगा उसके अंदर उतनी ही बात करने की इच्छा और उत्पन्न होगी इसलिए आप कभी भी अकेले स्थान से उठकर के आओगे तो आपको सबसे ज्यादा लगेगा कि अब मैं सबके बीच में हूँ, सबके साथ बोलूँ तो आपका मन उसी में प्रसन्न होगा। मन को घबराहट होने लग जाती है इसीलिए जो भीतर के मन से उस मन के ऊपर संस्कार डालेगा वही उस ऊपर के मन को रोक पायेगा और उसी के लिए वह मन कब्जे में आयेगा, नहीं तो आप जैसे ही किसी को देखोगे आप क्षुब्ध हो जाओगे। फिर आपके लिए आत्म-ध्यान बहुत दूर की बात हो जाएगी। यह वो चीजें हैं जो आचार्यों ने अपने अनुभव से लिखी हैं। एकांत की इच्छा करने वाला योगी दूसरों के प्रति ज्यादा आदर, भीड़ से आदर नहीं करता, निर्जन स्थान से आदर को प्राप्त होता है और कुछ कार्य हो जाने पर थोड़ा सा बोलकर के भूल जाता है अगर वह थोड़ा सा बोलेगा तो अच्छा ही बोलेगा, पूरा तो बोलेगा ही नहीं क्योंकि थोड़ा बोलना है, ज्यादा बोला तो अनेक प्रकार के वचन सामने आ सकते हैं। अगर आप बोल नहीं रहे हो और आपको केवल suddenly भीतर से किसी एक particular time पर बोलना पड़े तो आप कभी भी उसको गाली नहीं दोगें क्योंकि आप पहले से सावधान हो कि हमें बोलना नहीं था, अब हमें बोलने की शुरुआत करनी है क्योंकि हमसे रहा नहीं जा रहा है तो हम बोल रहे हैं तो बोलते समय उसको कभी भी गलत वचन नहीं बोलोगे, दुर्वचन नहीं बोलोगे। अगर आपने साधना की है तो आपके मुँह से कभी दुर्वचन नहीं निकलेंगे और अगर साधना नहीं है तो मुँह से जब भी कुछ निकलता है, दुर्वचन के अलावा कुछ नहीं निकलता है। कई लोग अपनी इसी आदत से परेशान रहते हैं, पूछते हैं, महाराज क्या करें, हमारे मुँह से गाली कब निकल जाती है पता ही नहीं पड़ता, आदत पड़ी है। जब इतनी आदत पड़ी है तो इसका मतलब है कि हमारा वचनों पर कोई नियंत्रण नहीं है।

वचनों पर नियंत्रण नहीं होने का मतलब, मन पर नियंत्रण नहीं होना। आचार्य कहते हैं कि संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव के जो भी वचन होंगे वो मनपूर्वक ही होंगे। अगर आप ज्यादा बोलते हैं तो इसका मतलब है कि आपका मन भी ज्यादा चलायमान है और मन आपका स्थिर नहीं है, आपके वचन भी स्थिर नहीं होंगे इसलिए कई लोगों को यह ध्यान नहीं रहता कि हमने किससे क्या बोल दिया। उनको योगी मत समझ लेना जो बोल कर के भूल गया। दो तरह की स्थितियाँ हैं, एक तो उस वाचालपन की अधिकता हो जाती है तब भी यही स्थिति बनती है कि वह बोलकर के भूल जाता है। जैसे किसी को गुस्सा आया उसने कितनी गाली दे दी, कितना बोल दिया, उसे पता ही नहीं है कि उसने क्या-क्या बोल दिया। एक तो वो स्थिति है जिसमें उसको ध्यान नहीं रहता है और एक यह साधना की स्थिति है जिसमे वे थोड़ा सा बोलकर के भूल जाता है कि हमने कल किससे क्या कहा था? साधना की उत्कृष्टता पर और साधना की निम्नता पर परिणति दोनों की एक सी दिखाई देगी। लेकिन एक बहुत क्षुब्ध होगा और एक बहुत शांत होगा। जो बहुत बोलकर के ध्यान

हमेशा कम बोलना, हितकारी बोलना और दुर्वचन कभी नहीं बोलना चाहिये।

नहीं कर रहा है, इसका मतलब है वो अपने मन को नियंत्रण में नहीं रखे हैं और ऐसी स्थिति जब आ जाती है तो आप देखोगे कि आदमी गलत भी बोल जाता है तो उसे पता नहीं रहता है। कितनी बार दूसरों के लिए गलत वचन बोल जाते हैं लेकिन बोलने के बाद में वो वचन आप को ही काटेंगे। अगर आप ने किसी को पीड़ा दी है तो वह पीड़ा पहले आपके अंदर उत्पन्न होगी और वो पीड़ा आपके अन्दर भी बहुत दिनों तक रहेगी क्योंकि अगर आपने किसी को पीड़ा दी है तो आप भी पीड़ित जरूर होंगे। यह जरूरी नहीं है कि हमने आपको वचनों से पीड़ा दे दी तो केवल आप ही पीड़ित हुए, वो वचन बोलने वाला भी पीड़ित होगा। तब वह दुर्वचन बोलने में आते हैं। इसलिए आचार्य कहते हैं कि कभी भी दुर्वचन नहीं बोलना। अच्छे वचन भी बोलना तो थोड़े से बोलना, हितकारी बोलना। जोर से बोलना, धीमे बोलना यह अलग बात है लेकिन प्रयोजन में अहितकारी वचन नहीं बोलना। हितकर प्रयोजन अगर बना रहेगा तो उस प्रयोजन के माध्यम से आपको कभी भी कष्ट नहीं होगा और जहाँ पर व्यंग्य कसने का प्रयोजन आ जायेगा तो आपको भी दुख होगा, दूसरों को भी दुख होगा। महाभारत इस कारण से ही हुई थी। इतना ही कहा था उस द्रोपदी ने जब वो दुर्योधन उसके महल में जा रहा था ''अंधों के अंधे ही होते हैं।'' यह कितने कठोर वचन हैं। इधर आचार्य कहते हैं कि कोई अगर वास्तव में भी अन्धा हो तो उससे अन्धा मत कहना। कोई उसे सूरदास कहता है, कोई उसे प्रज्ञा चक्षु कहता है। यह उसके नाम रख दिये जाते हैं। वो प्रज्ञा चक्षु है मतलब उसकी चरम चक्षु तो बंद हैं लेकिन प्रज्ञा की आँखें खुली हैं, भीतर की आँखों से देखता है। इसे कहते हैं प्रिय वचन, हितकारी वचन जो दूसरों को पीड़ा न पहुँचायें। जो आँख वाला है, किसी कारण से उसकी ही आँखों के ऊपर ऐसा रिफ्लेक्सन पड़ रहा है। जहाँ पानी है वहाँ सूखा उसे दिखाई दे रहा है और जहाँ सूखा है वहाँ पानी दिख रहा है, वो पानी में चलता जा रहा है। वो महल इस तरह से बनाया गया था वो काँच के ऐसे रिफ्लेक्शन थे वहाँ पर, जहाँ पर पानी था वहाँ तो वो गिर पड़ता था और जहाँ पर सूखा था वहाँ पर ऐसे सँभल-सँभल कर पैर रखता था जैसे पानी में चल रहा हो। तब वो कहती है कि देखो अंधों के अंधे होते हैं। यह वचन ही उस महाभारत के कारण बन गये थे। घर में कलह, बड़े-बड़े झगड़े केवल इन वचनों के कारण से हो जाते हैं। अगर आप मौन रहना सीख लें, कम बोलना सीख लें तो आपकी आधी समस्याएँ तो अपने आप शांत हो जाएंगी। आप अगर चुप हो गये तो समझ लो पूरा माहौल शांत हो गया। मगर आपकी स्थिति ऐसी होती है कि आप दूसरों को तो चुप कराना चाहते हो पर खुद चुप नहीं होना चाहते। आप यह तो कहोगे कि वो चुप हो जाये, वो बंद हो जाए, पहले तुम तो बोलना बंद कर दो। जब तुम बंद हो जाओगे तो वो कितने देर तक बरसेगा। थोड़ी देर बरसेगा, अपने आप वो भी चुप हो जायेगा। अगर यह परिणति अपने अन्दर आती है तो वह कहलाती है आत्म सुधार की परिणति, आत्म

नियंत्रण की परिणति और इस परिणति को जितना हम अपने अंदर लायेंगे उतना ही सुख हम भीतर से महसूस करेंगे। आपके अन्दर की योग्यता बढ़ेगी और आप आत्म शांति का अनुभव कर सकेंगे। आप इस आत्म-ध्यान के योग्य बन सकेंगे।

इसलिए आचार्य कह रहे हैं कि हमेशा कुछ भी वचन-व्यापार हो तो उनको बहुत देर तक याद नहीं रखना, विस्मरण शक्ति भी बढ़ाना। अगर योगी बनना चाहते हो तो स्मरण शक्ति बढ़ाने से योगी नहीं बनोगे, विस्मरण की शक्ति से बनोगे और यह भी याद रहे कि क्या स्मरण के योग्य है और क्या विस्मरण के योग्य है? बड़े-बड़े श्रुत केवली होते हैं। उनके बारह अंग, चौदह पूर्व, सारे के सारे शास्त्र उनको याद रहते हैं। करोड़ों-करोड़ों पद वाले शास्त्र याद रहते हैं। लेकिन बाहर की कोई भी बात उन्हें याद नहीं रहती है। जैसे ही वो अपनी आँख बन्द करते हैं तो उन्हें श्रुत-ज्ञान से आत्मा का अनुभव होने लग जाता है, अपनी आत्मा के निकट पहुँचने लग जाते हैं। उनका श्रुतज्ञान उन्हें कभी भी परेशान नहीं करता क्योंकि उस श्रुतज्ञान में यह सारा का सारा श्रुत भरा रहता है। यह जो जिन वाणी है उसके सार भरे हुए होते हैं। इसलिए उन्हें कभी भी इस शास्त्र-ज्ञान से परेशानी नहीं होती है। परेशानी तो होती है, व्यवहारिक ज्ञान से, जितना ज्यादा आपका व्यवहारिक ज्ञान होगा उतना ही आप आत्मध्यान से दूर रहेंगे क्योंकि व्यवहारिक ज्ञान ही आत्मज्ञान के लिये बाधक है। शास्त्र ज्ञान आत्म-ज्ञान के लिये बाधक नहीं है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि इस प्रकार के व्यवहार ज्ञान अपने आत्म-ज्ञान, आत्मध्यान में बाधक बनते हैं इसलिए इस व्यवहार ज्ञान से बचें। यह अगर आपसे हो जाएगा तो ही आप इस प्रकार के अनुभव कर पायेंगे जो अनुभव आत्मा के साथ योगियों का प्राप्त होते हैं। यह आत्म-अनुभव की दशा ही इस मनुष्य-जन्म का वास्तविक आनन्द है। यह ही इस मनुष्य जन्म की सार्थकता है, यह ही आनन्द इस मनुष्य जन्म में लेने योग्य है। बाकी तो सब आप ले चुके हैं, थक भी चुके हैं लेकिन फिर भी आपके अन्दर वह पुरुषार्थ नहीं हो पा रहा है कि इसको छोडकर के हम आत्म-आनन्द की ओर उन्मुख हों। यह परिणति आपको बनाना है यह ही इस इष्टोपदेश को सुनने का और समझने का प्रयोजन है।

जितना ज्यादा आपका व्यवहारिक ज्ञान होगा उतना ही आप आत्मध्यान से दूर रहेंगे।

ज्ञानी की परिणति

41

ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु पश्यन्नपि न पश्यति॥

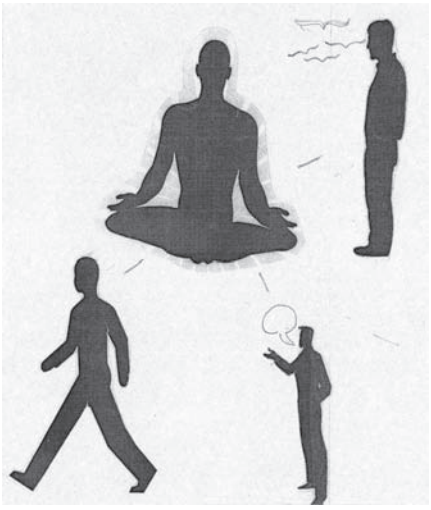

अन्वयार्थ— **(स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु)** किन्तु आत्म तत्त्व में स्थिर रहने वाला तो **(ब्रुवन् अपि)** बोलता हुआ भी **(न हि ब्रूते)** नहीं बोलता है **(गच्छन् अपि)** चलता हुआ भी **(न गच्छति)** नहीं चलता है और **(पश्यन् अपि)** देखता हुआ भी **(न पश्यति)** नहीं देखता है।

- **योगियों की परिणति**
- **स्थिर मन**
- **ज्ञान**
- **माध्यस्थ भाव**

योगियों की परिणति :

इस इष्टोपदेश ग्रन्थ में आचार्य श्री पूज्यपाद महाराज योगियों की परिणति का वर्णन कर रहे हैं। योगियों की दशा का वर्णन कर रहे हैं कि जो व्यक्ति अपनी आत्मा का ध्यान करता है, जो व्यक्ति आत्मानुभव में आनन्द मानने लग जाता है उसके लिए क्या-क्या घटित होने लगता है। वो यहाँ बताया जा रहा है। धीरे-धीरे उस आत्मानुभव की स्थिति में जब वह योगी स्थिर होने लग जाता है तो उसके लिए बाहर की कोई भी चीजें बाहर की क्रियाओं के साथ यदि होती भी हैं तो वह उसके लिए कोई प्रभाव नहीं डालती। एक स्थिति ऐसी होती है जिस स्थिति में वह बोलते हुए भी नहीं बोल रहा होता है।

'ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते' यदि आप अपने आप में स्थिर हो जाओगे तो आपकी परिणति ऐसी होने लग सकती है कि आप बोले तो भी आप नहीं बोल रहे होंगे, ऐसा आपको भी भान होगा और आपके अन्दर किसी भी प्रकार की हलचल उत्पन्न नहीं होगी। जब आप राग-द्वेष के साथ बोलेंगे तो आपके अन्दर हलचल उत्पन्न होगी और जब आप राग-द्वेष से रहित होकर के बोलोगे तो आपके अंदर कोई हलचल उत्पन्न नहीं होगी। यह एक प्रभाव होता है जो अपनी आत्मा की भावना से अपनी आत्मा की स्थिरता से उन योगियों को प्राप्त हो जाता है। आप देखेंगे कि जब आप कभी किसी से ज्यादा बोल देते हैं तो आपका माथा दुखने लग जाता है, आपको एक थोड़ा सी चकरावट आ जाती है और अगर आप बहुत देर तक बात करते रहे तो आप बहुत ज्यादा थक भी सकते हैं। लेकिन योगी बोलकर के भी थकता नहीं है क्योंकि वह बोलता तो ऊपर ऊपर से है, रहता तो भीतर है। आप जब बोलते हो तो भीतर और बाहर होकर के बोलते हो और जिससे बोलते हो पूर्ण राग और द्वेष के साथ बोलते हो, आप किसी से बात करोगे तो पूर्ण घनिष्ठता के साथ बात करोगे और अपने राग का सारा का सारा प्रभाव उसके ऊपर डाल दोगे तो यह थकाने वाली चीज होती है। आचार्य कहते हैं कि यह हमारी रागात्मक और द्वेषात्मक परिणति ही होती है जो हमको थकाती है।

आत्मा के अन्दर थकान तभी उत्पन्न होती है जब हम राग और द्वेष में अधिक प्रवृत्ति कर जाते हैं और वह आत्मा अपने ही तत्त्व में स्थिर नहीं होता, अपने आप में स्थिर नहीं होता तो वह बोलते हुए भी बहुत बोलते हुए चला जाता है और योगी होगा तो बहुत बोलकर के भी कुछ नहीं बोलेगा, ऐसा समझ लो। बातें सब कुछ उल्टी होती चली जाती हैं इसलिए उल्टी हो जाती है क्योंकि योगी के स्वभाव में और भोगी के स्वभाव में बहुत बड़ा अन्तर होता है वो अन्तर इसलिए आ गया कि आपने अपने मन को स्थिर नहीं किया, अपने मन को बाहर ही बाहर दौड़ाया। जब हमारा मन अपनी आत्मा में स्थिर हो जाता है तो यह चीजें अपने आप घटित होने लग जाती हैं इसलिए यहाँ पर एक शब्द दिया है,

'स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु'

हमारी रागात्मक व द्वेषात्मक परिणति ही हमें थकान देती है।

जिसने अपने आत्म तत्त्व को स्थिर कर लिया है या यूँ कहें कि जिसका मन अपने ही आत्म तत्त्व में स्थिर हो गया है तो फिर वह बाहर बोलेगा तो बोलते हुए भी नहीं बोलेगा आगे कहते हैं–

''गच्छन्नपि न गच्छति''

चलते हुए भी नहीं चल रहा है क्योंकि उसके चलने से, उनके बोलने से उसका कहीं पर भी राग और द्वेष भाव नहीं हो रहा है। जो इन रागात्मक व द्वेषात्मक परिणति के अभाव से इस प्रकार की क्रियाएँ करने लग जाता है तो वह योगी अपने आत्म तत्त्व में स्थिर कहा जाता है। आप इसे इस तरह से समझ सकते हैं कि आपका मन जब कभी किसी एक बात में स्थिर हो जाता है तो आप उसी बात को सोचते हैं, ध्यान में रखते हैं और आस-पास कुछ भी होता है उस पर आप ध्यान नहीं देते।

मानलो आपको कहीं से कहीं पर जाना है। जैसे बिजौलिया जाना है तो आपके मन में यही बात चलती रहती है। आपने मन को एक point पर स्थिर कर लिया, अब जब आपने अपना एक स्थिर लक्ष्य बना लिया तो अब आपके समक्ष कुछ भी आता रहेगा, आप आगे बढ़ते जाओगे क्योंकि आपने एक लक्ष्य बना लिया है कि हमें जल्दी से वहाँ पहुँचना है और हमें अपना वह लक्ष्य दिखाई दे रहा है। लक्ष्य बन जाने से स्थिरता आ जाती है और जब स्थिरता आ जाती है तो बाहर की चीजें कुछ भी हमारे सामने होती रहें, हम उनके बीच में भी होंगे तो भी हमारे ऊपर प्रभाव नहीं पड़ेगा क्योंकि हमारा मन एक जगह पर स्थिर हो गया है। यह आपके लिए उदाहरण है, इसी तरह से आचार्य कहते हैं कि जिसका मन अब अपनी ही आत्मा में स्थिर हो गया तो उस योगी के लिए भूल से भी किसी के प्रति उसके अन्दर कोई राग, द्वेष नहीं होगा, कोई फर्क नहीं पड़ेगा। कितने ही लोग बैठे रहें, कितने भी लोगों से वह बोलकर के भी नहीं बोलेगा। जब कार्य होता है तब थोड़ा सा बोलता है और वह बोलकर के भूल जाता है। वही चीज यहाँ पर भी लागू रखना है, ऐसा नहीं कि वो बोलता ही रहता है फिर भी नहीं बोल रहा है।

यहाँ पर उसी से अर्थ लगाना कि वह बोलकर के भूल गया। इसलिए जो उसने थोड़ा सा भी बोला तो वह उसके लिए बोलना न बोलने के बराबर ही रहा। जब आप कभी हमारे सामने आकर के बैठ जाते हो तो आपके 'नमोस्तु' करने पर महाराज जी ने आशीर्वाद दिया और फिर वो अपने काम में लग जाते हैं। आपने अपना परिचय दिया तो महाराजजी ने बस हाँ हाँ में जवाब दिया, फिर वे काम में लगे रहते हैं। कभी-कभी कुछ पूछ भी लेते हैं क्या चल रहा है? बस थोड़ा सा बोल लेते हैं लेकिन आपको इतना बोलने से संतुष्टि नहीं मिलती है। आपको संतुष्टि तब मिलती है जब आपसे बहुत बोला जाए। आपसे थोड़ा कुछ बोल लिया और वापस अपना काम करने में, पढ़ने में लग गये।

लक्ष्य बन जाने से स्थिरता आती है।

स्थिर मन :

इसलिए आचार्य कह रहे हैं कि जब आप अपनी आत्मा में स्थिर होने लग जाएँ, अपने आप में अपना मन लगने लग जाए, तो इतने अपने आप में perfect हो सकते हैं कि आप थोड़ा सा बोल भी लें तो आपको लगेगा ही नहीं कि हमने बोला है, कहीं से कहीं पर चले जाएँ तो आपको लगेगा ही नहीं कि यहाँ पर आने से क्या हुआ, वहाँ पर रहने से क्या हुआ, जहाँ पर जैसे रहे वैसे ठीक है क्योंकि रहना तो उसे वही है, रहना वहाँ नहीं जो आपको दिख रहा है, रहना तो अपने आत्मा में ही है। वह अपने आत्म-तत्त्व में स्थिर हो रहा है इसलिए अगर वह चलते-चलते एक गाँव से दूसरे गाँव पहुँच गया, गाँव वालों को तो बड़ी खुशी होगी कि हमारे गाँव में महाराज आ गये। लेकिन महाराज जी को क्या खुशी? उन्हें तो कहीं पर भी नहीं रहना, उन्हें तो अपनी स्थिरता जहाँ बनाये हैं वहीं पर रहना। बाहर से उनके पैर चल रहे हैं और पैर चलते-चलते पूरे भारत घूम लेंगे लेकिन उनका मन अपने आप में रहेगा। वे अपने मन में ही रहेंगे, बाहर से घूमते हुए जरूर नजर आयेगें लेकिन भीतर से अपने में ही रहेंगे इसे कहते हैं–

''गच्छन्नपि न गच्छति''

चलते हुए भी वह नहीं चल रहे हैं, दशा बड़ी उल्टी होती है आपके लिए, आप दुनियाँ में घूम रहे हो फिर भी आपका मन स्थिर नहीं है। मुनि महाराज दुनियाँ में घूम रहे हैं लेकिन उनका मन स्थिर है। यूँ कहें कि आपने अपने लिए एक स्थिरता बना ली है कि आपका एक परमानेन्ट एड्रेस है, आप उस परमानेन्ट एड्रेस को देकर के दूसरे से कह देते हो, हाँ आपको हमसे मिलना हो तो यहाँ पर आ जाना, यह हमारा परमानेन्ट एड्रेस है। आपने स्थिरता बनाई बाहर से और भीतर से भारी अस्थिरता है और जो योगी, मुनि महाराज या जो मोक्ष मार्ग पर चलने वाले होते हैं वो स्थिरता भीतर से बनाते हैं और बाहर से कितना भी कुछ अस्थिर बना रहे उन्हें उससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। यह उल्टी दशा हो जाती है आपकी और आपके आत्मा के अनुभव करने वाले जीव की। ऐसा नहीं है कि आप इस प्रकार की स्थिति में नहीं पहुँच सकते हो। आप अब भी पहुँच सकते हो आत्मा के अनुभव करने की दशा में, आत्मा की स्थिरता की दशा में यदि आपका मन मुड़ जाएगा तो, आपके बाहर के काम भी होते रहेंगे और आपका इस जन्म में होने वाला बहुत बड़ा काम है, वो हो जायेगा। अभी तो आपने यह सोच लिया है कि हमें अभी तो बाहर के बड़े-बड़े काम करना है, भीतर के काम से आपको कोई लेना-देना नहीं है जबकि सबसे बड़ा काम यह है कि अपने मन को अपनी आत्मा में टिकाना। आप अपने मन को टिका तो देते हैं लेकिन अपनी आत्मा में नहीं टिकाते हैं और यह सबसे कठिन काम है। इस काम को करने में जिसका मन लग जाता है उसे फिर बाहरी किसी भी काम को करते हुए भी उसे काम करने जैसा नहीं लगता है। करेगा सब लेकिन बात वही आ जायेगी 'कुर्वन्नपि न कुर्वते' करते हुए भी नहीं कर रहा है। यह बातें केवल इतनी नहीं, जितनी

अपने आप में मन लगाना यानि अपनी आत्मा में स्थिर होना।

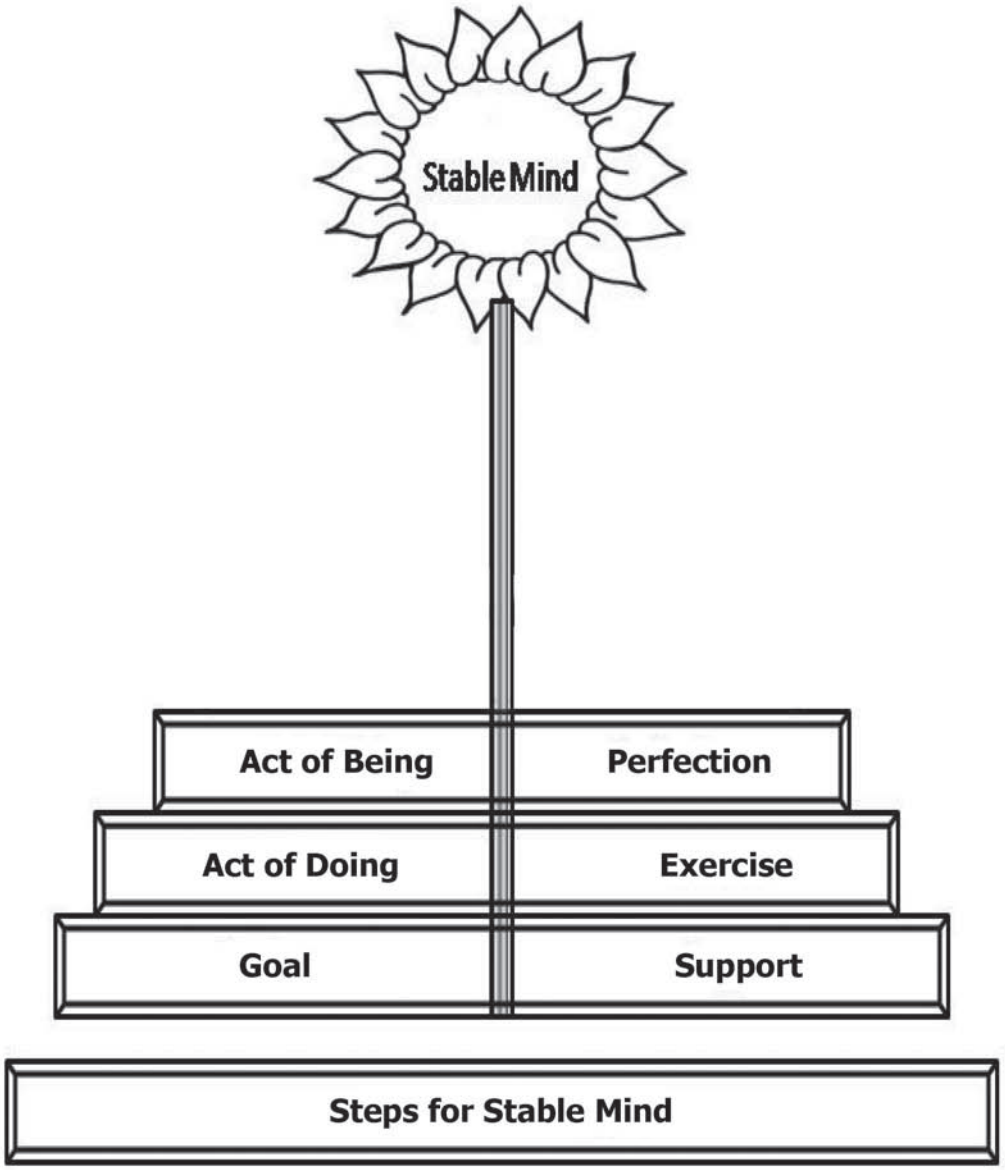

इसमें लिखी है 'बोलते हुए नहीं बोल रहा है', चलते हुए भी नहीं चल रहा है। आप इसमें अपनी हर क्रिया को जोड़ सकते हो। अपना business, अपना काम करते हुए भी नहीं कर रहा है क्योंकि उसका मन, उसकी स्थिरता दूसरी जगह पर लगने लगी है। अपनी एक काम में स्थिरता होगी तो

मन को पंचेन्द्रिय विषयों से हटाकर अन्य विषय में लगाना होता है।

अन्य काम छूट जायेंगे। अगर अपनी आत्मा में स्थिरता होगी तो बाकी सब काम छूट जायेंगे। इस स्थिति में आने पर ही सबसे ज्यादा आनन्द आता है।

आप देखोगे कि जिन लोगों के लिए किसी भी काम की शुरुआत होती है, उन्हें पहले पहले उस काम में बड़ा रोमांच होता है, भीतर से बड़ा excitement होता है और जब वो काम करते-करते किसी काम में habitual हो जाते हैं और उस काम में perfection आ जाता है तो फिर वह उनके अन्दर excitement खत्म होने लगता है क्योंकि इसका कारण यही है कि जैसे-जैसे आप भीतर से स्थिरता प्राप्त करने लगे तो आपके अन्दर अपने आप यही स्थिति आएगी कि हम यह काम कर तो रहे हैं, वो अपने आप हो रहा है, हमें करना नहीं पड़ रहा है। पहले पहल करनी पड़ती है और बाद में काम होता रहता है। पहले होता है act of doing फिर होता है act of being यह सिर्फ होने की स्थिति है जिस तरह से बाहर लौकिक कार्यों में होता है, वैसे ही आत्मा के विषय में भी होने लग जाता है। सबसे पहले मन को आत्मा में लगाना पड़ता है और जब वो अभ्यस्त हो जाता है तो मन अपने आप आत्मा में रहने लग जाता है। उसे कुछ करना नहीं पड़ता है। लोग अपने मन को स्थिर करने के लिए बड़ी-बड़ी exercise करते हैं, बड़े-बड़े प्राणायाम करते हैं, बड़े-बड़े ध्यान के आलम्बन लेते हैं लेकिन आचार्य कहते हैं कि आपको यह सब आलम्बन लेने की भी कोई जरूरत नहीं है। मन को स्थिर करने के लिए आप केवल अपने मन को पंचेन्द्रिय के विषय से हटाकर के अन्य विषय में लगा दें तो वह अपने आप स्थिर होने लग जाएगा। सबसे बड़ा विषय है कि आप जो हैं, उसके बारे में जानकारी प्राप्त करें। आप सबको मालूम है कि मैं आत्मा हूँ, मैं जीव हूँ लेकिन आपको अपनी ही आत्मा और अपने ही जीव के बारे में जानकारी नहीं है। शरीर के बारे में जानकारी है, मन के बारे में जानकारी है, अपनी इन्द्रियों के बारे में जानकारी है, अपने बाहरी व्यापार के बारे में जानकारी है लेकिन अपनी आत्मा के बारे में वो जानकारी नहीं है जो होनी चाहिए। अगर आपका मन उस आत्मा की बात, आत्मा के गुण, आत्मा के लक्षण को अच्छे ढंग से पहचान ले तो आपका मन एक ऐसी किसी अद्‌भुत, अलौकिक चीज में लग जाएगा और अपने आप यह बाहर की चीजें बिल्कुल नीरस लगने लगेंगी, अपने आप आपको बाहरी चीजों में रस कम हो जायेगा। वह परिणति जब आपके अन्दर आएगी तो वह कहलाएगी कि आपको अपनी आत्मा का ज्ञान हुआ। असल में ऐसा होता है कि हम अपने मन को रोकने के लिए या रमाने के लिए उसे अन्य स्थान पर तो ले जाते हैं लेकिन जहाँ पर उसे लगाकर के हमारे मन के अन्दर एक उद्‌भूत भाव उत्पन्न हो, वहाँ पर उसे हम नहीं लगाते हैं।

मन जब आत्मा के विषय में जानने लगे, मन जब आत्मा का ज्ञान करने लगे तभी वह मन आत्मा में टिकेगा क्योंकि जिस विषय का उसको ज्ञान होगा उसी विषय को मन चाहेगा। हमारे मन के अन्दर ज्ञान की कमी है, बाकी के सब ज्ञान भरे पड़े हैं। हमें चाहिए कि आत्मा को जानें, देखें,

आत्मा में स्थिरता होगी तो सब काम छूट जाएंगे।

समझें और जब उसको देखेंगे, जानेंगे तो आत्मा का गुण, लक्षण समझ जायेंगे। अभी तक हम उस आत्म तत्त्व को नहीं जानते बाकी सब जानते हैं।

इसलिए मन सब जगह लग जाता है आत्मा में नहीं लग पाता है, कभी उस मन से कहो कि तुझे स्थिरता प्राप्त करने लिए कहीं बाहर जाने की जरूरत नहीं है, किसी भी चीज पर अपना मन टिकाने की जरूरत नहीं है। वैसे तो लोग अपने मन को टिकाने के लिए कई-कई चीजों का आलम्बन लेते हैं, श्वाँस पर भी मन टिकाया जाता है। श्वाँस पर आपने मन टिकाया, जब तक टिकेगा तब तक आपकी श्वाँस चल रही है और मन श्वाँस के साथ आरोहण अवरोहण करेगा। अगर आपको दमा की बीमारी हो गई है और आपकी श्वाँस फूलने लग गई तो आपका मन उस श्वाँस पर कहाँ टिकेगा? जब आप मृत्यु के निकट होंगे तो आपके लिए श्वाँस का भी अनुभव नहीं होगा क्योंकि नाक से श्वाँस लेना एक बहुत बड़ा आयाम करना है और जब मृत्यु निकट आती है तो नाक से भी श्वाँस छूट जाती है। बस भीतर ही भीतर वो पेट में चलती रहती है। नाक से श्वाँस लेना और छोड़ना यह अभ्यास भी तभी तक है जब तक आपकी जिन्दगी अच्छी है। अभी आपकी उम्र है, आपके अन्दर ताकत है। जब यह स्थिति बन जाये कि आप नाक की श्वाँस को भी अनुभव न कर पायें तब आपके लिये क्या स्थिति बनेगी? आचार्य कहते हैं भीतर अगर मन के अन्दर आत्मा का ज्ञान होगा तो वह श्वाँस छूटती हुई भी दिखाई देगी तो भी वह ज्ञान नहीं छूटेगा क्योंकि श्वाँस तो छूट जायेगी, ज्ञान अपना कभी भी नहीं छूटता है। ज्ञान मृत्यु के, शरीर के छूटने के बाद भी रहेगा इसलिए आचार्य कहते हैं कि अपने मन को उस ज्ञान की ओर ले जाओ। ज्ञान मन में है, बुद्धि में नहीं है, ज्ञान आत्मा में है और उसी से ज्ञान निकल कर के बुद्धि और मन के माध्यम से चलता है तो हमारा शरीर और यह पूरा संसार उससे चलता हुआ दिखाई देता है।

ज्ञान :

ज्ञान का मूल origin हमारा आत्मा है। जो हम देख रहे हैं इस दुनियाँ को, उस देखने वाली शक्ति का मूल origin वह भी हमारा आत्मा है, मन और इन्द्रियाँ नहीं हैं। मन को जो नहीं दिखता है उसको भी देख लेता है। आँखों से तो जो सामने है वो ही दिखता है। जब मन भी अपना इस तरह से छूट जाता है तभी आत्मा से दिखाई देता है। वह आत्मा ही ज्ञान और दर्शन या जानने और देखने की शक्ति का मूल स्त्रोत है। उस मूल स्त्रोत की ओर मन को लगा देना, मूल स्त्रोत की ओर मन को पहुँचा देना, यह अपने आप में ऐसा अद्भुत परिणमन करा देता है कि मनुष्य जन्म इसी अद्भुत परिणमन के लिए मिला है। बाहर के ज्ञान होकर के कितनी बार छूट गये हैं लेकिन आत्म ज्ञान कभी भी नहीं हुआ है।

knowledge of oneself, अपने स्वयं का ज्ञान होना। अभी तक हमने जो ज्ञान किया है वो that is knowledge of scriptures, knowledge of books. वो किताब, शास्त्र का ज्ञान है

ज्ञान आत्मा में है और वहीं से निकलकर बुद्धि और मन के माध्यम से चलता है।

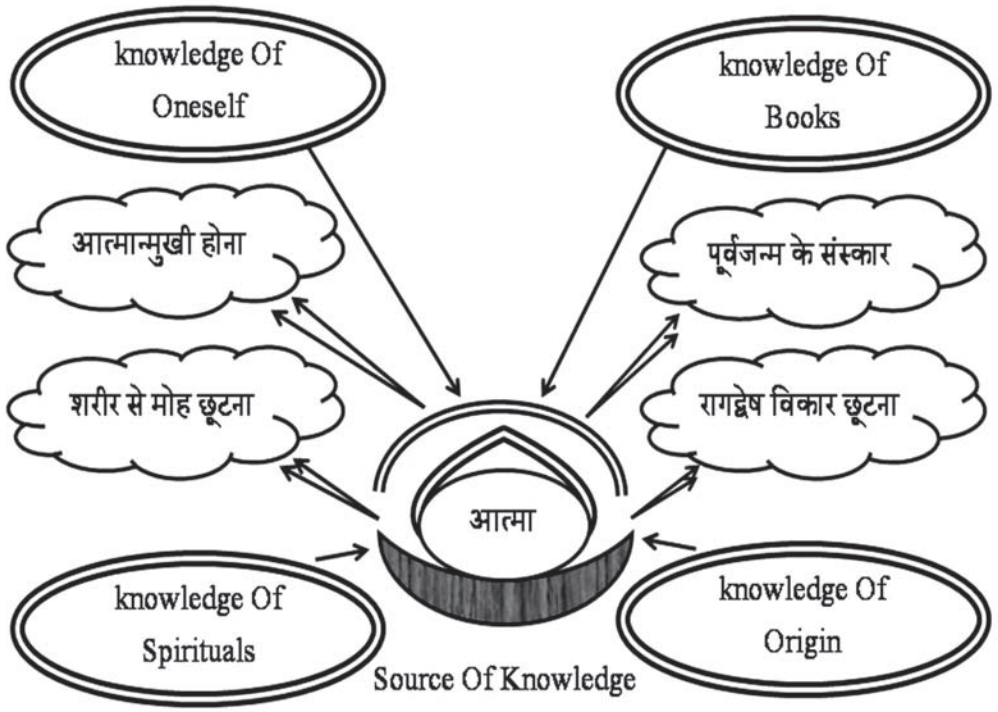

लेकिन अब knowledge of self spirit होना जरूरी है क्योंकि source of knowledge यही है।

जहाँ से यह ज्ञान उत्पन्न हो रहा है, जहाँ से यह देखने की क्रिया चल रही है, उसको source की तरफ ले जाना। यह जानना और देखना हो रहा है और वह अपना एक अलग द्रव्य, तत्त्व है। उस तत्त्व की ओर देखने, जानने में लगाना और जब मन उसे जानने, देखने में प्रभावित होने लग जाएगा तब वह मन कहीं बाहर आ भी जाएगा तो किसी भी चीज से प्रभावित नहीं होगा क्योंकि आचार्य कहते हैं कि अगर तुम्हें चेतन का आभास होने लगे तो यह सब तुम्हें अचेतन दिखाई देगा। इसी अचेतन में राग–द्वेष इसी कारण से होते हैं क्योंकि मन में अभी चेतना का आभास नहीं है। सभी अचेतन पदार्थों से विलक्षण, भिन्न रूप जो चेतन पदार्थ है उस चेतन आत्मा की ओर देखना, उसका श्रद्धान करना तो आपके अन्दर यह सारा का सारा जगत अचेतन दिखाई देगा। जब यह जगत अचेतन दिखाई देगा तो आपके अन्दर किसी से भी राग, द्वेष करने की कोई इच्छा नहीं होगी और इसी का नाम है ''मन के अन्दर स्थिरता आ जाना''। मन का राग, द्वेष के विकारों से छूट जाना। मन के अन्दर के राग, द्वेष के विकार तभी छूटेंगे जब आप आत्मा की ओर उन्मुख होंगे, आत्मा के

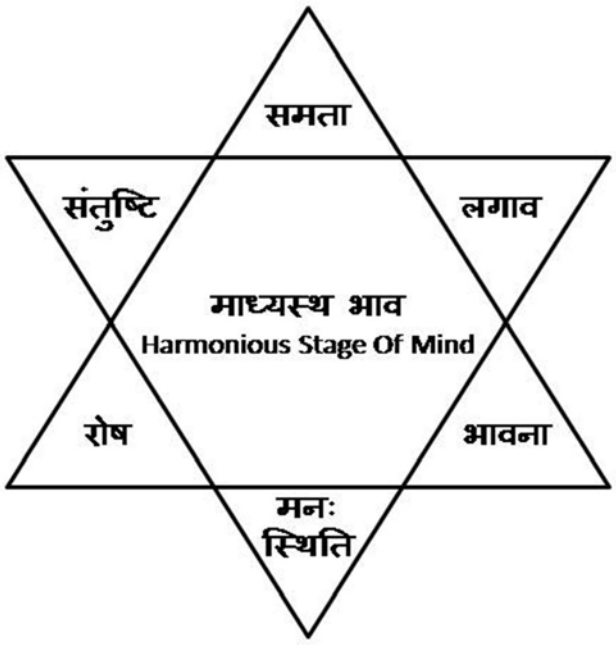

लक्षण, उसके बारे में जानेंगे। बाकी की सब चीजें हमने पढ़ी हैं जानी हैं लेकिन यह चीज न पढ़ी है, न जानी है और न इसका अभ्यास किया है। हमारा मन हमेशा आँखों के माध्यम से दूसरे की ओर देखता है और उसी मन को जब हम आँख बंद करके अपनी ओर देखने को उन्मुख करें तो आपके शरीर से भी आपका मन छूटने लगेगा। अब आपका मन अपने आप भीतर ही भीतर आत्म-तत्त्व का आभास करेगा तो उसे लगेगा चेतना से बढ़कर के दुनियाँ में और कोई पदार्थ नहीं है जो देखने लायक हो। हम जो भी इन आँखों से देखेंगे तो वह चेतन देखेंगे कि अचेतन देखेंगे, सब अचेतन दिखाई देता है अचेतन्य पदार्थ तो आँखों से दिखाई देता है, चेतन पदार्थ तो आँखों से दिखाई ही नहीं देता है और देखने योग्य जो है वो चेतन ही है अचेतन तो सब कुछ खुला पड़ा है। जिनको जितना भीतर राग है उतना वो अचेतन पदार्थ से चिपक जाते हैं और जिनको राग नहीं है उन्हें अचेतन पदार्थ में कोई चिपकाहट नहीं होती है। अचेतन पदार्थ से चिपकने का मतलब है कि हमारे पूर्व जन्म का संस्कार। पहले आत्मा के द्वारा इस तरह से अनंत बार रागात्मक परिणति की गई, उसके संस्कार पड़े हुए हैं जिसके कारण से आत्मा अचेतन पदार्थ से चिपकता है और चेतन पदार्थ होकर भी उसे अपने चेतन का कोई आभास नहीं होता है तो आत्मा को, चेतना को अपना ज्ञान तब होगा जब वह आँख बन्द करेगा। आँख बन्द करके अपने मन को अपनी आत्मा में लगाएगा तब उसके अन्दर कुछ राग व द्वेष छूटेगा और जब वो उसे ढंग से अनुभव करने के बाद में अपनी आँख खोलेगा तो उसे लगेगा कि-

माध्यस्थ भाव :

''अचेतनमिदं दृश्य-मदृश्यं चेतनं तथा''

यह चेतना हमें दृश्य जगत में दिखाई नहीं देती है, जो दिख रहा है, वो सब अचेतन है, ऐसा आभास करोगे। ऐसा भीतर मन को आभास कराओगे तो आपको बड़ा आनन्द आयेगा। यह

किसी भी चीज से रोष या संतोष, हमारे अपने विचारों के कारण होता है।

संस्कार जो हमारे अन्दर पड़े हैं, मन के अन्दर राग व द्वेष करने के, वो संस्कार इसी विधि से छूटेंगे। अचेतन बाहर दिखना चाहिए, चेतन भीतर दिखना चाहिए और मन को उस चेतना में बार-बार डुबोना चाहिए। जब मन उस चेतन में बार-बार डूबने लगे फिर जब बाहर आँख खोले, कान से कुछ सुने तो उसे ऐसा आभास हो कि सब कुछ अचेतन दिखाई दे रहा है।

''अचेतनमिदं दृश्यमदृश्यं चेतनं तथा।
क्व रुष्यामि क्व तुष्यामि माध्यस्थोऽहं भवाम्यतः।।''

चेतन तो अदृश्य है तो फिर अब मैं किससे रोष करूँ, किससे तो अपना attachment हो और किससे अपना satisfaction हो, किसके ऊपर मैं क्रोध करूँ और किससे संतुष्ट होऊँ। दोनों के बीच में जब यह स्थिति बनती है तो उसे कहते हैं 'माध्यस्थ भाव'। जब आपका मन बाहरी जगत के किसी भी पदार्थ पर न चिपके, न उससे संतुष्ट हो तो जो मन की स्थिति बनेगी, उसे कहा जायेगा मन का साम्य भाव। harmonious stage of mind, मन के अन्दर की समता की स्थिति। समता की स्थिति में जो आपको आनन्द आयेगा वो किसी भी रागात्मक परिणति में नहीं आएगा, किसी भी मोह और द्वेष की परिणति में नहीं आएगा क्योंकि वो आत्मा का आनन्द ही नहीं है। आत्मा का आनन्द तो इस माध्यस्थ भाव में है, साम्य अवस्था में है और मन का साम्य होना ही आपको आत्मा की ओर उन्मुख करेगा।

आचार्य कहते हैं कि अपने मन में ऐसा अभ्यास डालो कि आपका मन आत्मा में स्थिर हो, यह तब होगा जब आपके अभ्यास में यह आ जाये कि मुझे बाहर भी किसी से कोई रोष न उत्पन्न हो और बाहर किसी भी चीज से हमें संतोष उत्पन्न न हों क्योंकि रोष भी भीतर से उत्पन्न होता है और संतोष भी भीतर से उत्पन्न होता है। बाहर तो केवल उसके कारण मिलते हैं और हम अपनी अज्ञानता से समझ लेते हैं कि यह चीजें हमें रोष उत्पन्न करा रही हैं और यह चीजें हमें संतोष उत्पन्न करा रही हैं।

मान लो आपके पास में बहुत पैसा है तो उसे पैसे से आपको रोष भी हो सकता है, संतोष भी हो सकता है और अगर आपको वह पैसा देखकर के डर लगने लग जाये कि इस पैसे को कोई चुरा ना ले, लूट न ले, अभाव न हो जाये तो उस पैसे से ही आपके अन्दर द्वेष उत्पन्न होगा और अगर कोई उस पैसे को लेता हुआ दिखाई दे जाये या सम्भावना हो जाए कि कोई भी officer आ सकता है, कोई रेड हमारे ऊपर पड़ सकती है तो उस पैसे से आपको रोष भी उत्पन्न हो सकता है। जब आपके अन्दर यह आ रहा हो कि इसी के कारण से तो हम इतने बड़े आदमी कहलाते हैं, इसी के कारण से तो हमने इतना बड़ा मकान, इतना स्टेण्डर्ड बनाया हुआ है तो उससे आपको उस समय पर रोष/संतोष हो रहा है लेकिन आप अगर गहराई से देखो रोष और तोष वह पैसा दे रहा है कि

रोष एवं तोष अचेतन के कारण हैं, चेतन-तत्त्व तो सिर्फ देखता व जानता है।

आप अपने भीतर से उसको उत्पन्न कर रहे हो अपने विचारों के माध्यम से। वह पैसा अगर दे रहा हो तो वह पैसा तो रखा हुआ है या जिस समय पर आप यह सोच रहे हो कि उसकी कोई चोरी न कर ले, रेड न पड़ जाये, तब भी वो पैसा ही है और जिस समय पर आप सोच रहे हो कि यह हमारे लिए बहुत अच्छा है, यह हमको इतना स्टेण्डर्ड दे रहा है तब भी वो पैसा ही है। वो तो कुछ नहीं कह रहा है, आप ही अपने मन को उसमें लगा रहे हो और अलग-अलग तरीके से अपने विचार बना करके अपने आप में कभी रोष, कभी संतोष उत्पन्न करा रहे हो लेकिन पैसा कुछ नहीं कर रहा है। यह आपकी feeling तब होगी जब आपको यह महसूस हो कि बाहर कुछ नहीं होता है भीतर का mind का सब खेल है और कहीं कुछ नहीं है। आपके दिमाग में अगर चिन्ता का विचार चल रहा है तो वह विचार आपके अन्दर उस पैसे से रोष उत्पन्न करा देगा और आपके दिमाग में अगर उस पैसे से संतुष्टि हो रही है तो आपके अन्दर संतोष का भाव आ जाएगा। वस्तुतः वह पैसा आपके अन्दर कुछ नहीं कर रहा है वो आपके अन्दर का विचार ही आपको सब कुछ करा रहा है। यह आलम्बन है, आपने उसको आधार बना करके विचार कर लिया और किसी के पास में पैसा नहीं है तो उसके बिना भी वो संतुष्ट हो लेता है।

किसी के पास में कोई रोष के साधन नहीं है तो उसके बिना भी वह रोष से रहित होकर के रह लेता है। जिसके पास में ज्यादा धन होगा, उतना ही उसका मन रोष और तोष में कम लगेगा और जितने जिसके पास में कम साधन होंगे उसका मन उतना ही कम रोष, तोष करने में लगेगा और जिनके पास कोई साधन नहीं है, तो कोई रोष भी नहीं है, कोई तोष भी नहीं है, यह सिद्धान्त है। भीतर से अपने मन को स्थिर करने के लिए आपके यह करना ही पड़ेगा कि बाहर की कोई भी चीज में हमें चिपकना नहीं है न रोष के रूप में न संतोष के रूप में। आप अपने आप में चिपकें, अपने आप से जुड़ें फिर आपको बाहर की जो चीजें आपके सामने आएंगी तो वो आपके लिए कितनी ही बिगड़ी हुई हो वो परेशान नहीं करेंगी, कितनी भी अच्छी हो, आपके लिए ज्यादा संतोष नहीं देगी क्योंकि आपको संतोष चेतन पदार्थ में आने लगा है। जो हमें बाहर दिखाई देगा, वो तो सब अचेतन है और आत्मा उसी अचेतन में ही रोष और तोष कर रहा है। चेतन के पास आने के लिए तो उसे बाहर के पदार्थों के प्रति एक माध्यस्थ भाव रखना पड़ेगा। मध्य में स्थित हो जाना, इसको बोलते हैं- माध्यस्थ-भाव। उस रोष और तोष के दोनों परिणामों के बीच में स्थित हो जाना, कुछ भी हो हमें किसी से भी ना रोष, न तोष है और उस चेतन-तत्त्व का काम तो केवल जानना और देखना है। रोष और तोष करना तो उस चेतना का काम नहीं है। यह तो अपने राग और द्वेष का काम है जो राग और द्वेष कर्म के कारण से आत्मा में संस्कारित हो चुके हैं, उनका काम है। आत्मा का काम केवल इतना है कि वह जान रहा हो और देख रहा हो। अगर आप एक गृहस्थ होकर

के भी थोड़ा सा इसका अभ्यास करेंगे तो आप देखेंगे कि बहुत काम करने के बाद में भी आपका मन थकेगा नहीं, आपके मन के अन्दर क्षोभ उत्पन्न नहीं होगा, काम बिगड़ेंगे, काम बनेंगे लेकिन उसके कारण से आपकी heart beating में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। कितनी बड़ी चीज है, बाहर हमने कोई चीज बनाई, मान लो हमने तीन मंजिला मकान बनाया और हमारी किसी technical कमी के कारण से वह तीन मंजिला मकान गिर गया, अगर वह गिर भी गया फिर भी हमारे अन्दर heart beat normal बनी रही। suppose करो इतना बड़ा काम होने के बाद भी हमारी heart beat normal बनी रहे, ब्लड प्रेशर न high हो, न low हो, आपके मन के अन्दर भी ऐसी ही परिणति हो तो आप सोचो कि ऐसा मन अच्छा है या वो मन अच्छा है? बाहर कुछ गिरा और उसके साथ आप भी गिर पड़े। बाहर के attack से मन के ऊपर अटैक ना हो, इतनी बड़ी सुरक्षा आपके जीवन की सबसे बड़ी सुरक्षा है। आपको इस सुरक्षा के बारे में कोई लाभ नहीं है आपका इस सुरक्षा के पीछे कोई efforts नहीं हैं, कोई प्रयास नहीं है, बाकी की सब सुरक्षाओं के पीछे प्रयास हैं।

हमारे घर में कोई चोर आ जाये तो उस जगह से घुस सकते हैं तो उस दरवाजे के ताले लगाओ, वहाँ पर कैमरे लगाओ, किसी के लिए भी प्रवेश करने की जगह न हो, कोई भी कुछ भी हमारी हानि न पहुँचाये। हमने कितनी सुरक्षाएँ कर रखी हैं–बाहर से। भीतर मन की सुरक्षा के लिए कोई भी प्रयास नहीं है। समझो, आदमी बाहर से तो आग जला रहा हो और भीतर से अपने आपको उस आग से बचने का कोई उपाय न हो तो उस आदमी की सुरक्षा हो रही है या वह आदमी असुरक्षित होता जा रहा है? यह सोचो। यह जितनी भी चीजें बाहर की बढ़ायेंगे, यह सब हमारे लिए heart attack में काम आने वाले हैं और हमारे अन्दर कोई उस heart attack से बचने के लिए कोई सुरक्षा का कोई भी साधन नहीं है, आग से बचने के लिए हमारे पास कोई भी ऐसी चीज नहीं है जो इस आग को बुझा सके या उस आग पर नियंत्रण रख सके तो समझो आप अपने लिए स्वयं अहित कर रहे हो या आप अपना हित कर रहे हो। आज हर आदमी यही कर रहा है कि सब बाहर की सुरक्षा बना रहे हैं, सब बाहर से अपने को safe secure कर रहे हैं लेकिन भीतर उसके पास में अपने आपको safe secure करने के लिए कुछ है ही नहीं। चीज जो अपने आपको safe secure कर सकती है, जिससे अपना मन strong हो, stable हो वो चीज है यह चेतना का ज्ञान। जब आपका मन आपकी चेतना में जुड़ेगा तो आपके मन के अन्दर वो ताकत, वो स्थिरता आएगी कि बाहर कुछ भी होगा, आपके मन के ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। वो कहलायेगा आपका वास्तविक ज्ञान और वो ज्ञान आपके अंदर से उत्पन्न होगा, वो ज्ञान आपको किन्हीं बाहर की exercise से नहीं मिलेगा, वो ज्ञान आपको अपने मन के अन्दर ध्यान के संस्कारों के माध्यम से मिलेगा। अपने मन के अन्दर ऐसे ज्ञान के संस्कारों के माध्यम से मिलेगा जो ज्ञान इन अध्यात्म ग्रन्थों

में दिये गये हैं।

''स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु'' अपने आत्म तत्त्व में अपनी स्थिरता बनाओ, अपने आत्म तत्त्व में स्थिर होने का भाव करो और यह पुरुषार्थ जब आप करोगे तो बाहर कुछ भी चलता रहे, आता रहे, जाता रहे, कोई फर्क नहीं पड़े तो आपकी आत्मा सुरक्षित होगी (कर्म के बन्धन से) जो कर्म की साइकिल चल रही है वो इसी राग और द्वेष के कारण से चल रही है। इस राग और द्वेष को जीतने का एक ही उपाय है कि आप अपने मन को आत्मा में भावित करो क्योंकि जैसे ही मन को भावना दी जाएगी वो उसी में भावित हो जाता है, संस्कारित हो जाता है। मन के अन्दर राग और द्वेष की भावना तो अनादि काल से दी गई लेकिन आत्मा की भावना नहीं दी गई उसके लिए आचार्य कहते हैं कि अपने अन्दर ध्यान लगाते हुए, अपने मन को स्थिर करते हुए उससे कहो कि मेरा आत्मा अनादि अनन्त है। आचार्यों ने एक सूत्र दिया है–आत्मा अनादि है, अनन्त है। feel करो भीतर से कि आत्मा का कोई प्रारम्भ नहीं, आत्मा का कभी अंत नहीं। जब आपको आत्मा भीतर से इतना बड़ा दिखाई देगा तो उसमें आपको अपना शरीर, एक छोटा सा बिन्दु जैसा दिखाई देगा क्योंकि यह शरीर points की तरह आ रहा है लेकिन आत्मा तो अनादि, अनन्त है, पीछे भी था, आगे भी रहेगा। शरीर के प्रति उसका attachment अपने आप हट जाएगा। आत्मा ''अनाद्यं अनन्तं अचलं'' आत्मा अचल है, चलायमान नहीं है, मिटने वाला नहीं है, आत्मा के अन्दर हिलने जैसी चीजें नहीं है, आत्मा के अन्दर सब समान है, आत्मा का स्वभाव अचल है और बाकी का सब चलायमान है, सब कुछ हिल जाएगा। यहाँ तक की आप किसी खम्भे के सहारे घूमने लग जाओ तो आपको सब कुछ घूमता नजर आएगा। आपके शरीर में स्थिरता नहीं, आपके मन में स्थिरता नहीं, स्थिरता है अगर किसी चीज में तो वो केवल आत्मा में है। अनादि, अनन्त, अचल यह आत्मा के गुण हैं और यह अनुभव करने योग्य हैं स्वयं के द्वारा। 'स्वसंवेदन'– स्वयं उसका संवेदन करो यह आत्मा ऐसा है, यह आत्मा इस तरह से ही स्वसंवेदन के योग्य है और वह **स्वसंवेदन हि स्फुटं** आचार्य कहते हैं इस प्रकार के गुणों के माध्यम से जब आप अपनी आत्मा के स्वभाव के बारे में जानेगें तो आपके अन्दर यह मध्यस्थ भाव आएगा इसी को कहते हैं– समता का भाव, इसी को कहते हैं उस चेतना का साम्य परिणाम। जिस साम्य परिणाम से आपको यह अनुभव हो–

''जीवः स्वयं, तु चैतन्यं उच्चैश्चकचकायते''

आचार्य कहते हैं कि यह जीव स्वयं चैतन्य रूप है, उत्कृष्टता के साथ में चकचकायमान आत्मा है। चकाचक का मतलब जिसके अन्दर infinite light जैसा अनन्त प्रकाश भरा हुआ है, अनन्तज्ञान को देखने जानने की क्षमता भरी हुई है। उस आत्मा के स्वसंवेदन की स्थिति में जब आपका मन रुकने लगे, उसमें आपका मन लगने लगे तो तब आपका मन बाहर के किसी भी दृश्य

को देखेगा तो अपने आप उसे आभासित होगा। यह दुनियाँ किस तरह की है? हम तो बिल्कुल स्थिर बैठे हैं, देख रहे हैं, जान रहे हैं और इस दुनिया में आवागमन लगा हुआ है, जैसे पशु-पक्षियों को दौड़ते भागते देखते हैं, उसी तरह ही इन सभी शरीरी आत्मा को देखेंगे और आप बिल्कुल स्थिर रहेंगे। तो उस समय पर आपके अंदर की वह स्थिरता का जो आनन्द आपको मिलेगा वह किसी भी प्रकार की दौड़-भाग को देखने के बाद नहीं मिलेगा, आपके मन को न दौड़ाएगा न भगाएगा। बाहर कुछ भी दौड़े लेकिन अपना मन नहीं दौड़े, बाहर कितना भी आवागमन हो, भागने, कूदने की स्थिति हो लेकिन अपना मन न भागे। जैसे आप कभी ट्रेन में बढ़ते हो तो आपको लगता है कि बाहर के पेड़-पौधे, पर्वत आदि चीजें भाग रही हैं जबकि हम जिसमें बैठे हैं वो चीज भाग रही है और वो चीज हमें स्थिर लग रही है जिसमें हम बैठे हैं। मतलब यह हुआ है कि जब हम भीतर से भाग रहे होते हैं तभी हमें बाहर की चीज भागती हुई दिखाई देती है और अगर हम भीतर से स्थिर होंगे तो आपको यह ज्ञान आ जाएगा कि आप तो स्थिर हैं। आपको बाहर की चीजें भागती, दौड़ती दिखाई नहीं देगीं, यह जगत तो एक ठूँठ से, खड़े हुए वृक्ष की तरह दिखाई देगा। इससे अपने अन्दर कोई भी संवेदना नहीं होगी, स्वसंवेदना में आपका मन लगा हुआ होगा। इस समय पर आपके अन्दर जो माध्यस्थ भाव होगा, तटस्थ भाव होगा, उसका जो आनन्द आयेगा वो आनन्द ही आपको ग्रहण करने योग्य है। मनुष्य-जन्म का यही सबसे बड़ा सुफल है। यह आनंद ध्यान से ही मिलेगा। attachment जब तक चलेगा तब तक आत्मा के अन्दर कर्म का बंध चलेगा और जन्म मरण की परम्परा चलेगी। इसलिए इस परम्परा को रोकने का एक ही साधन है कि अपने आत्म तत्त्व में अपने मन को स्थिर करो। फिर देखो इस दुनियाँ में कोई भी चीज ऐसी नहीं होगी जो आपके मन को हिला सके। आप चलते हुए भी नहीं चलेंगे, देखते हुए भी नहीं देखेंगे।

एक अंतिम चीज '**पश्यन्नपि न पश्यति**'। आप किसको नहीं देख रहे हैं? हम सभी को देख रहे हैं और फिर भी किसी को नहीं देख रहे हैं। जिनको देखने की इच्छा है उन्हें कुछ दिखाई नहीं दे रहा है और जिनको कुछ नहीं देखने की इच्छा है उन्हें सब दिखाई दे रहा है। 'पश्यन्नपि न पश्यति' देखते हुए भी वह नहीं देखेगा, आपको लगेगा कि महाराज ने हमको देख लिया लेकिन देखने के बाद भी उनको लगेगा कि हमने कुछ नहीं देखा। यह स्थिति इसी एक कारण से 'स्थिरी-कृतात्मतत्त्वस्तु' इसमें अब और भी चीजें हैं जैसे चलते हुए भी नहीं चल रहा, खाते हुए भी नहीं खा रहा है, पीते हुए भी नहीं पी रहा है क्योंकि उसकी स्थिरता तो अपने ही आप में हो। वो सब जो चल रहा है बाहर की मन, वचन, काय की क्रिया उन किसी भी क्रियाओं में वह लीन नहीं हो रहा है, attachment के साथ उसमें आसक्त नहीं हो रहा है इसलिए वह सब कुछ करके भी कुछ नहीं कर रहा है।

जिनको देखने की इच्छा है उन्हें कुछ दिखाई नहीं दे रहा है।

आप भी कुछ ऐसा ही प्रयास करें, सब कुछ करें और फिर भी भीतर से लगे कि इसमें मेरा कोई भी कर्तापन का भाव नहीं है, मैंने कर लिया क्योंकि मेरे करने योग्य था और उसके करने के बाद में उससे हट जाएँ तो आप भी उस योग की स्थिति में पहुँच जाएंगे। वस्तुतः उसी को सही कर्म योगी कहा जाता है। जो सब कर्म करते हुए भी किसी भी कर्म से जुड़ा हुआ नहीं हो, उसको कहते हैं- कर्म-योगी। ऐसे कर्मयोगी भी आप बन सकते हैं। सब कुछ करने के बाद भी आपके मन में यह न आये कि यह मैंने किया और मेरे बिना कोई नहीं कर सकता था, ऐसा आप न सोचें तो आप भी एक कर्म-योगी की स्थिति में पहुँच सकते हैं और इस तरह की स्थिति में पहुँचने पर ही आपको अपने आत्म-स्वभाव की जानकारी होगी, आपको अपने आत्म-स्वरूप में स्थिरता होगी और उस स्थिरता के साथ में आत्मा में राग, द्वेष की निरन्तर प्रवृत्ति चल रही है, यह रुकेगी। यह भीतर बहुत बड़ा इंजन चल रहा है इतना गहरा, इतना fast चल रहा है वो इंजन आपको पता ही नहीं है कि आप सोते भी रहते हो तो भी वो इंजन चलता रहता है और राग और द्वेष होते ही रहते हैं। कहीं पर भी बैठने पर न राग की परिणति रुकती है, न द्वेष की परिणति रुकती है। तटस्थ होकर के सिर्फ देखो, जानो इस स्थिति में जब पहुँचोगे तो राग भी नहीं होगा, द्वेष भी नहीं होगा, आत्मा कर्म के बंधनों से छूटता चला जाएगा। इसे कहते हैं मुक्ति की दशा को प्राप्त करना, मुक्ति के दरवाजे को खोलना। यह सब भीतर से होता है और यह भीतर जो करेगा उसी को ऐसा अनुभव होगा। उपदेश देने से कुछ नहीं होता और उपदेश सुनने से भी कुछ नहीं होता है।

जो करेगा उसके लिए होगा और जो नहीं करेगा उसके लिए कुछ नहीं होगा। करने का अभ्यास करो, बाकी तो सब कुछ कर चुके हैं। इस अभ्यास को करने के बिना सब अभ्यास बेकार है। इस दुनियाँ को अचेतन रूप में ही देखें, चेतना तो हमें कभी दिखती ही नहीं है। हम कहते जरूर हैं कि वे सब चेतन प्राणी हैं लेकिन वह भी उनके शरीर को देखकर के कहते हैं, उनकी चेतना को देखकर नहीं। चेतना तो आपको अपने स्वयं में ही दिखेगी और जब अपनी दिखेगी, तब सब की दिखेगी। जब अपनी नहीं दिखेगी तो किसी की भी नहीं दिखेगी तो हमने यह रट रखा है कि यह जीव है, यह अजीव है अनुभव नहीं किया है। यह रट रखा है कि यह चेतन है, यह अचेतन पदार्थ है, अनुभव नहीं किया है। इसी को अनुभव का विषय बनायें और वो अनुभव होता है शांति से मन को स्थिर करके, ध्यान के माध्यम से।

रट रखा है कि यह चेतन है, यह अचेतन पदार्थ है, अनुभव नहीं किया है।

विलक्षण दशा

42

किमिदं कीदृशं कस्य कस्मात्क्वेत्यविशेषयन्।
स्वदेहमपि नावैति योगी योगपरायणः॥

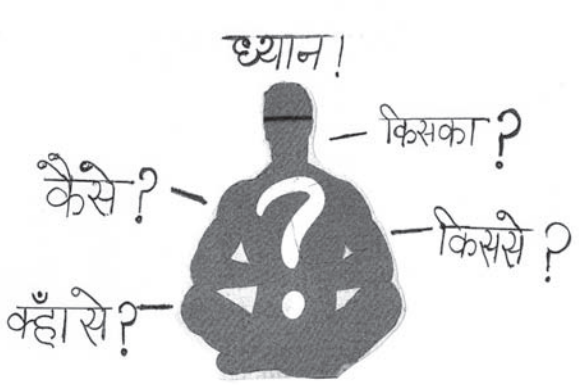

अन्वयार्थ–(**योगपरायणः**) आत्मध्यान में लगा हुआ (**योगी**) योगी साधक (**इदम्**) यह (**किम्**) क्या है (**कीदृशं**) कैसा है (**कस्य**) किसका है (**कस्मात्**) किस कारण से है (**क्व**) कहाँ है (**इति**) इस तरह (**अविशेषयन्**) विशेष विचार न करता हुआ (**स्वदेहम् अपि**) अपने शरीर को भी (**न अवैति**) नहीं जानता है।

- **आत्मा का ध्यान**
- **आत्मानुभूति**
- **आत्मा का वेदन**
- **ज्ञायक भाव**

आत्मा का ध्यान :

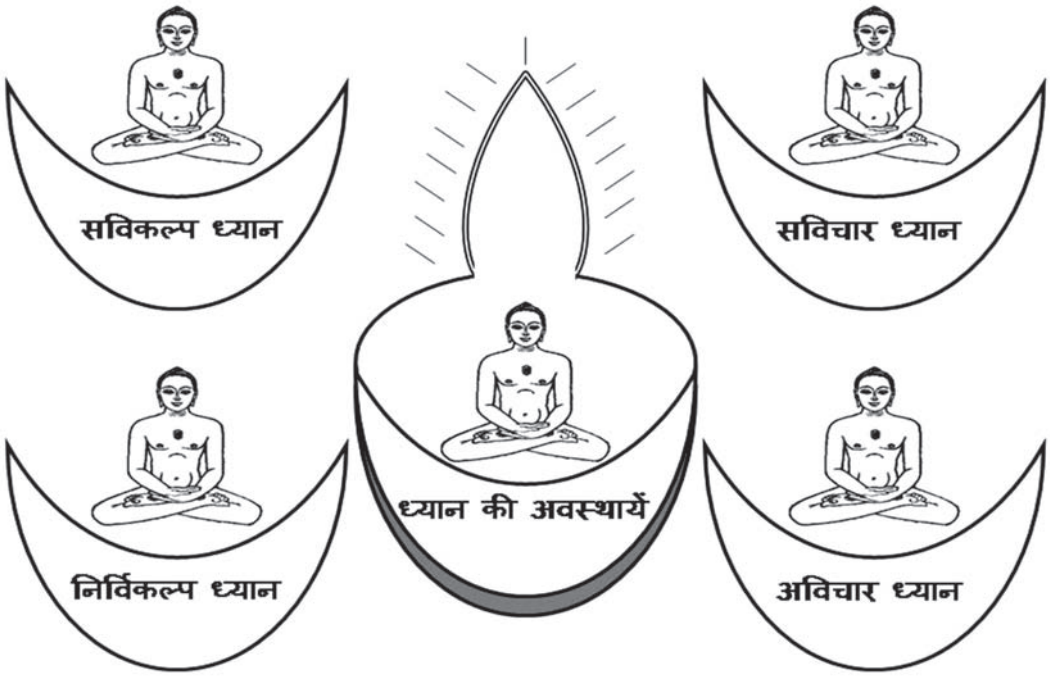

निरन्तर ध्यान में लीन योगियों की दशा का वर्णन किया जा रहा है। पिछले दिनों से भी हम उन योगियों की चेष्टाओं के बारे में, उनकी अनुभूतियों के बारे में सुनते आ रहे हैं। यहाँ पर भी आचार्य देव यही कर रहे हैं कि उन आत्म-ध्यान में लीन योगियों को क्या अनुभव होता है और वह अनुभव होने पर उनकी क्या दशा होती है? उनके अंदर वह अनुभव होने पर कैसा आनन्द आता है? क्या उनको याद रह जाता है? क्या वह भूल जाते हैं? क्या उनके विचार में आता है? क्या उनके विचार में नहीं आता है? कहते हैं जब वह आत्म ध्यानी अपनी आत्मा का ध्यान करते हैं तो पहले तो जो सूत्र बताया था उस सूत्र के अनुसार वह अपनी आत्म भावना करता है। '**एकोऽहं निर्ममः शुद्धो**' यह आत्मा की भावना करने के लिए मुख्य आलम्बन स्वरूप सूत्र है। इसी तरह से '**स्वसंवेदन सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः**' इन सूत्रों का आलम्बन लेते-लेते जब वो ध्यान करने में निष्णात हो जाता है तो उस समय पर जब वह चरम-ध्यान की स्थिति में पहुँच जाता है। जब तक मन में यह ध्यान रहा कि मैं विचार कर रहा हूँ कि मैं एक हूँ, मैं शुद्ध हूँ, तब तक यह सविकल्प दशा कहलाती है। ध्यान की जिस दशा में अपने अन्दर यह भावना रहे कि यह मैं कर रहा हूँ, मैं ऐसा हूँ जब तक वह ध्यान की दशा कहलाती है फिर ऐसा करते-करते जब वह योगी अपने आप

सविकल्प, निर्विकल्प, सविचार और अविचार आदि ये ध्यान की अनेक अवस्थायें हैं।

में लीन हो जाता है और वह विचार भी उसके अन्दर नहीं आता है कि मैं कर रहा हूँ, उस समय पर उसकी जो दशा होती है उसे कहते हैं- निर्विकल्प ध्यान की दशा। यह शब्द ध्यान शास्त्र में सुनने को मिलते हैं- सविकल्प ध्यान, निर्विकल्प ध्यान। ऐसे ही दो शब्द और आते हैं- सविचार ध्यान और अविचार ध्यान। जिस ध्यान में विचार चलता रहे वो कहलाता है- सविचार ध्यान और जिस ध्यान में विचार ना रहे उसे कहते हैं अविचार ध्यान। आप जैन होकर के भी, आपके शास्त्रों में यह शब्द उपलब्ध होते हुए भी आपको यह पता नहीं है कि ये ध्यान के लिए प्रयुक्त किये जाने वाले शब्द हैं और ध्यान के अनेक शिविरों में होते हैं, जो जैन नहीं हैं वे लोग भी इन्हीं नामों को लेकर के ध्यान कराते हैं। निर्विकल्प ध्यान की दशा, सविचार ध्यान की दशा, सहज योग ध्यान की दशा, इन सब दशाओं का नामांकन करते हुऐ जो ध्यान करते हैं, करवाते हैं और उस ध्यान की, उसी निर्विचार स्थिति के बारे में यहाँ पर बताया जा रहा है। यद्यपि यह स्थिति बहुत कुछ श्रावकों के लिए सम्भव नहीं है, श्रमणों में भी किन्हीं-किन्हीं ध्यान में लीन श्रमणों के लिए ही सम्भव होती है फिर भी अनेक श्रावक अनेक जगहों पर इस प्रकार से ध्यान के आकर्षण के माध्यम से लोगों को निर्विचार स्थिति में पहुँचाते हैं और उस निर्विचार स्थिति में पहुँचाने का उनका ध्येय यही रहता है कि जब तक आप विचार शून्य नहीं होंगे तब तक आपके मन के अन्दर शांति नहीं होगी, आप तनाव से मुक्त नहीं होंगे। उस निर्विचार स्थिति में पहुँचाने पर, वहाँ पर भी वह इन्हीं सूत्रों का उपयोग करते हैं और जैसा यहाँ पर लिखा जा रहा है वैसा उन्हें अनुभूत तो नहीं होता लेकिन उपयोग और प्रयोग तो इन्हीं सूत्रों का किया जाता है।

आचार्य कहते हैं कि जिस समय पर कोई ध्यान में लीन आत्मा अपनी उस ध्यान की स्थिति में उत्कृष्टता को प्राप्त हो जाता है, जिसे हम कहते हैं- परम ध्यान की दशा। उस परम ध्यान की दशा में उसे क्या अनुभव होता है, वो यहाँ बताया जा रहा है आप वह अनुभव भले ही न कर सकें लेकिन जान तो सकते हैं कि उन ध्यानियों को क्या अनुभव होता है। 'किमिदं'- यह क्या है? इसका मतलब उन्हें अपनी आत्मा के बारे में भी यह ज्ञान नहीं होगा कि यह आत्मा है या अनात्मा है, यह क्या है, यह क्या नहीं है? यह प्रश्न भी वहाँ पर नहीं उठेगा। 'कीदृशं' यह किस प्रकार का है? यह विचार तभी तक उठेगा, जब तक आपका ध्यान उस आत्मा में लीन नहीं होगा और वह आत्मा के अन्दर आत्म-अनूभूति की दशा नहीं होती है तब तक यह विचार उठेगा। जब आत्मा में अनुभूति होगी तब यह विचार नहीं आएगा कि यह क्या है? यह किस प्रकार है? यह आत्म तत्त्व है तो किसका है? ज्ञान की अनुभूति है किसकी है? किस नय से हो रही है? क्यों हो रही है? कहाँ हो रही है? यह किसी भी प्रकार की विकल्पात्मक परिणति, प्रश्नात्मक परिणति ध्यान में उत्पन्न नहीं होती है। आचार्य कहते हैं कि इन सब विशेषताओं से वह मुक्त हो जायेगा, इन सब विशेषताओं में उसे किसी भी विशेषता का कोई भी ज्ञान नहीं होगा उसकी तो केवल अनुभवात्मक दशा होगी। अनुभव का

परम ध्यान की दशा विशेषताओं से मुक्त अनुभवात्मक दशा होती है।

मतलब जैसे आप किसी वस्तु का स्वाद लेते हैं तो स्वाद लेते समय यदि आपसे कोई पूछे, यह कैसा है? तो आप बता नहीं पाएंगे, कैसा है। अगर आप बताने की चेष्टा करेंगे तो स्वाद छूट जायेगा। आपको कोई स्वाद नहीं आ रहा होगा क्योंकि स्वाद लेना का जो समय था, वो समय चला गया और जिस समय पर आप कहेंगे, वो समय जो होगा वो आपकी स्मृति में कोई चीज पड़ी रह जायेगी तो उसको कहेंगे। स्वाद लेने की स्थिति में आपको यह भी ज्ञान में नहीं रहेगा कि यह क्या है, कैसा है? अगर आप अपने मन को उस ज्ञान की स्थिति में लगा देंगे तो आप सही स्वाद से भी वंचित रह जायेंगे। कभी आप प्रयोग करके देखना। खाते तो आप रोजाना हो लेकिन ज्ञान के साथ आज खाकर देखना। आप एक चीज (कुछ भी), इस ज्ञान के साथ खाना कि हमें कुछ नहीं सोचना, सिर्फ इसका स्वाद लेना है और एक चीज (कुछ भी), इस भावना के साथ खाना कि हमें इसका स्वाद लेकर के दूसरों को बताना है। अगर आप जागृत होंगे (भीतर से) तो आपको समझ में आएगा कि उन दोनों ही क्षणों में आपको बहुत अन्तर लगेगा। अगर आपके अन्दर विचार की दशा हो गई कि हमें दूसरों को बताना है तो उस समय पर आपको स्वाद की जो अनुभूति होगी वो नहीं होगी और जिस समय पर यह भूल जायें कि हमें कोई मतलब ही नहीं है किसी से, किसको क्या बताना है, हमें तो केवल अपना स्वाद लेना है, जैसा है वैसा ही आनन्द लेना है। उस समय पर आपको जो स्वाद अनुभूत होगा वो स्वाद आपके लिए उस विचार की दशा में नहीं आएगा। यह निर्विचार और सविचार दशा की स्थिति होती है।

आत्मानुभूति :

इसी तरह से आचार्य कहते हैं कि जिस समय पर यह भावना करते हैं कि मैं एक हूँ, मैं अनादि हूँ, अनन्त हूँ, जीव स्वरूप हूँ, मैं ज्ञानमय, चैतन्य-मय आत्मा हूँ, मैं शुद्ध, बुद्ध, परम आनन्द-स्वरूप हूँ। यह सब आपके सविचार ध्यान की स्थिति है। इस सविचार स्थिति में आपको यह पता

मन को आत्मा की ओर उन्मुख करने पर वह विकारों से मुक्त होता जाता है।

है कि यह क्या है, किस प्रकार का है, किसका है, कहाँ है, यह ज्ञान विशेषताओं के साथ में जब तक जानने में आएगा तब तक ध्यान की चरम दशा प्राप्त नहीं होगी। यहाँ पर चरम ध्यान में लीन रहने वाले योगियों की दशा का वर्णन किया जा रहा है कि उस समय पर वह केवल एक आत्मानुभूति होती है और उन्हें मालूम भी नहीं होगा कि इसी को कहते हैं आत्मानुभूति। अगर यह भी कहना शुरू हो गया कि मन के अन्दर ओ! हो! यह हुई आत्मानुभूति, यह हुई ज्ञानानुभूति, तो समझ लेना स्वाद वहीं छूट गया क्योंकि आपके अन्दर विचार आ गया कि यह हुई आत्मानुभूति, मतलब आपको पता चल गया, पता भी नहीं चलना चाहिए यह उस दशा का वर्णन किया जा रहा है। जिस लेवल पर हम नहीं पहुँचे कोई बात नहीं, हम उसकी चर्चाएँ सुनकर, पढ़कर भी समझ सकते हैं कि उसमें कितना आनन्द होता है। आचार्य कहते हैं आप अपने शुद्ध नय से, शुद्ध आत्मा को ही अपना ध्येय बनाते हैं तो आपको यह जरूरत ही नहीं पड़ती है कि हम अपने मन को कहीं और लगायें, मन को रोकें, मन को विकारों से मुक्त करें। लोग अनेक तरीके के उपाय करते हैं लेकिन यह सब मन की परिणतियाँ उस आत्मानुभूति के साथ में अपने आप बनती चली जाती है। आप केवल आत्मा की ओर मन को उन्मुख करें, मन विकारों से मुक्त होता चला जाएगा। कई लोग कहते हैं कि मन को पहले विकारों से मुक्त कर लो फिर बाद में आपके अन्दर एक प्रज्ञा उत्पन्न होगी, उस प्रज्ञा से आपको जो दिखेगा वही आत्मा होगा। यहाँ आचार्य कहते हैं कि आपका मन विकारों से मुक्त होता चला जाएगा, बस आप आत्म ध्यान में रुचि बनाओ।

जैसे-जैसे आप आत्म तत्त्व में संवेदना को बढ़ाते चले जाएंगे, रुचि को बढ़ाते चले जाएंगे, आपके अंदर विषयों की रुचि घटती चली जाएगी और आपका मन विकारों से मुक्त होता चला जाएगा। मन जब विकारों से मुक्त हो जाएगा तो आप अपने आप मन में स्थिर हो जाएंगे और मन के विचार अपने आप आत्मा में लीन हो जाएंगे। आत्मा में लीन होने की स्थिति में ही उस मन के अन्दर यह विचार नहीं आता कि यह विचार की परिणति भी आपके अन्दर के ध्यान की अवस्था से दूर करने वाली है। ध्यान में विचार नहीं होता और जहाँ विचार होता है वहाँ ध्यान नहीं होता। लेकिन फिर भी ध्यान तो करना है तो ध्यान करने से पहले जो विचार होगा वो विचार आत्मध्यान नहीं कहलाएगा। उसे हम विचारात्मक, सविचार, व्यवहार ध्यान कहेंगे। जो परम ध्यान की स्थिति कही जाती है उसे निश्चय ध्यान कहा जाता है। यहाँ पर किसी भी प्रकार का विचार ही उत्पन्न नहीं होता, मात्र शुद्ध नय से जो आत्मा की अनुभूति है, उस अनुभूति का वह आनन्द लेगा। आचार्य कहते हैं कि शुद्ध नय से होने वाली उस आत्मानुभूति का नाम ही ज्ञानानुभूति में लीन होना है। अगर शुद्ध आत्मा की अनुभूति उसे हुई तो वह कहलाएगी शुद्ध नय से आत्मानुभूति। ज्ञानानुभूति की दशा में उसके अंदर कोई विचार नहीं रहता और विचार जहाँ आ जाता है वहाँ अपने आप में फासला बन

ध्यान में विचार नहीं होता और जहाँ विचार होता है वहाँ ध्यान नहीं होता।

जाता है, दूरियाँ बन जाती हैं और जहाँ दूरी बनेगी वहाँ पर अपना ही ज्ञान अपने काम में नहीं आएगा। एक उदाहरण है मान लो एक doctor है और उस doctor का अपना बेटा बीमार होता है तो वह doctor उस लड़के का इलाज नहीं कर पाता है। मान लो, वह doctor heart का surgeon भी है और उसके बेटे के लिए अगर रोग हो गया तो वह doctor उसकी surgery नहीं कर पाएगा, जो उसका पिता है। उसका कारण यह है कि उसके विचार में फासला बहुत कम है क्योंकि उसे पहले अपना बेटा दिखाई दे रहा है और जब बेटा सामने आ जाएगा, बेटे के रूप में उसको देखेगा तो वह operation कर ही नहीं पाएगा, क्योंकि बेटे का मोह सताने के कारण से उसके अंदर का विचार, उसके ज्ञान को जैसे काम करना चाहिए वैसे काम नहीं करने देगा। इसलिए आप देखना जो बड़े-बड़े doctor होते हैं अपने परिवार वालों का इलाज कराने के लिए दूसरे doctor के पास में ले जाएंगे क्योंकि जहाँ पर उस मोह भाव की दूरी होगी वहीं पर आपके अन्दर उस ज्ञान की परिणति होगी और जहाँ पर वह मोह भाव की दूरी कम होगी, मोह अधिक होगा वहाँ पर आपके ज्ञान की परिणति भी काम नहीं करेगी। यह ज्ञान और विचार इन दोनों के बीच में जो फासला होता है वह फासला जितना अधिक होगा, उतना आपका ज्ञान बाहर की ओर काम करेगा और जितना वह फासला कम होगा उतना ही आपका ध्यान काम करना बन्द कर देगा। जब विचार और ज्ञान के बीच में फासला बिल्कुल कम हो जाता है तो विचार छूट जाता है, केवल ज्ञान ही ज्ञान काम करने लग जाता है। यह परिणति जब आ जाती है तो उस समय पर आचार्य कहते हैं कि ''आपको कुछ भी महसूस नहीं होगा केवल अपने ज्ञान का ही अनुभूति करना''। उसमें जो आनन्द है, वह दुनियाँ के किसी भी विषय में आनन्द नहीं है। उस आत्मा के ध्यान में, एकत्व की स्थिति में जो आनन्द है वह आनन्द किसी भी प्रकार के विचार में नहीं है क्योंकि आपका जितना भी आनन्द है वो सब विचारात्मक है और यहाँ पर वह विचार भी छूट करके बस आत्मा की जो दशा है, उस दशा का अनुभवन करना। यह आत्मा का वास्तविक सुख और आनन्द है। इसे कहा जाता है- अपना आत्म-आनन्द, आत्म-सुख। इस सुख की स्थिति में और क्या होगा तो आचार्य कहते हैं कि - **'स्वदेहमपि नावैति'**

वह योगी जो योग में परायण होता चला जाता है अपनी देह को भी नहीं जानता है मतलब उसे अपने देह की भी अनुभूति नहीं होती, वह देह का भी आभास नहीं करता उसे केवल आत्मा का ही आभास होता है, देह कहाँ है, उसे कुछ पता नहीं है। जब आप सुनते हो मुनि महाराज के ऊपर उपसर्ग हुआ, शियालिनी खा गई और मुनि महाराज ध्यान में रहे। इस चरम दशा में ऐसा होता है कि बाहर का देह भी उन्हें बिल्कुल बाहर जैसा ही दिखता है और वह अपने आत्मा की स्थिति में इतने स्थिर हो जाते हैं कि उन्हें इस देह के साथ कुछ भी होता रहे वह यह नहीं सोचते कि यह क्या है, क्या हो रहा है? इस सूत्र के दो अर्थ लगते हैं।

अपने ज्ञान की अनुभूति में जो आनंद है वही आत्मानन्द है, आत्मसुख है।

एक अर्थ तो 'किमिदं कीदृशं कस्य', इस प्रकार का विचार आत्मा के सम्बंध में नहीं रहता है और दूसरा अर्थ यह भी निकलता है कि देह के विषय में इस प्रकार का कोई विचार नहीं रहता है कि यह क्या है, किस प्रकार है, कैसा है, देह को कोई खा रहा है, काट रहा है, जल रहा है तो भी वह उसका सिर्फ बिना किसी वेदना के वेदन करेंगे। वेदन का मतलब ज्ञान करना, वेदन जो शब्द है इसका धीरे-धीरे काल के कारण से अर्थ बिगड़ गया। अगर हम आचार्य कुन्द-कुन्द देव के समय में इस शब्द का अर्थ देखते हैं तो वहाँ पर वेदन शब्द का जो प्रयोग करते हैं- 'वेदेदि' यानि वेदन करता है, इसका अर्थ होता था संवेदन करता है, अनुभवन करता है, उसको ध्यान में जो अनुभव हो रहा है, उसका ज्ञान वेदन कहलाता था और आज के समय में वेदना का मतलब होता है पीड़ा, जो हमें पीड़ा दुख होता है उसको हम वेदना कहते हैं। पहले इस वेदना को कहा जाता था- अनुभव करना। जो हम भीतर से अपने ज्ञान के माध्यम से केवल अनुभव कर रहे हैं, उसका नाम कहा जाता था वेदन।

आत्मा का वेदन :

इसलिए आचार्य कहते हैं कि जिस समय पर यह आत्मा कर्म और कर्म के फलों से मुक्त होकर के केवल अपनी ही आत्मा का वेदन करता है, उस समय पर यह ज्ञायक भाव की अनुभूति करता है, बाकी के समय पर इसे ज्ञायक भाव की अनुभूति नहीं होती क्योंकि कर्म और कर्म के फल के वेदन में उसका उपयोग लग गया। जब कर्म और कर्म के फल में उपयोग लगेगा तो उस समय पर उसके लिए वेदन होगा (उस पीड़ा का) लेकिन एक स्थिति ऐसी होती है जिस स्थिति में पीड़ा को वह केवल पीड़ा के रूप में जाने और ज्ञान को अपने ज्ञान के रूप में जाने तो उस समय पर वह अपने ज्ञान का वेदन करता रहेगा। लेकिन उसे इस शरीर के विषय में यह प्रश्न नहीं आएगा कि यह मेरा शरीर है, इसे यह शियालिनी खा रही है, मुझको कष्ट हो रहा है इस प्रकार की कोई संवेदना नहीं रहेगी वहाँ पर केवल वह स्वसंवेदन की स्थिति बनेगी तो वह बाहर कुछ भी होता रहे उस ध्यानी को, योगी को उससे कोई भी हानि नहीं होती है। इस ध्यान की चरम दशाओं में रहने वाले मुनीश्वर हुये हैं, जिनके नाम हम पढ़ते हैं- सुकौशल मुनि महाराज, सुकुमाल मुनि महाराज, गज कुमार मुनि महाराज, सुदर्शन मुनि महाराज जिन्होंने इसी प्रकार के ध्यान की स्थिति में बाहर सब कुछ होता रहा लेकिन उन्होंने अपने अंदर यह विचार नहीं किया कि यह क्या है, कहाँ है, किस प्रकार का है? उनके अंदर यह विचार ही नहीं आया और वह अपने निर्विचार ध्यान में लीन रहे। उसी का परिणाम है कि उन्होंने अपने धर्म-ध्यान और शुक्ल ध्यान से अपना परिणाम नहीं गिराया और वह बाहर शरीर नष्ट, भ्रष्ट होता रहा लेकिन आत्मा में उसका कोई भी फर्क नहीं पड़ा।

आत्मा में एकत्व बुद्धि हो जाने पर शरीर परद्रव्य हो जाता है।

आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं कि बस एक ही अनुभूति वहाँ पर होगी यानि मैं ज्ञायक भाव वाला हूँ, मैं बस एक हूँ, जो मेरे अनुभव में आ रहा है बस वही एक मात्र मैं हूँ। इसके अलावा कुछ भी मैं नहीं हूँ। शरीर भी उसको ऐसा लगेगा जैसे किसी पड़ौसी को देख रहा हो, पड़ौसी मतलब आपके बगल में कोई बैठा हो उसके शरीर को कोई कीड़ा काट रहा हो और आप उसको देख रहे हों। आपको कोई फर्क नहीं पड़ेगा, हो सकता है अगर आपको उससे कोई मोह हो तो, आपको परेशानी हो सकती है। ऐसे ही जब आपका शरीर आपके लिए पड़ौसी बन जाये, तो कैसा लगेगा। जब इस शरीर में एकत्व बुद्धि नहीं होगी, आत्मा में ही उसकी एकत्व बुद्धि हो जाने पर यह शरीर उसके लिए बिल्कुल पर द्रव्य हो जाता है। उस पर द्रव्य की स्थिति में उसे यह लगता है कि यह जो शरीर में कुछ भी हो रहा है, मुझमें नहीं हो रहा है, वो शरीर में हो रहा है क्योंकि यह शरीर उसका बिल्कुल अपने से दूर दिखाई देता है। पड़ौसी की तरह, किसी दूसरे के शरीर में चुभन हो रही है, काटा जा रहा है, पीटा जा रहा है, अपनी आत्मा में कुछ भी नहीं है क्योंकि वह उसकी आत्मा का शरीर है ही नहीं। 'स्वदेहमपि नावैति'-

अपनी देह को भी वह नहीं जानता है तब कहलाता है यह योगीपना 'योग परायणः' अब यह योग में परायण हो गया।

जब यह स्थिति आती है तो उसी को कहा जाता है, अपने सामायिक चारित्र की स्थिति, उसी को कहते हैं- निर्विकल्प ध्यान की स्थिति। उस स्थिति में आने से पहले, जो कुछ भी आपको अनुभूति में आयेगा, वह सब आपको अपने किए गए क्रिया-कलाप हैं, वे आपको अनुभव में आएंगे। उसके अलावा और कुछ भी अनुभव में नहीं आएंगे। आपके लिए कई अनुभव ऐसे होते हैं, जिन अनुभव में आप सब भूल जाते हो। आप कभी कल्पना करो कि आप किसी नदी में डूब गए और उस नदी में बहुत पानी है और आपको बचाने वाला कोई नहीं है। उस समय पर उस पानी में जब कोई व्यक्ति डूब जाता है और उसे बचाने वाला कोई नहीं रहता है तो उसे क्या ध्यान में आता है? उसे यही ध्यान में रहता है, उसे यही अनुभूति होती है, वो अनुभूति आपके लिए कष्टदायी तो होगी लेकिन वही अनुभूति होगी जो यहाँ पर हो रही है, आपको कुछ भी याद नहीं रहेगा यह भी ध्यान में नहीं रहेगा कि मेरे माता-पिता कहाँ है, मैं कहाँ हूँ, मेरा घर कहाँ है। बस आपको, पानी-पानी के अन्दर जो अनुभति होगी, वह सिर्फ एक घबराहट की अनुभूति होगी, मैं मर ना जाऊँ, मैं मर रहा हूँ, इसके अलावा और कुछ नहीं होगा। उस समय इस प्रकार की अनुभूति आदमी मरते-मरते तो कर लेता है लेकिन जीते-जीते ऐसी चैतन्य अनुभूति नहीं करना चाहता जिसमें कि जीवन ही जीवन है। ऐसे अनुभव की कोई भी प्रक्रिया शुरू नहीं करता जिसमें कि बस केवल हमें अपनी आत्मा की ललक पैदा हो, आत्मा के अन्दर अनुभव न करने की इच्छा जागृत हो और हमें कुछ

ध्यान में अपनी देह को नहीं जानना निर्विकल्प ध्यान की स्थिति कहलाती है।

भी नहीं करना, बाकी मैं भूल जाऊँ तो कोई फर्क नहीं। आदमी जिस समय पर मरने वाला होता है, उस समय पर वह सब कुछ भूल जाता है, उसे कुछ भी याद नहीं रहता है लेकिन वह मरते-मरते भूलता है और यहाँ जीते-जीते भुलाया जा रहा है यह बहुत बड़ा अन्तर है। अगर आपको किसी ने मार दिया पीछे से आकर, एक्सीडेंट हो गया गाड़ी का, अचानक किसी में दब गये, भूकम्प आ गया, कोई वस्तु आप के ऊपर गिर पड़े, एकदम से सिर्फ आपके सामने अँधेरा होगा और कुछ नहीं होगा और आदमी उसी एक क्षण में सदमे के कारण से भी मर जाता है। उस क्षण पर उसके लिए जो आघात होगा तो उसका स्मृति से रहित हो जाना और उस स्मृति से रहित होकर के जो आघात के कारण से उसका मरण होता है तो उसी के कारण से उसे अगले जन्म में भी कोई स्मृति नहीं रहती है। यह उसकी निर्विचार स्थिति होती है। यह निर्विचार स्थिति या तो अत्यधिक दुख की स्थिति में बनेगी या अत्यधिक सुख की स्थिति में बनेगी। आपको दुख की निर्विचार स्थिति का तो पता है, उसका तो आपने अनुभव किया है लेकिन सुख की जो निर्विचार स्थिति है उसका तुमने कभी अनुभव नहीं किया है। अगर तुमने सुख की निर्विचार स्थिति का अनुभव किया होता तब तो आप यहाँ होते ही नहीं। तब तो आपके सामने एक अलग ही आनन्द होता। यह जो चरम स्थिति है आनन्द की, इसको आपने अनुभव किया ही नहीं और जो अनुभूत किया ही नहीं और जो अनुभूत किया है वो क्षण जैसा आपको लग रहा है उस क्षण की तुलना मैं आपको यहाँ पर करा रहा हूँ। कई बार आपके साथ यह क्या है? कहाँ है? किस प्रकार का है यह उनके अंदर विचार ही नहीं आया और वह अपने निर्विचार ध्यान में लीन रहे उसी का परिणाम है कि उन्होंने अपने धर्म-ध्यान और शुक्लध्यान से अपना परिणाम नहीं गिराया और वह बाहर शरीर नष्ट-भ्रष्ट होता रहा लेकिन आत्मा में उसका कोई भी फर्क नहीं पड़ा।

ज्ञायक भाव :

'जाणगभावो दुअहमिक्को' आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं बस एक की अनुभूति वहाँ पर होगी 'जाणग भावो' यानि मैं ज्ञायक भाव वाला हूँ। मैं बस एक, माने जो मेरे अनुभव में आ रहा है बस वही एक मात्र मैं हूँ, इसके अलावा कुछ भी मैं नहीं हूँ। शरीर भी उसको ऐसा लगेगा जैसे किसी पड़ौसी को वो देख रहा हो। पड़ौसी मतलब आपके बगल में कोई बैठा हो, उसके शरीर को कोई कीड़ा काट रहा हो और आप उसको देख रहे हो। आपको कोई फर्क नहीं पड़ेगा हो सकता है अगर आपको उससे कोई मोह हो तो आपको परेशानी हो सकती है। ऐसे ही जब आपका शरीर आपके लिए पड़ौसी बन जाये तो कैसे बनेगा जब इस शरीर में एकत्व बुद्धि नहीं होगी तब आत्मा में ही उसकी एकत्व बुद्धि हो जाने पर यह शरीर उसके लिए बिल्कुल पर द्रव्य हो जाता है। उस पर द्रव्य की स्थिति में यह शरीर उसको बिल्कुल अपने से दूर दिखाई देता है। पड़ौसी की तरह,

किसी दूसरे के शरीर में चुभन हो रही है, काटा जा रहा है, पीटा जा रहा है, अपनी आत्मा में कुछ भी नहीं है क्योंकि वह उसकी आत्मा का शरीर है ही नहीं। 'स्वदेहमपि नावैति' अपनी देह को भी वह नहीं जानता है तब कहलाता है यह योगीपना 'योगपरायण' अब यह योग में परायण हो गया। जब तक शरीर की अनुभूति है, तब तक योग परायण नहीं हुआ। शरीर का ज्ञान छूट जाये तब वो योग में परायण, योगी कहलाएगा। यह कितनी बड़ी-बड़ी उत्कृष्टता को लिए हुए शब्द हैं। जैन दर्शन में इस तरह के योगी को योगी कहते हैं और आज के इस लौकिक युग में आप देखोगे तो जो बड़े-बड़े आसन लगा लें, एक टाँग पर खड़े हो जायें, ताड़ासन, मक्रासन लगा लें उनका नाम योगी है जबकि वह तो सिर्फ देह और देह की ही अनुभूति कर रहे हैं। जैन दर्शन इतना अध्यात्म प्रधान दर्शन है कि इसमें कहते हैं कि जब तक आपको देह की अनुभूति हो रही है तब तक कोई योगी नहीं है। जो आसन लगाते हैं, यह बाबा वगैरह आत्मानुभूति से जुड़े हुए लोग नहीं हैं इसलिए यह योग तो खूब कर जाते हैं, आत्मानुभूति से जुड़े हुए जो योग है इनमें किसी को रुचि नहीं होती है। वास्तविक योगी तो वही होता है जो अपनी आत्मा में अपने मन, वचन, काय को जोड़ ले, उसी का नाम योगी है। जुड़ गया तो वह सबसे बढ़कर हो गया जिसको हमने अलग-अलग रखा था। मन, वचन, काय, इन सबमें आत्मा की शक्तियाँ बह रहीं हैं और इन तीनों की शक्तियों को इकट्ठा करके अपनी आत्मा में लगा लेते हैं तो वही आत्मा की शक्ति अनन्त शक्ति के रूप में आने लग जाती है। इसका नाम है, योगी और वही योगी इस प्रकार की अनुभूति में डूब करके यह मन वचन काय से आपको जुड़ा लेता है तो उसे कहा जाता है योग में पारायण हो गया है।

कई बार आपके साथ एक्सीडेन्ट तो हुआ ही होगा तो उस क्षण सब कुछ भूल जाते हैं और यह क्षण तो सबने महसूस किया है, यहाँ तक की मुनि अवस्था में भी एक्सीडेन्ट हो जाते हैं।

जबलपुर की बात है, आचार्य महाराज जबलपुर से सहजपुर की ओर जा रहे थे। मढ़िया जी से निकले, पूरे संघ के साथ विहार हो रहा था और आगे आचार्य श्री चल रहे हैं, पीछे हम सब मुनि चल रहे हैं, श्रावक, ग्रहस्थ सभी चल रहे हैं। जो जिसके साथ होना है उसी के साथ होता है। हमारे साथ भी महाराज चल रहे हैं आगे-पीछे। पता नहीं एक क्षण में जाने क्या हुआ कि जिस रोड़ पर चले जा रहे हैं, उसी रोड़ से साइड से एक ट्रक निकलता है और वो ट्रक जैसे ही बगल से निकला एक दम से आवाज आती है चर,चर,चर। एक दम से मैं वहीं स्तंभित हो करके खड़ा का खड़ा रह जाता हूँ, एकदम आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है। बहुत कुछ घटित होने वाला हो जैसे एकदम से आवाज आई, कदम वहीं पर रुक गये। महाराज साथ में चल रहे थे पीछे के पीछे रह गये, आगे ट्रक एकदम से पास हो गया, मुश्किल से दो-तीन सेकण्ड नहीं लगे होंगे और एकदम से समझ में नहीं आया कि यह चर-चर की आवाज कहाँ से आई और वहीं खड़ा रह गया क्योंकि कुछ हो ना

जाये इसलिए यहीं के यहीं रोक दो अपने आप को। फिर यह हुआ, वह जो ट्रक निकला था वो ऊपर जो पेड़ थे उसकी झाड़ी से टकराया और उसकी जो शाखा थी वह शाखा उससे टूटी और ट्रक बगल से पास हो गया और उसकी शाखा टूटकर के बिल्कुल सिर के ऊपर से निकली, एक बाल का अंतर कहना भी बड़ा अन्तर कहलाएगा। छूती हुई बिल्कुल मैं देख रहा हूँ।

मृत्यु सामने आ रही है, ऐसे छू करके सामने से निकली। सिर पर कुछ नहीं हुआ, जांघ के यहाँ टकराई और जांघ पर खरोंच आई और नीचे गिर पड़े और एकदम से आंखें खोली तो ऐसा लगा कि बहुत कुछ टल गया। बहुत कुछ अपने अन्दर ऐसी अल्प आयु की भी स्थितियाँ रहती हैं, जो इस संयम के प्रभाव से भी टल जाती हैं अगर हो सकता है कि मान लो उस समय पर संयम नहीं होता, कहीं किसी गाड़ी में होते तो वह ट्रक से किसी न किसी स्थिति में एक्सीडेन्ट होता। वह बहुत बड़ा एक्सीडेन्ट भी हो सकता था लेकिन अगर कुछ ऐसी दशा है तो उसके कारण से भी बहुत कुछ टलता है। जब यह टल गया, एक क्षण उस समय पर क्या अनुभूत हुआ मैं वो ही अनुभूति तो आपको बता रहा था। जो एकदम से सामने निर्विचार स्थिति आती है, कुछ भी याद नहीं रहता है, यह जो निर्विचार स्थिति हमारे लिए ऐसे आघातों के समय पर आती है, कष्टों के समय पर आती है, वो निर्विचार स्थिति, ऐसी आत्मा के अन्दर आनन्द के समय में भी आती है लेकिन उस स्थिति में उस आनन्द से कोई भागता नहीं है और इस स्थिति में तो डर लगता है, जैसे ही आंख खोली तो समझ में आया कि यह आवाज इसकी थी। पूरा का पूरा संघ चल रहा है लेकिन जिसके साथ होना है, उसी के साथ होता है। ऐसा लगा कि बाल-बाल बच गए। जब आचार्य महाराज को शाम को जाकर के बताया कि ऐसा हुआ था रास्ते में, तो आचार्य महाराज कहते हैं- हाँ देखो, जिसका कर्म होता है उसी के साथ घटित होता है।

यह हमेशा ध्यान रखना। समूह में चलते हुए भी पूरे समूह के साथ कुछ भी नहीं हुआ। अपना कर्म हमेशा इतना अपने साथ में एकत्व के साथ में मिला हुआ रहता है कि अपना ही कर्म अपने को फल देता है और उस फल देते समय पर जो अपने मन में विचार आता है वह केवल अपने लिए ही होता है और किसी के लिए नहीं होता है। आप कई लोगों के साथ यात्रा करें, लेकिन आपके साथ ही घटित होना है तो आप देखोगे कि प्लेटफार्म पर सब साथ उतरेगें, एक साथ बैठेगें लेकिन अगर आपकी बुद्धि, आपके कर्म इस तरीके के तीव्र होंगे एकदम से सब तितर-बितर हो जाएगा। आपका एकदम से पैर फिसल गया, बस आपका काम हो गया। यह कर्म की दशाएँ, हम खूब भुगतते हैं, यह निर्विचार दशाएँ हम खूब भुगतते हैं लेकिन यह सब दुख के साथ होती है। यहाँ आचार्य कहते हैं, जीते-जी देखो इसको, यह शरीर तो कई बार इसी तरीके से छूटा है, मिटा है लेकिन इससे आत्मा का आनन्द आ जाये तो यह समझ लो कोड़ी के दामों में तुमने रत्न खरीद लिया

अपना कर्म अपने साथ इतने एकत्व में मिला रहता है कि सिर्फ हमें ही कर्म फल देता है।

क्योंकि आत्मा की अनुभूति इस शरीर के साथ कर लेना, माने, इस शरीर की स्थिति तो कोड़ी की तरह है और इससे उस रत्न की अनुभूति कर लेना जो अपना सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र इन तीनों का एक साथ परिणमन होना या इन तीनों की उस साम्य दशा में आत्मा की जो स्थिति बनती है उसका अनुभवन करना यह उस कोड़ी से रत्न खरीदने के समान है। मरते तो बहुत से लोग हैं, निर्विचार तो सब हो जाते हैं लेकिन निर्विचार ध्यान में ऐसा आनन्द आयेगा कि सब बाहर की चीजें आपको फीकी लगने लगेंगी। उस ध्यान को यहाँ कहा जा रहा है, यह योगी की जीती जागती अवस्था है। यह जागृत अवस्था की निर्विचार स्थिति है और वह मरण से पहले होने वाली निर्विचार अनुभूति है। उस निर्विचार स्थिति में तो हमें पीड़ा के अलावा कुछ नहीं होगा लेकिन इसमें हमें आनन्द ही आनन्द मिलेगा, ऐसी जब स्थिति आ जाती है तो आचार्य कहते हैं कि यह अन्तरंग चारित्र कहलाता है, यह सामायिक चारित्र कहलाता है फिर बाहरी उसके लिए किसी भी प्रकार का जो चारित्र है इन बाहरी चारित्रों में उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। कुछ अच्छा, बुरा कोई भी उससे कहे, उसके लिए कोई फर्क नहीं पड़ता। ऐसे भी लोग आपने देखे, सुने होंगे, जिनसे कुछ कह दो उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि अच्छे, बुरे की स्थिति हमारे अन्दर तभी तक अनुभूत होती है, जब तक हमें भीतर अपने आप में रहना नहीं आता, या हमारा भीतर से आत्मिक चारित्र उत्पन्न नहीं होता। तब तक यह व्यवहार में कहा जाता है इसे छोड़ो, इसे ग्रहण करो, इसको हेय मानो, इसको उपादेय मानो, यह सब बाहर बाहर रहता है लेकिन जब अन्तरंग के चारित्र की स्थिति आती है तो उसमें बाहर- की कोई भी चीज ना अच्छी होती है, ना बुरी होती है इसलिए आप देखोगे अगर मुनि महाराज के लिए कोई यह भी कह दे कि आपने यह हत्या की है, आपने चोरी की है अगर वास्तव में मुनि महाराज अपनी आत्मा में रहने और अपनी आत्मा में मग्न होने वाले आनन्द में रहने वाले होंगे तो उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

एक घटना शास्त्रों में ऐसी भी आती है कि एक मुनि महाराज के लिए एक व्यक्ति सामने-सामने कहता है कि महाराज हमारा रत्न आपने चुराया है और मुनि महाराज जान रहे हैं कि इसका रत्न कहाँ है लेकिन वो बोल नहीं रहे हैं। उस सेठ ने मुनि महाराज को उस रत्न की विधि से पड़गाहन किया और ले जाकर के उसने चौके के बाहर सब रख दिया। एक मोर आया और उस मोर ने कंकड़ समझकर के उस रत्न को उठा लिया, गले में ले लिया और वो जाकर के पेड़ पर बैठ गया। इधर मुनि महाराज के आहार होने के बाद में वो सेठ कहता है कि यह रत्न गया कहाँ, यहाँ कोई तो आया नहीं, मुनि महाराज के अलावा यहाँ कोई था नहीं, कहीं इन्होंने ही तो जादू नहीं कर दिया या कहीं कमण्डलु, पिच्छी में तो नहीं रख लिया, सब कुछ सम्भव है। मुनि महाराज से वो अनेक रूप में बात करता रहा, पूछता रहा, महाराज ऐसा नहीं होना चाहिए, ऐसा हो गया, ऐसा क्यों हुआ,

अंतरंग चारित्र में बाहर की कोई भी चीज अच्छी या बुरी नहीं होती है।

अनेक तरीके से घुमा-फिरा करके बात करता रहा और अब सब कुछ कहने के बाद में भी महाराज समझ रहे हैं, कहाँ क्या है लेकिन कहेंगे कुछ नहीं क्योंकि उन्हें बाहर की किसी चीज से कोई मतलब ही नहीं। सब तरह से बात करने में भी मुनि महाराज कुछ नहीं बोले तो उसने सीधे-सीधे कह दिया कि मुझे शक है यह रत्न आपके ही पास होगा। फिर भी मुनि महाराज को कोई फर्क नहीं पड़ता है क्योंकि जिसके लिए जो कहा जा रहा है वो सच नहीं है तो कोई फर्क पड़ता नहीं है। अगर आप चोर नहीं हैं और आप से कोई कहे कि आपने चोरी की है तो आप उसको पागल समझोगे। यह क्यों बे-वजह की बातें कर रहा है और अगर आपने चोरी की होगी तो उसके लिए आप तुरन्त react करोगे, आपको लगेगा कि यह मेरा भेद ना खोल दे तो आप उसके लिए योजना बनाओगे, आप उसके ऊपर अनेक प्रकार से आक्रमण करोगे। झूठ होता है भीतर तो वह बाहर के भी उस कार्य के रूप प्रकट होता है और अगर भीतर सच होता है तो वह आपके लिए कभी भी प्रतिक्रिया के रूप में नहीं आएगा। मुनि महाराज उस समय पर बैठे हैं और उस समय पर सब देख रहे हैं, सब सुन रहे हैं। उस सेठ के मन में इतना विकार आ गया उस रत्न के कारण से उसके पास में एक डंडा पड़ा था उसने डंडा उठाया और कहा, महाराज! बता दो मैं आपसे बोलते-बोलते थक गया हूँ और अगर आप नहीं बताओगे तो मैं डंडा मारने वाला हूँ और उसने डंडा मारकर के दिखाया। वह डंडा टूट गया और टूटकर के उछलकर के उसी पेड़ पर जहाँ मोर बैठा था, उसके कंठ पर लगा और उसके अन्दर से मणि निकलकर के बाहर आ गयी और उसी पेड़ के नीचे मुनि महाराज सामायिक कर रहे थे। मुनि महाराज को कोई मतलब नहीं, यह कहलाता है अन्तरंग विचार। जब कोई व्यक्ति, इस तरह के अन्तरंग चारित्र में होने की भावना भाता है तो बाहर की बुराई-अच्छाई की चीजों से कोई फर्क नहीं पड़ता। अगर आप महाराज की अच्छाई करो या बुराई करो उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ेगा अगर वह अन्तरंग चरित्र में लीन होंगे तो। जहाँ भीतरी चारित्र नहीं है तो वह बाहरी चीजों में उलझने लगेगा क्योंकि मतलब ही क्या है? दुनियाँ हमारे बारे में जानती क्या है? और जानेगी क्या और जानकर के भी क्या कर लेगी? जिनको अपने भीतरी चारित्र में आनन्द आने लग जाता है, वह बाहरी अच्छाई और बुराई से ऊपर उठ जाते हैं। उसके अंदर अगर यह संवेदन हो गया कि यह हमारी देह नहीं है तो वह दूसरों की देह को क्या जानेगा और खुद की देह को जानकार भी क्या सुख और दुख का आरोपण करना। तुझे जो करना है वो कर, मुझे जो करना है वो मैं कर रहा हूँ, इसे कहते हैं '**योगी योगपरायणः**'। अब उस योगी को दुनियाँ की कोई भी न अच्छाई, न बुराई छू सकती है, वह तो अपने आप में ही आनन्दित रहता है। बाहर की किसी भी कल्पना से कोई भी फर्क नहीं आता है, वह योगी कहलाता है। ऐसे योग की यह उत्कृष्ट अवस्थाएँ हैं जिनका वर्णन हम कर रहे हैं। ऐसे चरम अवस्था में जो आनन्द आता है, आप सोचो उनका चारित्र कितना उठ

भीतरी चारित्र में आनंद आने से बाहरी अच्छाई और बुराई से ऊपर उठा जाता है।

चुका है। उसे कहते हैं निश्चय चारित्र, अन्तरंग चारित्र, जहाँ पर बाहर की किसी भी परिणति का प्रभाव नहीं पड़ता है। उस चारित्र की स्थिति में रहने वाले योगियों का यहाँ पर वर्णन किया गया है। आत्मा में लीनता के लिए जो उपदेश दिये जा रहे हैं और जो इन उपदेश के अनुसार चलेगा, उसका मन अपने आप विकारों से मुक्त होता चला जाएगा क्योंकि मन तो एक विचार की दशा है। उसको जैसा भी विचार दे दो वह उसी विचार में स्थित होने लग जाता है तो मन के अन्दर पहले यह विचार दे दिया गया कि देह, काम-भोग, धन आदि का स्वरूप क्या है और जब मन ने यह सब समझ लिया तो अब उसे विचारों से मुक्त करने के लिए कोई भीतर से कोई आयाम नहीं करना। कई शिविर लगते हैं ध्यान के, अजैन लोगों के तो, वह मन से विकारों को निकालने के लिए मन को पीड़ित करते हैं और अगर मन की पीड़ा का सहन कर लिया तो वो कहते हैं कि आपके अन्दर मन से विकार निकल रहे हैं, आप राग, द्वेष से मुक्त हो रहे हैं जबकि आचार्य कहते हैं कि राग, द्वेष से मुक्त होने की कोई प्रक्रिया है ही नहीं। राग, द्वेष से मुक्त होने की जो प्रक्रिया जैन दर्शन में बताई, वो किसी भी अन्य दर्शन में नहीं है। आत्मा अपना नित्य है, आत्मा अनादि गुणों से भरा हुआ है, उस मन को बस interest इतना पैदा करा दो कि वो मन आत्मा में लगने लग जाएगा तो मन बाहर आकर के अपने आप राग, द्वेष में कमी करने लग जाएगा। उस मन को भी आपको पीड़ा देने की जरूरत नहीं है, उसे बस समझाने की जरूरत है कि यह सब राग, द्वेष के कारण हैं। हमें इन कारणों में नहीं उलझना इसलिए जब वो मन आत्मा की भावना करने लग जाता है तो वह मन अपने आप विकारों से मुक्त होता चला जाता है यह बहुत सरल व सीधी प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया को दुनियाँ के वैज्ञानिक लोग गलत तरीके से प्रस्तुत करते हैं और जो गलत तरीका होता है उसे अच्छे ढँग से प्रस्तुत करते हैं। यह प्रक्रिया इतनी सीधी है कि केवल अपने मन को आत्मा को भावना की ओर प्रेरित करना और जब मन आत्मा से मुक्त हो जाएगा तो शरीर के प्रति उसकी भावनाएँ अनासक्त रूप में होने लगेगी, उसके अंदर अपने आप शरीर जड़ पदार्थ के रूप में भाषित होने लगेगा तो मन विकारों से मुक्त होने लग जाएगा, आपको कोई कष्ट करने की जरूरत ही नहीं है। इसलिए आचार्य कहते हैं- भावनाओं के माध्यम से मन को सुधारें, अच्छी भावनाएँ, आत्मा की भावनाएँ जितनी करोगे तो उससे यह शरीर, काम वासना की भावना कम होगी।

आत्मा की भावना करने से मन विकारों से मुक्त होता है।

यह कैसे संभव है?

43

यो यत्र निवसन्नास्ते स तत्र कुरुते रतिम्।
यो यत्र रमते तस्मादन्यत्र स न गच्छति ॥

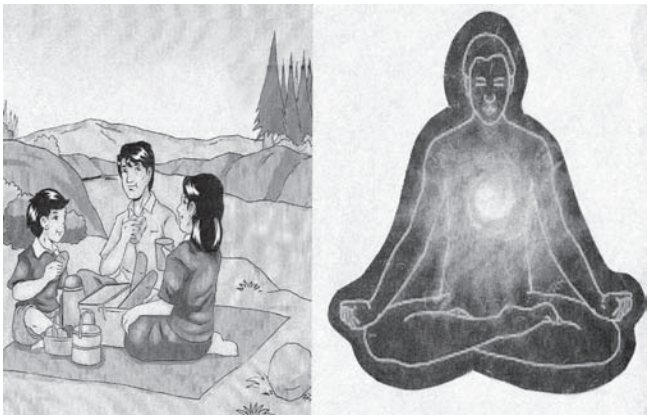

अन्वयार्थ–(यः) जो [जीव] **(यत्र)** जहाँ पर **(निवसन् आस्ते)** रहता है **(स तत्र)** वह वहाँ [उस स्थान पर] **(रतिम् कुरुते)** प्रीति करता है और **(यः यत्र)** जो जहाँ **(रमते)** रम जाता है **(स)** वह **(तस्मात्)** उस स्थान से **(अन्यत्र)** अन्य जगह **(न गच्छति)** नहीं जाता।

- **मन की खुराक– श्रुतज्ञान**
- **मार्गदर्शक**
- **अंतरंग पुरुषार्थ**

आत्मध्यान में लीन योगी के लिए ऐसा कैसे हो जाता है कि वह यह भी भूल जाए कि मैं क्या हूँ? मेरा स्वरूप क्या है? मैं कहाँ हूँ? कहाँ था या अपनी देह के बारे में भी भूल जाये। मुझे अपनी देह का भी ज्ञान नहीं रहा, यह जो पिछले श्लोक में वर्णन किया था उसी सम्बंध में ऐसा लगता है कि आचार्य महाराज के पास कोई शिष्य बैठा था और उस शिष्य ने पूछा होगा- महाराज! यह बात जम नहीं रही। कोई भी आत्मा अपने शरीर का भी ध्यान न रखे, अपने शरीर को भी भूल जाए, आपने कहा है, स्वीकार है लेकिन फिर भी आप थोड़ा सा समझाइए कि ऐसा कैसे हो सकता है। उसके लिए यह उत्तर दिया जा रहा है **'यो यत्र निवसन्नास्ते'**, जो जहाँ पर रहने लग जाता है **'स तत्र कुरुते रतिम्'**, वह वहीं पर रति करने लग जाता है, वहीं पर जुड़ने लग जाता है। जो जहाँ पर रहेगा, उसको वहीं पर रहने में अच्छा लगने लग जाता है, यह एक सामान्य नियम है। उसी सिद्धान्त को ध्यान में रखकर के आप विचार करोगे तो आपको उस जिज्ञासा का समाधान मिल जाएगा। अब यह योगियों ने अपने रहने का स्थान, मन को रमाने का स्थान बदल लिया है। आपको देखने में आएगा कि वो इसी जगत में, शहर में, गांव में रह रहे हैं लेकिन आचार्य कहते हैं यह वास्तव में अपनी आत्मा में रहने लग जाते हैं और जब मन बार-बार उसी चीज को सुने, उसी के बारे में विचार करे तो मन के अन्दर भी और कहीं जाने की इच्छा उत्पन्न नहीं होती। मन को आप जहाँ पर लगाओगे तो जहाँ-जहाँ पर वह रह रहा है तो वह उसी में रहने लग जाएगा। कई लोग मन को जीतने के लिए, मन को सम्भालने के लिए बड़े-बड़े उपाय करते हैं और जो आचार्यों ने उपाय बताया है बड़ा सीधा है। आपको जो अच्छा लगता है, उसमें पहले मन को रख दो, मन अगर आपका उसमें नहीं रह पाये, कोई बात नहीं, मन के सामने दो चीज रख दो। पहले मन के सामने वो चीज रखनी पड़ती है और फिर बाद में मन वह चीज अपने आप रखने लग जाता है। पहले हमें अपनी इन्द्रियों के सामने कोई चीज रखनी पड़ती है और फिर बाद में इन्द्रियाँ उसी में रहने लग जाती हैं। जैसे आपको कोई दृश्य अच्छा लगता है तो उसे आँखों के पास में रख दो, आपको जो भोजन अच्छा लगता है, अपनी जिह्वा के पास में रख दो। पहले पहल आप इतना कर लो, जब आप इतना कर लोगे तो इन्द्रियाँ अपने आप उसी चीज में रहने की इच्छा करने लग जाएगी और आपको बताने की भी जरूरत नहीं पड़ेगी। पहले-पहले आपको जिह्वा इन्द्रिय के सामने मीठा, चटपटी, खट्टा सब के भोजन रखने पड़ेगें और जब वह उन सब चीजों से अभ्यस्त हो जाता तो वह अपने आप जिह्वा इन्द्री फिर उसी में रति करने लग जाती हैं। जैसे अगर आपने मीठा खिलाना शुरू किया हो और इन्द्रियाँ उसी में रहने लगी। अब अगर आपने कभी मीठा नहीं खाया भोजन के समय तो आपको लगेगा कि कुछ तो है जो हमने नहीं खाया। इसी का नाम है पहले पहले हम रखते हैं विषय और जब वह विषय उसमें रहने लग जाता है तो फिर बिना उसके रहा नहीं जाता है कुछ ऐसी स्थिति मन की होती है। आचार्य कहते हैं 'यो यत्र निवसन्नास्ते' इस मन को बिना उसके रहा नहीं जाता है।

जो जहाँ पर रहने लग जाता है वह वहीं पर रमने लग जाता है।

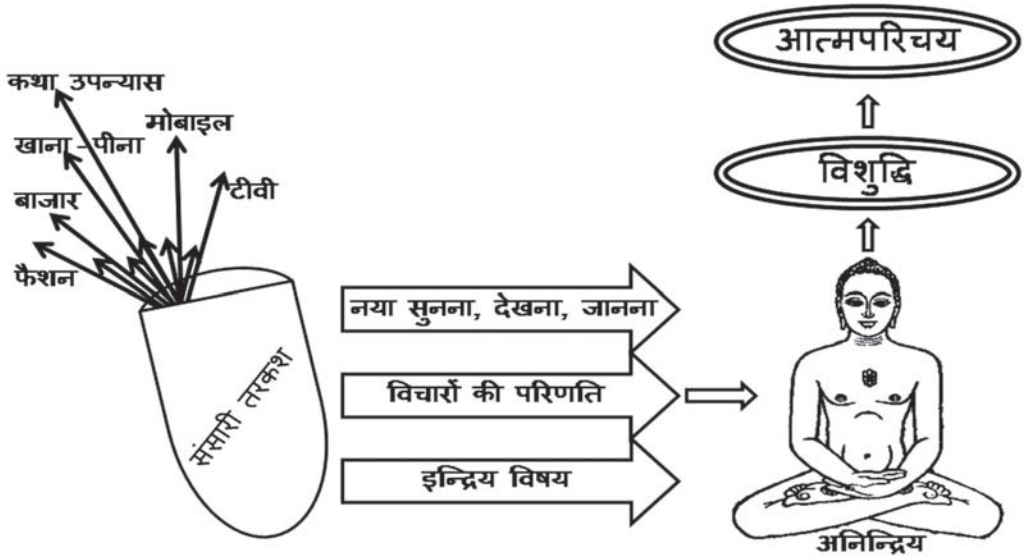

मन की खुराक— श्रुतज्ञान :

इस मन को भी आपको रखना है, पहले मन के सामने कुछ रखो, जब वह उसे अच्छा लगने लग जाए और मन अपने आप उस चीज को माँगने लग जाए तो समझ लेना कि अब मन उसमें रहने लगा है। पहले मन के सामने यह इष्टोपदेश ग्रन्थ रखो और कहो- हे मन! तुझे कितनी बार समझाया है कि तू इसी को पढ़ाकर और कुछ मत पढ़, न कोई कथा, न उपन्यास। जब सामने रखोगे तो पढ़ेगा तो पढ़ने के बाद में हो सकता है उसके अन्दर थोड़ी सी रुचि आए लेकिन अगर वह थोड़ी सी भी रुचि उस मन में आयी तो वह रुचि बढ़ सकती है क्योंकि मन का यह काम है, मन को तुम जो दोगे, उसी में वह लगेगा और मन की बहुत अच्छी विशेषता यह भी है कि मन नया-नया चाहता है। मन की कुछ बुराइयाँ भी हैं उनको मत सोचो लेकिन मन की जो अच्छाइयाँ हैं जिनसे तुम अपने जीवन में मन के लिए अच्छा कर सकते हो। यह अच्छाई कितनी बड़ी है कि मन नया-नया चाहता है। अगर बुराई को भी तुम अच्छाई के रूप में देखने लग जाओ क्योंकि बुराई भी तब तक बुराई के रूप में रहेगी जब तक आप उसके लिए अहितकारी विषय दोगे और जब उसके लिए हितकारी विषय मिलने लगेगा तो वह बुराई ही अच्छाई बन जायेगी। वह अच्छाई यह है कि मन के अन्दर स्वभाव पड़ा है नया-नया सुनने, देखने, जानने, प्राप्त करने का। यह एक मन का स्वभाव है। इसलिए मन को आपको नये-नये इन्द्रिय के विषय देने पड़ते हैं तो मन उसके कारण से बिगड़ गया। मन की यह परिणति है कि उसे नया-नया चाहिए तो आप उसे अच्छा भी दे सकते हो और बुरा भी दे सकते हो। बुरे रूप में तो आपने इसका बहुत उपयोग किया है, अब थोड़ा अच्छे रूप में उपयोग करना शुरू करो। मन का विषय है नया-नया जानना, सुनना, तो उसे अच्छा दो। आपने पढ़ा था-

नया-नया सुनने, जानने, देखने के मन के स्वभाव का सही दिशा में उपयोग करें।

श्रुतज्ञान इन्द्रिय का नहीं अनिन्द्रिय का विषय है। अनिन्द्रिय माने मन के माध्यम से श्रुतज्ञान की परिणति अधिक चलती है, मन के विचारों की परिणति अधिक होती है सोचने, समझने की। एक बात बोल रहा हूँ तो उस बात में भी आप सबका दिमाग अलग-अलग सोच रहा होगा। एक मन के माध्यम से जो बात सुनने में आती है वह श्रुतज्ञान के कारण से अलग-अलग रूपों में चली जाती है।

आचार्य कहते हैं कि इस मन को ऐसा विषय दो जिसके माध्यम से यह मन उसमें रमने लग जाये और रमने के लिए आज तक इसको जो नहीं मिला वो दो। जो मिलता आया है उसी उसी को क्यों देते रहते हो? विषय-वासना, इन्द्रियों के सुख के अलावा कुछ और देने की सोचो, यह तो तुमने बहुत बार दे दिया। इसे कुछ नया दो और कुछ नया दोगे तो मन भी इसमें आकर्षित होगा और धीरे-धीरे वह आकर्षित हो गया तो आप उस मन के माध्यम से आत्मा में जहाँ हम उसे ले जाना चाहते हो वहाँ पहुँच जायेगा।

इसलिए आचार्य कहते हैं कि मन की खुराक है- श्रुतज्ञान, नया नया ज्ञान और उस मन को भीतर से उस ज्ञान के माध्यम से, उस मन में नया-नया भाव, नई-नई विशुद्धि उत्पन्न होगी, उन्हें आचार्य कहते हैं- अपूर्व-अर्पूव परिणाम। ऐसे परिणाम जो पहले नहीं हुए, वो उस मन के अन्दर उत्पन्न होंगे तो फिर मन अपने आप कहेगा-आहा! ऐसा ही चाहिए जैसा कल मिला था, यह सब मन को ध्यान रहता है तो मन की इस आदत का बहुत अच्छा फायदा उठा सकते हैं, अभी तक इस मन की आदत से घाटा होता है। वो मन नया-नया चाहता है, नये-नये कपड़े, आभूषण, व्यंजन, दृश्य आदि यह जो मन की आदत खराब कर दी है हमने, अब इस मन की आदत को थोड़ा सा नये रूप में हम लायें। इस मन को नये-नये तीर्थों के दर्शन कराना, इस मन को नये-नये भगवान के बिम्बों के दर्शन कराना, इस मन को नये-नये गुरुओं के दर्शन, शास्त्र पढ़ाना। मानेगा तो नहीं पहले, यह सब करने के लिये। आप मन को जबरदस्ती पकड़ोगे ना तो उसे पकड़ नहीं पाओगे, उसे आप जितना पकड़ने की कोशिश करोगे उतना ही दूर भागेगा, बच्चे की तरह होता है मन। इसलिए लोग कहते हैं, मेरा मन तो बच्चे के समान है। बच्चे के पीछे-पीछे जैसे उसे पकड़ने भागोगे, उतना ही भागेगा बच्चा और उसको उसी में आनन्द आएगा। वह हमारे पीछे भाग रहे हैं और उस बच्चे को आप समझा दोगे, उसको प्रेम से अपने पास बुलालोगे तो वह आपके पास आ जायेगा और आपकी बात मान लेगा। अगर आप उसके पीछे ही भागते रहोगे तो वह तुम्हें पूरे घर में घुमाता रहेगा, ऐसे ही मन की स्थिति होती है। इस मन को समझाओ और जब यह मन धीरे-धीरे एकांत में समझने लग जाता है तो उससे कहो कि देख तूने यह सब कुछ किया है, तू यह जिद छोड़ दे, तुझे इन विषयों के पीछे भागने से कुछ नहीं मिलेगा, यह सब तेरे लिए कर्म-बन्ध कराएंगे, यह सब तेरे अन्दर राग, द्वेष के संस्कार बढ़ाएंगे, इनसे तेरा कोई हित नहीं होगा। इसे बार-बार प्यार से बच्चे की तरह एकांत में समझाना पड़ेगा तब जाकर के इसकी गति रुकेगी। अगर इसकी गति रुक गई, यह संभल गया

मन में श्रुतज्ञान से नई-नई विशुद्धि उत्पन्न होगी जिसके अपूर्व परिणाम होते हैं।

तो आप इसे जो कहोगे वो करने लग जायेगा। जैसे बेटा अपनी माँ की गोद में बैठकर के उसकी हर बात मान लेता है उसी प्रकार इस मन को समझाकर के, सम्भाल करके प्यार से इसे समझाना पड़ेगा। उसे उन्हीं बातों में रखना पड़ेगा जिन बातों में तुमने सोच रखा है इसको इन्हीं बातों में रहने से कुछ मिलेगा। वह बातें यह है जो यहाँ बताई जा रही हैं आपके मन ने कभी भी आत्मा की बात सोची नहीं, देखी नहीं, परिचित नहीं हुई बाकी सब सुना है। आचार्य कुन्दकुन्द देव यहीं से शुरू करते हैं समयसार ग्रन्थ में–

''सुद परिचिदाणुभूदा, सव्वस्सवि कामभोगबंधकहा। एयत्तस्सुवलंभो णतरि ण सुलहो विहत्तस्स।।''

इस मन को जिसने इतना समझा दिया तो वह मन आगे के लिए कुछ गति करेगा 'सुदपरिचिदाणु भूदा'–जिसके लिए समयसार की यह चौथे नं. की गाथा समझ में आ गई तो ही वो समयसार में आगे गति कर पायेगा। इसके लिए सबसे पहले आचार्य कुन्द–कुन्द देव ने यह परीक्षा करने के लिये हमें यह गाथा दी है। जिनका मन पहले यह समझ ले– सुद यानि सुना गया है, परिचिद यानि परिचित हुआ है, अणुभुद, यानि अनुभूत किया है यह जो पाँच इन्द्रिय के विषय हैं वो हमने पहले सुने हैं, अनुभूत किये हैं, यह सब हमारे परिचय में आ चुके हैं। अब अपने इस जीवन को उस दौड़ में मत दौड़ाओ। अपने मन से कहो कि थोड़ा सा रुक जाये। समस्या तो यह है कि जब तक पुनः इसका हर चीज से परिचय नहीं हो जाये तब तक यह मानता नहीं है। इसे पता नहीं है कि यह आग है और इस आग में यह जल सकता है। अगर उसे कहेंगे तो वह मानेगा नहीं, कभी–कभी उस मन के लिए यह होता है कि उसे रोका क्यों गया? वो सोचता है कि यहाँ पर कुछ है इसलिए रोका है और यह आग है और उस आग के पास में जब तक नहीं जायें, जब तक वह आग उसको नहीं जला दे, तब तक उसे अनुभव में नहीं आएगा कि यह आग जलाती है। इधर आचार्य सीधे–सीधे कह रहे हैं कि उस आग में जाने की कोशिश मत कर, थोड़ी सी बात मान ले। तू इस जिनवाणी माता की बात मान ले तो तू इस संसार के दुखों में गिरने से बच जाएगा। एक बार इस मन को समझाना–

''सुद परिचिदाणु भूदा, सव्वसवि कामभोगबंधकहा''

जितने भी काम, भोग, बंध कथाएँ हैं, सब इस आत्मा में, इस मन के माध्यम से पहले सुनी हैं, अनुभूत की हैं, परिचय में आई हैं लेकिन यह मन की आदत है कि वो मन फिर कहता है नहीं–नहीं थोड़ा सा परिचय तो करना है। जैसे माँ बच्चे को समझाती है कि तू आग में हाथ मत डालना, तू जल जाएगा लेकिन उसकी इच्छा तो होती है फिर माँ उसे किसी बच्चे को लाकर के बताती है कि इसने आग में हाथ डाल दिया था तो यह जल गया और तू भी डाल देगा तो तेरा हाथ भी इसी तरह जल जाएगा। इसी तरह अपने मन को समझाना पड़ेगा जब जाकर के वह शांत होगा।

इसलिए मन को समझाने के लिए यह जरूरी नहीं है कि उन विषयों में उलझा जाये। आचार्य कहते हैं कि उन विषयों में जो फँस गये हैं, उनकी परिणति को देखकर के अपने मन को सम्भाल

आस–पास का सुख–दुख आदि देखकर अपने मन को विषयों में उलझने से रोक लो।

लो। अपने आस-पास देखो, कौन कितना सुखी है, कौन कितने आनन्द में है, कौन किन कारणों से उन विषयों में जल रहा है और उन्हीं विषयों में तू भी गिरने वाला है तो उनको देखकर के तू समझ जा, थोड़ा सा रुक जा।

यह बात मन को अगर एक युवा अवस्था में, एक यौवन की दशा में समझ में आ जाये तो बड़ा लाभ होगा। अगर बुढ़ापा होने के बाद समझ में आये तो कोई लाभ नहीं होता क्योंकि मन के अन्दर का जो भाव था, पुरुषार्थ था, वह पुरुषार्थ करने की उसके अन्दर क्षमता नहीं बचती तो आचार्य कहते हैं कि यह चीज तुम पहले से समझ लो। अपने आस-पास देखकर के अपने मन को उसमें पड़ने से बचा लो क्योंकि जो अपने मन को बचा लेता है तो वह अपने मन को सम्भाल लेता है। आप देखो कि किस घर में मृत्यु नहीं होती, बीमारी नहीं होती, किसी न किसी चीज का अभाव रहता है और अगर सब चीज की पूर्ति होती है तो कोई न कोई अभाव आ ही जाता है सामने। उस पूर्ति से कभी भी इस मन की पूर्ति नहीं होती। अगर इस मन को इन सब बाहर की चीजों से बचाकर के अपने पास ले आओगे तो आचार्य कहते हैं कि हम तुम्हें उस ओर ले जा सकते हैं जो अभी तक मन से अपरिचित चीज रही है लेकिन पहले मन को इन परिचयों से उठा लो और जब इन सब परिचय से अपने मन को समझा लेंगे तो अपने मन में एक नई प्यास पैदा होगी और उस प्यास में मन को जो दिया जाएगा, वह ग्रहण कर लेगा तो वह मन के लिए लाभदायक सिद्ध होगा। यही होता है इस दुनियाँ में-

''दुखी कोई प्रीति करके, दुखी कोई प्रीति बिन,
दुखी कोई पुत्र से तो, दुखी कोई पुत्र बिन,
पुत्र चाहत से बड़ी, पुत्री की संतति से दुखी,
देख कर मुझको लगा कि जिंदगी जिंदा कहाँ है,
देख कर मुझको लगा कि जिंदगी जिंदा कहाँ है''

यह सब जो तुम देख रहे हो वो मैंने पहले बचपन में ही देख लिया था और मुझे उस उम्र में दिख गया इसलिए आज इस उम्र में कुछ दिख रहा है। हमें आज अलग इसलिए दिख रहा है क्योंकि जो तुम देखने के लिए पूरी उम्र गुजार देते हो वो हमें पहले ही दिख चुका था।

कोई किसी से प्रेम कर रहा है और वह इस चक्कर में पड़ा रहता है और जब प्रेम हो जाता है तो दूसरे दुख शुरू हो जाते हैं, कोई पुत्र से दुखी है और कोई पुत्र के बिना दुखी है और किसी के पुत्रियाँ हैं तो वह उससे दुखी है। इन सब चक्करों में दुखी रहते हैं, है क्या इस दुनियाँ में? फिर मुझे सोचकर लगा कि जिंदगी जिंदा कहाँ है। जब यह सोच पहले पैदा नहीं होगी, तब तक यह मन आगे कुछ नई चीज की और तैयार होगा ही नहीं और जब यह सोच उस उम्र में पैदा हो जाये जब इस मन के लिये ताकत रहती है तो आचार्य कहते हैं कि अब तुम्हें आगे बढ़ाया जा सकता है। पहले आप यह विश्वास करलो कि यह जो बाहर दिख रहा है, वो पहले हम अनुभव कर चुके, अब हमें इस अनुभव में अपना समय खराब नहीं करना।

चीजों की पूर्ति से कभी भी इस मन की पूर्ति नहीं होती।

आचार्य कहते हैं कि तुम बाहर की चीजों से जलो मत, तुम अपने भीतर एक प्रकाश पैदा करो। जिस प्रकाश में तुम्हें खुद अपनी आत्मा की ओर होने की गति उत्पन्न हो, जो तुम्हारे अन्दर अभी तक नहीं हुआ है, उसका परिचय करो, उस परिचय की बात सुनो और उसी की चेष्टा करने का प्रयास करो। वो हमने सब कुछ देखा है, सुना है लेकिन जो अदृश्य है उसको नहीं देखा। अदृश्य होते हुए भी हमने उसकी कई रूपों में कल्पना की होगी। आज कई लोग मानते हैं कि आत्मा है, चेतना है, जीव है लेकिन सब अलग-अलग रूपों में मानते हैं।

science मानेगा कहेगा जिसमें कुछ activities हो रही हो, re-production हो रहा हो तब वह कहेगा यह जीव है। अगर उसमें कुछ activities नहीं है तो वह जीवन नहीं है। हमारे जब कभी जन्म हुये होंगे, अनेक धर्मों में भी- भगवान है एक आत्मा, सबमें मिल जाता है। न जाने कितनी कल्पनाओं में हमने, न जाने कितने जन्म गँवाये लेकिन आज तक हमें वह सही स्वरूप समझ में नहीं आया जो सही स्वरूप इस जिनवाणी माँ के द्वारा हमें सुनाया जा रहा है। वह आत्मा के गुणों की, लक्षणों की जब तक हमारे अन्दर अवधारणा नहीं होगी, तब तक आचार्य कहते हैं कि तुम्हारे अन्दर न सम्यक्त्व होगा, न तुम्हारे मन के अन्दर नई रोशनी उत्पन्न होगी और न तुम्हारा मन कोई ऐसी जगह पर टिक पायेगा, जहाँ पर रहकर के वह कहने लग जाये बस अब आ गई तृप्ति। वो तृप्ति जब आयेगी तब आप सही रास्ते पर पहुँचोगे। सही रास्ते पर पहुँचने के लिए आपको कोई भी निमित्त मिल सकता है लेकिन आप के पुण्य में ऐसी चीज हो कि आप किसी ऐसे निमित्त के पास पहुँच जायें, जो आपको सही रास्ता बता दे।

मार्गदर्शक :

एक बच्चा भी आपको सही रास्ता बता सकता है, एक बूढ़ी माँ भी आपको सही रास्ता बता सकती है, एक गुरु भी आपको सही रास्ता बता सकता है लेकिन आपकी पहुँच सही जगह पर हो जाये तो आपको सही रास्ते का ज्ञान हो जाता है। एक बार एक राजा भोज थे और उनके समय के एक कवि थे भास कवि जो बहुत प्रसिद्ध थे। राजा लोग उस समय पर भेष बदलकर के अनेक जगहों पर जाया करते थे, अपने राज्य का परिचय किया करते थे व समझा करते थे कि कौन कितने विद्वान् हैं, कौन कितनी अज्ञानता में जी रहे हैं, कौन हमारे बारे में क्या सोच रहे हैं? इस तरीके के परिचय लिया करते थे। एक बार यह दोनों राजा और कवि भेष बदलकर के निकले और एक रास्ते पर जाकर के खड़े हो गये और वहाँ जाकर के एक बुढ़िया से पूछते हैं- यह रास्ता कहाँ जा रहा है? बुढ़िया ने समझ लिया कि ये कोई विशेष लोग हैं। वह बुढ़िया उससे कहती है कि रास्ता कहीं नहीं जाता है, रास्ते पर चलने वाले लोग जाते हैं। अगर कोई विद्वान् है तो विद्वानों की भाषा में बात करो और अगर उसको ज्ञान देना है तो उसको ज्ञान देने के तरीके भी इसी प्रकार से हो सकते हैं। अगर तुम सीधे-सीधे कोई चीज कह दोगे तो उसे समझ में ही नहीं आएगी। लेकिन उस बुढ़िया ने उनको पहचान लिया- यह विशिष्ट लोग समझ में आ रहे हैं, कहीं दूर से आये होंगे। उस बुढ़िया ने उन्हें उसी प्रकार जवाब दिया कि यह रास्ता कहीं नहीं जाता, रास्ते पर जाने वाले लोग जाया करते हैं।

अपने भीतर प्रकाश पैदा करके अपनी आत्मा से परिचय प्राप्त करने का प्रयास करें।

यह कितनी सामान्य सी बात है और इसी बात को आचार्य कुन्द-कुन्द देव समयसार में इसी उदाहरण को देते हैं व्यवहार और निश्चय को समझाने के लिए। कहा जाता है कि यह रास्ता वहाँ जा रहा है, रास्ता लुट गया लेकिन रास्ता कभी नहीं लुटता। चोरों के द्वारा वह रास्ता लूटा जाता है, राहगीरों के द्वारा उस रास्ते पर चला जाता है, चलने वाला तो राहगीर है लेकिन रास्ते पर आरोपण आता है कि रास्ते पर ऐसा हो रहा है। इसी तरह से व्यवहार और निश्चय नय के बारे में सोचना। व्यवहार नय से कहा जाता है कि यह मनुष्य जीव है, यह संयमी जीव है, यह असंयमी जीव है लेकिन निश्चय नय से तो केवल एक चैतन्य स्वरूप जीव है बाकी इसके आधार पर रहने वाली परिणतियाँ हैं। इन छोटे-छोटे उदाहरण से ही आचार्य समयसार आदि ग्रन्थों में समझाते हैं। इसी तरह से वह सामान्य सी बुढ़िया उस राजा से और कवि से कह रही है- रास्ता कहीं नहीं जाता, रास्ते पर चलने वाले लोग जाते हैं। थोड़ी देर रुककर के बुढ़िया ने पूछ लिया- तुम कौन हो? तो वह राजा कहता है, जो भेष बदलकर के आया था, मैं यात्री हूँ तो वह बुढ़िया कहती है कि यात्री तो दो ही होते हैं, सूरज और चन्द्रमा, यात्री तो वो ही होते हैं जो रोजाना आते हैं और रोजाना जाते हैं। साथ में इतना बड़ा कवि था तो वह देखता ही रह गया। फिर वह पूछती है कि आप सही तो बताओ तुम हो कौन? तो राजा फिर कहता है कि मैं अतिथि हूँ। बुढ़िया कहती है, अतिथि तो दो ही होते हैं एक धन और एक यौवन क्योंकि अतिथि का मतलब होता है जो बिना बताये आये और बिना बताये चला जाए। यह धन और यौवन कब आते हैं कब चले जाते हैं, किसी को पता ही नहीं पड़ता। अब तो राजा और सकपका गया। बुढ़िया फिर पूछती है, आप सही-सही तो बताओ आप हो कौन? तो वह कहता है, मैं राजा हूँ। वो बुढ़िया कहती है राजा तो दो ही हैं एक इन्द्र और एक यम। इन्द्र जो सबके लिए वर्षा आदि करता है या सब तरह से समर्थ होता है और यम जो सबके ऊपर सवार रहता है, सबकी मृत्यु कराने वाला है, राजा तो दो ही हैं। राजा और ज्यादा सकपका गया, अब क्या करूँ तो बुढ़िया पूछती है- आप सही तो बताओ आप हो कौन? तो फिर वह राजा कहता है- मैं क्षमावान हूँ। वह बुढ़िया कहती है- क्षमा तो दो ही लोगों में होती है, एक पृथ्वी में और एक नारी में। उस पृथ्वी पर कितना भी अत्याचार करो, वो अपने लिए कुछ नहीं करती और नारी के ऊपर भी आप कितना भी अत्याचार करो, वह सहन करती रहती है। राजा फिर सोच में पड़ गया। बुढ़िया कहती है कि अब तो आप सही-सही बताना कि आप हो कौन? फिर राजा कहता है- मैं गरीब हूँ। बुढ़िया कहती है- गरीब तो दो ही लोग होते हैं- एक बकरी और एक लड़की क्योंकि लड़की के लिए अपने पिता के सहारे पर रहना पड़ता है, उसके पास कुछ नहीं होता है और एक बकरी होती है, उसके पास कुछ नहीं होता है, वह 'मैं-मैं' करती रहती है। फिर वह राजा और ज्यादा सकपका गया, फिर वह पूछ लेती है कि सही तो बताओ आप हो कौन? तो फिर वह राजा कहता है, मैं कर्जदार हूँ, वह बुढ़िया कहती है- कर्जदार तो दो ही होते हैं, एक या तो जिसने कर्ज लिया हो और या फिर जिसकी बेटी किसी के लिए ब्याही जा रही हो, उसके लिए लगता है, यह हमारे बहुत बड़ा कर्ज उतर रहा है। जब इस तरह से करते-करते राजा शांत हो गया, तो फिर वह राजा

व्यवहार नय—मनुष्य संयमी/असंयमी जीव है। निश्चय नय—मनुष्य चैतन्य स्वरूप है।

सही रूप में बताता है कि मैं यहाँ का भोज राजा हूँ और यह भास कवि हैं। वह बुढ़िया कहती है ठीक है, अब यह बताओ कि तुम्हें जाना कहाँ है? तो एक बुढ़िया भी आपको ज्ञान दे सकती है, एक बालक भी आपको ज्ञान दे सकता है, लेकिन अगर आप जागृत हो ज्ञान लेने के लिए और इस तरह से ही आपको ज्ञान देना आये तो, वह जब आयेगा जब आपके अन्दर यह सब चीजें हों। धन, यौवन यही तो अतिथि हैं। आपने अतिथि दूसरे को मान रखा है, जो हमारे लिए सबसे बड़ा यम सवार है, वो ही सबसे बड़ा राजा है। हम कभी भी इन चीजों को समझ नहीं पाते और इसी कारण से हमारे मन के अन्दर कोई नया ज्ञान नहीं आता और मन के अन्दर जब तक ऐसा नया ज्ञान नहीं आता, तो मन में रुचि उत्पन्न नहीं होती कि हम नया ज्ञान प्राप्त करें। मन को नये-नये ज्ञान के माध्यम से रमाया जाता है। इसलिए आचार्य कहते हैं उसे नये-नये शास्त्र पढ़ाओ जैसे करणानुयोग, प्रथमानुयोग या अध्यात्म पढ़ाओ। उसे नये-नये शास्त्रों में रमाओ जिससे मन में नये-नये विचार आएंगे। नये-नये विचारों से मन रमने लग जाएगा और जब मन के अन्दर यह बैठ जाये कि वास्तव में इस दुनियाँ में अगर कोई ऐसी चीज है, जिसको हमने अभी तक अनुभूत नहीं किया, अभी तक उसके बारे में जाना नहीं तो वह केवल मेरा आत्मा है, उसके अलावा दूसरी चीज नहीं है। उस आत्मा में जिनकी रुचि होने लग जाती है उस आत्मा में जब हम अपने मन को रखने लग जाते हैं तो आचार्य कहते हैं कि तुम्हारी श्रद्धा उस आत्मा में उत्पन्न होने लग जायेगी। अभी तुम्हें आत्मा के प्रति श्रद्धा नहीं है। इस भूल में मत रहना कि सात तत्त्वों के नाम रटने से सात तत्त्वों पर श्रद्धा हो जाती है। जीव तत्त्व की श्रद्धा होगी अगर तुम्हारे अन्दर तो आचार्य कहते हैं कि–

''यत्रैव जायते श्रद्धा रुचिस्तत्रैव जायते''

जहाँ पर हमारी श्रद्धा होगी, वहीं पर हमारी रुचि होगी और मन के अन्दर अगर आत्मा की श्रद्धा होगी तो मन के अन्दर आत्मा के प्रति रुचि उत्पन्न होगी। अगर मन में वास्तव में यह भाव आ गया है कि इस आत्मा के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो चुकी है, मिथ्यात्व कर्म का उपशमन होने से सम्यक्त्व की परिणति आ चुकी है तो सम्यग्दृष्टि जीव को आत्मा के अलावा कुछ भी रुचता नहीं है यह उसकी पहचान है। श्रद्धा का मतलब ही है- रुचि उत्पन्न होना इसलिए श्रद्धा के पर्यायवाची नामों में एक नाम आता है- रुचि। रुचि का मतलब interest. where is the interest of your mind? तुम्हारे दिमाग का interest आत्मा में अपने आप जाना चाहिए अगर सम्यग्दर्शन हुआ है, तत्त्व की श्रद्धा हुई है तो उस जीव तत्त्व पर अपना interest जाना चाहिए। हर बार, हर जगह पर अपना interest वहाँ पर जा रहा है तो समझना कि हमारी आत्मा में श्रद्धा उत्पन्न हो गई है और आत्मा की श्रद्धा से ही तो अन्य तत्त्वों की श्रद्धा जुड़ी हुई है।

जब तक जीव-तत्त्व पर श्रद्धा नहीं है तो हम अजीव तत्त्व को अजीव मान हीं नहीं रहे हैं, आस्रव को आस्रव के रूप में मान ही नहीं रहे हैं क्योंकि हमें जीव की श्रद्धा नहीं है। जीव की श्रद्धा जुड़ी तो सब श्रद्धा तत्त्वों की, अपने आप जुड़ने लग जाती है। सात तत्त्व बाद में, पहले आत्म तत्त्व की श्रद्धा होना, आत्म-तत्त्व की रुचि होना। पर आपकी रुचि तो बाहर की है। जैसे घर पर जायें,

यदि स्वयं जाग्रत हैं तो ज्ञान बच्चे, बूढ़े या जवान किसी से भी लिया जा सकता है।

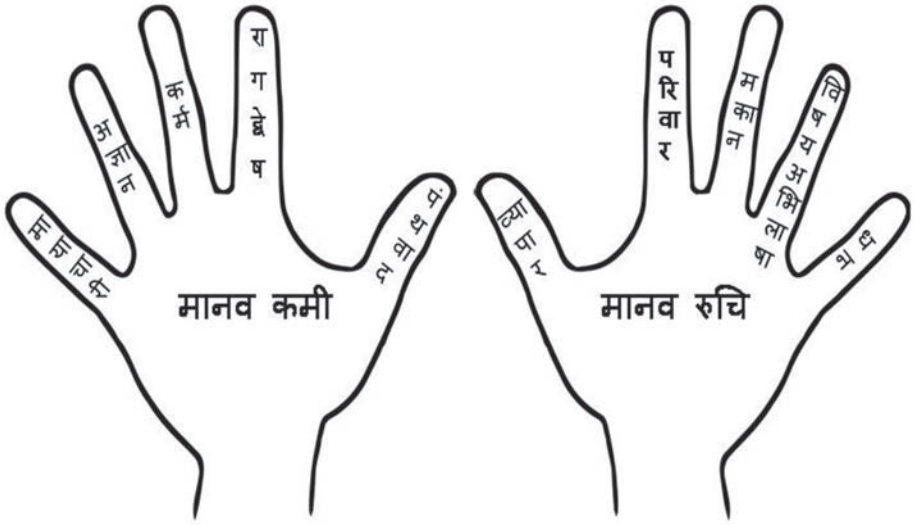

दुकान पर जायें, यहाँ से जल्दी से उठें, यह तुम्हारा interest है। जब आपकी रुचि इन्हीं विषयों में दौड़ रही है तो यह कभी नहीं समझना कि हमारे अन्दर जीव-तत्त्व का श्रद्धान हो गया। श्रद्धा अपने आप में इतनी बड़ी चीज है, जहाँ पर श्रद्धा लगेगी वहीं पर यह मन बार-बार जायेगा। जहाँ आपका मन बार-बार जाये तो आप अपने मन को समझना कि हमारा मन कहाँ जा रहा है। बार-बार विषय वासना में लग रहा है या बार-बार आत्मा के बारे में सोच रहा है, अगर बार-बार मन आत्मा की रुचि करे तो समझ लेना कि अब हमें इस जन्म में जीव-तत्त्व का सही श्रद्धान हो गया। यही सबसे बड़ी उपलब्धि है। जिसका मन उस जीव-तत्त्व में, आत्म-तत्त्व में लगने लगेगा तो फिर वह उसी में रहने लगेगा उसी में भ्रमण करेगा तो आचार्य कहते हैं कि-

''यो यत्र रमते तस्मादअन्यत्र स न गच्छतिः''

जो जहाँ पर रमण करने लग जाता है तो वह उस चीज से फिर अलग कहीं भी नहीं जाता। है ऐसा रमण करने लग जाए, ऐसी रुचि बनने लग जाए और वो रुचि आपके मन को स्वयं समझ में आ सकती है। वह मन के अन्दर की रुचि अपनी ही आत्मा में नहीं बनती बाकी सब जगह पर बनती है। इसे रुचि नहीं कहते हैं कि आप यहाँ पर सुनने बैठे हैं। वह आपका time schedule भी बन सकता है आपको कुछ अच्छा भी लग सकता है इसलिए आप यहाँ पर बैठो हो यह रुचि नहीं है। रुचि अलग चीज होती है, रुचि होगी तो यहाँ से उठने के बाद भी बार-बार सोचोगे कि यह शरीर, यह मन, कब तक हमारे साथ रहेगा, यह घर, परिवार के लोग, कब तक हमारे साथ में रहेंगे और हम इनके बीच में कब तक अपना समय खराब करेंगे। आपके अन्दर रुचि उत्पन्न होगी तो आप सोचोगे कि अपनी आत्मा का हित हमें पहले कर लेना चाहिए। आत्मा ही हमारी है, बाकी

कुछ भी हमारा नहीं है। यह आत्मा के बारे में इस तरह से रुचि उत्पन्न होगी तो आपका मन बार-बार आत्मा को छुएगा, स्पर्श करेगा। आपका मन फिर संसार के राग रंग में आनन्द नहीं मानेगा। वीतरागता के भाव में, चैतन्य भाव में, आत्मा के गुणों में आनन्द मानेगा। यह परिणति जब आत्मा के अन्दर उत्पन्न होगी तो फिर उस जीव को कोई फर्क ही नहीं पड़ेगा।

अंतरंग पुरुषार्थ :

''स्वदेहमपि नावैति योगी योगपरायणः''

यह वह चरम स्थिति है जहाँ पर इस मन को इतना रमना आ गया कि वह फिर आत्मा के अलावा और कहीं रमता ही नहीं है। आत्मा के साथ जुड़ा हुआ शरीर भी उसके ज्ञान और ध्यान में नहीं आता। यह चरम स्थिति इस कारण से बन जाती है क्योंकि उस योगी ने मन को आत्मा में ही बना रखा है। आप कहीं पर भी रहो पर आत्मा को मत भूलो, आत्मा के चिंतन को मत छोड़ो। आत्मा की विशेषताओं को जानकर के, उस आत्मा के बारे में विचार करो कि इस आत्मा के संस्कारों के कारण से ही यह सब हमको जन्म, मरण, शरीर, सुख, दुख सब मिल रहे हैं। इनमें अगर हम एक बार थोड़ा सा समता का भाव लाएंगे, शाांति से देखेंगे इन सब चीजों को तो वह हमें समझ में आयेगा कि यह संसार हमारे भीतर, हमारे ही कारणों से बँध रहा है। इसे तोड़ने के लिए हमें बाहरी पुरुषार्थ कम लेकिन अंतरंग पुरुषार्थ अधिक करना है। उस अंतरंग पुरुषार्थ का नाम ही है- अपने मन को अपनी आत्मा में रखने का पुरुषार्थ करना। मन को रहने के लिए जगह दो, यह श्रुतज्ञान दो, शास्त्रों का ज्ञान दो। अगर ज्ञान, शास्त्रों का, आत्मा का है तो उसमें लगेगा। मन अगर जिसमें रहने लगेगा उसी में रति करने लगेगा। एक बार अगर आपके मन में ऐसी रति उत्पन्न हो गई तो फिर वह मन अपने आप उसी में रमण करेगा फिर उसके सामने और चीजें भी आ जाएंगी तो वह उस ताप में, संताप में, पाप कार्यों में नहीं लगेगा। इन पाँच इन्द्रियों के विषयों में हमने मन को केवल जलाया, इसको केवल परेशान किया है, इसे दुख मिला है, यह अनुभूत जब तक नहीं होगा मन के अंदर,यह मन जब तक भीतर से स्वीकार नहीं करेगा तब तक एकत्व विभक्त रूप आत्मा की कथा शुरू ही नहीं होगी। समयसार की शुरुआत इस गाथा से होती है और इस गाथा में ही देखा जाए तो हमारी पात्रता का वर्णन कर दिया गया है। लोग समझ नहीं पाते हैं आचार्यों की भाषा। वो महान् आचार्य, इतने आध्यात्मिक आचार्यों की छोटी-छोटी बातें नहीं भूलते हैं। यह आपको यह नहीं कहेंगे जैसे पुराण लिखने बैठेंगे तो आदिनाथ पुराण, उत्तर पुराण होगा तो आचार्य पहले लिखने बैठेंगे कि यह कथा का लक्षण, यह श्रोता का लक्षण, यह वक्ता का लक्षण, यह पुराण नहीं लिखने बैठेंगे। यह समयसार लिखने बैठे हैं, जहाँ यह लक्षण नहीं बताएंगे। वहाँ तो शॉर्ट में सूत्र बताये जा रहे है। जिसको यह सुनें बार-बार पढ़ें, इनका चिंतन, मनन करें, एक-एक श्लोक आप अपने दिमाग में रखें ताकि आपका मन उन श्लोकों में रमण करेगा तो आपके अंदर वह ज्ञान उतरता चला जाएगा। मन को स्थिर करने का और रमाने का इससे अच्छा इष्ट उपदेश कहीं नहीं मिलेगा। यह इष्ट नहीं है मिष्ट है, मीठे उपदेश हैं। हर एक बात अनुभव की कसौटी पर खरी करके

जीव तत्त्व का सही श्रद्धान होने पर वीतरागता एवं चैतन्यभाव में ही आनंद आता है।

तब बाद में आचार्यों ने लिखी है। कोई ऐसी चीजें नहीं लिखी इसमें आप देखों इस ग्रन्थ के अंदर कहीं अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, साधु का नाम ही नहीं है, यहाँ तक कि मंगलाचरण में भी भगवान को नमस्कार नहीं किया है। अध्यात्म सबके लिए होता है। आत्मा की ग्रन्थियाँ अगर टूटेंगी, कर्म के बंधन टूटेंगे तो इसी सार भौमिक अध्यात्म को अनुश्रुत करने से और इसी का अनुपान करने से टूटेगें। इसमें और किसी पंथवाद, मंदिरों के झगड़े नहीं मिलेंगे। इसमें केवल अपनी आत्मा को सम्भालो, अपनी आत्मा के अन्दर सद्विचार उत्पन्न करो, अपनी आत्मा के अंदर सद्ज्ञान उत्पन्न करो और वो सद्ज्ञान सामान्य रूप से सबके लिए होता है इसलिए यह अध्यात्म ग्रन्थ केवल जैनों के लिए नहीं, विश्व के अन्दर जितने भी लोग हैं उन सबके लिए। लेकिन उनको हम भी नहीं जान पा रहे हैं तो दूसरों को क्या बतायें, कहीं भी इन ग्रन्थों में आपको ऐसी कोई चीज नहीं मिलेगी कि किसी भी अन्य सम्प्रदाय के लोगों के लिए दे दी जाये तो वो कहे कि नहीं यह जैनों का ग्रन्थ है।

आचार्य ने पाँचवी शताब्दी में इतनी व्यापकता के साथ में इस ग्रन्थ की रचना की लेकिन फिर भी इस अध्यात्म ग्रन्थ की व्यापकता विश्व में नहीं हो पाई है इसका एक ही कारण है कि जैन भी इन चीजों से लाभान्वित नहीं हो रहे हैं। अपना interest तो उसी दुकान, मकान, धन में ही लगा है। जब अपना ही interest नहीं बदल रहा है तो दूसरों का क्या interest बदलेंगे। दुनियाँ में तो और तुमसे भी बड़ी-बड़ी दौड़ दौड़ रहे हैं। वह सब फिर लौटकर के अपने अध्यात्म की ओर आ रहे हैं। अनेक-अनेक जगहों पर जाकर के जो भी अध्यात्म की छोटी-छोटी बात मिल जाती है उनसे संतुष्ट हो जाते हैं लेकिन यह चीजें उनके पास में नहीं पहुँच पाती हैं, जहाँ पर किसी भी रूप में यह तक नहीं कहा गया है कि यह जैन मुनियों के द्वारा लिखा हुआ है। न इसमें जैन भगवान को नमस्कार किया, न जैन मुनियों के बारे में। जिसने अपने स्वभाव को प्राप्त कर लिया, अपने कर्मों को नाश करके, हम उनके लिए नमस्कार कर रहे हैं। बस जिसने अपने दोषों को मिटा लिया, हम उनके लिए नमस्कार कर रहे हैं। कितनी व्यापक बुद्धि रही आचार्यों की और हम आज उलझे हैं इन बातों में कि इस मंदिर में यह होता है इसलिए वहाँ नहीं जाना। वो महाराज उस मंदिर में है इसलिए वहाँ नहीं जाना। यह मानसिकता बन चुकी है, आज जैनियों की। कहाँ हमारे लिए यह आचार्य द्वारा दिये गये महान उपदेश और कहाँ तुम्हारी यह मानसिकताएँ, बताओ तुम्हारा उद्धार हो तो कैसे हो। इन मंदिरों से कैसे उद्धार होगा तुम्हारा और इनसे तो तुमने इतनी भेद रेखाएँ खींच रखीं हैं कि उन भेद रेखाओं के कारण से तुम्हें सही बातें समझ में नहीं आती हैं और सही बात सुनने के लिए तुम्हारा मन तैयार नहीं हो रहा है। जब तक तुम यह नहीं समझोगे कि धर्म तो यह है, जो इसमें लिखा है, इस धर्म को अपनाओ बाकी सब चीजें तो बस वो ही हैं- रास्ता जा रहा है, लुट रहा है कहने को आता है लेकिन रास्ता न लुटता है न जाता है इसलिए और चीजों में बस कहने को आता है, धर्म हो रहा। धर्म तो यह सब जो होता है, अपने भावों से आत्मा में आत्मा के लिए होता है बाकी सब तो रास्ते की तरह है। इन चीजों को समझकर के आप अपने मन को ऐसा बनाओ कि इन अध्यात्म की दृष्टि से अपनी आत्मा को देखने का पुरुषार्थ करें।

अपने मन को अपनी आत्मा में रमाने का पुरुषार्थ ही अंतरंग पुरुषार्थ है।

पर में न प्रवृत्त होने का परिणाम

44

अगच्छंस्तद्विशेषाणामनभिज्ञश्च जायते।
अज्ञाततद्विशेषस्तु बध्यते न विमुच्यते॥

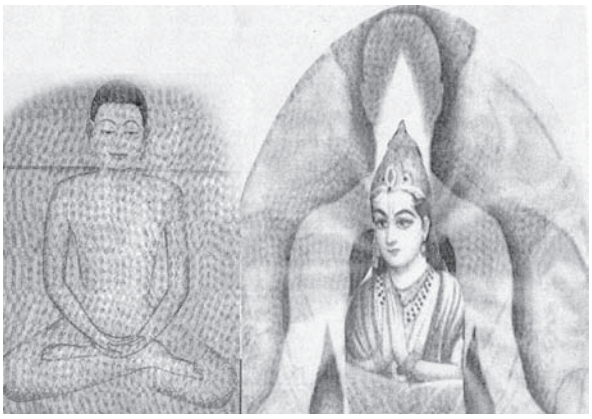

अन्वयार्थ— (तद्विशेषाणाम्) उन [शरीर आदि पर पदार्थों के] विशेषणों [विशेषताओं] को **(अगच्छन्)** न जानता हुआ **(अनभिज्ञः)** अजान **(जायते)** बन जाता है **(च)** और **(अज्ञाततद्विशेषः)** उन शरीरादि की विशेषताओं पर ध्यान न देने वाला **(न बध्यते)** कर्म से नहीं बँधता **(तु)** किन्तु **(विमुच्यते)** छूट जाता है।

- ☞ **एकत्व की अनुभूति**
- ☞ **विशेषताओं से बचें**
- ☞ **रागात्मक परिणति**
- ☞ **कर्मबंध से बचाव**

एकत्व की अनुभूति :

यहाँ आप लोग निरंतर आत्म-ध्यानी मुनि महाराज के लिये विशेष रूप से जो परिणतियाँ होती हैं, उन्हें समझेंगे। अध्यात्म उन आत्म-ध्यानी मुनि महाराज के लिये भाषित होता है किन्तु जो इस अध्यात्म का थोड़ा सा भी अपने अन्दर अनुभव रखें तो कुछ ना कुछ उन्हें भी भाषित होगा। जो वस्तु बहुत उत्कृष्टता के साथ हमारे लिये लाभदायक होती है, वो थोड़े में भी लाभकारी होती है। आप यह सोचें कि हमें अमृत का समुद्र मिलेगा, तब हमें तृप्ति होगी तो अमृत की एक बूंद से भी आप तृप्त हो जायेंगे। इसी तरह से यहाँ पर अध्यात्म है, जो बहुत आत्म-ध्यानी मुनि महाराज हैं उनके लिये कहा जा रहा है और अगर उस अध्यात्म की थोड़ी सी बूंद भी अगर हम अपने अन्दर ले आते हैं तो हमको भी बहुत कुछ आत्म-शक्ति, आत्म-सुख मिलेगा। विचार क्या है?

कहा जा रहा है कि जब मुनि महाराज आत्मा में लीन होते हैं तो अपने एकत्व की अनुभूति करते हैं, सदैव उसी में रमण करते हैं तो जब वे इस बाहरी जगत को देखते हैं तो उनकी वृत्ति क्या बन जाती है उसका वर्णन यहाँ किया गया है।

बाहरी जगत में वह सबकुछ देखेंगे, सब जानेगें लेकिन कुछ अलग ढँग से देखेंगे, अलग ढँग से जानेंगे और वह अलग ढँग से बताते हैं। जब भी किसी वस्तु को देखना या जानना लेकिन विशेषताओं के साथ उसे नहीं जानना। उसकी विशेषताओं के साथ उसे नहीं देखना। वस्तु देखना, वस्तु जानना, चेतन-अचेतन कोई भी पदार्थ हो उसको देखना-जानना लेकिन एक थोड़ी सी अपने अन्दर ऐसी वृत्ति बना लें कि हम उन विशेषताओं को ना जानें। मन अभ्यस्त है रागादि परिणामों के कारण, जब भी मन किसी बाहरी पदार्थ को देखता है तो वह उसकी विशेषताओं के साथ ही देखता है और यह विशेषता देखने की आदत हमने बचपन से सीखी है। जब बचपन में, माँ हमें कोई खिलौना लाकर देती है। हमको मेले में खिलौने दिखाई देते हैं तो हम अपनी पसंद के खिलौने के लिये पापा से कहते हैं और खरीद कर हमें वही खिलौना दे दिया जाता है। यह हमने शुरू से सीखा है, जहाँ हमने पसंद की, वहाँ हम विशेषताओं से जुड़ गये क्योंकि पसंद का संबंध ही विशेषताओं से होता है। जब चार चीजें रखी हों और हमें एक पसंद आती है तो इसका मतलब है उन चार चीजों में से तीन चीजें समझ में नहीं आईं जबकि वह भी चीजें तो हैं। बेचने वाला भी सोच समझ कर लाया है कि यह भी बेचा जाएगा लेकिन कोई ग्राहक उसके सामने पहुँच जाता है तो वह एक को ले लेता है तीन को छोड़ देता है कि यह उसकी यह अपनी पसंद है और उस पसंद में विशेषता है, जो यहाँ बताई जा रही है कि जो ज्ञान हमारा विशेषता के साथ काम करने लगता है तो उस ज्ञान के अन्दर एक रागात्मक परिणति पैदा होती है और उस रागात्मक परिणति के कारण से फिर उसी ज्ञान के अन्दर विशेष रूप से कर्म का बंध भी होने लगता है। उस ज्ञान के कारण से तो आचार्य कहते हैं-जब भी हम किन्हीं पदार्थों को देखें, जानें हमारे अन्दर एक ऐसी वृत्ति बनाने का प्रयास

आत्मध्यानी वस्तु को जानेंगे-देखेंगे परन्तु उसकी विशेषताओं पर ध्यान नहीं देंगे।

करें कि हम देखें जाने लेकिन विशेषता के साथ नहीं, सामान्य का ज्ञान करें। सामान्य रूप से देखें और सामान्य रूप से जानें। क्या संभव है ऐसा?

अगर आप सभी इसका थोड़ा अभ्यास करने लगेगें तो आपको अच्छा महसूस होने लगेगा। अगर आप अपने मन को वास्तव में अच्छा बनाना चाहते हो तो अपने विचारों को अच्छा बनाना चाहो। जब भी कभी बाजार में जाओ, मॉल में जाओ तो सामान्य से सबकुछ देखो जानो और लौटकर के आ जाओ। आप कहोगे महाराज! फिर जाना ही क्यों?

देखो, जाये बिना तो काम नहीं बनेगा। अपना मन है, मन चाहता है कि हम सब देखें, सब जाने लेकिन मन को इतना प्रशिक्षित कर लो कि मैं तुझे सबकुछ दिखाऊँगा लेकिन उनमें से किसी एक चीज को पसंद मत करना। जो सामान्य होगा, वह तेरे लिये खरीद लेंगे, अगर आपका मन इतना प्रशिक्षित हो जाये तो आपको कभी परेशानी ही ना हो और इतना अगर मन प्रशिक्षित हो जाये तो आपके मन में कभी किसी से कोई तुलना ही ना हो। जब आपको कोई चीज चाहिए और आपने सामान्य काम में जो आने वाली चीज है, आपने उसको ले लिया। अब आपके दिमाग में सिर्फ इतना ही होना चाहिए कि इससे बस आपका काम बन जाये। वह काम अच्छी चीज से बन सकता है तो आप देखते हैं कि अच्छी चीज तो क्वालिटी वाली होगी। अब वह तो आपको ना मिले पर जिस चीज में कोई क्वालिटी नहीं है, उस चीज को अगर अच्छा बनाकर आपको दिया जाता है तो फिर आपकी परेशानी बढ़ सकती है। विशेषताओं के माध्यम से जब मन उलझता है तो वह मन स्वयं भी परेशान होता है और बहुत देर तक हमें परेशान किये रहता है। आप किसी चीज को खरीदने के लिये जायें, किसी दुकान पर पहुँचे और आपका मन प्रशिक्षित होकर हर चीज को देखें लेकिन जो लेना है बस उसको लेकर चला आये। ऐसा भी अपने मन को प्रशिक्षित करने का प्रयास करना। हम और दस चीजों के भाव ना पूछें। आपको मालूम है, हमें क्या लेना है और आपको यह भी मालूम है उसकी कितनी कीमत आप चुका सकते हैं क्योंकि आप उसी mood से गये हैं लेकिन आप वहाँ जाकर दस चीजों के दाम पूछते हैं, क्वालिटी पूछते हैं, उनमें से एक चीज पसंद करते हैं तो आप सोचते हैं कि हमने अच्छा काम कर लिया और दुकानदार को भी लगता है कि कोई अच्छा ग्राहक अपने सामने आ गया। यही परिणति हमारे अन्दर विकल्प उत्पन्न कराती है। एक ऐसा ग्राहक हो जो सीधा आये दुकान पर और कहे कि हमको यह चीज चाहिए। दुनियाँ की बहुत सारी चीजें थी लेकिन हमने किसी पर कोई ध्यान नहीं दिया। क्या हो सकता है ऐसा?

देखो, अगर आपका मन थोड़ा सा mature हो गया होगा तो हो सकता है। यह बच्चों के साथ होता है, बच्चा जाएगा जिस स्थान पर खड़ा हो जाएगा। उस स्थान के आस-पास की सब चीजें देखेगा और दस चीजों के बारे में पूछेगा लेकिन वास्तव में प्रौढ़ व्यक्ति होगा, वह सिर्फ काम की बात पूछेगा।

वस्तु को सामान्य रूप से देखने-जानने का प्रयास करना चाहिए।

इससे आपको विकल्प बहुत कम होगा। आपके अन्दर दुख की उत्पत्ति बहुत कम होगी। अगर आप अपने मन को, जीवन में इस ढँग से समझा कर चलें तो बहुत कुछ आप इस अध्यात्म का उपयोग कर सकते हो और यह अध्यात्म यही बता रहा है कि विशेषताओं में मत उलझो कोई भी चीज आपको घर में लानी है तो पहले उसकी विशेषता देखो। उसके बाद भी वह शुद्ध है कि नहीं है, विशेषताओं में मत उलझो उसके सामान्य धर्म की ओर जाओ और जब आप सामान्य धर्म की ओर जाओगे तो आप देखोगे कि उसमें शुद्धता मिलेगी। जहाँ विशेषता आ गई, उसमें अशुद्धता भी आ जाएगी और हर चीज जो आपके लिये बाजार में पहुँचती है, वह विशेषता के साथ पहुँचती है लेकिन उसमें बहुत सारी चीजें दूसरी भी मिक्स हो जाती हैं। सामान्य चीज आपके उपयोग की होती है लेकिन उसी को विशेष बनाकर, वह बाजार में उपलब्ध कराई जाती है। आचार्य कहते हैं कि आप अध्यात्म से दूर हो जाते हैं, कैसे दूर हो गये?

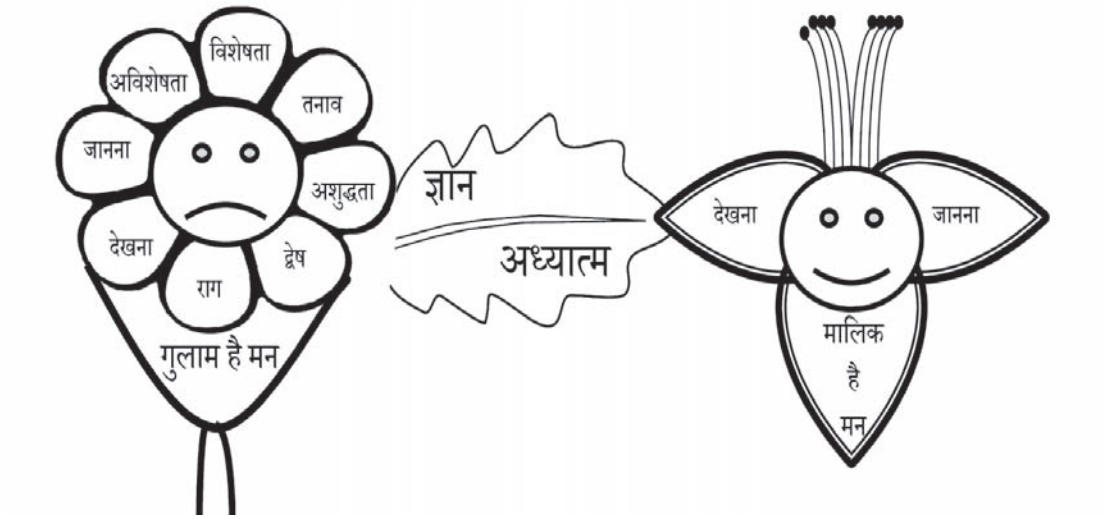

आपके लिये कोई भी चीज जो सामान्य है वो पसंद नहीं आएगी, विशेष पसंद आएगी। चाहे वह आपके खाने की चीज हो, चाहे पहनने की, जब आप कपड़ा खरीदते हो तो वह कपड़ा अच्छा होता है जो शुद्ध होता है, सामान्य सा होता है, वह आपको मोटा सा दिखेगा (खादी जैसा) और आप उस कपड़े को पसंद नहीं करोगे। आप उसको पसंद करोगे जो चिकना हो, मुलायम हो लेकिन उसमें अशुद्धता होगी, जो शुद्ध होगा, वह आपको पसंद नहीं आयेगा। जब उसे रिफाइण्ड करके उसमें केमिकल डालकर विशेष बना दिया जाता है तो वह हमारे लिये आकर्षण का विषय बन जाता है और जहाँ मन में आकर्षण आ जाता है, वहाँ मन रागान्वित हो जाता है और जहाँ मन के अन्दर एक वस्तु के प्रति राग आ गया तो अन्य सभी चीजों के प्रति द्वेष भी आने लग जाता है। यह

वस्तु की विशेषताओं में उलझना यानि राग - द्वेष परिणामों की उत्पत्ति होना।

राग और द्वेष की प्रणाली जब तक अपने अन्दर निरन्तर चलेगी तब तक अपने लिये कर्म का बंध भी होगा और दुख भी होगा। यह ज्ञान का काम है जो मन के साथ में काम करता है।

इसलिए आचार्य कहते हैं कि जब भी कभी आपको कोई विशेषता दिखे तो विशेषताओं में ना उलझें। यह चीजें योगी के लिये बड़ी सहज होती हैं। जिनका मन अपनी आत्मा में लगता है, जब उन्हें कभी भी अचेतन वस्तुऐं दिखाई देती हैं तो वह उनको जानना नहीं चाहते हैं। यह ऊपर वाले सूत्रों से भी इसका संबंध है कि कोई भी वस्तु देखी क्या है? कैसी है? कितने दाम की है? कहाँ से आई है? क्या इसकी क्वालिटी है? इन सब विशेषताओं में उलझे, तो आचार्य कहते हैं आपके अन्दर उन विशेषताओं को जानने की इच्छा क्यों हुई?

एक गहरी बात जो यहाँ बताई गई वो यह है कि आपके अन्दर अगर राग होगा तो ही आप उन विशेषताओं को जान सकेंगे और अगर राग नहीं होगा तो आप उसको सामान्य रूप से जानकर देखकर छोड़ देंगे। आपके लिये कोई चीज अच्छी लगी तो ही आप उसकी विशेषताओं को पूछेंगे और अच्छी लगने का मतलब है हमें उसके प्रति राग हुआ है और यदि राग हुआ है तो आप उसके प्रति खूब गहराई से जानना चाहेंगे क्योंकि वह राग की परिणति आपके अन्दर अनेक प्रश्न उत्पन्न करेगी कि हमें इस वस्तु को लेना है तो इस वस्तु के अन्दर की सब विशेषताओं को हमें जानना है। तुम सिर्फ देखो, किसी पदार्थ को विशेषता और राग के साथ मत देखो।

संसार में रहोगे, संसार के हर पदार्थ का उपभोग कर लोगे लेकिन बंध को प्राप्त नहीं होंगे। उस चीज का भोग भी कर लोगे तो बंध नहीं होगा क्योंकि बंध किसी चीज का भोग करने से नहीं होगा। बंध उस चीज के प्रति राग परिणाम के कारण से होता है। जो भोजन आप कर रहे हो, वही भोजन एक योगी करता है। आपको उस भोजन करने में बहुत कर्म का बंध हो सकता है और योगी को, भोजन करने में भी कर्म की निर्जरा हो सकती है। क्यों? चीज तो वही मीठी वस्तु, वही चटपटी वस्तु, इसके पीछे जो एक गहरी चीज है, वह अध्यात्म की है। जब आप उस वस्तु का सेवन करते हो तो आप उस वस्तु को सामान्य रूप से नहीं देखते हो। आप उसको विशेष रूप से देखते हो और जब आप उस वस्तु को सेवन करते हो तो उस समय भी आपके मन में रहता है– मैं विशेष वस्तु का सेवन कर रहा हूँ और जब आप किसी योगी के सामने भी वह वस्तु रख दोगे तो कह डालोगे कि महाराज! आपके लिये ही बनाई है, यह भी भूल जाओगे कि हम क्या बोलने जा रहे हैं। राग–उद्वेग है यह भाव, जो हमारे सामने आता है। वह भाव ही बताता है कि हमारा उस वस्तु से बड़ा लगाव है और वह लगाव विशेषता के कारण से है। वस्तु में कोई विशेषता नहीं है, हमारे ज्ञान में जो राग मिक्स है, उसके कारण से विशेषता है। सब वस्तुएँ वही है और हम वस्तु के विशेष ढंग को देखते हैं सामान्य को नहीं। हमें किसी विशेष से आकर्षण होगा तो राग होगा और राग होगा तो कर्म का बंध होगा। अगर उसी चीज का सेवन करके, आपके मन में यह आ जाये कि क्या फर्क पड़ता है

बंध चीज को भोगने से नहीं बल्कि उसके प्रति रागादि परिणामों के कारण से होता है।

जैसे रोटी है वैसी ही, उसी पदार्थ से बनी हुई है तो खा भी लोगे, राग भी नहीं होगा, कर्म का बंध भी नहीं होगा। अन्दर से करना है कि बाहर से करना है बताओ?

रागात्मक परिणति :

भीतर की रागात्मक परिणति का अनुभव अपने को होना चाहिए क्योंकि भीतर से रागात्मक परिणति को समझने लग जाओगे तो अपने आप कर्म के बंध से छूट जाओगे। उस रागात्मक परिणति का ही सब स्वाद है और बाहर वस्तु में कोई स्वाद नहीं है। अगर आपके अन्दर यह परिणाम आ जाये कि हमें इस पदार्थ से कोई राग नहीं है तो आप उस पदार्थ का सेवन करके भी, राग से रहित होने के कारण से, कर्म से बाँधोगे नहीं बल्कि और ज्यादा कर्म की निर्जरा भी करोगे। तुम्हारे मन की सामान्य परिणति बने, जैसे रसगुल्ला भी रखा हो तो उसको भी सामान्य भाव से खाना, जैसे लोकी की सब्जी खाते हो, भाव तो अपना है ना। कचौरी भी हो तो उसको उसी भाव से खाना जैसे-दाल खाते हो। अभ्यास करो। रोजाना के अभ्यास में यह चीजें लाओ तो मजा आयेगा। क्लेश नहीं होंगे, ना बाहर ना भीतर। यह जितने भी क्लेश होते हैं, बाहर के या भीतर के, अपने राग परिणाम के कारण से होते हैं और अपने मोह परिणाम के कारण से होते हैं। जितने भी लड़ाई-झगड़े होते हैं, उनका कारण यह राग और मोह ही होता है। कभी घर में कोई चीज बनती है, किसी को कम मिलती है, कभी कम पड़ जाती है तो भी क्लेश होता तो होगा। आज बनी तो थी लेकिन पूरी नहीं मिल पायी। यह क्लेश जो हुआ, किस कारण से हुआ? हम जो उस वस्तु को इतना महत्व दे रहे हैं क्यों दे रहे हैं? किस कारण से दे रहे हैं? हम उस जड़ वस्तु को इतना महत्व क्यों दे देते हैं कि हमारी चेतना यह भूल जाती है कि इसमें वो अचेतन पदार्थ के अलावा और कुछ नहीं है और हम चैतन्य पदार्थ हैं और हम किसी भी वस्तु को ज्यादा महत्व देंगे तो वो वस्तु हमारे ऊपर हावी हो जायेगी, हम उसके गुलाम बन जायेंगे, हम उस वस्तु के मालिक नहीं रह पायेंगे वो हमारे ऊपर अपना अधिकार जमाने लग जायेगी। जब आपको किसी भी पर पदार्थ से, इस प्रकार का विकल्प होगा तो समझना कि वो पदार्थ आपका मालिक बन गया है, आप उसके गुलाम हो। जिसके कारण से आपको गुस्सा आ रहा है और आपका मन दुखी हो रहा है, और जिस पदार्थ के कारण से आपके मन में अनेक विकल्प हो रहे हैं वो आपके लिए बहुत महत्व वाला बन गया। आपके ज्ञान को कोई महत्व नहीं रहा क्योंकि उस पदार्थ ने आपके ऊपर अपना इतना प्रभाव डाल दिया कि आपका मन उसके बिना महसूस कर रहा है कि आज सब कुछ है पर उसके बिना अच्छा नहीं लग रहा है। यह उस पदार्थ के कारण से हो रहा है। इसलिए आचार्य कहते हैं कि इस अध्यात्म की थोड़ी सी भी प्रक्रिया से गुजरोगे तो हमेशा यह महसूस होगा- मैं मालिक हूँ, दुनियाँ की हर चीज का। दुनियाँ की कोई भी चीज ऐसी नहीं है जो हमारे ऊपर अपना अधिकार जमा सके। अपने मन को जब मालिक बनाओगे तो तुम्हें बहुत आनन्द आयेगा, सुख होगा, आनंद होगा, जब मन गुलाम

राग एवं मोह के परिणाम के कारण ही आपसी क्लेश या लड़ाई-झगड़े होते हैं।

रहता है तो वो दूसरे पदार्थों में अपने आपको इतना आकर्षित कर लेता है कि वह उसके बिना जब दुखी होने लग जाता है तो आप को पता नहीं पड़ता है कि दुख होने का कारण है, मन को वश में नहीं रखना। जब मन के मालिक बन जाओगे तो दुनियाँ की कोई चीज तुम्हें अपना गुलाम नहीं बना पायेगी।

बाहर की वस्तु की कीमत है ही कितनी? जब राग की अधिकता हो जाती है तो वस्तु की कीमत अधिक हो जाती है और ज्ञान की कम, पर हमें यह प्रयोग करने में बड़ा डर लगता है। बड़े-बड़े जीवन में, धर्म का प्रयास करने वाले लोग भी इन अध्यात्म के प्रयोग से वंचित हो जाते हैं और जब तक यह अध्यात्म के प्रयोग नहीं होंगे, तब तक आपको मन की क्वालिटी पता नहीं चलेगी। अपने मन के अन्दर कैसी शक्ति पैदा की जाती है, पता नहीं चलेगा। आपको यह पता नहीं चलेगा कि मैं मन का गुलाम हूँ या मन का मालिक हूँ। बाहर से तो सब ऐसा ही लगेगा कि हम इन्द्रियों के मालिक बन गये हैं लेकिन जब आपके सामने विषय आये, इन्द्रियों के पदार्थ आये, उस समय पर आपका मन किसी भी पदार्थ में रागान्वित ना हो तो आप समझना कि आप मन के मालिक हैं और अगर आपका मन सहजता से झुक जाये तो समझना कि आप अभी भी अपने मन के गुलाम हैं। उस पदार्थ को जो हमने बनाया है, बाजार से लाये हैं, उसमें कितनी सी दम है वो तो कागजों के पैसे से खरीदा जाता है और उसकी भी कीमत हमने अपने दिमाग में बना रखी है। वो वस्तु तो कुछ कहती नहीं, वो तो हमारे विचार से बनायी गई है। आप, एक सामान्य किसी फल का रस अगर किसी ठेले वाली दुकान से लोगे तो आपको जितने का फल होगा उसमें दो रूपये, पाँच रूपये से ज्यादा में वो फल का रस दे देगा, बीस रूपये का मिल जायेगा। उसी रस को आप किसी होटल या रेस्टोरेन्ट में बैठकर पीओगे, वो डबल रेट का हो जायेगा। उसी रस को आप फाइव स्टार होटल में बैठकर पीओगे तो उसकी कीमत तीन गुनी होगी। उस वस्तु की तो उतनी ही कीमत थी। जब वो फल हमारे घर में आता है और हम उसका रस निकाल सकते हैं। लेकिन जब वो चीज हमने दूसरी जगह बैठ-बैठकर पी तो समझ में आता है कि इसकी कीमत है। क्या है वो कीमत? हमने ही बनायी है, उसे बनाने वाला भी हमारा ज्ञान होता है, वो विचार होते हैं। आपने अपने मन में सोच लिया कि यह वस्तु कीमती है, हमारे लिए बहुत उपयोगी है, ऐसा आपको लगेगा और अगर आपको यह समझ में आ जाये कि इसकी कोई कीमत नहीं है तो उसके प्रति कोई राग उत्पन्न नहीं होगा। वस्तु के सेवन से कभी भी कर्म का बन्ध नहीं होता है, उसके प्रति जो राग आदि भाव, अध्यवसान होता है उससे कर्म का बन्ध होता है। ''न हि वत्थुदो दु बन्धो'' वस्तु से बन्ध नहीं होता।

इसलिए योगी सब वस्तुओं को देखकर, जानकर, उपयोग करके भी कर्म की निर्जरा कर लेता है। जो योगी नहीं है या यूँ कहें, जिनको इस अध्यात्म का ज्ञान ही नहीं है, सब पदार्थों के बीच

मन के मालिक बन जाने पर दुनियाँ की कोई चीज हमें गुलाम नहीं बना पायेगी।

में रहकर कर्म का बन्ध करेंगे। हर मोक्ष-मार्गी को यह ध्यान रखना चाहिए कि हमारी आत्मा में कर्म का बन्ध कम से कम हो। ऐसी अपने अन्दर की परिणति को बनाना है।

तो वो इसी प्रकार के अध्यात्म से बनेगी। फिर आप कहोगे कि महाराज फिर तो सभी आध्यात्मिक हो जायेंगे, फिर तो किसी वस्तु का महत्व ही नहीं रहेगा। वस्तु का महत्व करना ही क्यों है? महत्व तो हमें अपने ज्ञान को देना है क्योंकि ज्ञान को जब महत्व दोगे, वस्तु का महत्व नहीं रहेगा। आप देखोगे, अपने आप शांति ही शांति होगी। लड़ाई किस कारण से है?

वस्तु के लिए ही होती है और जिनका ज्ञान इतना प्रौढ़ हो जाता है कि वो हर वस्तु के सामान्य धर्म को देखने लग जाते हैं तो फिर उनका ज्ञान किसी वस्तु के लिए लडेग़ा नहीं। आप कल्पना करो कि आपके घर में चार लोग हैं, चार चीजें हैं, सब बन रही है, सब लोग उसका सेवन कर रहे हैं लेकिन किसी को भी यह नहीं है कि हमें ज्यादा मिल जाये या हमें कम मिल जाये या यह हमको ही मिल जाये, इसको ना मिले, समझो वो कितना बड़ा शांति का परिवार होगा। कल्पना तो करके देखो इस अध्यात्म की, कितनी शांति होगी उस घर में? बनाने वाले को भी, उस घर में वस्तु लाने वाले को भी और घर के अन्दर जो उन वस्तुओं का सेवन करने वाले हैं, उनको भी। कभी-कभी ऐसे भी माता-पिता मिल जाते हैं, जो कहते हैं कि महाराज! इस बेटे को तो कुछ फर्क ही नहीं पड़ता। कभी कोई चीज माँगता ही नहीं है किसी भी बाजार में, किसी भी दुकान के सामने खड़ा कर दो, कुछ माँगता ही नहीं है, ऐसे भी बेटे होते हैं। आपको परेशानी किस बेटे से होगी? जो घर में पड़ी हुई चीज से सन्तुष्ट नहीं हो रहा है, उसे तो बाहर की चीजें चाहिए। आजकल ऐसे-ऐसे बच्चे हो गये इन्टरनेट के जमाने के, इस दुकान से तो हमें कुछ खरीदना ही नहीं, हमें तो और बड़ी दुकान पर ले चलो, और बड़े मॉल में ले चलो। यही अशान्ति का कारण है तो फिर शांति कब मिलेगी?

किसी के ज्ञान में कोई वस्तु की महत्ता ना हो तो देखो हर चीज की कीमत एक जैसी होगी। अगर दुनियाँ इस अध्यात्म को अपना ले तो कही पर लूट-पाट जैसी कोई चीज ही नहीं होगी। मार्केट के दाम सबके लिए एक जैसे होंगे। कोई भार नहीं होगा, किसी के मन में राग-द्वेष की परिणति नहीं आयेगी। चारों ओर विश्व के अन्दर शांति ही शांति का वातावरण होगा। भोग-भूमि में ऐसी ही शांति रहती है और कर्मभूमि में अशान्ति रहती है कि हर आदमी अपने कर्म से सब कुछ जल्दी-जल्दी अर्जित करना चाहता है और अर्जित करके दूसरों को दिखाना चाहता है कि मैंने इतना इकट्ठा कर लिया, मैंने इतना बना लिया, मैं यह बन गया, मेरे पास यह है। किसलिए है यह सब?

दूसरे को दिखाने के लिए, दूसरे की नजरों में अपनी उत्कृष्टता बनाने के लिए और जब यह आ जाता है तो समझ लेना आदमी भीतर के राग आदि परिणामों से जुड़ा है। अहंकार के परिणामों से जुड़ा है। उसे कभी शांति नहीं मिल सकती है। अगर बाहर से यह अध्यात्म का चोला पहन भी

अध्यात्म वस्तु को महत्व देने में नहीं अपितु अपने ज्ञान को महत्व देने में है।

लेगा, तब भी भीतर से उसको शांति पता ही नहीं चलेगी। उसे मालूम ही नहीं है इसलिए हर मुनि योगी नहीं होता है और जो योगी होगा वही इस चीज का अभ्यास करेगा और आनन्द लेगा और समझेगा कि इस दुनियाँ में लोग भीड़ में सिर्फ भेडों की तरह चल रहे हैं। आदमी की तरह चलते हुए लोग तुम्हें दिखाई नहीं देंगे। भेडों का यह काम होता है जहाँ एक चलेगी, वहाँ सब चलेंगे। जितने बडे-बड़े झुण्ड भेडों के होंगे उतने आदमियों के नहीं मिलेंगे। आप देखोगे कि एक जगह पर जहाँ लोग जाना शुरू कर देंगे, वहाँ लोग जाना शुरू हो जायेंगे। कोई भी व्यक्ति इतना विचार नहीं रखता कि जहाँ हम जा रहे हैं, उसका क्या मूल्य है? उसकी क्या वास्तविकता है? यह किसी को भी मालूम नहीं रहता। हम सुबह से शाम तक जितने विचार रखते हैं, उन विचारों को कभी अपने मन में सोचना कि यह सब कर रहे हैं इसलिए मेरे अन्दर हो रहा है या क्या यह वास्तविक मेरे लिए करने योग्य विचार हैं?

यह भेद विज्ञान करना आप, बाकी के 'समयसार' के भेद-विज्ञान तो छोड दो, यह ज्ञान शुरू करो। गृहस्थ के लिए यह भेद-विज्ञान करना कि हमारे मन में जो विचार आ रहा है, हम जो चीज लेना चाह रहे हैं, हम जिस चीज के पीछे पड़े हैं, क्या वो वास्तव में हमारे लिए योग्य है? या दूसरे ऐसा कर रहे हैं इसलिए हम भी ऐसा करने का विचार कर रहे हैं। उठ जाओ, एक अच्छे इंसान बनने की राह पर चलने लग जाओ और अच्छा इंसान होगा तो वो धीरे-धीरे देवत्व की राह पर चलने लग जायेगा। बहुत सी चीजें आपके ज्ञान में सिर्फ इसलिए होती है कि दुनियाँ के लोग कर रहे हैं इसलिए आपको यह पता नहीं होता है कि इस चीज की क्या उपयोगिता है, इसी को कहते हैं ''भीड़ में भेड़ की तरह चलना''। आप देखलो, हर चीज जो आपके दिमाग में आ रही है वो भीड़ के कारण से आ रही है या अपने कारण से आ रही है। कभी भी कोई डिमान्ड आती है तो अपने मन में वो इसलिए आती है कि पड़ोसी के पास यह है। घर की आवश्यकता इतनी नहीं होती है लेकिन फिर भी पड़ोसी के यहाँ खीर बनी है तो वो मम्मी से आकर जरूर कहेगा, हमें खीर खानी है। अपने घर में जो बना था, उससे वो सन्तुष्ट नहीं है और जो चीज अपने पास में है उससे सन्तुष्ट नहीं होगा और डिमान्ड बनी रहेगी और यह कर्म के बन्ध चलते रहेंगे, यह दुख बना रहेगा।

कर्म बंध से बचाव :

इसलिए आचार्य कहते हैं कि घर में रहकर भी आप कर्म के बन्ध से बच सकते हो। हमें वस्तु को महत्व नहीं देना, अपनी चेतना को महत्व देना है, अपने विचारों को महत्व देना है और सोचना है कि हम जो भी विचार अपने अन्दर करें कि वो अपने ही हैं या दूसरों के कारण से वो विचार हम अपने अन्दर ला रहे हैं। जितना-जितना आप सामान्य बनोगे, उतना-उतना आप भीतर से विशेष बनते चले जाओगे। लेकिन मन की आदत पड़ी है, बाहर से विशेष बनने की दूसरे की नजरों में

अहंकार एवं रागादि परिणामों के कारण व्यक्ति को कभी भी शांति नहीं प्राप्त होती।

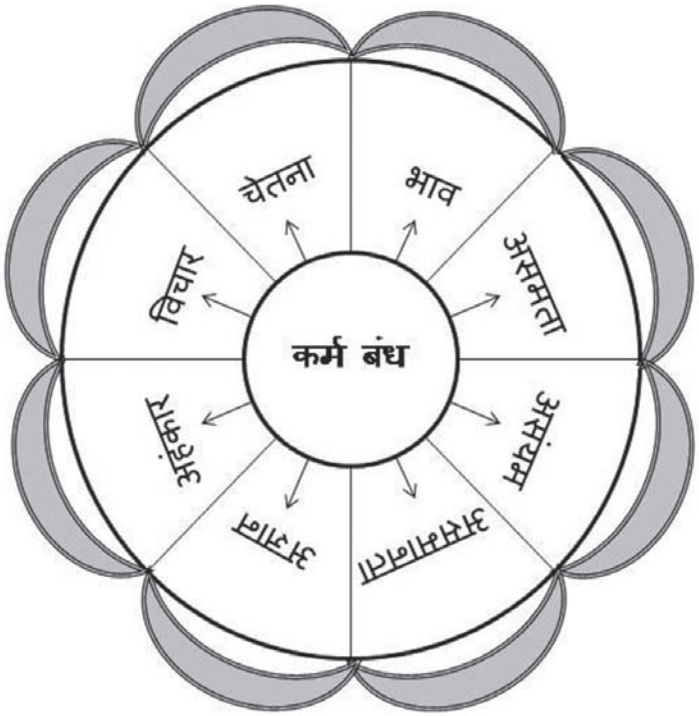

हम क्या है? हमारा ओहदा उससे बनता है। दूसरे की नजरों में हमारी कीमत क्या है और उस कीमत को बनाये रखने के लिए हमें सब प्रयास करने पड़ते हैं। अपनी नजरों में हमारी कीमत क्या है? यह किसी को नहीं मालूम। बड़े-बड़े व्रती योगी भी इस चीज को भूल रहे हैं। अपनी नजरों में अपनी कीमत, अपने ही ज्ञान से बनेगी। उनका मोक्षमार्ग यहीं से शुरू होता है। बाहर से कुछ नहीं होता है। जब तक अपने भीतर का विचार परिवर्तित ना हो, अपने मन पर संयम ना हो, तब तक कोई संयम की शुरुआत होती ही नहीं। हम इसी में उलझे हुए रहते हैं, दूसरा क्या कर रहा है, वह हमारे बारे में क्या सोच रहा है? जब तक आप इस चीज में ध्यान रखोगे तब तक आपके अन्दर योग्यता आयेगी ही नहीं। आप मोक्षमार्ग पर चलने के लिए कितने ही बड़े-बड़े व्रत करें, कितनी ही बड़ी-बड़ी तपस्याएँ करें, इनका कोई भी प्रयोजन नहीं। जब तक आपके मन में दूसरा रहता है, तब तक आपके मन के अन्दर इस प्रकार का अध्यात्म नहीं आयेगा तो भीतर से मोक्ष मार्ग शुरू होता ही नहीं और बाहर ही खत्म हो जाता है।

इसी को आचार्य कहते हैं **'द्रव्यलिंग और भाव लिंग'**, यह भाव लिंग भावों से होता है। भावों से यह संयम होना, भावों से मन के अन्दर यह परिणति होना कि हमने इतना बड़ा मोक्ष मार्ग स्वयं के लिये शुरू किया है। इसमें दूसरे का लेना-देना है कितना? एक बार भोजन करना है, वो भी दूसरे के घर पर जाकर करना है, वो भी थोड़ी देर के लिए। अगर भोजन करके नहीं लौटे तो क्या करोगे? क्या कहोगे महाराज से? महाराज! आपकी समायिक का टाईम हो गया है क्योंकि वो आपको भी खलने लगेगा। उतना ही अच्छा लगता है, जितना कहा गया है और जितना करने योग्य है। भोजन कराया तो भोजन करने के बाद में, अब आप जाओगे, तभी तो हम भोजन करेंगे। जब

हमें कर्म के बंध से बचने के लिये वस्तु को नहीं चेतना को महत्व देना है चाहिए।

आप ही वहाँ बैठ जाओगे तो हम कब करेंगे? हमें तो सामायिक नहीं करनी। हमें तो भोजन करना है फिर अपना व्यापार करने जाना है। हर चीज जिस योग्यता के साथ है, उसी योग्यता में अच्छी लगती है। एक व्रती के लिए, एक मोक्ष मार्गी के लिए, दूसरों से लेने देने के लिए अब बचा ही क्या है? सामने वाला इतना ही अपने से संबंध रखता है और हम भी उससे इतना ही संबंध रखते हैं। यह जो मोक्ष मार्ग हमने शुरू किया है उसी पर लगना और वो मोक्ष मार्ग अब बाहर से तो कुछ होना नहीं है। अब जो कुछ होना है वो भीतर से होना है। अब भीतर से यह परिणाम नहीं आया, राग-द्वेष की भीतर से कमी नहीं आयी, अपनी दृष्टि में दूसरा ओझल नहीं हुआ तो भीतर आपके अन्दर कुछ उतरा ही नहीं। इसलिए जो वास्तव में मोक्षमार्गी होता है वो आँख वाला होकर भी अंधा होता है। कान वाला होकर भी बहरा होता है। मुँह वाला होकर भी गूंगा होता है। आँख से सब दिखाई देगा लेकिन किसी चीज में आँख गड़ाकर नहीं देखेगा। कान से सुनेगा लेकिन ऐसे नहीं सुनेगा कि और सुनाओ, और सुनाओ। कोई अच्छी चीज होगी तो आपको सुनने की इच्छा ही नहीं होती और किसी की निन्दा होगी तो आपकी इच्छा होगी। अगर मन के यह संस्कार जब तक नहीं टूटे तो भीतर से कुछ आया ही नहीं। अगर मुँह वाला भी होगा तो मुँह बन्द रखेगा क्योंकि उसे मालूम है कि आपको सुनना क्या है और जो सुनना है वो हम सुना नहीं सकते। जो हम सुनाना चाहते हैं, वो आप सुन नहीं सकते इसलिए मुँह बन्द रहता है और लोग पूछते हैं कि महाराज का मौन है क्या?

'हूँ, हाँ' से ही काम चल रहा है तो बोलने की जरूरत क्या है? मौन अलग से क्या है? भीतर की परिणति में सब कुछ सामान्य होगा तो आपको अपने ज्ञान स्वरूप आत्मा का महत्व होगा और जिसको अपने ज्ञान का महत्व आने लगेगा, वो उन वस्तुओं को जो अज्ञान के साथ हैं, जड़ के साथ हैं, उनको क्यों कीमत देगा क्योंकि उनकी कीमत है ही नहीं। वो चीज कभी भी उसके ऊपर आक्रमण नहीं कर सकती है। कोई भी चीज सामने है तो उसकी वेल्यू तभी तक है जब आपके ज्ञान में उसके प्रति राग है और आपके ज्ञान में राग नहीं है तो उस वस्तु की कोई कीमत नहीं है। कितनी भी करोड़ों रुपये की चीज हो उसके लिये तो सामान्य है। इसलिए कहा जाता है **''समलोट्ठ कंचण पुणो जीविद मरणे समो समणो''** श्रमण वह होता है जिसके लिए 'लोट्ठ' मिट्टी का लोंदा हो या करोड़ों रुपये का सोना हो वह दोनों चीजें समान हो जायें। इसी को आचार्य कहते हैं भावलिंग, यही अन्तरंग मोक्षमार्ग है। वो समानता ना आये और बाहर से सब कुछ तमाशा हो तो आचार्य कुन्दकुन्द देव कहते हैं कि यह तो दूसरों को भुलावे में डालने के लिए है। यह मोक्षमार्ग जहाँ से शुरू होता है उसकी चर्चा आचार्य कुन्दकुन्द देव, आचार्य पूज्यपाद देव करते हैं। इस अध्यात्म में कितना आनन्द आता है कि उन चीजों से अज्ञात बनो, जिनसे कर्म का बंध होना है। 'अज्ञात तद् विशेषस्तु' सब जानते हैं। लेकिन क्या करना? उन विशेषताओं में अज्ञात रहो। मालूम

एक मोक्षमार्गी के लिये बाहरी लेन-देन एवं भीतर राग-द्वेष की समाप्ति आवश्यक है।

है वहाँ ऐसा हो गया, हाँ सुना तो है। अब यह क्या हो गया? यह हो गया अज्ञात। कोई आपसे किसी की निन्दा करे और आप उसमें रस ले रहे हो तो आपके अन्दर कर्म का बंध चल रहा है। भीतर से देखो इन चीजों को, जब तक आप दुनियाँ को देखकर उस विषय को भूल न जाओ। सुन लिया, जान लिया उसको भीतर मत रखो। आचार्य कहते हैं कि यह सब दुनियाँ में चलता ही रहेगा। 'णाणा जीवा णाणा कम्मा' (अनेक जीव, अनेक कर्म)

किसी के बारे में ज्यादा विचार करने की जरूरत ही नहीं और जहाँ हमने किसी के बारे में सोचा तो अपने मन का मोक्ष मार्ग ओर बिगड़ेगा क्योंकि मन तो एक ही है या तो दूसरे के बारे में सोचो या अपने बारे में। हम दूसरे के बारे में सोचने लग जाते हैं तो अपना मोक्ष मार्ग खराब हो जाता है। आचार्य कहते हैं कि अपना बिगाड़ मत करो। दूसरी चीजों को सिर्फ सामान्य रूप से जानो, सामान्य रूप से देखो। कुछ भी हो जाये। भूकम्प आ गया, सुन लिया, कोई फर्क नहीं। ऐसा करना होगा अगर वास्तविक आध्यात्मिक बनना चाहते हो तो अपने अंदर अगर व्यथा आकुलता किसी भी रूप में उत्पन्न होती है तो आचार्य कहते हैं कि या तो राग होगा या द्वेष होगा और यही चीजें आत्मा के अन्दर कर्म बंध कराने के कारण हैं। हर चीज सुनने के बाद बिल्कुल सामान्य रूप से उसे जानो, सामान्य रूप से उसे देखो, सामान्य उसकी परिणति को ध्यान में लाओ। आपके मन में कर्म का बंध नहीं होगा, मुक्ति मिलेगी। यह मुक्ति मिलने के साधन हैं फिर भी पता नहीं क्यों यह जैनी लोग सब साधनों से वंचित हैं। सुनने में आनन्द आयेगा लेकिन करेंगे वही जो मन करेगा। कब सम्भालोगे इस मन को? महाराज! जब विदेह क्षेत्र में जन्म लेंगे, तब करेंगे। क्या कर लोगे? वहाँ भी यह मन होगा, वहाँ भी इन्द्रियाँ होंगी। यही तो सब ज्ञान होगा। तब भी क्या कर लोगे? यह सब मन के बहाने हैं, वो न आज कर पायेंगे ना कल कर पायेंगे। बाकी सब करने का मन करेगा लेकिन मन संयमित हो जाये, इसके लिए न चतुर्थकाल की जरूरत है न पंचमकाल की। इतने अच्छे-अच्छे उपदेश देकर आचार्यों ने आपके ऊपर उपकार किया। सब कुछ कितना सुंदर अच्छा है, लगता ही नहीं है कि कौनसा पंचमकाल और कौन सा चतुर्थकाल होता है? ऐसे क्षेत्रों पर आकर बैठ जाओ तो क्या फर्क पड़ता है कि चौथे काल में क्या होता है और पंचम काल में क्या होता है? कौनसा अंतर आपको पता पड़ता है? अब यहाँ पे आकर के भी आपको अगर महसूस हो कि नहीं यह पंचमकाल है तो तुम्हारे ज्ञान में जो भरा हुआ राग है वो बता रहा है यह सब तुम्हारी भूल है। कौनसा काल, कौनसा क्षेत्र? जो हमें करने योग्य है वो करो, अभी नहीं करोगे तो उसकी शुरुआत कभी नहीं होगी क्योंकि अध्यात्म एक ऐसी चीज है, जिसके लिए अपना मन स्वयं तैयार करना पड़ेगा। नहीं तो मन तो हर जन्म में ऐसे ही उछल कूद करता है और कुछ नहीं मिलता है।

श्रमण के लिये मिट्टी का लोंदा एवं करोड़ों का सोना समान होता है।

इसलिए यह हमेशा ध्यान में रखो कि मन को संयमित बनाए बिना, मन के अन्दर ज्ञान का प्रभाव डाले बिना, अपनी आत्मा का ज्ञान नहीं होगा। जब तक मन अपने आत्म-ज्ञान में सन्तुष्ट ना हो, अपनी आत्मा के ज्ञान से प्रभावित न हो, तब तक बाहर की वस्तुओं का आकलन करेगा और बाहर की वस्तुओं के आकलन में उसे कभी भी शांति महसूस नहीं होगी। मन की शांति के बिना सब कुछ बेकार है। किसके लिए सब कुछ किया जाता है? इतना बड़ा घर बनाते हैं, व्यापार करते हैं, बच्चों का पालन-पोषण करते हैं ताकि हमारा जीवन सुख-शांति से बीते, यह गृहस्थ का ध्येय है और उसी ध्येय को यहाँ पर और बढ़ा दिया जाता है कि वह आपका ध्येय और अच्छा बन जायेगा यदि आप अपने विचारों को इस ढंग से शांत करने लग जायेंगे। इस ढंग से प्रशिक्षित करें कि वह मन विशेषताओं में न उलझें, जो विशेषताएँ उसके लिए काम की नहीं हैं उन्हें जानकर के भी भूल जायें।

'अज्ञात तद् विशेषस्तु' उनकी विशेषताओं में जैसे हम कुछ जानते ही नहीं हैं। ऐसा परिणाम आना चाहिए, चाहे घर में रहो, चाहे घर के बाहर रहो, कहीं भी रहो, ऐसा परिणाम अगर रहेगा तो हर जगह पर सुख मिलेगा, हर जगह शांति, और हर जगह मन आपके लिए आपकी आत्मा में जुड़ा हुआ रहेगा।

यह मन को जीतने के इतने अच्छे आयाम हैं कि कुछ नहीं करना, बस अपने ज्ञान को विशेषताओं में उलझाने की बजाय, उसके सामान्य धर्म पर ले आना और जैसे ही सामान्य धर्म आ जाता है तो आचार्य कहते हैं कि हम अपने निकट आ जाते हैं क्योंकि ज्ञान को सामान्य बनाना है, विशेष होते हुए भी उसे सामान्य धर्म की ओर लाना है। जहाँ सामान्य होगा वहाँ कोई लड़ाई झंझट नहीं।

जहाँ अपनी तनी कॉलर तानने का मतलब है कि जो मेरे पास है, वो तेरे पास नहीं है ,बस। जहाँ यह भाव आ गया, वहीं से समझो लड़ाई शुरू हो गई, आपकी तरंगे उसके पास पहुँच गई। आपके मन का विकार उसने समझ लिया। वो एक्शन में आ गया, जैसे ही आपके मन का विकार दूसरा पढ़ेगा, वो भी अपनी कॉलर तानेगा। हम किसी से कम नहीं, क्या होगा? लड़ाई शुरू। विशेषता आयी कि लड़ाई शुरू और आपका मन विशेषता के बिना मानता नहीं। आपको लगता है कि बिना विशेषता के हमको जानेगा कौन, जताना किसको है?

अगर आपको अध्यात्म का जरा सा भी ज्ञान होगा, जो जानने वाला है उसको तो सामने वाला कभी जान नहीं पाएगा और जो जानने में आ रहा है, वो तो एक दिन मिट्टी में मिल जाएगा, कब्र में चला जाएगा। वो तो यहाँ रहेगा ही नहीं, अब किसको जताना है, बताओ।

दो ही चीजें हैं जो जानने वाला है वो आत्मा है उसको तो तुम कभी जान नहीं पाओगे, उसको

मन को जीतने के लिये अपने ज्ञान को सामान्य धर्म पर ले आयें।

कभी देख नहीं पाओगे, तो तुम्हारा उससे कभी परिचय होना ही नहीं है, यह तो बात पक्की है। जिससे तुमने परिचय कर रखा है वो हमेशा रहने वाला नहीं है। वो तो छूटेगा, वो तो जल जायेगा, मिट जायेगा, अब किसको क्या दिखाना और किसी को क्या जताना? यह जब भीतर से उतरने लग जायेगा तो हर जगह शांति ही शांति होगी। आज हम देख रहे हैं कि हर जगह क्रान्ति ही क्रान्ति है। शांति तो कही हैं ही नहीं। घरों में भी, समाज के लोगों में भी और उसका एक ही कारण है कि हम विशेष बनना चाहते हैं। विशेषताओं को ही पकड़ना चाहते हैं। कोई भी व्यक्ति सामान्य बनकर रहना ही नहीं चाहता। वही रह सकेगा, जिसको अपने अन्दर का सामान्य, बड़ा विशेष दिखाई देगा और बाहर का विशेष बिल्कुल सामान्य दिखाई देगा। ऐसे ज्ञान का जब परिणमन हो जाएगा तो अपने आप आपके अन्दर अध्यात्म और इसके माध्यम से होने वाले मुक्ति के भाव आने लगेंगे। अपनी दौड़ जो बाहर की ओर हो रही है, वह भीतर की ओर होने लगेगी इसलिए अपने अन्दर इन अध्यात्मों का थोड़ा सभी उपयोग करोगे तो आपको बहुत फल मिलेगा। प्रयोग किये बिना कुछ नहीं मिलेगा, इतना सुन लिया और यहाँ से उठे तो फिर वहीं ज्यों के त्यों, क्या लाभ मिला? कुछ न कुछ तो प्रयोग करो, सामान्य में कोई भेदभाव नहीं होता। सामान्य मेरे पास भी है, सामान्य उसके पास भी है। भेदभाव आएगा तो ऊँच-नींच का भाव आएगा, छोटे-बड़े का भाव आएगा और यह सब विशेषताओं के कारण से आएगा। इस सामान्य भाव को अपने प्रयोग में लाना तभी आपके अन्दर वो भाव आएगा।

'' मैं हूँ वो नहीं जो तुम्हें दिख रहा हूँ
मैं हूँ जो नजर से परे ही रहा हूँ
कठिन राह पर भी मैं आसान क्यों हूँ
समझ कर भी सब कुछ मैं अंजान जो हूँ
जो मेरा है मुझसे कहीं ना गया है
जो छूटा है मुझ-से वो मेरा नहीं था,
मैं अपने में अपने को ही पा रहा हूँ
मैं हूँ वो नहीं जो तुम्हें दिख रहा हूँ
मैं हूँ जो नजर से परे ही रहा हूँ ''

महापुरुषों ने मोक्ष पुरुषार्थ क्यों किया?

45

परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखम्।
अत एव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः॥

अन्वयार्थ–(परः) अन्य पदार्थ (आत्मा से) **(परः)** अन्य हैं अतः **(ततः)** उस अन्य पदार्थ से **(दुःखम्)** दुख होता है और **(आत्मा)** आत्मा अपना **(आत्मा एव)** आत्मा ही है अतः **(ततः)** उस (आत्मा) से **(सुखम्)** सुख होता है **(अतएव)** इसी कारण **(महात्मानः)** महापुरुषों ने **(तन्निमित्तं)** उस आत्मा की प्राप्ति के निमित्त **(कृतोद्यमाः)** उद्यम किया था।

- **अंतरंग का पुरुषार्थ**
- **आदमी और मनुष्य**
- **बनो दमी ओ आदमी**
- **मुनि महाराज की स्वाधीनता**
- **मालिक और नौकर**

अंतरंग का पुरुषार्थ :

आचार्य श्री पूज्यपाद महाराज के द्वारा रचित यह इष्टोपदेश ग्रन्थ है जिसका पठन-पाठन भी वचन और मन को पवित्र करने वाला है। आचार्य देव यहाँ पर वर्णन कर रहे हैं कि आत्मा के अधीन रहने वाले योगी, अपने आप में सुख क्यों प्राप्त करते हैं और उन्हें किसी भी चीज का दुःख क्यों नहीं होता है? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए यहाँ पर आचार्य कहते हैं–

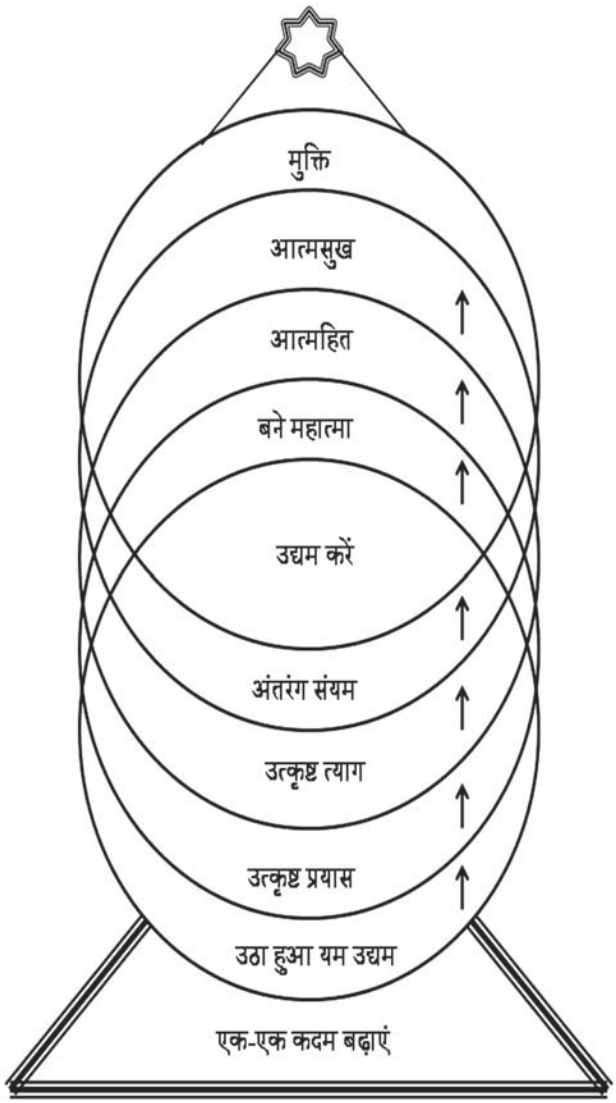

उद्यम और ऊधम

'**परः पर**' 'पर' पर है। एक आत्मा का अर्थ यहाँ पर, अपने के अर्थ में है। आत्मा ही अपना है इसलिए सुख है। अत एव इसलिए 'एव' का मतलब है 'महात्मानं', जो महान आत्माएँ हैं; उनके लिए। '**तन्निमित्तं**' उस आत्मा को प्राप्त करने के लिए '**कृतोद्यमाः**' प्रयत्न किया था। महात्माओं ने आत्मा के लिये ही उद्यम किया है। दो शब्द आते हैं एक उद्यम कहलाता है और एक ऊधम कहलाता है, दोनों से आप परिचित होंगे। हम समझते हैं कि यह जो उधम शब्द बना है, यह भी उद्यम से ही बना होगा क्योंकि कोई भी शब्द होता है और उसके अर्थ में जब व्यक्ति ठीक नहीं बैठता है तो वो शब्द गिर जाता है। जब गिरता है तो शब्द का अर्थ भी गिर जाता है, उसके भीतर का भाव भी गिर जाता है। उद्यम शब्द अपने आप में कहता है- उत का मतलब है उठा हुआ, यम-जो अपने अन्तरंग का त्याग भाव होता है। जिसके अन्दर उत्कृष्ट रूप से त्याग

ऊधम छोड़कर उद्यम में लग जाना श्रेष्ठ है।

होगा वो कहलायेगा उद्यम। आत्मा के लिये उद्यम शब्द का प्रयोग किया जाता था। यह ग्रन्थ लगभग 5वीं शताब्दी का है। शब्द साहित्य का इतिहास बताता है कि उद्यम शब्द उस समय चलता था जब उत्कृष्ट रूप में त्याग करना और आज हम उद्यम बोलते हैं कि कुछ तो उद्यम करो, घर पर बैठे रहते हो, कुछ दुकान जाओ, कुछ हाथ-पैर चलाओ, कुछ काम करो। कुछ उद्यम करो। आज हमने उस शब्द को इतना गिरा दिया। जबकि उद्यम का मतलब होता था उत्कृष्ट रूप से त्याग करने वाला। जब यह उद्यम छूट गया तो त्याग करना आदमी ने छोड़ दिया, अपने अन्तरंग संयम भाव से आदमी वंचित होने लगा तो फिर उद्यम होने लगा। उद्यम छूटा तो उद्यम शुरू हो गया। उद्यम का मतलब होता है- परेशान होना और परेशान करना। आपके अन्दर भी उद्यम चल रहा है और उद्यम ही करते रहते हो। आचार्य कहते हैं जितना बाहर डोलोगे, धन आदि के अर्जन में कष्ट उठाओगे, जितना अपने शरीर, सम्बंधों की फिक्र करोगे, उतना तुम बाहर रहोगे और जितना बाहर रहोगे, तुम परेशान रहोगे, तुम भीतर आ जाओ, अब यह उद्यम करना बन्द कर दो। आपको अभी तक यह समझ में नहीं आ रहा है कि आप जो कर रहे हैं, वो उद्यम है। अपने बच्चों से तो कहते हो उद्यम मत करो, यहाँ पर आचार्य महाराज आपसे कह रहे हैं, उद्यम मत करो। उससे आपको सिवाय दुख के, परेशानी के, कुछ मिला नहीं और जो कुछ आज कर रहे हो, आप स्वयं भी परेशान हो रहे हो और साथ जो होंगे, वो भी आपके लिए परेशान होंगे।

यह जब तक उद्यम है तब तक परेशानी है और जैसे ही यह उद्यम बन्द होगा उद्यम शुरू होगा। उद्यम शुरू होगा तो परेशानी कम होगी क्योंकि बच्चा जब बाहर से उद्यम बन्द करके घर में आ जाता है तो माँ को भी अच्छा लगता है और बच्चे को भी अच्छा लगता है। हमारी माँ कौनसी हैं? 'जिनवाणी माँ'। वो जिनवाणी माँ कहती है, अब तू मेरे पास आ जा, मेरी बात सुन ले, बार-बार ऊधम करते-करते बहुत समय बीत गया है। यह बाहर का ऊधम छोड़ दे, अपनी आत्मा के लिए उद्यम कर। तू अगर अपनी आत्मा के लिए उद्यम करने लगेगा, तो तेरा आत्मा, महात्मा बन जायेगा। महान् आत्मा को महात्मा कहा है तो अपनी आत्मा को तुम्हें महान् बनाना है। अगर अपनी आत्मा को महान् बनाना हो तो उद्यम छोड़ो, उद्यम करो। महान् आत्मा को ही महात्मा कहा जाता है, कोई अलग से महान बनते नहीं हैं। जो भीतर से यह ऊधम छोड़कर उद्यम करने लग जाते हैं वही महात्मा बन जाते हैं। उद्यम का मतलब होता है 'अपना अन्तरंग का पुरुषार्थ'। जिसे आचार्य कहते हैं, अपने अन्तरंग के उस पुरुषार्थ के माध्यम से उन सब चीजों से बचना, जिनसे आत्मा का अहित हो, जिससे आत्मा की परेशानियाँ बढ़ें, जिससे आत्मा को दुख पहुँचे उन सब चीजों को छोड़ना। यह जो आपका अन्तरंग का पुरुषार्थ होगा, वही आपका उद्यम कहलायेगा। इसी को कहते हैं अपने अन्दर किया जाने वाला उत्कृष्ट प्रयास। जिसके माध्यम से ही आत्मा अपने आप ऊँचा बनने लग जाता

अगर अपनी आत्मा को महान बनाना हो तो ऊधम छोड़ो, उद्यम करो।

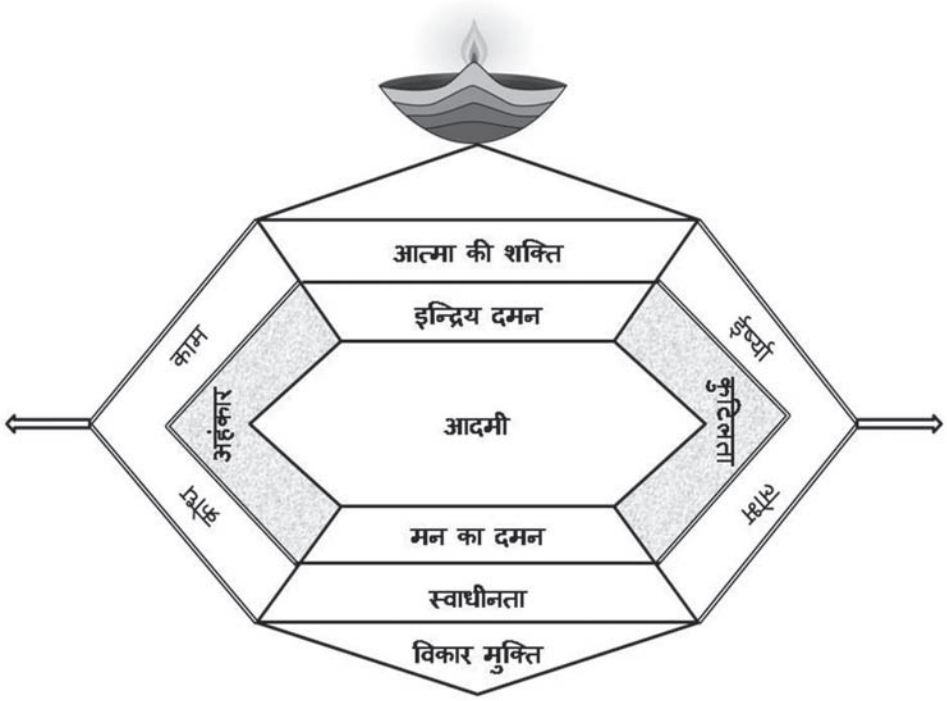

है। आत्मा महात्मा बनने लग जाता है। आचार्य महाराज ने एक दोहा लिखा है–

''ऊधम से तो दम मिले, उद्यम से दम आये।
बनो दमी भी आदमी, अमित अभिट मिल जाये।''

आदमी और मनुष्य :

आप सभी आदमी भी नहीं हो, बस मनुष्य कहलाये जा सकते हो क्योंकि मनुष्य नाम कर्म के उदय से जी रहे हो तो मनुष्य हो, अभी आदमी नहीं हो। यह आदमी शब्द भी इसलिए प्रयुक्त होता था। आ–असमनता–चारों ओर से। दम– अपने अन्दर अपनी इन्द्रियों का दमन करता हो, अपने मन के विकारों को जीतता हो। उसको कहा जाता था 'आदमी'।

बनो दमी ओ आदमी :

आज हम सामान्य से किसी चलते–फिरते को आदमी कह देते हैं। आदमी और मनुष्य में अन्तर है। मनुष्य तो इसलिए कहलाया क्योंकि वह मनु की संतान था। जो अपने 14 कुलकर हुए वो मनु कहलाते थे। फिर उसके बाद ऋषभदेव आदि तीर्थंकर हुए, इस क्रम से चला आ रहा है। मनु की परम्परा बनी हुई है, इसलिए मनुष्य हैं। आदमी नहीं हैं। मनुष्य शब्द जो मनुष्य गति में जन्म लिया है, उन सबके लिए फिट हो जायेगा। लेकिन आदमी शब्द सिर्फ उनके लिए ही लगेगा, जो

अपने अन्दर के विकारों को जीतने वाला होता है– दमी और वही कहलाता है आदमी।

अपने मन के विकारों को जीतें। अपने ऊपर अपना विश्वास रखें और अपनी आत्मा के अन्दर ऐसा उद्यम करें, जिसके माध्यम से उसकी आत्मा महात्मापन की ओर बढ़ने लगे, उसे कहा जायेगा आदमी। आचार्य कहते हैं 'बनो दमी भी आदमी'। अब फिर आचार्य महाराज को याद दिलाना पड़ा कि हे आदमी! तुम्हारा शब्द ही कह रहा है कि तुम्हें दमी बनना चाहिए। दम जिसके पास में हो, वो दमी कहलाता है। दम का मतलब होता है, अपने मन का दमन करना, अपने मन के विकारों को जीतना। जो अपने मन के विकारों को जीतेगा, वो दमी कहलायेगा। जैसे धनी-धन जिसके पास में हो वो धनी, ज्ञानी-ज्ञान जिसके पास में हो वो ज्ञानी। ऐसे ही आचार्य कहते हैं-दम जिसके पास में हो वो दमी। आत्मा की शक्ति को दम कहते हैं। उस शब्द को भी हमने गिरा दिया क्योंकि आत्मा को तो अब कोई जानता है ही नहीं। आदमी शरीर को फुला लेता है, जिम जा-जाकर अपनी बॉडी बना लेता है, बस दम आदमी, दम भर रहा हूँ। वो दम कब याद आती है जब आदमी की साँसें निकलने को होती हैं। तब हम कहते हैं- इसकी दम निकल गयी। इसके अन्दर की जान निकल गयी, इसके अन्दर की आत्मा निकल गयी। इसके अन्दर की साँसें छूट गईं यानि इसकी दम निकल गयी।

हमने इस दम शब्द का अर्थ भी किसमें किया? जो अपने अन्दर जान चल रही है, अपने अन्दर साँस चल रही है उसका नाम हमने दम समझा लेकिन आचार्य कहते हैं दम का मतलब है 'आत्मा की ताकत'। जब आपकी आत्मा में ताकत आ जाये-कैसी? अपने अन्दर के विकारों को जीतने की, तो आप समझना कि आपके अन्दर दम है और जब आपमें ताकत नहीं हो अपने मन के विकारों को जीतने की तो समझना अपने अन्दर दम नहीं है। छोटे-छोटे विकार सबके अन्दर रहते हैं और वो बड़े-बड़े रूप में बढ़ते चले जाते हैं। हम सब जानते हैं कि हमारे अन्दर कितने विकार भरे हुए हैं, मन के अन्दर कितनी जल्दी गुस्सा आता है। मन के अन्दर कितनी जल्दी चिड़चिड़ापन आता है। मन के अन्दर अगर आदत भी पड़ गयी है और दूसरी चीजों की, तो जो गलत भी है, विकार पैदा करने वाली है और उन चीजों को भी हम खाते हैं-पीते हैं तो हमारे अन्दर की दम मिट रही होती है। आपको चाय पीने की आदत पड़ी है, वो भी आपकी दम मिटा रही है क्योंकि वो आपको शरीर में ताकत देगी आपको ऐसा लगेगा कि उससे शरीर को ऊर्जा मिल रही है। लेकिन आपकी आत्मा उससे मर रही है क्योंकि वो चाय के बिना जी नहीं सकते। जिन भी चीजों से आत्मा में विकार उत्पन्न हो रहे हैं? वे सब चीजें आपका दम ले रही हैं और आदमी कहता है कि हमें दम मिल रही है। आदमी की बुद्धि इतनी उल्टी चल रही है कि उसने इन शब्दों के अर्थ ही उल्टे कर रखे हैं, जिन चीजों से आत्मा को हानि पहुँच रही है, उसमें वो दम मान रहा है। चाय पीने से शरीर मिटता है, मन कमजोर होता है। जितने भी व्यसन करने वाले, नशा करने वाले लोग होंगे, उनकी आत्मा में ताकत नहीं होगी, आत्मविश्वास नहीं होगा। आत्म-विश्वास की कमी का मतलब ही

हम जितना मन के भावों पर विजय प्राप्त करेंगे जाये उतना ही हमारे भीतर उद्यम होगा।

यही है कि आत्मा की दम निकल रही है। आत्मा में इतनी भी दम नहीं रही कि वो इन छोटी चीजों पर भी विजय प्राप्त कर सके। हम बाहर से अपने आपको मानेगें कि हमारे अन्दर बहुत ताकत है, हमारे अन्दर बहुत दम है जबकि आचार्य कहते हैं यह भीतर का ऊधम है दम है ही नहीं। दमी बनो। अगर तुम अपने मन के छोटे-छोटे विकारों को नहीं जीत पाओगे, अगर मन की छोटी-छोटी चीजों पर विजय प्राप्त नहीं कर पाओगे तो उन कषायों पर विजय प्राप्त करना तो दूर की बात है। क्रोध, काम, लोभ जीतना, यह तो बहुत बड़ी-बड़ी बात है। पहले अपने अन्दर के इन छोटे-छोटे विकारों को जीतो, इन पर विजय प्राप्त करो। अध्यात्म हमें यही सिखाता है कि हम जितनी-जितनी मन पर विजय प्राप्त करते जायें, उतना ही हमारे भीतर उद्यम होगा। उस उद्यम का मतलब है, उत्कृष्टता से आत्मा के अन्दर त्याग होना। वो त्याग होगा तो आपके अन्दर आपका महत्व बढ़ेगा। महात्मा का मतलब हो गया, आत्मा का महत्व बढ़ जाना। जब यह महत्व बढ़ जायेगा तब हमें पता चलेगा कि वास्तव में जिन चीजों को कर रहे थे उनसे हमें सुख नहीं मिल रहा था, उनसे हमें दुख मिल रहा था।

गुस्सा से दुःख :

आचार्य कहते हैं 'परः परस्ततो दुःखम्'। जितना तुम पर का आलम्बन लोगे उतना तुम्हें दुख होगा। जब आपके अन्दर खराब चीजें छोड़ने में नहीं आती, तब आपका दुख बढ़ता चला जायेगा। जब आप गुस्सा करते हो तो आपको दुख होता है या सुख होता है? दुख होता है। अनुभूत करो, खुद अपने मन में महसूस करो, जब हम किसी पर गुस्सा करते हैं तो पहले हमारे अन्दर दुख आ जाता है क्योंकि जहाँ पर गुस्सा आ गया, वहाँ दुख आ गया। एक तो वह है जो बाहर खड़ा है और एक वह जो मन में बैठा है। जो बाहर खड़ा है, उसके निमित्त से भीतर बैठे मन का विकास जागृत हुआ तो पहले अपना मन दुखी हुआ, भीतर हमने दम लगायी, गुस्सा करने के लिए। बुढ़ापे में आदमी को गुस्सा नहीं आता क्योंकि उस समय उसके अन्दर गुस्सा करने की ताकत नहीं रही तो उस समय उसमें चिड़चिड़ापन आयेगा। यह जब गुस्सा करने में आदमी असमर्थ हो जाता है तब उसके अन्दर चिड़चिड़ापन आता है। इससे यह सिद्ध होता है कि गुस्सा करने में हमें भीतर से ताकत लगानी पड़ती है। जब हम भीतर से गुस्सा करेंगे तो हमारे भीतर पहले दुःख उत्पन्न होगा। तब जाकर हम जिस पर गुस्सा करेगें, उसे दुखी बना पायेगें क्योंकि गुस्सा करने से सामने वाला सुखी तो नहीं बनेगा। इसका मतलब यह हुआ कि पहले आप दुखी हुये, फिर उसे किया और पूरा का पूरा माहौल दुखमय कर दिया। अपने मन का विकार खुद को भी दुःख देगा और दूसरे को भी दुःख देगा।

कोई भी विकार, जो धर्म कहता है कि यह विकार हैं, धर्म कहता है, यह अपना विभाव है, धर्म कहता है यह चीज बुरी है तो यह मत समझना कि हम धर्म करने जा रहे हैं। यह भी समझा करो कि अगर हम धर्म की बात भी मानेंगे तो हमारे अन्दर थोड़ा सुख आने लगेगा। मान लो कोई

व्यक्ति तम्बाखू खाता है, जिस समय वह तम्बाखू खाता है, उस समय वह अपने अन्दर विकार को भर रहा है। कोई अच्छी चीज नहीं भर रहा है क्योंकि उसमें टॉक्सिन होती है। ऐसे उसमें नशे के रसायन होते हैं, जो अपने अन्दर घर करते चले जायेंगे, अपने अन्दर बैठते चले जायेंगे अपनी नसों में मिलते चले जायेंगे। नसों में मिलते-मिलते उसकी नसें जब आदी हो जायेंगी और जब आप उसे नहीं लोगे तो आपकी नसे तड़पेंगी और आप उसे छोड़ नहीं पायेंगे। आत्मा जो है उसे पता ही नहीं है उसका मैं क्या कर रहा हूँ वो तो भीतर है ही नहीं। इस कारण से वह कहता है कि मैं ऐसा नहीं कर पाऊँगा, मैं इसे नहीं छोड़ पाऊँगा अगर आदमी समझदार होगा तो समझेगा कि मैं ऐसा क्यों कह रहा हूँ? क्या मैं इतनी छोटी सी चीज को भी नहीं जीत सकता? अगर इतनी छोटी सी चीज नहीं जीत पाया तो मेरे आदमी होने का मतलब ही क्या? नशा का मतलब है जो हमारी नसों तक पहुँच जाये। यह नशा जो नसों में पहुँच जाता है तो फिर आदमी उसके अनुसार चलने लग जाता है। वो आदमी अपने अनुसार नहीं चल पायेगा वो वस्तु उसको अपने अनुसार चलायेगी।

पराधीनता से दुःख :

आचार्य कहते हैं, जितना-जितना तुम पराधीन होओगे, उतना तुम दुखी होओगे। 'परः परस्ततो दुःखम्' इस सूत्र को ध्यान रखना। जितना-जितना पर से हटोगे उतना-उतना सुखी होओगे। यह दुख और सुख का सबसे बड़ा सिद्धान्त है। इसी सिद्धान्त से चलो तो सुख मिलेगा। पराधीनता का मतलब है- जिन बुरी आदतों के बिना हम नहीं रह पायें वो हमारे लिए पराधीनता बन जाती है इसलिए आचार्य कहते हैं कि सबसे पहले सदाचार का जीवन जीना शुरू करो। सबसे पहले अष्ट मूल गुणों का पालन करना शुरू करो। नशे से, बुरी आदतों से दूर हो क्योंकि उसके बिना तुम्हें और कुछ समझ में आ ही नहीं पायेगा कि भीतर की और मन की पराधीनताएँ कितनी हैं। जो आदमी जितना इन सबमें पड़ा होगा वो भीतर से उतना ही विकारग्रस्त होगा। इनके अन्दर भीतर से क्रोध भी बहुत मिलेगा। गुस्सा भी बहुत आयेगा। काम विकार भी बहुत जागेगा। मन के अन्दर वो विकार, हमने शरीर के माध्यम से पहुँचाया फिर वो विकार शरीर को विकार ग्रस्त करता है। पूरा मन विकारी हो गया। तुम्हारे पास अच्छा बचा क्या? अभी तो हम एक अच्छे इंसान ही नहीं बन पाये, हम अच्छे महात्मा कैसे बनेंगे? इसी अध्यात्म से चलोगे तो आदमी से महात्मा बनने की एक प्रक्रिया में ढल जाओगे। इसी प्रक्रिया से चलोगे तो आपके अन्दर एक भाव आयेगा कि हमें अपने मन के विकारों को जीतना है क्योंकि यह हमें पराजित बना रहे हैं।

यह अनुभूत किया हुआ सूत्र है आचार्यों का। आप कहोगे पराधीन तो सब हैं, जग में हमें भूख लगती है, प्यास लगती है, हम भोजन करते हैं, पानी भी पीते हैं। यह पराधीनता है, भूख लगना- प्यास लगना क्योंकि उस पराधीनता में हमने अपने शरीर के अन्दर आये हुए उस भूख और प्यास के आवेगों को जीतने के लिए जितना आवश्यक है, उतना दिया। लेकिन जो हमारे लिए

अनावश्यक था, जिससे हमारा शरीर और मन विकारग्रस्त हो रहा था, हम अगर उसके पराधीन हो गए, तो हम कभी स्वाधीन नहीं हो पायेंगे। रोटी खाने से, पानी पीने से शरीर विकारग्रस्त नहीं होगा, शरीर स्वस्थ बनेगा और ब्रैड खाने से, पानी की जगह कोका-कोला, पेप्सी पीने से विकारग्रस्त होगा, शरीर में विकार आयेगा मन में विकार उत्पन्न करेगा और मन का विकार आपको कभी चैन नहीं लेने देगा। आपका पैसा भी ज्यादा खर्च होगा, आपका धर्म जायेगा, आपके शरीर का स्वास्थ्य भी जायेगा। इन सबकी अगर आदत पड़ गयी तो उनकी हड्डियाँ कमजोर होती चली जाती हैं। कोलेस्ट्रोल लेवल बढ़ता चला जायेगा। लीवर काम करना बन्द कर देगा। मधुमेह हो जायेगा। अब इन रोगों का इलाज कराओ, डॉक्टर के पास जाओ, डॉक्टर के चक्कर लगाओ, उसमें पैसा खर्च करो। एक विकार को नहीं जीत पाने के कारण से, पूरे जीवन की ऊर्जा हम उस विकार में लगाते चले जायेंगे और जब वो विकार बढ़ जायेगा, उसको सम्भालने में लग जायेंगे। इसी में आदमी का जीवन निकलता है और किसी में नहीं निकलता। जब तक उसमें समझ है, तब तक उसको समझाओ तो समझ नहीं आता और जब विकार से ग्रस्त हो जाता है अगर डॉक्टर कह दे कि मधुमेह हो गया है अब क्या करना? अब रोजाना इन्सुलिन का इन्जेक्शन लगाओ, रोजाना टेबलेट खाओ।

पहले रात में पानी नहीं पीते थे, अब रात में पानी पीना पड़ेगा क्योंकि धीरे-धीरे पानी पीना है, ज्यादा पीना है। पहले धर्म के लायक भी शरीर था, अब वो भी नहीं बचा, अपने मन के छोटे-छोटे विकारों को नहीं जीतने के कारण से। यह जीवन हमें मिला था कि हम आदमी बनते। अपनी आत्मा के अन्दर यह छोटी-छोटी चीजों का त्याग तो दूर, जो वास्तव में हमारे अन्दर विकार भरे थे, उनका भी त्याग करते और उस त्याग को करके जब हम आदमी बनते तो हमारे मनुष्य जीवन की सार्थकता होती लेकिन हमें पता नहीं कि इस मनुष्य जीवन की सार्थकता किसमें है। आप देखोगे आदमी विकारों में घुलता चला जाता है। ये विकार हमारे शरीर को भी हानि पहुँचाते हैं, हमारे मन को भी हानि पहुँचाते हैं और भीतर आत्मा को पीड़ित करते हैं, दुखी करते हैं। आत्मा हमेशा दुखी रहेगी। कहीं तीर्थ यात्रा पर गया, एक दिन चाय नहीं मिली, कितनी परेशानी होगी। यह दुख सिर्फ इसलिए है क्योंकि हम पराधीन होते चले जा रहे हैं। अगर आपके अन्दर ये विकार नहीं होंगे तो कोई बात नहीं, एक दिन चाय नहीं मिली तो क्या ?

मुनि महाराज की स्वाधीनता :

मुनि-महाराज दुखी होते हैं या सुखी होते हैं। अब यह ही सब चीजें अगर मुनि महाराज पर देखो तो आपको क्या लगेगा? मुनि महाराज एक टाईम खाते हैं, एक टाईम पानी पीते हैं लेकिन आपको यह ज्ञान होना चाहिए, जो जितनी ज्यादा इच्छा रखेगा, वो उतना ज्यादा दुखी होगा। दुख शरीर से नहीं होता, दु:ख होता है मन से। अगर मन के अन्दर विकार नहीं हैं, इच्छा नहीं है तो उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ेगा। आपने यह मान रखा है कि खाने से सुख मिलता है, अगर किसी दिन

महाराज को अन्तराय होगा तो आपको दुख होगा। अरे! महाराज का आज तो अन्तराय हो गया, महाराज को भोजन ही नहीं मिला, महाराज को दुख हो गया। दुख नहीं हो गया, उन्हें सुख हो गया। जो उनके अन्दर भोजन की प्रकृति थी, जो उनके अन्दर भोजन की पराश्रितता थी वो पराश्रितता भी अब उनके अन्दर नहीं रही, उस पराश्रितता को भी वह जीत गये। वह भोजन भी अब उन्हें दुखी होने का कारण नहीं लगेगा क्योंकि उनका यह नियम था अगर इस नियम से भोजन मिलेगा तो लूँगा। पहले से ही मन के अन्दर यह भाव है तो जब यह मन के अन्दर भाव आ गया तो फिर भोजन से सुख और दुःख नहीं है। सुख और दुःख अपने उस नियम से है, उस स्वाधीनता से है। मैं इतना स्वाधीन हूँ कि अगर ऐसा मिलेगा तो लूंगा और ऐसे नहीं मिलता तो नहीं लूँगा। मतलब वो उस भोजन के भी पराश्रित नहीं हैं, वो अपने ज्ञान और संयम के आश्रित हैं इसलिए उन्हें भीतर से कोई दुख नहीं होता। इसलिए कहा जाता है जो जितना पराश्रितता से दूर होगा वो उतना ही स्वाधीन होगा और जो जितना स्वाधीन होगा वो उतना ही सुखी होगा।

मुनि महाराज तो स्वाधीन हैं। उनके पास क्या है? एक पिच्छी है, कमण्डलु है और शास्त्र हैं। पिच्छी साल में एक बार बदल ही जाती है, कमण्डलु टूटता फूटता है नहीं और वो भी बदल ही जाता है, किसका दुख मिले? अगर वो आहार करने गये और आहार नहीं भी मिला तो भी सुख है कि आज मेरे अन्तराय कर्म का क्षय हो गया। आज मेरे अन्दर कर्मों की निर्जरा और हो गयी। मैंने आज जिनवाणी में जैसा संयम लिखा था, वैसी जिनवाणी की आज्ञा का पालन किया। महावीर भगवान के द्वारा बताये गये उस आधार मार्ग से मैं आहार लेता हूँ, तुम्हारे देने से मैं आहार नहीं लेता हूँ। आहार लेते हुए भी हम भगवान महावीर के अनुसार चल रहे हैं। उनकी बतायी हुई बात का पालन कर रहे हैं और उनकी आज्ञा को मानना कितने सुख की बात है। यह छोटे-मोटे आहार से क्या होना है। उनकी आज्ञा मानने का जो सुख होगा, उस सुख की तो आप कल्पना कर ही नहीं सकते। उसी का नाम है जितना-जितना स्वाधीन होगा उतना-उतना सुख होगा। इसी भाव को आचार्य गुणभद्र महाराज 'आत्मानुशासन' ग्रंथ में कहते हैं; **''परायत्तात् सुखाद् दुःखम् स्वायत्तम् केवल वरं''**

पराधीन सुख की अपेक्षा से स्वाधीन दुख अच्छा है। पराश्रित होकर कोई सुख मिले तो उसकी अपेक्षा से अगर स्वाधीन होकर दुख भी मिले तो अच्छा है क्योंकि वो अपना तो है। पराश्रित सुख के पीछे कब तक भागेंगे, जिससे हमें सुख मिल रहा है उस वस्तु और पदार्थ से अपना भाव हटा लेना। जो हमारे पीछे भागे तब तो वो हमारे लिए सुख और हम उसके पीछे भागे तो वो हमारे लिए दुख लेकिन हमें यह अच्छा लगता नहीं है। हमें तो यह अच्छा लगता है कि जितना-जितना हम पर पदार्थों पर अपना हक जमायेंगे, उतना-उतना हमें उन पर-पदार्थों से सुख मिलेगा।

जितना-जितना स्वाधीन होगा उतना-उतना सुख होगा।

मालिक और नौकर :

एक साधु के साथ में एक शिष्य चला जा रहा था रास्ते पर। बातचीत चलती जा रही थी कौन, कितना, किसका मालिक होता है तो सामने एक गायों का झुण्ड दिखाई दिया। शिष्य ने कहा- देखो साधु महाराज यह कितनी सारी गायों का एक मालिक चला जा रहा है और यह कितनी सारी गायों को हाँकता चला जा रहा है। इन गायों का यह एक मालिक है। उस जमाने की बात है जब गाय को धन कहा जाता था, जिसके पास जितनी ज्यादा गाय हो वह उतना बड़ा आदमी कहा जाता था। गुरु ने कहा- तुम सही नहीं समझ पाये, यह इन गायों का मालिक है या यह इन गायों का नौकर है, यह तुम्हे पता नहीं। तुम्हे लग रहा है कि इन गायों का यह मालिक है लेकिन यह मालिक नहीं है। थोड़ी दूर आगे बढ़े, आगे बढ़ने पर दो गाय एक अलग रास्ते पर चली गयीं। जब वो दो गायें अलग रास्ते पर गयीं, वो आदमी उनके पीछे-पीछे दौड़ा, गायें आगे चल रही हैं, आदमी पीछे दौड़ रहा है। गायों के पीछे आदमी दौड़ रहा है तो गाय मालिक हैं कि आदमी मालिक है? जिसको हम मालिक समझ रहे हैं और जिसको हम अपने अधीन समझ रहे हैं वो अगर हमें चलाने लगे तो समझना कि हम उसके मालिक नहीं हैं वो हमारा मालिक होगा। गायों के पीछे हम दौड़ गये तो अब पीछे चलने वाला मालिक नहीं। मालिक कभी पीछे नहीं चलता है, मालिक कभी पीछे नहीं दौड़ता है, वो सबको अपने पीछे दौड़ाता है। अपने पीछे आये, तो अपन मालिक और अपन उसके पीछे तो अपन उसके नौकर। आज अपने अन्दर यही भेद-विज्ञान करना कि किन-किन चीजों के तुम नौकर हो? आपके पीछे रोटी हो तो आप रोटी के मालिक और रोटी के पीछे आप पड़ो तो आप रोटी के नौकर। मुनि महाराज को रोटी बुलाती है और आप रोटी को बुलाते हो। मुनि महाराज तो रोटी का इन्तजार भी नहीं करते। अगर खड़े हैं और आपने आधे मिनट की भी देर की तो तुरन्त बैठ जायेंगे। उन्हें जरूरत नहीं है, यह स्वाधीनता है। उन्हें उस रोटी का इंतजार नहीं करना है, सामने है, मिला तो ठीक, नहीं तो छोड़ो। यह कोई अकड़ नहीं है। यह वीर भगवान के द्वारा बताया हुआ उत्कृष्ट मार्ग है, जो बताता है कि हम कितनी पराधीनताओं से जुड़े हुए हैं और स्वाधीनता से हम कितने वञ्चित हैं।

जितना आप, पर को जोड़ते चले जाओगे, उतना परेशान होते चले जाओगे। उतना ही आप दुखी होते चले जाओगे और जितना आप पर से हटोगे, उतनी आप में स्वाधीनता आती चली जायेगी। पराश्रित नहीं होने का नाम ही सुख है। स्वतंत्र होने का नाम ही सुख है। तुम्हारे मन के अन्दर अगर विकार भरा है तो तुम कमरे के अन्दर बैठे-बैठे भी पराश्रित रहोगे, पराधीन रहोगे। सामने कोई गुस्सा करने वाली चीज नहीं होने पर हमें गुस्सा नहीं आता। क्या कभी आपको अकेले बैठे-बैठे गुस्सा नहीं आता? आप देखना, कभी अगर आप अकेले बैठे हो तो भी आपको गुस्सा आ सकता है, आपके अन्दर भूख लगने का विकार जाग सकता है, आपके अन्दर वासना उत्पन्न हो

सकती है सब कुछ उत्पन्न हो जायेगा। जब तक भीतर से विकार नहीं जीतोगे, जब तक क्रोध को भीतर से कन्ट्रोल नहीं करोगे तो स्वतंत्र होने पर भी कोई फर्क नहीं पड़ता। जब कोई व्यक्ति जिससे आपको ईर्ष्या है और वो आपके सामने नहीं है और आपको केवल पता लग जाये कि उसकी लॉटरी खुली है या उसने नयी दुकान खोल ली और आप उससे हजार किलोमीटर दूर हैं। बताओ, आपके अन्दर क्या परिणाम आयेगा? दूर होने से आप ईर्ष्या से नहीं बचेंगे। अगर आपके अन्दर उसके प्रति ईर्ष्या का भाव है तो हजार किलोमीटर दूर होकर भी उसके प्रति ईर्ष्या से भर जाओगे कि उसका भला कैसे हो गया। यह जो मन के अन्दर आकुलता भरी पड़ी है, इन्हें हमें मन से जीतना है। जितना हम अपने मन को जीतेंगे, उतना ही हम सुखी होंगे।

मन की सबलता :

इसलिए आचार्य कहते हैं 'दमी बनो' उद्यम करो। अपनी आत्मा के अन्दर उत्पन्न हुए इन विकारों को जीतने का साहस करो और यह विकार जब जीतने लग जाओगे तो फिर देखो कैसा जीवन का आनन्द आता है। कुछ हो, बाहर हो या ना हो, बस मेरा मन दुर्बल ना हो। दुर्बल मन का मतलब ही है कि मन के अन्दर बल रहा ही नहीं। मन यदि सबल है तो बाहर कुछ भी हो, उसे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। उसके पास दुःख कभी फटक नहीं सकता। वह बाहर से कैसा भी दिखाई दे, अन्दर से कभी दुखी हो नहीं सकता। आप विकार करके सूखते चले जाते हो और मुनि महाराज तपस्या करके शरीर को सूखाते हैं। हमारी परिणति और इनकी परिणति में तो बहुत अंतर है, जमीन आसमान का अन्तर है। आचार्य कहते हैं जैसे-जैसे आप अपने विकारों को सम्भालते चले जाओगे, बाहर भले ही कैसे रहो, भीतर से मन अच्छा होगा, इसलिए ''कुछ हो या ना हो मेरा मन दुर्बल ना हो'', मन को मजबूत बनाओ। कैसे बनेगा? ''प्रेम भाव से, क्षमा भाव से, समतामय मेरा स्वभाव हो'' स्वभाव को बदलो, जब आदमी कहने लग जाता है कि मेरा स्वभाव ही ऐसा बन गया है तो इसका मतलब है उसने अपने अन्दर से दम तोड़ दिया है। अगर आपने ऐसा कह दिया- महाराज! मैं तो कभी इस चीज को छोड़ ही नहीं पाऊँगा तो इसका मतलब है वो चीज आपके स्वभाव में बस गयी। आप भीतर से मर गये हैं। आपका दम निकल गया है। इतनी तो हिम्मत रखो। महाराज! सम्भव है, हम इस चीज को छोड़ने का प्रयास करेंगे। हम इस चीज पर अपनी जय प्राप्त करेगें इतना भी अगर आप कहेंगे तो इसका मतलब है कि अभी भी आपकी साँसें भीतर से चल रही हैं, भीतर से जिन्दा हैं।

मन की निर्मलता :

आपके स्वभाव को 'क्षमाभाव', 'प्रेमभाव' से बदलो, 'समता भाव' से बदलो। ये ऐसी भावनाएँ हैं जिनसे हम अगर अपने मन को भरेंगे तो हमारे मन के अन्दर अपने आप ऐसी शक्ति मिलेगी, सुख मिलेगा कि हम इन बाहरी बातों में जितने ज्यादा दुखी होते हैं, उतना भीतर से हम

सुखी होने लगेंगे। यह हमें अध्यात्म सिखाता है।

''प्रेमभाव से, क्षमाभाव से समतामय मेरा स्वभाव हो
गुणीजनों के दर्शन से मन मंगल-मंगल हो
कुछ हो या ना हो मेरे मन में घृणा ना हो
कुछ हो या ना हो मेरा मन दुर्बल ना हो,
जो भी मिला है मुझको जग में
निर्मल-निर्मल लगा है मन मे''

जो भी मिला है, जैसा भी मिला है, यही हमारे मन को निर्मल करने वाला है। कुछ भी हो ऐसा विचार आयेगा तो ही मन निर्मल होगा। जो मिला है उससे संतुष्ट होना।

''काम रहित जो, क्रोध रहित जो
ऐसे गुरु की भक्ति नित हो
कुछ हो या ना हो मन गुरु निन्दक ना हो
कुछ हो या ना हो मेरा मन दुर्बल ना हो।
मोक्ष मिलेगा मिलता रहेगा, धर्म पलेगा फलता रहेगा''

कुछ भी चिन्ता मत करो।, मोक्ष जाने की भी चिन्ता मत करो, बस धर्म करते रहो। अच्छे काम करते रहो, बुरी बातों से बचते रहो।

अंहकार तज कुटिल भाव तज, मन तुम सरल रहो।
कुछ हो या ना हो मेरे मन में छल ना हो।
कुछ हो या ना हो मेरा मन दुर्बल ना हो।

पर के साथ राग करने का फल

46

अविद्वान् पुद्गलद्रव्यं योऽभिनन्दति तस्य तत्।
न जातु जन्तोः सामीप्यं चतुर्गतिषु मुञ्चति॥

अन्वयार्थ–(यः) जो **(अविद्वान्)** मूर्ख/बहिरात्मा **(पुद्गलद्रव्यम्)** पुद्गल द्रव्य का **(अभिनन्दति)** आत्मीय भाव से समादर करता है **(तस्य जन्तोः)** उस बहिरात्म प्राणी का **(तत्)** वह [शरीर आदि पुद्गल द्रव्य] **(जातु)** कभी भी **(चतुःगतिषु)** चारों गतियों में **(सामीप्यं न मुञ्चति)** साथ नहीं छोड़ता है।

- **विद्वान् का अर्थ**
- **अविद्वान् का स्वरूप**
- **पाप और पुण्य कर्म से सुख-दुख**
- **अपनी करनी का फल**
- **सहज भाव से जीना**
- **भगवान क्या है ?**

अविद्वान् अर्थात् जो विद्वान् नहीं है, विद्वान् का मतलब पण्डित आदि नहीं, विद् का मतलब ज्ञान, जो ज्ञान से सहित नहीं, उसको यहाँ अविद्वान् कहा गया है। पुद्गलद्रव्य को, 'यो' का मतलब जो, 'अभिनन्दति'- अभिनन्दन करता है, जो अविद्वान् होता हुआ पुद्गल द्रव्य का अभिनय करता है अर्थात् पुद्गल द्रव्य का आदर करता है, पुद्गल द्रव्य की श्रद्धा करता है, 'तस्य'-उस जीव के लिए, 'तत्'-वह पुद्गलद्रव्य, 'नाजातु'- कभी भी नहीं, 'जन्तोः'- उस जीव के लिये उस जन्तु के लिए, 'सामीप्यं'- समीपता को, 'चतुर्गतिषु'-चारों ही गतियों में, 'मुञ्चति'-छोड़ना। वह पुद्गल उस जन्तु को, उस जीव को, चारों ही गतियों में कभी नहीं छोड़ता है अर्थात् जो जीव उस पुद्गल द्रव्य का श्रद्धान करता है, आत्म रूप मानता है और उसी का आदर करता है उसके लिये पुनः वह पुद्गल द्रव्य उसकी समीपता को नहीं छोड़ता है।

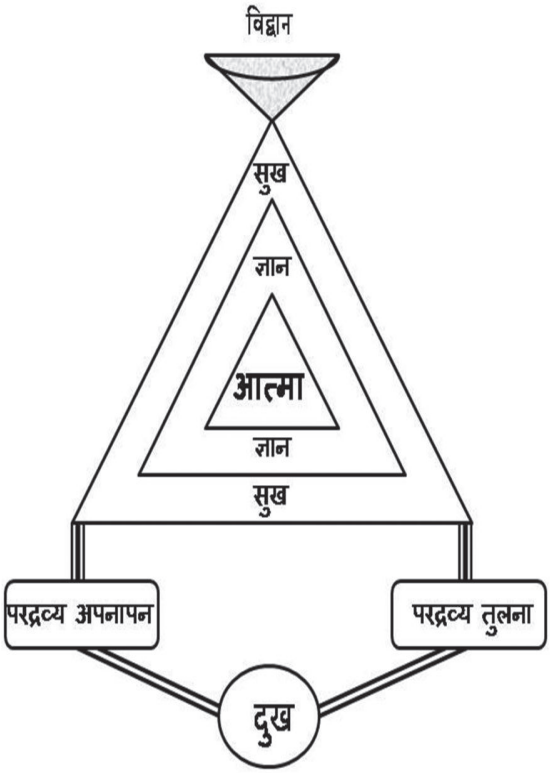

विद्वान् का अर्थ :

पुद्गल द्रव्य जिसकी समीपता को जीव द्रव्य ने प्राप्त किया, जिसकी समीपता को जीव द्रव्य ने अपने पास में उपलब्ध किया, उस जीव द्रव्य को वह भी नहीं छोड़ता है। जीव ने पुद्गल का आदर किया, जीव ने पुद्गल की श्रद्धा की, जीव ने पुद्गल को अपनाया तो बाद में पुद्गल भी जीव के पास अपने आप पहुँच जाता है, उस जीव को चारों गतियों में कहीं भी चला जाये फिर छोड़ेगा नहीं, मतलब यह भूल जीव की हुई कि उसने पुद्गल को अपनाया, पुद्गल का आदर किया, उसने पुद्गल का इस प्रकार से आदर किया कि उसे आत्म-रूप मान लिया, वह स्वयं आत्मा था। ऊपर बताया गया था 'आत्मैवआत्मा' आत्मा ही आत्मा है। पर, पर है। आत्मा के अलावा जो कुछ है वह पर है तो आत्मा ही आत्मा है, आत्मा था। आत्मा ने आत्मा को छोड़कर

जीव भूलवश पुद्गल को अपनाता है, उसका आदर करता है और उसे आत्म मानता है।

'पर' को अपना मान लिया, 'पर' पुद्गल का अभिनन्दन किया कि वह आत्म-रूप भूलकर पर-रूप में परिणमन कर गया। यह पुद्गल शरीर है और पुद्गल रूप ही अपने को मानने लगा, भूल गया कि मैं आत्मा हूँ। आत्मरूप भूल गया, जो कुछ भी इस शरीर से उपलब्धियाँ करता गया, उस रूप ही अपने को मानने लगा। उस मान्यता के कारण से अपने जो पुद्गल रूप का अर्जन किया, कालान्तर में वह पुद्गल द्रव्य उसे नहीं छोड़ता। हर गति में वह अपने आप उसके पास पहुँच जाता है। पहुँचने का मतलब, वह जो पुद्गल कर्म उसने अर्जित किया है, वही पुद्गल कर्म हर गति में, शरीर आदि पर द्रव्यों का जोड़ उसमें करा देता है तो यह जीव की यह जो मान्यता हुई, जीव का जो परिणमन हुआ, इस परिणमन को यहाँ यह कहा गया है कि यह जीव ने अविद्वान् होकर किया, विद्वान् होकर नहीं किया, विद्वान् का मतलब वह नहीं जिसे शास्त्रों का बहुत अधिक ज्ञान हो।

विद् का मतलब ज्ञान और ज्ञान शास्त्रों में नहीं, जो अपनी आत्मा में है उसे विद्वान् कहा जाता है। उसके लिये वान प्रत्यय लगाया जाता है तो इसलिए कहा जाता विद्वान् जैसे आप बोलते हैं ज्ञानवान, रूपवान ऐसे ही आत्मा विद्वान् है। कोई विद्वान् बनने की जरूरत नहीं है, आत्मा स्वयं ही विद्वान् है, ज्ञानवान है उसी को यहाँ पर कहा गया, यह आत्मा विद्वान् है लेकिन आत्मा विद्वान् कब रहेगा?

जब वह अपने ही ज्ञान में रहे तो वह विद्वान् है और अपने ज्ञान को छोड़कर पर द्रव्य को अपना माने तो अविद्वान्। जब उसने पर तत्त्व में आत्म तत्त्व की श्रद्धा कर ली तो कहते हैं अब तू विद्वान् नहीं रहा।

आचार्य अगर चाहते तो कह सकते थे तू मूर्ख हो गया, तू अज्ञानी हो गया ऐसे कुछ नहीं कहा। अविद्वान् हो गया। तू विद्वान् था, उस विद् से हट गया तो अविद्वान् हो गया। अब तू ज्ञानवान नहीं रहा, किसी के पास आँख थी, आँख खराब हो गई तो हमने कहा उसके पास आँख नहीं बची, यह आँख वाला नहीं है तो उसको इतना बुरा नहीं लगेगा और अगर उससे हम कहें कि यह अंधा है तो उसको बुरा लगेगा।

अविद्वान् का स्वरूप :

आचार्य यहाँ आपको कुछ नहीं कह रहे हैं बस यह कह रहे हैं आप विद्वान् नहीं रहे। आपने अपने ज्ञान को छोड़ दिया और जब आपने अपने उस ज्ञान में उस उपयोग को छोड़ दिया तो आप अविद्वान् बन गये। जो अविद्वान् बन जायेगा मतलब वह आत्मा पुद्गल में श्रद्धा करेगा कि मैं हूँ, यह पुद्गल है, जो पुद्गल है वह मैं हूँ। विद्वान् वह कहलाएगा जो पुद्गल को पुद्गल रूप में जाने और आत्मा को आत्मा के रूप में जाने। पर को पर यानि पुद्गल और स्व को स्व यानि आत्मा के रूप में जाने तो वह ज्ञानी है। उसके लिये ऊपर कहा था जब तुम यह भाव करोगे आत्मा ही आत्मा है, पर ही पर है तो आपके अन्दर सुख उत्पन्न होने लग जाएगा क्योंकि सुख जो होता है, वह इसी ज्ञान से होता

विद्वान् वह है जो पुद्गल को पुद्गल रूप में जाने और आत्मा को आत्मा के रूप में।

है, जो ज्ञान हमारे अन्दर मूल में भूल के रूप में पड़ा था, उसी ज्ञान में भूल का सुधार करना है। कहीं कुछ नहीं करना है सुख का कारण भी वही है, दुख का कारण भी वही है। ज्ञान में भूल है तो दुख है और ज्ञान से भूल निकल गई तो हमेशा सुख है। एक बार उस ज्ञान के अन्दर की भूल को निकालना और वह ज्ञान की भूल है कि ज्ञान ने अपने ज्ञान को भूला दिया कि मैं ज्ञानवान हूँ और वह दूसरे में ज्ञान ढूँढ़ रहा है, दूसरे में सुख ढूँढ़ रहा है। आदमी जिंदगी में दो ही चीजें ढूँढ़ता है, एक ज्ञान और सुख, बचपन से लेकर जब वह युवा बन जाता है तो ज्ञान ज्ञान ढूँढ़ता है। स्कूल में, कॉलेजों में जब शादी नहीं हो जाती तब तक। फिर जब विवाह हो जाता है तो फिर सुख ढूँढना शुरू कर देता है, फिर उसके बाद सुख के लिये विवाह करता है, घर बनाता, व्यापार करता है। सब प्रकार की चीजें फिर से शुरू करता है तो आधा जीवन उसका ढूँढ़ने में निकल जाता है और फिर आधा रहा, फिर जीवन-सुख ढूँढ़ने में निकल जाता है और दोनों में से उसको कहीं कुछ मिलता ही नहीं, उसको पता नहीं।

आचार्य कहते हैं- तेरे ज्ञान में ही तेरा सुख है, तेरे ज्ञान में ही तेरे अन्दर ज्ञान है, तू उसे बाहर मत ढूँढ़। ज्ञान और सुख में परिणमन एक साथ होता है। अगर आपके ज्ञान में मोह के कारण से विपरीत परिणमन चलेगा तो आपका ज्ञान दुख रूप है और अगर आपके ज्ञान में उस मोह की कमी के कारण से समीचीन परिणमन चलेगा तो आपका ज्ञान सुख रूप है। ज्ञान ही हमें वस्तुतः संवेदन कराने वाला है। ज्ञान ही हमारे अन्दर अनुभव कराने वाला है। स्वर्ग में भी चला जाये तो दुखी ही रहेगा क्योंकि ज्ञान में धूल पड़ी है पर द्रव्य को अपना मानने की। यही ज्ञान की भूल दुखी करती है, तब तक जब तक की हम यह नहीं जानते कि हम न छोटे हैं न बड़े हैं तो जो है सो है, देव गति में पहुँचकर भी वह जीव इसी कारण से दुखी होता है, जब वह दूसरे देवों की विभूति को देखता है, दूसरे देवों की ऋद्धियों को देखता है तो वहाँ देखकर भी दुखी होता है। इस देव के पास इतना सुन्दर आभूषण, इस देव के पास इतनी हजार रानियाँ, इस देव के पास इतना अवधि ज्ञान से जानने की क्षमता तो उसके अन्दर वहाँ पर भी क्लेश उत्पन्न हो जाता है, जबकि देव गति में क्लेश के कोई साधन नहीं है। कभी भी शरीर में क्लेश नहीं होता, बाहर का वातावरण भी वातानुकूलित होता है। पानी ज्यादा गिरना कुछ नहीं होता फिर भी मन से इस राग परिणाम के कारण से उसके अन्दर वहाँ पर भी क्लेश उत्पन्न हो जाता है। सब प्रकार के सुख होते हैं, सुख होते हुये भी भीतर से वह दुखी होता है यह भूल कहाँ है? यह भूल भीतर के ज्ञान में है, अपने पुण्य के उदय से उसको वहाँ भी विक्रिया ऋद्धि मिलती है, सुन्दर वैक्रेयिक शरीर मिलता है, फिर भी वह सब कुछ भूल कर दुखी होता है वहाँ।

अपने आप में श्रेष्ठता का भाव :

इसी कारण उसके देव गति में भी दुख हो जाता है तो आचार्य कहते हैं- जब तक तेरे ज्ञान में भूल है तब तक तू सुखी नहीं हो सकता, चाहे देव गति में चला जा, यह आत्मा प्रयत्न करती

है कि नरक गति में न जाना पड़े, तिर्यंच गति में न जाना पड़े या तो अच्छा देव बन जाऊँ या तो अच्छा मनुष्य बन जाऊँ, इसलिए थोड़ा सा धर्म कर्म करता रहता है, पाठ-भक्ति भगवान की इसलिए करता रहता है कि कहीं तिर्यंच आदि में न चला जाऊँ। इस डर के कारण वह थोड़ा बहुत धर्म-कर्म करता है, वह भी थोड़ा सा सुख तो दे देगा पर वहाँ जाकर वह दुखी हो जाएगा। उस दुख का कारण अपने अन्दर ज्ञान में यह भूल पड़ी रहना कि हम दूसरों से अपनी तुलना करते हैं, यह सबसे बड़ी भूल है। उस तुलना को करना छोड़ो, किसी से न अपने को बड़ा मानो, न छोटा मानो। यह जेठ जी हैं, यह देवर हैं, यह छोटे हैं, बड़े हैं, यह सिर्फ कहने के लिये व्यवहार चलाने के लिये हैं। भीतर आँख बंद करके बैठो तो ना हम छोटे-बड़े हैं, अपने आपको श्रेष्ठ मानो, अपने आप में महसूस करो कि मैं हमेशा श्रेष्ठ हूँ, आपका मन अपने आप में खुश हो जाएगा, चाहे कितना भी व्यापार में घाटा चल रहा हो, मंद पड़ा रहा हो लेकिन आप जैसे ही अपने मन में सोचोगे, क्या लगा आपका?

न पैसा लगा, न ताकत लगी और मन प्रसन्न हो गया जैसे ही मन के अन्दर यह ज्ञान आया, इसका मतलब है मन ने दूसरे से अपनी तुलना नहीं की और जब मन यह तुलना करना छोड़ देगा तो मन इस श्रेष्ठपन के भाव में आ जाएगा।

आचार्य कहते हैं कि हमेशा अपने को अपना मानो, पर को पर मानो। मैं उसकी अपेक्षा से छोटा-बड़ा हो सकता हूँ या मैं उसकी अपेक्षा से छोटा-बड़ा हो सकता हूँ लेकिन वास्तव में मैं न छोटा हूँ, न बड़ा हूँ, मैं तो अपने आप में श्रेष्ठ हूँ, यह भाव जब आ जाता है तो ज्ञान, ज्ञान का आदर करने लगेगा। पर वस्तु के प्रति उसकी कोई श्रद्धा नहीं रहेगी वह पर वस्तु में अपनेपन को नहीं मानेगा, वह पर वस्तु को देखकर उसमें पर वस्तु का श्रद्धान नहीं करेगा। यह इस श्लोक का तात्पर्य है।

ज्ञान में भूल :

पर पदार्थों में अपने अन्दर राग करने से यह भूल उत्पन्न होती है और उस भूल के कारण से हमारी आत्मा में दुख उत्पन्न होता है। अपनी आत्मा को सुखी यहाँ पर भी आप बना सकोगे और जहाँ जाओगे वहाँ भी बना सकोगे, यहाँ पर संस्कार नहीं लिया तो वह संस्कार आपको देव गति में भी मिल जाये, जरूरी नहीं है और यहाँ पर आपको संस्कार मिल गया तो वह संस्कार आपको देव गति में भी काम आएगा, आप उस देव गति में किसी देव की विभूति को देखेंगे तो आपके अन्दर ईर्ष्या उत्पन्न नहीं होगी, फिर आपका धर्म के प्रति और श्रद्धान उत्पन्न होगा। अज्ञान के कारण से ईर्ष्या उत्पन्न होती है और उसी परिणति से ज्ञान आ जाये तो धर्म के प्रति श्रद्धा भी उत्पन्न हो जाती है।

इसको इतना वैभव मिला, इसको इतना अवधिज्ञान मिला, किसलिये मिला? क्योंकि इसने वास्तव में सम्यग्दर्शन के साथ में समीचिन धर्म किया था अगर वह वहाँ पर ऐसा सोच लेता तो

हमेशा अपने को अपना मानो, पर को पर मानो। अपनी तुलना दूसरे से कभी न करें।

उसके अन्दर धर्म के प्रति श्रद्धा करने का भाव आ जाएगा तो वहाँ रहकर भी वह धर्म करने की ओर उन्मुख हो जाएगा। वह वहाँ पर भी हो सकता है और यहाँ पर भी हो सकता है। किसी को देखकर के आपके अन्दर ईर्ष्या भी आ सकती है तो किसी को देखकर आपके अन्दर धर्म का भाव भी आ सकता है। इसका पुण्य है, इसलिए इसे हमसे अधिक मिल रहा है इसका अभी पाप कर्म का उदय है इसलिए यह अभी इन अभावों में जी रहा है। आप अपने मन में यह पाप और पुण्य के भाव लाएंगे तो आपके मन में यह ईर्ष्या और दीनता के भाव छूट जाएंगे। सही तरीके से अपने बारे में सोचेंगे और सही तरीके से अपने धर्म के बारे में सोचेंगे। अगर हमारे पास कोई चीज की कमी है। मानलो हमारे शरीर में कोई रोग नहीं है, दूसरों के शरीर में रोग है तो आपको दूसरों से तुलना करके खुश नहीं होना, यह सोचना कि हमने कोई पुण्य किया होगा, कोई धर्म किया होगा। इसलिए हमें यह स्वस्थ शरीर मिला है। अब हम इस स्वस्थता को बनाये रखेंगे तो उसी धर्म का आगे भी पालन करते रहेंगे और अगर आपने मद में आकर, अहंकार में आकर, शरीर के उस सुख को अधिकता से प्राप्त करने के लिये मन चाहा करना शुरू किया तो वह शरीर बिगड़ने लगेगा जो आपके रोगों का कारण भी बन जाएगा। पाप कर्म का उदय भी उस शरीर में आ सकता है, हर चीज के साथ जब हम कर्म का उदय जोड़कर देखेंगे तो हमें समझ में आएगा कि वास्तव में पाप और पुण्य के कारण से ही यह सारा संसार अपने-अपने सुख और दुख को भोगता है। हम किसी के लिये न सुख करने वाले हैं और न दुख करने वाले हैं। हम तो अपने ही परिणामों से अपना सुख और दुख भोगने वाले हैं।

''पाप पुण्य सो जीव जगत में नित सुख दुख भरता,
अपनी करनी आप करे, सिर औरन के धरता॥''

पाप और पुण्य कर्म से सुख-दुख :

यह एक चला आ रहा है अज्ञान के माध्यम से कृत्य और यह कृत्य छूटता नहीं है। अपना पाप अपने को दुख दे रहा है, अपना पुण्य अपने को सुख दे रहा है, वह दुःख और सुख जिस पर अब हम बात करने लगे, शरीरगत सुख और दुःख है, मानसिक सुख और दुःख है। एक बात और थी ज्ञानगत सुख और दुःख, ज्ञान की बात भूल के रूप में वह भीतर की भूल जब सुधरती है तो अपने आप पुण्य कर्म आएगा, अपने आप बाहर से सुख मिलेगा और अगर वह भीतर की भूल अगर नहीं सुधरती है तो वह दुख आएगा। भीतर से एक बार अगर भूल सुधर जाये तो बाहर के पाप पुण्य में अपना मन नहीं उलझेगा और वह भीतर की भूल नहीं सुधरती तो पाप पुण्य में मन उलझ जाता है। जब भी आप किसी दूसरे को देखो तो पाप-पुण्य से देखो, इसने पुण्य किया होगा इसलिए इसको सुख है, इसने पाप किया होगा इसलिए इसको दुख है। अपना कर्म खुद कर रहा है, अपने कर्म खुद अर्जित कर रहा है, जब परेशानी में होता है तो दूसरों के सिर पर अपनी परेशानी धर देता है, तब से दुखी होता है। जब से हमारा विवाह हुआ है महाराज तब से दुखी हैं।

अपना पाप अपने को दुःख दे रहा है, अपना पुण्य अपने को सुख दे रहा है।

पाप और पुण्य अपना होता है लेकिन उसको हम दूसरों पर धरने के आदी बने रहते हैं। इसी कारण से हम दूसरे के साथ आत्मबुद्धि रखकर अपने अन्दर पुरुषार्थ करते हैं तो आचार्य कहते हैं– यह तुम्हारी भूल जब तक भीतर से नहीं मिटेगी तब तक बाहर के पाप–पुण्य थोड़ा बहुत तुम कमा भी लोगे, थोड़ा बहुत पाप पुण्य का बैलेंस भी बन जाएगा तो उससे कोई ज्यादा सुख नहीं मिलेगा। देवताओं के पास सब तरह का पुण्य है लेकिन फिर भी वहाँ जो मिथ्यादृष्टि देव होते हैं जिनके अन्दर यह भूल पड़ी रहती है, वो वहाँ पर भी दुखी रहते हैं। इसी भूल के कारण से कि उन्हें यह समझ नहीं आता कि मैं कौन हूँ, मेरा आत्मा के अलावा कोई पर द्रव्य नहीं है। वह पर द्रव्य को अपना आत्मा मानकर वहाँ पर भी वह दुखी हो लेते हैं। दरिद्रता या अमीरी से सुख और दुख के कारण नहीं है, भीतर के ज्ञान का परिणमन सुख और दुख का कारण है। ज्ञान में किसी भी प्रकार की भूल नहीं है। वो ज्ञान किसी भी प्रकार बाहरी वस्तुओं के सद्भाव में रहे या अभाव में, किसी भी प्रकार से दुखी नहीं हो सकता।

इस अध्यात्म के माध्यम से यह समझ में आता है कि जो हमने पर द्रव्य को अपना मानने की भूल की है उसी के कारण हमें अन्य–अन्य गतियों में जाकर उन पर द्रव्यों को भोगने के लिये मजबूर होना पड़ता है और हम हमेशा पर द्रव्य पर ही अपनी सब जिम्मेंदारी रख देते हैं। हम आज सुखी हैं तो इसके कारण से, हम आज दुःखी हैं तो इसके कारण से। किसी के कारण से कोई सुखी दुखी होता नहीं, अपने कर्म को भूल कर हम दूसरों के कारण से सुखी और दुखी कैसे हो सकते हैं? आपको कोई दुःख दे भी रहा हो और आपका श्रद्धान अपने कर्म में हो तो वह दुख देने की जो उसके अन्दर क्षमता है वह क्षमता भी कम हो जाएगी। मेरे कर्म का उदय है, इसलिए मुझे दुःख की अनुभूति हो रही है उसका उसमें कोई लेना–देना नहीं है। समझ लो जो आपको 100 डिग्री का दुःख मिलना था आपने छोड़ दिया, क्या बचा?

10 डिग्री का दुख वो अपने भावगत है। उसे आप सम्भाल सकते हो लेकिन जो दूसरों के आश्रित है, उसे आप नहीं सम्भाल सकते। कोई आपके सामने आ गया लाठी लेकर और वो आपको दुःख देने लगा तो आपके मन में परिणाम आ भी जाये कि नहीं–नहीं, अगर मेरे पाप कर्म का उदय होगा तो ही यह मुझे डण्डा मार पायेगा। अगर मेरे पुण्य कर्म का उदय होगा तो मुझे डंडा नहीं मार पायेगा, आप करके तो देखो। एक बार ऐसा भाव आये, आप देखोगे कि वह डंडा मारते–मारते भी बगल में लग जाएगा, आपको नहीं लगेगा, डंडा लगाते लगाते टूट जाएगा, आपको नहीं लगेगा। अगर आपके भावों से आपके अन्दर पुण्य कर्म आया है तो वह आपको छू नहीं पाएगा।

अपनी करनी का फल :

श्रद्धान करने से, ज्ञान के अन्दर की भूल दूर करने से यह सब होता है और जब इस प्रकार होने लग जाता है फिर देखो संसार में कैसा आनन्द आता है, लोग इस बात से परेशान रहते हैं कि

घर है, घर में कई बार विवाह होने के बाद अनेक तरह की परेशानियाँ आ जाती हैं लड़कियों के लिये घर की परेशानियाँ आ जाती है, कैसी ननद मिले, कैसी जेठानी मिले, कैसी सास मिले और जो बेटा होता है उसके लिये परेशानी शुरू हो जाती है। एक तरफ माँ, एक तरफ बहन, एक तरफ पत्नी है। जैसे ही पत्नी आई, अब अगर बेटे का झुकाव पत्नी की ओर हो गया तो माँ परेशान करने लगेगी। अब तू मेरा ध्यान रखता ही नहीं और वह बहन अपने भाई को परेशान करेगी। उस बहू से या तो ननद कुछ कहेगी या सास कुछ कहेगी वो परेशानी बढ़ने लग जाती है। बेटा घर में आता है, वह सोचने लग जाता है किसको सम्भालूँ, पत्नी को सम्भालूँ, माँ को सम्भालूँ, या बहन को? सबकी अपनी-अपनी परेशानियाँ हैं और उन परेशानियों का कारण कुछ नहीं ''अपनी करनी आप करे, सिर औरन के धरता''।

इतना अपने अन्दर ज्ञान आ जाये कि जो कुछ भी है, वह सब अपने ही माध्यम से हो रहा है और अपने को केवल हर परिस्थिति को समझना है। किसी भी परिस्थिति में उलझना नहीं है अगर आप परिस्थिति को केवल समझने लग जाओगे तो आप किसी भी परिस्थिति में अपने आपको परेशान महसूस नहीं करोगे। अगर आप परिस्थिति को नहीं समझे तो आपके सामने परेशानी ही परेशानी है। आप कहोगे कि हम किसकी सुनें, किसकी मानें क्या निर्णय लें? क्या करें, सबके बीच में सब तरह की परेशानी है। उस परेशानी का एक मात्र समाधान है कि आप अपने ज्ञान में आओ, अपने स्वभाव की ओर देखना शुरू करो। निश्चिन्त होकर घर में जाओ और निश्चिन्त होकर बैठ जाओ। माँ ने कहा तो उसकी भी सुनली, पत्नी ने कहा तो उसकी भी सुनली, बहन ने कहा तो उसकी भी सुन ली और सुनकर बिल्कुल निश्चिन्त, कोई चिंता नहीं करना, कुछ नहीं होने वाला। जब तक अपना कर्म भीतर से नहीं बिगड़ेगा, कुछ नहीं बिगड़ेगा। आप बिल्कुल निश्चिन्त होकर अन्तरंग में यह देखने का प्रयास करो कि मैं किस कर्म का फल भोग रहा हूँ, मेरे अन्दर कैसे कर्म का उदय आ रहा है और आपकी दृष्टि बस आपके कर्म पर जाएगी आपके लिये स्वयं में अनुभव होने लगेगा कि मेरे कर्म में किस प्रकार का परिणाम मुझे अनुभव में आ रहा है और कैसा मेरा ज्ञान उस कर्म के माध्यम से चल रहा है, आप जैसे ही शांत होंगे, अपने कर्म के अनुभव के रूप में अपने ज्ञान को देखोगे, आपके सामने सही तरीके का एक समाधान नजर में आ जाएगा। वह समाधान कहीं और नहीं मिलेगा? कितने ही आप परामर्श दाता को बुला लो, कितने ही आप परिवार परामर्श केन्द्र पर चले जाओ? कोई समाधान नहीं मिलेगा, वो तभी मिलेगा जब आप थोड़ा शांत होकर बैठोगे, हर चीज को नजर अंदाज कर दोगे तो आपके अन्दर अपने आप ज्ञान ऐसे परिणाम उत्पन्न करेगा, विचार उत्पन्न करेगा, जिसके माध्यम से आपको यह लगेगा कि हमें यह करना है और यह काम नहीं करना है।

जब आप थोड़ा सा शांत होकर के इस तरह की प्रक्रिया को अपना कर बैठेंगे तभी आपके मन में यह विचार आएगा कि हमें करने योग्य क्या है और नहीं करने योग्य क्या है? अगर आप

निश्चिंत होकर अंतरंग में देखने का प्रयास करने से हर समस्या का समाधान मिल जाता है।

मोह में रहे, राग में रहे तो या तो आप पत्नी के मोह में उसका पक्ष लोगे तो माँ से संबंध बिगड़ जाएगा और अगर माँ के मोह में माँ का पक्ष लोगे तो पत्नी से संबंध बिगड़ जाएगा। दोनों के बीच में रहते हुये, सबसे संबंध बनाये रखते हुये भी शांति से अपना जीवन निकालने की प्रक्रिया इस अध्यात्म से ही समझ आएगी। महसूस करते रहना है–'आत्मेव आत्मा' आत्मा ही आत्मा है। 'परः परस्ततो दुःखं।' (अन्य तो अन्य है उससे दुःख ही होता है।)

सहज भाव से जीना :

जहाँ 'पर' आया वहीं पर दुःख आया। जितनी मात्रा में पर से attach हुआ दुःख है और जितनी मात्रा में पर से attach नहीं, उतना ही दुःख नहीं है इसलिए उस पर के साथ अपना जुड़ाव जितना ज्ञान के साथ होगा उतना ही आपको दुख होगा और उस जुड़ाव में आप केवल यह समझें कि मैं तो किसी के लिये कुछ करने वाला नहीं हूँ, सब अपने-अपने पाप और अपने-अपने पुण्य का फल भोगने वाले हैं, आप सबके बीच में सहज भाव से रह जाओगे। आपकी वजह से किसी को परेशानी नहीं होगी और आप किसी को परेशान नहीं करोगे। यह सहज भाव से रहना कहलाता है। अपने पुण्य और पाप के फल पर विश्वास करके रहना और किसी को कभी भी यह मत कहना कि तेरे कारण से ऐसा हो गया। अच्छी बात तो फिर भी कह देना, बुरी बात भूल कर भी मत कहना, बुरी हुई तो मेरे कारण से हुई, मेरी भूल से हो गई, अच्छा हो गया, चल तेरे कारण से हो गया। इस व्यवहारिकता में हर व्यक्ति चाहता है कि मुझे सामने वाला आदर दे, मुझे सामने वाला सम्मान दे और जब आप किसी भी चीज को जो अच्छी हुई है दूसरों के ऊपर डाल दोगे, वह खुश हो जाएगा। आपके अन्दर उस कर्त्तव्य का भाव नहीं आया। आप भी उस कर्म बंध से बच गये, सामने वाला भी खुश हो गया। यह भी ध्यान रखो व्यवहारिकता के लिये, अच्छा हुआ तो आपके कारण से और बुरा हुआ तो मेरे कर्मों के कारण से, यही व्यवहारिकता अपने काम में आती है और इसी व्यवहारिकता से अपना जीवन चलता है।

आप भगवान के पास भी जाते हो तो यही बोलते हो कि भगवन्! आज मैं बहुत सुखी हूँ। आपकी कृपा से मेरे पास सबकुछ है, सब प्रकार के मुझे सुख प्राप्त हैं और कदाचित् आप दुखी हो गये और भगवान के पास गये तो क्या बोलते हैं? भगवान आपकी कृपा से मैं दुखी हो रहा हूँ, आपकी कृपा से मेरे पास जो कुछ था वह चला जा रहा है। देखो, व्यवहारिकता इसी का नाम है। भीतर का ज्ञान अलग रखना पड़ता है और बाहर की क्रिया अलग रखनी पड़ती है। इसे मिथ्या नहीं बोलते, इसे छल नहीं बोलते, सही व्यवहारिकता कहते हैं। अपने अन्दर का ज्ञान अपने पास रखना पड़ता है कि मेरे पाप और पुण्य के अलावा मुझे कोई कुछ देने वाला नहीं है लेकिन कोई सामने आ जाता है तो अच्छाई उस पर थोपनी पड़ती है और बुराई अपने सर पर लेनी पड़ती है। भगवान के साथ भी हमें यही करना पड़ेगा क्योंकि भगवान भी पर है, भगवान की पर आत्मा है इसलिए

वो पर आत्मा या परमात्मा कहलाते हैं। उनके सामने जाकर भी यह नहीं कहना है कि भगवन् मैं आज जिन अभावों से गुजर रहा हूँ, वह आपके कारण से है। भगवान से तो आप कभी नहीं कहते ऐसा, डर के कारण फिर दूसरे लोगों से क्यूँ? जैसे व्यवहारिकता आप भगवान के साथ रखते हो वैसी व्यवहारिकता आप अपने आस-पड़ोस के लोगों से भी रखें। सुखी हूँ, तो तुम्हारे कारण से, ऐसा नहीं कहें कि दुखी हूँ तो तुम्हारे कारण से। यही कहना पड़ेगा भगवान के सामने भी भक्ति करता है तो यही कहता है- भगवन् आपके कारण से मुझे सब प्रकार के सुख हैं, यह कहोगे तो आपके अन्दर अपने आप सुख का परिणाम उत्पन्न होगा और अगर आप अपने अन्दर इस प्रकार से सुख और दु:ख की परिणति को manage करते रहोगे तो आप कभी भी दूसरों के कारण से कभी दुखी नहीं होंगे। जब भी कभी दुख होगा तो आपको लगेगा- यह केवल मेरा ही कर्म है, मेरे ही कर्म का फल है। इनमें किसी और का कोई हाथ नहीं है, यह श्रद्धान धीरे-धीरे इस तरह से बनता चला जाता है।

भगवान क्या है? :

वो तो हमारे लिये एक आलम्बन है, जो हमारे मन के अन्दर दोष पड़े हैं, जो हमारे मन में मिथ्या बुद्धि आती है उसको सुलझाने के वह माध्यम बनते हैं और हम उस रूप में उनको माध्यम नहीं मानते। हम उन्हें अपने सुख और दुख का माध्यम बना लेते हैं। कभी कोई आदमी कहता है- कि हे भगवन्! आपकी कृपा से मेरी बुद्धि सुलझ जाये। कभी भगवान के पास जाकर आप प्रार्थना करते हो कि हे भगवान! मेरी यह मोह बुद्धि, निर्मोह बुद्धि हो जाये, मेरा यह राग सहित ज्ञान, वीतराग विज्ञान बन जाये जबकि आपको प्रार्थना यही करनी है- ''हे प्रभू आनन्द दाता ज्ञान हमको दीजिए। शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए''। यह प्रार्थना की लाइन है अभी भी याद है, कितनी अच्छी लाइन थी। हे भगवन्! हमें ज्ञान दीजिए। आज आप भगवान के पास जाते हो तो ज्ञान लेने नहीं जाते बस सुख दो भगवान यह चीजें नहीं है, वो चीजें नहीं हैं। आप कभी ज्ञान भगवान से माँगते ही नहीं जबकि सही ज्ञान भगवान से माँगना चाहिए। अगर ज्ञान सही होगा तो सुख अपने आप होगा क्योंकि ज्ञान में ही सुख है और उसकी जगह भी लोग ऐसे कहते हुये भी हमने सुने हैं, ''हे प्रभु आनन्द दाता! नोट हमको दीजिए''!

मस्ती में लोग ऐसे भी बोलते रहते हैं। उपयोग करना भी नहीं जानेगा तो वह नोट आएंगे किस काम? बुद्धि को सम्भालो, सबसे बड़ा अपना धन 'ज्ञानधन' इसी को कहा गया है। जब ज्ञान सही है तो बिल्कुल आप सही हो। आप सभा में बैठोगे सम्यक् कहलाओगे। जब आपका ज्ञान सही काम कर रहा होगा, अगर भीतर से उसका ज्ञान खराब हो गया तो करोड़ रूपये भी उसके कोई काम के नहीं हैं। ज्ञान का सम्मान करो। ज्ञान में जितना-जितना राग बढ़ेगा उतना-उतना ज्ञान बिगड़ता चला जायेगा।

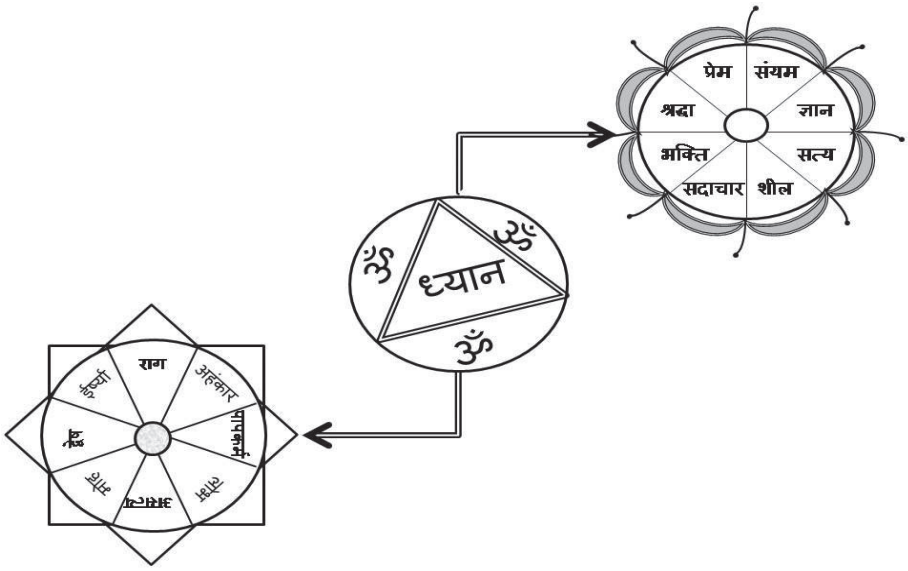

ज्ञान के माध्यम से ध्यान :

जितना राग, द्वेष, मोह, ईर्ष्या इनसे रहित होगा, मन सुलझता चला जायेगा। ज्ञान को सम्भालने के लिए आचार्यों ने यह अध्यात्म के उपदेश दिए हैं। ज्ञान के माध्यम से ही ध्यान होता है और ध्यान में थोड़ा सा आप इस तरीके से अभ्यास करने लग जाओ तो ज्ञान भी बिल्कुल शुद्ध, स्वस्थ होने लग जाता हे। एक काव्य है जो पं. मक्खनलाल जी ने लिखा है–

''काज बिना न करे जिय उद्यम
लाज बिना रण माही न जूझे।
डील बिना न सधे परमारथ
शील बिना सत सो ना रूझे।।
नेम बिना न लहे निहचे पद
प्रेम बिना रस रीति न बूझे।
ध्यान बिना न थमे मन की गति
ज्ञान बिना शिव पन्थ न सूझे।।''

जब तक कोई कार्य नहीं होगा, आप उद्यम नहीं करोगे। आपके ऊपर है, कौनसा कार्य करना है। अपनी आत्मा का कार्य करना कि पर बाह्य कार्य करना। जैसा भी कार्य करोगे वैसा आपका उद्यम होने लगेगा। 'लाज बिना रण माही न जूझे', युद्ध भूमि में जाकर उसे युद्ध करने की जो भीतर से ताकत आती है तो वो एक उसके अन्दर लज्जा भाव रहता है, लौटकर अगर पराजित होकर गया

तो उससे अच्छा तो मरना अच्छा है। इस रण भूमि में लज्जा के जीतने के लिये व रण भूमि में साहस के साथ युद्ध करता है, इस बात की लज्जा न हो, जीत गये तो जीत गये, हार गये तो हार गये। वह जीत नहीं सकेगा, युद्ध नहीं कर सकेगा। लज्जा आती है उसे, जब वह रण भूमि में जाता है तो घर के लोग, पत्नी भी उसके ललाट पर शौर्य का, लाल रंग का तिलक लगाती है, जीतकर आना, हारकर नहीं आना, ऐसे भावों से जब वह जाता है तो उस भूमि में शौर्य के साथ लड़ता है। फिर कहते हैं **'शील बिना सत सोना न रूझे।'**

जब तक आपके पास में शील नहीं है, आपके अन्दर सदाचार नहीं है आपको सत्य की प्रति रूझान नहीं होगा, सत्य के प्रति आपका लगाव नहीं होगा। शील सदाचार यह हमें सदा सत्य की ओर ले जाने वाले हैं। **'नेम बिना न लहे निहचे पद'**

नियम के बिना निश्चय पद की प्राप्ति नहीं होती है नियम धारण करने से ही निश्चय पद की प्राप्ति होती है। आप जैसे-जैसे नियम यम में प्रवृत्ति करेंगे निश्चय की ओर आएंगे।

''प्रेम बिना रस रीति न बूझे'

प्रेम के बिना तुम्हें किसी भी पदार्थ में कोई रस नहीं आएगा, तुम्हें पता ही नहीं पड़ेगा कि इसमें क्या रस है, क्या रीति है, जब उनके प्रति प्रेम भाव होगा, तब आपको हर चीज में हर परम्परा में हर बात में आपको रस उत्पन्न होगा, प्रेम के बिना कोई भी रस कहीं भी मिलता ही नहीं है।

'ध्यान बिना न थमे मन की गति'

मन की गति को रोकने के लिये ध्यान करना, ध्यान के बिना मन रुकने वाला नहीं है और **'ज्ञान बिना शिव पंथ न सूझे'** ज्ञान के बिना मोक्ष-मार्ग नहीं प्राप्त होता है।

मोक्षमार्ग में ज्ञान और ध्यान :

मोक्ष का मार्ग ज्ञान के बिना कभी अपनी सूझ में आता नहीं है इसलिए ज्ञान भी जरूरी है और ध्यान भी जरूरी है। ज्ञान से मोक्ष का मार्ग, सुनने को, समझने को मिलता है और ध्यान से फिर उस मन की गति को रोक कर थोड़ा सा अनुभव किया जाता है कि वास्तव में यह कौनसा सुख है जिनके बिना आचार्य यहाँ पर कहते-कहते अब अन्त करने वाले हैं, समझाते-समझाते उनको लगने लगा है कि इष्टोपदेश अब बहुत हो गया है लेकिन वह बात जो गहरी है, वह सारी की सारी बात, ध्यान से ज्यादा जुड़ी है, ज्ञान से कम जुड़ी है। शुरू के जो श्लोक थे उनमें ज्ञान की प्रमुखता थी कि ज्ञान से आप समझ लो कि अपना क्या, पर क्या, हर चीज का स्वभाव जान लो कि इसका नाम ही मोह है और इसी मोह के कारण से हम अपने मन को अपने आप में लगा नहीं पाते तो आचार्य कहते हैं अपनी परिणति को, अपने मन को अपनी आत्मा में लगाने का पुरुषार्थ करो। काज का मतलब यह कार्य करना भी जरूरी है।

आत्मध्यानी योगी को क्या मिलता है?

47

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहिः स्थितेः।
जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः॥

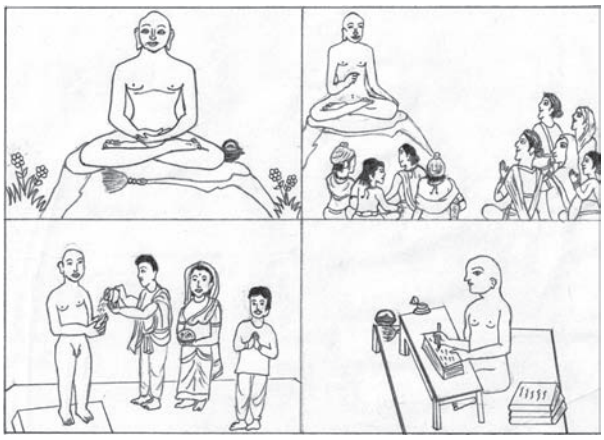

अन्वयार्थ— (**व्यवहारबहिःस्थितेः**) व्यवहारचारित्र से बाहर ठहरे हुए (**आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य**) आत्मध्यान में लवलीन (**योगिनः**) मुनि के (**योगेन**) आत्मध्यान के द्वारा (**कश्चित्**) कोई अपूर्व (**परमानन्दः**) परम आनन्द (**जायते**) उत्पन्न होता है।

- **अनुष्ठान**
- **कर्म**
- **व्रतों का उद्यापन**

अनुष्ठान :

आचार्य देव यहाँ पर जो निरन्तर आत्मज्ञान, आत्मध्यान का अनुष्ठान कर रहे हैं, उन आत्मानुष्ठान करने वाले योगियों के भीतरी आनन्द का कुछ वर्णन कर रहे हैं। कोई ऐसी प्रक्रिया जिसके माध्यम से हमें किसी कार्य की सिद्धि करना हो, कोई ऐसा कार्य जिसके माध्यम से हम लक्ष्य तक पहुँच रहे हों, अनुष्ठान कहलाता है।

जगत में आप अनेक प्रकार के अनुष्ठान देखते होंगे। लोग अलग-अलग तरह से जब अपने अलग-अलग कार्यों को सम्पादित करते हैं तो उसे अनुष्ठान का नाम दिया जाता है। विवाह भी एक अनुष्ठान कहलाता है। कभी कोई गृह-प्रवेश का कार्य हो तो कहा जाता है मंगल गृह-प्रवेश अनुष्ठान हो रहा है। व्यापार को शुरू करते हैं उससे पहले भी अनुष्ठान करते हैं। हर कार्य से पूर्व में एक अनुष्ठान होता है और संसार में अनेक प्रकार के अनुष्ठान आपको देखने को मिलते हैं लेकिन यहाँ कुछ अलग ही तरह का अनुष्ठान बताया जा रहा है।

'आत्मानुष्ठान'- आत्मा का अनुष्ठान करना और आत्मा की उपलब्धि के लिये जो कुछ भी क्रिया-कर्म किया जाएगा, जिसमें सभी प्रकार की बाहरी क्रियाएँ जो होंगी उस लक्ष्य की प्राप्ति करने के लिये तो वो सब उसका अनुष्ठान कहलाएगा। आचार्य कहते हैं कि जो इस आत्मा के अनुष्ठान में लगता है तो वह धीरे-धीरे '**व्यवहारबहिः स्थितेः**', जो उसने बाहरी अनुष्ठान शुरू किया था वह भी बाहर रहने लग जाता है, उससे भी वह दूर हटने लग जाता है। यज्ञों के भी अनुष्ठान हुआ करते थे, यज्ञ होते हैं, अग्नि जलाई जाती है, लकड़ी जलाई जाती है, अनेक प्रकार के मंत्रों के माध्यम से हवन किये जाते हैं। चारों दिशाओं की शुद्धियाँ की जाती हैं, कई प्रकार के उसमें होम होते हैं, यह अनुष्ठान कहलाता है, आप जो सुबह-सुबह पूजन करते हो, अभिषेक करते हो उसे भी एक अनुष्ठान कहा जाता है। पूजा अनुष्ठान कोई व्यक्ति व्रत लेता है तो उस व्रत का भी एक अनुष्ठान होता है, व्रत लेने के प्रारम्भ की क्रिया, व्रत पूरा होने पर उद्यापन की क्रिया ये सब प्रकार के अनुष्ठान किये जाते हैं और इन सब अनुष्ठानों से बढ़कर है- आत्मा का अनुष्ठान जो केवल योगी लोग ही करते हैं, जिनको किसी बाहरी द्रव्य की आवश्यकता भी नहीं है और जिसके पास कोई बाहरी द्रव्य भी नहीं। उसके द्वारा जो यह आत्मानुष्ठान करते हैं, उसमें कैसे वो निष्ठापन करते हैं? कैसे उसका स्थापन करते हैं? कैसे वह उस आत्मा के अनुष्ठान को प्रारम्भ करते हैं? कहाँ से प्रारम्भ होकर उन्हें जब क्या मिलने लग जाता है तो वह उस आत्मानुष्ठान में समझने लग जाते हैं कि हाँ महाराज अब अनुष्ठान पूर्ण होने को है? जैसे आप लोग अपने जप अनुष्ठान करते हैं, व्रत अनुष्ठान करते हैं, पूजा अनुष्ठान करते हैं उसी प्रकार से इन अनुष्ठानों को करने के लिये भी कुछ बाहरी सामग्री हुआ करती है। आप लोग रोजाना आचार्य भक्ति में पढ़ते हैं

आत्मा की उपलब्धि के लिये किये जाने वाले क्रियाकर्म आत्मानुष्ठान कहलाते हैं।

''ये नित्यं-व्रत-मंत्र-होमनिरता, ध्यानाग्नि-होत्राकुलाः,
षट्कर्माभिरतास्-तपोधनधनाः, साधुक्रियाः साधवः ॥4॥
शील-प्रावरणा-गुण-प्रहरणाश्-चन्द्रार्क-तेजोऽधिकाः।
मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः, प्रीणन्तु मां साधवः ॥5॥''

उन साधुओं के लिये कहा जा रहा है जो अनुष्ठान में लगे हैं और वह अनुष्ठान करते हैं। पूरा यहाँ पर यज्ञ दिखाया गया है, लोग बाहरी यज्ञ करते हैं, लोग बाहरी क्रिया-काण्ड करते हैं, यहाँ पर आत्मानुष्ठान करने वाले क्या करते हैं -

''ये नित्यं-व्रत-मंत्र-होम-निरता...''

जो नित्य होम करने में निरत हैं लेकिन वो होम व्रत के साथ चल रहा है जो मंत्र के साथ निरन्तर होम कर रहे हैं- स्वाह स्वाह। आप तो सुबह-सुबह बोलते हो, मुनि महाराज के हमेशा स्वाह चलता है- स्वाह का मतलब, जिसमें अपने कर्म हर समय पर आहुति को प्राप्त होते हैं, बाहर तो कुछ है ही नहीं। जो कुछ भी है भीतर से है तो अपने उन व्रतों के माध्यम से व्रत ही मंत्र बन गये, उन मंत्रों के माध्यम से, वह निरन्तर उस होम में निरत रहते हैं क्योंकि जो व्रतों के द्वारा आत्मा के अन्दर होम करते हैं, उनके अन्दर निरन्तर असंख्यात गुणी कर्म की निर्जरा होती है और हमेशा वह पाप कर्म जलते रहते हैं, इसी का नाम है 'व्रत-मंत्र-होम-निरता' अग्नि कहाँ से आएगी? 'ध्यानाग्नि-होत्राकुलाः' कौनसी अग्नि? 'ध्यान की अग्नि।' ध्यान की अग्नि से, उन व्रतों के माध्यम से, उन व्रतों के होम करने मे, जो निरन्तर रत हैं उसी का होम करने वाले जो होते हैं, वह उसी में रत रहते हैं, उनके भीतर आकुलता रहती है कि यह कर्म जल्दी-जल्दी नष्ट हों। कौनसे हम और व्रतों की भावना करें, कौनसे हम और चरित्र की भावना करें जिससे हमारे यह कर्म जल्दी-जल्दी होम हों। इसी प्रकार की आकुलता के साथ निरन्तर जो कार्य कर रहे हैं, कोई हड़बड़ाहट नहीं है लेकिन निरन्तर काम चल रहा है वह उस काम को करने में क्षण भी रुक नहीं रहे हैं, उसे कहते हैं पूर्ण रूप से उस कार्य को करने में दत्तचित्र हैं।

कर्म :

''ध्यानाग्नि-होत्राकुलः, षट्कर्माभिरतास्-तपोधनधनाः''

छह प्रकार के कर्म हैं, जिसमें वो हमेशा रत रहते हैं। आत्मा का अनुष्ठान करने वालों के छह कर्म-समता, स्तुति, वन्दना, प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण, स्वाध्याय। इन छह प्रकार के कर्मों में जो निरन्तर रत रहते हैं 'तपोधनधनाः'। यह छह कर्म करने उनके पास धन कहाँ से आएगा? सब भीतर है, तुमसे कुछ नहीं माँगना है उन्हें। 'तपो धनधनाः' तप जितना-जितना करेंगे वह उतने ही धनी होते चले जाएंगे। तपस्या के धन से ही जो धनी बने हैं। अनशन तप, ऊनोदर तप, व्रत्तिपरिसंख्यान तप, रसपरित्याग तप, कायक्लेश तप, विविक्तशय्यासन तप ये तो बाहर के तप, फिर भीतर के प्रायश्चित्त तप, विनय तप, वैय्यावृत्ति तप, स्वाध्याय तप, ध्यान तप, व्युत्सर्ग तप, ये सब अन्तरंग तप। इन सबसे वो समृद्ध होते चले जाते हैं। इसको कहते हैं 'तपोधनधनाः'।

ध्यान की अग्नि से मंत्रों के माध्यम से अपने कर्मों का होम करने वाले मुनिराज हैं।

'साधुक्रिया', जितनी अच्छी-अच्छी क्रियाएँ होगी उन सब क्रियाओं को करेंगे ऐसे वह 'साधवः' साधु है।

'शील-प्रावरणा', क्या है उनके पास ओढ़ने के लिये? हमेशा हवन करेंगे, रात सोयेंगे तो शील का आवरण है उनके ऊपर। 'गुण-प्रहरणः'

अगर कोई उनके ऊपर आक्रमण करेगा तो उस आये हुये आक्रमण से अपनी रक्षा वे गुणों के, शास्त्रों के माध्यम से, अपने ऊपर होने वाले आक्रमण की रक्षा करते हैं।

अठ्ठाईस मूल गुण, चौरासी लाख उत्तर गुण होते हैं। इन सब गुणों के माध्यम से, वह अपनी आत्मा की रक्षा करते हैं और किसी भी परचक्र से कभी भी प्रभावित नहीं होते हैं। उनके यज्ञ में कोई विघ्न भी डालना चाहे तो वहाँ तक पहुँच भी नहीं पाएगा, ऐसी उन्होंने सुरक्षा बनाकर रखी है। जैसे कोई युद्ध करने वाला योद्धा होता है, उसका एक शिविर होता है। जहाँ पर वह योद्धा लोग ठहरे रहते हैं, उसको शिविर कहा जाता हैं। उसके चारों ओर ऐसे लोग तैनात रहते हैं जहाँ पर हम आक्रमण करने जा रहे हैं कल, ऐसा ना हो कि वो आज ही हम पर आक्रमण कर दे। पहले ही हमारे शिविर के बाहर इस प्रकार के लोग तैनात रहते थे कि यहाँ पर व्यक्ति आये तो पता चल जाये कि यह कहाँ से आ रहा है? कौन आ रहा है? व्यक्ति अनजाना दिखे तो तुरन्त उसे पकड़ना और पकड़कर ले आना राम-लक्ष्मण के पास में। इसको कहते हैं परचक्र से अपनी रक्षा करना। क्योंकि वो भी एक अनुष्ठान है। युद्ध करने जा रहे हैं, सब तरह की तैयारियाँ। जिसके लिए हम पूर्व में तैयारियाँ करते हैं वो सब अनुष्ठान होता है। उस अनुष्ठान करने में कोई बाहर से आकर आपत्ति देगा तो उस आपत्ति से भी अपने को बचाने के प्रबंध हैं कि गुणों का ही शस्त्र बना लिया जाता है। गुण ही उनके शस्त्र बन जाते हैं, जो उनके अन्दर का धर्म है वो ही शस्त्र बन जायेगा। क्षमा आदि ही गुण कहलाते है, यह ही शस्त्र बन जायेंगे। इस शस्त्र के माध्यम से जब वो अपने अनुष्ठान को करेंगे तो किसी भी पर चक्र का प्रभाव उनके ऊपर नहीं पड़ेगा। कोई सहायक होगा तो भले ही आ जाये लेकिन अगर वो सहायक भी विश्वास पात्र होगा तो ही प्रवेश मिलेगा नहीं तो उसको भी प्रवेश नहीं मिलेगा।

जब राम के शिविर में विभीषण आये, अचानक से आ गये। परिचय पूछा गया, लंका से आ रहे हैं। रावण के पास से आ रहे हैं, पता चला यह तो रावण का भाई है। यहाँ क्यों आया?

जब पूछा गया, तो किसी को भी उन पर विश्वास नहीं हुआ कि यह अपने लिए कोई अच्छा आदमी है या अपने अहित के लिये आया है। जैसे ही पता चला, सब लोग उनके आस-पास घूमने लगे और विभीषण को सबसे पहले राम के कक्ष में लाया गया। विभीषण ने अपनी बात कही लेकिन लक्ष्मण मानने को तैयार नहीं हैं। ऐसे विश्वास नहीं करना, पर व्यक्ति का किंचित् भी विश्वास नहीं करना। वो भी उस जगह पर जब हम किनारे पर बैठे हैं और युद्ध करने वाले हैं और

इस पर विश्वास करें? ऐसा हो ही नहीं सकता लेकिन राम कहते हैं- थोड़ी देर रुको। कभी-कभी हमें शत्रु के ऊपर भी विश्वास करना चाहिए।

अगर वह शत्रु का भाई भी है तो कोई बात नहीं, उसके माध्यम से हमें ऐसा लग रहा है कि यह न्याय और अन्याय को समझ रहा है तो हमें अपनी आँखे इतनी बन्द नहीं करनी चाहिए कि हम उसे अन्यायी ही समझें या उसके कुल में जितने उत्पन्न हुए हैं, उन्हें हम अन्यायी ही समझें। राम समझाते हैं, ऐसा नहीं समझना, यह विभीषण न्याय-प्रिय है, धर्म-प्रिय है, इसकी बात को सुनो, समझो, हो सकता है इससे ही अपना कुछ और अच्छा हो। तो राम के कहने से विभीषण को समझा और जब लक्ष्मण ने समझा, विभीषण को भी समझ लिया तो उसके बाद में जब विभीषण को भी अनुमति मिल गयी कि हाँ ठीक है, आप हमारे शिविर में रह सकते हो तब और गुणों की वृद्धि हो गयी। शत्रु की तरफ से आया हुआ कोई भी व्यक्ति अगर वह अपने हित में आ जाये तो समझ लो शत्रु की शक्ति बहुत कुछ कम हो गयी। इसी तरह से आचार्य कहते हैं कि आपके अन्दर जो क्रोध आदि शत्रु हैं और इन्हीं शत्रुओं की शक्ति जब अपने हित में लगने लग जाये, अपने हित में आ जाये तो समझना कि आपके उन गुणों की और वृद्धि हो रही है।

क्रोध भी शत्रु है, मान भी शत्रु है, लेकिन अगर शत्रु को, इसके गुणों को समझ कर अपने ही चारित्र का पालन करने, उपयोग किया जाये तो यह शत्रु भी हमारे लिये हितकर हो सकते हैं। क्रोध तो करना लेकिन अपने कर्मों को जीतने के लिए क्रोध करना, दूसरे पर नहीं करना। मान तो करना पर ऐसा अभिमान करना कि हमसे बढ़कर कोई उस मान को धारण नहीं कर सके। अपने व्रतों का अभिमान करना, अपने चरित्र का अभिमान करना, जिसके अभिमान से तुम्हारे अन्दर और कोई विकार उत्पन्न ना हो और दूसरे कर्मों के कारण से आये वो अभिमान भी उसमें समाहित हो जायें। वो अभिमान, दोष होते हुए भी गुणकारी बन जायें। शत्रु के पक्ष से आया हुआ व्यक्ति भी हमें शक्ति देने वाला हो जाता है। इसी प्रकार से यह क्रोध, मान, लोभ, माया, यह सब हमारे अन्दर शक्ति देने वाले हो सकते हैं। क्रोध करो, अपने कर्मों को जलाने के लिए, मान करो, अपने चरित्र की वृद्धि करने के लिए, माया भी कर सकते हो, कोई समझ न पाये इस तरह के अपने भीतर ही भीतर अनुष्ठान करो।

कोई समझ ही न पाये, ऐसे भीतर ही भीतर ज्ञान के आयाम, अनेक प्रकार के ध्यान के आयाम, यह सब भीतर ही भीतर करते रहो, बाहर किसी को पता ही न चले। कोई इच्छा जो दूसरे लोग रखते हैं, वो छोटी-मोटी रखते हैं तुम एक बड़ी इच्छा रखो। ''जिनश्रियं मे भगवन् विधताम्'' हे भगवन्! मुझे आपके गुणों की लक्ष्मी प्राप्त हो जाये। ऐसी उत्कृष्ट इच्छा रखो कि उसके आगे सब इच्छाएँ फेल हो जाये। यह क्रोध-मान-माया-लोभ रूपी जो दोष थे, इनको भी हम गुणों के रूप में ढाल सकते हैं। उस विभीषण की तरह अपनी शक्ति को बढ़ा सकते हैं, अपने गुणों में वृद्धि

अपने कर्मों को जलाने के लिये क्रोध करें और अपने चारित्र की वृद्धि- हेतु मान करें।

कर सकते हैं और यह किया जाता है। इस तरह के अनुष्ठान होते हैं, उन्हें कभी भी कोई बाहरी आपत्तियाँ आकर नहीं करती तो वो अनुष्ठान अबाधित रूप से चलता रहता है।

''शीलप्रावरणा-गुणप्रहरणाश्-चन्द्रार्कतजोऽधिकाः,
मोक्ष-द्वार-कपाट-पाटन-भटाः...''

भट का मतलब होता है योद्धा। युद्ध कर रहे हैं, वो भी अनुष्ठान कर रहे हैं और एक दरवाजा खोलना है, मोक्ष के द्वार पर जो लगा हुआ कपाट है, उसको पाटना है मतलब उखाड़ना है और उसको उखाड़ने के लिये जो योद्धाओं के समान निरन्तर लगे हुए हैं, ऐसे वो कहलाते हैं ''मोक्ष-द्वार कपाट-पाटन-भटाः, वह साधवः''। वह साधु जो हमेशा इस तरह के अनुष्ठान में लगे हुए हैं, आप समझ ही नहीं सकते हो कि वह क्या कर रहे हैं। जिनके केवल एक ही लोभ रह गया है वहहं-मोक्ष और उसी के द्वार को खोलने के लिये सब अनुष्ठान किया जा रहा है।

राम किसलिए अनुष्ठान कर रहे हैं?

रावण के द्वार तक पहुँचना है, रावण की लंका में प्रवेश करना है। ऐसे अनुष्ठान करने के लिये जो निरन्तर प्रयत्नशील है, ऐसे 'ते साधवः प्रीणन्तु मां'-

वे साधु मुझे प्रसन्न करें। उनसे बस इतनी ही प्रार्थना है। प्रसन्न करने का मतलब, मेरे मन के अन्दर भी प्रसन्नता आये। कोई बाहर के अनुष्ठान या बाहर के लोगों की प्रसन्नता नहीं, इसी प्रकार के गुणों की प्राप्ति में मन प्रसन्न होने लग जाये तो यह उनसे की गयी प्रार्थना का फल है।

प्रार्थना तो हम करते हैं, वन्दना करते हैं, स्तुति करते हैं। इसका इस प्रकार का फल माँगो कि अपने मन में इसी प्रकार के गुणों की प्राप्ति हो। आप लोगों को इस प्रकार के गुणों का वर्णन करने में नींद आती है। न कोई कहानी, न कोई चुटकला, यह कैसा आत्मा का अनुष्ठान और आपको इस प्रकार से नींद आयेगी तो आपका मन उन साधुओं के गुणों में प्रसन्न होगा कैसे?

आपको यह गहरी जानकारी होनी चाहिए कि आत्मा का ऐसा अनुष्ठान होता है और इस आत्मा के अनुष्ठान में यह यह चीजें लगती हैं, हम इस आत्मा का अनुष्ठान नहीं कर पा रहे हैं लेकिन ऐसा अनुष्ठान हमें करना है, ऐसे अनुष्ठान करने में मेरी प्रसन्नता बने क्योंकि जब तक आप प्रसन्न नहीं होंगे वो अनुष्ठान शुरू कैसे होगा? और तो सब अनुष्ठान हो रहे हैं, व्रतों के अनुष्ठान हो रहे हैं, जप के हो जाते हैं, पूजा पाठ के हो जाते हैं। लेकिन इस अनुष्ठान के माध्यम से जो आपके अन्दर प्रवृत्ति शुरू होगी, वो यहीं से शुरू होगी कि आप ऐसे साधुओं की स्तुति करें तो इसलिए करें कि हमें भी इसी प्रकार के गुणों में प्रसन्नता उत्पन्न हो। हमें भी इसी प्रकार के गुणों की प्राप्ति हो। यह जब अनुष्ठान करने का लाभ उन्हें मिल रहा है तो वह लाभ हमें भी मिले। हम इतनी जब भावना करेंगे तो हमारा साधुओं के प्रति सही अनुराग का भाव कहलाएगा और हमारे अन्दर भी साधु के गुणों को प्राप्त करने की इच्छा है, यह कहलाएगी। आप अरिहंत भगवान के, सिद्ध भगवान के गुणों तक नहीं पहुँच पाते। लेकिन आप साधु के गुणों तक भी पहुँचेंगे तो आपके मन में सोचना

पड़ेगा कि मन हमारा तो इन गुणों की प्राप्ति में तो कभी प्रसन्न होता ही नहीं है। यही प्रयास करें कि व्रत हो, नित्य मंत्र भीतर ही भीतर चलता रहे ध्यान, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, स्तुति, वन्दना में बस मेरा पूरा जीवन इसी अनुष्ठान में बीते। पूरा दिन, पूरी रात इन्हीं अनुष्ठानों में लगे रहे और बाहर कुछ नहीं हो। इसी अनुष्ठान में भीतर से आनन्दित होना और यह अनुष्ठान हमने आज तक किया नहीं। इसलिए इस अनुष्ठान को ही प्रसन्नता के साथ करना, अनुराग के साथ करना, बाकी तो सब अनुष्ठान खूब हो चुके हैं।

व्रतों का उद्यापन :

हम अनुष्ठान करते हैं और दूसरे लोग मजे लेते हैं। सोलह कारण व्रत किये किसी ने, बेचारा सोलह दिन तक एक-एक करके उपवास किया, तपस्या की, तपे दोनों पति-पत्नी। जब अनुष्ठान का निष्ठापन किया तो एक विधान किया वो तो ठीक ही है लेकिन दूसरों को आनन्दित करने के लिए भोजन का अनुष्ठान करना, व्यवस्था करना, एक दिन पहले से और एक दिन बाद तक। यह अपने अनुष्ठानों का उद्यापन है। यह जो अपने अनुष्ठानों के जितने भी हम क्रिया कलाप करते हैं, दूसरों को प्रसन्न करने के लिये तो वो तो प्रसन्न हो रहे हैं और अगर आपको यह आत्मा का अनुष्ठान करना है तो आपको किसी को खिलाने-पिलाने की जरूरत नहीं है। सब को प्रसन्न करने की भी जरूरत नहीं है। बस आपका प्रसन्न होना ही काफी है।

एक श्रावक जब तप करता है, त्याग करता है उस समय तो उसके कर्मों की निर्जरा हो जाती है, उस समय तो वो पाप से बचता है, पूर्ण रूप से सब प्रकार की तपस्या करके अपने कर्मों की निर्जरा करता है। जैसे ही वो अनुष्ठान पूर्ण हो जाता है उसके बाद फिर उसकी स्थिति उस हाथी की तरह होती है। जैसे हाथी तालाब में स्नान करके, जो मैल, धूल उस हाथी पर लगा था सब उसने धो ली और बाहर आया फिर उसने अपनी सूंड से कीचड़, धूल, मिट्टी अपने ऊपर डाला और फिर वो जैसे का तैसा हो गया। ऐसे ही आचार्य कहते हैं कि गृहस्थों के अनुष्ठान इसी प्रकार के होते हैं। जब तक तप करेंगे, त्याग करेंगे निर्जरा होगी, पाप कर्म झड़ेंगे, पुण्य कर्म का बंध होगा और जैसे ही वो अनुष्ठान पूरा कर दिया तो जैसे ही वो निर्जरा हुई थी वैसे ही फिर पुनः अपने ऊपर उड़ेलने लगे। आपने वो अनुष्ठान पूर्ण किया, व्रत किया, कर्म की निर्जरा की लेकिन वह उद्यापन हुआ तो अनेक लोगों को आपको भोजन कराना पड़ा। 16 दिन भोजन नहीं किया और जैसे ही

आत्मा का अनुष्ठान करने पर किसी को खिलाने-पिलाने की जरूरत नहीं है।

वो अनुष्ठान पूर्ण किया सबको भोजन कराया। एक दिन पहले से भोजन बनना शुरू होता है और एक दिन बाद तक चलता रहता है। जब हमें यह मालूम था कि भोजन नहीं करने में पुण्य है, तप है और हम भोजन नहीं करके, तप करके, निर्जरा कर रहे हैं तो वह फिर तपस्या करने के बाद इतने बड़े भोजन के आयोजन करने की जरूरत क्यों पड़ी? जो किये हैं उसकी बुराई नहीं कर रहा हूँ। लेकिन सोचने की बात है कि अगर कोई सामाजिक प्राणी खुश होता है तो इसी प्रकार के अनुष्ठानों में खुश होता है। उसे यह करना ही पड़ता है, व्यवहारिकता निभाने के लिए करना पड़ता है और इस प्रकार की व्यवहारिकता से पुनः फिर पाप का बंध तो होगा। दो दिन पहले से सब अनुष्ठान फिर करने पड़ रहे हैं। नौकर-चाकर आते हैं और सब खा-पीकर चले जाते हैं। इतना आरम्भ-सारम्भ किया, उसका अपने को पाप बंध तो होता ही है। व्रतों का निष्ठापन्न करना तो आचार्यों ने कहा- जितना कम आरम्भ-सारम्भ करना पड़े वो काम करना। मन्दिर के लिये चँदोवा बँधवायें। वो बहुत अच्छा काम किया, मन्दिर के लिए द्रव्य सामग्री दे दी, मन्दिर में शास्त्र दे दिये। ऐसे काम करे तो आपने पुण्य किया। उसके साथ-साथ अपने रिश्तेदारों को बुलाया, देना-लेना किया। जो बात है, वो यह है कि हम जितना आरमभ-सारम्भ करेंगे उसका बंध तो अपने को ही होगा। वो तो खा पीकर चले जायेंगे। कोई अपनी पत्तल भी उठाकर नहीं रखेगा, वो भी अपने को ही उठाकर रखनी पड़ती है।

एक श्रावक जब कोई व्रत करता है तो उसे इतनी चीजें भी और साथ करनी पड़ती है। आप अपनी इच्छा से किये कोई बात नहीं, करना भी चाहिए लेकिन साथ में यह भी ध्यान रखें कि अपनी स्थिति पुनः वैसी ही बनने लगती है जैसी हाथी के साथ होती है। इसलिए यह नित्य अनुष्ठान नहीं कहलाते। नैमित्तिक अनुष्ठान कहलाते हैं। आपने कुछ समय के लिये किया और वो अनुष्ठान पूर्ण हो गया लेकिन जो नित्य अनुष्ठान होते हैं वो ''ये-नित्यं-व्रत-मन्त्र-होम-निरताः''

हम तो आजीवन का अनुष्ठान करने के लिये बैठे हैं। जीवन पर्यन्त तक अनुष्ठान करना है और किसी को उसमें कोई हिस्सा नहीं देना। आप उसमें से हिस्सा ले लो। हम आपको बुलायेंगे नहीं हिस्सा लेने के लिये। आप आ जाओगे तो आपको उसका कुछ हिस्सा मिल जायेगा। आप लेने की इच्छा करोगे तो हम देने के लिये तैयार हैं लेकिन निर्बाध तरीके से। वह हिस्सा देने में भी अपने को कोई आरम्भ सारम्भ नहीं होना। इस तरीके के यह अनुष्ठान जो निरन्तर चलते रहते हैं, यह कहलाते हैं आत्मानुष्ठान। जिनमें किसी के ऊपर कोई निर्भरता नहीं किसी के ऊपर आप हैं तो ठीक है और नहीं है तो कोई बात नहीं। क्योंकि जब भीड़ कम होगी तभी तो यह स्थिति बनेगी।

'इच्छत्येकान्त संवासं, निर्जनं जनितादरः
निजकार्यवशात् किञ्चित्''

वह निज कार्य में तभी आता है, जब कोई सामने ना हो, जब आपके अन्दर यह भावना आयेगी कि हम इस प्रकार के अनुष्ठान नहीं कर पाते हैं लेकिन इन अनुष्ठानों को जो कर रहे हैं,

श्रावक को व्रतों का निष्ठापन करने में कम से कम आरंभ-सारंभ करना चाहिये।

वो हमें ऐसी प्रसन्नता दें कि हमारे मन में भी इस प्रकार के अनुष्ठान करने की भावना आये। मन प्रसन्न रहे। बाकी के सब अनुष्ठानों में तो पाप-पुण्य दोनों मिक्स रहता है। आत्मा के अनुष्ठानों में पाप-पुण्य सब झड़ता चला जाता है। आत्मा की शुद्धि बढ़ती चली जाती है।

'व्यवहारबहिः स्थितेः'

व्यवहार बाहर रहने लग जाता है। भीतर नहीं आ पाता है। पहले-पहले व्यवहार भीतर रहता है। अनुष्ठान करते-करते जब वह अभ्यस्त हो जाता है तो वह व्यवहार बाहर आ जाता है। ठीक है! ऊपर-ऊपर से हो गया या हमने व्यवहार करने के बाद भी उसको अन्तरंग से महसूस नहीं किया यह कहलाता है व्यवहारबहिस्थितिः। प्रसन्नता का अनुभव नहीं किया। आप आये, अच्छी बात, आप नहीं आये, अच्छी बात। आप आये तो गिर पड़े, चले तो गिर पड़े। आये तो आगे गिरे और चले तो पीछे गिरे। इस प्रकार जब हो जाता तो वह निश्चय को कभी प्राप्त नहीं करा पाता है। जब व्यवहार बाहर का बाहर रहे, इतना आपकी अनुष्ठान के प्रति रुचि हो जाये। कोई भी आ रहा है, अच्छी बात है जा रहा है, अच्छी बात है। कोई फर्क नहीं पड़े तो वह अनुष्ठान व्यवहार के बाहर रखते हुए किया जाता है।

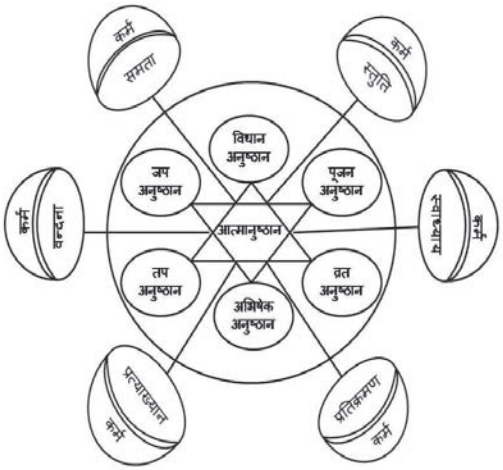

आचार्य कहते हैं-'कश्चित् परमानन्दः जायते' परम आनन्द की अनुभूति व्यवहार में नहीं आयेगी वो तो तत्काल रहेगी। परमआनन्द की अनुभूति तो व्यवहार को छोडकर केवल अपने आप पर ध्यान देते हुए, अपनी ही आत्मा के अनुष्ठान में जो लीन होगा उसको कोई ऐसा परमआनन्द आता है जिसमें पर की किन्चित् मात्र भी विकल्प नहीं, पर की कोई स्मृति याद नहीं। पर से उसका कोई भी लेनदेन नहीं। उस अनुष्ठान में लीन होने पर जो आनन्द उत्पन्न होता है आचार्य कहते हैं उसका कुछ नाम नहीं है

'कश्चित् परमानन्दः'

मतलब वो कोई विशेष आनन्द होता है ऐसा आनन्द उन योगियों को ही होता है जो आत्मानुष्ठान में लगते हैं, इसकी कोई व्याख्या नहीं की जा सकती है। आप जब ध्यान करते हैं तो आप कहते हैं, आज महाराज बहुत अच्छा लगा। इसके अलावा आप उसकी कोई व्याख्या कर ही नहीं सकते। अगर आपने व्याख्या कर ली तो इसका मतलब है कि आप कुछ न कुछ सोच रहे थे, कल्पना कर रहे थे। बस उस कल्पना का आपको वर्णन करना आ रहा है। आपके अन्दर जो ध्यान

आत्मा के अनुष्ठानों से पाप-पुण्य सब झड़ता है।

का आनन्द था। उस आनन्द की तो कोई व्याख्या हो ही नहीं सकती। चन्द्रमा रात्रि में उत्पन्न होता है, आता है और चारों ओर अपनी चाँदनी बिखेरता है, शीतलता देता है। आप देखना, उस चाँदनी रात में वह दे रहा है, हम अनुभूत कर रहे हैं उसको लेकिन कुछ भी कहने लायक नहीं रहेगा। उसका उजाला, चाँदनी, उसकी हवा, सब कुछ आपको आनन्द देगी लेकिन आप उसकी व्याख्या नहीं कर पायेंगे।

जो वास्तविक आनन्द होता है उसकी कोई व्याख्या नहीं होती, जो वास्तविक भीतर से उत्पन्न होता है, उसके आनन्द में वह भीतर से डूबता चला जाता है और बस इतनी ही भावना करता है बस हमें यही, यही अनुभूत होता रहे। हमारे अनुभव में यही-यही आता रहे, उस आनन्द का नाम-परमानन्द।

अभी तो आपके लिए विषयानंद हो रहा है, इन्द्रिय के विषयों में आनंद आना, टी.वी. देखने, मोबाईल सुनने में आनंद आना। गाने सुनने में, स्वादिष्ट भोजन, भड़कीले वस्त्र पहनने में आनंद आना। जिसमें आत्मा उखड़ जाये, पता ही ना चले कि आत्मा भी है भीतर से। शरीर ही शरीर रह जाये, मन तो इतना डाँवाडोल हो जाये कि उसे फिर स्थिर करने में पता चले कि 3-4 दिन लग जायें।

जब चातुर्मास चल रहे होते हैं और कोई कहीं शादी-पार्टी में चला जाये तो 3-4 दिन उसका मन नहीं करता फिर प्रवचन सुनने का।

कुछ अनुष्ठान जो हमने अभी तक नहीं किये, उनको करो। यह अनुष्ठान करने का समय हमें हमेशा से मिला है लेकिन इनकी तो हमें जानकारी ही नहीं है। यह जानकारी ले ली। ये दिवालियाँ तो फिर आती रहेंगी। यह सब होता रहेगा।

यह अनुष्ठान करने का मन बराबर बना रहना चाहिए। यह गृहस्थ है। इन्हीं को हाथी की उपमा दी आचार्यों ने। यह भूल जायेंगे कि कितनी हमने सफाई की और फिर कितनी गन्दगी डाल ली हमने अपने ऊपर। इस तरीके की जो प्रवृत्तियाँ होती है उन प्रवृत्तियों से हमें तात्कालिक लाभ होता है, तात्कालिक प्रसन्नता होती है।

'परमानन्द', यह तो हर समय की स्थिति बननी चाहिए। आपको हर काम करने में अपनी आत्मा के बारे में सोचना चाहिए कि इस काम से आत्मा को लाभ हो रहा है कि हानि हो रही है। इससे आत्मा को कर्म का बन्ध हो रहा है कि कर्म की निर्जरा हो रही है। यह आप हर बार, हर विषय में सोचेंगे तो कम से कम आपका अपनी आत्मा और कर्म के बीच में जो स्पर्शन चलता रहेगा उपयोग का, उस उपयोग से आपको कर्म बन्ध में न्यूनता आ जायेगी। कर्म बन्ध कम होगा। अगर आपका इतना विचार भी चलता रहे कि हमें उस तालाब से बाहर आना पडा तो कोई बात नहीं। लेकिन सूँड से वही गन्दगी अपने ऊपर डालने की क्या जरूरत पड़ी? अगर हम उसको थोड़ा

वास्तविक आनंद भीतर से उत्पन्न होता है, उसकी कोई व्याख्या नहीं होती।

सा बचायें, दूसरी जो हमें ग्रीष्म की धूप लगेगी, ताप लगेगा उससे हमें जो आकुलता होगी वो फिर भी ठीक है। लेकिन और ऊपर से धूल डाल-डालकर फिर तालाब में घुसने का प्रयास करेंगे तो आपके लिए कर्म की निर्जरा जितनी होती है उतना ही कर्म का बंध फिर हो जायेगा।

गृहस्थ भी योग कर सकते हैं, हमेशा योग में, ध्यान में रह सकते हैं लेकिन उसके लिए भीतर से awareness हो, सावधानी हो। जिसके माध्यम से हम यह जान सकें कि इन कार्यों में केवल पाप के अलावा कुछ नहीं। अपने को तो आत्म अनुष्ठान करने के लिए समय पर पहुँचना है। भीतर से आ जाता है अपने आप तो, वो काम भी चलता रहेगा और कर्म का बन्ध भी नहीं होगा। उसी काम में लिप्त हो गये और यहाँ का अनुष्ठान बिल्कुल भूल गये तो क्या होगा?

कर्म-बन्ध के अलावा कुछ नहीं होगा, निर्जरा तो कोसों दूर गयी। इस प्रकार के अनुष्ठान में ही परमआनन्द आता है और इन अनुष्ठानों से यह आत्मा अनादिकाल से वंचित रहा है। हमें आदत डालना है कि अपने अन्दर ध्यान करने की योग्यता आ जाए तो वह आपके लिए परमानन्द का सबसे बड़ा एक independent साधन मिल जायेगा। वो आना चाहिए और आपको लगना चाहिए कि यही हमारे लिए करने योग्य कार्य है बाकी जो कुछ है वह सब व्यवहार है, उस व्यवहार से आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं होता क्योंकि व्यवहार को बाहर छोडकर ही आत्मा को आत्मा में लगना पड़ता है, जब तक व्यवहार को ध्यान में रखेंगे, तब तक आप आत्मा का अनुष्ठान कर ही नहीं पायेंगे। गृहस्थ के लिए व्यवहार को ताक पे रखना और व्यवहार में नहीं लाना बहुत कठिन होता है, जितना वो करेगा उतना-उतना ही उस की निश्चय के प्रति रुचि जागेगी।

आचार्य कहते हैं कि यह रुचि एक बार जाग जाये तो उसको कम मत करना। यह रुचि बड़ी मुश्किल से जागती है। ध्यान की अग्नि बड़ी मुश्किल से भीतर लगती है, लगी और आपने बुझा दी तो फिर बहुत मेहनत करनी पड़ेगी। इन संस्कारों की आप वृद्धि करेंगे, ध्यान के संस्कार अध्यात्म-ग्रन्थों को सुनने के संस्कार में रुचि आयेगी और उस रुचि के बढ़ने से ही आपके अन्दर यह स्थिति बनेगी कि पूर्ण रूप से आत्मा का अनुष्ठान करने के लायक बन सकें। बाहर में जो होता है वो दिखाने के लिए भी हो सकता है लेकिन भीतर से जो होगा वो तो वास्तविक होगा। जब आप घर बनाते हो तो दो प्रकार के पत्थरों का उपयोग किया जाता है, एक पत्थर वो होता है जो नींव के अन्दर डाला जाता है और एक पत्थर जो बाहर दिखाने के लिए लगाया जाता है। जो दिखने वाला पत्थर है वो तो सबको देखने में आता है और नींव का पत्थर किसी को देखने में नहीं आता। उस पत्थर की तरह अपने अन्दर शक्ति अर्जित करना। जितनी भी चीजें हैं वो तो अपने आप देखने में आने लग जायेंगी। नींव का पत्थर वो ही बन सकता है जो पूर्ण रूप से आत्म समर्पण कर देगा। जिसे अपने अन्दर यह भी इच्छा नहीं होगी कि हमको कोई बाहर देखे। नींव का पत्थर बनकर भीतर पडा रहेगा और सबसे ज्यादा मजबूती देने वाला वही होगा। जो बाहर से चिकने-चिकने दिख रहे

मन के भीतर में होने वाला कार्य आपकी वास्तविक निजी दृढ़ संपदा है।

हैं, वो ही देखने में आयेंगे। भीतर जो पड़े हैं, उन पर किसी का ध्यान नहीं होगा। यह बाहर का तो कभी भी हट जायेगा तो दूसरा जोड़ दोगे। अगर भीतर का हिल गया तो पूरी बिल्डिंग ही धराशयी हो जायेगी।

जरूरत की जो चीज होती है वो ऐसी ही होती है जो हम कर रहे हैं। किसी के दिखने में ना आये बस भीतर ही भीतर होता चला जाये, वो आपकी वास्तविक निजी दृढ़ संपदा है। जो बाहर दिखने में ज्यादा आती है वो ऊपर-ऊपर रह जाती है, उससे हमारे अन्दर कोई मजबूती नहीं आ पाती है। मजबूती आयेगी आपमें इस प्रकार के आत्मा के अनुष्ठान करने से, ध्यान करने से, मन को शांत करने से, मन की उछल-कूद बन्द करने से और जब आप ऐसे शांत होकर बैठेंगे। जिस चीज के लिए आपको पता ही नहीं है कि वो चीज आपके कितने काम की है, वो time waste नहीं हो रहा है, सही time का use हो रहा है। लेकिन बुद्धि क्या कहती है? नहीं यह time waste हो रहा है। इसमें क्या मिलेगा। जबकि आपको मन के संस्कार, ऊर्जा जो मिलेगी वो इस प्रकार के ध्यान से ही मिलेगी। निर्जरा सही ढंग से तभी होती है, जब मन बिल्कुल शांत होकर बैठ जाता है फिर जो आनन्द आता है क्या हजार, दस हजार, लाख भी एक दिन में कमा लोगे तो आनन्द नहीं आयेगा।

भीतर के आनन्द से आप वंचित हैं, वो आनन्द आपको तभी आयेगा जब आप इन चीजों से अपनी मानसिकता हटाकर शांत बैठोगे। जिस आनन्द में हम दूसरों पर आश्रित हों वो आनन्द ही कैसा।

वह परम आनन्द/उत्कृष्ठ आनन्द कहलाता है जो हमें अपनी आत्मा में लीन होने से प्राप्त होता है। वह '**कश्चित्**' यानि कोई ऐसा आनन्द है जिसकी हम व्याख्या नहीं कर सकते।

'योगेन योगिनः'

वह योगियों को योग से मिलेगा।

योगी का मतलब जो अपने मन वचन काम को जोड़कर के अपनी आत्मा में लग जाता है और इस प्रकार के योगी के अन्दर जो योग हो रहा है वही योग कहलाता है। इसे बोलते है- शुद्धात्मा का योग, ध्यानयोग, इस योग के माध्यम से उस योगी को जो विशेष आनन्द की प्रप्ति होती है। हम कह नहीं सकते।

लेकिन यह आनन्द कहलाता है जो हमेशा हमारे अन्दर बना रहे। जो स्थिर नहीं हो, वो थोड़ी देर के मजे कहलाते हैं, उनमें स्थिरता नहीं रहती।

आचार्य कहते हैं कि अपने आपको ऐसे समतामय परिणामों के साथ ध्यान में ढ़ालने का अभ्यास करो। इसी में आपकी भलाई, आत्मा का अनुष्ठान होगा।

परम आनंद, योगी को योग से अपनी आत्मा में लीन होने से प्राप्त होता है।

आनन्द का कार्य क्या?

48

आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतम्।
न चासौ खिद्यते योगी बहिर्दुःखेष्वचेतनः॥

अन्वयार्थ–(आनन्दः) आत्मानन्द **(अनारतम्)** निरन्तर **(उद्धं)** बहुत से **(कर्मेन्धनम्)** कर्मरूपी ईंधन को **(निर्दहति)** जलाता है **(च)** तथा **(बहिर्दुःखेषु अचेतनः)** बाहरी [परीषह, उपसर्गादिक] दुखों से अनभिज्ञ **(असौ योगी)** वह योगी/आत्मध्यानी **(न खिद्यते)** खेद-खिन्न/दुखी नहीं होता है।

- **आनंद का स्रोत**
- **आत्मानुष्ठान**
- **संकल्प विकल्प का जाल**
- **जीवन बीमा**
- **स्वास्थ्य सुख**
- **स्थितप्रज्ञ योगी**

आनंद का स्त्रोत :

कल योगी के योग के माध्यम से उत्पन्न होने वाली परम आनन्द दशा का वर्णन किया था कि योगी को जब अपने आत्म-अनुष्ठान में लीन होने पर परम आनन्द आता है तो उस परम आनन्द से उसे और क्या लाभ होता है? उसके बारे में यहाँ पर आचार्य देव बता रहे हैं, वह आनन्द हमारे अन्दर क्या उत्पन्न करता है? आप लोगों ने ऐसा सोचा, समझ रखा है कि आत्मा में आनन्द, जैसी कोई चीज उत्पन्न ही नहीं होती है। अपने आत्मा के अन्दर आनन्द के स्रोत सूख गये हैं, इतने दब गये हैं कि ऐसा हमें भान ही नहीं होता कि आत्मा में आनन्द जैसी कोई चीज है। जीवन भर हम हँसते हैं, सुखी होते हैं लेकिन कभी भी आत्मा के आनन्द से सुखी नहीं होते। हमारे अन्दर हँसी, प्रसन्नता, खुशी आती है तो सब मन से आती है और मन के अन्दर वो प्रसन्नता भी आती है तो अपनी अनुकूल वस्तुओं की उपलब्धि होने पर, उसमें प्रेम भाव आ जाने पर उस मन को प्रसन्नता आ जाती है। आपके अनुकूल कुछ उपलब्ध हो जाता है जो आपके favourable हो और वो आपको मिल जाता है तो आपका मन प्रसन्न हो जाता है लेकिन आत्मा का स्त्रोत, जो आनन्द का स्त्रोत है, वह बिल्कुल दबा हुआ है, छुपा हुआ है या यूँ कहें कि किसी गहरे स्थान में पानी का स्रोत बह रहा हो और उसके ऊपर अनेक प्रकार के पत्थर, मिट्टी, कंकड़ पड़े हों और हमें पता ही ना हो। हम जहाँ बैठे हैं, वहीं पर पानी का स्रोत बह रहा है और हम परेशान होते हैं कि हमारे पास में एक बूँद पानी भी नहीं है। हम इंतजार करते हैं, ऊपर से, बादल से, कहीं पानी की एक बूँद टपक जाये। उस से गिरती हुई एक बूँद का इंतजार करते-करते और उस इंतजार से प्राप्त हुई, एक बूँद के सुख में हम अपने आप को सुखी मान लेते हैं लेकिन हमें पता ही नहीं रहता कि जहाँ हम बैठे हैं, वहीं पर एक स्रोत बह रहा है, बहुत पानी है। कोई आपको बता दे, आप क्यों पागल बने हुए हो इतने महीनों से इंतजार कर रहे हो, बादल से एक बूँद पानी बरसने का, जहाँ बैठे हो वहीं पर खोदना शुरू कर दो और वहाँ पर पानी ही पानी भरा हुआ है। बस आप थोड़ा सा खोदो उसको, पाँच फीट खोदोगे आपको पानी मिल जायेगा, सातवाँ फीट खोदोगे तो आपको उस पानी के अंश दिखाई देने लग जाएंगे। पानी बहता हुआ, लहरें-लहरें दिखाई देते हुए पानी मिल जाएगा और फिर अगर आपने आठ, नौ फीट खोद दिया तब तो उसमें से फव्वारा फूट जायेगा। जहाँ पर बैठे हो, वहाँ पर खोदो, वहीं पर सब कुछ मिलेगा और संसारी प्राणी की आदत बनी हुई है, जहाँ हैं उसे वो पता ही नहीं है कि वहाँ पानी है और वह दुनियाँ में मुँह ऊपर उठाकर के घूमता है, ढूँढता है कहीं पानी मिल जाए। कभी उसकी ओर, कभी किसकी ओर देखेगा। अनेक प्रकार से सोचेगा कि हमें आनन्द मिल जाए, सुख मिल जाए लेकिन उसे उस सुख की प्राप्ति हो नहीं पाती क्योंकि उसकी दिशा गड़बड़ाई है। उसको जिस दिशा में खोजना चाहिए, उस दिशा का उसको ज्ञान नहीं है और जहाँ पर वह खोद रहा

आपकी आत्मा के अंदर आनंद के स्त्रोत सूख गये हैं, उन्हें जाग्रत करें।

है वहाँ पर पानी है नहीं, वहाँ पर केवल तृष्णा है। तृष्णा का सारा जल मुँह में आ जाता है तो वह उससे संतुष्ट हो जाता है और उसी से उसको लग जाता है कि बस यही होगी हमारी तृप्ति। लेकिन इधर आचार्य कहते हैं यह तृप्ति नहीं है, यह तो निरंतर तेरे अंदर पाप, संताप बढ़ रहा है भीतर से। तृप्ति तो तुझे भीतर से मिलेगी जब तू आमूलचूल उस पानी में डूबेगा, उस स्रोत में डूबेगा जो तेरे अन्दर से उत्पन्न होगा। वह स्रोत तुझे और कहीं अपने ही भीतर खोजना है और खोजने के लिए तुम्हे खोदना है। जहाँ बैठे हो वहीं जमीन के अन्दर पाँच फुट गहराई पर जाकर के तुम्हें पानी मिलेगा। पाँच फुट का मतलब हो गया पाँच step नीचे उतर गए। पाँच गुणस्थान चढ़ोगे पानी दिखने लगेगा। छठवें, सातवे, स्टेप पर पहुँचे तब तो तुम्हें शीतल पानी की बूँदो की अनुभूति होने लगेगी और आठवें व नवे गुणस्थान में उतरे तब तो ऐसा फव्वारा छूटेगा कि फिर तो आनन्द ही आनन्द है। हमें तो ऐसा लगता है धर्म बड़ा नीरस है, धर्म में कोई आनन्द नहीं है जबकि इस इष्टोपदेश को पढ़कर के हर व्यक्ति को यह समझ लेना चाहिए कि जो आनन्द धर्म में है वो दूसरी जगह नहीं है। धर्म किसे कहते हैं? आत्मा के स्वभाव का नाम धर्म है, जो आत्मा का स्वभाव है उस स्वभाव को जब हम उपलब्ध करेगें तो हम धर्म कर रहे हैं तो हमारे लिए धर्म उपलब्धि हो रही है और वो धर्म ही तुम्हें वास्तव में आनन्द देगा। जो आनन्द यहाँ कहा जा रहा है

आत्मानुष्ठान :

'आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य' जो आत्मा के अनुष्ठान में निश्चिंत हो रहे थे, लीन हो रहे थे उन्हीं के लिए जो परम आनन्द उत्पन्न हुआ था और उसी आनन्द को आचार्य कहते हैं कि यह आनन्द ही वास्तविक आनन्द है और इस आनन्द में ही वह भाव उत्पन्न होगा जो यह बताएगा कि वह आनन्द की अनुभूति दूसरी जगह नहीं है क्योंकि आनन्द अपने में ही है, जिसे कहते हैं- स्वाभाविक आनन्द। स्वभाविक का मतलब-स्वभाव में उत्पन्न होने वाला आनन्द, जिसका अर्थ होता स्वभाव से उत्पन्न होने वाला आनन्द, या कहें बिल्कुल वास्तविक आनन्द, जिसको हम कहते हैं natural joy, natural bliss. जिसे हम कहते हैं, आत्मा के अपने ही भावों से उत्पन्न हुआ, आत्मा का वास्तविक आनन्द, जो उसका वास्तविक स्वभाव है। इसके अलावा जो कुछ भी है वह सब पर भाव है। आनन्द उनको आएगा जो आत्मा के स्वभाव में लीन हुए हैं, परभाव में लीन होने वालों को यह आनन्द नहीं आएगा। आत्मा के जो स्वभाविक भाव हैं, वहाँ तक अपने उपयोग को पहुँचाकर के अपने में जो लीन हो गये तो उनके अन्दर परमानन्द उत्पन्न होता है और उस परमानन्द का ज्ञान आपको कैसे हो? उसकी जानकारी आपको कैसे हो? आचार्य कहते हैं इन योगियों के आनन्द को देखकर के ही तुम उस परमानन्द को जान लेना, अनुमान लगाना। अनुमान कैसे लगायें, उसके लिए एक बहुत बड़ी चीज बताई है, जिन्हें अपने स्वभाव की जानकारी हो गई और जो उसी आत्म स्वभाव में आनन्दित हैं फिर उनके लिए **'न चासौ खिद्यते योगी'**, फिर उस योगी के लिए कभी

स्वभाव में उत्पन्न होने वाला स्वाभाविक आनंद ही वास्तविक आनंद है।

खेद, खिन्नता नहीं आती। खेद खिन्नता तो मन के स्तर पर जीने वाले लोगों को आ सकती है, मन के अनुकूल नहीं हुआ तो खेद खिन्न हो गये, मन के प्रतिकूल हुआ हो तो खेद खिन्न हो लेकिन जो आत्मा के स्तर पर जी रहे हैं उनके लिए खेद खिन्नता कभी नहीं आती क्योंकि पर वस्तु उस आत्मा को छूती नहीं, परभाव उस आत्मा को छूता नहीं और उन्हें अपनी वस्तु की जानकारी, अपने स्वभाव में लीनता, वो सब होने लगी। आचार्य कहते हैं फिर उन्हें किसी भी चीज से खेद खिन्नता नहीं होती है, मन में तो उनके कभी विक्षेप उत्पन्न होता ही नहीं, मन में तो उनके कभी संकल्प विकल्प उत्पन्न होते ही नहीं। इस संकल्प से हमें सुख होगा और इस विकल्प से हमें दुख होगा। ज्यादातर अपने अन्दर सुख और दुख तब होते हैं, जब हम मन में संकल्प कर लेते हैं कि यह करना है तो हम उस संकल्प मात्र से ही सुखी हो जाते हैं।

आपने कुछ संकल्प किया कि जैसे हमें इसका व्यापार factory डालनी है तो उस संकल्प से सुखी हो गये और उस संकल्प में लगे तो वो ही संकल्प और विकल्प आपके लिए सुख और दुख का कारण बनता है। अगर वह संकल्प की हुई बात, अपने विकल्पों से पूरी होती जाये तो वह सुखी होता जाएगा। एक-एक स्टेप पर सुखी होता जाएगा, हमने सोचा था कि वहाँ पर factory डालनी है तो पहले तो जमीन मिल जाए। जमीन मिल गई तो वह सुखी होगा, फिर हमने सोचा, वहाँ पर अपने को factory बनानी है तो बहुत अच्छा architect मिल जाए, एक अच्छा structure बना दे, एक अच्छी design कर दे और वह मिल गया और जैसे ही काम शुरू हुआ inspector आ गया जो उस land lord के लोग होते हैं, व्यवधान डालने वाले लोग होते हैं। वो आये, आपने नगर पालिका में इसकी लिखा पढ़ी की या नहीं की, आपने यहाँ पर काम कैसे शुरू कर दिया या किसी व्यक्ति ने ईर्ष्या के कारण आपके काम में व्यवधान डाला, यह मेरी जगह है, यह लोग बिना वजह यहाँ पर निर्माण कर रहे हैं, अवैध काम है, यह सब। अब बीच में इतना व्यवधान आ गया है, संकल्प जहाँ पर पूर्ण होता हुआ नहीं दिखाई दिया, विकल्प दुख पैदा करने लगा। संकल्प जहाँ पर पूर्ण होता दिखाई देने लगा तो विकल्प पूर्ण होता गया तो सुख होता गया। यह आत्मा को कुछ नहीं हो रहा है, आत्मा तो बेचारी दुखी ही है। आत्मा तो वीतरागी है यह सिर्फ मन के संकल्प, विकल्प और मन के सुख और दुख हैं और इन मन के सुख और दुखों में आत्मा को कुछ नहीं मिल रहा होता है।

संकल्प-विकल्प का जाल :

''ततो गुणो नास्ति च देह देहिनो'' उस देही आत्मा के लिए इसमें कोई उपकार नहीं है, शरीर के ऊपर भी कोई उपकार नहीं है सिर्फ मन के ऊपर उपकार होता चला जाता है। मन को जो अच्छा लगे वह मिलता जाए तो मन खुश और जहाँ व्यवधान पड़ गया बस वहीं पर दुखी हो गया। आत्मा इन सबको केवल अनुभव करता है इन सबके कारण से जब उसको ज्ञान नहीं रहता है कि

कुछ करने का संकल्प-सुख और कार्य ना हो पाने का विकल्प, हमें दुख देता है।

यह मन हमें दुखी कर रहा है तो आत्मा भी उसके साथ दुखी हो लेता है और उसे पता नहीं रहता है कि यह मन हमें इस तरीके से सुखी कर रहा है तो वह उस मन के साथ क्षणिक सुख में भी वह सुखी हो लेता है लेकिन यह सब लक्षण देखे जाएँ तो अपनी बाह्य दृष्टि के लक्षण कहलाते हैं- यह सब बहिरात्मा के लक्षण होते हैं जो अपने चित्त में उत्पन्न हुए संकल्प विकल्पों को अपना मानता है वो बहिरात्मा होता है। जो अपने चित्त के संकल्प विकल्पों से रहित अपना आत्मा को मानता है, वह अन्तर-आत्मा होता है। अन्तर आत्मा यह जानता है कि मनगत सुख और दुख है, यह मनगत संकल्प-विकल्प हैं। आत्मा का इसमें कोई लेना देना नहीं है आत्मा तो इन सबसे परे है क्योंकि आत्मा में यह सारे के सारे संकल्प विकल्प है ही नहीं।

''विलीन-संकल्प-विकल्प-जालं प्रकाशयन् शुद्धनयोभ्युदेति''

आचार्य अमृतचन्द्र जी महाराज समयसार कलशा में कहते हैं जिसके अन्दर समस्त संकल्प और विकल्पों के जाल, माने समूह सब विलीन हो गये, कोई संकल्प नहीं, कोई विकल्प नहीं, उस आत्म स्वभाव की स्थिति में जब यह आत्मा पहुँच जाता है तब शुद्ध नय का उदय होता है। शुद्ध-नय मतलब-शुद्ध नय के विषयभूत जो पदार्थ हैं, शुद्ध नय के विषयभूत जो आत्मा का स्वभाव है उसकी प्राप्ति, उसका उदय तब होता है, उससे पहले तो हमें शुद्ध नय से केवल भावना आती है। आत्मा शुद्ध-नय से शुद्ध है, आत्मा शुद्ध-नय से संकल्प विकल्पों से रहित है लेकिन आत्मा अभी शुद्ध नय से संकल्प विकल्पों से वास्तव में रहित नहीं हुआ केवल अभी उसे जानकारी मिली, उस आत्मा की। रहित जब होगा तब आत्मा वास्तव में ''विलीन-संकल्प-विकल्प-जालम् प्रकाशयम् शुद्ध नयोभ्युदेति'' -अभ्युदय होता है जैसे सूरज का उदय होता है, सुबह-सुबह जैसे एक दम से सूर्य प्रकट होने लग जाता है वैसे ही आत्मा जब अपने ही स्वभाव में स्वभावस्त हो जाती है तो शुद्ध नय का उदय होता है। उस शुद्ध नय में जो स्थित होता है उस व्यक्ति को कहा जाता है यह आत्मा के अनुष्ठान में लीन हो गया, उसको जो परमानन्द आयेगा उस परमानन्द के आने पर उसे अपने मन के, वचन के, काय के क्रियाकलापों से कोई खेद खिन्नता नहीं होगी, न तो उसके मन का संकल्प विकल्प उसे खेद खिन्न कर पाये, न उसके वचनों से किसी से बात चीज होने पर खेद खिन्नता होगी और न उसके शरीर पर कोई किसी भी प्रकार अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति आने पर उसके अन्दर खेद खिन्नता होगी। इतना भीतर जब वह पहुँच जाता है, तब वह जो आनन्द उत्पन्न होता है उसका नाम है- परमानन्द और वहाँ तक आपकी पहुँच, आपका ज्ञान, अभी सोच ही नहीं पा रहा है। जिंदगी में शायद पहली बार सुना हो या अनादिकाल में भी पहली बार सुना हो तो कोई बड़ी बात नहीं है क्योंकि यह आनन्द हमने सुना ही नहीं, समझा ही नहीं, उसको प्राप्त करने के लिए मन में उत्सुकता आयी नहीं। इसी कारण से हमारी आत्मा के अन्दर यह स्त्रोत कभी फूटे नहीं, ऊपर-ऊपर से बस पानी गिर जाता है। शरीर के स्तर तक पानी गिरा तो शरीर ठंडा हो गया और मन की

समस्त संकल्पों और विकल्पों से मुक्त होने पर आत्म-स्वभाव की स्थिति आती है।

अनुकूलता, प्रतिकूलता हो गयी तो मन ठंडा हो गया बस, 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' या 'कठौती में गंगा तो मन चंगा' दोनों ही बातें हैं। मन चंगा हो गया तो हमने समझ लिया, हमारा जीवन बड़ा अच्छा चल रहा है, सुख पूर्ण चल रहा है, बस ऐसा ही चलता रहे। प्रभु की भक्ति गुरु की भक्ति, इन्हीं भावनाओं से होती रहती है। भगवन्! सब कुछ ऐसे ही व्यवस्थित चलता रहे ताकि अपना सुख पूर्वक जीवन व्यतीत हो जाए।

जीवन बीमा :

यह जीवन तो हो जाएगा लेकिन आगे के लिए क्या होगा। जो आपने इस जीवन में कमाया था, वो आपने इसी जीवन में खा लिया, आगे करने के लिए क्या ले जाओगे? हम देखते हैं कि हर घर में एक योजना पहुँचाई जाती है, जिसे कहते हैं- जीवन बीमा, life policy, जीवन बीमा की योजना चलती है, उसमें आपकी security हो गई किसी भी चीज की, वस्तु की। पहले तो हम यही सुनते थे कि मकान का बीमा, दुकान का बीमा होता है फिर धीरे-धीरे सुनने में आया कि अपनी गाड़ियों का भी बीमा होता है, फिर सुनने में आया कि अपने बच्चों का, अपनी पत्नी का भी बीमा होता है। सबने करवा रखा होगा, सब समझदार हैं। अचानक से किसी की मृत्यु हो जाये, accident हो जाये तो मेरे मरने के बाद उसको मिलता रहेगा या उसके कुछ हो जाने के बाद उसके एवज में हमें कुछ मिलता रहेगा, दोनों ही बातें होती हैं ना, इसी का नाम बीमा है। देखो, कितनी समझदारी से आपका जीवन चल रहा है, हर चीज की आपने सुरक्षा कर रखी है जो आपके आस-पास है जैसे मकान, गाड़ी, दुकान और उस घर के अन्दर जो भी चीजें हैं फ्रिज, कूलर है, हर चीज का आजकल बीमा होता है और कभी भी कोई चीज घात को प्राप्त हो जाये, किसी में कुछ खराबी हो जाये तो तुरन्त ले जाकर के रख दी, उसका बीमा है, इसके एवज में हमें इतना मिलेगा। यह हम हर चीज की सुरक्षा कर रहे हैं और हर चीज की एक लम्बी सुरक्षा का हम इंतजाम करने के लिए हम बीमा कर रहे हैं। इन चीजों में कोई भी ऐसी चीज नहीं है जो तुम्हारे मरने के बाद तुम्हारे साथ में जाये, उस चीज का कोई बीमा किया है, जो तुम्हारे मरने के बाद तुम्हारे साथ में जाये? ऐसी कौनसी चीज है? उसका बीमा कौन करेगा? कौनसी bank में कराओगे? उसको तो इसी धर्म की bank में करवाना पड़ेगा। ऐसी जिनेन्द्र भगवान की यह जो खुली bank चल रही है, इसमें जो व्यक्ति अपनी आत्मा को अवगाहित करेगा, उसका बीमा हो जायेगा। जब तक तुमको मोक्ष ना मिले तब तक के लिए इतनी life time durability है इसकी। आपके पास में हिम्मत तो हो एक बार, आपके मन में यह श्रद्धान बन जाये कि सुख तो आत्मा का ही होता है, आनन्द तो आत्मा का ही होता है, यह मन और तन के सुख तो ऊपर-ऊपर के हैं। जब तक नहाये तो तन स्वस्थ है और जब तक खाया तब तक यह मन आनन्दित है बाकी फिर बाद में तो तन भी दुखी है मन भी दुखी है। आत्मा के अन्दर का आनन्द और सुख कहाँ है? इस बात की सही श्रद्धा और सही जानकारी और सही वस्तु

हर व्यक्ति परिवार एवं वस्तुओं का बीमा कराता है पर अपनी आत्मा का नहीं।

का ज्ञान हो जाये कि हमारी आत्म वस्तु ही हमारी है बाकी सब पर वस्तु है, ऐसा श्रद्धान अगर आपको इस जिनवाणी के माध्यम से बन जाये तो आचार्य कहते हैं कि एक बार अपने अन्दर श्रद्धान बना लो बाकी की गारंटी हमारी। अपनी आत्मा के पदार्थ का, आत्म वस्तु का, एक बार जैसे ही तुमने निर्णय किया, तुम्हारी यहाँ पर policy अपने आप बनने लगेगी। कोई भी तुम्हे उसके लिए भुगतान नहीं करना है, कोई व्यक्ति इस बैंक का तुम्हारे पास में नहीं जायेगा। कुछ नहीं देना पड़ेगा बस एक बार तुम अपना interest बना लो। उधर interest देना पड़ेगा। एक interest होता है ब्याज और एक का मतलब रुचि। उधर बीमा के लिए installment देना पड़ेगा।

इधर आचार्य कहते हैं, तुम केवल बस interest करो इस policy में बस जैसे ही तुम्हारा interest आयेगा, इस policy में अपने आप life time तक का बीमा होगा। एक बार यह अगर श्रद्धा हो जाती है, आत्मा में ही सच्चा आनन्द है, जीव स्वरूप ही अपना स्वरूप है, जीव आत्मा ही अपनी आत्मा है, इसके अलावा कुछ भी मेरा नहीं है और मैं अपने मन के संकल्प विकल्पों से अपनी आत्मा को धोखा दे रहा हूँ, यह बात श्रद्धा में जब गहरी बैठ जाएगी, वहीं पर वह मिथ्यात्व और अनंतानुबंधी कषाय टूट जाएगी, सम्यक् दर्शन होगा और सम्यक् दर्शन होते हुए ही एक साथ आपके लिए फिक्स हो जायेगा, अनंतकाल तक के लिए आपका बीमा हो जायेगा। आप एक बार उस interest को प्राप्त करके उसको छोड़ भी दोगे लेकिन किसी भी bank में आपने एक बार

सच्ची श्रद्धा एवं सम्यग्दर्शन से अनंतकाल तक के लिये हमारा बीमा हो जाता है।

बीमा करवा लिया और बीच में छोड़ दिया तो दुबारा नहीं मिलेगा अगर आपने उसको जमा नहीं कराया लगातार लेकिन यह इतनी अच्छी bank है एक बार आपने interest पैदा कर लिया, एक बार अगर सम्यग्दर्शन हो गया तो आप उसे छोड़ भी दोगे तो भी आपकी मुक्ति निश्चित है। आपको आत्म-स्वरूप का आनन्द जीवन के अन्त तक निश्चित है। अर्द्धपुद्गल काल से ज्यादा आपकी आत्मा इस संसार में नहीं रहेगी और अन्त तक आपको यह आत्म-स्वरूप का परमानन्द जरूर उपलब्ध हो जाएगा, यह बात बिल्कुल गारंटी के साथ हम आपको बता रहे हैं इन जिनेन्द्र देव की वाणी का हवाला देते हुये। इसी bank पर अपना interest बना लो बस बाकी सब बीमे तो हो गये।

अब तो यह भी हो गया कि अपनी किडनी, लीवर, आँख आदि का भी बीमा कराने लगे हैं। मरने के बाद यह भी बिक जाये, यह भी किसी के काम में आ जाये, यह भी चार-छः लाख की आदमी की कीमत हो तो घर वालों को उससे भी सुख मिलता रहेगा, सबको मिलता रहेगा लेकिन तुमको क्या मिलेगा, यह भी तो सोचो। आदमी सबके बारे में सोच रहा है लेकिन पहले यह तो सोच तुझे क्या मिल रहा है और जब तक यह नहीं सोचेगा कि इसमें हमें क्या मिल रहा, तब तक तेरा मोक्षमार्ग शुरू नहीं होगा। तेरी आत्मा का आनन्द, तेरी आत्मा की बात, तेरी अपनी कहानी शुरू नहीं होगी। इसलिए आचार्य कहते हैं इन चीजों को समझो कि आत्मा के आनन्द में ही अपना आनन्द समझना बाकी विषयों के आनन्द तो ऐसे ही मानना है जैसे अभी आप पढ़ रहे हो।

स्वास्थ्य सुख :

''क्षुदादिदुःख-प्रतिकारतः स्थितर्न चेन्द्रियार्थ-प्रभवाल्प-सौख्यतः।''

इन क्षुधा आदि दुखों को दूर कर रहे हैं हम। यह तो अपने काम चलाने के लिये कर रहे हैं, क्षुधा हमें हो गई, हमने उसका प्रतिकार कर लिया, प्यास लगी, हमने उसका प्रतिकार कर लिया, मन में अनेक प्रकार के लोभ उत्पन्न हुये, हमने उसका प्रतिकार कर लिया। इन प्रतिकार करने से तुम्हारा वास्तविक इलाज नहीं हो पा रहा। इन प्रतिकार करने में कोई तुम्हारे सुख की स्थिति नहीं आ रही है। तुम्हारा जीवन तो बस ऐसा ही जा रहा है कि एक रोग यह है, इसकी यह दवाई है खा लो, रोग बढ़ते जा रहे हैं, दवाई बढ़ती जा रही है, दुखी होते चले जा रहे हैं। आपको केवल दवाइयाँ खाने में सुख आ रहा है, इससे रोग ठीक हो जाएगा। इतना सुख आ रहा है बस वास्तविक सुख नहीं आ रहा है, सुख मतलब स्वास्थ्य सुख और स्वास्थ्य का मतलब स्व में स्थित होने पर जो आपके अन्दर स्वास्थ्य आएगा, उस स्वास्थ्य का सुख तो आपको पता ही नहीं। आपको केवल बस उस रोग के निदान करने का ज्ञान है। आप बार-बार उस रोग की दवाइयाँ खाते चले जा रहो हो और महसूस कर रहे हो कि रोग ठीक हो जाएगा वस्तुतः रोग न जड़ मूल से मिट रहा है, न आपके अन्दर स्वास्थ्य आ रहा है। जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक दुनिया में कहीं भी रहोगे तुम्हारे लिये वास्तविक सुख की स्थिति नहीं बनेगी, यह सुख कहलाता है independent & happiness. कुछ नहीं भी हो हमारे पास में तो भी हमारी आत्मा सुखी रहे, ऐसी independent & happiness. जो

सुख जो प्रसन्नता स्वयं से उत्पन्न हुई हो, किसी दूसरे के कारण से नहीं हुई हो, आप कभी आँख बन्द करके सोचना, ऐसी कौनसी प्रसन्नता हमारे मन में कब आती है जो किसी दूसरे के कारण से नहीं, सिर्फ अपने कारण से भीतर से आ रही है। आँख बंद करके एक बार अपने मन से पूछो, अपने मन में सोचो, किसी भाव से हमारे भीतर से वह सुख उत्पन्न होता है। अभी तक तो जितने सुख हुये वो सब अच्छी जॉब मिल जाये, अच्छी पत्नी मिल जाये, बेटा अच्छा हो जाये, घर अच्छा बन जाये, यह सब सुख अभी तक मिले हैं, सब पर के कारण से मिले हैं। अपने मन में क्षणिक विचार तो करो कि स्व से हमने कब सुख माँगा और जब माँगा ही नहीं तो मिलेगा कैसे। तभी अपनी आत्मा से कहो- हे! आत्मान् तेरे अन्दर सुख का भण्डार, सुख का लबालब साम्राज्य भरा पड़ा है और आज तक हमें उसका ज्ञान क्यों नहीं हुआ? आज तक उसकी ओर हमारा मन क्यों नहीं गया? आत्मा से ही पूछो, जैसे-जैसे आप अपनी आत्मा से पूछोगे, अपने आप आपकी आत्मा के ऊपर आपको तरस आएगा, अभी अपनी आत्मा के लिये तरस नहीं आ रहा है। जब हम किसी दूसरे को दुखी देखते हैं तो हम उसको देखकर के भीतर से दुखी हो जाते हैं, ऐसे ही आप अपने ही कारणों से अपनी ही ओर देखें और अपनी ही आत्मा से पूछें तो आपको अपनी आत्मा पर तरस आएगा। आपको यह महसूस होगा कि वास्तव में हमें केवल अपनी ही आत्मा के बारे में सोचना चाहिए, यह मनुष्य जन्म हमें इसलिए मिला है, अपने ही स्वरूप का ज्ञान, अपने ही परमानन्द के भाव की ओर उन्मुख होना चाहिए। इस प्रकार का भाव आप जब भीतर से पैदा करेंगे तब जाकर के वह पत्थर हटेंगे, भीतर से वह स्रोत फूटेगा और तब आपकी आत्मा में भी ऐसा आनन्द उत्पन्न होगा जिस आनन्द के उत्पन्न होने पर कर्म फिर बंधते नहीं है।

'**कर्मेन्धनमनारतम्** ', उद्यम माने बहुत अधिक मात्रा में कर्म रूपी ईंधन, जो कर्म हमारी आत्मा के सुख को जलाता था। जब आत्मा के अन्दर सुख उत्पन्न होगा तो फिर वह कर्म को जलाएगा। जब कर्म रूपी ईंधन निरन्तर जलता रहेगा तो आत्मा उसको देखकर के आनन्दित होगी कि यह पर द्रव्य जल रहा है, पर द्रव्य अपने से हट रहा है लेकिन अपने आत्म-द्रव्य पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा है। सोना हो और सोने के ऊपर किट्टकालिमा जम गई हो, भीतर उसके लोहा भी घुस गया हो और उस सोने को जब अग्नि में जलाया जाये तो वह सब मैल ऊपर से घुल-घुल करके हटेगा, टूटेगा, भीतर से लोहा भी बाहर निकलेगा और जितना-जितना लोहा है वो अलग अलग होता-होता, अपने स्वभाव में आ जाएगा बाकी का जितना भी extra material होगा, वह सब हट जाएगा और स्वतः शुद्ध स्वर्ण प्राप्त हो जाएगा। ऐसे ही आत्मा में जब स्वयं का आनन्द उत्पन्न होता है तो यह कर्म रूपी ईंधन जलते हैं। अनारतम् माने निरंतर जलते हैं और उससे योगी कभी खेद खिन्न नहीं होता।

'न चासौ खिद्यते योगी' क्यों नहीं खेद खिन्न होता 'बहिर्दुःखेष्वचेतनः' इसकी चेतना बाहरी दुःखों में जुड़ती ही नहीं, बाहरी दुखों में जाती नहीं इसलिए वह बाहरी दुखों के प्रति बिल्कुल

आत्मा के अंदर सुख का लबालब साम्राज्य है पर हम उससे अनजान हैं।

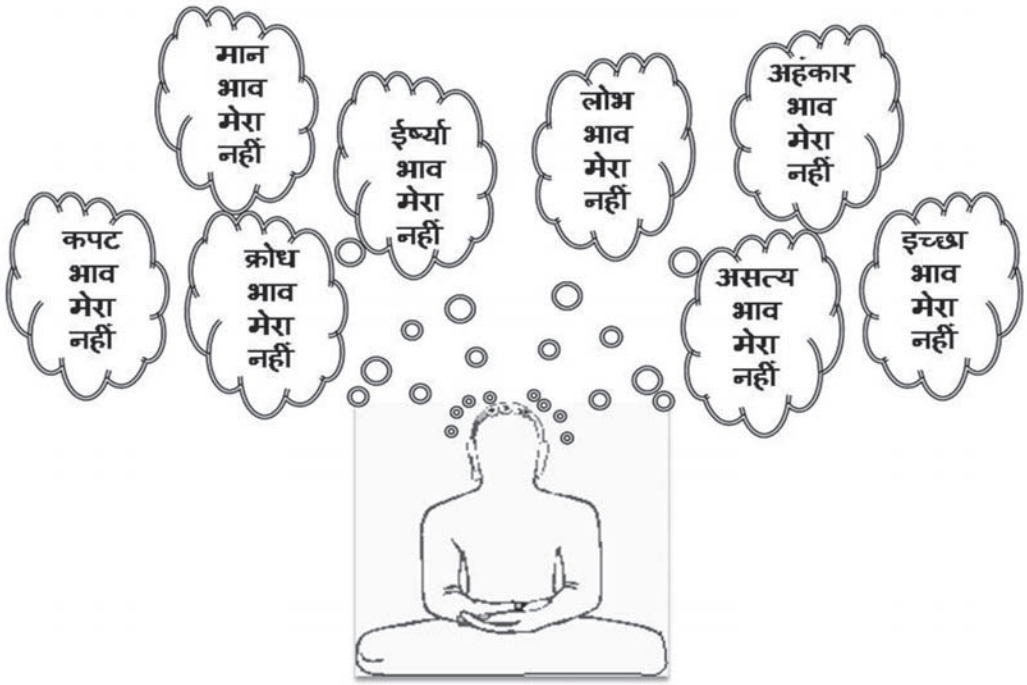

सामायिक भावना

अचेतन हो जाता है। बाहरी शरीरगत उसके पास जो कुछ भी अनुकूलता, प्रतिकूलता होगी उसका उसे कोई ख्याल नहीं रहेगा। इन्हीं कारणों से योगी लोग बड़े-बड़े उपसर्गों को जीत लेते हैं।

स्थितप्रज्ञ योगी :

जब हम पढ़ते हैं पुराण ग्रन्थों में, आश्चर्य होता है, सुकुमाल मुनि को वह शियालिनी खा रही थी, कैसे उन्होंने सहन किया होगा, कितना इसके लिए दुख हुआ होगा। जब हम उसको पढ़ते हैं तो अपने अन्दर ऐसे विचार आते हैं लेकिन जब हम भीतर की बात जानेगें तो अपने को समझ में आएगा कि उन योगियों को अपने आत्म सुख का स्रोत मिल गया। बहिर्दुखों के प्रति वह बिल्कुल अचेतन हो जाता है और अपनी चेतना को इतना सिकोड़ लेता है कि बस अपनी ही चेतना को चेतना में महसूस करते हैं बाकी के शरीर को वह अचेतन पदार्थ के समान पर द्रव्य जानकर के देखते रहते हैं। उन्हें उसके दुखों से भी कोई दुख नहीं होता है, यह इसी प्रकार के आनन्द में लीन होने से हो जाता है। आपको तो सुकुमाल मुनि महाराज की कहानी पढ़ने में भी डर लग सकता है। लेकिन जो इस स्थिति से गुजर रहे हैं, उन्हें उनमें भी आनन्द आ रहा है और वह आनन्द इसी चीज का है। वह भीतर परमानन्द है जो इन सब चीजों से भिन्न है, जो इन सब चीजों में बह नहीं रहा है। उस परमानन्द के स्रोत को जो प्राप्त कर लेता है, उसे मन, वचन, काय से कोई खेद खिन्नता नहीं होती। वह आत्म-स्थित योगी कहलाता है, इसी को बोलते हैं- स्थित प्रज्ञ। एक शब्द होता है स्थितप्रज्ञ

योगी की चेतना बाहरी दुखों में जुड़ती नहीं इसलिये वे सारे उपसर्ग जीत लेते हैं।

मतलब जिसकी प्रज्ञस्थित हो गई हो, जिसका विवेक, जिसका प्रकृष्ट ज्ञान, अपने ही स्वरूप में स्थित हो गया हो वह कहलाता है स्थितप्रज्ञ और उस स्थितप्रज्ञ के लिये ही यह स्थिति बनती है कि वह किसी भी प्रकार के कर्म-फलों से अपने अन्दर न सुख न दुख का वेदन करता है। वह अपने स्वभाव में रहा आता है कभी अगर आपकी कोई चीज खो गई और वह खोई हुई चीज अचानक से मिल जाये तो आप उसको छीन कर अपने पास लेने का प्रयास करते हो। ऐसे ही अपने को जब अपने आत्म स्वरूप का ज्ञान हो जाता है तो फिर अपनी आँख खुल जाती है कि नहीं यह शरीर मेरा नहीं था, मैंने इसको अपना मान लिया था, यह तो पराया ही है। अब इसमें जो हो रहा है, होने दो, हमें इससे कोई मतलब नहीं। इस प्रकार की परिणति इस तरह के विश्वास और श्रद्धान से बनती है और उसी श्रद्धान के लिये यहाँ प्रेरित किया जा रहा है कि आप अभी यथायोग्य, यथा-शक्ति, अपने मन में इस प्रकार की परिणति लायें। श्रद्धा और ज्ञान की परिणति तो एक गृहस्थ भी बना सकता है, भले ही इस प्रकार की अनुभूति नहीं हो तो कोई बात नहीं। अगर आपको श्रद्धान और ज्ञान हो जाएगा तो उसमें भी बहुत आनन्द आएगा क्योंकि जब किसी चीज की वास्तविक श्रद्धा और ज्ञान हो जाता है तो अपने अन्दर भी लगने लग जाता है कि यह मैंने दूसरे की चीज ग्रहण कर रखी है, यह अपनी नहीं है। अपने मन में उठने वाले हर एक भावों को देखो कि यह भाव मेरा है कि पर का है। आपके अन्दर क्रोध आया, यह मेरा भाव है या पर का। कषाय क्रोध कर्म के कारण से उत्पन्न हुआ, यह मेरा भाव नहीं है। आपके अन्दर किसी को लेकर अहंकार हुआ है, यह पर भाव है, यह मेरी आत्मा का भाव नहीं है। किसी भी तरह का आपके अन्दर काम-भाव उत्पन्न हुआ, इच्छा उत्पन्न हुई, वह इच्छा भी लोभ कषाय के उदय से उत्पन्न होने वाला भाव है, यह मेरा भाव नहीं है। इन भावों को आप दूर करके अपने आप में केवल यह जानने का प्रयास करो कि मेरा भाव कौनसा है। ऐसे-ऐसे करते-करते आपकी सामायिक हो सकती है केवल इतना ही कहते रहो अपने मन से, यह भाव मेरा नहीं, यह भाव मेरा नहीं, यह क्रोध, मान, लोभ, मेरा नहीं, यह छल, कपट, ईर्ष्या मेरा भाव नहीं। आप उस भाव को अगर अपने ज्ञान से इस रूप से हटाओगे तो वह भाव भी मन्द पड़ जाएगा, भीतर से हट जाएगा क्योंकि उस समय पर आप ज्ञान पूर्वक हटा रहे हो। यह बहुत बड़ी प्रक्रिया है अपने अन्दर के विकार को जीतने की। ध्यान के माध्यम से अगर आप अपने मन को इस तरह से जागृत करके उस भाव को दूर करते रहोगे तो आपके मन के अन्दर का वह संस्कार हटता चला जाएगा व भाव दूर होता चला जाएगा। अगर आप परेशान होंगे तो वह भाव दुखी नहीं होगा, वह भाव और बढ़ेगा जैसे ही आप शांत होकर के सोचोगे कि यह भाव मेरा नहीं है तो आपका क्रोध शांत होकर के गिर जाएगा। कहीं आपको और काम करने की जरूरत ही नहीं है। इतनी भीतर से जागृति आई कि आप देखोगे कि कषाय वहीं पराजित हो गई है क्योंकि आपका मन उस समय पर जागृत हो गया। आपने अपने मन की जागृति से, उस कषाय को पराजित कर दिया। यह अपने अन्दर उन विकारों को जीतने का एक माध्यम है। ध्यान में भी इसी प्रकार से मन को लगाया जाता

श्रद्धा, ज्ञान एवं मन की जागृति द्वारा कषायों को, विकारों को जीता जाता है।

है और मन अगर नहीं भी लग रहा हो तो परेशान होने की जरूरत नहीं है, उसे कहो अब आ जा, फिर गया, अब वापिस आ जा, अर्हं लिखा हुआ है वहाँ आ जा। यही अभ्यास करना पड़ता है आप अगर एक बार ऐसा अभ्यास करना शुरू कर दोगे तो मन आपके कन्ट्रोल में होने लगेगा, कोई भी विकार आपको परेशान नहीं करेगा। भीतर से अपने आप शांति आपके अन्दर आने लगेगी। लोग जिंदगी भर सब प्रकार के परिश्रम करने के बाद में भी यह नहीं जान पाते हैं कि मन की शांति, आत्मा की शांति कैसे मिलती है? कैसे मिलनी चाहिए? आप ध्यान का अभ्यास करते रहो। धीरे-धीरे जब आप मन को जानने लगोगे तो आपको आपका मन पकड़ में आने लगेगा कि इतनी देर तक हम मन को रोक लेते हैं। इतनी देर में ही यह मन चला जाता है। आपकी गिनती में आने लगेगा, जहाँ आपके यह गिनती में आने लगा, समझ लो आपने बहुत बड़ी विजय प्राप्त करने के लिये तैयारी कर ली। जैसे ही आपके अन्दर यह भाव आएगा, आपके अन्दर महसूस होगा कि यह मन जाता तो है लेकिन हम इसको बुलाने में भी समर्थ हैं लेकिन यह बहुत देर तक नहीं टिकता। कोई बात नहीं, जितनी भी देर टिकता है, उतना तो समझ में आता है तो बार-बार उसको टिकाने का प्रयास करोगे। इस तरह की प्रक्रिया से ही आपका मन स्थिर होगा। मन स्थिर होगा तो आत्मा में जाएगा, अस्थिर होगा तो वह शरीर में और बाहरी संसार में डोलेगा। जिनका मन स्थिर नहीं है, उनके लिये यह परमानन्द की बातें ख्यालों में भी नहीं आने वाली और जिनका मन स्थिर होगा, वह तुरन्त अपने मन को लगा लेंगे। जो मन की स्थिरता का एक बार आनन्द आपके चखने में आ जाए तो आचार्य कहते हैं कि वह आनन्द आपको बार-बार अपने आप बुलाता रहेगा, उस आनन्द की ओर आप बार-बार आते रहेंगे।

''रस विहीन आतम रस अनुपम
जिन अनुभव रसिया ने
एक बार चाखे जा रस जो
लगे भोग रस खारे
अरिहंत भजन कर प्यारे,
अरिहंत भजन कर प्यारे,
जा करने ते पातक भाजे
दूर होय अंधियारे
अरिहंत भजन कर प्यारे''

ऐसा अरिहंत का भजन करो, भीतर के अंधकार अपने आप जाते रहें, पातक माने पाप दूर भागते रहें और जब आप वास्तव में ऐसे अरिहंत भगवान की भक्ति में लीन होकर के उनका कभी ध्यान करोगे तो यह सब आपको अनुभूत होगा। आत्मा कोई रस नहीं है, आत्मा तो रस से रहित है लेकिन आत्मा का जैसा रस है वैसा दूसरे पदार्थ का रस नहीं है।

ध्यान से मन स्थिर होकर आत्मा की ओर उन्मुख होता है।

''रस विहीन आतम रस अनुपम''

रस तो जो हमने सुन रखा है, वह रस को समझते हैं हम तो, जैसे मीठा खट्टा रस, दूसरे रस का तो आपको पता ही नहीं और जो बिल्कुल इससे रहित है ऐसा कह दिया जाये तो आपका मन होगा कि रस ही नहीं है आत्मा में तो आत्मा से क्या लेना-देना जबकि वह आत्मा का जो रस है वो इन पदार्थों में नहीं होता है, अपनी आत्मा को रसिया बना लो। ऐसे रसिया बन जाओ कि बस अपने अनुभव के रसिक बनो, उस रस का अनुभव होने पर जो बाकी है 'लगे भोग सब खारे' क्योंकि एक बार उस आत्मा का रस चखने के बाद में यह सब चीजें फीकी लगेंगी, आपको यह अनुभूति खुद करनी है। यह अनुभूति करने के लिये आचार्य कहते हैं कि अरिहंत भगवान का भजन किया जाता है, अपनी आत्मा का भजन किया जाता है। इसी भजन से ही यह अनुभूतियाँ होती हैं। इसी प्रकार से करने से, हमारे अन्दर यह रस उत्पन्न होते हैं। निज अनुभव का रस पैदा करो, अपने ही अनुभव से अपने अन्दर के रसिया बनो और अपने ही रस को खुद बढ़ाओ। यह जब आपको होने लगेगा, तब आप वास्तव में श्रद्धान और ज्ञान से उस ओर उन्मुख होंगे जिस ओर अनादिकाल से आप उन्मुख नहीं हो पाये। वह है, सिर्फ अपनी ही आत्मा पर श्रद्धान और अपनी ही आत्मा पर ज्ञान और अपनी ही आत्मा की स्व परिणति पर ध्यान देना। यही मेरा भाव है बाकी के सब परभाव हैं। आप पर-भाव को अपना मानोगे तो उस भाव से दुखी हो जाओगे और आप हर भाव को पर-भाव के रूप में मानोगे तो आपके अन्दर दुख नहीं होगा। हम जितनी भी परेशानियाँ ओढ़े हुए हैं, सब पर-भाव की परेशानियाँ हैं, स्व भाव में कोई परेशानी है ही नहीं। जो बाहरी लेन-देन है, वो सब पर लेन-देन है अपनी आत्मा का लेन-देन नहीं है, न तो उसकी आत्मा से अपने को मिलता है, न अपनी आत्मा से उसको कुछ मिलता है। आत्मा में तो कुछ लेन-देन है ही नहीं। जिस व्यक्ति के करोड़ों का कर्जा है और वह स्व भाव में रहता है तो सुखी रहता है। वह कभी आत्महत्या करने की सोचेगा ही नहीं। आज आदमी किसी कर्ज में पड़ जाता है तो यही सोचता है कि अपना जीवन समाप्त कर लो, खेल खत्म हो गया। इस समय तो यह खेल खत्म हो गया लेकिन फिर वह खेल वापस शुरू हो जाएगा। एक बार अपने भीतर जाकर उस खेल को समझने की कोशिश तो करो।

''आप खिलाड़ी आप ही बनो खिलौना खेल''

आप ही खिलाड़ी हो, आप ही खेल हो, आप ही खिलौना हो, यह जब भीतर से स्वयं से स्वयं के लिये स्वयं के द्वारा होने लगता है तो फिर आपको पता पड़ेगा कि यह सब बाहर के खेल अपने मन को लुभाने के लिये थे। इनसे अपने मन में कोई भी आक्षेप-विक्षेप अब उत्पन्न नहीं होता तो अब अपने लिये यह खेल कोई काम के नहीं हैं। ऐसे खेल खेलने के लिये आपका मन होगा तो आपको अच्छा लगेगा। अपने मन की गति को सम्भालो, मन की गति को रोको और उसे ध्यान के माध्यम से बार-बार अपनी आत्मा में लगाने का पुरुषार्थ करो, प्रयास करो।

अरिहंत भगवान की भक्ति से अंधकार नष्ट होता है।

मोक्षाभिलाषियों का कर्त्तव्य

49

अविद्याभिदूरं ज्योतिः परं ज्ञानमयं महत्।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं तद्दृष्टव्यं मुमुक्षुभिः॥

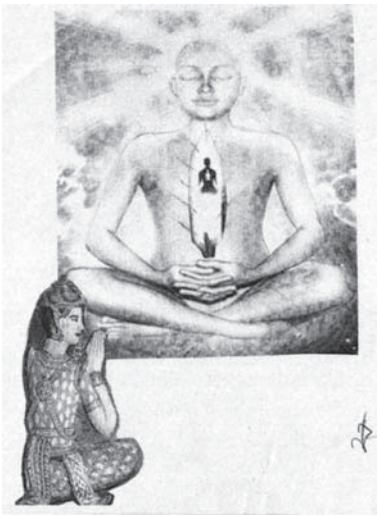

अन्वयार्थ—(अविद्याभिदूरं) अज्ञान-अन्धकार को नष्ट करने वाली **(महत् ज्ञानमयं)** महान् ज्ञानरूप **(परं ज्योतिः)** उत्कृष्ट ज्योति **(मुमुक्षुभिः)** मोक्ष अभिलाषी पुरुषों के द्वारा **(तत् प्रष्टव्यं)** वह पूछने योग्य है **(तत् एष्टव्यं)** वह चाहने योग्य है **(तत् दृष्टव्यं)** वह दर्शनीय या अनुभव करने योग्य है।

- **मुमुक्षु**
- **केवलज्ञान ज्योति**
- **वर्तमान में समाधि**

मुमुक्षु :

आचार्य श्री पूज्यपाद जी महाराज अब इस ग्रन्थ में अन्तिम सीख देते हुए कह रहे हैं यदि आप मुमुक्षु बन गये हो, मुमुक्षु मतलब आपके अन्दर अगर मोक्ष की इच्छा बन गई हो तो आप हमेशा उस परम ज्योति की ओर देखें, उस परम ज्योति का ध्यान करें, जो परम ज्योति ज्ञानमय है। वह ज्ञानमय ज्योति- 'अविद्याभिदूरं', अविद्या का नाश करने वाली है 'ज्योतिः परं ज्ञानमयं', वह परम, उत्कृष्ट ज्योति है, ज्ञान मय है। 'महत्', माने बहुत विशाल है 'तत्प्रष्टव्यं', उसी के बारे में आपको पूछना चाहिए 'तद् एष्टव्यम्' उसी की आपको इच्छा करनी चाहिए, 'तद् दृष्टव्यं' और उसी को आपको जानना चाहिए और देखना चाहिए। ऐसी अगर आपके अन्दर मोक्ष की इच्छा हुई हो तो आप अन्तिम प्रयत्न यह करें। इसका यह सामान्य सा अर्थ हुआ। ज्योति मुख्य है, कभी भी हमने ज्योति सुना है या देखा है तो ज्योति का मतलब हम समझते हैं- दीपक जैसे ज्योति। आत्मा के अन्दर ज्ञान हो, केवलज्ञान को भी ज्योति की उपमा दी गई है क्योंकि ज्योति जिस प्रकार से प्रकाशमान रहती है और जिस प्रकार से वह ज्योति भी हमको दिखाई देती है और उस ज्योति के आस-पास पदार्थ भी हमको दिखाई देते हैं, उसी प्रकार से अपने ज्ञान में, उस ज्ञान की ज्योति में, सारे लोक के पदार्थ दिखाई देने लग जाते हैं। इसलिए इस ज्ञान को ज्ञान-ज्योति कहा जाता है। जो आप यहाँ पर कहीं किसी सभा में देखते हैं, दीपक की ज्योति जलाई जाती है, दीप प्रकाश उत्पन्न किया जाता है वो एक रूपक है कि ऐसी ही केवलज्ञान रूपी ज्योति हमारे अन्दर विद्यमान है। वह ज्ञान ज्योति ही परम ज्योति है, परम प्रकाशमान है। आप कल्पना कर सकते हैं, अपने मन में भावना कर सकते हैं, एक ऐसी ज्योति जो पुद्गल में नहीं है, केवलज्ञान मय है। हमने जितने भी प्रकाश ज्योति देखी वो सब पुद्गल पदार्थ की है, प्रकाश भी होता है तो वह पुद्गल की ही पर्याय है। जैसे **'दीपस्तमः पुद्गल भावतोऽस्ति'**

वह पुद्गल के भाव के साथ में ही वह दीपक का प्रकाश होता है यानि जो भी हमें प्रकाश दिखाई देता है, वह सब पुद्गल की परिणति है लेकिन चैतन्य की परिणति हमें कभी भी बाहरी आँखों से दिखाई नहीं देगी। वह चैतन्य रूपी ज्योति तो हमें अपनी आँख बंद करके ही दिखाई देगी और वह जो दिखाई देगी तो वह आँख के माध्यम से भी नहीं देखने आने वाली, मन के माध्यम से भी नहीं देखने आने वाली, वह तो मन के शांत होने पर अपने अन्दर प्रकाशित होती हुई, संवेदन में आती हुई दिखाई देगी। इसलिए उस ज्ञान को ज्योति-स्वरूप कहा जाता है, जैसे आपको यह आकाश दिखाई दे रहा है। यह आकाश में भी और कल्पना करो कि आकाश की तरह वह आत्मा है। जैसे हम इस आकाश को पकड़ नहीं सकते हैं, वैसे ही हम उस आत्मा को पकड़ नहीं सकते। यह आकाश तो अचेतन है लेकिन आत्मा चेतन है तो आकाश में और आत्मा में यह एक गुण

ज्ञानमय परम ज्योति हमें बंद आँखों से, शांत मन में, भीतर से प्रकाशित होगी।

अधिक हो गया कि आत्मा तो चेतन है और आकाश अचेतन है लेकिन आत्मा है उस आकाश की तरह ही निर्मल, अमूर्त है। उस अमूर्त आत्मा में, उस चेतना में जो ज्ञान भरा हुआ है, वह ज्ञान भी पुद्गल से अपना कोई सम्बंध नहीं रखता है उस ज्ञान का नाम ही है- ज्योति। उस ज्ञान में ही सब कुछ प्रकाशमान होता है, उस ज्ञान में ही सब कुछ दिखाई देता है इसलिए उस ज्ञान को ज्योति की उपमा दी है। वह ज्ञान ज्योति जहाँ है, वहाँ पर पाप नहीं होगा, मोह नहीं होगा।

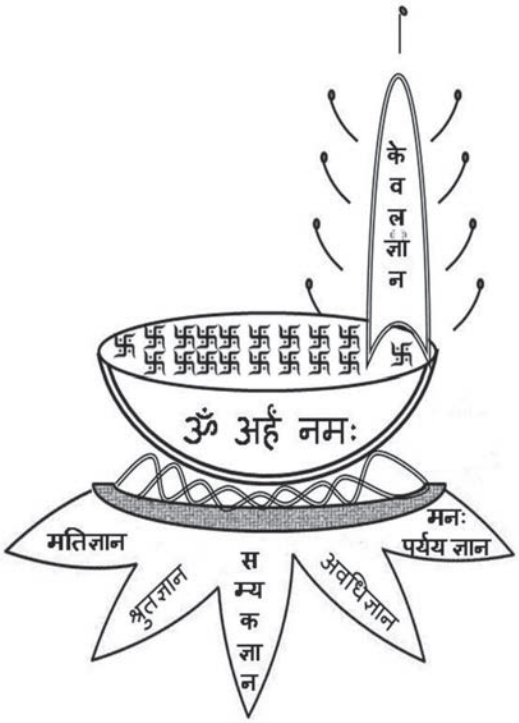

केवलज्ञान ज्योति :

जब आत्मा के अन्दर पाप रूपी मोहरूपी अंधकार निकल जाता है, तब वह ज्ञान ज्योति प्रकट होती है। सम्यग्ज्ञान को ज्ञान ज्योति नहीं कहा, केवलज्ञान को ज्ञान ज्योति कहा है। सम्यग्ज्ञान तो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान है लेकिन यह ज्ञान ज्योति नहीं है, ज्ञान ज्योति तो केवल केवलज्ञान ही होता है। उस केवलज्ञान ज्योति में यह अपने आप सभी पदार्थों को जो छलकता है, एक साथ स्पष्ट रूप में होता है तो उसके लिए ज्योति की उपमा देकर के कहते हैं कि उस केवलज्ञान की ज्योति के बारे में ही आपका अब मन लगना चाहिए भले ही अपने मतिज्ञान, श्रुतज्ञान से वो दिखाई ना दे लेकिन अपनी श्रद्धान में, अपने ज्ञान में उस ज्योति को देखने की ललक उत्पन्न करनी चाहिए।

''ज्योतीरूपं दुरितनिवह-ध्वान्तविध्वंस-हेतुम्
त्वामेवाहुर्जिनवर चिरं, तत्त्वविद्याभियुक्ताः॥''

आचार्य वादिराज महाराज हुये हैं, जिन्होंने एकीभाव स्तोत्र लिखा है, उस स्तोत्र की ये दो लाइन हैं। भगवान की भक्ति भी कर रहे हैं तो भगवान की भक्ति करते हुये भी भगवान ज्योति स्वरूप दिखाई देना, प्रकाश की ज्योति स्वरूप नहीं, केवल-ज्ञान ज्योति-स्वरूप। अपने अंदर वह ऐसी light रखे हुए हैं कि आत्मा प्रकाशमय हो गई है। जिस light में सारे के सारे पुद्गल पदार्थों की lights हैं, वो सब उसमें समाहित हो गई हैं, कोई भी प्रकाश उस केवल-ज्ञान की ज्योति से बढ़कर

आत्मा आकाश की तरह निर्मल, अमूर्त एवं पाप रूपी, मोहरूप अंधकार से मुक्त चेतना है।

के नहीं होता है। दुरित माने होता है पाप, निवह माने समूह, उस पाप रूपी समूह का अंधकार वह जब नष्ट हो जाता है, पूरा का पूरा, तब यह केवलज्ञान रूपी ज्योति प्रकट होती है या यूं कहें कि इस केवलज्ञान रूपी ज्योति को जब हम ध्यान में लाते हैं तो हमारे अन्दर के पाप समूह रूपी अंधकार विघटित होने लगता है, नष्ट होने लगता है क्योंकि उस पाप समूह के अंधकार का नाश करने का हेतु या कारण भगवन्! आपके ज्योतिस्वरूप का ध्यान करना ही है क्योंकि अंधकार के अंदर अगर हम प्रकाश ले जायेंगे तो वहाँ पर अंधकार टिक नहीं पायेगा क्योंकि अंधकार प्रकाश का विरोधी है और प्रकाश अंधकार का विरोधी है। अंधकार है तो प्रकाश नहीं, प्रकाश है तो अंधकार नहीं।

अपने अंतरंग के दुरित को, अपने अंतरंग के मोह को, अंतरंग के पाप को दूर करने के लिए उस ज्योति स्वरूप भगवान आत्मा का ध्यान करो।

''दुरितनिवहध्वान्तविध्वंसहेतुं, त्वामेवाहुर् जिनवर चिरम् तत्त्वविद्याभियुक्ताः''

तत्त्व ज्ञान से युक्त हैं भगवान। तो आपको ही हम ज्योति स्वरूप कहेंगे और किसी को ज्योति स्वरूप नहीं कह पाएंगे। उस ज्योति में ही यह सब मोह, पाप जितने भी प्रकार के कर्म हैं वे सब नष्ट हो चुके हैं। पाप का मतलब आप इतना ही नहीं समझना कि जो आपने बाल-बोध की पहली कक्षा में पढ़ रखा है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह यह पाँच पाप होते हैं। पाप कहने से यह ही पाँच पाप में संतुष्ट मत हो जाना। यह पाँच पाप छूट गए या यह पाँच पाप से हम रहित हो गये तो अन्तरंग आत्मा में नहीं, आत्मा के पाप कुछ अलग हैं। यह पाप तो सामाजिक पाप हैं, हिंसा करोगे समाज में अच्छा नहीं मानेगें, चोरी करोगे लोग तुम्हारी निन्दा करेंगे, कुशील में पड़ोगे लोग तुम्हें अच्छा नहीं देखेंगे, परिग्रह रखोगे तो तुम्हारे लिए आपत्तियाँ आती रहेगी, अखबार में नाम तो आएंगे लेकिन बेनाम होकर के आएंगे, आज उन सेठ के यहाँ रेड पड़ गयी। यह पाँच पाप तो केवल अपने समाज का रुतबा बनाये रखने के लिए और समाज में एक अच्छे आदमी की तरह जीने के लिए हैं लेकिन अंतरंग आत्मा के पाँच पाप तो दूसरे हैं। वो पाप जो आत्मा के अंदर यह केवलज्ञान ज्योति प्रकट नहीं होने दे रहे हैं उससे पहले जो कुछ भी किया है, वो सब पाप है। अगर उस दृष्टि से देखा जाए तो सम्यक् ज्ञान होते हुए भी जब तक केवलज्ञान नहीं होता है तब तक आत्मा में पाप चलता रहता है। अविरत सम्यकदृष्टि में भी पाप होता है, आगे के पाँचवे, छठवें, सातवें, आठवें, नवमें, दशवें, ग्यारहवें, बारहवें, गुणस्थान तक भी पाप होता है क्योंकि सबसे बड़ा पाप आत्मा के अन्दर पड़ा हुआ केवल ज्ञानावरण कर्म, आत्मा के अंदर उस केवल ज्ञानावरण कर्म को बाँधे रखने वाला मोहनीय कर्म, और यह कर्म जब तक है तब तक आत्मा पापों से बंधा है, पापों से लिप्त है। ज्ञानावरणीय कर्म पाप कर्म है, दर्शनावरणीय कर्म, पाप कर्म है, अन्तराय कर्म, पाप कर्म है और मोहनीय कर्म, पाप कर्म है। इन यह चारों ही प्रकार के कर्म पाप कर्म कहलाते हैं। जब तक यह

अंतरंग के मोह एवं पाप को दूर करने के लिये ज्योति स्वरूप आत्मा का ध्यान करें।

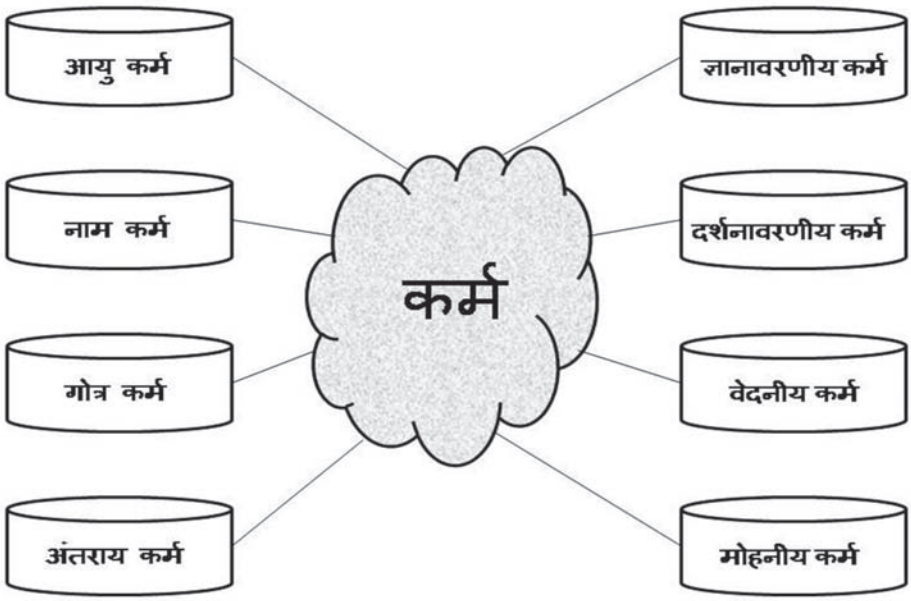

पाप कर्म आत्मा में विद्यमान हैं तब तक केवलज्ञान रूपी ज्योति प्रकट नहीं होती है और यह पाप, अंधकार का समूह नष्ट हुआ तो केवलज्ञान ज्योति प्रकट हुई। यह केवलज्ञान ज्योति के साथ में अन्य कोई भी ज्ञान नहीं, अन्य कोई भी दर्शन नहीं है, अन्य कोई भी मोह, अन्तराय का भाव नहीं है, यह सब नष्ट होंगे जब यह एक चीज प्रकट होगी।

आचार्य कहते हैं कि यह सब अंधकार का काम कर रहे हैं, अपनी आत्मा में पड़े हुए यह पापकर्म के कारण से यह केवलज्ञान रूपी परम ज्योति हमारे अन्दर प्रकट नहीं हो रही है। मोहनीय कर्म का नाश होगा पहले, मोहनीय कर्म का नाश जब बारहवें गुणस्थान में हो जाता है तब जाकर के यह जितने भी कर्म हैं, मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधि, मनः पर्यय चार ही कर्म वहाँ नष्ट होते हैं। तभी जाकर के चक्षु दर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधि दर्शनावरण, केवल दर्शनावरण ये कर्म भी नष्ट होते हैं। पाँच प्रकार के अन्तराय नष्ट होते हैं, तब जाकर के वह केवलज्ञानावरण का अभाव जब होगा, तब जाकर के केवलज्ञान ज्योति प्रकट होगी। उससे पहले आत्मा में वह ज्ञान ज्योति ढ़की ही रहती है, अंधकार ही दिखाई देता है। इसलिए जब हम आँख बंद करके बैठ जाते हैं तो अपने को लाइट तो यही दिखाई देती है, भीतर की लाइट दिखाई नहीं देती। कहने में आता है कि अपने अन्तरंग प्रकाश को देखो लेकिन आपका दिमाग आँखों पर रहेगा और आँखों पर जो बाहर की लाईट चढ़ी हुई है, वह बाहर की लाइट ही आपको भीतर आँखों पर महसूस होगी। जहाँ आँखें नहीं हैं, वहाँ पर आपको कोई लाईट नहीं दिखेगी, पूरे शरीर में हम आपको कहेंगे, देखो प्रकाश है लेकिन आपको पूरे शरीर में कुछ नहीं दिखाई देगा बस आपको आँखों पर ही थोड़ा सा प्रकाश

आत्मा में पड़े पाप कर्म के कारण केवलज्ञान रूपी परम ज्योति प्रकट नहीं हो पाती है।

महसूस होगा लेकिन वह आँखें बंद होने से बहुत कुछ अपना संवेदन होने की संभावना बन जाती है। वह लाइट जो भीतर है वो तो दिखाई देती नहीं क्योंकि वहाँ अभी लाइट जली ही नहीं, उस लाईट तक पहुँचने के लिये ही यह हमें श्रद्धान और ज्ञान करना पड़ता है कि आत्मा के अंदर पड़ा हुआ जो ज्ञान स्वभाव है वही हमारा वास्तविक प्रकाश है। जब हम आपसे कहें कि अपने अन्तरंग प्रकाश की ओर अपना उपयोग ले जाओ तो आप इस सफेद लाईट की ओर मत देखना। आप अपने प्रकाश का मतलब केवलज्ञान स्वरूपी प्रकाश की ओर अपने उपयोग को ले जाना। उस लाईट में आपको यह लाईट नजर नहीं आयेगी। उसमें केवल आपको अनुभव होगा कि मैं केवलज्ञान स्वभाव मात्र आत्मा हूँ लेकिन आपको कोई ऐसी ज्योति अभी दिखाई नहीं देगी, जिस ज्योति की यहाँ बात की जा रही है। इसलिए आपके मन के अन्दर अभी बड़ा अंधकार पड़ा हुआ रहता है और आपके अन्दर क्या कहें, सबके अन्दर कह सकते हैं। जब तक मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, चल रहे हैं तब तक वह केवलज्ञान का प्रकाश तो होना ही नहीं। सम्यग्ज्ञान होने पर भी यह ज्ञान हमारे लिए एक तरह से उस दुरित के रूप में ही है क्योंकि यह हमारा स्वभाव नहीं है। सम्यग्ज्ञान होने से ही सब कुछ नहीं हो जाता। सम्यग्ज्ञान होने के बाद भी यह ज्ञान जो मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान यह कोई भी हमारे स्वभाव नहीं हैं, भले ही इनको सम्यग्ज्ञान कहते हैं लेकिन केवलज्ञान की अपेक्षा से तो यह विभाव हैं, इन सब को छूटने पर ही केवलज्ञान होता है। इसलिए एक अपेक्षा से तो हम इनको सम्यग्ज्ञान कह लेते हैं लेकिन जब केवलज्ञान की अपेक्षा से देखते हैं तो यह सब हमारे विभाव परिणाम सिद्ध होते हैं। दुर्लभ है, इस अपेक्षा से यह पूज्य हो जाते हैं क्योंकि सम्यग्दर्शन के साथ में ही सम्यग्ज्ञान होंगे तो ज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि ज्ञान पूज्य तो हो जाते हैं लेकिन यह हमारे स्वभाव नहीं हैं। ऋद्धि के रूप में हम इन्हें पूजते हैं, अर्घ्य चढ़ाते हैं लेकिन वस्तुतः यह हमारे स्वभाव नहीं हैं। स्वभाव तो एक केवलज्ञान ही आता है। अलग-अलग विवक्षाओं से हम अलग-अलग चीजों को जब समझते हैं तो समझ में आता है कि एक दृष्टि में तो यह सब चीजें हमसे विभाव रूप में सिद्ध होती हैं ''णमो ओहि जिणाणं, णमो, परमोहि जिणाणं, णमो मणपज्जयणाणिणं, णमो, विपुलमदिणं'' यह जितनी भी ऋद्धियाँ है नमस्कार इसलिए है कि यह ऋद्धियों वाले जो महात्मा हैं जिन्होंने बहुत ज्ञान और तपस्या से इन ऋद्धियों को प्राप्त किया है, सम्यक् रूप में हैं लेकिन यह भी वस्तुतः आत्मा का स्वभाव नहीं है इसलिए कभी-कभी जब यह दृष्टि आ जाती है तो उस दृष्टि में केवल केवलज्ञान ज्योति ही उपादेय होती है बाकी की सभी ज्योतियाँ हेय हैं, जो हमारे लिए छोड़ने योग्य है, वो सब हेय है।

सम्यग्ज्ञान भी हमारे लिए हेय हो गया। एक तरीके से देखा जाये तो वह केवलज्ञान में ही केवल यह ज्ञान ज्योति दिखेगी तो आचार्य कहते हैं कि जब तक दुरित हमारे अन्दर समूह के रूप

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मनःपर्ययज्ञान दुर्लभ होने से पूज्य हैं, पर ये हमारे स्वभाव में नहीं हैं।

में बैठा है, कितने कर्म प्रकृतियों का यह समूह है। ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय, अन्तराय व इस दुरित समूह के कारण ही हमें अपने अन्दर कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए जब आपका मन भी बिल्कुल शांत हो, रात्रि का अंधकार हो, कोई भी सामने दिखाई नहीं दे रहा हो, बिल्कुल काला घना अंधकार हो उसमें हम बैठे हों और अंधकार में बैठकर के जब हम स्वसंवेदन करें तब आपके अन्दर जो अनुभव होगा, वह अनुभूति में आपको थोड़ा सा समझ में आएगा कि ज्ञान में स्वानुभव कैसा होता है और ज्ञान का स्वानुभव किस प्रकार का होता है। प्रकाश में तो हमारे दिमाग में अभी पौद्गलिक प्रकाश छाया रहता है, उस अंधकार में हमें अपने अंदर ज्ञान के ऊपर पड़े हुए अनेक अंधकार भी दिखाई देंगे और हम बार-बार अपने मन को स्थिर करने का प्रयास करेंगे लेकिन फिर भी हमारे मन के अंदर जितनी संवेदना उस समय पर होगी बस वही समझना कि मैं वास्तव में इतना ही हूँ। उस अंधकार में बैठकर के हमको थोड़ा बहुत उस ज्ञान का अनुभव होगा और बाकी सब छोड़ने योग्य है। उन संसारी कार्यों की हमें याद नहीं आनी चाहिए, हमें कुछ भी याद नहीं, शरीर भी नहीं दिख रहा हो केवल बस इस शरीर में कुछ है, जो अनुभव में आ रहा है मैं बस उसी का अनुभव कर रहा हूँ, बस वही मैं आत्मा हूँ और बाकी का जो कुछ भी है, यह सब अंधकार की तरह, धुँए की तरह हमारे सामने है। आत्म-ज्योति तो हमारे अन्दर है, इस प्रकार की कोई रात और क्षण अगर आपका गुजरे तो समझना वही सौभाग्य का क्षण है। आचार्य कहते हैं कि अगर यह धारणा भी बनी हो कि हमारे अन्दर यह ज्ञान-ज्योति है तो इसका निरंतर अभ्यास करो। अभ्यास के साथ में इसका भाव चलता रहे, धारणा चलती रहे, धीरे-धीरे आपके अन्दर इस अभ्यास में रुचि बढ़ती चली जाए तो आप हर समय जिस समय पर आपका मन हो गया हो तो और कार्यो को छोड़कर के बैठ जायेंगे।

कोई भी कार्य हमारे लिए महत्वपूर्ण नहीं, सबसे महत्वपूर्ण कार्य ''परं ज्ञानमय महत् अहं'' मैं परम ज्ञानमय ज्योति स्वरूप हूँ। इसी बात की अनुभूति में फिर आपका मन लगने लग जाए और फिर धीरे-धीरे ऐसी स्थिति बन जाये दिनभर, रातभर बस आपको वही ज्ञान ज्योति ही दिखाई दे। आपके जीवन में तो यह कठिनता है ही लेकिन हम साधुओं के लिए भी यह कठिन हो रहा है क्योंकि दिनभर, रातभर यह धारणा तो इसलिए नहीं रह पाती क्योंकि दिन में भी कुछ आपके लिए हो जाता है और दिन में स्वयं से हटकर के कुछ कार्य होता रहता है। अगर हम कुछ भी आपके लिए उपदेश देते हैं, कहीं पर दूसरी जगह दिमाग लगा लेते हैं तो वह भी इस ज्योति से हटना हो जाता है। लेकिन एक पुरुषार्थ भीतर से रहता है, प्रयास ऐसा रहता है कि हे भगवन्! वो दिन भी आए जब किसी के लिए कुछ ना करना पड़े, किसी से ना कुछ कहना पड़े और आत्म ज्ञान की परमज्योति में ही डूबते हुए, दिन और रात उसी की धारणा में निकाल दें। यह आगे की प्रक्रिया में विचार हैं जब धीरे-धीरे प्रक्रिया चलती है, उसमें थोडी बढ़ोत्तरी होती है और वह बढ़ोत्तरी हो रही है, संतुष्टि हर आदमी को स्वयं में मिलनी चाहिए और स्वयं में उसको लगाना चाहिए कि हाँ,

सबसे महत्वपूर्ण कार्य है ''मैं परम ज्ञानमय ज्योति स्वरूप हूँ'' का ध्यान करना।

यह बढ़ोतरी हो रही है और वो बढ़ोतरी धीरे-धीरे हो रही है। पिछले चतुर्मासों की अपेक्षा से देखें, तो इस चतुर्मास में भी बढ़ोत्तरी का क्रम जारी है बड़ी निश्चिंतता, निर्विकल्पता के साथ। इसी प्रकार की धारणाओं में जीने का मन करता है। कोई भी किसी का, किसी से परिचय, वचन व्यापार आदि से अब बचते ही चले जाना है। इन सबसे बचकर के अपना काम करना है। इस प्रकार की धारणा बनती चली जाती है तो आचार्यों ने कहा कि जीवन में अपने अन्दर एक विभाजन करना। इस विभाजन में अनेक प्रकार के विभाजनों के काल बताये है उनमें एक शिक्षा काल, दीक्षा काल होता है, शास्त्र स्वाध्याय का काल होता है, आत्म संस्कार का काल। वो आत्म-संस्कार काल मतलब- एक उम्र आप बिल्कुल बस आत्म संस्कार में ही अपने लिए डुबे रहें, यह इसलिए रखा गया है। उस काल की भी प्रतीक्षा है और उस काल में पहुँचते-पहुँचते फिर आपके लिए कोई और चीजों की प्रयोजनता न रह जाए, बस आपको केवल आत्म संस्कार पर ही ध्यान रहे। वो काल लगभग निकट हो जाता है, समाधि के काल की निकटता की अवस्था में भी जो भीतर से जागृत रहते हैं वो इसी प्रकार की आत्मज्योति में लीन रहते हैं। अपने उपयोग में ऐसे ही केवल ज्ञान ज्योति के उस स्वभाव में देखने के भाव से, जानने के भाव से भीतर से आनंदित रहते हैं तब वह पूर्ण काल भीतर से बिल्कुल शांत वहीं चलता रहता है। बस यह आत्मा, ज्ञाता-दृष्टा आत्मा, शरीर के ऊपर कोई दृष्टि नहीं, किसी भी चीज पर कोई ध्यान नहीं, उस समय पर तो अपनी आँखे भी अपने शरीर को नहीं देख पाती हैं, ऐसी स्थिति बन जाती है। आप देखोगे कि जिस समय पर समाधि की स्थिति बनती है, कौन अपने पूरे शरीर को निहार पाता है? पूरा अपना शरीर भी अपने को देखने के लिए भी आँखो में बहुत ताकत चाहिए और वह ताकत अभी है वो ताकत समाधि के समय पर नहीं रहती। वह नेत्रज्योति का काम भी नहीं रहता, भीतर एक अन्तरंग ज्योति का काम रहता है। उसी के सहारे सब कुछ चलता रहता है। उस समय के लिए जो प्रतीक्षा करता है, वह वास्तविक मुमुक्षु कहलाता है वो मुमुक्षु एक साधु भी हो सकते हैं, वो मुमुक्षु एक गृहस्थ भी हो सकता है और जो इस प्रकार की इच्छा ना करे तो वह गृहस्थ भी मुमुक्षु नहीं और वह साधु भी मुमुक्षु नहीं होता। हर गृहस्थ में भी यह भावना नहीं होती, जिसमें यह भावना होगी वही मुमुक्षु कहलाएगा। अच्छे-अच्छे टाइटल चुन-चुन कर के तो लगा लेते हैं लेकिन उन टाइटल से काम नहीं चलेगा, काम तो भीतर के भावों से चलेगा।

आचार्य कहते हैं कि जिस भाव में यह सब भाव छूट जायें और सब प्रकार का कोलाहल छूट जाये, केवल बस आत्मज्योति की संवेदना रह जाये, उस भाव का अभ्यास आचार्य कहते हैं अगर छह महिने लगातार हो जाये तो हम आपको गारंटी देते हैं आपको अपनी आत्मा दिखने लग जाएगी। जिंदगी में छह महीने निकालने हैं, ऐसे चाहे जीवन के अंत में ही क्यों न हों लेकिन छह महीने ऐसे होने चाहिए, जिन छह महीनों में हमें एक भी बाहरी काम की प्रयोजनता समझ में ना आये और हम सिर्फ अपने लिए जीयें। अगर वह जीवन के अंत के भी छह महीने हो गये तो समझ लेना पूरा

मुमुक्षु सभी प्रकार के भावों को छोड़कर केवल आत्मसंस्कार पर ध्यान देता है।

जीवन सार्थक हो गया। बीच में तो वह छह महीने निकालने बड़े कठिन होंगे लेकिन अगर वह दृष्टि रहे तो अंत में भी वह छः महीने जीवन के निकाल सकते हैं, जिनमें आचार्य कहते हैं कि–

''विरम किमपरेणाकार्यकोलाहले न
स्वयंमपि निभ्रतः सन् पश्य षण्मासमेकम्।
हृदयसरसि पुंसः पश्यतामेकरूपं
ननु किमनुपलब्धि र्भाति किं चोपलब्धिः।।''

स्व कार्यों को विराम दे दें ''विरम किं अपरेण, अकार्यकोलाहले न'' यह जितने भी कार्य हैं, इनका आत्मा से कोई प्रयोजन नहीं है, सब अकार्य हैं और इन अकार्यों के कोलाहल में अपने मन को मत लगा। इन सब अकार्य के कोलाहल से बचकर के ''स्वयमपिनिर्भृतः सन् पश्य षण्मासं एकम्'' अपने अन्दर मरा हुआ जो आत्म तत्त्व है, उसको षण् मास, माने छह माह तक देखता रहे। आचार्यों ने लिखा है, शास्त्रों में छह मास तक बस उसी को देखें, छह महीने का समय निकले। जिंदगी में फिर देखो कैसे संस्कार बदलते हैं। यह जन्म-मृत्यु के जो कर्म हैं, यह सब इन्हीं संस्कार से टूटेंगे और किसी से कुछ नहीं होने वाला। एक बार भीतर की ज्योति को प्राप्त करने के लिए इस प्रकार की कमर कसके, साहस करके, वीरता के साथ में यह अभ्यास किया जाता है, जैसे पूर्व आचार्यों के किया। आचार्य शांतिसागर जी, आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज इस प्रकार के अभ्यास के कारण से इतनी उत्कृष्ट समाधि को प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार के अभ्यास में यह छत्तीस-छत्तीस दिन की समाधि, एक-एक महीने की समाधि, यह इसी प्रकार की समाधि होती है। इन समाधि में जो इस प्रकार के भावों में लीन रहते हैं तो बाहर से तो शरीर सूखता जायेगा लेकिन भीतर से तो वह प्रफुल्लित रहता है। इसे कोई समझ नहीं सकता, अजैन लोग तो इसको समझ ही नहीं सकते। यह वह ज्ञान की प्रक्रिया है, यह आनन्द की प्रक्रिया है, यह वो परम आनन्द है। वह परम आनन्द इसी ज्ञान में है, इसी ज्ञान ज्योति के साथ वह परम आनन्द जुड़ा हुआ है। बाहर के लोगों को दिखता है कि यह कष्ट में है लेकिन भीतर से उस परम आनन्द की अनुभूति किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं की जा सकती, किसी भी जज के द्वारा सिद्ध नहीं की जा सकती यह तो स्व संवेदन का मामला है। इस बात को जो जानता है वो इसको अनुभूत करता है और अनुभूत करने वाला आपसे कुछ कह नहीं पाता तो वह बाहर की सब बातें अज्ञानता में चलती रहती हैं कि इस तरह से समाधि नहीं होना चाहिए, इस तरह से सल्लेखना नहीं होना चाहिए। बस उन्हीं अस्पतालों में भर्ती हो करके वेंटीलेटर पर पड़े-पड़े मर जाना चाहिए, अच्छा है पर यह अच्छा नहीं है। अगर कोई धार्मिक आदमी धर्म के साथ में अपना प्राण छोड़ना चाहे, तो उसके लिए बड़ी परेशानी है, समाज की परेशानी, घर-परिवार की परेशानी। पहले के लोगों को तो जब भी कभी अपने दादाजी को, दादीजी को कभी इस प्रकार से लगता था कि इनका अंत समय आने वाला है, चलो इनको कहीं न कहीं महाराज, माताजी के पास ले गये, कुछ उनका घर में रहकर के त्याग कर दिया, परिग्रह छोड़ दिया।

समाधि की प्रक्रिया में परम आनंद है, स्वसंवेदन है, अनुभूति है।

वर्तमान में समाधि :

आजकल आदमी जब बुढ़ापे तक पहुँचता है, तब तक वो किसी न किसी रोग से रोगी हो जाता है और उस रोग के कारण से उसके शरीर में परेशानी अगर कुछ हुई तो उसका इलाज कराने के लिए ले गये doctor के पास और एक बार अगर आप बुढ़ापे में doctor के पास पहुँचे तो ICU के अलावा दूसरी unit है ही नहीं। कितने उल्टे pressure समाज के रहते हैं, आत्म कल्याण करने के विरुद्ध। ऐसे ही व्यक्ति के समाधि का टाइम आता है तो समाज के उल्टे pressure होते हैं अगर कोई बेटा अपने घर के किसी भी वृद्ध व्यक्ति को महाराज के पास ले जाये या उसका समाधिमरण करने का प्रयास करें तो समाज के लोग उसको torture करेंगे, बुरा बोलेंगे। घर में रहकर के तूने उसको मारा डाला, यह जितनी भी चीजें चलती है, व्यवहारिकता में यह सब आत्म-कल्याण के विरुद्ध है। यह मैं बताना चाह रहा हूँ। यह एक नहीं है, ऐसी कई चीजें है जो हमारी आत्मा के लिए हितकर होती हैं, वो हमें विरुद्ध दिखाई पड़ती हैं, और उसी विरोध के कारण से हम वो तो सब करेंगे जो समाज चाहेगी, दूसरे मोही लोग चाहेंगे लेकिन हम वो कभी नहीं कर पायेंगे जिससे आत्मा का कल्याण वास्तव में होना है। कई ऐसे वृद्ध भी रहते हैं जो अपने बेटे से कह देते हैं- बेटा! मेरा अंत समय बिगाड़ना नहीं, मेरे रात में पानी मत डालना मुँह में, मेरे त्याग है लेकिन बेटे ऐसे होते हैं, घर के लोग ऐसे होते हैं कि उनका प्रेशर इतना होता है कि उन्हें वो करना पड़ता है क्योंकि doctor ने कह दिया है। अंत समय में अगर उस साधक की इतनी शक्ति नहीं है कि वो मना कर पाये तो घर के लोग भी ऐसा कर देते हैं क्योंकि उन्हें अपनी Image बनानी है समाज में और इसी के कारण से व्यक्ति अपना आत्म कल्याण नहीं कर पाता। पहले के लोगों के लिए इतनी परेशानी नहीं थी क्योंकि इतने doctor नहीं होते हैं। आजकल तो लोग doctor के यहाँ जाये बिना मरते ही नहीं और अगर कोई doctor के यहाँ बिना जाये मर जाये तो समझना उसका पुण्य उदय था। अंत समय में हमारे लिए धर्म ध्यान के साथ से मृत्यु हो तो यह सबसे बड़ा सौभाग्य होता है। यह धर्म का सार होता है और उस समय पर हमारे मन में यही केवल भावनायें चलें परमानन्द की, आत्मा का आनन्द ही आनन्द है। शरीर के आनन्द के कारण से तो आत्मा का आनन्द छूटा हुआ है। अगर यह अन्त समय पर उस साधक के अन्दर आ जाए तो हमने कई गृहस्थ भी ऐसे देखे हैं जिनकी बहुत अच्छी-अच्छी समाधि हुई है जिन्हें देखकर के हमें लगता है कि अच्छी समाधि तो हम भी नहीं कर पायेंगे। इसीलिए गृहस्थों के लिए व्रत प्रतिमाओं का विधान किया गया है कि अगर आप व्रत प्रतिमा लेकर के रहेंगे तो अंत में आपका सल्लेखना के प्रति झुकाव आयेगा क्योंकि व्रती का अतिरेक स्वभाव रहता है सल्लेखना के प्रति। जो सल्लेखना के भाव व्रती गृहस्थ के अन्दर बनेंगे उतने सामान्य अव्रती गृहस्थ के अन्दर नहीं बना पाता है। इसलिए व्रतों में सल्लेखना व्रत भी एक अलग से आ जाता है कि यह व्रती की परीक्षा है तो वह अंत में सल्लेखना लेने का प्रयास अवश्य करता है। उसके अन्दर भावना अपने आप जागृत हो जाती है, व्रतों की शुरुआत इस सल्लेखना के

समाज के उल्टे प्रेशर के कारण आज अंत समय में व्यक्ति का आत्मकल्याण कठिन है।

लिए ही होती है। जब आपका जीवन व्रतों से रहित गुजरेगा, इस प्रकार के अध्यात्म से ज्ञान रहित गुजरेगा तो आपके जीवन में अंत में भी कभी सल्लेखना समाधि का कोई भाव आयेगा ही नहीं। बस सब चाहते हैं ऐसे ही खाते-पीते प्राण निकल जाये, कौन कष्ट सहें? अगर आपको यह शरीर का कष्ट, कष्ट लगेगा तो आत्मा इन शरीर से मुक्ति कैसे होगी क्योंकि आत्मा के अन्दर शरीर का ही मोह सबसे बड़ा मोह है। उस मोह को छुडाने के लिए ही यह सब व्रत, प्रतिमा, नियम, जप, तप जितने भी पुरुषार्थ है यह सब शरीर से मोह छुड़वाने के लिए ही होते हैं। जब हम एक दो महीने इस प्रकार के ध्यान में पड़े रहे तो सबसे बड़ा हमारे लिए सौभाग्य का क्षण होना चाहिए। वो समय उन्हीं के पास आता है जो उस समय का इंतजार तैयारी के साथ करते हैं। हर चीज की तैयारी करना पड़ता है, काल लब्धि के इंतजार में मत पड़े रहना। सबने तैयारी की है।

आदिनाथ भगवान ने अपने दस भव पूर्व में 36 दिन की समाधि ली थी, यह तैयारियाँ एक जन्म में तो करनी पड़ेगी और एक जन्म में जब यह तैयारियाँ हो जाती है तो अपने आप एक बार शरीर का मोह छूटा तो इस शरीर के मोह के छूटने के साथ ही आत्मा के अन्दर सम्यक् दर्शन हुआ तभी आत्मा के अन्दर यह संस्कार पड़ेंगे जो जन्म और मरण के चक्र से आपको मुक्ति दिलाएंगे। इसलिए आचार्य कहते हैं कि सबसे बड़ी अविद्या है- मोह के कारण से पर को अपना मानना। वो अविद्या दूर होती है 'अविद्या विधुर ज्योतिः' इस आत्म ज्योति की ओर ध्यान दोगे तो वह अविद्या का नाश होगा जितनी देर आप आत्म ज्योति, आत्मध्यान की भावना करोगे अविद्या आपसे दूर रहेगी, मोह आपसे दूर रहेगा और जैसे ही आपसे ध्यान छूटा मोह आपके ऊपर हावी हुआ, यह नियम होता है। इसलिए मोह को दूर करने के लिए इस परम ज्योति के बारे में ही हमेशा दूसरों से पूछना। किसी से चर्चा करो तो हे भगवन्! हमें कब अन्तरंग आत्म ज्योति उपलब्ध हो। किसी से अगर कोई इच्छा हो तो अपने को तो केवल यही अंतरंग आत्म ज्योति परम ज्ञानमय ज्योति को प्राप्त करने की इच्छा है। जब भीतर से कुछ बोलोगे तो भीतर कुछ भावना आयेगी। अपने मन में भी कभी भावना ऐसी किया करो कि बस अपने को तो केवल आत्म कल्याण की इच्छा है। बाकी सब इच्छाएँ हमारी पूर्ण हो गयीं महाराज, कभी संतुष्टि के साथ महाराज के सामने बोला करो। हमें लगे कोई ऐसा तो है संसार की हर चीज से फुर्सत में हो गया है कोई दिखता ही नहीं। ये तैयारियाँ करो जो लाभ देंगी, इन्हीं के लिए सब कुछ किया जाता है। ऐसी तैयारियाँ के साथ में जो एक जीवन गुजर जाता है तो फिर देखो आगे के जीवन अपने आप ऐसे सुंदर बनते चले जाते हैं, ज्ञानमय, चरित्रमय, अपने आप आपका जीवन बनता चला जाएगा। मुमुक्षु को हमेशा इन्हीं चीजों की बातचीत करना, इन्हीं के बारे में पूछना, इसी को देखने का प्रयास करना। बस अपने को तो वो आत्म-ज्योति देखना है जो अभी तक दिखी नहीं, उसी आत्मा का अनुभव करना, उसी आत्मा के बारे में विचार करना बाकी यह शरीर, मन तो सबके लिए कॉमन है, सबके पास है, जो इन विचारों से ऊपर उठेगा, वही उत्कृष्ट आत्मा कहलाएगा, वही मुमुक्षु कहलाएगा।

सारे व्रत, प्रतिमा, नियम, जप, तप के पुरुषार्थ शरीर से मोह छुड़वाने के लिये हैं।

सारभूत बात

50

जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः।
यदन्यदुच्यते किञ्चित्सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः॥50॥

अन्वयार्थ–(जीवः अन्यः) जीव अन्य है **(च)** और **(पुद्गलः अन्यः)** पुद्गल अन्य है **(इति)** इस प्रकार **(असौ)** यह **(तत्त्वसंग्रहः)** तत्त्व का सार है, इसके अलावा **(यत्)** जो **(अन्यत् किञ्चित्)** कुछ अन्य बात इस विषय में **(उच्यते)** कही जाती है **(सः)** वह **(तस्य एव विस्तरः)** उसका ही विस्तार **(अस्तु)** हो।

- **जीव अन्य है, पुद्गल अन्य है**
- **समीचीन दृष्टि**
- **व्यवहार व निश्चय**
- **ज्ञान का सार**

जीव अन्य है, पुद्गल अन्य है :

आचार्य पूज्यपाद महाराज कह रहे हैं 'जीवोऽन्यः', जीव अन्य है 'पुद्गलाश्चान्य' पुद्गल भी अन्य है 'इति' इस प्रकार 'असौ' माने, यह 'तत्त्वसंग्रहः' तत्त्व का संग्रह इतना ही है 'यद्' जो 'अन्यद्' अन्य जो कुछ 'उच्यते' माने कहा जाता है 'किंचित्' माने कुछ भी 'सो' माने वह 'अस्तु' होवे 'तस्यैव विस्तरः' उसी संग्रह का ही विस्तार होवे। आचार्य पूज्यपाद महाराज अब अंत में ग्रंथ का समापन करते हुए निष्कर्ष के रूप में एक भाव दे रहे हैं कि अभी तक आपने जो सीखा, समझा उसका सार बस इतना ही है कि जीव अन्य है और पुद्गल अन्य है। अन्य का मतलब एक अन्य का मतलब होता है, अपने से भिन्न होना और एक अन्य माने होता है- अपने से पराया होना या अपने से दूर होना। यहाँ जीव व पुद्गल दोनों के साथ में अन्य कहा जा रहा है। अर्थ यह है कि यह जीव और पुद्गल अन्य-अन्य है, माने भिन्न-भिन्न है। जो जीव है वह पुद्गल नहीं और जो पुद्गल है वह जीव नहीं है। बस आपको इतना जानना है कि जीव और पुद्गल कभी भी एकमेक नहीं होते है। जीव हमेशा पुद्गल से, स्वभाव से भिन्न रहा है और पुद्गल भी स्वभाव से जीव से भिन्न रहा है। फिर भी हमें ये दोनों मिले जुले दिखते हैं। इस मिली जुली अवस्था को देखकर के भी अपने मन में विश्वास तो यही रखना कि जीव भिन्न है और पुद्गल भिन्न है। एक विश्वास शुरू होता है मूल से जो चलता है चूल तक। माने एक उसकी गहराई और एक उसकी ऊँचाई दोनों में एक चीज जो समाहित रहती है वही उसका सार कहलाता है। हम वृक्षों की जड़ों को जब कभी सिंचन करते हैं तो उसके सिंचन में वह वृक्ष अपने ढंग से बढ़ता है और वह वृक्ष जब बढ़ रहा है तो उसी रूप में बढ़ेगा जिस रूप में उस वृक्ष का विस्तार होना है, बीज में आपको कुछ नहीं दिखेगा। एक जैसे ही आपको सबके बीज दिखाई दे सकते हैं और जहाँ पर उसका सिंचन किया जाता है, उसकी जो विधि होती है वो भी लगभग समान होती है लेकिन जो सार होता है वह सार मूल से लेकर चूल तक समाया हुआ रहता है। मूल में जो सार होगा, वही सार आपको चूल तक दिखाई देगा। उसी तरह से यहाँ पर आचार्य कह रहे हैं कि यह सार की बात है कि जीव को भिन्न जानना और पुद्गल को भिन्न जानना। बस यह अपने अंदर पहले बीज रूप में रख लेना। इसे बीज रूप में रखने के बाद में आप जो कुछ भी करेंगे वो सब इसी के विस्तार के लिए करना, इसको छोड़कर के कुछ मत करना तो आपको सब कुछ मिलेगा। इसको भूल गये बाकी सब कुछ करते रहे तो आपको कुछ नहीं मिलेगा। जो सार है, वह मूल में है। उस सार को ध्यान में रखना और जो सार यहाँ अन्त में कहा जा रहा है उसे आप चूल के रूप में समझ लेना और उसे मूल के रूप में भी समझ लेना। यहीं से जीवन की शुरुआत होती है, यहीं से आत्मा के विकास की शुरुआत होती है। जब आत्मा का विकास हो जायेगा तब भी आपको यही चीज दिखाई देगी '**जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य**'। जब अन्दर ज्ञान की

जीव और पुद्गल स्वभाव से अलग-अलग है पर मिले-जुले दिखते हैं।

शुरुआत होगी, दृष्टि खुलेगी, तब भी आपको यही चीज अपने अन्दर समाहित करने से दृष्टि खुलेगी। इस चीज से ही शुरुआत होना है और इसलिए इस चीज को मूल भी कहा है और इसी को चूल भी कह रहे हैं। जीव अन्य है व पुद्गल भी अन्य है, यह आप पहले अपनी दृष्टि में रखना। आपकी दृष्टि समीचीन होगी तो वह इसी धारणा से होगी, इसी ज्ञान से होगी। समीचीन दृष्टि हुई तो आपके ज्ञान में समीचीनता आयेगी। वह आपका ज्ञान, फिर जो कुछ भी विवेक के साथ में कार्य करेगा वह सब उस ज्ञान के माध्यम से बढ़ता चला जाएगा, फिर वह ज्ञान जो कुछ भी व्रत, नियम, चारित्र का पालन करेगा वो भी उसका बढ़ता चला जाएगा और मूल का विस्तार होता चला जाएगा। हर चीज में, फिर यही चीज दिखाई देगी।

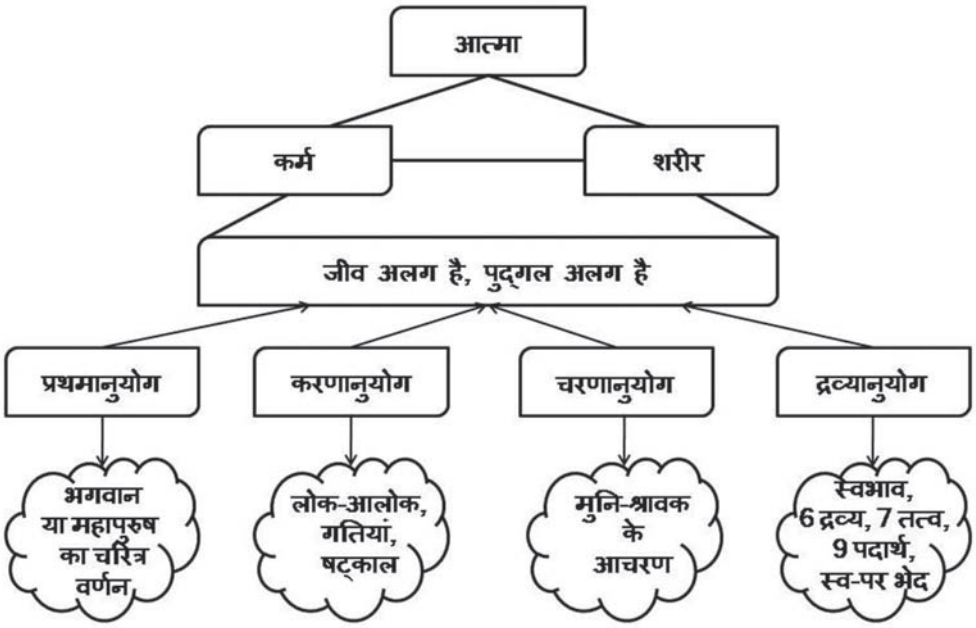

ज्ञान है तो इसी को समझने के लिए '**जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्यः**'। चार अनुयोग होते हैं, इन चारों ही अनुयोगों में आपको सार इसी का मिलेगा–जीव अन्य है, पुद्गल अन्य है। आप देखेंगे कि प्रथम अनुयोग का समापन होता है उसमें भगवान की क्रियाकलापों का वर्णन किया जाता है, अंत में भगवान का मोक्ष हो गया तभी ग्रन्थ समाप्त हो गया है। जब आप करणानुयोग के ग्रन्थ पढ़ेंगे तो उसमें भी आपको जितने भी लोक–अलोक की व्यवस्थाएँ दिखाई देंगी, वह सब व्यवस्थाओं में आपको यही दिखाई देगा कि जीव कितने शरीर धारण करता है, कितने जन्म धारण करता है और

चारों अनुयोगों में भी यही सार है कि जीव और पुद्गल भिन्न-भिन्न है।

वह कितने पुद्गलों को ग्रहण करता है, कितने पुद्गलों को छोड़ता है लेकिन फिर भी जीव अन्य रहता है पुद्गल अन्य होता है। 'जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य' करणानुयोग में भी आपको यही सार मिलेगा। जब आप चरणानुयोग पढ़ेंगे तो उसमें भी जो सार बताया जायेगा वो इसी रूप में बताया जाएगा कि देखो जो कुछ भी आचरण करना, वो सब इस जीव के लिए ही करना, जो कुछ भी तुम्हें पुद्गलों की सहायता भी लेनी पड़े तो वह भी तुम्हारे लिए इसी रूप में हो 'जीवोऽन्यः पुद्गलाश्चान्य'। द्रव्यानुयोग, सिद्धान्त ग्रन्थ या जीव सिद्धान्त या ग्रन्थ सिद्धान्त के माध्यम से भी यही लिखा है कि जीव का स्वभाव कभी भी पुद्गल का स्वभाव नहीं हो सकता, पुद्गल का स्वभाव जीव का स्वभाव नहीं हो सकता है।

आचार्य कहते हैं कि यह आत्मा कभी भी अनात्मा के साथ में तादात्म्य नहीं रख सकता है इसको कहते हैं तादात्मीय सम्बन्ध। आत्मा का अनात्मा के साथ में तादात्म्य-सम्बन्ध नहीं होगा, आत्मा का अनात्मा के साथ में सहयोग सम्बन्ध होगा। तादात्म्य का मतलब होता है वही उसका स्वरूप बन गया हो, वही उसकी आत्मा बन गई हो तो पुद्गल कर्म के रूप में, शरीर के रूप में आपके साथ में रहेगा लेकिन वह कभी भी आपकी आत्मा का स्वरूप नहीं बन सकता, न बनेगा। आत्मा का स्वरूप तो आत्मा के गुणों के साथ ही रहेगा पुद्गल कर्म या नौ कर्म के साथ में आत्मा का कभी भी तादात्म्य-सम्बन्ध नहीं होता।

''न हि कथमप्यात्मा नात्मना साकमेकम्
किल कलयति काले, क्वापि तादात्म्यवृतिं॥''

समीचीन दृष्टि :

आचार्य अमृतचन्द जी महाराज जब नाटक 'समयसार-कलश' लिखते हैं तो उसमें यह भाव लिखते हैं कि यह आत्मा कभी भी अनात्मा के साथ में किसी भी रूप में, किसी भी प्रकार से एक हो ही नहीं सकता। किसी भी काल में यह आत्मा अनात्मा के साथ में तादात्म्य-वृत्ति को साथ में नहीं रख सकता। यह आत्मा कभी भी पर पदार्थों के साथ एकमेक नहीं हो सकता। उनके साथ में संयोग संबंध तो हो जाएगा लेकिन उसका स्वभाव तो उससे भिन्न ही रहेगा।

आपकी दृष्टि में वह एक दिखाई दे, यह बात अलग है लेकिन जिनकी दृष्टि में यह भिन्नता आ जाती है तो वह जानते हैं कि जीव कभी पुद्गल नहीं होता और पुद्गल कभी जीव नहीं होता। उसके ज्ञान का भी अगर विस्तार बढ़ रहा है तो वह सब इसी चीज का विस्तार है जितने भी सिद्धान्त, अध्यात्म ग्रन्थ हैं, वो सब इसी एक सूत्र का विस्तार है और जितने भी आचारण की पद्धतियाँ हैं व्रत, संयम, चरित्र उन सब में भी यही एक चीज अनुभूत है, मिली हुई है। इसी मूल धारणा के साथ में जब सब चलता है तो वह सम्यक्-सम्यक् होता चला जाता है। दर्शन भी सम्यक्, ज्ञान भी सम्यक्, चरित्र भी सम्यक्, तप भी सम्यक् जो कुछ भी हो समीचीन होगा तो चूल तक पहुँच जाएगा। एक स्थिति ऐसी आएगी जब यह अनुभूत होगा 'जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्यः'। व्रत, संयम,

आत्मा कभी भी अनात्मा के साथ किसी भी रूप में, एक नहीं हो सकता।

नियम के आगे बस यही एक सूत्र याद रखना और इसी सूत्र को दिमाग में रखते हुए सब कुछ करना। यह सूत्र अगर आपके ध्यान में रहा तो आपकी हर प्रवृत्ति समिचीन होती चली जाएगी। अगर आप पूजा, अभिषेक भी करें तो यह सब चीजें इसी रूप में याद रहे। भगवान की भक्ति भी करें तो भी हमें यह सूत्र याद रहे, हम जिन भगवान की भक्ति कर रहे हैं उन भगवान के अन्दर भी यही समाया हुआ है जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्यः। हम जिन भगवान की भक्ति से अगर कोई फल प्राप्त करना चाहते हैं तो वह भी यही भाव लाना चाहते हैं इसी सूत्र का। जो कुछ भी हमारी क्रियाओं में आये, उसमें हमें यह प्रतिभाषित हो जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्यः। जब यह बात आगे बढ़ती है तो हमारे सामने दो चीजें आ जाती हैं, एक तो यह मिला-जुला रूप है और इसी मिलजुले रूप में हमें दोनों की भिन्नता को भी ध्यान में रखना है। मिले-जुले पने के साथ भी चलता है, तो आचार्य कहते हैं कि जब मिलेजुले रूप को देखेंगे तो हमारे अन्दर जो दृष्टि आयेगी तो दृष्टि भी हमें जब समीचीन रूप में दिखाई देगी तो वह कहलाएगी व्यवहार की दृष्टि। जब हम इन दोनों के मिले जुले रूप में स्वभाव की भिन्नता देखेंगे तो हमें उन स्वभाव की भिन्नता का जो ज्ञान होगा वह कहलायेगी निश्चय की दृष्टि और यह व्यवहार और निश्चय की दृष्टि आपके अन्दर एक साथ चलेगी और इस दृष्टि में मुख्यता गौणता हो सकती है, लेकिन दृष्टि का अभाव नहीं होना चाहिए।

मुख्यता-गौणता का अर्थ है कि जिस समय पर हम व्यवहार कर रहे हैं हमारी दृष्टि में एकमेकता भी आ सकती है, हम दो द्रव्यों को एकमेक भी देख सकते हैं लेकिन यह भूलना नहीं कि जीव निश्चय से अन्य है और पुद्गल निश्चय से अन्य है। जब हम भगवान की भक्ति करते हैं तो उस समय पर भी हमारे अन्दर दोनों दृष्टियाँ रखनी पड़ती हैं। आचार्य समन्तभद्र जी महाराज जब भगवान की भक्ति कर रहे थे तो किस तरह से वह अपनी दृष्टि भगवान की ओर दोनों नय से ले जाते हैं।

हे भगवन्! आपने अपने बाह्य अंधकार का भी नाश कर दिया और आपने अपने अन्तरंग अंधकार का भी नाश कर दिया।

''ननाश बाह्यं बहुमानसं च, ध्यान-प्रदीपातिशयेन भिन्नम्''

एक दृष्टि गई कि भगवान का शरीर चन्द्रमा की तरह आभामान, प्रकाशमान, निर्मल है यह व्यवहार दृष्टि है। जो मिलाजुला रूप है, उसे व्यवहार कहते हैं और व्यवहार नय के द्वारा की गई भक्ति भी समीचीन होती है यदि हमें ज्ञान में रहे कि यहाँ पर हम भगवान की आत्मा और भगवान के शरीर, इन दोनों को एकमेक करके हम भगवान की स्तुति कर रहे हैं तो हम कहेंगे कि हे भगवन्! आपका यह शरीर प्रकाशमान है। अगर आपके अन्दर इस सूत्र को दो नयों से समझने का ज्ञान नहीं है तो आप भटक जायेंगे। आप कहेंगे कि जब जीव अन्य है पुद्गल अन्य है तो हम यह कह ही कैसे सकते हैं कि हे भगवन्! यह आपका शरीर इतना सुन्दर है। जब भगवान ने अपने शरीर को अलग कर दिया तो तुम क्यों उनके शरीर को कहकर के आरोपित कर रहे हो लेकिन जब हम स्वयं

व्यवहार एवं निश्चय की दृष्टि हमारे अंदर एक साथ मुख्य-गौणता से चलती है।

व्यवहार में हैं, जब हम स्वयं भगवान की भक्ति कर रहे हैं; तो हमारे लिए भगवान दोनों रूपों में देखने को आयेंगे। जब व्यवहार नय से भगवान को देखोगे तो कहोगे चन्दप्रभु भगवान चन्द्रमा के जैसे सुन्दर हैं क्योंकि आपने शरीर को आधार मान करके भक्ति की, तो यहाँ व्यवहार से है। उनकी दृष्टि एकदम से निश्चय में गई कि हे भगवन्! आपने अपने ध्यान के दीपक से अपने अन्तरंग में जो आपके मन के अन्दर अनेक प्रकार के अहंकार, मोह, ईर्ष्या, क्रोध, लोभ आदि विकारी भाव भरे थे, उन सबको भी आपने अन्तरंग से नष्ट कर दिया और आपकी आत्मा के अन्दर वह विकार किंचित मात्र भी नहीं है वह दृष्टि निश्चय की आ गई तो जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्यः। जो जीव का आत्मा का स्वभाव था आपने उसको उपलब्ध कर लिया जो बाकी कर्म कृत था उसको आपने बिल्कुल छोड़ दिया। आपकी आत्मा में कर्म कृत कोई भाव नहीं है, जितने भी आपके भाव हैं वह आपकी आत्मा के स्वभाविक भाव हैं। ऐसे जैसे कि वह दीपक अपने आप में स्वयं अपनी प्रकाश से प्रकाशमान होता है वैसे ही आपने अपने ही ज्ञान से अपनी ही आत्मा के अन्दर प्रकाश उत्पन्न किया और जितना भी भावों में विकारों का अंधकार था, वह सब आपने दूर कर दिया।

व्यवहार व निश्चय :

जब आप व्यवहार में प्रवृत्ति करते हैं तो आपके अन्दर दोनों ही प्रकार की दृष्टि होनी चाहिए। व्यवहार की मुख्यता हो सकती है लेकिन निश्चय छूटना नहीं चाहिए और जब आपकी दृष्टि में निश्चय आ जाये तो भी आपको व्यवहार से ग्लानि नहीं होनी चाहिए। अगर आपको व्यवहार से ग्लानि हो जाये तो मन्दिर, भगवान की मूर्ति कैसे बनाएंगे, आप भगवान की स्तुति कैसे करेंगे, जब आपको यही नहीं कहने में आएगा कि यह भगवान चन्द्रप्रभु हैं, यह नेमीनाथ हैं, यह पार्श्वनाथ हैं यह सब व्यवहार से ही तो कहने में आ रहा है। निश्चय नय से तो सब ज्ञानमय ज्योतिस्वरूप है। अगर हमने यह भी कहा है कि भगवान 24 हैं तो यह सब हमारी व्यवहार प्रधान निश्चय दृष्टि से ही कहा जाता है। व्यवहार की प्रधानता के साथ में ही व्यवहार चलता है इसलिए आचार्य कहते हैं कि जब हमारे अन्दर राग है, मोह है तब तक हमें राग और मोह के कारण से व्यवहार प्रधान निश्चय दृष्टि रखना, निश्चय प्रधान व्यवहार दृष्टि मत बना लेना। निश्चय प्रधान व्यवहार दृष्टि होगी तो आप भगवान के पास पहुँचेगें तो कहेंगे कि हे भगवन्! जैसे आपका जीव अन्य है पुद्गल अन्य है, वैसे ही मेरा जीव अन्य है और पुद्गल अन्य है, आपको भगवान को 'नमोऽस्तु' करने का भी भाव नहीं आएगा। निश्चय प्रधान व्यवहार दृष्टि आँख खोल करके नहीं होती है, आँख बंद करके होती है और व्यवहार प्रधान निश्चय दृष्टि जैसे ही आँख खुलती है वैसे ही होने लग जाती है। आप भगवान के सामने 'नमोऽस्तु' करके ही भगवान को देखना और जब भगवान तुम्हारे सामने नहीं हों तो बिना 'नमोऽस्तु' किये ही अपने अन्तरंग में भगवान को देख लेना। जब हम ध्यान में होते हैं, जब हम अन्तरंग में निश्चय की मुख्यता से होते हैं तो वहाँ पर होती है निश्चय प्रधान व्यवहार

व्यवहार नय से 24 भगवान अलग-2 हैं और निश्चयनय से सब ज्ञान ज्योति स्वरूप हैं।

दृष्टि और जब हम प्रवृत्ति में होते हैं तो हमारे अन्दर होती है व्यवहार प्रधान निश्चय दृष्टि। जब व्यवहार प्रधान दृष्टि होगी तो आपके अंदर भगवान के शरीर का ज्ञान भी होगा, आपके अन्दर हर्ष भी उत्पन्न होगा कि हम भगवान पार्श्वनाथ के सामने बैठे हैं तो कैसे थे लाल, हरे रंग के भगवान दिखाई दे रहे हैं। आपकी दृष्टि में भगवान के शरीर का रंग भी गया और आपकी दृष्टि में यह भी आया कि यह कैसे वीतराग भगवान हैं, इसका नाम है मिली जुली दृष्टि, इसका ही नाम है आपके अंदर समीचीन ज्ञान की धारा बह रही है। इस धारा को आप समीचीनता के साथ बहाना। एकदम से आप इसको अलग-अलग करके केवल आप निश्चय की प्रधानता के साथ में व्यवहार करने लगेंगे तो आपके व्यवहार से कुछ भी लाभ नहीं होगा और वह व्यवहार भी आपके किसी काम का नहीं होगा। जब भगवान के सामने पहुँचता है कोई भक्त तो अपने को बालक के रूप में और भगवान को भगवान के रूप में ही देखता है। इतने बड़े आचार्य जब भगवान की स्तुति करते हैं तो लिखते हैं–

''माम् बालमालापयतीदमित्थम्''

हे भगवन्! मैं तो आपके सामने बालक की तरह आलाप कर रहा हूँ। भगवान के सामने वही दृष्टि आती है और निश्चय की दृष्टि में न कोई बालक है न कोई युवा है, न कोई छोटा, न बड़ा है। जब भी आप भगवान की भक्ति करें तो आप अपने को लघुता के साथ में भगवान के सामने रखेंगे तो आपको भगवान की भक्ति करने का कुछ भाव आएगा और अगर वहाँ पर आपके सामने यह आ गया कि 'जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्यः' तो अब कौन किसकी भक्ति करे। ज्ञान को ले लेना और उस ज्ञान का विकास करते हुये वृद्धि करना, इनमें बहुत अन्तर होता है। ज्ञान तो हमने ले लिया कि जीव अन्य है, पुद्गल अन्य है लेकिन यह ज्ञान अब वृद्धि करे और जब भी वह वृद्धि को प्राप्त हो तो उस वृद्धि में कोई भी रूग्णता ना हो। उसमें किसी भी प्रकार की वृद्धि रुके नहीं वो तब होगा जब आपका ज्ञान सही ढँग से काम करता चला जा रहा होगा लेकिन आज कल ज्ञान तो ले लेते हैं पर उसको ढँग से काम में नहीं लेते क्योंकि जो यह व्यवहार और निश्चय की बारीकियाँ हैं, यह समझ में नहीं आती हैं। इसके कारण से या तो व्यक्ति बिल्कुल व्यवहार प्रधान या बिल्कुल निश्चय प्रधान हो जाता है व्यवहार प्रधान होगा तो उसको कभी भी आत्मा की बात सुनने को अच्छी नहीं लगेगी और निश्चय प्रधान होगा तो उसे कोई क्रिया ही करने को अच्छी नहीं लगेगी। जबकि आचार्य कहते हैं कि इन दोनों व्यक्ति में कुछ न कुछ कमियाँ हैं और यह दोनों अपना विकास नहीं कर रहे हैं। दोनों के अन्दर विकास बढ़ता चला जाना चाहिए। जैसे-जैसे वृक्ष बढ़ता चला जाता है भीतर से गहरा भी होता चला जाता है और ऊपर से नम्र भी होता चला जाता है। जो प्रकृति से जुड़ा है और जिसका विकास अपने मूल अस्तित्व के साथ हो रहा है तो उसके विकास को देखकर के भी आप समझ सकते हो कि अपनी आत्मा की विकास होगा तो इसी ढंग से होगा, भीतर निश्चय

एक भक्त भगवान के सामने स्वयं को बालक एवं भगवान को भगवान देखता है।

की बात गहराई से होती चली जाती है। जीव अन्य है और पुद्गल अन्य है, हरेक क्रिया में उसे भासता चला जाता है। उसकी गहराई भीतर से बढ़ती चली जाती है और बाहर से वह सदाचार, सुशील, नम्रता, क्षमा इन गुणों से वह भरता चला जाएगा। इस प्रकार के जब उस आत्मा के अन्दर अन्तरंग और बहिरंग दोनों तरीकों से गुणों का विकास होगा तो आचार्य कहते हैं, यह हो रहा है आत्मा का विकास और नहीं तो वृक्ष के लिये हमने बीज तो लगा दिया, पानी भी दिया लेकिन उसकी गति आगे बढ़ ही नहीं रही। हम उसके अन्दर बार-बार पानी डाल रहे हैं और हमें पता ही नहीं कि उसमें कीड़ा कहाँ लग रहा है? कीड़ा तो भीतर लगता है, ऊपर उसकी सफाई करने से क्या होगा, भीतर अगर उसकी जड़ में कीड़ा लगा है तो उसकी वृद्धि हो ही नहीं पाएगी। इसी तरह से अगर मूल में जैसे ही हम बढ़ना शुरू हुये तो बस हम जैन बन गये, मन्दिर जाने लगे, शास्त्र पढ़ने लगे, थोड़ी सी ज्ञान में वृद्धि होने लगी। फिर उस ज्ञान में, एकदम से कीड़ा लगने लगा और वह कीड़ा लग गया कि या तो ज्ञान में, व्यवहार में यह आ गया कि तप संयम करने से कुछ नहीं होता। फिर ज्ञान में यह आ गया कि बस खूब तप करो, उपवास करो लेकिन किसके लिये किया, यह पता ही नहीं। विकास हुआ तो आपको अन्दर से संवृद्धि भीतर से महसूस होगी कि भीतर से संवृद्ध होता चला जा रहा हूँ, भीतर जो क्रिया कर रहे हैं उसका प्रभाव बाहर तक पहुँच जाएगा। वही चीज आपकी अपनी होगी, जिससे आपको संतुष्टि हो और खुद अपने भीतर महसूस हो रहा है कि भले ही बाहर कुछ नहीं दिखाई दे रहा हो लेकिन मैं भीतर से संवृद्ध होता जा रहा हूँ। भीतर अपने अन्दर गुणों की प्राप्ति के उत्सुकता बढ़ती चली जाना और किसी भी प्रकार की रुग्णता अपने अन्दर नहीं आने देना। यह सब रुग्णता को देखते हुये अपने अन्दर विकास करते चले जाओ, आपको लगेगा कि यह सार हमारे जीवन में कब से समाया था और यह निरन्तर बढ़ता चला जा रहा है और इसकी समृद्धि के लिये सब कुछ करता चला जाता है। वह अपने आस-पास के लोगों के लिये भी ज्ञान देता है, सबके बीच में रहता है लेकिन संवृद्धि कभी छोड़ता नहीं और उसी संवृद्धि के साथ में आपको कई साधक मिलते हैं। आनन्द भीतर-भीतर बढ़ता रहता है क्योंकि सब आनन्द के स्रोत अलग-अलग हैं। अपने-अपने में सबके समाये हुये हैं, किसी से, कभी किसी की तुलना मत करो। संसारी प्राणी की यह सबसे बड़ी आदत होती है कि वह हमेशा ही दूसरों से तुलना करके दूसरों को देखता है। यह हमेशा ध्यान में रहे कि हमें किसी से किसी की तुलना करके अपने अन्दर कोई भी भाव लाना ही नहीं, अपना वृक्ष अपने अस्तित्व से स्वयं जुड़ा हुआ है और हम जहाँ खड़े हुये है वहाँ हम ही खड़े हुये हैं, कोई दूसरा खड़ा नहीं हो सकता क्योंकि एक वृक्ष के ऊपर कोई दूसरा वृक्ष नहीं लगता है और लग भी जाये तो वह पनप नहीं सकता है। हर व्यक्ति को अपने अस्तित्व का गहराई से ख्याल होना चाहिए, इतनी गहराई से विश्वास होना चाहिए कि कोई उसकी किसी से भी तुलना करे लेकिन

अंतरंग एवं बहिरंग दोनों तरीकों से आत्मा का विकास होना आवश्यक है।

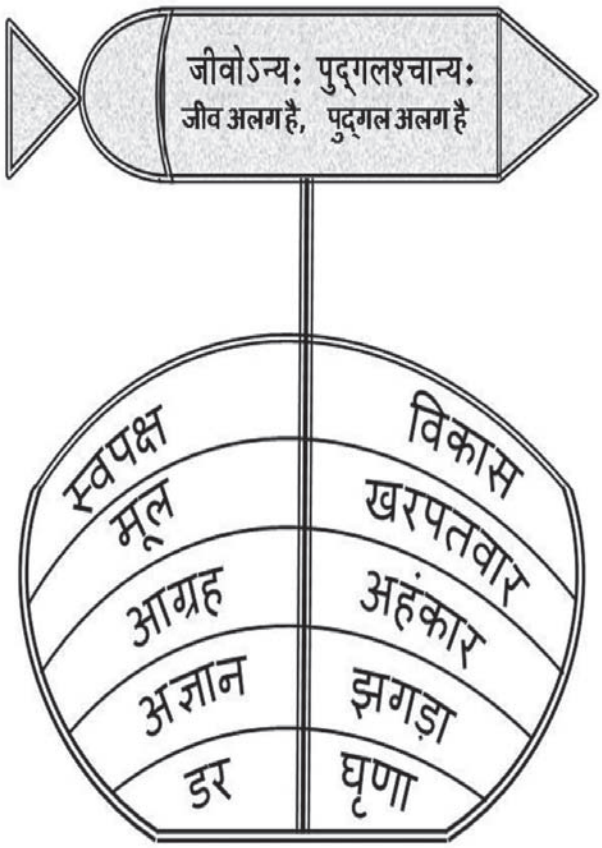

उसे लगे कि मैं जहाँ खड़ा हूँ, बिल्कुल मजबूत हूँ, मैं जिन भावों में हूँ, परिपूर्ण हूँ। यह विचार जब आपके अन्दर आएगा, तब आपकी गहराइयाँ बढ़ेंगी, ऊँचाइयाँ बढ़ेंगी, कोई बाहर की गहराई और ऊँचाई आपके काम में नहीं आएगी। जिनमें यह गहराई और ऊँचाई नहीं होती है तो वह थोड़ी आँधियों में ही गिर जाते हैं क्योंकि मूल में वह सार नहीं भरा रहता है।

ज्ञान का सार :

इसलिए आचार्य कहते हैं कि कोई चिंता करने की किसी को जरूरत ही नहीं, सबके अन्दर यह सार भरा हुआ है। बस आपको अपने अन्दर ज्ञान में उसे गहराई से रखना है कि अपने अन्दर का विश्वास, अपने अस्त्वि का विश्वास कभी भी डगमगाये नहीं और अस्तित्व यही है कि मैं जीव आत्मा हूँ और मेरा अस्तित्व मेरे अपने स्वयं के कारण से है, किसी के कारण से नहीं है। मेरे अन्दर आज जो विकास हो रहा है, वह मैं खुद अपने कारण से कर रहा हूँ। बाहरी चीजें सहयोगी हो सकती हैं लेकिन विकास तो भीतर से ही होता है, इसी को कहते हैं भवितव्यता की शक्ति। अगर भीतर भवितव्यता की शक्ति होगी तो वह विकास होता चला जाएगा। इसी तरह से आचार्य कहते हैं कि जितनी भी बाहरी चीजें हैं गुरु के सानिध्य, भगवान की भक्ति, शास्त्रों का पठन यह सब चीजें सबके लिये हैं, लेकिन भीतर की जो भवितव्यता है वह अपनी अनंतशक्ति वाली है। उसकी शक्ति को समझते रहना, उसके ऊपर कभी अंहकार नहीं करना और दुखी भी नहीं होना अगर आप अहंकार करेगें तो वह आपकी शक्ति दबने लगेगी और आप दुखी हो गये तो भी आपकी शक्ति कुंठित हो जाएगी। जितना आपके अन्तरंग और बहिरंग के कारणों से विकास हो सकता है, आप उस विकास को करते चले जाओ, इसी का नाम है अपनी उस भवितव्यता को बढ़ाते चले जाना और यह भवितव्यता दोनों ही कारणों

के मिलने से चलती है। इसलिए आचार्य कहते हैं- यह अनंत शक्ति वाली जरूर है लेकिन दोनों ही कारण पर निर्भर है 'हेतुद्वयाविष्कृतकार्यलिङ्गा', अपना आविष्कार स्वयं करो, दूसरों के आविष्कार को देख करके अगर आपको कोई सीख मिल जाये अच्छी तो उसको आगे बढ़ा लेना नहीं तो बहुत अच्छा हो आप बिल्कुल अंधेरे में अपना आविष्कार स्वयं करो। अध्यात्म अपने अन्तरंग की चीज है जो अन्तरंग में वृद्धि करती है, अन्तरंग को शुद्ध करती चली जाती है और इस अध्यात्म के माध्यम से जीवन का समूचा विकास सम्भव है। अन्य किसी चीजों से जीवन का समूचा विकास सम्भव नहीं है अगर वास्तव में कोई व्यक्ति आध्यात्मिक होगा तो उसके जीवन का समूचा विकास होता चला जाएगा, वह व्यवहार से डरेगा नहीं, व्यवहार की क्रियाओं को देख करके घृणा नहीं करेगा। वह सब कुछ करते हुये भी अपने अन्दर की इस दृष्टि को पूर्ण करता रहेगा, जिस दृष्टि में वह भासता है 'जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्यः'। यह प्रक्रिया जिस समय आपके अन्दर आ जाएगी, यह जितने भी भेद विभाजन चल रहे हैं, यह सब अज्ञानताओं से चल रहे हैं। आचार्य कहते हैं कि सब अपने-अपने अंधकार में अच्छे ढँग से पड़े हैं और सब अपने-अपने पक्ष में बिल्कुल स्थित हो गये हैं। 'स्वपक्ष सौस्थित्य', सौस्थित्य मतलब किसी पक्ष में अच्छे ढँग से स्थित हो जाना और जब हम किसी भी पक्ष में अच्छे ढँग से स्थित हो जाएंगे तो मद आये बिना रहेगा ही नहीं। जहाँ मद से अवलिप्त हुये, वहीं फिर हमारे सामने न भगवान दिखेंगे, न गुरु दिखेंगे, हमें केवल अपनी वही क्रियाएँ दिखेंगी जो हम करते आ रहे हैं। हमें सिर्फ अपना पुराना आग्रह दिखेगा, जिसमें हम जी रहे हैं और जो चीज हमसे विपरीत दिखेगी, हम डरने लगेंगे या हम उससे घृणा करने लगेंगे। जहाँ पर आग्रह है, वहाँ पर अहंकार है 'स्वपक्ष-सौस्थित्य मदावलिप्ता' जब अपने किसी भी पक्ष-का दृढ आग्रह हो जाएगा तो मद आएगा, आप उस अहंकार की पुष्टि करोगे और उस अहंकार की पुष्टि से यह समझोगे कि हमारा धर्म पुष्ट हो रहा है तो आपका यह एक और बड़ा अज्ञान हो जाएगा। अहंकार तो गलने चाहिए, अहंकार तो ऐसे छूटने चाहिए कि जैसा हमारा सही है वैसा तेरा भी सही है, अगर अहंकार में एक दूसरे को स्वीकार करने की भावना आ जाये तो वह अहंकार गलेगा। अगर अहंकार में केवल अपने को ही बढ़ाने की भावना आएगी तो वह अहंकार बढ़ता चला जाएगा। पक्ष विपक्ष तो बढ़ रहे हैं लेकिन अपने मन के अन्दर अपने स्वपक्ष क्या है? यह कभी किसी को ध्यान में नहीं आ रहा है। सबके अन्दर कोई न कोई अहंकार की वृद्धि दिखाई देती है। आचार्य कहते हैं- जो वास्तव में भीतरी विकास कर रहा होगा वो किसी भी झगड़े में नहीं पड़ेगा, किसी भी आग्रह में नहीं पड़ेगा, वह अपने काम से अपना काम और अपनी आत्मा के विकास के लिए जो चीजें साधक हैं बस उनको चुनेगा बाकी की जो खरपतवार होती है, उसको तो वह हटाता रहेगा क्योंकि वह हमारे विकास को रोकते हैं। यह जितने भी आग्रह हैं, आज बड़े-बड़े मोक्ष मार्गियों के विकास को रोके हुये हैं, इसी कारण से मोक्ष मार्ग में चलने वाले भी कई साधक अपना विकास नहीं कर

भीतरी विकास करने वाला किसी झगड़े में ना पड़कर अपने विकास के लिये जीता है।

पाते हैं क्योंकि वह खरपतवार में उलझ जाते हैं और उससे कुछ नहीं मिलता है। अपना जो मूल है उसकी शक्ति भी उसमें जानी है और वह जो खरपतवार होती है वह अपने मूल की शक्ति को चूसने के लिये ही होती है। जिसको इस चीज का ध्यान है वह कभी भी बाहरी झंझटों में उलझेगा ही नहीं और जहाँ यह उलझनें शुरू हो जाये समझ लेना हम मूल से हट रहे हैं, खरपतवार पर अपना ध्यान है। अपना मूल विकास किसी से बाधित ना हो यह 'जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्यः' हमें यह इतना अच्छा सूत्र लगता है कि बस इसमें डूब जाओ। मूल से लेकर के चूल तक यहीं आध्यात्म ही आध्यात्म है, यहीं पर शुरुआत है और यहीं पर अन्त है, यहीं से जीव के अन्दर शुरुआत होना है सम्यग्दर्शन की ओर, यहीं पर अन्त होकर के उसको मोक्ष होना है क्योंकि मोक्ष में भी यहाँ हमने ज्ञान किया है और उस ज्ञान के माध्यम से जब हम समीचीन ढँग से चलते रहे तो हमें जिस समय पर आत्मा की यह अनुभूतियाँ होगी, जीव को हम पुद्गल कर्म भावों से भिन्न देखेंगे व उन अनुभूतियों में हमें यह खुद महसूस होता है कि कौन-कौन से कर्मों की खरपतवार में हम अपने मन को उलझा रहे हैं। हम अपने स्वभाव की ओर क्यों नहीं जा पा रहे हैं? जैसे ही हम अपने स्वभाव की ओर जाने की दृष्टि बनाते हैं, कोई न कोई कर्म की खरपतवार अपने ऊपर आक्रमण करती है और उस कर्म के भाव में हमारा मन उलझ जाता है। हम मूल तक, अपने स्वभाव तक पहुँच नहीं पाते हैं भाव लेकर के बैठ जरूर जाते हैं कि जीव अन्य है और पुद्गल अन्य है लेकिन जैसे ही आंख बंद की तो मन में तरह तरह की खरपतवारें दिखाई देने लग जाती है। वह मन जहाँ इन चीजों में उलझा, अपने मूल का विकास रुक गया। यह चीजें अन्त में, अन्तिम गाथा में, इसको क्या कहें, इसको अन्त कहें कि शुरुआत कहें, देखा जाये तो यहीं से शुरुआत भी है और यहीं से अन्त भी है। सब कुछ इसी में, इसलिए इस चीज को ही ध्यान में रखना है कि अपने स्वभाव को कर्म के माध्यम से उसके ऊपर अनेक प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं लेकिन हम अपने भावों को कर्म से बचाते हुये, अपने अन्दर के सब प्रकार के विकारों को जीत सकते हैं अगर हमारी दृष्टि केवल स्वभाव पर रहे। 'जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्यः' अपने चित्त में आये हुये जितने भी संस्कार पड़े हुये हैं पूर्व जन्मों के अनेक प्रकार के विकारी भाव पड़े हुये हैं। वह सब इस स्वभाव को ध्यान में रखने से अपने आप से भिन्न दिखाई देने लग जाते हैं और उन्हीं की अनुभूति में जब हमारा मन लग जाता है तो अपने आप वह विकार भाव अपने सामने गिर जाते हैं, अलग हो जाते हैं। आचार्य कहते हैं कि आत्मा के अन्दर इतने प्रकार के कर्म पड़े हैं कि वह कर्म सारे के सारे अपने अन्दर जैसे पृथ्वी के समान हो गये हों, मतलब वह कर्म हमारे अन्दर कोई बाधा नहीं पहुँचाएंगे। बस यह ध्यान में रखो कि वह उदय में न आये, वह हमारी अनुभूति में न आये इसलिए आप मूल को ध्यान में रखें। अपनी परिणति को विकासोन्मुखी बनाये और जहाँ विकासोन्मुखी परिणति होगी वहाँ आपके अन्दर सबके प्रति समभाव आएगा।

अपनी दृष्टि स्वभाव पर रखकर अपने विकारी भावों को कर्म से बचाते हुये जीत सकते हैं।

शास्त्राध्ययन का साक्षात् और पारम्परिक फल

51

इष्टोपदेशमिति सम्यगधीत्य धीमान्
मानापमानसमतां स्वमतादितन्य।
मुक्ताग्रहो विनिवसन् सजने वने वा
मुक्तिश्रियं निरुपमामुपयाति भव्यः॥

अन्वयार्थ—(धीमान् भव्यः) बुद्धिमान् भव्य पुरुष **(इति)** इस प्रकार **(इष्टोपदेशं)** इष्टोपदेश ग्रन्थ को **(सम्यक् अधीत्य)** अच्छी तरह अध्ययन करके **(स्वमतात्)** अपने आत्मज्ञान से **(मानापमानसमतां)** सम्मान और अपमान में समता भाव को **(वितन्य)** विस्तार/ विशेषण करके **(मुक्ताग्रहः)** आग्रह को त्यागता हुआ **(सजने)** गाँव आदि में **(वा)** अथवा **(वने)** निर्जन वन में **(विनिवसन्)** रहता हुआ **(निरुपमां)** अनुपम **(मुक्तिश्रियम्)** मुक्ति लक्ष्मी को **(उपयाति)** प्राप्त करता है।

- **आत्मा का सुख**
- **समता भाव**

आत्मा का सुख :

आचार्य महाराज यहाँ अन्तिम श्लोक में इस इष्टोपेदश के अध्ययन से क्या सीख मिलती है, यह बता रहे हैं, 'इष्टोपदेशम्' यानि इष्टोपदेश। 'इति' माने इस प्रकार। 'सम्यक्', अच्छी तरह से। 'अधीत्य' माने अध्ययन करके। 'धीमान्' है, बुद्धिमान पुरुष आत्मा। 'मानापमानसमतां', मान और अपमान में समता को। 'स्वमताद्', अपनी ही बुद्धि से, ज्ञान से। 'वितन्य', विस्तारित करके। 'मुक्त आग्रहो', आग्रहों से रहित हो। 'विनिवसन् सजने वने वा' चाहे लोगों के बीच में रहना पड़े या वन में रहना पड़े, इन सब के आग्रहों से मुक्त हो –'मुक्तिश्रियं निरुपमामुपयाति भव्यः', इस तरह से जो करता है भव्य जीव, 'निरूपमां मुक्तिश्रियं उपयाति', वह निरूपमाम् जिसकी कोई उपमा नहीं दी जा सकती ऐसी वह मुक्तिश्रय लक्ष्मी को भव्य जीव प्राप्त कर लेता है, यह इसका अर्थ है। आचार्य महाराज का यहाँ पर जो अन्तिम भाव है इसमें जो मुख्य चीज है वह एक तो यह है कि उन्होंने किस प्रकार के जीवों को समझ दी है। एक शब्द आया है- भव्य जीव, भव्य जीव में ही वह योग्यता होती है, जो आत्म ज्ञान की ओर उन्मुख होता है। भव्य जीव में ही वह योग्यता होती है, जिसको आत्मा के सुख की रुचि उत्पन्न होती है। कोई अगर आपसे पूछे- भव्य जीव की पहचान क्या है तो आचार्यों ने लिखा है कि जिसको सिद्धों के सुख की रुचि उत्पन्न होती है वह भव्य जीव है, जिसके मन में यह भाव आता हो कि सिद्ध सुख ही वास्तविक सुख है बस वही हमें प्राप्य है, इस प्रकार का भाव, रुचि जिनमें आती है उन्हें भव्य जीव कहा जाता है। इसलिए यहाँ आचार्य कहते हैं कि आप भव्य जीव ही हैं और आप बुद्धिमान भी हैं, बुद्धिमान का अर्थ है कि किसमें अपना हित है और किसमें अपना अहित है इस प्रकार समझ जिनमें आ जाती है, वह बुद्धिमान कहलाता है। इस तरह से बुद्धिमान जीव बहुत अच्छे ढँग से इस इष्टोपदेश को सम्यक् ढँग से पढ़ें मतलब हर तरह से जानें, व्यवहार से क्या है, निश्चय से क्या है, अपनी शक्ति को भी पहचानें, हम कितना अपने मन को सम्भाल रहे हैं, इस प्रकार के उपदेश कितना हमारे रुचि में आ रहे हैं, कितना रुचि में नहीं आ रहा है, यह सब चीजों का जो अच्छी तरह से विचार करता है उसी को कहा जाता है कि उसने बहुत अच्छे ढँग से इस ग्रन्थ को पढ़ा-सीखा और समझा, इसका चिंतन किया। इस तरह से अगर कोई करने योग्य चीज है तो आचार्य कहते हैं 'मानापमानसमतां स्वमताद्वितन्य', एक काम करना सीख लो एक समत्व भाव की आराधना करो, अपने मन को हमेशा समता में ढ़ालने का पुरुषार्थ करो और वह समता मुख्य रूप से मान और अपमान के विषय में रखना। यह प्रसंग आया करता है, हर किसी के जीवन में अगर वह भीतर से खेद खिन्न होता है तो मान व अपमान के माध्यम से ही होता है। इस विषय में जिसको समता रखने का भाव आ जाता है तो समझ लो उसने सब विषय में समता रख ली। समता रखने के विषय तो और भी हैं ''जीवेम रणे लाहालाहे संजोगवित्तय जोग या बंधुरूस्स दुक्खादो समता मे सामायिभणां'

भव्य जीव ही आत्मज्ञान की ओर उन्मुख होता है, उसे सिद्ध सुख वास्वविक लगता है।

समता भाव :

आचार्य कहते हैं कि जीवन के विषय में, मरण के विषय में समता रखो, लाभ-अलाभ के विषय में समता रखो, संयोग वियोग के विषय में, बंधु और शत्रु के विषय में और सुख व दुख के विषय में समता रखो। यह सब समताओं को रखने के अलग-अलग जो भाव बताये हैं वो इस एक 'मानापमान समतां' इसमें सब सम्मिलित हो जाते हैं क्योंकि व्यक्ति के अन्दर जब अन्य विज्ञों में असमता, विषमता होती है तो उसका कारण यही होता है कि भीतर से उसकी मान कषाय किसी न किसी इच्छा को पैदा करती है और जब वह उसकी इच्छा पूर्ण नहीं होती है तो वो भीतर ही भीतर अपनी उस मान कषाय के अभाव में इन चीजों से परेशान होता है। चाहे वह सुख-दुख में समता की बात हो, चाहे वह जीवन-मरण में समता की बात हो अगर आपका मान और अपमान समान हो गया है तो आपके लिए यह जीवन-मरण कोई चीज ही नहीं बचेगी क्योंकि जीवन से भी हम जुड़ते हैं तो उसमें भी हमारे अन्दर का मान भाव जुड़ जाता है कि हमारी पहचान है। आचार्य कहते हैं कि जब तक तुम अपनी बाहरी पहचान में रहोगे तो तब तुम कभी भी मान-अपमान में समता नहीं रख पाओगे। मान-अपमान में समता रखने का मतलब है to go beyond this indentity इस पहचान से परे हो जाओ, इस पहचान को भूल जाओ। जब तुम इस पहचान से परे हो जाओगे तब

अपने मन को हर परिस्थिति में समता में ढालने का प्रयास करो।

तुम्हारे अंदर मान अपमान में समता रखने का भाव आयेगा क्योंकि हमारे अन्दर विषमता इसी कारण से हो जाती है। हम अगर मनुष्य हैं तो मनुष्य के बीच में भी हमें सम्मान मिलना चाहिए। कभी किसी के द्वारा अपमान हो जाता है, मन में अपने आप खेद खिन्नता आ जाती है इसलिए आचार्य महाराज ने सार रूप में अन्त में निकाल कर रखी, ऐसा लगता है कि उन्होंने आदमी की नस पकड़ ली। यह वह बीमारी है जो बड़े-बड़े लोगों से नहीं छूटती, साधकों से भी नहीं छूटती। इसको ही छोड़ने का प्रयास, पुरुषार्थ जिसमें रहता है वह जीव ही आत्म सुख की ओर उन्मुख होता चला जाता है। जैसे-जैसे आपके मन में सम बुद्धि बढ़ेगी, मान अपमान के विषय में आप जितना मन को ignore करोगे, यह सबसे बड़ी देवत्व की ओर जाने की आराधना है और मनुष्य की सबसे बड़ी कमजोरी the last weakness of men वो यही है, मान और अपमान के विकल्पों में उलझे रहना कभी कहीं पर किसी भी कारण से कुछ छोटा मोटा भी व्यवधान मान अपमान में आ जाता है तो बहुत देर तक उसी विषय में मन चिपका रहता है, मन उसी विषय में बार-बार जुड़-जुड़ करके अपनी निद्रा भी खो देता है।

अगर तुमने वास्तव में इष्टोपदेश सीखा है तो इस मान अपमान में अब समता रखना। 'स्वमताद्वितन्य' अपने ही मन में विचार बढ़ाओ, अपने ही मन को समझाओ अपना ही मंतव्य ऐसा बनाओ कि हम अपने ही आपको समझाने में समर्थ होते जायें और मान-अपमान से बिल्कुल अछूते रहते जायें। यह अगर पुरुषार्थ होगा तो आचार्य कहते हैं कि यही हमारा समता रूप सम्यक् चारित्र है। 'श्रामण्य' कहा जाता है श्रमणो के भाव और वह श्रामण्य उसी समत्व भाव से जुड़ा होता है जो सब जगहो पर सब चीजो में समत्व रखता है उसी का नाम श्रामण्य है। श्रमणो के भाव को ही सम्यक् चरित्र कहा जाता है और वही सम्यक् चरित्र है, जिसके मन में समता रहे। देवशास्त्रगुरु का श्रद्धान, जीवादि तत्त्वों का श्रद्धान, यह अध्यात्म के सम्यग्दर्शन का नाम है ही नहीं, सम्यग्दर्शन का मतलब है the deep belief to inner glorious life. अपने अन्तरंग के आत्मिक जीवन के लिए एक गहरा विश्वास, जीवन के लिए गहरा विश्वास जिसके अन्दर आता है उसको आध्यात्म में सम्यग्दर्शन कहा जाता है। अपनी आत्मा के लिए उत्पन्न होने वाले सुख और उन सुख के कारणों पर जिसे विश्वास उत्पन्न होता है उसे यहाँ पर सम्यग्दर्शन कहा गया है। उसी को बुद्धिमान कहा जाता है, जो उन्हीं कारणों को अपनाता है और उन्हीं में अपना मन बार-बार लगाता रहता है। जो इस तरह से सम्यग्दर्शन रखेगा, उसके लिए अपनी आत्मा का और अपनी आत्मा से भिन्न भावों का यह सब ज्ञान रहेगा तो उसका ज्ञान सम्यक् कहलाएगा, जो उसका वास्तविक चारित्र है। इस चारित्र के माध्यम से उसके अन्दर किसी भी प्रकार का आग्रह नहीं रहेगा क्योंकि आग्रह का मतलब होता है, बाहरी वस्तुओं में ऐसा अभिनिवेश धारण करना कि यही मैं हूँ, यही मेरा है, इस प्रकार के अभिनिवेश को आग्रह कहा जाता है और वह बाहरी वस्तुओ में इस प्रकार का अभिनिवेश छोड़ देता है तो वह आग्रहों से मुक्त होकर के अपनी आत्मा में डूबने का एक पुरुषार्थ करने लग जाता है। जब तक कोई व्यक्ति बाहरी पदार्थों से जुड़ा रहता है तो वह अध्यात्म का पात्र बनता ही नहीं

अपने आप को समझाने में स्वयं समर्थ हो, मान-अपमान से अछूते रहो, यही समता है।

है। आपको लगे कि यह बाहरी पदार्थ ही मेरे हैं, मैं इनके बिना नहीं हूँ तो आप समझना कि आपके अन्दर अपनी आत्मा तक पहुँचने की योग्यता नहीं रही। यह बाहरी आग्रह हर प्रकार के छूटने चाहिए, किसी भी विषय में हो, यहाँ तक कि मैं अगर दिगम्बर हूँ तो यह दिगम्बर धर्म ही मेरा है, यह धर्म ही मैं हूँ। इस प्रकार का आग्रह भी श्रमणों को छोड़ना पड़ता है तब जाकर के यह मुक्ताग्रह वाला विशेषण उनमें लगता है। आचार्य कहते हैं- जब आप समयसार, समाधितन्त्र आदि ग्रंथ पढ़ोगे तो वह कहते हैं कि आप यह लिंग का आग्रह भी छोड़ना जैसे मैं यह हूँ या यह मेरे बिना नहीं है, इस प्रकार का भाव जब आयेगा तो आप कभी भी आत्म ध्यान कर ही नहीं पाओगे, आपके मन में समता का भाव आ ही नहीं पायेगा। इसलिए आचार्य कह रहे हैं कि कोई भी बाहरी आग्रह मत रखो, जो है सो है हमको क्या। इतनी बड़ी भीतर तुम्हारे सम्पदा पड़ी है अगर तुम्हारे अन्दर आग्रह

आत्मध्यान में समग्र आत्मा का संवेदन व्यवहारनय एवं निश्चयनय से रहित होता है।

बने तो बस इस बात का आग्रह रखो कि मुझे तो अपने मन को मान और अपमान से समतामय बनाना है। बाहरी कषाय में पडोगे तो आपको मान में कभी समता आयेगी ही नहीं बल्कि आपको चिन्ता रहेगी कि कहाँ-कहाँ हमारा मान ठीक ढँग से काम कर रहा है कि नहीं कर रहा है। जहाँ आपके मान को ठेस पहुँचती है तो आपके भीतर भी गहराई तक ठेस पहुँचेगी। यहाँ जो बताया जा रहा है, उसमें तो यह भी आग्रह मत रखो कि हमें सहजनों के साथ में रहना है या वन में रहना है। अपने मन को आप जितना आग्रह से मुक्त करोगे, उतना आपका मन अपने में समाहित होगा और जितना-जितना मन आत्मा में समाहित होगा, मुक्ति उतने-उतने अंशो में आपके भीतर उतरती हुई स्वयं दिखाई देगी। वह भव्य जीव, अपनी मुक्ति रूपी लक्ष्मी को स्वयं अनुभव करेगा कि मैं मुक्त हूँ। सिद्ध भगवान बनकर ही मुक्त होता हूँ, ऐसा नहीं है। साधु भी उस मुक्ति का अनुभव करता है क्योंकि जिसका मन इस प्रकार के किसी भी आग्रह में नहीं जुड़ा है तो उसका मन हमेशा मुक्त है। उसके लिए कोई परेशानी नहीं है। वह हमेशा अपने मन को समता में रखता है, यह इष्टोपदेश ग्रंथ का अन्तिम सार है। यह कितना मिष्ट उपदेश है कि अपने मन के अन्दर केवल समता को बढ़ाना, बस यही अपना चारित्र बना लेना बाकी के बाहर की बातें भूल जाना, आग्रह मत करना। अपना वास्तविक चारित्र तो अपनी समता की वृद्धि होना, अपनी बुद्धि में संवृद्धि आना और मन वचन काय तीनों में अपनी बुद्धि जुडकर के भी समान बनी रहे तो अपने मन में न मरने की इच्छा, न जीने की वांछा होगी क्योंकि यह सब जब होता है जब हमारे अन्दर विषमता बनी रहती है। इसलिए आत्मध्यान के द्वारा अपने मन के अन्दर की जो मूर्च्छा है, उसको दूर करना और इस मन की मूर्च्छा को जो दूर करता है तो वह व्यक्ति अपने आप आत्म-ध्यान में लीन होता चला जाता है। यही आत्म-ध्यान ही मन की विषमता को दूर करने का साधन है। यही साधन, साध्य रूप में भी चला जाता है। इसी तरह से यह इष्टोपदेश ग्रंथ अच्छे वातावरण के साथ, आपकी निश्चितता के साथ आज शनिवार 'आद्यं समाप्तं शनि सोमवारे' क्योंकि समाप्ति या शुरुआत में शनिवार आ जाये तो वह काम अपने आप मंगल हो जाता है, सब चीजें मंगल-मंगल हैं। अपने अंदर इन भावों को निरंतर बनाये रखना है आचार्य महाराज ने इस ग्रंथ का पद्यानुवाद भी किया है इसकी यह चार लाइनें-

''सुधी सही इष्टोपदेश का,
ज्ञान करे अवधान करे।
मानपने अपमानपने का समान,
ही सम्मान करे॥
निजागृही मुनि वन में या,
उचित भवन में वास करे।
पालें निरुपम मुक्ति सम्पदा,
भव्य भवों का नाश करे॥''

बुद्धिपूर्वक स्वयं को जानना और मान-अपमान में समता रखना ही अध्यात्म है।

मुक्ताग्रह का मतलब व्यवहार और निश्चय का भाव भी छोडना जो व्यवहार और निश्चय दोनों ही पक्षपात हैं; यह आचार्य कुन्द-कुन्द देव ने लिखा है

'णयपक्खादिक्कंतौ'

जो नय पक्ष से अधिकान्त हो गया, हो माने जहाँ पर यह नयों का पक्ष कुछ भी नहीं रहता है, वहीं पर आत्मध्यान होता है।

'उदयति न नय श्रीरस्तमेति प्रमाणं'

जहाँ पर नयों की यह श्रय लक्ष्मी भी उदय को प्राप्त नहीं होती है, इस प्रकार का भी जहाँ विकल्प नहीं रहता है उसका नाम है नय के पक्षपात से रहित होना। वास्तव में आत्मध्यान पर न तो व्यवहार नय रहता है ना निश्चय नय रहता है। निश्चय से भी आत्म ध्यान नहीं होता है क्योंकि नय का मतलब है कि किसी एक अभिप्राय को बताने वाला और वह उस समय पर समग्र आत्मा का संवेदन करता है तो वह किसी भी प्रकार के नयों की न जानकारी रखता, न उस नय के माध्यम से अपनी आत्मा का संवेदन करता है। नय तो उस पदार्थ तक पहुँचने का एक साधन होते हैं, एक ज्ञान कराने का एक माध्यम होते हैं। उन नयों से जो हमने वस्तु तत्त्व को जाना और उस वस्तु का जो स्वरूप था वो तो हम जब लीन होंगे तो वहाँ पर दोनों ही नय अपने से रहित होंगे। जो इस प्रकार देही नयों से जो मुक्त होती है, उसी को समयसार या शुद्ध आत्मा की स्वानुभूति होती है, यह भी आचार्य कुन्दकुन्द देव का कथन है। इस ग्रंथ में आचार्य पूज्यपाद महाराज ने इतनी क्लिष्ट शब्दावली का प्रयोग नहीं किया जो आपको समझ में न आये। बड़े सीधे शब्दो में लिखा है, आप बुद्धि सहित सम्यक् रूप से इसका अध्ययन करें, आप सम्यग्ज्ञानी बन गये, आप अपने दर्शानी बन गये और आप मान अपमान में समता रखें, आपके अन्दर सम्यक् चारित्र आ गया। इतने सीधे सरल शब्दो में हमें पूरे जैन दर्शन में कोई ग्रंथ पढने को नहीं मिलता है। इसमें किसी भी पद्य में ऐसा नहीं है कि यह अरिंहत हैं, यह सिद्ध, यह मुनि हैं, यह जिन हैं, कुछ नहीं इसमें तो जो अध्यात्म का पालन करेगा उसको यह अनुभूतियां होगी और यह किसी भी समाज के द्वारा पढ़ा जा सकता है। अंत-अंत में भी भव्य जीव कहकर ही उन्होंने इसको पूर्ण किया और कोई संज्ञा विशेष इसमें नहीं लगाना चाह रहे हैं। सबके लिए यह अध्यात्म है, इसका जो अनुभव करेगा उसे आनन्द आयेगा।

ग्रन्थ पाठ

इष्टोपदेश

यस्य स्वयं स्वभावाप्ति, रभावे कृत्स्नकर्मणः।
तस्मै संज्ञान रूपाय नमोऽस्तु परमात्मने ।। 1॥
योग्योपादानयोगेन, दृषदः स्वर्णता मता ।
द्रव्यादिस्वादिसंपत्तावात्मनोऽप्यात्मतामता ।। 2॥
वरं व्रतैः पदं दैवं, नाव्रतैर्वत नारकं।
छायातपस्थयो -र्भेदः प्रतिपालयतोर्महान् ॥ 3॥
यत्र भावः शिवं दत्ते, द्यौः कियद्दूरवर्तिनी।
यो नयत्याशु गव्यूतिं क्रोशार्धे किं स सीदति ?॥ 4॥
हृषीकज -मनातङ्कं दीर्घ - कालोपलालितम्
नाके नाकौकसां सौख्यं, नाके नाकौकसामिव॥ 5॥
वासना-मात्रमेवैतत् सुखं दुःखं च देहिनाम्।
तथा ह्युद्वेजयन्त्येते, भोगा रोगा इवापदि॥ 6॥
मोहेन संवृतं ज्ञानं, स्वभावं लभते न हि।
मत्तः पुमान् पदार्थानां यथा मदन कोद्रवैः ॥ 7॥
वपुर्गृहं धनं दाराः, पुत्रा मित्राणि शत्रवः।
सर्वथान्यस्वभावानि, मूढः स्वानि प्रपद्यते ।। 8॥
दिग्देशेभ्यः खगा एत्य, संवसन्ति नगे नगे ।
स्वस्वकार्यवशाद्यान्ति, देशे दिक्षु प्रगे प्रगे॥ 9॥
विराधकः कथं हन्त्रे जनाय परिकुप्यति।
त्र्यङ्गुलं पातयन् पद्भ्यां स्वयं दण्डेन पात्यते।। 10॥
रागद्वेषद्वयीदीर्घ - नेत्राकर्षण कर्मणा।
अज्ञानात्सुचिरं जीवः, संसाराब्धौभ्रमत्यसौ ॥ 11॥
विपद्भवपदावर्ते पदिकेवातिबाह्यते।
यावत्तावद्भवन्त्यन्याः प्रचुरा विपदः पुरः ॥ 12॥
दुरर्ज्येनासुरक्ष्येण, नश्वरेण धनादिना।
स्वस्थंमन्यो जनः कोऽपि, ज्वरवानिव सर्पिषा॥13॥
विपत्तिमात्मनो मूढः, परेषामिव नेक्षते।
दह्यमान-मृगाकीर्णवनान्तर -तरुस्थवत्॥14॥

आयुर्वृद्धिक्षयोत्कर्ष, हेतुं कालस्य निर्गमम्।
वाञ्छतां धनिनामिष्टं, जीवितात्सुतरां धनम् ॥ 15॥
त्यागाय श्रेयसे वित्तमवित्तः सञ्चिनोति यः।
स्वशरीरं स पङ्केन, स्नास्यामीति विलम्पति॥ 16॥
आरम्भे तापकान् प्राप्तावतृप्ति प्रतिपादकान् ।
अन्ते सुदुस्त्यजान् कामान् कामं कः सेवते सुधीः॥ 17॥
भवन्ति प्राप्य यत्सङ्गमशुचीनि शुचीन्यपि।
स कायः सन्तापायस्तदर्थं प्रार्थना वृथा ॥ 18॥
यज्जीवस्योपकाराय, तद्वेहस्यापकारकम्।
यद्वेहस्योपकाराय, तज्जीवस्यापकारकम् ॥ 19॥
इतश्चिन्तामणिर्दिव्य इतः पिण्याकखण्डकम् ।
ध्यानेन चेदुभे लभ्ये क्वाद्रियन्तां विवेकिनः॥20॥
स्वसंवेदन सुव्यक्तस्तनुमात्रो निरत्ययः।
अत्यन्तसौख्यवानात्मा, लोकालोकविलोकनः॥21॥
संयम्य करणग्राममेकाग्रत्वेन चेतसः।
आत्मानमात्मवान् ध्यायेदात्मनैवात्मनि स्थितम्॥ 22॥
अज्ञानोपास्तिरज्ञानं, ज्ञानं ज्ञानिसमाश्रयः।
ददाति यत्तु यस्यास्ति, सुप्रसिद्धमिदं वचः॥ 23॥
परीषहाद्यविज्ञानादास्रवस्य निरोधिनी।
जायतेऽध्यात्मयोगेन, कर्मणामाशु निर्जरा॥ 24॥
कटस्य कर्त्ताहमिति, सम्बन्धः स्याद् द्वयोर्द्वयोः।
ध्यानं ध्येयं यदात्मैव, सम्बन्धः कीदृशस्तदा॥ 25॥
बध्यते मुच्यते जीवः, सममो निर्ममः क्रमात् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन, निर्ममत्वं विचिन्तयेत्॥ 26॥
एकोऽहं निर्ममः शुद्धो, ज्ञानी योगीन्द्रगोचरः।
बाह्याः संयोगजा भावा, मत्तः सर्वेऽपि सर्वथा।। 27॥
दुःखसंदोहभागित्वं, संयोगादिह देहिनाम्।
त्यजाम्येनं ततः सर्वं, मनोवाक्कायकर्मभिः॥28॥
न मे मृत्युः कुतोभीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं,न युवैतानि पुद्गले॥29॥

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः।
उच्छिष्टेष्विव तेष्वद्य, मम विज्ञस्य का स्पृहा ॥30॥
कर्म कर्म हिताबन्धि, जीवो जीवहितस्पृहः।
स्वस्वप्रभावभूयस्त्वे,स्वार्थं को वा न वाञ्छति।।31॥
परोपकृतिमुत्सृज्य, स्वोपकारपरो भव।
उपकुर्वन्परस्याज्ञो,दृश्यमानस्य लोकवत् ॥ 32॥
गुरुपदेशादभ्यासात्संवित्तेः स्वपरान्तरम्।
जानाति यः स जानाति, मोक्षसौख्यं निरन्तरम् ॥33॥
स्वस्मिन् सदभिलाषित्वादभीष्टज्ञापकत्वतः।
स्वयं हितप्रयोक्तृत्वादात्मैव गुरुरात्मनः ॥34॥
नाज्ञो विज्ञत्वमायाति, विज्ञो नाज्ञत्वमृच्छति।
निमित्तमात्र मन्यस्तु, गतेर्धर्मास्तिकायवत्॥35॥
अभवच्चित्तविक्षेप, एकान्ते तत्त्वसंस्थितः।
अभ्यस्येदभियोगेन, योगी तत्त्वं निजात्मनः ॥36॥
यथा यथा समायाति, संवित्तौ तत्त्वमुत्तमम्।
तथा तथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि॥37॥
यथा यथा न रोचन्ते, विषयाः सुलभा अपि।
तथा तथा समायाति, संवित्तौ,तत्त्वमुत्तमम्॥38॥
निशामयति निश्शेषमिन्द्रजालोपमं जगत्।
स्पृहयत्यात्मलाभाय, गत्वान्यत्रानुतप्यते॥ 39॥
इच्छत्येकान्तसंवासं निर्जनं जनितादरः।
निज कार्यवशात्किञ्चिदुक्त्वा विस्मरति द्रुतम्॥40॥
ब्रुवन्नपि हि न ब्रूते गच्छन्नपि न गच्छति।
स्थिरीकृतात्मतत्त्वस्तु, पश्यन्नपि न पश्यति॥41॥
किमिदं कीदृशं कस्य, कस्मात्क्वेत्यविशेषयन्।
स्वदेहमपि नावैति योगी योगपरायणः॥42॥
यो यत्र निवसन्नास्ते, स तत्र कुरुते रतिम्।
यो यत्र रमते तस्मादन्यत्र स न गच्छति॥43॥
अगच्छंस्तद्विशेषाणामनभिज्ञश्च जायते।
अज्ञाततद्विशेषस्तु, बध्यते न विमुच्यते॥44॥

परः परस्ततो दुःखमात्मैवात्मा ततः सुखम्।
अत एव महात्मानस्तन्निमित्तं कृतोद्यमाः।।45।।
अविद्वान् पुद्गलद्रव्यं योऽभिनन्दति तस्य तत्।
न जातु जन्तोःसामीप्यं,चतुर्गतिषु मुञ्चति।।46।।
आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य, व्यवहारबहिः स्थितेः।
जायते परमानन्दः कश्चिद्योगेन योगिनः।।47।।
आनन्दो निर्दहत्युद्धं कर्मेन्धनमनारतम्।
न चासौ खिद्यते योगी, बहिर्दुःखेष्वचेतनः।।48।।
अविद्याभिदुरं ज्योतिः, परं ज्ञानमयं महत्।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद्द्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः।।49।।
जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः।
यदन्यदुच्यते किञ्चित्सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः।। 50।।
इष्टोपदेशमिति सम्यगधीत्य धीमान्,
मानापमानसमतां स्वमताद्वितन्य।
मुक्ताग्रहो विनिवसन् सजने वने वा,
मुक्तिश्रियं निरुपमामुपयाति भव्यः।।51।।

===

मुनि श्री प्रणम्यसागर जी द्वारा साहित्य सृजन

संस्कृत भाषा में टीका ग्रन्थ -

1. लिङ्गपाहुड़ (नन्दिनी टीका)
2. शील पाहुड़ (नन्दिनी टीका)
3. समाधि तन्त्र (आर्हतभाष्य)
4. चैतन्य चन्द्रोदय (चन्द्रिका टीका)
5. बारसाणुवेक्खा (कादम्बिनी टीका)
6. आत्मानुशासन (स्वस्ति टीका)
7. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय (मंगला टीका)
8. प्रश्नोत्तर रत्नमालिका ('नीति-पथ')
9. तत्त्वार्थ सूत्र (तत्त्व संदीपिनी टीका, संस्कृत-प्राकृत)
10. संस्कृत एवं प्राकृत भक्ति (आठ भक्तियों की टीका)

हिन्दी में अनुवादित ग्रन्थ -

1. सत्कर्म पंजिका 2. दश भक्ति टीका
3. प्रवचनसार (सरोज भास्कर टीका)
4. कथा कोश 5. सत्य शासन परीक्षा
6. युक्त्यनुशासन 7. नाममाला (भाष्य)
8. सत्संख्यादि अनुयोगद्वार 9. पात्रकेसरी स्तोत्र
10. अद्याष्टक स्तोत्र 11. संन्यास एषोस्तु किमात्मघातः
12. चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तुति (आ. माघनन्दि)
13. नियमसार 14. समयसार 15. परीक्षामुख
16. प्रतिक्रमण-ग्रन्थत्रयी

पद्यानुवाद

1.पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय 2. प्रश्नोत्तर रत्नमालिका
3. तत्त्वार्थ सूत्र 4. पात्र केसरी स्तोत्र
5. कल्याणमन्दिर स्तोत्र 6. श्री वर्धमान स्तोत्र
7. मंगलाष्टक 8. माघनन्दि कृत अभिषेक पाठ
9. उपयोग शतक

प्रवचन ग्रंथ

1. वारसानुवेक्खा
2. नई छहढाला प्रवचन
3. परमात्म योग (समाधि तन्त्र)
3. अध्यात्म योग (इष्टोपदेश)
4. जीव विज्ञान (तत्वार्थसूत्र अध्याय-2)
5. मनोविज्ञान (तत्वार्थसूत्र अध्याय-6)
6. लोक विज्ञान (तत्वार्थसूत्र अध्याय-3-4)

संस्कृत भाषा में मौलिक काव्य ग्रन्थ -

1. स्तुति पथ (इस कृति में निम्नलिखित स्तुतियाँ हैं)
1. प्रार्थना 2. वीराष्टकम् 3. भरताष्टकम् 4. शारदाष्टकम्
5. कुन्दकुन्दाष्टकम् 6. समन्तभद्राष्टकम् 7. शान्त्यष्टकम्
8. ज्ञानाष्टकम् 9. विद्याष्टकम् 10. मौनाष्टकम्
11. निजबोधाष्टकम् 12. आचार्य श्री ज्ञानसागर प्रशस्ति पत्र
13. आचार्य श्री विद्यासागर पूजन
2. श्रायस पथ
3. सिद्धोदयाष्टकम्
4. श्री वर्धमान स्तोत्र।
5. अनासक्त महायोगी (आचार्यश्री का जीवनवृत्त)
6. उपयोग शतकम्

प्राकृत भाषा में मौलिक ग्रन्थ -

1. तित्थयर भावणा
(सोलहकारण भावनाओं पर प्राकृत गाथाएँ)
2. दार्शनिक प्रतिक्रमण
3. अष्टपाहुड़ (प्राकृत टीका)
4. धम्मकहा 5. प्राकृत रचना भास्कर
6. प्राकृत शिक्षा भाग 1-2 -3 -4
7. गोम्मटेस पडिमा भत्ति

अन्य मौलिक कृतियाँ

1. युगद्रष्टा (भगवान ऋषभदेव पर उपन्यास)
2. जैन सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य
3. खोजो मत पाओ (लाइफ मैनेजमेन्ट)
4. आलेख पथ (20 सैद्धान्तिक आलेख)
5. समयसार का ज्ञानी आत्मा कौन ?
6. अन्तर्गूंज (भजन एवं हाइकू)
7. लहर पर लहर (कविता संग्रह)
8. बेटा! (शिक्षाप्रद सूक्तियाँ) 9. नई छहढाला
10. लक्ष्य (जीवंधर चरित्र) 11. मुनि सुव्रतनाथ विधान
12. अर्हम् दोहावली 13. अर्हं ध्यान योग

संकलन

1. संवाद (आचार्य श्री और बाबा रामदेव की चर्चा)
2. A Talk (संवाद का अंग्रेजी अनुवाद)
3. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय अनुशीलन

अंग्रजी भाषा में

1. Fact of Fate (articles)
2. Twelve Comtemplation 3. I Love my Soul

ISBN 978-81-939298-4-1
9 788193 929841
₹ 450.00

प्रकाशक
आचार्य अकलंकदेव जैनविद्या शोधालय समिति
उज्जैन (म.प्र.)